भारतीय इतिहास और अर्थशास्त्र के गौरवग्रंथ

भारत में अंगरेज़ी राज

प्रथम खंड

सन् 1700 का भारत

"यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चांदी चारों तरफ़ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।"

— फ्रान्सीसी यात्री बरनियर

सन् 1900 का भारत

"बीसवीं सदी के शुरू में करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल पाता..... इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी भी सभ्य और उन्नतिशील देश में दिखाई नहीं दे सकती।"

—विलियम डिगबी
सी० आई० ई०, एम० पी०

कबीर साहब

(श्री बहादर सिंह जी सिंघी, कलकत्ता, के सौजन्य से प्राप्त)

भारत में
अंगरेज़ी राज
(प्रथम खंड)

सुन्दरलाल

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

प्रकाशन विभाग द्वारा

प्रथम मुद्रण : श्रावण, 1882 (जुलाई, 1960)
द्वितीय मुद्रण : कार्तिक, 1885 (अक्तूबर, 1963)
तृतीय मुद्रण : आश्विन, 1889 (सितम्बर, 1967)
चतुर्थ मुद्रण : वैशाख, 1904 (अप्रैल, 1982)

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110 001 द्वारा प्रकाशित

प्रकाशन विभाग : विक्रय केन्द्र

सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110 001
कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400 038
8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 001
शास्त्री भवन, 35, हैड्डोज रोड, मद्रास-600 006
बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
निकट गवर्नमेंट प्रेस रोड, त्रिवेंद्रम-695 001
10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226 004
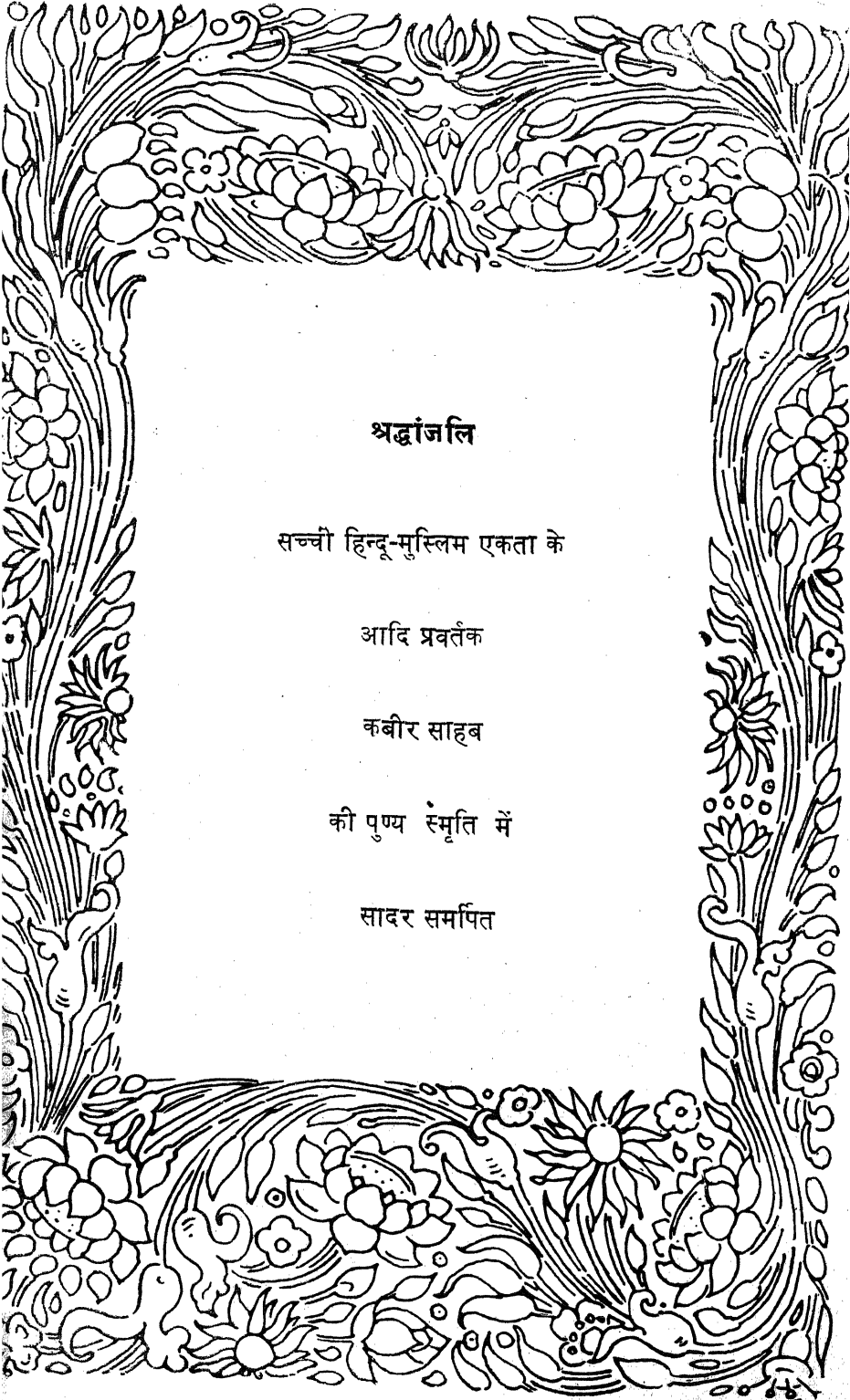
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक-422 006 द्वारा मुद्रित ।

श्रद्धांजलि

सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकता के

आदि प्रवर्तक

कबीर साहब

की पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित
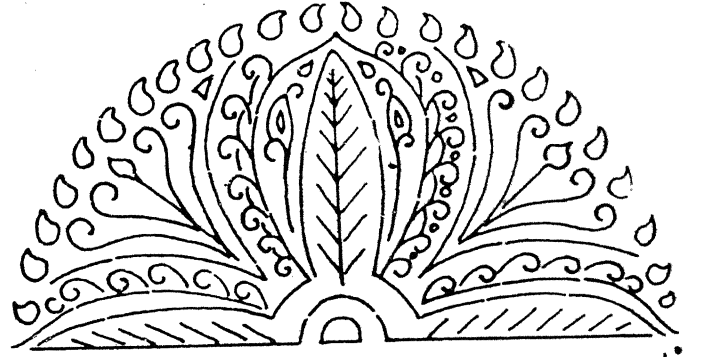
हिन्दू कहै राम मोंहि प्यारा,
तुरक कहै रहिमान ।
आपस में दोउ लरि लरि मूए,
मर्म न काहू जाना ।।

—कबीर

विषय-सूची

भूमिका

इक्कीस वर्ष की आयु में भारत की स्वाधीनता के प्रयत्नों में हिस्सा लेने के समय से ही मेरा ध्यान देश की साम्प्रदायिक समस्या की ओर गया।

उन दिनों कलकत्ता भारत की राजधानी थी। राष्ट्रीयता की भावना और स्वाधीनता के प्रयत्नों में भी देश के अन्य प्रान्तों से बंगाल आगे बढ़ा हुआ था। बंगाल का प्रभाव सारे देश पर पड़ता था। इसलिए राष्ट्रीय भावना को कम करने और स्वाधीनता के प्रयत्न को निष्फल करने के लिए अंगरेज़ शासकों ने तीन मुख्य उपाय सोचे। सबसे पहला उपाय बंगाल के दो टुकड़े कर देना था—एक 'पश्चिमी बंगाल', जिसमें अधिकांश आबादी हिन्दुओं की थी और दूसरा 'पूर्वी बंगाल', जिसमें अधिकांश आबादी मुसलमानों की थी। इस तरह, संयुक्त बंगाल को 'हिन्दू बंगाल' और 'मुस्लिम बंगाल' में बांट दिया गया। दूसरा उपाय यह किया गया कि राष्ट्रीय आन्दोलन को कमज़ोर कर देने के लिए कुछ पढ़े-लिखे मुसलमानों और कुछ पढ़े-लिखे हिन्दुओं को अपनी ओर मिला कर सन् 1906–1907 में मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा को जन्म दिया गया। तीसरा उपाय, बंगाल और खास कर कलकत्ते के प्रभाव को तोड़ने के लिए भारत की राजधानी को कलकत्ते से हटा कर, सन् 1912 में, दिल्ली लाना था। इन तीनों उपायों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देश में साम्प्रदायिक झगड़े बढ़े और आज़ादी की कोशिशें कमज़ोर पड़ गईं।

कुछ दिनों बाद सन् 1919 में महात्मा गांधी के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। साम्प्रदायिक मेल-मिलाप और हिन्दू-मुस्लिम एकता के जो जगमगाते दृश्य उन दिनों देश भर में जगह-जगह दिखाई देने लगे, उन्होंने अंगरेज़ शासकों को फिर घबरा दिया। सन् 1920–21 में स्वाधीनता संग्राम का वेग बढ़ता चला गया। यहां तक कि कलकत्ते के एक ऐंग्लो-इंडियन जलसे में तत्कालीन अंगरेज़ वाइसराय ने गांधी जी के आन्दोलन की चर्चा करते हुए कहा—"His programme came within an inch of success, I stood puzzled and perplexed", अर्थात् "गांधीजी के कार्यक्रम की सफलता में एक इंच भर कसर रह गई थी, मैं हैरान और परेशान खड़ा था।" स्वाधीनता संग्राम के उस गर्ई को तोड़ने के लिए पहले 1922 के शुरू में महात्मा गांधी को पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया गया और फिर, 15 वर्ष पहले के प्रयोग को दुहराते हुए, हिन्दू संगठन और मुस्लिम तंज़ीम की बुनियादें डाली गईं, जिनसे देश भर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू हो गए।

सन् 1924 के शुरू में महात्मा गांधी को रिहा कर देना पड़ा। महात्मा गांधी के बाहर रहते हुए दिल्ली में एक भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। गांधी जी की आज्ञा से मैं अपने परम मित्र महात्मा भगवानदीन जी के साथ दंगे के कारणों का पता लगाने के लिए दिल्ली आया। पांच-सात दिन के अन्दर ही स्वयं महात्मा गांधी भी दिल्ली पहुंच गए। इतने में कोहाट और मुलतान से और भी अधिक भयंकर साम्प्रदायिक दंगों की खबरें आईं। आपसी मार-काट की उस

आग को ठंडा करने के लिए महात्मा गांधी ने 21 दिन का लम्बा उपवास शुरू कर दिया। स्वभावतः सारे देश का ध्यान इन साम्प्रदायिक दंगों की तरफ खिंचा और उन्हें खतम करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचे जाने लगे।

यह एक बात सबके सामने स्पष्ट थी कि इन झगड़ों की जड़ में मुख्य चीज़ अंगरेज़ शासकों की 'Divide and Rule', अर्थात् 'फूट डालो और शासन करो' की नीति थी। सन् 1907 के लगभग पंजाब से इसी विषय पर एक छोटी-सी पुस्तक उर्दू में प्रकाशित हुई थी, जिसका नाम था—'बन्दरबांट' और जिसमें अंगरेज़ शासकों के ही ये स्पष्ट शब्द उद्धृत किए गए थे कि भारतीय ब्रिटिश शासन की नीति 'फूट डालो और शासन करो' ही होनी चाहिए। दूसरी ओर, अनेक ऐसी पुस्तकें देश भर में फैलाई जा रही थीं, जिनमें ऐतिहासिक घटनाओं और दोनों धर्मों के सिद्धांतों को तोड़-मरोड़ कर दोनों के दिलों में एक-दूसरे से नफरत पैदा करने की कोशिशें की गई थीं। स्वाधीनता आन्दोलन की उन्नति के रास्ते में यही सबसे बड़ी रूकावट थी।

निश्चय

सन् 1925 के अन्त में मैंने निश्चय किया कि कुछ दिनों तटस्थ बैठकर मैं देश की इस प्रधान समस्या की जड़ों, अंगरेज़ी शासन के साथ उसके सम्बन्ध और उसके इलाज पर अध्ययन और मनन करूं। इस सिलसिले में मुझे भारतीय ब्रिटिश शासन के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मेजर बामनदास बसु से मिलने का सौभाग्य हुआ। मेजर बसु ने अपनी निम्नांकित पुस्तकें मुझे पढ़ने को दीं :

(1) **'राइज़ आफ़ दि क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया'**—पांच ज़िल्द;
(2) **'कन्सालिडेशन आफ़ दि क्रिश्चियन पावर इन इंडिया'**— एक ज़िल्द;
(3) **'रुइन आफ़ इण्डियन ट्रेड एण्ड इंडस्ट्रीज़'**— एक ज़िल्द; और
(4) **'एजुकेशन इन इण्डिया अण्डर दि ईस्ट इंडिया कम्पनी'**— एक ज़िल्द।

इन विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों में मुझे बहुत-सी सामग्री ऐसी मिली, जो इतिहास की साधारण पुस्तकों में नहीं मिलती और जिसका ज्ञान अपनी अनेक राष्ट्रीय भूलों और त्रुटियों को दूर करने में हमारे लिए हितकर हो सकता है। इन पुस्तकों को पढ़ कर देश के अन्दर अंगरेज़ों की शासन नीति और देश की साम्प्रदायिक समस्या के साथ उसके सम्बन्ध का चित्र सजीव होकर मेरी आंखों के सामने खिंच गया। मैंने तय किया कि इन पुस्तकों से लाभ उठाते हुए मैं भारत में अंगरेज़ी राज का ठीक-ठीक इतिहास लिख कर अपने देशवासियों के सामने रख दूं। मैं स्वर्गीय मेजर बामनदास बसु का अनुगृहीत हूं कि उन्होंने न केवल सहर्ष मुझे इसकी इजाज़त दी, वरन् जैसे-जैसे मेरी अपनी पुस्तक तैयार होती गई, वे उसके मसविदे को बराबर सुनते रहे और जगह-जगह अपनी अमूल्य सलाहों से मुझे सहायता देते रहे।

पुस्तक की तैयारी

पुस्तक के लिखने में मुझे तीन साल से ऊपर लग गए। अन्य अनेक प्रामाणिक ऐतिहासिक पुस्तकों और दस्तावेज़ों को भी मुझे पढ़ना पड़ा और उनसे सामग्री लेनी पड़ी। उदाहरण के लिए, मीर क़ासिम, वारेन हेस्टिंग्स, हैदरअली, टीपू

सुलतान, सिन्ध पर अंगरेज़ों का कब्जा और सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम सम्बन्धी सात अध्याय, इन कुल बारह्हों अध्यायों की अधिकांश, बल्कि लगभग समस्त सामग्री मेजर बसु की पुस्तकों से बाहर की है। शेष अध्यायों में भी स्थान-स्थान पर अन्य पुस्तकों, लेखों आदि से सहायता ली गई है।

पुस्तक की लम्बी प्रस्तावना, जिसे मैंने 'पुस्तक-प्रवेश' नाम दिया है, मेरी अपनी है। इस प्रस्तावना में मैंने आवश्यक समझा कि भारत में अंगरेज़ों के आने से पहले के बाहरी हमलों को और अंगरेज़ों के आने के समय की भारत की ठीक-ठीक स्थिति को पाठकों के सामने रख दिया जाए, जिससे उन्हें अपने देश के ऊपर अंगरेज़ी राज के हितकर अथवा अहितकर प्रभाव को पूरी तरह समझने में आसानी हो। इस प्रस्तावना के भाग 4, 5, 7 और 8 की लगभग सम्पूर्ण सामग्री डा० ताराचन्द, एम०ए०, डी० फिल० के निबन्ध 'दि इन्फ्लुएन्स आफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर' से ली गई है। मैं डा० ताराचन्द का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे अपने अमूल्य और अत्यन्त शिक्षाप्रद निबन्ध के इस तरह उपयोग की इजाज़त दे दी।

हैदरअली और टीपू सुलतान के सम्बन्ध की जो नई और दुर्लभ सामग्री मुझे मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार, श्रीयुत बी० एम० श्रीकण्ठ्य, एम० ए०, बी० एल० से और मैसूर पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर, डा० आर० शामाशास्त्री से प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं इन दोनों सज्जनों का आभारी हूं।

इस पुस्तक के अन्दर मैंने नगरों आदि के नाम यथासम्भव स्थानीय उच्चारण के अनुसार देने का यत्न किया है। मैं डा० मेघनाथ बंद्योपाध्याय का मशकूर हूं कि उन्होंने अपने विस्तीर्ण भौगोलिक ज्ञान से मुझे इस काम में बड़ी मदद दी।

चित्रों आदि के संग्रह में श्रीयुत वासुदेव राव सूबेदार, सागर; श्रीयुत बी० जी० जोशी, चित्रशाला प्रेस, पूना; डा० सर ए० सुहरावर्दी, कलकत्ता; टीपू सुलतान के प्रपौत्र शहजादे हलीमुज़्ज़मां; श्रीयुत बहादुर सिंह सिंधी, कलकत्ता; ज्ञानी हीरा सिंह जी, सम्पादक, 'फुलबाड़ी' अमृतसर; आचार्य नरेन्द्र देव, काशी विद्यापीठ; पं० गोकुलचन्द दीक्षित, सम्पादक, 'स्टेट गज़ट', भरतपुर; श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय, सम्पादक, 'माडर्न रिव्यू', कलकत्ता; डा० सीताराम, क्यूरेटर, सेण्ट्रल म्यूज़ियम, लाहौर; मिस्टर एफ० हैरिंगटन, एफ० आर० ए० एस०, क्यूरेटर, विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता और श्रीयुत अमूल्यचरण विद्याभूषण, मन्त्री, बंगला साहित्य परिषद्, कलकत्ता ने मेरी जो सहायता की है, उसके लिए मैं इन सब सज्जनों का अत्यन्त आभारी हूं। विशेषकर जिस प्रेम और परिश्रम के साथ बाबू अमूल्यचरण विद्या-भूषण ने मेरी सहायता की, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर सकना मेरे लिए असम्भव है। वयोवृद्ध मिस्टर एफ० हैरिंगटन, एफ०आर०ए० एस० का भी मैं विशेष कृतज्ञ हूं कि उन्होंने विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के चित्रों के फ़ोटो लेने में मुझे हर तरह की सुविधा प्रदान की। दूसरे संस्करण के लिए कुछ नए चित्र प्राप्त करने में मुझे विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के ट्रस्टियों और उस समय के सेक्रेटरी और क्यूरेटर, मिस्टर परसी ब्राउन से भी बहुत मदद मिली, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

पुस्तक के लिखने में मुझे सबसे अधिक सहयोग इस समय (1960) के इलाहाबाद कारपोरेशन के मेयर, अपने पुराने साथी, पं० विश्वम्भर नाथ पांडे से मिला

है। मुझे कभी हाथ से लिखने की आदत नहीं रही, अधिकतर बोल कर लिखवाने की ही आदत रही है। इस पुस्तक की सारी पाण्डुलिपि शुरू से आखिर तक पं० विश्वम्भर नाथ जी के ही हाथों से लिखी गई। वह मेरे बोलने पर केवल लिखते ही नहीं थे, जटिल प्रश्नों की बहस और उनके हल करने, जगह-जगह से सामग्री के जुटाने, चित्रों के चुनाव, नए संस्करण के लिए पुस्तक को दुहराने, पहली और दूसरी पुस्तक की 'क्या कहां' (Index) तैयार करने, आदि कामों में उनसे मुझे सदा अमूल्य सहायता मिली है। इस दृष्टि से उन्हें पुस्तक का सह-रचयिता कहना भी मुझे अनुचित प्रतीत नहीं होता।

इस अवसर पर मैं अपने जीवन भर के सुहृद और बड़े भाई, पुराने क्रान्तिकारी, इलाहाबाद के स्वर्गीय बाबू नित्यानन्द चटर्जी को भी नहीं भूल सकता, जिनके घर में बैठकर इस गृहविहीन बटोही ने यह पुस्तक लिखी। जो आराम, स्नेह और शान्ति मुझे उनके घर में मिली, उसके बिना इस काम का पूरा होना असम्भव था।

मैंने यह पुस्तक केवल इसी उद्देश्य और आशा से लिखी थी कि मेरा यह नम्र प्रयत्न मेरे देशवासियों द्वारा अपने देश की शोचनीय स्थिति पर और उस स्थिति के वास्तविक इलाज पर गम्भीरता के साथ विचार करने में सहायक हो सके। मुझे हर्ष है कि मेरी वह आशा एक बड़े दरजे तक पूरी हुई।

पहला संस्करण और ज़ब्ती

पुस्तक का पहला संस्करण, 2,000 प्रतियों का, 18 मार्च, 1929 को प्रकाशित हुआ। पुस्तक के लिखे जाने के दिनों में ही अंगरेज़ शासकों के बीच इतनी खलबली मच गई थी कि इतनी बड़ी पुस्तक के प्रकाशन से पहले ही उसकी ज़ब्ती का फैसला हो चुका था।

22 मार्च, 1929 को अंगरेज़ सरकार की ओर से ज़ब्ती की आज्ञा लेकर पुलिस प्रकाशक के दफ्तर में पहुंच गई। इस बीच तीन दिन के अन्दर ही किसी तरह 1,700 किताबें एक बार ग्राहकों के पास पहुंचा दी गई थीं। बाकी 300 के करीब सरकार ने रेल या डाकखाने में ज़ब्त कर लीं। इन 1,700 के लिए भी ग्राहकों के पते लगा-लगा कर हिन्दोस्तान भर में सैकड़ों तलाशियां ली गईं, जिनमें अनेक पुस्तकें पुलिस के हाथ लग गईं। इस जब्ती और इन तलाशियों के खिलाफ देश भर के लगभग सब समाचारपत्रों और प्रमुख नेताओं ने अपनी आवाज़ उठाई। महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में इस जब्ती को 'दिनदहाड़े डाका' (Daylight Robbery) बताया और देशवासियों को खुली सलाह दी कि वे तलाशी के अपमान को सह लें, किन्तु अपने पास की पुस्तक अपने हाथों से पुलिस को उठा कर न दें और, जहां तक हो सके, अपनी चीज़ को बचा लें। स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज जैसे नेताओं ने और अनेक प्रान्तों के अन्दर अनेक देशभक्तों ने ऐसा ही किया। यह न किया जाता, तो इतनी पुस्तकों का बच सकना असम्भव था।

पुस्तक और महात्मा गांधी

इस जब्ती के होते हुए महात्मा गांधी ने मुझे आज्ञा दी कि मैं पुस्तक का एक सेट कहीं से उन्हें लाकर दूं। मैंने ऐसा ही किया। महात्मा जी ने वह सेट

आद्योपान्त पढ़ने के लिए महादेव भाई को सुपुर्द कर दिया। महादेव भाई ने आद्योपान्त पढ़ा और गांधी जी को सब बताया। महादेव भाई की राय मिलने पर गांधी जी ने भी पुस्तक को पढ़ा। इसके बाद 'यंग इण्डिया' में उन्होंने इस पुस्तक पर कई सम्पादकीय लेख लिखे। उन लेखों में गांधी जी ने इस पुस्तक की तारीफ की, इसे 'अहिंसा के प्रचार और प्रसार का एक प्रशंसनीय प्रयत्न' (A praiseworthy attempt to inculcate non-violence) बताया और लोगों को यह सलाह दी कि जब भी ब्रिटिश सरकार के कानून को तोड़ कर सत्याग्रह करने का अवसर आए, इस पुस्तक के महत्त्वपूर्ण अंशों को नकल करके या छाप कर, और खुले वितरण करके लोग जेल जा सकते हैं। चुनांचे इसके बाद के सत्याग्रह के दिनों में कई प्रान्तों में, विशेषकर मध्यप्रान्त में अनेक लोग इसी पुस्तक पर सत्याग्रह करके जेल गए।

महात्मा गांधी ने मुझे यह भी आज्ञा दी कि मैं अंगरेजी भाषा में पुस्तक का लगभग 500 पृष्ठ का संस्करण तैयार कर दूं, ताकि गांधी जी उसे छपवा कर, प्रकाशक की जगह अपना नाम देकर निकालें। इस संस्करण को तैयार करने के लिए प्रसिद्ध लेखक और देशसेवक, श्रीयुत बरजोर जी फ़राम जी भरूचा को मेरे साथ बैठाया गया। कुछ दिन तक हम दोनों साथ-साथ यह काम करते रहे, किन्तु उसके बाद श्रीयुत भरूचा की माता के देहान्त और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की गतिविधि के कारण यह काम बीच में ही रूक गया और फिर आरम्भ न किया जा सका।

उन दिनों गांधी जी ने पूरे विश्वास के साथ मुझसे कई बार यह कहा कि यह ज़ब्ती ठहर नहीं सकती और यह पुस्तक अवश्य फिर से प्रकाशित होगी।

दूसरा संस्करण

जुलाई, 1937 में कांग्रेस ने कई प्रान्तों के अन्दर मन्त्री पद स्वीकार किया। 10 अगस्त, 1937 को मैंने संयुक्तप्रान्त की सरकार को ज़ब्ती की आज्ञा उठा देने को लिखा। अंगरेज़ गवर्नर ने फिर ज़ब्ती की आज्ञा उठा लिए जाने पर एतराज़ किया। मैंने गांधी जी को खबर दी। उनका चार लाइन का जो उत्तर मेरे पास आया, वह यह था:

भाई सुन्दरलाल,

बैन तो हटना ही चाहिए। धीरज रक्खो। गवर्नर क्या बाधा डाल रहा है, मुझे लिखो।

बापू के आशीर्वाद

मैंने यह ख़त ज्यों-का-त्यों अधिकारियों के पास भेज दिया। 15 नवम्बर, 1937 को संयुक्तप्रान्त की सरकार ने 22 मार्च, 1929 वाली ज़ब्ती की आज्ञा को मन्सूख कर दिया। उसके बाद, धीरे-धीरे भारत के दूसरे प्रान्तों के अन्दर भी पुस्तक पर से रोक उठा ली गई।

ज़ब्ती की आज्ञा मन्सूख होते ही 10,000 प्रतियों का दूसरा संस्करण निकालने का विचार किया गया। कुछ उत्साही प्रकाशकों ने मुझे बड़ी-बड़ी रकमें रॉयल्टी की देकर पुस्तक के प्रकाशन का अधिकार लेना चाहा। मैंने तय किया कि दूसरा

संस्करण निकालने का अधिकार मैं उस प्रकाशक को दूंगा, जो पुस्तक सबसे कम दामों पर बेचने को तैयार हो। मैं ओंकार प्रेस, इलाहाबाद, के स्वर्गीय पं० त्रिवेणी नाथ बाजपेयी का आभारी हूं कि उन्होंने बावजूद इस बात के, कि छपाई आदि का खर्च पहले से बढ़ गया था, तीन जिल्दों वाले दूसरे संस्करण का मूल्य केवल सात रुपये रखा। इतनी बड़ी, इतनी सस्ती पुस्तक भारत में शायद ही कोई दूसरी प्रकाशित हुई हो। पुस्तक छप कर तैयार होने से पहले 10,000 की जगह 14,000 से ऊपर ग्राहकों के आर्डर आ चुके थे। दूसरा संस्करण हाथों-हाथ निकल गया।

तीसरा संस्करण

इतनी जबरदस्त मांग होते हुए भी कुछ कारणों से पुस्तक का तीसरा संस्करण जल्दी न निकल सका। मुझे इस बात का गर्व और खुशी है कि यह तीसरा संस्करण स्वाधीन भारत की सरकार प्रकाशित कर रही है। इन तीनों संस्करणों में पुस्तक का सारा विषय ज्यों-का-त्यों चला जा रहा है। उसमें कोई कमी-बेशी नहीं की गई। जो कुछ थोड़ा-बहुत अन्तर है, वह केवल भाषा की दृष्टि से इधर-उधर कुछ शब्दों या वाक्यों में है, या कुछ इने-गिने चित्रों में।

इस पुस्तक की जब्ती के विरुद्ध इलाहाबाद हाईकोर्ट में जब मुकदमा चल रहा था, तब मेरे वकील सर तेजबहादुर सप्रू ने अदालत में यह कहा था कि पुस्तक के अन्दर एक भी घटना ऐसी बयान नहीं की गई है, जिसकी सच्चाई के बारे में किसी तरह का कोई प्रश्न उठ सके। सरकारी वकील श्री बाजपेयी ने सर तेजबहादुर सप्रू के इस कथन की सच्चाई को स्वीकार किया और अदालत से कहा कि—"चूंकि इस पुस्तक की सारी बातें सच्ची हैं, इसीलिए यह अधिक खतरनाक है।"

यहां मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूं कि देश की आज़ादी के बाद इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य हरगिज़ यह नहीं है कि किसी की भी पुरानी गलतियों को याद करके हम आपस में किसी तरह की कटुता को बनाए रखें। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आज़ाद भारतवासियों और आजकल की अंगरेज़ कौम के बीच वैसी ही मित्रता और प्रेम रहे, जैसा कि किसी भी अन्य दो राष्ट्रों के बीच। मेरा उद्देश्य केवल यह है कि ज्वलन्त ऐतिहासिक सच्चाइयों को निगाह में रखते हुए, उनकी रोशनी में हम स्वयं अपनी कमज़ोरियों, गलतियों और त्रुटियों को समझें और अपने चरित्र को सदा ऊंचा रखने का प्रयत्न करते रहें। यही इतिहास-कला का लक्ष्य है। मुझे विश्वास है कि भारत में अंगरेज़ी राज के लगभग 100 वर्ष के इस विस्तृत और सच्चे इतिहास की जानकारी अब भी हमें अपनी राष्ट्रीय कमज़ोरियों को समझने में, उन्हें दूर करने में और अपनी नई प्राप्त की हुई स्वाधीनता की रक्षा करने में बहुत कुछ मदद दे सकती है।

नई दिल्ली,
सोमवार, 28 मार्च, 1960

—सुन्दरलाल

पुस्तक-प्रवेश

लेखक की कठिनाइयां

इतिहास–कला

इस समय की इतिहास-कला बहुत दरजे तक आजकल की यूरोपीय सभ्यता की पैदावार है। प्राचीन चीन, भारत, ईरान, मिस्र इत्यादि में भी यह कला थोड़ी-बहुत थी; इनमें से हर देश में उस देश की पुरानी सभ्यता का थोड़ा-बहुत लिखा इतिहास मिलता है। प्राचीन यूनान और रोम में इस कला ने और उन्नति की। अनेक यूनानी और रोमी विद्वानों के उस समय के लिखे इतिहास आज तक प्रमाण माने जाते हैं। इसके बाद अरबों का समय आया और, जहां तक इस कला को वैज्ञानिक रूप देने और इतिहास की सचाई को कायम रखने का प्रश्न है, शायद किसी भी प्राचीन कौम ने इस विषय में इतना अधिक परिश्रम नहीं किया, जितना अरबों ने। ईसा की ग्यारहवीं सदी में प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक अलबरुनी ने इतिहास-कला की बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक विवेचना की है और इतिहास के विद्यार्थियों को सावधान किया है कि हर इतिहास-लेखक की अपनी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से कितनी तरह की भ्रान्तियां पैदा हो सकती हैं, जिनसे बच सकना लेखक के लिए अत्यन्त कठिन है। और भी अनेक प्रामाणिक इतिहास-लेखकों और इतिहास-कला-विशारदों के नाम उस समय के अरबों में मिलते हैं। किन्तु फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि विस्तृत इतिहास लिखने का जो रिवाज़ आजकल के समय में प्रचलित है, वह प्राचीन देशों में कहीं न था। प्राचीन संसार में, और खास कर प्राचीन भारत में, आजकल के अर्थों में, अपने-अपने देशों या जातियों का इतिहास लिखने का काम न इतना जरूरी समझा जाता था और न उसे इतना महत्व दिया जाता था। यही वजह है कि प्राचीन भारत का कोई सिलसिलेवार इतिहास नहीं मिलता और अधिकांश पुरानी सभ्यताओं के इतिहास का पता लगाने के लिए हमें उनकी पौराणिक कथाओं, तरह-तरह के साहित्य, परम्परागत गाथाओं, शिलालेखों, खुदे हुए अवशेषों, सिक्कों आदि की ही मदद लेनी पड़ती है।

वास्तव में, इतिहास लिखने की कला को आज इतना अधिक महत्व दिए जाने की खास वजह आजकल की मुखतलिफ़ कौमों की मानसिक स्थिति है। शायद मानव जाति की वास्तविक उन्नति की दृष्टि से यह कला इतने अधिक महत्व की नहीं है, जितनी समझी जाती है। आजकल इतिहास का अधिकतर सम्बन्ध उस समय की राजनैतिक अवस्था से होता है। शायद कोई भी मनुष्य अपने समय की राजनैतिक अवस्था की ओर से पूरी तरह निष्पक्ष नहीं हो सकता। जाने या अनजाने हर लेखक के विचार किसी-न-किसी ओर अधिक झुकते ही हैं। कोई दो लेखक ऐसे भी नहीं मिल सकते, जो अपने समय की एक घटना को या किसी खास तरह की घटनाओं को एक-सा महत्व देते हों या एक ही निगाह से देखते हों। व्यक्तिगत पक्षपात या अपनी-अपनी प्रवृत्तियों के अलावा हर मनुष्य के चित्त में सामाजिक, जातीय या साम्प्रदायिक प्रवृत्तियां भी अपनी जगह रखती ही हैं और उस मनुष्य की लेखनी पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकतीं। इसलिए आमतौर पर पूरी तरह निष्पक्ष इतिहास का मिल सकना यदि बिल्कुल असम्भव नहीं, तो करीब-करीब

असम्भव ज़रूर है। इस तरह के पक्षपात से रंगे हुए इतिहास, पाठकों में भी उसी तरह के पक्षपात को बनाए रखने का एक अनन्त साधन होते हैं। इस सबके अलावा, मनुष्य की परिमित मानसिक शक्तियों पर अनन्त तिथियों और व्यक्तियों के हालात या चरित्रों का भार डालने की भी खास ज़रूरत नहीं है। अपने या दूसरों के दोषों को याद रखने की निस्बत मनुष्य जाति के संचित पुण्य विचारों पर ही दृष्टि रखना मनुष्य के लिए अधिक श्रेयस्कर है, खास कर राजनीति में, जहां कि मानव-प्रेम और आत्मोत्सर्ग की जगह द्वेष और स्वार्थ हमारे कृत्यों को अधिक प्रभावित करते हैं। यही वजह है कि पुराने ज़माने के विद्वान अपनी-अपनी कौमों के विस्तृत और पूरे-पूरे इतिहास लिखने के बजाय कल्पित या अर्ध-ऐतिहासिक कथाओं के जरिए अपने समय के उच्च-से-उच्च नैतिक, सामाजिक और धार्मिक आदर्शों को चित्रित कर देना ज्यादा अच्छा समझते थे। यही वजह है कि अनेक उच्च-से-उच्चकोटि के प्राचीन ग्रन्थों में लेखक का नाम तक नहीं मिलता। यही वजह है कि भारत के प्राचीन साहित्य से तिथियों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इसी कारण मामूली इतिहास की निस्बत रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों की श्रेष्ठता और उपयोगिता कहीं बढ़ कर है।

इतिहास-लेखक की कठिनाइयां

जो कठिनाइयां मनुष्य को अपने समय का इतिहास लिखने में होती हैं, उससे अधिक कठिनाइयां पुराने समय के इतिहास के लिखने में होती हैं। पिछले समय का इतिहास लिखने वाले को भी इन्हीं पक्षपात से रंगे हुए उल्लेखों के आधार पर अपनी रचना करनी पड़ती है। काल और हालात की दूरी के कारण उसे और भी अधिक अंधेरे में टटोलना पड़ता है। भारत का, और खास कर अंगरेज़ी काल के भारत का, इतिहास लिखने वाले के लिए ये कठिनाइयां कई गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। ब्रिटिश भारत का इतिहास लिखनेवाले को अधिकतर अंगरेज़ों के लिखे ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। भारतवासियों के हाथ का लिखा कोई सिलसिलेवार इतिहास उस समय का नहीं मिलता। जो अधूरे वृतान्त किसी-किसी भारतवासी के हाथ के लिखे मिलते हैं, उनमें से भी अनेक के लेखक अंगरेज़ों के ज़रखरीद थे, यह बात उन्हीं के लेखों से साबित है।

संसार के इतिहास में जब-जब और जहां-जहां एक कौम दूसरी कौम के शासन में आई है, वहां-वहां कुदरती तौर पर शासक क़ौम के लेखकों की गरज़ अपनी रचनाओं से यही रही है कि अपनी कौम के लोगों में देशभक्ति, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और साहस को जाग्रत करें और शासित क़ौमवालों में इन्हीं गुणों को कम करें या पैदा न होने दें। अंगरेज़ों के लिखे हुए भारतीय इतिहास, करीब-करीब शुरू से आखिर तक, इसी दोष से रंगे हुए हैं। शायद संसार के किसी भी देश का इतिहास इस तरह इतना अधिक विकृत नहीं किया गया, जितना हिन्दोस्तान का। हिन्दोस्तान और इंगलिस्तान का सम्बन्ध ही उस समय इस तरह का था कि इस सम्बन्ध के एक बार शुरू हो जाने के बाद निष्पक्ष भारतीय इतिहास का लिखा जाना करीब-करीब नामुमकिन हो गया। एक ओर अंगरेज़ लेखकों की साम्राज्यप्रिय दृष्टि और दूसरी ओर अंगरेज़ी काल के ज्यादातर भारतीय

लेखकों की विदेशी शिक्षा, मानसिक दासता और आजीविका की विकट परिस्थिति। नतीजा यह है कि ब्रिटिश भारतीय इतिहास की जो पुस्तकें आजकल हमें मिलती हैं, उनमें से अधिकांश में निरर्थक तुच्छ बातों पर जोर दिया जाता है और इतिहास के महत्वपूर्ण पहलुओं की अवहेलना की जाती है, उन्हें दबाया जाता है, ऐतिहासिक घटनाओं के सिलसिले के सिलसिले ग़लत बयान किए जाते हैं और अनेक व्यक्तियों के चरित्र को सफेद की जगह काला और काले की जगह सफ़ेद रंग कर हमारे सामने पेश किया जाता है, अनेक सच्ची घटनाओं का इतिहास में पता तक नहीं चलता और अनेक कल्पित घटनाएं सच्ची कह कर बयान की जाती हैं। इसीलिए इक्का-दुक्का बिरले अपवादों को छोड़ कर हिन्दोस्तानियों और ख़ास कर सरकारी विश्वविद्यालयों के हिन्दोस्तानी प्रोफ़ेसरों के लिखे इतिहास इस विषय में और भी अधिक दूषित और लज्जास्पद दिखाई देते हैं। यह सब हिन्दोस्तान की उस समय की खिलाफ-क़ुदरत परिस्थिति का क़ुदरती नतीजा है।

अपने इस सब कथन के समर्थन में हम केवल थोड़े-से यूरोपीय विद्वानों की सम्मति प्रस्तुत करते हैं।

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान हरवे लिखता है:

"अभी तक इतिहास मनुष्य को सबसे अधिक दुराचार की ओर ले जाने वाला और उसके चरित्र को सबसे अधिक भ्रष्ट करनेवाला साहित्य रहा है। जब कभी कौमों के नाम पर धनलोलुपता और रक्तपिपासा को शान्त किया गया है, इतिहास इस तरह की लोलुपता और सार्वजनिक हत्या को सराहनीय ठहराता है। इतिहास के पृष्ठों में छल और कपट को चतुर राजनैतिकता का सबूत माना जाता है। जो चीज़ मामूली मनुष्यों में पाप समझी जाती है, वह राजदरबारों में और सिंहासनों पर प्रशंसनीय मानी जाती है।"*

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक लैकी लिखता है:

"राजनीतिज्ञों की गरज़ अपना काम निकालना रहती है......... सत्य से निःस्वार्थ प्रेम और ज़बरदस्त राजनैतिक भावना, ये दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं। उन सब देशों में, जहां के लोगों के विचार और उनके सोचने के तरीके अधिकतर राजनैतिक जीवन के आधार पर बने हैं, हमें यह दिखाई देता है कि लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही सत्य की कसौटी बना बैठते हैं।"†

---

*"History, so far, has been most immoral and perverting branch of literature. It exalts greed and wholesale murder when greedy and murderous justs are satisfied to the names of nations. Fraud is taken as evidence of clever diplomacy. What is counted immoral down low is held admirable in Courts and on Thrones."

—M. Herve.

†"The object of the politician is expediency...... a distinguished love of truth can hardly co-exist with a strong political spirit. In all countries where the habits of thought have been mainly formed by political life, we may discover a disposition to make expediency the test of truth".—Lecky in his *Rationalism in Europe.*

2—220 M of I&B/80

प्रसिद्ध अंगरेज तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि फ्रान्स का एक बादशाह जब इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ना चाहता था, तो अपने लाइब्रेरियन से कहा करता था—"मेरे झूठ बोलने वाले को ले आओ।" स्पेन्सर लिखता है कि फ्रान्सीसी बादशाह का यह कहना बेजान न था। इसके बाद आजकल के इतिहासों का ज़िक्र करते हुए स्पेन्सर लिखता है :

"राजाओं के शासनकालों, लड़ाइयों और इस तरह की मामूली घटनाओं के अलावा, जो आजकल की तमाम कौमों के इतिहास में मिलती हैं, हमें सिवाय उन सन्धियों के, जो तोड़ने की ही गरज से की जाती थीं; उन सरकारी पत्रों के, जो बेईमान और झूठे अफसरों के लिखे हुए हैं! उन गप्पों से भरे खतों के, जो दरबारियों के भेजे हुए हैं और इसी तरह की और चीजों के, कोई ऐसी बात नहीं मिलती है, जिस पर हम विश्वास कर सकें। इस तरह की सामग्री से कोई भी सत्य का खोजी सत्य का पता कैसे लगा सकता है?"*

सरकारी काग़ज़ों में झूठ

भारत में अंग्रेजी राज का शुरू का इतिहास ज्यादातर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रिपोर्टों और कागजों से ही संग्रह करना पड़ता है, किन्तु कम्पनी के तमाम प्रकाशित पत्रों के विषय में अंगरेज़ इतिहास-लेखक जेम्स मिल, जो इंगलिस्तान में कम्पनी के 'पत्र-व्यवहार विभाग' का प्रमुख रह चुका था और जिसका ब्रिटिश भारत का इतिहास सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है, लिखता है :

"कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस तरह की बातों या खबरों को दबा देने में, जिन्हें वे प्रकाशित करना न चाहते थे, शुरू से आखिर तक, बड़ी होशियारी से काम लिया है।"†

कप्तान कनिंघम की मशहूर किताब 'सिखों का इतिहास' के सन् 1853 के संस्करण में एक विज्ञापन में पीटर कनिंघम लिखता है :

"हाल के ज़माने की हिन्दोस्तान की तारीख के लिए जो छपी हुई सामग्री मिलती है, वह इस तरह की नहीं है, जिस पर इतिहास-लेखक विश्वास कर सकें। पार्लियामेण्ट के दोनों हिस्सों, हाउस आफ कॉमन्स और हाउस ऑफ लार्ड्स से जो सरकारी काग़ज़ात जनता के सामने पेश किए जाते हैं, उनमें भी उस समय की राजनैतिक दलबन्दी के हितों की दृष्टि से तब्दीलियां कर दी गई हैं, या इस ग़लत

---

* "Beyond accounts of king's reigns, of battles, and incidents named in the chronicles of all the nations concerned, we have nothing to depend on but treaties made to be broken, despatches of corrupt and lying officials, gossiping letters of courtiers and so forth. How from these materials shall we distil the truth?"

—Herbert Spencer's *Facts and Comments.*

†"Under the skill which the Court of Directors have all along displayed in suppressing such information as they wished not to appear."—James Mill.

खयाल से कि सच्ची बात के खुल जाने से कहीं लोगों के भावों को आघात न पहुंचे, काट-छांट कर दी गई है।"*

इतिहास-लेखक सर जॉनके, जो इंगलिस्तान के इण्डिया आफिस के 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, अफ़गान युद्ध का ज़िक्र करते हुए एक जगह लिखता है :

> **"पार्लियामेण्ट के सरकारी काग़ज़ों के संग्रह में अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स के चरित्र और उसके कारनामों, दोनों को ग़लत बयान किया गया है। लोग समझते हैं कि ये पार्लियामेण्ट के काग़ज़ इतिहास के लिए सबसे अच्छी सामग्री हैं। पर सच यह है कि आम तौर पर ये सरकारी काग़ज़ केवल कांट-छांट की हुई दस्तावेज़ों और जाली काग़ज़ों का एक ऐसा एकतर्फ़ा संग्रह होते हैं, जिसे राज मन्त्रियों की मोहर सच्चा कह कर चलता कर देती है, जिससे मौजूदा नसल के लोग धोखे में आ जाते हैं और आइन्दा नसलों को खतरनाक झूठों का एक सिलसिला वसीयत में मिलता है।"†**

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के काग़ज़ों की इस खास जालसाज़ी का अधिक हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर अफ़गान युद्ध के बयान में और जगह-जगह पढ़ने को मिलेगा। जब ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के काग़ज़ों की यह हालत है, तब अंगरेज़ों के लिखे मामूली ऐतिहासिक उल्लेखों पर कहां तक विश्वास किया जा सकता है।

इतिहास लेखक फ्रीमैन स्वीकार करता है कि सरकारी ऐलानों, पत्रों और राजनैतिक दस्तावेज़ों का सारा क्षेत्र 'झूठ का मनोवांछित क्षेत्र है।' इसके बाद वह लिखता है :

> **"फिर भी ये झूठ शिक्षाप्रद झूठ हैं—ये उन लोगों के कहे हुए झूठ हैं, जो सचाई से वाकिफ़ थे। कई तरह के उपायों से झूठ के अन्दर से भी सचाई का पता लगाया जा सकता है, किन्तु किसी झूठ पर विश्वास कर लेना उससे सचाई का पता लगाने का तरीका नहीं है। वास्तव में वह मनुष्य बालक की तरह भोला है, जो हर शाही ऐलान पर या (ब्रिटिश) पार्लियामेण्ट के हर ऐक्ट की भूमिका**

---

*"The printed materials for the recent History of India are not of that character on which historians can rely. State Papers, presented to the people by both Houses of Parliament, have been altered to suit the temporary views of political warfare, or abridged out of mistaken regard to the tender feelings of survivors."—P. Cunningham in the advertisement to the 2nd edition of *History of the Sikhs* by Captain J. D. Cunningham, 1853.

†"The character and career of Alexander Burnes have both been misrepresented in those collections of State Papers which are supposed to furnish the best materials of history but which are often only one-sided compilations of garbled documents—counterfeits, which the ministerial stamp forces into currency, defrauding a present generation, and handing down to posterity a chain of dangerous lies"—*History of the Afghan War* by Kaye, vol ii, p. 13.

पर विश्वास कर ले और उससे यह नतीजा निकाले कि अमुक-अमुक बड़े लोगों ने क्या-क्या किया और उसके करने में उनकी नीयत क्या थी ।"*

इतिहास से झूठ की कुछ मिसालें

इस पुस्तक के लेखक को 1928 ई० से चार साल पहले तक इस बात का अनुमान न हो सकता था कि अंगरेज़ विद्वानों के लिखे हुए भारत के अधिकांश इतिहासों में झूठ की मात्रा इतनी अधिक और कितनी भयंकर है ।

सिन्ध के अंगरेज़ विजेता सर चार्ल्स नेपियर के भाई मेजर जनरल विलियम नेपियर की पुस्तक 'दि कांक्वेस्ट ऑफ सिन्ध' की शुमार सिन्ध के बारे में सबसे अधिक प्रमाणित अंगरेज़ी पुस्तकों में की जाती है । अंगरेज़ों की सिन्ध-विजय को मनुष्य जाति के ऊपर एक बहुत बड़ा उपकार साबित करने के लिए विलियम नेपियर ने उस ज़माने के सिन्ध-निवासियों और उनके मुसलमान शासकों के चरित्र पर जो अनेक कलंक लगाए हैं, उनमें से एक कलंक शिशु-हत्या भी है । नेपियर लिखता है :

> **"और ये पिशाच खुद अपने बच्चों की किस तरह हत्या करते थे । पहले तो वे भ्रूण–हत्या के लिए दवाइयां पिलाते थे, यदि इससे काम न चलता था, तो कभी–कभी वे बच्चों के पैदा होते ही अपने हाथों से काट कर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे ; किन्तु अधिकतर वे यह करते थे कि इन बच्चों को गद्दों के नीचे डाल कर उन पर खुद बैठ जाते थे और जब कि उनके बच्चों का उनके नीचे घुट कर दम निकलता था, वे उनके ऊपर बैठे हुए तम्बाकू पीते रहते थे ; शराब पीते रहते थे और अपने इस नारकीय कृत्य पर एक दूसरे से मज़ाक करते रहते थे ।"†**

कप्तान ईस्टविक, जिसे ठीक उन्हीं दिनों कई साल सिन्ध में रहने और सिन्ध के देशी शासकों और वहां की प्रजा, दोनों से मिलने जुलने का अवसर मिला और जो सिन्ध की भाषाओं और वहां के रस्मोरिवाज़ से अच्छी तरह परिचित था, इस लज्जाजनक झूठ की आलोचना करते हुए एक दूसरे यूरोपियन विद्वान, फ्रैटन का नीचे लिखा वाक्य उद्धृत करता है :

> **"इतिहास में अनेक बयान ऐसे मिलते हैं, जिनको सच साबित करने या जिनका खण्डन करने का कोई खास मूल्य नहीं है । सदाचार की इस तरह की**

---

*"...........Here we are in the very chosen region of lies......yet they are instructive lines; they are lies told by people who know the truth; truth may even, by various processes, be got out of the lies; but it will not be got out of them by the process of believing them. He is of childlike simplicity indeed who believes every royal proclamation or the preamble of every Act of Parliament, as telling us, not only what certain august persons did, but the motives which led them to do it."—Freeman.

†"And how did these monsters destroy their own children? First they gave potions, called *Odalisques* to procure abortion; if these failed, they sometimes chopped the children to pieces with their own hands immediately after birth; but more frequently placed them under cushions and sat down, smoking and drinking and jesting with each other about their hellish work, while their children were being suffocated beneath them."—*The Conquest of Sindh*, part. ii, p. 348.

शानदार (किन्तु असत्य) मिसालें इतिहास में मिलती हैं, जिन्हें यदि एक बार लोगों ने सच्चा मान लिया, तो उनसे दुनिया का भला ही हुआ है। किन्तु जब किसी व्यक्ति या जाति के चरित्र पर कलंक लगाए जाते हैं और जब हम यह देखते हैं कि कितनी आसानी से उन झूठे कलंकों का प्रचार किया जाता है, कितने शौक़ के साथ लोग उन्हें पढ़ते और सुनते हैं और जिन बातों को गढ़ लेने या फैलाने में कुछ भी खर्च नहीं होता, किन्तु जिनका पूरी तरह खण्डन करने में ज़िन्दगी भर मेहनत और ऐसी परिस्थिति की ज़रूरत होती है, जिसका मिलना क़रीब-क़रीब नामुमकिन हो जाता है, उन बातों पर लोग सहज ही में और बेपरवाही के साथ विश्वास कर लेते हैं; जब हम यह सब देखते हैं, तो हर ईमानदार लेखक या पाठक का इस तरह के 'इतिहास की सचाई पर सन्देह' करना क़ुदरती है।"*

यह दुहराने की जरूरत नहीं है कि स्वयं अंगरेज़ गवाहों के अनुसार विलियम नेपियर का ऊपर लिखा बयान बिल्कुल कल्पित, झूठा और निराधार है। सन् 1843 तक, जिस समय सिन्ध पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कब्जा हुआ, सिन्ध के अमीरों (शासकों) और सिन्ध की प्रजा, दोनों का सार्वजनिक और व्यक्तिगत चरित्र नेपियर और उसके देशवासियों के चरित्र के निस्बत कहीं अधिक पवित्र और ऊंचा था। नेपियर ने अपनी पुस्तक में जिस तरह सिन्ध-निवासियों के चरित्र पर निराधार झूठे कलंक लगाए हैं, उसी तरह सिन्ध के अमीरों को भी बदनाम करने की भरसक कोशिश की है। जिन अमीरों (शासकों) ने कभी जीवन भर किसी मादक द्रव्य को अपने पास नहीं आने दिया, जो तम्बाकू के धुएं तक से बचते थे और जो स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा का ग़ैर-मामूली ध्यान रखते थे, उनको नेपियर ने शराबी और दुश्चरित्र चित्रित किया है। हम ये सब बातें उस ज़माने के सर्वथा विश्वस्त अंगरेज लेखकों ही के आधार पर लिख रहे हैं। इन बातों का विस्तृत हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर सिन्ध के अध्याय में पढ़ने को मिलेगा।

भारतीय नरेशों पर झूठे कलंक

ठीक इसी तरह, जिस सिराजुद्दौला ने अपने नाना अलीवर्दी खां की अन्तिम आज्ञा के अनुसार, तख्त पर बैठने के दिन से मरने की घड़ी तक कभी मदिरा को हाथ तक न लगाया था † और जिस के व्यक्तिगत चरित्र में कोई ऐसा दोष न था, जो उस समय के 99 प्रतिशत भारतीय नरेशों या अंगरेज़ शासकों में न पाया जाता हो, उसे अंगरेज़ी पुस्तकों में पहले दरजे का दुराचारी बयान किया गया है। यही अन्याय मीर क़ासिम, हैदरअली

---

*"There are many statements of history which it is immaterial to substantiate or disprove. Splendid pictures of public virtue have often produced their good if once received as fact. But when private character is at stake, every conscientious writer or reader will cherish his 'historic doubts'; when he reflects on the facility with which calumny is sent abroad, the avidity with which it is received, and the careless case with which men credit what it costs little to invent and propagate, but requires an age of trouble, and an almost impossible conjunction of opportunities, effectually to refute."—Frattan's *History of the Netherlands,* vol. ii, p. 242.

†Scrafton's *Reflections,* as quoted in 'बांगलार इतिहास, नवाबी आमल'—लेखक : कालीप्रसन्न बन्द्योपाध्याय।

टीपू सुलतान, नन्दकुमार, लक्ष्मीबाई इत्यादि अन्य भारतीय वीरों और वीरांगनाओं के चरित्र के साथ किया गया है। इन सब बातों का अधिक हाल इस पुस्तक के अन्दर जगह-जगह दिया गया है। अंगरेज़ इतिहासलेखक सर जान के साफ लिखता है :—

> "××× **हम लोगों में यह रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज उससे छीन लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश पर या उस मनुष्य पर, जो उसका उत्तराधिकारी बननेवाला हो, झूठे कलंक लगा कर उसे बदनाम करते हैं।**"*

फ़र्ज़ी चित्र

जिस तरह व्यक्तियों के चरित्र के साथ किया गया है, उसी तरह घटनाओं के साथ, यहां तक कि अनेक पुस्तकों में भारतीय नरेशों के चित्र तक बिल्कुल गलत मिलते हैं। जिस हैदरअली ने होश संभालने के बाद से कभी दाढ़ी या मूंछ नहीं रखी, उसका दाढ़ी और मूंछोंवाला चित्र अनेक अंगरेज़ी इतिहासों में मिलता है! कैसल की 'हिस्टरी आफ इण्डिया, में जो अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, हमने सम्राट बहादुरशाह का एक चित्र देखा, जिसके पैरों में राजपूती जूता, दाढ़ी चढ़ी हुई और धोती मारवाड़ के तर्ज़ पर बंधी हुई है। सच यह है कि जो पुस्तके अभी तक (यानी 20-वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक) भारत के इतिहास के तौर पर स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाती हैं, उनमें तारीखों, राजाओं के नामों या अत्यन्त मोटी-मोटी घटनाओं को छोड़ कर, बाकी बातों में से कम-से-कम 90 फ़ी-सदी का मूल्य एक साधारण उपन्यास से अधिक नहीं है और वह भी निहायत खतरनाक उपन्यास, जिसका असर क़ौम के बढ़ते हुए दिमागों पर अत्यन्त ज़हरीला पड़ता है।

किराए के लेखक

निस्सन्देह, कुछ भारतीय विद्वानों के लिखे, उसी समय के ऐतिहासिक वृत्तान्त एक दरजे तक सच्चे और विश्वसनीय हैं। किन्तु, एक तो इस तरह के वृत्तान्त हैं ही बहुत कम और फुटकर और दूसरे, उनके सम्बन्ध में हमें एक और गहरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

फ़ारसी का ग्रन्थ 'सीअरूल-मुताख़रीन' भारतीय मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में ख़ासा विश्वस्त इतिहास माना जाता है और है। फिर भी, इस ग्रन्थ का विद्वान रचयिता सय्यद गुलाम हुसैन अपने ग्रन्थ में स्वीकार करता है कि सम्राट शाह आलम और अंगरेज़ों के संग्रामों के दिनों में उसे (सय्यद गुलाम हुसैन को) लोभ देकर अंगरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया था। निस्सन्देह, उस ज़माने का उसका सारा वृत्तान्त अंगरेज़ों के एक ज़रख़रीद लेखक का लिखा वृत्तान्त है।

और भी अनेक भारतीय और अन्य लेखकों को फ़ारसी और दूसरी भाषाओं में झूठे ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से समय-समय पर धन मिलता रहा। मिसाल के तौर पर, लार्ड विलियम बेंण्टिक ने ऐबे–दुबाय का प्रसिद्ध

---

*"...It is a custom among us...to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would-be successor." Sir John Kaye's *History of the Sepoy War,* vol. iii, pp. 361, 362.

फ़ान्सीसी ग्रन्थ, जिसमें हिन्दुओं के उस समय के रहन-सहन इत्यादि का ज़िक्र है, आठ हज़ार रुपये देकर दुबाय से खरीदा, कम्पनी की ओर से उसे अंग्रेज़ी में प्रकाशित कराया और अन्त में कम्पनी ने उसके लिए दुबाय को आजीवन पेंशन दी। हैदरअली की फ़ारसी में एक जीवनी लिखने के लिए मिरज़ा इक़बाल को कम्पनी की ओर से रुपये दिए गए। हैदरअली की यह जीवनी, शुरू से आखिर तक, झूठे कलंकों और पक्षपात से भरी हुई है। कर्नल माइल्स ने हैदरअली की एक जीवनी अंगरेज़ी में लिखी है, जिसके विषय में कर्नल माइल्स का बयान है कि वह पुस्तक मीर हुसैनअली खां किरमानी की फ़ारसी पुस्तक, 'निशाने हैदरी' का अनुवाद है और 'निशाने हैदरी' का मूल फ़ारसी मसविदा मलका विक्टोरिया के निजी पुस्तकालय में मौजूद था। हमने कर्नल माइल्स की पुस्तक को पढ़ा। हम यह देख कर चकित रह गए कि उस पुस्तक के अन्दर पृष्ठ के पृष्ठ ऐसे हैं, जिनका एक-एक शब्द एक फ़ान्सीसी लेखक, एम० एम० डी० एल० टी० के ग्रन्थ 'हिस्टरी आफ हैदरशाह' के एक अंगरेज़ी संस्करण के कुछ पृष्ठों से मिलता है। यह फ़ान्सीसी किताब हैदरअली के जीवनकाल में लिखी गई थी। मीर हुसैनअली खां किरमानी की किताब, ज़ाहिर है, उसके बाद की लिखी हुई है। यदि फ़ारसी लेखक ने फ़ान्सीसी किताब से या अंगरेज़ी अनुवाद से ये पृष्ठ लिए होते, तो यह नामुमकिन था कि फ़ारसी से अंगरेज़ी तर्जुमा करने में ठीक वही शब्द ज्यूं-के-त्यूं लिखे जा सकते। ज़ाहिर है कि मीर हुसैनअली खां का फ़ारसी मसविदा या तो कहीं है ही नहीं, या कम-से-कम जिसे कर्नल माइल्स ने उस मसविदे का अनुवाद कह कर प्रकाशित किया है, वह ऐसे किसी मसविदे का अनुवाद नहीं है।

इसी तरह की और भी अनेक मिसालें अंगरेज़ों के ज़माने के हिन्दोस्तान के लिखे हुए इतिहास से दी जा सकती हैं। सच यह है कि उस समय की पश्चिमी सभ्यता में और ख़ास कर पश्चिमी राजनीति में ईमानदारी या सच के लिए कोई जगह नहीं थी और पश्चिमी इतिहास-कला बहुत दरज़े तक पश्चिमी राजनीति का केवल एक अंग है। प्रोफ़ेसर सीली, प्रोफ़ेसर गोल्डविन स्मिथ और इतिहास-लेखक फ्रीमैन जैसे यूरोपियन विद्वानों ने इतिहास को राजनीति का केवल एक अंग स्वीकार किया है। और 'Politics has no conscience,' यानी, 'राजनीति में पाप-पुण्य के विवेक का कोई स्थान नहीं' अंगरेज़ी की एक मशहूर कहावत है।*

---

*सन् 1927 में एच० डी० लसवेल की लिखी 'प्रोपेगैंडा टेकनीक इन वर्ल्ड वार' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में साफ लिखा है कि आगे के महायुद्ध के लिए युद्ध-विद्या, शस्त्राभ्यास इत्यादि के साथ-साथ, समस्त राजनीतिज्ञों, शासकों और सेनापतियों को झूठ बोलने की विद्या का भी बज़ाब्ता वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए। लेखक के अनुसार पिछले (1915–19) के महायुद्ध के दिनों में झूठ बोलने की कला में सबसे अधिक सफलता आरंभ में इंगलिस्तान ने दिखाई, उसके बाद अमरीका इस कला में इंगलिस्तान से भी बढ़ गया। वह लिखता है :

"राष्ट्रपति विलसन ने इस कला में जो दक्षता दिखलाई, वह संसार के इतिहास में अद्वितीय है।" लेखक ने पिछले (सन् 1914—19) के महायुद्ध के समय के अंगरेज़ों के कई प्रसिद्ध झूठों की मिसालें दी हैं! मसलन, संसार के अख़बारों में छपा था कि जर्मन सिपाहियों ने बेल्जियमवालों के अनेक बच्चों के हाथ काट डाले। यह बात शुरू से आख़िर तक झूठी

इस तरह के झूठे और कल्पित इतिहास का नतीजा हमारी क़ौमी जिन्दगी पर और ख़ास कर हमारे शिक्षित देशवासियों की मानसिक अवस्था पर इतना गहरा पड़ा है कि आज तक हमारी क़ौमी तरक्की के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा दिखाई दे रही है। इसके अलावा, अनेक भयंकर ऐतिहासिक भ्रान्तियों और झूठों का स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों और अन्य उपायों द्वारा इतना अधिक प्रचार किया गया है कि आज हमारे असंख्य विचारवान देशवासी इन ऐतिहासिक भ्रान्तियों की भूलभुलैयों में पड़ कर अपनी सलामती के ठीक-ठीक उपायों को सोच सकने में भी बिल्कुल नाक़ाबिल हो गए हैं।

हमारे इतिहास के कुछ भ्रम

कहा जाता है, अनादिकाल से भारत पर पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से विदेशियों या विदेशी जातियों के हमले होते रहे हैं, भारत कभी इन हमलों से अपनी रक्षा नहीं कर सका और एक-दूसरे के बाद लगातार मुख़तलिफ़ विदेशी शासनों का शिकार होता रहा। कहा जाता है कि इस तरह के विदेशी हमलों में भारत के ऊपर सबसे अधिक भयंकर हमला मुसलमानों का था; ये मुसलमान आक्रामक, असभ्य, धर्मान्ध और अन्यायी थे जिन्होंने अंग-रेज़ों के आने से पहले क़रीब एक हजार साल तक भारतवर्ष को अपने अत्याचारों से दबाए रखा, प्राचीन हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति का सत्यानाश कर डाला और हमारे करोड़ों देशवासियों को तलवार के ज़ोर से धर्म भ्रष्ट कर मुसलमान बना लिया। हमसे कहा जाता है कि भारत के इन मुसलमान शासकों में सिवाय अय्याशी, लूटमार और धर्मान्धता के और कोई विशेषता न थी। यहां तक कि बड़े-से-बड़े या अच्छे-से-अच्छे मुग़ल बादशाहों को हिन्दुओं और हिन्दोस्तान के लिए अधिक-से-अधिक 'मीठी छुरी' कह कर बयान किया जाता है। हमें विश्वास दिलाया जाता है कि मुसलमानों ने कोई भी उपकार भारत पर नहीं किया, उनके शासन में कोई बात तारीफ की न थी, उन्होंने भारत के राष्ट्रीय जीवन को हर तरह से नुकसान पहुंचाया और आज तक हिन्दुओं और मुसलमानों में कभी भी वास्तविक मेल न हुआ और न हो सकता है। जो इतिहास अभी तक स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, उनमें अधिकतर दिखाया जाता है कि अंगरेज़ों के आने से पहले भारत में चारों ओर कुशासन और अराजकता फैली हुई थी और आए दिन आपसी लड़ाइयां होती रहती थीं। अंगरेज़ों ने, जो उस समय भारतवासियों से कहीं अधिक सभ्य थे, भारत में आकर

थी। इस ख़बर के संबंध में युद्ध के समाप्त होने तक इटली के प्रधान मंत्री सीन्योर निती ने लिखा था :]

"युद्ध के बाद एक धनाढ्य अमरीकी ने अपना एक दूत इस उद्देश्य से बेल्जियम भेजा कि जिन ग़रीब बालकों के नन्हे-नन्हे हाथ काटे डाले गए हैं, उनकी जीविका का प्रबंध कर दिया जाए। इस दूत को कहीं एक भी इस तरह का बालक नहीं मिल सका। जिन दिनों मैं इटली की सरकार का प्रधान मंत्री था, मैंने और मिस्टर लायड जार्ज ने मिल कर इन भीषण इलज़ामों की सत्यता का पता लगाने के लिए विस्तृत छानबीन की। इनमें से कम-से-कम कई इलज़ामों के साथ लोगों और जगहों के नाम तक हमें बताए गए थे, किंतु हमारे छानबीन करने पर ये तमाम किस्से झूठे निकले।"—'विशाल भारत', अगस्त, 1928।

एक दूसरी बात यह भी कही गई थी कि जर्मनी में एक कारख़ाना खुला है, जिसमें सिपा-हियों की लाशों को उबाल कर उनसे साबुन और ग्लिसरीन बनाया जाता है! इस कारख़ाने

शान्ति और सुशासन क़ायम किया और देश को सभ्यता की ओर ले जाना शुरू किया। इन्हीं सब बातों के आधार पर और अंगरेज़ी सत्ता के सच्चे रूप को हमसे छिपा कर हमें यह यक़ीन दिलाया गया कि अंगरेज़ों का शासन भारतवासियों के लिए एक बहुत बड़े सौभाग्य की चीज़ थी और हमारी सारी भावी उन्नति तथा देश की शान्ति अंगरेज़ी शासन के इस देश में बने रहने पर निर्भर है। यदि कभी दुर्भाग्यवश अंगरेज़ी शासन भारत से मिट जाए, तो सम्भव है कि या तो पश्चिमोत्तर की ओर से कोई दूसरी शक्ति आकर भारत पर कब्ज़ा कर ले या हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे से लड़-लड़ कर देश को फिर बरबादी की ओर ले जाएं।

इन सब बातों के जवाब में हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि अंगरेज़ों के आने से पहले भारत पर अन्य विदेशियों के हमले कितने, कब-कब और किस ढंग के हुए और भारत ने उनका कहां तक सफलता के साथ मुकाबला किया। हम यह भी दिखलाएंगे कि बाहर से इस तरह के हमलों का होना भारत ही की एक विशेषता थी या संसार के अन्य देशों के इतिहास में भी यह एक सामान्य घटना थी। हम यह भी दिखलाएंगे कि यूरोप के विविध देशों और स्वयं इंगलिस्तान के ऊपर इस तरह के हमले कभी हुए हैं या नहीं, यदि हुए हैं, तो कितने और यूरोप के देशों ने उन हमलों का भारत की निस्बत अधिक सफलता के साथ मुकाबला किया है या नहीं। हम यह भी बयान करेंगे कि भारत पर मुसलमानों के हमले से पहले यूरोप के विविध देशों पर भी मुसलमानों के हमले हुए थे या नहीं और यदि हुए थे, तो यूरोपियन देशों ने भारत की तुलना में उनका किस तरह मुकाबला किया। हम इस बात की भी पूरी जांच करना चाहेंगे कि भारत के ऊपर मुसलमानों के हमले किस ढंग के थे, भारत के लिए उन हमलों के नतीजे क्या हुए, भारत के अन्दर इस्लाम मत का प्रचार वास्तव में किस ढंग से और किन उपायों से किया गया, हिन्दुओं के साथ भारत के मुसलमान शासकों का व्यवहार आद्योपान्त किस ढंग का रहा, दोनों

के फ़ोटो तक अंगरेज़ी अख़बारों में छपे थे! सन् 1925 में जाकर इस असत्य समाचार की पोल खुली। जर्मन सरकार ने ऐलान किया कि यह एक बिल्कुल झूठा किस्सा है और इसमें सच का नामनिशान तक नहीं। आख़िर, इंगलिस्तान के वैदेशिक विभाग के मंत्री सर आस्टिन चैम्बरलेन को जर्मनी का यह कथन स्वीकार कर लेना पड़ा और उसने कहा भी—"I trust this false report will not again be revived", यानी "मैं विश्वास करता हूं कि इस झूठी अफ़वाह को अब कोई न दुहराएगा।"

इसी तरह के बेशुमार झूठ उन दिनों जर्मनों के विरुद्ध अंगरेज़ों और मित्र राष्ट्रों की ओर से प्रकाशित होते रहते थे।

ऐसी ही एक दूसरी पुस्तक 'फ़ाल्सहुड इन वार टाइम' इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सदस्य आर्थर पान्सन्बी ने प्रकाशित की है। पान्सन्बी इंगलिस्तान के मंत्रिमंडल में वैदेशिक विभाग का उपमंत्री रह चुका था। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए पार्लियामेंट के एक दूसरे प्रसिद्ध सदस्य, विलफ्रेड वेलाक ने अगस्त, सन् 1928 के 'विशाल भारत' में लिखा है:

"इस पुस्तक में यह बात अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध की गई है कि पिछले महायुद्ध (1914—19) का संचालन झूठ और फ़रेब के ज़रिए किया गया था और आरंभ से लेकर अंत तक युद्ध के उद्देश्यों के विषय में संसार की जनता को धोखे में रखा गया।

धर्मों के क़रीब-क़रीब एक हज़ार साल के सम्पर्क में भारत भर के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों में किस तरह का सम्बन्ध रहा। शिल्प, विज्ञान, शिक्षा, चित्रकला, कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धों, सुशासन और समृद्धि की दृष्टि से भारत ने मुसलमानों के शासन में कहां तक उन्नति या अवनति की, अंगरेज़ों के सम्पर्क के समय सभ्यता के विविध अंगों में भारत की क्या अवस्था थी, इंगलिस्तान की उस समय क्या हालत थी, किन कारणों से और किन उपायों से अंगरेज़ों का राज भारत में क़ायम हुआ और भारत के लिए उसके क्या नतीजे हुए।

वे और हम

17-वीं सदी का इंगलिस्तान

वास्तव में, भारत और इंगलिस्तान का सम्पर्क दो अलग-अलग सभ्यताओं और अलग-अलग आदर्शों का एक-दूसरे से टकराना था। इसलिए और बातों से पहले हम उस समय के इंगलिस्तान की हालत का, जबकि हिन्दोस्तान और इंगलिस्तान का पहली बार सम्पर्क हुआ, संक्षिप्त चित्र दे देना चाहते हैं।

16-वीं और 17-वीं सदी के इंगलिस्तान की हालत को बयान करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ड्रेपर लिखता है :

"किसानों की झोंपड़ियां नरसलों और छड़ियों की बनी हुई होती थीं, जिनके ऊपर गारा पोत दिया जाता था। घर में घास जला कर आग तैयार की जाती थी और धुएं के निकलने के लिए कोई जगह न होती थी। जिस तरह का सामान उस समय के एक अंगरेज़ किसान के घर में होता था और जिस तरह से वह ज़िन्दगी बसर करता था, उससे मालूम होता था कि गांव के पास नदी के किनारे जो ऊदबिलाव मेहनत से मांद बना कर रहता था, उस ऊदबिलाव की हालत में और उस किसान की हालत में ज्यादा फ़रक न था। सड़कों पर डाकू फिरते रहते थे, नदियों पर समुद्री लुटेरे, और लोगों के कपड़ों और बिस्तरों में जुएं। आम तौर पर लोगों की खुराक होती थी—मटर, उड़द, जड़ें और दरख्तों की छालें। कोई ऐसा धन्धा न था, न कोई तिजारत थी, जिससे बारिश न होने की सूरत में किसान दुष्काल से बच सकें। मौसम की सख्ती से बचने का मनुष्यों के पास बिल्कुल कोई उपाय न था। आबादी बहुत कम थी और महामारी तथा अन्न के अभाव से और घटती

"यदि संसार में कोई युद्ध ऐसा हुआ है, जो ऊपर से देखने में धर्म के भावों से प्रेरित मालूम होता था, तो वह यह महायुद्ध था। कम-से-कम मित्र राष्ट्र यही कहते थे कि हम धार्मिक युद्ध कर रहे हैं। 'मित्रों' की ओर से यह ऐलान किया गया था कि हम लोग छोटी जातियों की स्वाधीनता के लिए और संधियों की पवित्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य सैनिकवाद (Militarism) को दूर करना है!

"कैसी धोखेबाजी थी! कैसा पाखंड था! कैसा झूठ था!"

रहती थी। शहर के लोगों की हालत भी गांव के लोगों से कुछ अच्छी न थी। शहरवालों का बिछौना भुस का एक थैला होता था और तकिए की जगह लकड़ी का एक गोल टुकड़ा। जो शहरवाले खुशहाल थे, वे चमड़े के कपड़े पहनते थे और जो ग़रीब होते थे, वे अपने हाथ और पैरों पर पुवाल की पूलियां लपेट कर अपने को सर्दी से बचाते थे। × × जिन शहरों में शीशे की या तैलपत्र की कोई खिड़की तक न होती थी, वहां किसी तरह के कारीगर के लिए कहां गुंजाइश थी? कहीं कोई कारखाना न था, जिसमें कोई कारीगर आराम से बैठ सके। ग़रीबों के लिए कोई वैद्य न था। × × सफ़ाई का कहीं कोई इन्तजाम था ही नहीं।"

आगे चल कर उस समय के यूरोप के सदाचार को बयान करते हुए ड्रेपर लिखता है:

"जिस तेज़ी के साथ गरमी की बीमारी उन दिनों तमाम यूरोप में फैली, उससे इस बात का साफ पता चलता है कि लोगों में दुराचार कितने भयंकर रूप में फैला हुआ था। यदि हम उस समय के लेखकों पर विश्वास करें, तो विवाहित या अविवाहित, ईसाई पादरी या मामूली गृहस्थ, पोप लियो दसवें से लेकर गली के भिखमंगे तक—कोई वर्ग ऐसा न था, जो इस रोग से बचा रहा हो। × × इंगलिस्तान की आबादी पचास लाख से भी कम थी। × × किसान अपनी ज़मीन का मालिक न होता था। ज़मीन ज़मींदार की होती थी और किसान केवल उसका मजदूर चौकीदार होता था। ऐसी हालत में दूसरे देशों की तिजारत ने समाज में हलचल मचानी शुरू की। आबादी इधर से उधर आने-जाने लगी। दूसरे देशों से तिजारत करने के लिए कम्पनियां बनाई गईं। ये अफ़वाहें या खबरें सुन कर कि दूसरे देशों में जाकर जल्दी से खूब धन कमाया जा सकता है, लोगों के दिमाग़ फिरने लगे × × सारी अंगरेज़ क़ौम इतनी बेपढ़ी थी कि पार्लियामेण्ट के हाउस ऑफ़ लार्डस के बहुत से मेम्बर तक न लिख सकते थे और न पढ़ सकते थे × × ईसाई पादरियों में भयंकर दुराचार फैला हुआ था। खुले तौर पर कहा जाता था कि इंगलिस्तान में एक लाख औरतें ऐसी हैं, जिन्हें पादरियों ने खराब कर रखा है। × × कोई पादरी यदि बुरे से बुरे भी जुर्म करता था, तो उसे केवल थोड़ा-सा जुर्माना देना पड़ता था। मनुष्य–हत्या के लिए पादरियों को केवल छः शिलिंग आठ पेन्स (क़रीब पांच रुपये) जुर्माना देना पड़ता था। × × सत्रहवीं सदी के अन्त में लन्दन का शहर भर गन्दा था, मकान भद्दे बने हुए थे और सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम न था। × × जंगली जानवर हर जगह फिरते थे। × × बरसात में सड़कें इतनी खराब हो जाती थीं कि उन पर चलना मुश्किल था। × × देहात में अक्सर जब लोग रास्ता भूल जाते थे, तब उन्हें रात-रात भर बाहर ठण्डी हवा में रहना पड़ता था। खास-खास नगरों के बीच में भी कहीं-कहीं सड़कों का पता न होता था, जिसकी वजह से पहिएदार गाड़ियों का चल सकना इतना कठिन था कि लोग ज्यादातर लद्दू टट्टुओं के पलानों

में दाएं और बाएं असबाब के साथ-साथ और असबाब की तरह लद कर एक जगह से दूसरी जगह आते जाते थे। × × सत्रहवीं सदी के अंत में जाकर तेज़-से-तेज़ गाड़ी दिन भर में तीस मील से पचास मील तक चल सकती थी और वह 'उड़ने वाली गाड़ी' कहलाती थी। × टाइन नदी के स्रोत पर जो लोग रहते थे, वे अमरीका के आदिम निवासियों से कम जंगली न थे। उनकी आधी नंगी स्त्रियां जंगली गानें गाती फिरती थीं और पुरुष अपनी कटार घुमाते हुए लड़ाइयों के नाच नाचते थे। ×× जब कि पुरुषों की यह हालत थी कि उनमें से बहुत थोड़े ठीक-ठीक लिखना-पढ़ना जानते थे, तब यह सोचा जा सकता है कि स्त्रियां कितनी अनपढ़ रही होंगी। × × समाज की व्यवस्था में जिसे हम सदाचार कहते हैं, उसका कहीं पता न था। × × पति अपनी पत्नी को कोड़ों से पीटता था। × × अपराधियों को टिकटिकी से बांध कर पत्थर मार-मार कर मार डाला जाता था। औरतों की टांगों को सरे बाजार शिकंजों में कस कर छोड़ दिया जाता था। × × लोगों के दिल अत्यन्त सख्त हो गए थे। × × गांव के लोगों के मकान झोंपड़े होते थे, जिन पर फूस छाया होता था। ×× लन्दन में मकान अधिकतर लकड़ी और प्लास्टर के होते थे, गलियां इतनी गन्दी होती थीं कि बयान नहीं किया जा सकता। शाम होनें के बाद डर के मारे कोई अपने घर से न निकलता था, क्योंकि जो चाहे, अपनें ऊपर के कमरे से खिड़की खोल कर कहीं गन्दा पानी नीचे फेंक देता था। × × लन्दन की गलियों में लालटेनों का कहीं निशान न था। उच्च श्रेणी के लोगों में सदाचार की आमतौर पर यह हालत थी कि उनमें यदि कोई भी मनुष्य मरता था, तो लोग यही समझते थे कि किसी ने जहर देकर मार डाला होगा। ×× सारे देश पर दुराचार की एक बाढ़ आई हुई थी।"

वहां के विचार-स्वातन्त्र्य के विषय में ड्रेपर लिखता है :

"आक्सफ़ोर्ड के विश्वविद्यालय नें यह आज्ञा दे दी थी कि बकेनन, मिल्टन और बेक्सटर की राजनीतिक पुस्तकें स्कूलों के आंगनों में रख कर खुले जला दी जाएं। × × राजनैतिक या धार्मिक अपराधों के बदले में जिस तरह की सख्त सज़ाएं दी जाती थीं, उन पर विश्वास होना कठिन है। लन्दन में टेम्स नदी के पुराने टूटे हुए पुल पर इस तरह के अपराधियों के डरावनें सिर काट कर लटका दिए जाते थे, इसलिए कि उस भयंकर दृश्य को देखकर जन-सामान्य कानून के विरुद्ध जानें से रुके रहें। उस समय की उदारता का अन्दाज़ा उस एक कानून से लगाया जा सकता है, जो 8 मई, सन् 1685 को स्काटलैण्ड की पार्लियामेण्ट नें पास किया। कानून यह था कि जो कोई मनुष्य सिवाय बादशाह के सम्प्रदाय के दूसरे किसी ईसाई सम्प्रदाय के गिरजे में जाकर उपदेश देगा या उपदेश सुनेगा, उसे मौत की सज़ा दी जाएगी और उसका माल असबाब ज़ब्त कर लिया जाएगा। इस बात के काफ़ी से ज्यादा प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं कि इस तरह के निन्दनीय

भाव केवल कानूनों के अक्षरों में ही बन्द न रह जाते थे। × × स्काटलैण्ड में कवेनेण्टर (एक ईसाई सम्प्रदाय) लोगों के घुटनों को शिकंजों के अन्दर कुचल कर तोड़ दिया जाता था और वे दुख से गड़े चिल्लाते रहते थे; स्त्रियों को लकड़ियों से बांध कर समुद्र के किनारे रेत पर छोड़ दिया जाता था और धीरे-धीरे समुद्र की बढ़ती हुई लहरें उन्हें बहा ले जाती थीं, या उनके गालों को दाग़ कर, उन्हें जहाजों में बन्द करके, जबरदस्ती गुलाम बना कर अमरीका भेज दिया जाता था—केवल इस अपराध में कि वे सरकार के बताए हुए गिरजे में जाने से इनकार करती थीं। × × राजकुल की स्त्रियां, यहां तक कि स्वयं इंगलिस्तान की मलिका भी, स्त्रियोचित दयाभाव और मामूली मनुष्यत्व को भूल कर गुलामों के इस क्रय विक्रय के नारकीय व्यापार में हिस्सा लेती थीं × × × ।"*

उस समय के भारत से तुलना

ऊपर के लम्बे बयान से उस ज़माने के इंगलिस्तान के गांवों और शहरों की हालत, मकानों, सड़कों, रहन-सहन, धन्धों, कचहरियों, धार्मिक विचारों, शिक्षा और सदाचार इत्यादि का पूरा-पूरा पता चलता है। हमें याद रखना चाहिए कि यह वह ज़माना था, जब कि हिन्दोस्तान में कबीर और दादू के उदार धार्मिक विचार, अकबर का विश्वप्रेम, जहांगीर का न्यायशासन, शाहजहां के समय की खुशहाली और आश्चर्यजनक कला-कौशल संसार भर के यात्रियों को चकाचौंध कर रहे थे; जबकि भारत में दर्ज़नों नगर सुन्दर-से-सुन्दर इमारतों से सुसज्जित और अत्यन्त घने बसे हुए थे; जबकि दिल्ली और आगरे के किले और ताजमहल-जैसी इमारतें बन चुकी थीं और जबकि औरंगज़ेब तक के शासनकाल में देश के पूरब से पश्चिम

---

*"The peasant's cabin was made of reeds or sticks plastered over with mud. His fire was chimney-less—often it was made of peat. In the objects and manner of his existence he was but a step above the industrious beaver who was building his dam in the adjacent stream. There were highwaymen on the roads, pirates on the rivers, vermin in abundance in the clothing and beds. The common food was peas, vetches, fern roots and even the bark of trees. There was no commerce to put off famine. Man was altogether at the mercy of the season. The population, sparse as it was, was perpetually thinned by pestilence and want. Nor was the state of the townsman better than that of the rustic; his bed was a bag of straw, with a hard round log for his pillow. If he was in easy circumstances, his clothing was of leather; if poor a wisp of straw wrapped round his limbs kept off the cold...As to mechanic, how was it possible that he could exist where there were no windows made of glass, not even of oiled paper, no workshop warmed by a fire. For the poor there was no physician...Sanitary provisions there were none...the rapidity of its (syphilis) spread all over Europe is a significant illustration of the fearful immorality of the times. If contemporary authors are to be trusted, there was not a class, married or unmarried, lergy, or laity, from the holy father, Leo X, to the beggar by the wayside, free from it...Its (England's) population hardly

और दक्षिण से उत्तर तक प्रजा में चारों ओर सुख, समृद्धि और सुशासन दिखाई देता था। निस्सन्देह, मज़हब के नाम पर इंगलिस्तान के अन्दर जिन भयंकर अत्याचारों का ऊपर जिक्र आया है, उनके सामने तंगनज़र-से-तंगनज़र मुस्लिम बादशाह की धार्मिक संकीर्णता भी उदार थी। यही हालत उस समय बाकी अधिकांश यूरोप की थी। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इंगलिस्तान की यह हालत 18–वीं सदी के शुरू तक बनी रही। इसी बयान में यह भी साफ़ लिखा है कि किस तरह हिन्दोस्तान जैसे देशों के धन की चर्चा उस समय के भूखे और अर्द्धसभ्य अंगरेज़ों को यहां तक खींच कर लाई और किस तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी-जैसी कम्पनियां बनीं।

वास्तव में, इंगलिस्तान के उस ज़माने के इतिहास में कभी कोई इस तरह की सभ्यता का ज़माना न था, जिस तरह की सभ्यता भारत में हज़ारों साल पहले से चली आती थी, और जिसका थोड़ा-बहुत ज़िक्र हम आगे चल कर करेंगे।

इंगलिस्तान को सभ्य बनाने की कोशिशें

ऐतिहासिक युग में सबसे पहले हज़रत ईसा के जन्म के आसपास ईरान के मशहूर मित्री सम्प्रदाय के प्रचारकों ने इंगलिस्तान पहुंच कर वहां के अर्द्धसभ्य बाशिन्दों को सभ्य बनाने और उनमें पाप-पुण्य या धर्म-अधर्म का विचार पैदा करने की कोशिश की। एक बार उस मित्री सम्प्रदाय का, जिसने रोम के लोगों में सबसे पहले पाप-पुण्य के विचार पैदा किए, इंगलिस्तान भर में खूब ज़ोर रहा।

---

reached five millions...It was a system of organised labour, the possession of land being a trust, not a property. But now commerce was beginning to disturb the foundations on which all these arrangements had been sustained, and to compel a new distribution of population, trading companies were being established; men were unsettled by the rumours of realities of immense fortunes rapidly gained in foreign adventure...A nation so illiterate that many of its peers in Parliament could neither read nor write,......to so great an extent had these immoralities gone that it was openly asserted that there were one hundred thousand women in England made dissolute by the clergy......The viles crime in an ecclesiastic might be commuted for money, six shillings and eight pence being sufficient in the case of mortal sin......the close of the seventeenth century......London......was dirty, ill-built, without sanitary provisions...Wild animals roamed here and there......In the rainy seasons the roads were all but impassable......It was no uncommon thing for persons to lose their way, and have to spend the night out in the air. Between places of considerable importance the roads were sometimes very little known and such was the difficulty for wheeled carriages that a principal mode of transport was by pack-horses, of which passengers took advantage, stowing themselves away between the packs......Towards the close of the century what were termed 'flying coaches' ......could move at the rate of from thirty to fifty miles in a day......near the sources of the Tyne there were people scarcly less savage than American Indians, their half-naked women chanting a wild measure, while the men, with brandished dirks, danced a war-dance. It might be expected that the women were ignorant enough when very few men knew how to write correctly...... Social discipline was very far from being of that kind which we call moral...... the husband (whipped) his wife...... A culprit was set in the pillory to be polted with brickbats....Women were fastened by the legs in the stocks at the

इंगलिस्तान के अनेक हिस्सों में वैदिक देवता 'मित्र' के मन्दिर कायम हुए, जिनके टूटे हुए अवशेष अभी तक अजायबघरों में मौजूद हैं। किन्तु आने-जाने की असुविधाओं और इंगलिस्तान की बहुत अधिक असभ्य अवस्था के कारण यह असर देर तक न ठहर सका।

इसके बाद रोम के लोगों ने इंगलिस्तान के बाशिन्दों को सभ्य बनाने की कोशिश की। चार सौ साल तक इंगलिस्तान पर रोमवालों की हकूमत रही, किन्तु इंगलिस्तान रोमी साम्राज्य के बिल्कुल एक दूर के किनारे पर पड़ता था और इन चार सौ सालों के अन्दर सबसे बड़ा उपयोग, जो रोम के शासकों ने इंगलिस्तान का किया, या जो वे कर सके, यही था कि वे इंगलिस्तान से हजारों जवान लड़कों और लड़कियों को हर साल पकड़-पकड़ कर अपने साम्राज्य के दूसरे हिस्सों में ले जाकर गुलाम बना कर बेचते रहे। एक जमाना था, जबकि रोम के साम्राज्य भर में किसी देश के गुलामों की इतनी मांग न थी, जितनी ब्रिटिश गुलामों की।

सभ्यता या संस्कृति की तीसरी लहर, जो ऐतिहासिक समय के अन्दर इंगलिस्तान के किनारों से जाकर टकराई, ईसा की सातवीं सदी में इंगलिस्तान-निवासियों का ईसाई धर्म स्वीकार करना थी। किन्तु ईसाई धर्म से भी, अपनी अनुन्नत अवस्था के कारण, उस समय भद्दे-भद्दे मूढ़ विश्वासों, मूर्तिपूजा, साम्प्रदायिक पक्षपात और कलह के सिवाय इंगलिस्तान-निवासियों ने और कुछ न सीखा।

---

market place... Such a hardening of heart......The houses of the rural population were huts covered with strawthatch......In London the houses were mostly of wood and plaster, the streets, filthy beyond expression. After nightfall a passenger went at his peril, for chamber windows were opened and stop pails unceremoniously emptied down. There were no lamps in the streets... Hardly any personage died who was not popularly suspected to have been made away with by poison, an indication of the morality generally supposed to prevail among the higher classes......flood of immorality...The University of Oxford had ordered the political works of Buchanan, Milton, and Baxter to be publicly burnt in the court of the schools......In administering the law, whether in relation to political or religious offences, there was an incredible atrocity. In London, the crazy old bridge over the Thames was decorated with grinning and mouldering heads of criminals, under an idea that these ghastly spectacles would fortify the common people in their resolve to act according to law. The toleration of the times may be understood from a law enacted by the Scotch Parliament, May 8, 1685, that whoever preached or heard in a conventicle should be punished with death and the confiscation of his goods. That such an infamous spirit did not content itself with mere dead-letter laws there is too much practical evidence to permit anyone to doubt ......Shrieking Scotche Covenanters were submitted to forture by crushing their knees flat in the boot; women were tied to stakes on the sea-sands and drowned by the slowly advancing tide because they would not attend Episcopal worship, or branded on their cheeks and then shipped to America......The court ladies, and even the Queen of England herself, were so utterly forgetful of womanly mercy and common humanity as to join in this infernal traffic."—*The Intellectual Development of Europe,* by John William Draper, vol. ll, pp. 233—244.

इसके बाद सारे यूरोप में अरबों का समय आया। आधे यूरोप के ऊपर अरबों का साम्राज्य कायम हो गया। सभ्यता, विज्ञान, शिक्षा, कला-कौशल और समृद्धि की दृष्टि से यूरोप ने कभी उससे पहले इतने अच्छे दिन न देखे थे। इंगलिस्तान कई कारणों से उस अरब साम्राज्य से बाहर रहा। किन्तु यूरोप के बड़े-से-बड़े विद्यालय अरब प्रोफेसरों से भरे हुए थे और अरबी ही उन दिनों सारे यूरोप की सर्वोच्च शिक्षा का माध्यम थी। ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं सदियों में इंगलिस्तान का कोई मनुष्य उस समय तक शिक्षित न माना जा सकता था, जब तक कि वह अरबी भाषा से अच्छी तरह परिचित न हो। किन्तु थोड़े दिनों के अन्दर ही यूरोप की संकीर्ण धार्मिक प्रवृत्तियों ने अरबों के इस असर का भी खात्मा कर दिया। इसके बाद जो करीब एक हज़ार साल का समय तमाम यूरोप में 'अंधकार युग' (Dark Ages) के नाम से मशहूर है, उसमें कम-से-कम 500 साल तक इंगलिस्तान और देशों से भी अधिक गहरे अंधेरे में डूबा रहा।

सारांश यह कि पाप-पुण्य या धर्म-अधर्म के इस तरह के नैतिक आदर्श, जो प्राचीन वैदिक मत, बौद्ध मत, जैन मत आदि के कारण भारत में हज़ारों साल से स्थिर हो चुके थे और हर भारतवासी की पैतृक मानसिक सम्पत्ति थे, उस समय तक कभी भी इंगलिस्तान में स्थिर न हो पाए थे।

इसके अलावा 18–वीं सदी के शुरू तक इंगलिस्तान का जन-साधारण न केवल भयंकर दरिद्रता ही में डूबा हुआ था, वरन् थोड़े-से रईसों और ज़मींदारों को छोड़ कर 90 फ़ीसदी इंगलिस्तान-निवासियों की हालत अनेक बातों में ज़रखरीद गुलामों की हालत से बेहतर न थी। जिस पार्लिमेण्टरी शासन-पद्धति की इतनी अधिक डींग हांकी जाती है, उसका जन्म भी इस आपसी कलह और द्वेष ही में हुआ था, जिसके लिए सुसभ्य, सुसंगठित, खुशहाल भारत में कभी कोई गुंजाइश ही न थी। सुसंगठित ग्राम-पंचायतों के रूप में ग्रामवासियों के सच्चे स्वराज्य या ग्रामतन्त्र का इंगलिस्तान-निवासियों को कभी अनुमान तक न हो सकता था, न राजा और प्रजा के बीच वह सुन्दर धार्मिक सम्बन्ध वहां कभी कायम हो पाया था, जो हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के शासनकाल में भारत में कम-से-कम दो हज़ार साल से ऊपर तक क़ायम रहा। इन सब बातों को हम आगे चल कर और अधिक विस्तार के साथ बयान करेंगे।

सच यह है कि इस तरह के नैतिक आदर्श सदियों के सुसभ्य जीवन द्वारा ही पैदा हो सकते हैं और इंगलिस्तान-निवासियों को इस तरह के सुसभ्य जीवन का उस समय तक कभी भी सौभाग्य प्राप्त न हुआ था।

इंगलिस्तान को सभ्य बनाने की कोशिशें

सत्रहवीं सदी के शुरू में इस तरह की क़ौम के साथ भारत-जैसे प्राचीन सभ्य देश का पहली बार सम्पर्क हुआ। करीब सौ साल तक वे यहां केवल थोड़ा-बहुत व्यापार कर धन कमाते रहे। अठारहवीं सदी के शुरू में, औरंगजेब की मृत्यु के बाद, मुग़ल साम्राज्य के संगठन और शक्ति में फरक पड़ा। पिछले सौ साल के अन्दर इन विदेशियों की लालसा और आकांक्षा भी बेहद बढ़ चुकी थी। न्याय-अन्याय या ईमानदारी–बेईमानी का कोई सवाल उस समय उनकी आकांक्षाओं

या उनकी पूर्ति के उपायों में बाधा डालने वाला न था। तिजारती कोठियों के बहाने इन लोगों ने देश में किलेबन्दी शुरू की। उदार भारतीय नरेशों ने इसकी तनिक परवाह न की। देश में व्यापार की उन्हें खुली इजाजत और अनेक सुविधाएं दी ही जा चुकी थीं। विदेशियों का बल बढ़ता गया। भारतीय व्यापार से उचित और अनुचित तरीकों से उन्होंने मद्रास और बंगाल में भारतीय नरेशों के आपसी झगड़ों में कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेना शुरू किया। इस कूटनीति और इन साजिशों द्वारा विदेशियों का बल और बढ़ता चला गया। दिल्ली साम्राज्य की निर्बलता के कारण कोई केन्द्रीय शक्ति इस समस्त स्थिति को समझने और उसका उपाय कर सकनेवाली बाकी न रह गई थी। भारतीय नरेशों को एक-दूसरे से लड़ा कर इलाके-पर-इलाका विदेशियों के शासन में आता गया। अब हम कुछ अंगरेज़ इतिहास-लेखकों ही के विचार इस विषय में दे देना चाहते हैं कि मोटे तौर पर किन-किन उपायों से उस समय से धीरे-धीरे अंगरेज़ों ने भारत में एक इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर लिया, और इस देश के समृद्ध और लहलहाते हुए जीवन का अन्त कर दिया।

अंगरेज़ी राज क़ायम होने के तरीके

एक अंगरेज़ विद्वान लिखता है :

"किसी भारतीय ज्ञानी ने अपने देश के अन्दर यूरोपवासियों की तुलना दीमकों के साथ की है। आरम्भ में दीमकों की क्रियाएं या तो जमीन के नीचे अंधेरे में शुरू होती हैं, या कम-से-कम दिखाई नहीं देतीं। किन्तु इन दीमकों का लक्ष्य निश्चित होता है और वे चुपचाप और अज्ञात उस लक्ष्य को पूरा करने में लगी रहती हैं। वे सारे वन के हरे वृक्षों को नष्ट कर डालती हैं और उन्हें भीतर-ही-भीतर खाकर उनके खोखले तनों में अपनी इमारतें खड़ी कर लेती हैं। उन इमारतों तक पास की और दूर की कड़ी मिट्टी की बामियों से आने-जाने के लिए वे अनेक सुरंगें बना लेती हैं। जहां पहले दूर तक फैले हुए देवदार के वृक्ष लहलहाते थे, वहां बामियां ही बामियां दिखाई देने लगती हैं। ये दीमकें हर चीज पर धावा करती हैं, हर चीज को खा जाती हैं, भीतर–ही–भीतर जड़ों को खोद डालती हैं, खोखला कर देती हैं और सब वीरान कर डालती हैं। इस उपमा पर हम अधिक गर्व नहीं कर सकते, पर उपमा एक दरजे तक फबती हुई है। × × किन्तु कुछ भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि भारतवर्ष के साथ हमारे शुरू के सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी बातें हुई हैं, जिनको याद करके कोई भी सदाचार-प्रेमी मनुष्य कांप उठेगा और जिनका घृणा के साथ निषेध किए बिना कोई भी सच्चा ईसाई नहीं रह सकता।"*

---

*"Some native sage has compared the Europeans in India to *dimaks* or whiteants, which from dark or scarcely visible beginnings, pursue their determined objects insidiously and silently, destroying green forest trees and in their excavated trunks, building edifices, communicating by numerous galleries with the hardened clay pyramids, far and near, that denote where formerly flourished the far-spreading cedars. Attacking everything, devouring everything.

एक और अंगरेज़ विद्वान लिखता है :

"कम्पनी नें बंगाल का राज या अरकाट का या दूसरे किसी भी सूबे का राज और किन उपायों से प्राप्त किया, सिवाय झूठी क़समें खाने और जालसाज़ियां करनें के ?"*

विलियम हाविट नामक एक अंगरेज लिखता है :

"जिस तरीक़े से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दोस्तान पर क़ब्जा किया, उससे अधिक वीभत्स और ईसाई सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी दूसरे तरीक़े की कल्पना नहीं की जा सकती। × × यदि कोई कुटिल से कुटिल तरीक़ा हो सकता था —जिसमें नीच से नीच अन्याय की कोशिशों पर न्याय का बढ़िया मुलम्मा चढ़ानें की कोशिश की गई हो—यदि कोई तरीक़ा अधिक-से-अधिक निष्ठुर, क्रूर, दर्प-युक्त और दयाशून्य हो सकता था, तो यह वह तरीक़ा है, जिससे भारतवर्ष की अनेक देशी रियासतों का शासन देशी राजाओं के हाथों से छीन-छीन कर ब्रिटिश सत्ता के चंगुल में जमा कर दिया गया × × जब कभी हम दूसरी क़ौमों के सामनें अंगरेज क़ौम की सच्चाई और ईमानदारी का ज़िक्र करते हैं, तो वे भारत की ओर इशारा करके बड़ी हिक़ारत के साथ हमारा मज़ाक़ उड़ा सकते हैं। × × जिस तरीक़े पर चल कर, लगातार सौ साल से ऊपर तक, देशी राजाओं से उनके इलाक़े छीनें जाते रहे और वह भी न्याय और औचित्य की पवित्रतम आड़ में, उस तरीक़े से बढ़ कर दूसरों को यन्त्रणा पहुंचाने का तरीक़ा राजनैतिक या धार्मिक, किसी मैदान में किसी भी जालिम हकूमत नें पहले कभी ईजाद न किया था ; संसार में उसके मुक़ाबले की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती।"†

---

they undermine and sap and desolate. The simile is not a very flattering one, though it is not in some measure without its aptitude either,............After all, however, there can be no question that in our early connection with India, there was much from the contemplation of which the moralist will shrink, and the Christian protest against, with abhorrence."—*The Calcutta Review* vol. (vii, 1847) p. 226.

*"How did the Company acquire Bengal, but by perjury and forgery? Or Arcot, or any other principality?"—*The British Friend of India,* March, 1843.

†"......The mode by which the East India Company has possessed itself of Hindostan, as the most revolting and un-Christian that can possibly be conceived ......if ever there was one system more Mahiavelian, more appropriative of the show of justice where the basest injustice was attempted, more cold, cruel, haughty and unrelenting than another, it is the system by which the Government of the different States of India has been wrested from the hands of their respective princes and collected into the grasp of the British power......Whenever we talk to other nations of British faith and integrity, they may well point to India in derisive scorn......The system which for more than a century was steadily at work to strip the native princes of their dominions, and that too under the most sacred pleas of right and expediency, is a system of torture more exquisite than regal or spiritual tyranny ever before discovered; such as the world has nothing similar to show."—*The English in India—System of Territorial Acquisition* by William Howitt.

स्पेन्सर के विचार

प्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर सन् 1851 में क़रीब सौ साल के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन का सिंहावलोकन करते हुए लिखता है :

"पिछली सदी में भारत में रहनेंवाले अंगरेज, जिन्हें बर्क नें 'भारत में शिकार की ग़रज से जानेंवाले फ़सली परिन्दे' बतलाया है, अपनें मुक़ाबले के पेरू और मेक्सिको–निवासी यूरोपियनों* से कुछ ही कम जालिम साबित हुए। कल्पना कीजिए कि उनकी करतूतें कितनी काली रही होंगी, जबकि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने यह स्वीकार किया कि 'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो बड़ी-बड़ी पूंजियां कमाई गई हैं, वे इतने जबरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या किसी जमानें में भी सुननें में नहीं आए।' अनुमान कीजिए कि वन्सीटार्ट नें समाज की जिस दशा को बयान किया है, वह कितनी वीभत्स रही होगी, जब कि वन्सीटार्ट हमें बतलाता है कि अंगरेज भारतवासियों को विवश करके, जिस भाव चाहते थे, उनसे माल खरीदते थे और जिस भाव चाहते थे, उनके हाथ बेचते थे और जो कोई इनकार करता था, उसे बेंत या कैदखानें की सजा देते थे। विचार कीजिए उस समय देश की क्या हालत रही होगी, जबकि अपनी किसी यात्रा को बयान करते हुए वारेन हेस्टिंग्स लिखता है कि 'हमारे पहुंचते ही अधिकांश लोग छोटे-छोटे कस्बों और सरायों को छोड़-छोड़ कर भाग जाते थे।' इन अंगरेज अधिकारियों की निश्चित नीति ही उस समय बिना किसी अपराध के देशवासियों के साथ दग़ा करना थी। देशी नरेशों को धोखा दे-देकर उन्हें एक-दूसरे से लड़ाया गया, पहले उनमें से किसी एक को उसके विपक्षी के विरुद्ध मदद देकर गद्दी पर बैठाया गया और फिर किसी-न-किसी दुर्व्यवहार का बहाना लेकर उसे भी तख्त से उतार दिया गया। इन सरकारी भेड़ियों को किसी न किसी गंदले नाले का बहाना सदा मिल जाता था। जिन मातहत देशी सरदारों के पास इस तरह के इलाके होते थे, जिन पर इन लोगों के दांत लगे होते थे, उनसे बड़ी-बड़ी अनुचित रकमें बतौर खिराज के लेकर उन्हें निर्धन कर दिया जाता था और अन्त में जब वे इन मांगों को पूरा करनें के नाक़ाबिल हो जाते थे, तो इसी संगीन जुर्म के दण्डस्वरूप उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता था। यहां तक कि हमारे समय (1851) में भी उसी तरह के जुल्म जारी हैं। आज दिन तक नमक का कष्टकर इजारा और लगान की वही निर्दय प्रथा जारी है, जो ग़रीब रय्यत से जमीन की क़रीब-क़रीब आधी पैदावार चूस लेती हैं। आज दिन तक भी वह धूर्ततापूर्ण स्वेच्छा-शासन जारी हैं, जो देश को पराधीन बनाए रखने और उस पराधीनता को बढ़ानें के लिए देशी सिपाहियों का ही बतौर साधनों के उपयोग करता है। इसी स्वेच्छा-शासन के नीचे अभी बहुत साल नहीं गुजरे कि हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक

*जिन्होंने वहां के लाखों आदिम वासियों को खुले अंग-भंग करके या उनका शिकार खेल-खेल कर निर्मूल कर दिया।—लेखक।

एक पूरी रेजिमेण्ट को इसलिए जान बूझ कर क़त्ल कर डाला गया कि उस रेजिमेण्ट के सिपाहियों नें बग़ैर पहनने के कपड़ों के कूच करनें से इंकार कर दिया था। आज दिन तक पुलिस के कर्मचारी धनवान लफंगों के साथ मिल कर ग़रीबों से ज़बरदस्ती धन ऐंठने के लिए सारी क़ानूनी मशीन को काम में लाते हैं। आज के दिन तक साहब लोग हाथियों पर बैठ कर निर्धन किसानों की फसलों में से जाते हैं और गांव के लोगों से बिना कीमत दिए रसद वसूल कर लेते हैं। आज के दिन तक यह एक आम बात है कि दूर के ग्रामों में रहनेंवाले लोग किसी यूरोपियन की शक्ल देखते ही जंगल में भाग जाते हैं।" *

ईस्ट इंडिया कम्पनी के पाप

एक और अंगरेज़ लेखक, डाक्टर रसेल लिखता है :

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन को आरम्भ से ही ज़बरदस्त पापों नें रंग रखा था, × × × लगातार अनेक पीढ़ियों तक, बड़े से बड़े सिविल और फौजी अफसरों से लेकर छोटे से छोटे कर्मचारियों तक, कम्पनी के मुलाज़िमों का एकमात्र महान लक्ष्य और उद्देश्य यह रहता था कि जितनी जल्दी हो सके और जितनी बड़ी से बड़ी पूंजी हो सके, इस देश से निचोड़ ली जाए और फिर अपना

---

*"The Anglo-Indians of the last century whom Burke described as 'Birds of prey and passage in India' showed themselves only a shade less cruel than their prototypes of Peru and Mexico. Imagine how black must have been their deeds when even the Directors of the Company admitted 'That the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct, that was ever known in any age or country.' Conceive the atrocious state of society described by Vansittart, who tells us that the English compelled the natives to buy or sell at just what rates they pleased on pain of flogging or confinement. Judge to what a pass things must have come when, in describing a journey, Warren Hastings says, 'Most of the petty towns and *serais* were deserted at our approach.' A cold-blooded treachery was the established policy of the authorities. Princes were betrayed into war with each other; and one of them having been helped to overcome his antagonist, was then himself dethroned for some alleged misdemeanour. Always some muddied stream was at hand as a pretext for official wolves. Dependent chiefs possessing coveted lands were impoverished by exorbitant demands for tribute and their ultimate inability to meet these demands was construed into a treasonable offence, punished by deposition. Even down to our own day kindred iniquities are continued. Down to our own day, too, are continued the grievous salt monopoly and the pitiless taxation, that wring from the poor ryots nearly half the produce of the soil. Down to our own day continues the cunning despotism which uses native soldiers to maintain and extend native subjection, a despotism under which, not many years since, a regiment of sepoys was deliberately massacred for refusing to march without proper clothing. Down to our own day, the police authorities league with wealthy scamps, and allow the machinery of the law to be used for the purposes of extortion. Down to our own day, so-called gentlemen will ride their elephants through the crops of impoverished peasants and will supply themselves with provisions from the native villages without paying for them. And down to our own day it is common with the people in the interior to run into the woods at sight of a European."—*Social Statics* by Herbert Spencer.

मतलब पूरा करते ही सदा के लिए इस देश को छोड़ दिया जाए। × × × × बात बिल्कुल सच्चाई के साथ कही गई है कि × × × पराजित प्रजा को अपने बुरे से बुरे और अय्याश देशी नरेशों के बड़े से बड़े जुल्म इतने घातक मालूम न होते थे, जितने कम्पनी के छोटे स छोटे जुल्म।" *

पुस्तक का सार

इससे अधिक अंगरेज़ विद्वानों की राय इस विषय में देने की ज़रूरत नहीं है। सन् 1757 से 1857 तक सौ साल के अंगरेज़ कम्पनी के शासन में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का अपने देश और देशवासियों के खिलाफ़ जांनिसारी के साथ विदेशी अफ़सरों की फ़रमाबरदारी करना, हिन्दोस्तानी नरेशों का अंगरेज़ों के साथ सन्धियों की शर्तों को ईमानदारी से निबाहना, अंगरेज़ों का बार-बार जान-बूझ कर अपनी सन्धियों और वादों को तोड़ना, देशी रियासतों के यूरोपियन नौकरों का पग-पग पर अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करना, अंगरेज़ रेज़िडेण्टों का देशी दरबारों में रह कर वहां फूट डलवाना, रिश्वतें देना, गुप्त साज़िशें करना, हत्याएं कराना और जालसाज़ियां करना, देशी नरेशों का कम्पनी के साथ 'सन्धि' और 'मित्रता' के जाल में एक बार फंस कर उससे बिना अपना मान और सर्वस्व दिए बाहर न निकल सकना, ईस्ट इंडिया कम्पनी का, अपनी निर्धारित नीति के अनुसार, भारत की प्राचीन ग्राम-पंचायतों, शिक्षा-प्रणाली, हज़ारों और लाखों पाठशालाओं और हज़ारों साल के उन्नत उद्योग-धन्धों का नाश कर डालना और इन सबके नतीजे में भारत का सौ-सवा-सौ साल के अन्दर संसार के सबसे अधिक प्रबल, उन्नत तथा खुशहाल देशों की पंक्ति से निकल कर सबसे अधिक निर्बल, अवनत और दरिद्र देशों की पंक्ति तक पहुंचा दिया जाना—इस सबकी अत्यन्त दुखकर कहानी इस पुस्तक के विविध अध्यायों में बयान की गई है।

पुराने जमाने के हमले

अंगरेज़ों से पहले के हमले

भारत में अंगरेज़ी राज के इतिहास को ठीक-ठीक समझने के लिए ज़रूरी है कि उससे ठीक पहले की भारत की हालत, यानी मुग़ल साम्राज्य के समय की हालत, का पूरा चित्र हमारे सामने हो। किन्तु मुग़ल साम्राज्य के समय की हालत को बयान करने से पहले आदि काल से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत पर जितने और विदेशी हमले समय-समय पर हुए हैं, उन सब पर भी हम

---

*......the Government of the East India Company in India was tainted from the very first with mighty vices,.........for generation after generation the great aim and object of the servants of the Company, from the high civil and military functionaries downwards, was to squeeze as large as possible a fortune out of the country as quickly as might be, and turn their backs upon it for ever, so soon as that object had been attained, ...In perfect truth has it been said......that the subjugated race found the little finger of the Company thicker than the loins of the worst and most dissolute of their native princes."—Dr. Russell.

एक सरसरी नज़र डालना ज़रूरी समझते हैं। साथ ही हम यह भी दिखाना चाहेंगे कि इस तरह के हमले यूरोप के विविध देशों पर भी हुए थे या नहीं और यदि हुए थे, तो भारत के मुकाबले में यूरोपियन देशों ने उनका कहां तक सफलता के साथ सामना किया। हमारे इस संक्षिप्त बयान से पाठकों को मालूम हो जाएगा कि इस तरह के हमले भारत पर अन्य देशों की निस्बत अधिक नहीं हुए और न उन्हें भारत में अधिक सफलता ही प्राप्त हुई। इन हमलों के समय अपनी रक्षा न कर सकने के स्थान पर भारत ने ऐसे अवसरों पर यूरोपियन देशों के मुकाबले में कहीं अधिक सफलता के साथ अपनी रक्षा की और अक्सर अपने हमला करने वालों पर भौतिक और नैतिक, दोनों तरह की विजय प्राप्त की।

आर्यों का हमला

भारत पर सबसे पहला विदेशी हमला आर्य जाति का हमला बताया जाता है, जिसका समय यूरोपीय विद्वानों के अनुसार ईसा से क़रीब 2,500 साल पहले था।*

सब इतिहास-लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि आजकल के भारतवासी, ईरानी और यूरोपवासी, सब एक ही प्राचीन आर्य जाति की सन्तान हैं। कहा जाता है कि आज से चार-पांच हज़ार साल या कुछ ज्यादा पहले आर्य जाति के लोगों ने मध्य एशिया के किसी हिस्से से निकल-निकल कर हिन्दोस्तान, ईरान और तमाम यूरोप को जीता और आबाद किया था। इसलिए यदि उस प्राचीन आर्य जाति द्वारा विजय किया जाना किसी भी देश के लिए ज़िल्लत की चीज़ माना जा सकता है, तो वह हिन्दोस्तान के किए केवल उतनी ही ज़िल्लत की चीज़ था, जितनी ईरान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, इंगलिस्तान, यूनान, रोम इत्यादि के लिए, जिनकी भाषा और सभ्यता पर प्राचीन आर्यों की भाषा और सभ्यता की वैसी ही गहरी छाप पड़ी, जैसी भारत में। इतना ही नहीं, बल्कि इतिहासतज्ञ स्वीकार करते हैं कि जिस आर्य जाति के लोग मध्य एशिया के अपने निवासस्थानों से निकल कर भी अधिकांश यूरोपियन महाद्वीप के ऊपर हज़ारों साल तक अर्धसभ्य अवस्था में रहते रहे, उसी जाति के लोगों ने भारत में पहुंच कर, यूरोपियन विद्वानों के अनुसार ही, हज़रत ईसा से कम से कम हज़ारों साल पहले एक विशाल, ऊंची और शानदार सभ्यता की नींव रखी। इसकी एक वजह यह भी थी कि आर्यों के आने से पहले हिन्दोस्तान बिल्कुल ही असभ्य न था। प्राचीन संस्कृत साहित्य तक में हमें भारत के उन आदिम वासियों की सभ्यता की उच्चता के काफ़ी सबूत मिलते हैं और इसमें भी सन्देह नहीं कि कई पहलुओं से उनकी सभ्यता नए आने वाले आर्यों की सभ्यता से उच्चतर थी।†

भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा

आर्यों के हमले के बाद भारत के ऊपर जो विदेशी हमले गिनाए जाते हैं, उनकी असलियत को समझने के लिए हमें एक और बात ध्यान में रखनी होगी। मध्य एशिया के

**The Cambridge History of India*, vol. i., p. 697.

†मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खोजें इस पुस्तक के लिखे जाने के बाद की हैं—लेखक।

दक्षिण में अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और उसके आसपास का कुछ प्रदेश ईसा से क़रीब एक हजार साल पहले से लेकर औरंगज़ेब की मृत्यु के समय तक हिन्दोस्तान, ईरान और ईरान से पश्चिम के देशों के बीच विवादग्रस्त भूमि रहा है। भारत के अनेक हिन्दू और मुसलमान सम्राटों ने भारत में बैठकर सीस्तान, हिरात और अफ़गानिस्तान पर हकूमत की है। प्राचीन समय के अनेक ईरानी और यूनानी लेखकों ने हिन्दोस्तान की सीमाएं अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान के पश्चिम में बतलाई हैं और उस सारे पहाड़ी प्रदेश को हिन्दोस्तान ही का अंग माना है। आर्यों के हमले के बाद जो अनेक हमले भारत पर गिने जाते हैं, उनमें से अधिकांश में 'भारत' से अर्थ यही लिया जाता है। इस तरह, उन हमला करनेवालों को भी, जिन्होंने कभी सिन्धु नदी का किनारा नहीं देखा, भारत पर हमला करनेवालों में शुमार कर लिया जाता है। मसलन, कहा जाता है कि ईरान के मशहूर बादशाह दारा के, जिसने ईसा से 522 साल पहले से लेकर 486 साल पहले तक शासन किया, विशाल साम्राज्य में उत्तर भारत का कुछ भाग भी शामिल था। किन्तु दारा के शिलालेखों से साफ़ पता चलता है कि उसका साम्राज्य कभी सिन्धु नदी से आगे नहीं बढ़ा।

सिकन्दर से पहले के हमले

आर्यों के हमले के बाद से सिकन्दर के हमले के समय तक भारत पर सिन्धु नदी के इस ओर तक केवल दो हमलों का थोड़ा-बहुत विश्वस्त इतिहास मिलता है। इनमें पहला हमला असीरिया की जगत्प्रसिद्ध सम्राज्ञी मलका सेमिरामिस का था, जिसने ईसा से क़रीब आठ सौ साल पहले बलूचिस्तान को पार कर भारत विजय करने का प्रयत्न किया इस हमले की बाबत यूनानी इतिहास-लेखक नियारकस लिखता है कि सेमिरामिस को अपनी सेना के केवल बीस बचे हुए आदमियों सहित सिन्धु नदी से जान बचा कर भागना पड़ा। दूसरा हमला ईरान के प्रसिद्ध विजेता कुरु का था। यह वह कुरु था, जिसे अंग्रेज़ी में 'सारलस' लिखा जाता है, किन्तु जिसका असली ईरानी नाम कुरु था और जिसकी शुमार एशिया के बड़े-से-बड़े विजेताओं में की जाती है। कुरु को दारा का पितामह और विशाल ईरानी साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। काबुल से लेकर इराक़, सीरिया, तुर्की, बैबिलोन, मिस्र और यूनान का भी कुछ भाग इस ईरानी विजेता की अधीनता स्वीकार कर चुका था। सेमिरामिस के बाद कुरु ने भारत पर हमला किया। किन्तु उसे भी केवल सात आदमियों सहित जान बचा कर सिन्धु नदी से पीछे लौट जाना पड़ा और अन्त में किसी भारतवासी के वार से ज़खमी होकर ही उसकी मृत्यु हुई।*

सिकन्दर का हमला

इसके बाद ईसा से 326 साल पहले यूनान के जगत्प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर के भारत पर हमले का समय आता है। पूर्वी यूरोप से लेकर अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान तक कोई मुल्क इस अद्वितीय विजेता की सेना के सामने न ठहर सका। उत्तर-पश्चिम की ओर से आकर सिकन्दर ने अपनी सेना सहित सिन्धु और झेलम नदियों को पार किया सिकन्दर को पूरी उम्मीद थी कि वह उत्तर भारत के हरे-भरे मैदानों को अपने विशाल साम्राज्य में मिला कर, भारतीय महाद्वीप को पार करता हुआ पूर्वी सागर तक जा पहुंचेगा।

---

*_The Cambridge History of India,_ vol. i., pp. 330-31.

भारत की राजनैतिक हालत भी उस समय सिकन्दर के सौभाग्य से काफ़ी बिगड़ी हुई थी। सरहद पर झेलम के उस पार तक्षशिला के राजा और इस पार पंजाब के राजा, पौरव, जिसे यूनानी पोरस कहते थे, में बहुत दिनों से दुश्मनी चली आ रही थी। तक्षशिला का राजा अपने प्रतिस्पर्धी पौरव के ख़िलाफ़ सिकन्दर से मिल गया। सिकन्दर ने पौरव से अधीनता स्वीकार करने के लिए उसके पास दूत भेजे। पौरव ने दूतों को उत्तर दिया कि मैं अपनी सेना सहित युद्ध के मैदान में सिकन्दर और उसकी सेना के साथ बातचीत करूंगा। सिकन्दर की जिस सेना ने झेलम को पार कर पौरव पर हमला किया, उसमें तक्षशिला के राजा की भारतीय सेना भी शामिल थी।* हमला करने वाली कुल सेना पौरव की सेना से तादाद में कहीं ज्यादा थी। पौरव के दो बेटे मैदान में काम आए। विजय सिकन्दर की ओर रही। पौरव जख्मी हो गया और गिरफ्तार करके सिकन्दर के सामने लाया गया। सब यूनानी इतिहास-लेखक इस बात के साक्षी हैं कि पौरव का सौन्दर्य, उसकी वीरता और उसके साहस को देखकर सिकन्दर मुग्ध हो गया। सिकन्दर ने मुक्त कंठ से पौरव की तारीफ़ की और उसका सारा राज फिर से उसके हवाले कर दिया।

इस तरह पौरव से सन्धि कर सिकन्दर आगे बढ़ा। भारत की राजशक्तियों में उस समय मगध का साम्राज्य सबसे मुख्य था। पंजाब से चल कर सिकन्दर ने मगध पर चढ़ाई करने का इरादा किया। किन्तु सिकन्दर की सेना ने, जिसे पौरव के साथ हुए संग्राम में भारतीय वीरता का काफ़ी परिचय मिल चुका था, व्यास नदी को पार करने से साफ़ इनकार कर दिया। यूनानी इतिहास-लेखक लिखते हैं कि सिकन्दर ने अपनी सेना का हौसला बढ़ाने की भरसक कोशिश की, किन्तु उसकी एक न चल सकी। मजबूर होकर भारत को विजय करने का स्वप्न पूरा किए बिना ही उस अद्वितीय जगत्-विजेता को भी व्यास नदी के उस पार से पीछे लौट जाना पड़ा।

यूनानी इतिहास-लेखक मेगेस्थनीज़ साफ़ लिखता है कि सिकन्दर के आने से पहले तक भारतवासियों पर कभी भी कोई विदेशी हमला करनेवाला विजय प्राप्त न कर पाया था।†

अन्य यूनानी हमले

सिकन्दर के समय से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत पर और भी कई हमले हुए, जिनमें कुछ असफल रहे और कुछ को सफलता मिली। इन सफल हमलों की एक विशेषता यह थी कि जो लोग भारत के किसी हिस्से को किसी तरह विजय कर पाते थे, वे अपने पुराने देशों से हर तरह का नाता तोड़ कर भारत में ही बस जाते थे, भारत ही को अपना घर बना लेते थे, भारत के हित और भारत की उन्नति में अपना हित और अपनी उन्नति समझने लगते थे और थोड़े ही दिनों के अन्दर शेष भारतवासियों में मिल-जुल कर उनके साथ पूरी तरह एक हो जाते थे।

---

*_The Cambridge History of India,_ p. 361.

†Ibid, p. 331.

सिकन्दर के बाद सबसे पहले दो हमले, जो असफल रहे, यूनानी सेनापतियों, सेल्यूकस और अन्तिओकस के हमले थे ।

सिकन्दर के क़रीब 20 साल बाद सिकन्दर के सेनापति और उत्तराधिकारी सेल्यूकस प्रथम ने भारत पर हमला किया । उस समय तक मौर्य कुल के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त का राज समस्त उत्तरी भारत में कायम हो चुका था । लिखा है कि चन्द्रगुप्त की, लड़कपन में सिकन्दर से भेंट हो चुकी थी । सेल्यूकस के मुकाबले के लिए चन्द्रगुप्त ने पांच लाख सेना और नौ हज़ार हाथी मैदान में खड़े किए । सेल्यूकस घबरा गया और दोनों में सन्धि हो गई । सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को सिन्धु नदी से पूरब के समस्त देशों का अधिराज स्वीकार किया और इसके अलावा काबुल, क़न्धार, हिरात और बलूचिस्तान भी उसी के हवाले कर दिए । इस तरह अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान, दोनों देश, जिन पर 20 साल पहले सिकन्दर ने अपने नायब शासक नियुक्त कर दिए थे, अब चन्द्रगुप्त के भारतीय साम्राज्य में शामिल हो गए । यूनानियों की किताबों से यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की लड़की के साथ शादी कर ली । इस सबके बदले में चन्द्रगुप्त ने पांच सौ हाथी सेल्यूकस को भेंट किए और सेल्यूकस ने अफ़गानिस्तान की सरहद को पार कर अपने देश का रास्ता लिया ।

चन्द्रगुप्त के पोते, जगत्प्रसिद्ध प्रियदर्शी सम्राट अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य कुल की सत्ता फिर कुछ निर्बल हुई । फिर एक यूनानी सेनापति, अन्तिओकस ने हिन्दूकुश पर्वत को पार कर किसी छोटे से सरहदी भारतीय नरेश के इलाके में प्रवेश किया । किन्तु वहां सिवाय अपनी फ़ौज के लिए रसद और कुछ हाथियों के, अन्तिओकस को और कुछ न मिल सका और इतने ही से सन्तुष्ट होकर अन्तिओकस को भी सिन्धु नदी के उस पार से ही पीछे लौट जाना पड़ा ।

अन्तिओकस के बाद भारत पर कुछ इस तरह के हमलों का ज़िक्र किया जाता है, जिन्हें सचमुच सफल हमले कहा जा सकता है । ये हमले दो तरह के थे—(1) बख्तियारी यूनानियों के हमले और (2) शक (सीदियन), हूण इत्यादि मध्य एशिया की अर्धसभ्य क़ौमों के हमले ।

यूनानियों का भारत में बस जाना

सिकन्दर के साथियों में से कुछ पश्चिम एशिया में बस गए थे । शुरू में सिकन्दर ने इन्हें अपनी ओर से कुछ एशियाई प्रान्तों के शासक नियुक्त कर दिया था । सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद इन लोगों ने इराक़ में और उसके आसपास एक सुन्दर सल्तनत कायम कर ली, जो बख्तियारी सल्तनत के नाम से मशहूर हुई । इन बख्तियारियों ने सेल्यूकस की पराजय को धोने के लिए सबसे पहले हिरात, अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान को फिर से विजय किया । इसके बाद सिन्धु नदी के इस पार इन लोगों के हमले शुरू हुए । ये हमले पंजाब, सिन्ध और सौराष्ट्र (काठियावाड़) तक पहुंचे । *इन हमलों के बाद

*कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में एक संग्राम का ज़िक्र आता है, जिसमें सिन्धु नदी के तट पर राजा पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र ने यवन सेना को परास्त कर पीछे हटाया । उस समय के संस्कृत ग्रन्थों में 'यवन' शब्द से मतलब इन्हीं यूनानियों से है ।

मालूम होता है कि अनेक यूनानी भारत में ही बस गए। शाकल (सियालकोट) का राजा मिलिन्द, जिसका जिक्र बौद्ध ग्रन्थ 'मिलिन्द पन्ह' में आता है, इन्हीं यूनानियों में से था।

जो यूनानी भारत में बस गए थे, उनका फिर किसी तरह का सम्बन्ध यूनान या इराक़ इत्यादि से न रह गया था। वे भारत वासियों के साथ मिलजुल कर एक हो गए। उन्होंने भारत की भाषा, भारत के साहित्य, भारत के धर्म और भारत की सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य नागसेन ने राजा मिलिन्द को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी और मिलिन्द भारत के बड़े-से-बड़े धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और प्रजापालक नरेशों में गिना जाता है, जिसकी प्रजा अत्यन्त समृद्ध और खुशहाल थी।

इसी तरह की दूसरी मिसाल यूनानी राजदूत हीलियोदोरस की है, जिसने तक्षशिला से विदिशा (भीलसा) पहुंच कर वैष्णव मत स्वीकार किया और वहीं पर श्रीकृष्ण की स्मृति में एक स्तम्भ खड़ा करवाया।* इस स्तम्भ पर खुदे हुए लेख में हीलियोदोरस ने अपने को 'हीलियोदोर भागवत' लिखा है। हीलियोदोर का अर्थ है, 'सूर्य का उपासक' और भागवत का अर्थ है, 'भगवत का अनुयायी।'

ये यूनानी जिस प्राचीन यूनानी चित्रकारी को अपने साथ भारत लाए थे, उसे उन्होंने भारतीय बौद्ध चित्रकारी की सहायता से ख़ासी तरक्क़ी दी। इसी तरह, बौद्ध चित्रकारी ने भी यूनानी चित्रकारी से उस समय कई नई बातें सीखीं। ज्योतिष, विज्ञान, दर्शन और अन्य कलाओं में भी यूनानियों ने भारतवासियों से और भारतवासियों ने यूनानियों से बहुत कुछ शिक्षा ली। दोनों में खुले ब्याह-शादियां होने लगीं। यहां तक कि उस समय के बसे हुए 'यवन' (यूनानी) आज भारतवासियों में इस तरह घुल-मिल कर एक हो गए हैं कि उनका कहीं अलग पता तक नहीं रहा।

शक और हूण क़ौमों के हमले

इन यूनानियों के बाद, जैसा हम अभी ऊपर कह चुके हैं, शक, पहलव और हूण क़ौमों के हमलों का समय आता है। ये हमले भी बख्तियारी यूनानियों के हमलों की तरह एक दरजे तक भारत पर सफल हमले कहे जा सकते हैं और ये कौमें भी ठीक उसी तरह भारत में आकर बस गईं, जिस तरह यवन बस गए थे।

सिन्धु नदी के पश्चिम में गान्धार और पुष्कलावती, और पूरब में तक्षशिला हज़रत ईसा के जन्म की सदी में शक (सीदियन) जाति के शासन में आ गए। पश्चिम पंजाब और सिन्ध के कुछ हिस्से पर कुछ दिनों के लिए शक जाति की हकूमत क़ायम हो गई। उसी नदी में पहलव (पार्थियन) कौम के लोगों ने भी सिन्ध को विजय किया। इसके बाद इन लोगों ने दक्षिण की ओर बढ़ना शुरू किया। किन्तु आन्ध्र कुल के सम्राटों ने कई संग्रामों में इन पर विजय प्राप्त कर, मध्य और दक्षिण भारत को उनके हमलों से बचाए रखा। इसलिए शक जाति के लोगों का शासन विन्ध्य तक ही रहा।

**The Cambridge History of India*, p. 558.

इन क़ौमों का इस देश में बस जाना

यह बात इतिहास से जाहिर है कि इस बीच जिन शक और पहलव जातियों ने उत्तर भारत के कुछ हिस्सों पर शासन किया, वे इस देश में आकर पूरी तरह बस गईं और विदेशी रहने के स्थान पर इस देश की उच्चतर सभ्यता से प्रभावित होकर हर मानी में भारतवासी बन गईं। उन्होंने भारतीय रहन-सहन, भारतीय ढंग के नाम, भारतीय धर्म, भारतीय भाषा और भारतीय सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। मसलन, शक जाति का सबसे मशहूर सम्राट, जिसने भारत में कुषाण साम्राज्य की नींव रखी और जिसने सन् 78 ईसवी के क़रीब अफ़गानिस्तान और सरहदी प्रदेश पर शासन किया, सुप्रसिद्ध सम्राट कनिष्क था। कनिष्क ने बौद्ध मत स्वीकार किया। उसके सिंहासन पर बैठने के समय से ही, उसी की यादगार में शक सम्वत् का प्रारम्भ हुआ, जिसका इस वक्त भारत में चलन है। सम्राट कनिष्क का राज्य दक्षिण में विन्ध्य तक और उत्तर में मध्य एशिया के अलताई पहाड़ तक फैला हुआ था। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। बौद्ध धर्म के प्रचार में उसने बहुत बड़ा भाग लिया। अन्तिम और सबसे बड़ी बौद्ध 'संगति' यानी महासभा का वही संयोजक था। बौद्ध मत के महायान सम्प्रदाय की उसने नींव रखी। संस्कृत के प्रचार में उसने बहुत बड़ा हिस्सा लिया। कनिष्क ही के प्रचारकों ने अधिकतर चीन, तातार, तिब्बत और उत्तर एशिया में जाकर बौद्ध मत का प्रचार किया।

शक जाति के लोग उस समय अपने को हिन्दू क्षत्रिय कहते थे और क्षत्रिय ही माने जाते थे। उनके नाम अधिकतर 'वर्मन्' या 'दत्त' से समाप्त होते थे। धीरे-धीरे उनका अस्तित्व भी यवनों के अस्तित्व की तरह बाक़ी भारतवासियों के अस्तित्व में मिल कर एक हो गया।

शक और पहलव जातियों के हमलों के बाद और मुसलमानों के हमले के पहले, भारत पर अब केवल एक हमला 'हूण' जाति का और बाकी रह जाता है। यह हमला वास्तव में प्राचीन भारत पर सबसे वहशियाना हमला था। एशिया या यूरोप का क़रीब-क़रीब कोई भी मुल्क इनके भयंकर हमलों से नहीं बचा। इसी हूण जाति के हमलों से अपनी रक्षा करने के लिए चीन के सम्राटों ने दो हजार मील लम्बी असाधारण चौड़ाई और ऊंचाई की चीन की प्रसिद्ध 'बड़ी दीवार' को तामीर कराया था। हूण जाति के इन्हीं हमलों ने ईसा से क़रीब देढ़-दो सौ साल पहले बख्तियारी साम्राज्य को तहस-नहस कर दिया। रूस और यूरोप को भी इन्हीं हमलों ने बरबाद किया और क़रीब एक हज़ार साल तक वीरान बनाए रखा। भारत का भी इन हमलों से बच सकना नामुमकिन था। ईसा के जन्म से पहले इराक से लेकर भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा तक सारा मुल्क इसी जाति के अधीन था।

ईसा की पांचवीं सदी के मध्य में इस हूण जाति के लोगों ने भारत पर हमला किया। एक बार पंजाब, मध्य भारत और मालवा तक उनका राज जम गया। हूण सरदार तुरामान ने भारत के सम्राट बुद्धगुप्त को परास्त कर दिया। किन्तु उसके बाद ही सम्राट यशोधर्मदेव ने, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी और जिसका साम्राज्य हिमालय से पूर्वी घाट तक और ब्रह्मपुत्र से अरब सागर तक सारे भारत पर फैला हुआ था, सन् 573 ई० में तुरामान के पुत्र मिहिरकुल को मुलतान के पास कोरूर नामक स्थान पर परास्त कर भारत से हूण जाति की हकूमत को मिटा दिया। इसके बाद राज्यवर्धन ने बाकी उत्तर भारत में हूण जाति के रहे-सहे प्रभाव का भी अन्त कर दिया।

अब हम उन सब हमलों को एक-एक कर बयान कर चुके हैं, जो मुसलमानों के हमले से पहले भारत पर हुए थे। हमने यह सारा बयान यूरोपियन इतिहास-लेखकों की किताबों से ही लिया है। इससे पूरी तरह अनुमान किया जा सकता है कि भारत पर उस समय तक कितने और किस तरह के हमले हुए, भारत ने कहां तक कामयाबी के साथ उनका मुकाबला किया, उन हमलों से भारत को कहां तक हानि या लाभ हुआ और इन सब हमलों में और भारत पर अंग्रेजों के हमले में कितना जबरदस्त अन्तर था।

अन्य देशों पर हमले

सच यह है कि, कम या ज्यादा, बाहर से हमलों का होना हर मुल्क के इतिहास में एक मामूली बात है। फिर भी, भारत पर कभी भी इतने अधिक हमले नहीं हो पाए, जितने बाक़ी संसार के अधिकतर देशों और ख़ास कर यूरोप के क़रीब-क़रीब हर देश पर हुए। इसके सबूत में अब हम यूरोप के विविध देशों पर बाहर के हमलों और उनके नतीजों का सार-वृत्तान्त यूरोपियन लेखकों ही के आधार पर देते हैं, जिससे यह भी मालूम हो जाएगा कि भारत में इस तरह के हमलों की वजह से उस बरबादी का हज़ारवां हिस्सा भी कभी देखने में नहीं आया, जो इस तरह के हमलों के सबब से तमाम यूरोप में एक हजार साल से ऊपर तक फैली रही।

यूरोप पर एशियाई जातियों के हमले

अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि यूरोप पर एशियाई क़ौमों के हमले ईसा से हज़ारों साल पहले से जारी थे। इनमें आर्य जाति के हमले का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। इसके बाद ईसा से 800 साल पहले यूरोप पर दूसरी एशियाई जातियों के हमलों का भी यूरोप के इतिहास में ज़िक्र आता है। इस तरह के हमले समय-समय पर बराबर होते रहे। किन्तु यहां हम उन सब हमलों को छोड़ कर केवल हज़रत ईसा के जन्म के बाद के हमलों को ही थोड़े-से शब्दों में बयान कर देना चाहते हैं।

ईसा की दूसरी सदी से ही पूर्व एशिया और मध्य एशिया की अनेक क़ौमें—जैसे हूण, अवार, बलगर, ख़ज़ार, पत्जेनाक, मगियार और मंगोल आदि—बराबर एशिया से निकल कर यूरोप पर हमला करती रही हैं। इस तरह के हमले एक हज़ार साल तक, रूस से लेकर जर्मनी, इटली, इंगलिस्तान और स्पेन तक बराबर होते रहे। इनमें शुरू की हमला करने-वाली क़ौमों ने पूर्वी यूरोप और मध्य यूरोप में जाकर अपनी बस्तियां आबाद कीं। बाद के हमला करने वालों ने इन पहले आए हुए लोगों को उत्तर और पश्चिम की ओर भगा कर खुद उनकी जगह ले ली।

ये हमले तमाम यूरोप में इतने लगातार और इतने अधिक देशों पर हुए कि उन्हें एक-दूसरे के बाद तरतीबवार बयान करना यहां अनावश्यक है। इसलिए हम क़रीब एक हज़ार साल के इन सब हमलों का केवल सार यूरोपियन इतिहास-लेखकों ही के शब्दों में दे देना चाहते हैं।

ईसा की पांचवीं सदी में क़रीब एक-चौथाई यूरोप, जिस में यूनान, बलकान, इटली, स्पेन और इंगलिस्तान, सब शामिल थे, रोमन लोगों के अधीन था। इसके बाद एशिया की इन हमलावर क़ौमों ने यूरोप पहुंच कर सारे रोमन साम्राज्य को तहस-नहस कर डाला।

इंगलिस्तान पर चार सौ साल तक रोमन लोगों की हकूमत रही। उसके बाद ईसा की पांचवीं सदी में, इन्हीं एशियाई क़ौमों में से एक, सैक्सन क़ौम ने, जिसका उद्गम स्थान कहीं मध्य एशिया में समझा जाता है, रोमन लोगों को निकाल कर बाहर किया और इंगलिस्तान के असली बाशिन्दे, ब्रिटनों को अपने अधीन कर लिया। आजकल की अंगरेज़ कौम, जो अपने देश के अन्दर हर तरह आजाद है, इन्हीं ब्रिटनों, सेक्सनों और इसी तरह की अनेक कौमों से मिल कर बनी हुई है।

इन हमलों से यूरोप की बरबादी

जब कि विशाल और शक्तिशाली रोमन साम्राज्य इन लगातार हमलों का मुकाबला न कर सका, तब फिर यूरोप की हालत का केवल अनुमान कर लेना ही काफ़ी है। ईसा की पांचवीं सदी में हूण जाति ने, जिसका ज़िक्र भारत के सम्बन्ध में ऊपर आ चुका है, कास्पियन समुद्र और डेन्यूब नदी के बीच अपना एक स्वतन्त्र साम्राज्य क़ायम कर लिया था। रोम के निर्बल सम्राट तक इन हूण सम्राटों को खिराज़ देते थे। इसी तरह का इन लोगों का एक दूसरा साम्राज्य ईसा की पांचवीं और छठी सदियों में पश्चिमी यूरोप में भी क़ायम हो गया। इन हमलों के कारण यूरोपियन समाज की जो हालत हुई, उसे बयान करते हुए एक फ्रांसीसी इतिहास-लेखक, बुइसोनेद लिखता है :

> "पुरानें रोमन समाज को सबसे ऊपर की और बीच की श्रेणियों के लोग उस तूफ़ान में मिट गए, या हमला करनेवाले असभ्य लोगों नें उन्हें लूट लिया। उनमें से जो बचे, वे विजेताओं में मिल कर एक हो गए ××× ब्रिटेन में एंग्लो सैक्सन जाति ने ब्रिटेन जाति को बिल्कुल बरबाद कर दिया ××× इन जालिम हमला करनेवालों ने न केवल बड़े-बड़े रोमन जमींदारों की जमीनें छीन कर उन पर खुद अपने कुटुम्बों सहित रहना शुरू कर दिया, बल्कि उन तमाम जमींदारों को मार डाला, गिरजों को बरबाद कर दिया ××× ब्रिटेन (इंगलिस्तान) में जो ब्रिट जाति के लोग बचे, उन्हें उन्होंनें गुलाम बना लिया ××× चारों ओर इतना दुख फल गया कि अनेक निराश लोगों को केवल गुलामी में ही एक तरह का आश्रय मिला। डेन्यूब और राइन के ज़िलों में, गाल (फ्रान्स) में, बेलजियम में और इटली में, रोमन आबादी के जिन लोगों की इन विजेताओं नें जान बख्श दी, उन्हें उन्होंनें अपना गुलाम बना कर रखा। ××× ब्रिटेन में इन लोगों नें इस तरह के जुल्म किए कि वहां के पुरानें उच्च घरानों के लोग मौत से बचनें के लिए अरमोरिका (पश्चिमोत्तर फ्रान्स) चले गए, और ब्रिटन लोगों की बहुत बड़ी तादाद को क़त्ल कर डाला गया। ××× एक्वीटन और स्पेन में ईसाई धर्मपरायण लोगों को और पादरियों को पीटा गया, उन्हें जंजीरों से बांध दिया गया और जिन्दा जला दिया गया। हर जगह, जब कि शहरों और क़स्बों को लूटा जाता था, स्त्रियों को बड़ी बेइज्जती सहनी पड़ती थी। रोम विजय करनें के बाद ऐलेरिक के अधीन विसीगाथ लोगों नें दरख्तों के साए में लेट कर वहां की राजसभा के सदस्यों (सेनेटर्स) के बेटों और बेटियों को, जिन्हें उन्होंनें अपनें जनानखानों में क़ैद कर लिया था, इस बात के लिए मजबूर किया कि वे सोनें के प्यालों में शराब भर-भर कर उन्हें पिलाएं। हर हमले के बाद हमला

करनेंवालों की स्त्रियों की तादाद बढ़ जाती थी। ××× मक़दूनिया में, थिसेली में, यूनान में, इलीरिया में, एपिरस और डेन्यूब के प्रान्तों में हमला करनेंवाले तूरानियों, जर्मनों और स्लैव लोगों नें पुरुषों को क़त्ल कर डाला और स्त्रियों और बच्चों को गिरफ्तार कर लिया। एक्वीटन का पादरी प्रासपर अपनी एक कविता में लिखता है कि--'ईश्वर के मन्दिर जला डाले गए और मठ लूट लिए गए! यदि गाल (फ्रान्स) की भूमि पर से समुद्र की लहरें फिर जातीं, तो उनसे हमें इतना नुक़सान न होता!' ××× हूण जाति के लोगों नें सब चीजों का नाश कर डाला और जहां से निकले, मुल्क को वीरान बना दिया। ××× इतिहास लेखक इदेसियस लिखता है कि पांचवीं सदी में स्पेन का 'केवल नाम' बाक़ी रह गया था। पूर्व में और पश्चिम में, दोनों जगह बेशुमार खुशहाल नगर मिट गए और फिर कभी न उभर सके। अकेले हूण जाति ने पूर्व में सत्तर नगरों को बरबाद कर दिया ××× ब्रिटेन में लन्दीनियम (लन्दन), इबोरेगम (यार्क), कैमेलोडनम (कालचेस्टर), डोरोवरनम (कैण्टरबरी), वेण्टाइसेनोरम (नारविच), एक्वासालिस (बाथ) के खुशहाल छोटे-छोटे शहर, जिनकी रोमन लोगों ने बुनियाद रखी थी, खण्डहर होकर ढेर हो गए। ××× पोप ग्रेगरी प्रथम चिल्लाने लगा,'मालूम होता है कि दुनिया का अन्त होनेवाला है।××× पैनोनिया, नारिकम, रेटिया, हैलवेशिया (स्विटज़रलैण्ड,) गाल (फ्रान्स), बेलजियम, ब्रिटेन, स्पेन और उत्तर तथा मध्य इटली को खास तौर पर बड़े कष्ट भोगनें पड़े और बलकान प्रायद्वीप को शायद इनसे भी अधिक कष्ट भोगने पड़े। उस समय के सब इतिहास लेखक एक मत से बयान करते हैं कि पूर्व (यूनान इत्यादि) में और पश्चिम (इटली आदि) में दुनिया पर एक बराबर वीरानी छा रही थी और इतिहास लेखकों के अपनें चित्तों पर निर्जनता और वीरानी का असर रह जाता था। कोई-कोई यह भी मानने लगे थे कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थों में सृष्टि के जिस अन्त (क़यामत) की पेशीनगोई (भविष्यवाणी) की गई है, उसका समय आ गया है।" *

यह कहानी अधिकांश यूरोप पर ईसा की पांचवीं, छठी और सातवीं सदी के हमलों की है। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी के इसी तरह के हमलों की बाबत इतिहास-लेखक बुइ सोनेद लिखता है :—

"नवीं और दसवीं सदियों में नए हमलों नें पश्चिम यूरोप भर में बरबादी फैला दी। स्कैण्डिनेविया के डाकुओं ने, जिन्हें 'नार्थमैन' कहते थे, सन् 830 से 911 तक, क़रीब एक सदी तक, जर्मनों के-से दुष्ट पराक्रम जारी रखे, उन्होंनें जनता का संहार किया, लोगों को गुलाम बना लिया, नगरों को जला डाला और ईसाई जर्मनी, लो-कण्ट्रीज़ (हालैण्ड और बेलजियम) पश्चिमी फ्रान्स, स्काटलण्ड, आयरलैण्ड और इंगलिस्तान को लूट लिया या बरबाद कर दिया। पूर्वी यूरोप में हूण और अवार जातियों के भाईबन्द मगियार जाति नें डेन्यूब के मैदानों में और मध्य यूरोप, उत्तर इटली और पूर्वी फ्रान्स में बरबादी फैला दी। दक्षिण यूरोप में

**Life and Work in Medieval Europe* by P. Boissonade, Book, i, chapters i, ii.

बर्बर और अरब जाति के लुटेरों, सैरेसेन लोगों ने इटली के समुद्र तट और पास के टापुओं में, प्रावेन्स में और डोफ़ाइन (दक्षिण–पूर्वी फ्रान्स) में लूट-मार जारी रखी ।" *

लगभग एक हज़ार साल के इन हमलों के नतीजों को बयान करते हुए बुई-सोनेद अन्त में लिखता है :

"असभ्य जातियों के हमलों नें एक सच्ची आफ़त बरपा कर दी । दो सौ साल के अन्दर ही ईसाई रोमन साम्राज्य का वह व्यवस्थित भवन, जिसकी छाया में मजदूरों और कारीगरों नें उन्नति की थी और मालामाल हो गए थे, पश्चिमी यूरोप में नींव से लेकर शिखर तक उलट गया और पूर्वी यूरोप में भी उसकी बुनियादें बेहद खोखली हो गई । हर तरफ़ खण्डहर दिखाई देते थे, व्यवस्था की जगह अव्यवस्था और अराजकता का राज था और क़ानून की जगह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस, का दौर था, धन की उत्पत्ति हर रूप में रुक गई थी, जो खज़ानें पिछली नसलों ने जमाकर रखे थे, वे तितर-बितर हो गए थे और आर्थिक और सामाजिक उन्नति रुक गई थी ।"†

हमने यूरोपियन लेखकों ही के शब्दों में यूरोप के विविध देशों के ऊपर एशियाई जातियों के इन हमलों के नतीजों को थोड़े में बयान कर दिया है । इस बयान को पढ़कर आसानी से देखा जा सकता है कि भारत या यूरोप, दोनों में से किसकी सरहदें अधिक कमज़ोर रही हैं, या दोनों में से किसने बाहर के हमलों से, अधिक सफलता के साथ, अपनी सरहद की रक्षा की है । इसके बाद भारत और यूरोप, दोनों पर मुसलमानों के हमलों को बयान करना बाक़ी है ।

इस्लाम और भारत

भारत पर मुसलमानों के हमले

अब हम भारत पर मुसलमानों के हमलों की ओर आते हैं ।

हमसे कहा जाता है कि भारत पर मुसलमानों का हमला अन्तिम और सबसे अधिक नाशकारक हमला था, जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन का अनन्त काल के लिए नाश कर दिया और सारे देश को दो अलग-अलग विरोधी दलों में बांट दिया । इस देश पर मुसलमानों के हमले को देश की घोरतम आपत्ति बताया जाता है, मुसलमानों की इस देश पर हकूमत को देशवासियों की निर्बलता का सबूत बताया जाता है और इसी आधार पर यह साबित करने की कोशिश की जाती है कि अंगरेज़ों ने इस देश में आकर उस घोरतम आपत्ति के बुरे नतीजों से भारतवासियों की रक्षा की ।

निस्सन्देह, कोई भी विदेशी हमला किसी भी देश के लिए बड़ाई की बात नहीं मानी जा सकती । फिर भी, जिस तरह इससे पहले के हमलों की बाबत, उसी तरह इस हमले की बाबत भी हमें यह देखना होगा कि उन दिनों मुसलमानों का हमला केवल भारत पर हुआ या संसार के अन्य देशों को भी इस हमले का

---

*Ibid, chapter x, p. 115.

†*Life and Work in Medieval Europe* by P. Boissonade, conclusion, p. 233.

सामना करना पड़ा। हमें यह भी देखना होगा कि इस तरह का हमला पहले भारत पर हुआ या किसी दूसरे देश पर, दूसरे देशों के मुकाबले में भारत ने इस हमले का कहां तक सफलता के साथ सामना किया और मुसलमानों के हमले के आखिरी नतीजे भारत के लिए कहां तक हितकर या अहितकर रहे।

मोहम्मद साहब

मोहम्मद साहब का जन्म सन् 569 ईसवी में हुआ था। सन् 609 ईसवी में उन्होंने अपने नए मज़हब का प्रचार शुरू किया, जिसका मुख्य रूप था अरब के सैकड़ों क़बीलों और घरानों के अलग-अलग हज़ारों देवी-देवताओं और उनकी मूर्त्तियों का अन्त कर उन सबकी जगह मनुष्य मात्र को एक निराकार अल्लाह की पूजा सिखाना, अलग-अलग कबीलों को तोड़ कर अरब-निवासियों को एक संयुक्त क़ौम बनाना, अरबों की असंख्य धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों और हानिकर रूढ़ियों को मिटा कर उनके सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को पवित्र और उच्च करना और इन सबसे बढ़कर मनुष्य मात्र की समता और भ्रातृत्व का उपदेश देना। इस्लाम के गौण या विवादास्पद पहलुओं से यहां हमारा सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में, मोहम्मद साहब के उपदेश धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक, तीनों क्षेत्रों में एक-सा-प्रभाव रखते थे। इन उपदेशों ने अरबों के अन्दर एक नई रूह फूंक दी। वे धार्मिक और राजनैतिक दिग्विजय के लिए अपने देश से निकल पड़े और मोहम्मद साहब की मृत्यु के करीब सौ साल के अन्दर ही उन्होंने सभ्य संसार के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

मुसलमानों की हकूमत

सन् 629 ईसवी में मक्का नगर ने मोहम्मद साहब की अधीनता स्वीकार की। सन् 629 से 631 तक, दो साल के अन्दर, तमाम अरब ने मोहम्मद साहब को अपना सरदार मान लिया। सन् 632 में मोहम्मद साहब की मृत्यु हुई। सन् 636 में इराक़ (मैसोपोटेमिया) और शाम (सीरिया) पर अरबों ने विजय प्राप्त की। सन् 637 में उन्होंने बैतुलमुक़द्दस (जेरूसेलम) पर कब्ज़ा किया। सन् 637 से 651 तक समस्त ईरान अरबों के शासन में आ गया। सन् 701 से 715 तक अरबों ने पूर्व में चीन की सरहद तक धावा किया और समस्त तातार और तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इसके साथ ही इस साहसी जाति की नज़र पश्चिम की ओर गई। सन् 638 से 641 तक समस्त मिस्र (ईजिप्ट) अरबों के शासन में आ गया। 647 से 709 तक कारथेज और बाक़ी सारे उत्तर अफ्रीका पर अरबों का साम्राज्य कायम हो गया। यूरोप का विशाल रोमन साम्राज्य भी इन लोगों के हमलों से न बच सका। यहां तक कि सन् 700 ईसवी से 713 ईसवी तक स्पेन अरबों की हकूमत में आ गया।

यह सब इस्लाम की पहली सदी की विजयों का इतिहास है। किन्तु इसके बाद भी अरबों और दूसरी मुसलमान क़ौमों की फ़तूहात (विजय-अभियान) जारी रहीं। धीरे-धीरे समस्त रूस, यूनान, बलकान, पोलैण्ड, दक्षिण इटली, सिसली, इत्यादि, यानी आधे यूरोप पर अरबों की हकूमत क़ायम हो गई और कई सौ साल तक रही।

सन् 636 ई० की एक घटना

भारत में सबसे पहले सन् 636 ईसवी में, खलीफ़ा उमर के ज़माने में, आज-कल के बम्बई टापू के पास थाना नामक स्थान पर पहली बार अरबों की कुछ जल-सेना दिखाई दी। यह सेना बहरायन (इराक़) के मुसलमान गवर्नर सकफ़ी की आज्ञा से भेजी गई थी। खलीफ़ा उमर की इसमें इजाज़त न ली गई थी। लिखा है कि जब खलीफ़ा उमर को इस बात का पता लगा, वह बहरायन के गवर्नर पर नाराज़ हुआ। जल-सेना बिना किसी तरह की लड़ाई आदि के वापस बुला ली गई और खलीफ़ा ने यह हुक्म दे दिया कि यदि फिर हिन्दोस्तान पर चढ़ाई की जाएगी, तो चढ़ाई करने वालों को कड़ी सज़ाएं दी जाएंगी।

इस छोटी-सी घटना से मालूम होता है कि उस समय के मुसलमान अरबों और भारतवासियों के बीच किस तरह के प्रेम और परस्पर आदर का सम्बन्ध क़ायम था। हम अरबों और भारतवासियों के इस शुरू के सम्बन्ध को आगे चल कर और अधिक विस्तार के साथ बयान करेंगे, किन्तु इससे पहले यहां पर हम इस देश पर मुसलमानों के पहले बाज़ाब्ता हमले, उसके कारणों और उसके नतीजों को बयान कर देना चाहते हैं।

भारत पर पहला हमला

ईसा की आठवीं सदी के शुरू में कुछ अरब सौदागरों की सिंहलद्वीप (लंका) में मृत्यु हुई। ये अरब सौदागर इराक़ के रहने वाले थे। सिंहलद्वीप के राजा ने इन अरबों की कुछ अनाथ लड़कियों को एक जहाज में बैठा कर इराक के मुसलमान गवर्नर हज्जाज के पास भेजा। मार्ग में कच्छ के कुछ डाकुओं नें, जिन्हें बावरिज कहते थे, जहाज पर हमला करके अरब लड़कियों को छीन लिया। हज्जाज ने काठियावाड़ के हिन्दू राजा दाहिर से लड़कियां तलब की। दाहिर हज्जाज की मांग पूरी न कर सका। इस पर हज्जाज ने बलूचिस्तान के रास्ते खुश्की से मोहम्मद बिन क़ासिम के नेतृत्व में एक सेना सन् 712 ईसवी के क़रीब भारत पर हमला करने के लिए भेजी।* यही भारत पर मुसलमानों का सबसे पहला हमला था। भारत की राजनैतिक हालत उस समय कुछ निर्बल थी, जिसका अधिक हाल हम आगे चल कर देंगे। मोहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध और मलतान की विजय प्राप्त करके उन पर अपनी हकूमत क़ायम कर ली।

सिन्ध पर मुसलिम हकूमत

इस हमले के सम्बन्ध में हमें चार बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(1) यह कि भारत पर मुसलमानों का पहला हमला उस समय हुआ, जब कि पूर्व में तातार तक और पश्चिम में स्पेन तक मुसलमानों की हकूमत क़ायम हो चुकी थी।

(2) यह कि इतिहास-लेखक विल्कस के अनुसार इराक़ का गवर्नर हज्जाज अपने देश में तेज़ मिज़ाज मशहूर था और इराक़ के अनेक मुसलमानों ने उसकी सख्तियों से भाग कर भारत के दक्षिण में कोंकण और कन्याकुमारी आदि स्थानों में आश्रय लिया था।

---

*Elliot's *History of India*, vol. i., p. 118.

4—220 M of I&B/80

सिन्ध-विजय के बाद मोहम्मद बिन कासिम ने हज्जाज से लिख कर पूछा कि यहां के लोगों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए। हज्जाज ने उत्तर दिया :

"जब कि उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया है और खलीफ़ा को टैक्स देना मंजूर कर लिया है, तो उनसे और कुछ भी जायज़ नहीं है। हमने उन्हें अपनी हिफ़ाजत में ले लिया है और हम किसी तरह भी उनकी जान या माल पर हाथ नहीं उठा सकते। उन्हें अपने देवताओं की पूजा करने की इजाजत दी जाती है। हरगिज़ किसी शख्स को भी न अपने धर्म का पालन करने से मना करना चाहिए और न रोकना चाहिए। अपने घरों में वे जिस तरह चाहें, रहें।"*

(3) इतिहास से साफ़ पता चलता है कि मोहम्मद बिन क़ासिम सिन्ध के अन्दर अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ एक समान निष्पक्ष व्यवहार करता था।

डाक्टर वेनी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहांगीर का इतिहास' में लिखा है कि "8-वीं सदी में मोहम्मद बिन क़ासिम की सिन्ध पर हकूमत नरमी और धार्मिक उदारता की एक जीती-जागती मिसाल थी।"†

(4) इसके बाद महमूद गज़नवी के समय तक, यानी तीन सौ साल तक, फिर न कोई और हमला मुसलमानों का भारत पर हुआ और न सिन्ध या मुलतान से आगे उनका राज बढ़ा।

प्राचीन अरब और भारत का सम्बन्ध

अब हम उस समय के अरबों और भारतवासियों के आपसी सम्बन्ध को थोड़े विस्तार के साथ बयान कर देना चाहते हैं। अरबों और भारतवासियों का सम्बन्ध अरबों के मुसलमान होने से बहुत पहले से, यानी हज़रत मोहम्मद के जन्म से कम-से-कम पांच सौ साल पहले से चला आता था। हज़रत ईसा के जन्म के समय से ही सैंकड़ों, बल्कि हजारों अरब सौदागर भारत के पश्चिमी और पूर्वी बन्दरगाहों पर आकर उतरते थे। खास कर पश्चिम में चाल, कल्याण, सुपारा और मलाबार तट पर अरबों की अनेक बड़ी-बड़ी बस्तियों का उस समय के इतिहास में ज़िक्र आता है। हजरत ईसा के जन्म से पहले भी लंका और दक्षिण भारत में अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियां मौजूद थीं। ईरान, अरब, अफ्रीका और यूरोप के अनेक देशों के साथ भारत का उस समय जितना व्यापार था, अधिकतर अरब और ईरानी सौदागरों ही के हाथों में था। रोमन इतिहास-लेखक लिखते हैं कि रोम और यूनान के जो जहाज़ उन दिनों भारत आते-जाते, उनके भी नाविक अधिकतर अरब ही होते थे। भारत और चीन के बीच की तिजारत का भी एक खासा हिस्सा अरबों ही के हाथों में था, जिसके सबब भारत के पूर्वी तट से भी ये लोग पूरी तरह परिचित थे, और वहां भी स्थान-स्थान पर इनकी अनेक बस्तियां आबाद थीं।

**The History of Medieval India* by Ishwari Prasad, pp. 52, 53.

†"Mohammad Bin Qasim's administration of Sindh in the 8th century was a shining example of moderation and tolerance,"—*History of Jehangir* by Dr. Beniprasad, p. 89.

उस समय अरबों का मजहब एक प्राचीन ढंग का सीधा-सा मजहब था। वे अपने अलग-अलग क़बीलों के अलग-अलग देवी-देवताओं को मानते थे और उनकी मूर्तियों की पूजा करते थे। उस समय के अनेक सफ़रनामों से साबित है कि ये अरब अत्यन्त सरल स्वभाव और उदारचित्त होते थे, भारतवासियों से उनका मेल-जोल और प्रेम खूब बढ़ा हुआ था और भारत में उनकी बस्तियां खूब खुशहाल थीं।

इसके बाद मोहम्मद साहब के जन्म और इस्लाम के प्रचार का समय आया। अरबों, और ख़ास कर अरब व्यापारियों का भारत आना-जाना पहले की तरह जारी रहा। फ़रक़ केवल यह हो गया कि पुराने मूर्तिपूजक अरबों की जगह अब निराकार के उपासक, नए मुसलमान अरब भारत आने लगे, या वही अरब अब मुसलमान हो गए। उनके साथ-साथ अब एक नए मजहब और इस्लाम के नए विचारों और नए आदर्शों ने भी भारत में प्रवेश किया। उस समय के अरब मुसलमानों और उनके साथ इस्लाम के इस तरह भारत में प्रवेश करने का किसी फ़ौजी हमले से कोई सम्बन्ध न था।

आठवीं सदी का भारत

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले उस समय के भारत की हालत का संक्षेप में बयान कर देना भी आवश्यक है। ईसा की सातवीं सदी के मध्य में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हुआ। उत्तर भारत टुकड़े-टुकड़े होकर अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बंट गया। राजपूतों ने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्व में और मध्य भारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें क़ायम कर लीं। अनेक नई जातियां अपने को राजपूत कहने लगीं। यहां तक कि मुसलमानों के आने से ठीक पहले पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक क़रीब-क़रीब सारा देश अलग-अलग राजपूत सरदारों के शासन में आ गया। किन्तु कोई प्रधान केन्द्रीय शक्ति इन सब छोटी-बड़ी रियासतों को एक सूत्र में बांधनेवाली न थी और आए दिन इन तमाम रियासतों के बीच अपना-अपना राज बढ़ाने के लिए एक-दूसरे से संग्राम होते रहते थे। यानी, एक प्रधान और प्रबल भारतीय साम्राज्य की जगह एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी और एक-दूसरे से स्वतन्त्र अनेक छोटे-बड़े राजा भारत पर शासन करते थे और देश की राजनैतिक या राष्ट्रीय एकता स्वप्नमात्र थी। पुराने साम्राज्यों के केन्द्र—मगध, पाटलिपुत्र, गया, इत्यादि—खण्डहर दिखाई दे रहे थे। वैशाली, कुशीनगर, केड़िया, रामग्राम, कपिलवस्तु और श्रावस्ती, जिनके नाम बौद्ध इतिहास में मशहूर हो चुके थे, अब बरबाद दिखाई देते थे और देश के राजनैतिक और आर्थिक जीवन के दूसरे केन्द्रों ने उनकी जगह ले ली थी।

धर्म के क्षेत्र में भी भारत का वह समय अवनति का समय था। बुद्ध की मृत्यु से ढाई सौ साल के अन्दर, यानी हज़रत ईसा के जन्म से क़रीब ढाई सौ साल पहले, उस समय से बिगड़े हुए हिन्दू धर्म को भारत से निकाल कर बौद्ध धर्म उसका स्थान ले चुका था। किन्तु जिन ब्राह्मण पुरोहितों और उच्च जातियों के विशेषाधिकारों पर बौद्ध धर्म ने हमला किया था, उनकी ओर से विद्रोह की आग बराबर सुलगती रही। धीरे-धीरे मूर्तिपूजा और प्राचीन हिन्दू कर्मकाण्ड ने बौद्ध धर्म में भी प्रवेश करना शुरू किया। उत्तर भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव रखी गई, जिनमें बुद्ध भगवान के अलावा अनेक तत्वों की, और खास

कर 'अमिताभ' की, पूजा होने लगी। बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्मकाण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढंग पर ढल गया। शुरू के बौद्ध मत ने जो स्थान संस्कृत से छीन कर जनता की भाषाओं—प्राकृत या पाली—को दिया था, वह सब महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्रदान किया गया। ज्ञान मार्ग की जगह बहुत दरजे तक कर्मकाण्ड और पूजा-भक्ति ने ले ली।

नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे आजकल के वैष्णव मत, शैव मत और तान्त्रिक सम्प्रदाय ने मिल कर बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर दिया और प्राचीन हिन्दू धर्म को फिर से उसकी जगह क़ायम कर दिया। जिस जातिभेद को बौद्ध धर्म ने नष्ट कर, स्त्रियों और शूद्रों को भी मनुष्यत्व के अधिकार प्रदान करना चाहा था, वह जातिभेद फिर अपने पूरे जोर के साथ क़ायम हो गया। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और दूसरे वर्णों, खास कर शूद्रों की हीनता ने फिर से भारतीय समाज को जकड़ कर उसके विकास को असम्भव कर दिया। पण्डों और पुरोहितों के विशषाधिकार फिर से क़ायम हो गए और अधिकांश आम जनता के लिए जात-पात और ऊंच-नीच के नियमों का पालन करने, असंख्य देवी-देवताओं, भयंकर 'रुद्र' और प्रचण्ड 'शक्ति' की मूर्त्तियों को पूजने, जप-तप, यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, ब्राह्मणों को दान, तीर्थयात्रा, मन्तर-जन्तर और जटिल कर्मकाण्ड के सिवाय और कोई धर्म न रह गया। ज्ञान का सन्तोष केवल ऊपर के इने-गिने लोगों के लिए था, बाक़ी जनसमुदाय के लिए कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास। उस समय के भारतीय साहित्य से, चीनी और अरब यात्रियों के सफ़रनामों से, सिक्कों और शिलालेखों से, सबसे इसी शोचनीय हालत का पता चलता है।

चीनी यात्री फ़ाह्यान के समय में, यानी पांचवीं सदी में, उत्तर-पश्चिमी भारत के अन्दर काबुल से मथुरा तक बौद्ध मत के हीनयान सम्प्रदाय का प्रचार अभी बाक़ी था, पर बाक़ी भारत से बौद्ध मत मिटता जा रहा था। दो सौ साल बाद जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्सांग भारत पहुंचा, तब उसने देखा कि उत्तर में हीन-यान की जगह महायान ने ले ली थी। ह्यूनत्सांग के बयान से मालूम होता है कि ख़ास कर शिव की पूजा उस समय समस्त भारत में जोरों के साथ फैलती जा रही थी। अयोध्या के पास उसे इस तरह के लोग भी मिले, जो हर साल दुर्गा की मूर्त्ति के सामने आदमी की बलि चढ़ाया करते थे। बंगाल के शैव राजा शशांक ने अनेक बौद्धमन्दिरों को तोड़ कर उनमें बुद्ध की मूर्त्तियों की जगह शिव की मूर्त्ति क़ायम करना और बौद्ध धर्म के माननेवालों को तकलीफें दे-देकर अपने राज से निकालना शुरू कर दिया था। कई स्थानों पर नरमुण्डों की मालाएं गलों में डाले कापालिकों से ह्यूनत्सांग की भेंट हुई। ह्यूनत्सांग लिखता है कि अफ़गानिस्तान, ईरान और मध्य एशिया तक उस समय बौद्ध मत के माननेवाले और शैव मत के माननेवाले, दोनों पाए जाते थे। इसके बाद के अरब यात्रियों, मोहम्मद इब्न इसहाक़ अन्नदीम, अल्-शहरस्तानी आदि की पुस्तकों से भी इन्हीं बातों का समर्थन होता है और पता चलता है कि मुसलमानों के आने के समय तक भारत से बौद्ध मत का क़रीब-क़रीब लोप हो चुका था और शैव आदि मतों ने उसकी जगह ले ली थी। अल्बेरूनी लिखता है कि शैव और वैष्णव

सम्प्रदायों के अलावा, शक्ति, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश, यम और कुबेर की मूर्त्ति की पूजा भी भारत में फिर से शुरू हो गई थी और इन सबके अलग-अलग सम्प्रदाय थे। बौद्ध और जैन मतों ने मांस और मदिरा का उपयोग एक बार बिल्कुल बन्द कर दिया था, किन्तु कापालिकों और शाक्तों के जरिए इन दोनों चीजों का उपयोग स्थान-स्थान पर फिर से धर्म का अंग बन गया था। सारांश यह कि राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक, तीनों दृष्टियों से भारत उस समय अन्धकार और अवनति की हालत में था—एक-दूसरे की दुश्मन असंख्य छोटी-बड़ी रियासतें, सैकड़ों मत-मतान्तर और बेशुमार सदाचार-विरुद्ध कुरीतियां और अन्धविश्वास!

भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश

ठीक उस समय, जब कि इस देश की यह हालत थी, इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया। हम लिख चुके हैं कि इस्लाम के जन्म से भी पहले अरबों की इस देश में, खास कर दक्षिण भारत में, अनेक बस्तियां थीं। उस समय के समस्त इतिहास से यह भी साबित है कि अरबों और भारतवासियों में बड़ा प्रेम था और अरब सौदागर इस देश के अन्दर आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। मुसलमानों के सैनिक हमले से बहुत पहले, ईसा की सातवीं सदी से ही, अरब सौदागरों के साथ-साथ नए इस्लाम धर्म ने भी दक्षिण की ओर से भारत के अन्दर प्रवेश किया। इतिहास से पता चलता है कि इस नए धर्म का भी भारत-वासियों ने उसी प्रेम के साथ स्वागत किया, जिस प्रेम के साथ सैकड़ों साल पहले से अरब सौदागरों का स्वागत करते आए थे। एक बार भारतवर्ष की सीमाओं के अन्दर प्रवेश करते ही इस्लाम भी भारत के असंख्य सम्प्रदायों में से एक गिना जाने लगा। इतिहास-लेखक रालैण्डसन लिखता है कि सातवीं सदी के अन्त में अरब मुसलमान मलाबार तट पर आकर बसने लगे थे। इतिहास-लेखक स्टराक लिखता है कि "सातवीं सदी से लेकर ईरानी और अरब सौदागर भारत के पश्चिमी तट पर, अलग-अलग बन्दरगाहों में, बड़ी-बड़ी तादाद में आकर बसने लगे। ये लोग इसी देश की स्त्रियों के साथ शादियां कर लेते थे। इन की बस्तियां मलाबार में खास तौर पर बड़ी-बड़ी और महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि मालूम होता है, वहां बहुत शुरू जमाने से राज की यह एक नीति चली आ रही थी कि बन्दरगाहों में विदेशी व्यापारियों को हर तरह की सुविधाएं दी जाएं।"*

धीरे-धीरे दक्षिण में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता गया। राज की ओर से उन्हें तिजारत करने और ज़मीन खरीदने के साथ-साथ अपने नए धर्म का प्रचार करने की भी पूरी सुविधाएं दी जाने लगीं। नवीं सदी तक ये लोग समस्त पश्चिमी तट पर फैल गए। हम लिख चुके हैं कि भारत में उस समय बौद्ध मत और जैन मत का हिन्दू मत और उसके नए सम्प्रदायों के साथ संघर्ष जारी था। इन अनेक नए हिन्दू सम्प्रदायों के मुकाबले में, जिनका हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं और जिनका ज़ोर उस समय बढ़ता जा रहा था, इस्लाम के सीधे-सादे और सरल सिद्धान्तों की ओर और उसके अन्दर मनुष्यमात्र की समता के विचार की ओर, लोगों का ध्यान ज़ोरों के साथ आकर्षित हुआ। इस्लाम के विरुद्ध पक्षपात या उसके साथ द्वेष का कोई सबब उस समय तक मौजूद न था। नवीं सदी के शुरू में ही मलाबार के हिन्दू राजा चेरामन पेरूमल ने, जिसकी राजधानी कोडंगलूर थी, इस्लाम मत स्वीकार कर लिया।†राजा का नाम अब्दुररहमान सानी रखा

*Sturrock : *S. Kanara, Madras District Manuals,* p. 180.
†Logan : *Malabar,* vol. i, p. 245.

गया। इस्लाम मत स्वीकार करने के बाद अब्दुररहमान अरब गया। चार साल बाद अरब में ही उसकी मृत्यु हुई। अरब से उसने कई मुसलमान विद्वानों और प्रचारकों को भारत भेजा, उनकी मारफत अपने उत्तराधिकारियों को शासन-प्रबन्ध के लिए हिदायतें दीं और यह भी हिदायत दी कि देश के अन्दर नए मत के प्रचार में अरब विद्वानों को पूरी सहायता दी जाए। राजा चेरामन पेरूमल के उत्तराधिकारियों ने बड़े हर्ष के साथ अरब विद्वानों का स्वागत किया और उनके आदेशानुसार मलाबार तट पर निराकार ईश्वर की उपासना के लिए 11 नई मसजिदें बनवाईं।

कालीकट के राजा का मुसलमान होना

कालीकट के समूरी राजा और तिरुवांकुर के महाराजा भी उसी चेरामन पेरूमल के वंशज और उत्तराधिकारी हैं। इन दोनों स्थानों पर उस 1,100 साल पहले की घटना की याद में कम-से-कम सन् 1912 ई० तक यह रिवाज चला आता था कि जिस समय नया समूरी राजा गद्दी पर बैठता था, तो मुसलमानों की तरह उसका मुण्डन किया जाता था,* उसे मुसलमानों के-से कपड़े पहनाए जाते थे, एक मोपला उसके सिर पर ताज रखता था, राजतिलक के बाद से उसे जातिच्युत की तरह समझा जाता था, अपने घर के लोगों के साथ भी फिर वह सहभोज न कर सकता था और कोई नय्यर उसे स्पर्श नहीं करता था। समझा यह जाता है कि हर समूरी चेरामन पेरूमल के अरब से लौटने के इन्तजार में केवल उसके एक प्रतिनिधि की हैसियत से उसकी जगह तख्त पर बैठता है। तिरुवांकुर के महाराजाओं को गद्दी पर बैठते समय जब खड्ग हाथ में दिया जाता है, तब आज पर्यन्त उन्हें यह कहना पड़ता है—"मैं इस खड्ग को उस समय तक रखूंगा, जब तक कि मेरा वह चचा, जो मक्का गया है, लौट न आए।"†

समूरी ने अपने राज में मुसलमानों को हर तरह की सहायता दी। कोई नय्यर किसी नम्बूदरी ब्राह्मण के बराबर में न बैठ सकता था, किन्तु कोई भी मुसलमान बैठ सकता था। मुसलमानों का धर्मगुरु थंगल समूरी के साथ-साथ पालकी में निकलता था। अरबों और दूसरे मुसलमानों की मदद से समूरी ने अपने राज की सीमाओं को बढ़ाया, जिससे राज की खुशहाली में बहुत बड़ी उन्नति हुई। आजकल का कालीकट का नगर उस समय के एक मुसलमान क़ाजी ही का बसाया हुआ है। मलाबार के राजाओं की जल-सेना के सेनापति अधिकतर मुसलमान होते थे, जो 'अलीराजा' कहलाते थे। इस्लाम धर्म के प्रचार में भी समूरी ने खूब सहायता दी। यहां तक कि उसने आज्ञा दे दी कि हर हिन्दू मल्लाह के घर के कम-से-कम एक लड़के को बचपन से मुसलमानों की तरह शिक्षा दी जाए। यहीं से आजकल के मोपलों की उत्पत्ति हुई। मोपला शब्द का अर्थ महापिल्ला, यानी ज्येष्ठ पुत्र है।‡

मुसलमान फ़क़ीर और प्रचारक

इसी बीच समय-समय पर बेशुमार मुसलमान फ़क़ीर और विद्वान, कुछ समुद्र के रास्ते और कुछ अफ़गानिस्तान के रास्ते, अरब और ईरान से आ-आकर भारत के अनेक भागों में बसते गए। हर जगह उनका खूब आदर-सत्कार होता था।

---

*Quadir Husain Khan; South Indian Mussalmans, *Madras Christian College Magazine* (1912-13), p. 241.

†Logan : *Malabar*, vol. i, p. 231.

‡Innes : *Malabar and Anjengo District Gazetteer*, p. 190.

भारत के पूर्वी तट पर भी मुसलमानों की बस्तियां और उनका महत्व बढ़ता चला गया। इन बस्तियों की तफ़सील में जाने की आवश्यकता नहीं है। एक मुसलमान फ़क़ीर नजद वली के प्रभाव से ग्यारहवीं सदी में मदुरा और तिरुच्चिरापल्ली के इलाक़ों में अनेक लोगों ने इस्लाम मत स्वीकार किया। यह नजद वली तुर्की का एक शाहज़ादा था, जो फ़क़ीर हो गया था और अरब, ईरान और उत्तर भारत से होता हुआ तिरुच्चिरापल्ली पहुंचा था, जिसे उस समय त्रिसूर कहते थे। बारहवीं सदी में एक दूसरे फ़क़ीर, सय्यद इब्राहीम शहीद के असर से भी अनेक लोगों ने इस्लाम मत स्वीकार किया। इसी तरह, फ़ख़रुद्दीन इत्यादि और बहुत-से इस्लाम धर्म के प्रचारकों के नाम उस समय के इतिहास में मिलते हैं। बाबा फ़ख़रुद्दीन के प्रभाव से पेनुकोण्डा के हिन्दू राजा ने इस्लाम मत स्वीकार किया। यह भी साफ़ पता चलता है कि इन अरबों और दूसरे मुसलमानों की कोशिशों से भारत, और खास कर दक्षिण भारत की तिजारत और खुशहाली में बहुत तरक्की हुई। दक्षिण के हिन्दू राजाओं की ओर से चीन-जैसे दूर-दूर के देशों में मुसलमान एलची और राजदूत भेजे जाते थे। अनेक हिन्दू दरबारों में मुसलमान मन्त्री और प्रधान मन्त्री थे। अनेक प्रान्तों के शासक मुसलमान नियुक्त किए जाते थे। हिन्दू राजाओं के अधीन बड़ी-बड़ी मुसलमान सेनाएं थीं।

इसी तरह, गुजरात के वल्लभी राजा बलहार ने अपने राज्य के अन्दर मुसलमानों का बड़े हर्ष और आदर के साथ स्वागत किया। काठियावाड़, कोंकण और मध्य भारत के अन्य हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान फ़क़ीरों और प्रचारकों का बड़े प्रेम के साथ स्वागत किया और उन्हें अपनी-अपनी रियासत में इस्लाम के प्रचार के लिए हर तरह की सहायता दी।

ग्यारहवीं सदी के क़रीब खम्भात में कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों की एक मसजिद पर हमला करके उसे गिरा दिया। राजा सिद्धराज ने तहक़ीकात करके अपराधियों को दण्ड दिया और मुसलमानों को अपने धन से एक नई मसजिद बनवा दी। सोमनाथ के हिन्दू राजा के अधीन मुसलमान सेना और अनेक मुसलमान अफ़सर थे। ग्यारहवीं सदी में गुजराती बोहरों के शिया धर्माचार्य 'मुल्ला जी' ने यमन (अरब) से आकर गुजरात में रहना शुरू किया। उसी समय के निकट नुरुद्दीन ने गुजरात के कुनबियों, खेरवाओं और काडियों को इस्लाम धर्म में शामिल किया। बेशुमार मुसलमान सन्त और फ़क़ीर आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक बराबर, उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक, भारत के विविध भागों में आकर बसते रहे, जिनके उच्च चरित्र और इस्लाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों के सबब उस धार्मिक अव्यवस्था के युग में स्थान-स्थान पर हज़ारों और लाखों भारतवासियों ने इस्लाम धर्म स्वीकार करना शुरू कर दिया। अभी तक यदि उत्तर भारत के उन ग्रामों में घूमा जाए, जिनकी अधिकांश आबादी मुसलमान है, तो दर्याफ्त करने पर मालूम होगा कि वहां के लोगों के इस्लाम मत स्वीकार करने का सबब किसी-न-किसी समय किसी-न-किसी त्यागी और संयमी फ़क़ीर का उनके बीच सहवास था। हमें फिर यह याद रखना चाहिए कि यह कहानी अधिकतर उस ज़माने की है, जब कि अधिकांश भारत पर मुसलमानों की हुकूमत या तो क़ायम ही न हुई थी या कम-से-कम अभी जमी न थी।

भारत में इस्लाम का प्रचार

इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि मुसलमानों की राजसत्ता का इस देश के अन्दर इस्लाम के फैलने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निस्सन्देह, हर युग और हर देश में प्रजा पर राजा या शासकों के धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है। यदि सम्राट् अशोक न होता, तो बौद्ध धर्म का भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इस तरह फैल सकना शायद इतना आसान न होता। इसी तरह, यदि सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (दूसरा) वैष्णव मत के पोषक और सम्राट् यशोधर्मदेव (विक्रमादित्य) शैव मत के पोषक न होते, तो हिन्दू मत का बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर सकना इतना सरल न होता। हम यह भी नहीं कहते कि भारतवासियों से इस्लाम मत के स्वीकार कराने में कहीं पर किसी तरह की भी ज़बरदस्ती का उपयोग नहीं किया गया। दुर्भाग्यवश धार्मिक मामलों में थोड़ी-बहुत ज़बरदस्ती संसार के हर देश के इतिहास में पाई जाती है। हिन्दू मतों के साथ बौद्ध मत और जैन मत के संघर्ष के दिनों में भी इस तरह की ज़बर-दस्तियों की अनेक मिसालें भरी पड़ी हैं। किन्तु इतिहास से बिल्कुल साफ पता चलता है कि इस देश पर मुसलमानों के फ़ौजी हमलों से बहुत पहले इस्लाम मत इस देश में प्रवेश कर चुका था; इस्लाम इस देश में महमूद ग़ज़नबी के हमले से भी पहले काफ़ी फैल चुका था और इस्लाम के भारत में फैलने का खास सबब उस समय के इस्लाम के प्रचारकों का त्याग, उनकी सच्चरित्रता और इस्लाम मत के वे स्पष्ट और सीधे-सादे सिद्धान्त थे, जो कम-से-कम उस समय के भारत के अनेक हिन्दू सम्प्रदायों के मुकाबले जनसामान्य के लिए अधिक सरल, हितकर और सुसाध्य थे। भारत के जिन लोगों ने उस समय इस्लाम मत स्वीकार किया, उनमें अधिकांश उन छोटी जातियों के लोग थे, जो उस समय की भारतीय वर्ण-व्यवस्था को अपने लिए अन्याय अनुभव करते थे, और भारतवासियों की किसी तादाद का इस्लाम मत स्वीकार करना ठीक वैसा ही था, जैसा उनका वैदिक मत को छोड़ कर बौद्ध मत स्वीकार करना या बौद्ध मत को छोड़ कर वैष्णव मत या शैव मत स्वीकार करना, या चीनियों या बर्मावालों का अपने-अपने मतों को छोड़कर भारतीय बौद्ध मत को स्वीकार करना।

भारतवासियों और भारतीय नरेशों का अरब सौदागरों के साथ सुन्दर व्यवहार, उनका अपने-अपने राज में इस्लाम मत को पूरी स्वतन्त्रता देना और उस शुरू ज़माने के भारतवर्ष में हिन्दुओं और मुसलमानों का परस्पर प्रेम-सम्बन्ध ही वह बात थी, जिसके सबब खलीफ़ा उमर ने अरब सेना को हिदायत दी थी कि भारत पर कभी सैनिक हमला न किया जाए और जिनके सबब से एशिया, अफ्रीक़ा और यूरोप में अरब साम्राज्य का पूरा विस्तार पा जाने के वर्षों बाद तक भी मुसलमानों की ओर से भारत पर हमला नहीं किया गया।

भारत की क़रीब-चौथाई आबादी के धीरे-धीरे इस्लाम मत स्वीकार करने में राजनैतिक दबाव या ज़बरदस्ती का हिस्सा कहां तक था, इसके सबूत में केवल हम दो-एक इतिहास-लेखकों की सम्मतियां यहां देते हैं। भारतीय मुसलमानों का जिक्र करते हुए इतिहास-लेखक आरनाल्ड लिखता है :

"इनमें अधिकांश ऐसे लोग हैं, जिन्होंने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इस्लाम-मत स्वीकार किया ।"*

एक दूसरा इतिहास-लेखक, टाउन्सेण्ड, लिखता है :

"इस मत के इस देश में फैलने का खास सबब ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं है ।"†

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक भारतीय मुसलमानों के विषय में लिखता है :

"इन तमाम मुसलमानों में से 90 फ़ीसदी में भारतीय रक्त है । वे इस देश के वैसे ही बच्चे है, जैसे हिन्दू । उनमें बहुत से पुराने हिन्दू अन्धविश्वास भी अभी तक मौजूद हैं । वे केवल इसलिए मुसलमान हैं कि उनके पूर्वजों ने अरब के उस महापुरुष (मोहम्मद) का मत स्वीकार किया था ।"‡

आगे चल कर यही विद्वान लिखता है कि भारत में मुसलमानों का राज कायम हो जाने के बाद भी प्रजा को जबरदस्ती मुसलमान बनाना अधिकांश नए मुसलमान शासकों के हित और उनकी रुचि, दोनों के विरुद्ध था । वह लिखता है :

"इस्लाम का प्रचारक बलप्रयोग न कर सकता था और × × × जिन हमला करनेवालों ने यहां पर विजय प्राप्त की और जो यहां बस गए, उन्होंने भी प्रायः कभी भी बलप्रयोग करना नहीं चाहा । इसकी वजह भी काफ़ी थी और वह वजह यह थी कि बलप्रयोग करने में उनका हित न था । वे अपना राज, बादशाहतें या साम्राज्य कायम करना चाहते थे, न कि अपनी ही टैक्स देनेवाली प्रजा के साथ घरेलू युद्ध छेड़ना या इस विशाल प्रायद्वीप की योद्धा जातियों की अदम्य शत्रुता को अपने विरुद्ध भड़का लेना ; ये जातियां हिन्दू थीं और हिन्दू रहीं ।"§

तेरहवीं सदी के अन्त से सोलहवीं सदी के प्रारम्भ तक, जब कि भारत में अपना साम्राज्य कायम करने के लिए मुसलमानों के प्रयत्न जारी थे, के बारे में सर अलफ्रेड लायल लिखता है :

---

*"By far the majority of them entered the pale of Islam of their own free will".—*The Preaching of Islam* by T. W. Arnold, 1913, p. 225.

†"Its spread as a faith is not due mainly to compulsion."—*Asia and Europe,* London, 1911, by M. Townsend, p. 44.

‡"Ninety percent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindoos, retaining many of the old pagan superstitions, and they are Mussalmans only because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian."—Ibid, p. 43.

§"The missionary of Islam could not use force and......as to the invaders who conquered and remained, they seldom or never wished to use it, for the sufficient reason that it was not their interest. They wanted to found principalities, or kingdoms or an empire, not to wage an internecine war with their own taxpaying subjects or to arouse against themselves the unconquerable hostility of the warrior races of the giganatic peninsula who were and who remained Hindoos,"—Ibid, p. 45.

"मुसलमान नरेश × × × आम तौर पर लड़ाई में इतने मशगूल रहते थे कि वे धर्मप्रचार की ओर अधिक ध्यान न दे सकते थे, या यह कि उन्हें लोगों को मुसलमान बनाने की अपेक्षा उनसे खिराज वसूल करने की अधिक चिन्ता रहती थी ।"*

निस्सन्देह कहीं-कहीं इस तरह की मिसालें भी मिलती हैं, जिनमें राजनैतिक या अन्य बातों से प्रेरित होकर भारत के किसी-किसी मुसलमान नरेश ने इस्लाम मत के प्रचार के हित में अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया, किन्तु इसके विपरीत केवल बाबर और अकबर ही नहीं, बल्कि अधिकांश और अनेक अन्य मुसलमान शासकों के लेख और उनकी आज्ञाएं इस विषय में उद्धृत की जा सकती हैं, जिनसे मालूम होता है कि वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक दृष्टि से देखते थे और राजशासन में किसी तरह का धार्मिक पक्षपात अपने लिए हितकर न समझते थे । इतिहास से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय मुसलमानों में से 90 नहीं, 99 फ़ीसदी के इस्लाम मत स्वीकार करने का सबब केवल उस समय के असंख्य मुसलमान फ़कीरों, पीरों और दरवेशों की सच्चरित्रता और इस्लाम की आन्तरिक सामाजिक और अन्य विशेषताएं थीं ।

जिज्ञासु अरब

अरबों के अन्दर नई धार्मिक लहरें

भारत पर अरब के इस नए मत का प्रभाव केवल उन लाखों या करोड़ों भारतवासियों तक ही सीमित न था, जिन्होंने इस नए मत को स्वीकार कर लिया । उस सामाजिक अराजकता के दिनों में, जिसका चित्र हम ऊपर खींच चुके हैं, शेष भारतवासियों के विचारों, उनके धर्म, उनके साहित्य, उनकी चित्रकारी, उनके विज्ञान, उनकी निर्माणकला, सारांश यह कि समस्त भारतीय सभ्यता पर इस्लाम के नए विचारों का गहरा और अमिट प्रभाव पड़ा । किन्तु इस प्रभाव को बयान करने से पहले यह आवश्यक है कि हम मोहम्मद साहब के बाद की अरबों के अन्दर की नई धार्मिक लहरों और उनकी सभ्यता के अन्य पहलुओं पर भी एक नज़र डाल लें ।

इस्लाम आरम्भ से ही एक निराकार ईश्वर का माननेवाला था । उसके सिद्धांत अत्यन्त सरल थे और पूजा विधि अत्यन्त सुसाध्य । फिर भी, मोहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद से ही इस्लाम के अन्दर नई शाखाएं फूटने लगीं । जिस तरह अरब नीतिज्ञों ने पूरब और पश्चिम में अपने साम्राज्य को बढ़ाना शुरू किया, उसी तरह अरब विद्वानों और जिज्ञासुओं ने संसार के चारों कोनों से दर्शन, विज्ञान और अनेक विद्याओं की खोज कर अपने ज्ञान के भण्डार को बढ़ाना शुरू किया ।

यूनानी, बौद्ध, ईसाई और हिन्दू ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद

ईसाई धर्म-ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए । सुक़रात, अफ़लातून और अरस्तू जैसों के गूढ़ दर्शनशास्त्रों और विज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष इत्यादि पर यूनानी ग्रन्थों के अरबी

* "......generally too busily engaged in fighting to pay much regard to the interests of religion, or else thought more of the exaction of tribute than of the work of conversion."—*Asiatic Studies* by Sir Alfred Lyall, London, 1882, p. 288.

में अनुवाद किए गए। भारत के साथ अरबों का घनिष्ठ सम्बन्ध पहले से था ही। भारतीय माल के साथ-साथ भारतीय संस्कृति और भारतीय विद्यालयों का लेन-देन भी शीघ्र ही शुरू हो गया। शुरू के खलीफ़ाओं के दिनों में अनेक हिन्दू बसरा में ऊंचे-ऊंचे पदों पर नियुक्त थे।* शाम, काशगर आदि में हिन्दुओं की अनेक बस्तियां थीं। खुरासान, अफ़गानिस्तान, सीस्तान और बलूचिस्तान इस्लाम मत स्वीकार करने से पहले या तो बौद्ध थे या हिन्दू। बलख़ में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसके बौद्ध मठाधीश अब्बासी खलीफ़ाओं के वज़ीर हुआ करते थे।† बौद्ध धर्म की सब मुख्य-मुख्य पुस्तकों के अरबी में अनुवाद किए गए। 'किताबुल बुद' और 'बिल बहर वा बुदसिफ़' उन्हीं दिनों की लिखी हुई, अरबी भाषा में बौद्ध धर्म की प्रामाणिक पुस्तकें हैं। इसी तरह सुश्रुत, चरक और चाणक्य रचित तथा पंचतन्त्र और हितोपदेश—जैसे अनगिनत संस्कृत ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए, विशेष कर महात्मा बुद्ध के जीवन और उनके सिद्धांतों का अरब के मुसलमानों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे जिज्ञासु अरबों में तरह-तरह के स्वतन्त्र विचार, नए-नए दार्शनिक और नए-नए सम्प्रदाय पैदा होने शुरू हुए। इसी परिस्थिति के अन्दर इस्लाम में अद्वैतवाद और सूफी विचारों का जन्म हुआ।

इस्लाम में अद्वैतवाद

उन्हीं दिनों शिया मुसलमानों के 'गुलात' सम्प्रदाय के आचार्यों ने अवतारवाद (हुलूल, तशबीह), आवागमन (तनासुखी) आदि को अपने सिद्धांतों में स्थान दिया और यह प्रतिपादन किया कि मनुष्य की आत्मा भी बढ़ते-बढ़ते खुदा के रुतबे तक पहुंच सकती है। 'अली इलाही' सम्प्रदाय के लोगों ने एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह और तलाक की प्रथा, दोनों को नाजायज करार दिया। मसजिद में जाने की और शारीरिक 'शरई' पवित्रता को भी उन्होंने अनावश्यक बताया। अनेक सम्प्रदायों ने क़ुरान के जाहिरा अर्थों को न मान कर उसे अलंकार के रूप में मानना शुरू किया।‡ अव्यक्त निर्गुण ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इस तरह के अनेक सम्प्रदाय कायम हुए, जिनमें लोगों को विशेष दीक्षा देकर भरती किया जाता था। इनमें से कोई-कोई सम्प्रदाय यह मानता था कि दीक्षित मनुष्य अभ्यास करते-करते नबी और स्वयं खुदा के रुतबे तक पहुंच सकता है। गुरु (पीर) को ईश्वर और कहीं-कहीं ईश्वर से भी बढ़ कर रुतबा दिया जाने लगा। मोतजली सम्प्रदाय के लोगों ने इस बात का खुलेआम प्रतिपादन किया कि क़ुरान सदा के लिए निर्भ्रांत ईश्वर-वाक्य नहीं है, बल्कि मनुष्य जाति की उन्नति के साथ हर मनुष्य की आत्मा के अन्दर बराबर समय-समय पर इलहाम होता रहता है। अलग़िजाली (1057-1152) ने क़ुरान, शरीयत और मामूली मुस्लिम कर्मकाण्ड से असंतुष्ट होकर संसार के पृथक् तप (रियाज़त), अभ्यास (शग़ल) और ध्यान (जिक्र) शुरू किया और अपनी आत्मा के अन्दर ही शांति प्राप्त की। इस तरह से आजाद-ख़याल सूफ़ियों के अनेक मठ (ख़ानक़ाहें) कायम हुए, जिनमें अद्वैत (वहदतुलवजूद) का उपदेश दिया जाता था, संयम (नफसकुशी) पर ज़ोर दिया जाता था और भक्ति (इश्क़) और योग (शग़ल) को मुक्ति का एक मात्र मार्ग बताया जाता था। कवियों और वैज्ञानिकों में अनेक तरह के अविश्वासी पैदा होने

*Jean Perier: *Vie d'al Hadjdjadg Ibn Yusuf*, pp. 249—52.

†Nicholson : *A Literary History of the Arabs*, p. 259.

‡Frielhander: *Heterodoxies of Shiaites* J.A.O.S. Nos. 23 and 29.

लगे, जो मामूली अर्थों में नबी और कुरान से इनकार करते थे, दोजख़ और बहिश्त और रोजे और नमाज का मजाक उड़ाते थे और सगुण ईश्वर के अस्तित्व को तर्क-विरुद्ध बतलाते थे, यहां तक कि ख़लीफ़ा यजीद (मृत्यु सन् 744) को भी इन्हीं नास्तिकों में गिना जाने लगा। प्रसिद्ध विद्वान महात्मा अबुल अला अलमआरी (मृत्यु सन् 1057) के विचारों पर बुद्ध के विचारों की छाप साफ दिखाई देती है। अबुल अला आत्मा के आवागमन में विश्वास करता था, कड़ा निरामिषभोजी था, यहां तक कि दूध और शहद या चमड़े के उपयोग को भी पाप मानता था; प्राणिमात्र के साथ दया का उपदेश देता था; खाने और कपड़े में अत्यन्त परहेजगार था और ब्रह्मचर्य को आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक बताता था; मसजिद, नमाज, रोजे और दिखावटी मजहब का वह बड़ा विरोधी था।* अपने एक पद में वह लिखता है :

> **"ला इलाह इल्लल्लाह ! सच है, किन्तु जो मनुष्य अंधेरे में भी उस स्वर्ग को खोजता है, जो स्वर्ग मेरे अन्दर और तुम्हारे अन्दर मौजूद है, उसकी अपनी आत्मा के सिवाय कोई दूसरा रसूल भी नहीं है।"**

उमरखय्याम के स्वतन्त्र विचार प्रसिद्ध हैं। रतजगे करना, लम्बे-लम्बे उपवास रखना और कई तरह के नियम और तप सूफ़ियों ने मोहम्मद साहब की जिन्दगी से सीखे, किन्तु सूफ़ियों के सिद्धांतों पर ईसाई मत, प्राचीन ईरान के जरथुस्त्री मत और भारतीय हिन्दू और बौद्ध मतों, इन सब की छाप भी साफ़ दिखाई देती थी। मोहम्मद साहब ने संसार से पृथक् रहने को मना किया था, किन्तु उनके अनुयायियों में आरम्भ से ही इस तरह के लोग पैदा हो गए थे, जिनका सिद्धान्त संसार से भागना (अलफ़िरारो मिनद्दुनिया) था। कट्टर मौलवियों और इन आज़ाद-ख़याल सूफियों में बराबर झगड़ा चला आता था। फिर भी, सैकड़ों साल तक हजारों और लाखों आदमी चारों ओर से आ-आकर इन सूफ़ियों की ख़ानक़ाहों में जमा होते थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस जमाने के मुसलमानों के जीवन और विचारों पर इनका बहुत गहरा प्रभाव था।

महात्मा मनसूर का नाम संसार भर में प्रसिद्ध है। मनसूर ने भारत की भी यात्रा की थी। उसका मुख्य सिद्धांत और वाक्य 'अनल हक़' था, जिसका ठीक वही अर्थ है जो 'अहं ब्रह्म' का है। अपने आज़ाद ख़यालों के सबब से ही मनसूर को कैद किया गया और सन् 922 ईसवी में यातनाएं दे-देकर सूली पर चढ़ा दिया गया। कबीर, दादू, नानक और अन्य भारतीय महात्माओं के वचनों में मनसूर के वाक्य इधर से उधर तक भरे हुए हैं। मनसूर सबको खुदा मानता था और हर तरह की दुई को धोखा बतलाता था। कुदरती तौर पर इस अद्वैतवाद ने उस समय के असंख्य मुसलमानों में सब मजहबों की एकता और एक-दूसरे की ओर उदारता के भी विचार पैदा किए। सूफियों के साहित्य में योगाभ्यास के मुक़ामात, समाधि, सत्संग की महिमा, गुरु के महत्व, प्राणायाम, आदि का खूब जिक्र आता है और भक्ति के उन्माद में गाने, बजाने और नाचने की तारीफ की है। शेख बदरुद्दीन के विषय में, जो तेरहवीं सदी में भारत में आकर रहने लगे थे, लिखा है कि जब वह इतने बूढ़े हो गए थे कि हिल-डुल न सकते थे, तब भी हरि-कीर्तन की आवाज पर तुरन्त अपने बिस्तरे से कूद कर जवान मनुष्य की तरह नाचने लगते थे। जब उनसे पूछा जाता था कि

*Baerlein : *Abul-Ala, the Syrian.*

इस निर्बल अवस्था में शेख कैसे नाच सकता है, तब वह जबाब देते थे, "शेख कहां है? इश्क नाच रहा है।"*

निस्सन्देह, सूफियों का मार्ग भक्तिमार्ग था, उनका सिद्धांत अद्वैत था, इश्क उनकी पूजा था और ब्रह्म में लीन होकर तद्वत हो जाना उनकी निजात (मोक्ष) थी।

भारत के दक्षिण में धर्म-सुधार की लहरें

ईसा की आठवीं सदी से पहले भारत की धार्मिक अव्यवस्था का जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। बौद्ध मत समाप्त हो चुका था और शैव मत, वैष्णव मत और शाक्त मत ने उसकी जगह ले ली थी। बौद्ध मत के उच्च सदाचार और मनुष्यमात्र की समता के सिद्धान्तों के स्थान पर फिर से असंख्य देवी-देवताओं, मत-मतान्तरों, कर्मकाण्ड, जात-पांत, ऊंच-नीच और हज़ारों अन्य पाखन्डों ने अपना साम्राज्य जमा लिया था। मदुरा के जैन राजा ने जब शैव प्रचारक, तिरुज्ञान के उपदेश से जैन मत त्याग कर शैव मत स्वीकार किया और मदुरा की शेष प्रजा ने जैन मत को छोड़ने से इन्कार किया, तब राजा ने तिरुज्ञान की सलाह से अनेक जैनियों को फांसी पर लटका दिया। जैनियों और बौद्धों पर, धर्म के नाम पर, इस तरह के अत्याचार उस समय जगह-जगह सुनने में आते थे। ऐसी हालत में उन हज़ारों मुसलमान फ़क़ीरों और सूफ़ियों के सिद्धान्तों और उनके चरित्र का भारतीय जनता पर हितकर प्रभाव पड़ना, जो शुरू की सदियों में अधिकतर दक्षिण और पश्चिम में आकर बसे, एक स्वाभाविक घटना थी। अनेक हिन्दू विद्वानों और महात्माओं के चित्तों में भी उस समय अपने देश की जटिल धार्मिक स्थिति को सुलझाने की चिन्ता उत्पन्न हुई। एक-दूसरे के बाद शंकर, रामानुज, निम्बादित्य, वासव, वल्लभाचार्य, माधव आदि अनेक सन्त-महात्मा भारत के दक्षिण में पैदा हुए, जिन्होंने अपने-अपने ढंग से अपने दुखीत देशवासियों को फिर से शान्ति, प्रेम और आशा का सन्देश सुनाया।

इस्लाम का प्रभाव

शुरू से लेकर ईसा की आठवीं सदी तक भारत में जितने धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने जन्म लिया, वे प्रायः सब उत्तर ही से शुरू हुए। किन्तु आठवीं सदी के समय से यह एक नई बात देखने में आती है कि इस तरह के आन्दोलनों को जन्म देने का श्रेय उत्तर के स्थान पर अब दक्षिण को मिलने लगा। आठवीं से पन्द्रहवीं सदी तक दक्षिण भारत का यह महत्व कायम रहा। शंकर, रामानुज, निम्बादित्य, वासव, वल्लभाचार्य और माधव, सब दक्षिण के रहनेवाले थे। इसका एक सबब निस्सन्देह यह था कि उन दिनों अधिकांश मुसलमान सन्त, सूफी और दरवेश दक्षिण और पश्चिम में ही जाकर बसते थे। इन भारतीय आचार्यों के उपदेश और सिद्धांतों पर इस्लाम की छाप साफ़ दिखाई देती है। एक विद्वान इतिहासज्ञ लिखता है :

> **"इस्लाम के अनुयायियों की मौजूदगी ने लोगों को जात-पांत, आत्मिक जीवन और ईश्वर के अस्तित्व इत्यादि विषयों पर विचार करने के लिए उत्तेजित किया।"†**

---

*Blochman and Jarrett : *Ayeen-i-Akbari*, vol. iii, p. 368.

†"The Presence of the followers of Islam stimulated thought on such subjects as caste, spiritual birth and the personality of God."—*Kabir and Kabir Panth* by H. G. Westcott, London, 1907, p. 45.

इतिहास-लेखक बार्थ लिखता है :

> **"अफ़ग़ानों, तुरकों या उनके सहधर्मी मुग़ल विजेताओं के इस देश में आने से बहुत पहले, ख़िलाफ़त के अरब लोग यात्रियों के रूप में भारत के तटों पर पहुंच चुके थे और यहां के लोगों के साथ तिजारत का सम्बन्ध और मेल-जोल पैदा कर चुके थे। अब देश के ठीक इन्हीं हिस्सों में नवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक वे ज़बरदस्त धार्मिक तहरीकें शुरू हुईं, जो शंकर, रामानुज, आनन्दतीर्थ और बासव के नामों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। भारत के ऐतिहासिक सम्प्रदायों में से अधिकांश इन्हीं तहरीकों से पैदा हुए और बहुत दिनों तक हिन्दोस्तान में इनसे मिलती-जुलती और कोई चीज़ न थी।"***

थोड़ी-सी सरसरी तुलना करने से मालूम हो सकता है कि उस समय के करीब-करीब सब हिन्दू आचार्यों ने अपने समय के इस्लाम से काफी विचार लिए।

अब हम आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक के मुख्य-मुख्य भारतीय आचार्यों और महात्माओं के उपदेशों की इस्लाम और सूफ़ियों के उपदेशों के साथ थोड़ी-सी तुलना करते हैं। इसका हरगिज़ यह मतलब नहीं है कि महात्माओं ने जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, वे सब सिद्धांत किसी-न-किसी रूप में या कम-से-कम बीज रूप में भारत के उनसे पहले के धार्मिक साहित्य में मौजूद न थे; इसमें भी सन्देह नहीं कि खास कर शंकर-जैसे विद्वानों ने मुख्यतः भारत के प्राचीन ज्ञान-भण्डार से ही अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाया और उसी आधार पर अपने शेष देशवासियों को ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया : फिर भी, नीचे की तुलना से यह साफ हो जाएगा कि उस समय के इन आचार्यों ने एक दरजे तक इस्लाम से भी अपने सिद्धांतों में सहायता प्राप्त की और एक दरजे तक भारत ही के अनेक प्राचीन विचारों ने अरब और ईरान से टक्कर खाकर एक नए वेश और पुनरुज्जीवित रूप में फिर भारत के अन्दर प्रवेश किया।

सबसे पहले हमारा ध्यान शंकराचार्य की ओर जाता है : शंकराचार्य ने बौद्ध मत के विरुद्ध उस समय के अनेक हिन्दू सम्प्रदायों को मिला कर, उन्हें दार्शनिक नींव और एक व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया। शंकर ने हिन्दू धर्म में अनेक नए परिवर्तन किए। उन्होंने सब वर्णों के लोगों के लिए संन्यास की दीक्षा को जायज़ क़रार दिया। 'मनुष्य-पंचक' में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, "कोई भी तत्वदर्शी मनुष्य मेरा सच्चा गुरु है, चाहे वह द्विज हो, चाहे चाण्डाल।" वैष्णव और शैव आचार्यों ने अनेक स्थानों पर शंकर का कड़ा विरोध किया। शंकर का अद्वैतवाद निस्संदेह भारतीय था, किन्तु उस समय के मुसलमान सूफ़ियों के अद्वैतवाद के साथ उसकी गहरी समानता थी। कम से कम शंकर के पहले भारत में किसी ने भी अद्वैतवाद को इस तरह का रूप न दिया था। इस्लाम के कठोर एक-ईश्वरवाद और शंकर के अद्वैतवाद में भी थोड़ी-बहुत समानता अवश्य है। शंकर के समय में इस्लाम भारत में पहुंच चुका था। लिखा है कि जिस प्रदेश में शंकर का जन्म हुआ था, वहां का हिन्दू राजा तक इस्लाम मत स्वीकार कर चुका था।†

---

*Barth : *Religions of India.*

†Fawcett : *Anthropology, Bulletin,* vol. iii, No. 1.

रामानुज और दूसरे आचार्यों के उपदेशों में एक-ईश्वरवाद पर ज़ोर, भक्ति का उन्माद, प्रपत्ति, गुरुभक्ति, जातिभेद का ढीलापन इत्यादि अनेक बातें इस्लाम के साथ मिलती हुई हैं । इनमें से अनेक विद्वानों के ग्रन्थों में अनेक मुसलमान सूफ़ियों के ग्रन्थों के साथ कहीं-कहीं आश्चर्यजनक समानता भी दिखाई देती है ।

लिंगायत सम्प्रदाय की स्थापना बारहवीं सदी के क़रीब हुई । वासव, चन्न वासव और एकान्त रमय्या, तीनों आचार्य इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं । लिंगायत सम्प्रदाय एक शैव सम्प्रदाय है । लिंगायत लोग एक ईश्वर (परशिव) को मानते हैं । अपने गुरु 'अल्लमा प्रभु' को वे ईश्वर का अवतार मानते हैं । मुसलमानों के 'चार पीरों' के समान वे भी 'चार आराध्य' मानते हैं । दीक्षा के नियम बिल्कुल वैसे ही हैं, जैसे सूफ़ियों में । लिंगायत लोग जातिभेद को नहीं मानते । पैरिया ठीक उसी तरह उनके सम्प्रदाय में लिया जा सकता है, जिस तरह ब्राह्मण--दोनों में कोई अन्तर नहीं माना जाता । विवाह में कन्या की रज़ामन्दी आवश्यक समझी जाती है । बाल-विवाह की मनाही है । तलाक़ की इजाज़त है । विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाज़त है । मुर्दे बजाय फूंकने के दफन किए जाते हैं; श्राद्ध इत्यादि नहीं किए जाते । लिंगायत लोग आवागमन के सिद्धांत को नहीं मानते । सब लिंगधारी एक-दूसरे के साथ खा-पी सकते हैं । विवाह-सम्बन्ध कर सकते हैं । ये लोग अपने को 'जंगम' या 'वीर शैव' भी कहते हैं । बेलगाम, बीजापुर और धारवाड़ जिलों में 35 फ़ीसदी और मैसूर और कोल्हापुर रियासतों में 10 फ़ीसदी आबादी लिंगायतों की है । निस्सन्देह, लिंगायतों के सिद्धांतों में अनेक बातें ऐसी हैं, जो इस्लाम में पाई जाती हैं और उससे पहले के किसी भी भारतीय सम्प्रदाय में नहीं थीं । 'अल्लम' और 'अल्लाह' शब्द भी निस्सन्देह एक-दूसरे से मिलते हुए हैं ।

इसी तरह सिद्धर सम्प्रदाय के लोगों ने 'एक ईश्वर' को माना, आवागमन के सिद्धांत से इन्कार किया, वेद और शास्त्रों के प्रमाण को अस्वीकार किया, मूर्तिपूजा को निन्दनीय ठहराया, जातिभेद को झूठा माना, सद्गुरु की आवश्यकता पर जोर दिया इत्यादि । इन लोगों के ग्रन्थों में इस्लाम के शब्द और सूफ़ियों की परिभाषाएं स्थान-स्थान पर पाई जाती हैं ।

मुसलमानों का यहां बस जाना

भारतीय जीवन के अनेक पहलुओं पर इस्लाम और मुसलमानों के प्रभाव से थोड़ी देर के लिए हट कर अब हम यह देखना चाहते हैं कि मोहम्मद बिन क़ासिम के बाद भारत पर मुसलमानों के और कौन-कौन-से हमले हुए, मुसलमानों की हकूमत इस देश में किस तरह क़ायम हुई और किस तरह बाहर से आनेवाले मुसलमान भी इसी देश में बस गए ।

महमूद ग़ज़नवी

सिन्ध पर मोहम्मद बिन क़ासिम के हमले के तीन सौ साल बाद महमूद ग़ज़नवी के हमलों का समय आया । ग़ज़नी के शासक महमूद ने यहां आकर कुछ नगरों को बरबाद किया, कुछ हिन्दू नरेशों के साथ सुलह करके उन्हें सुरक्षा प्रदान की, कुछ मन्दिरों को लूटा और, कहा जाता है, सोमनाथ पर हमला करके वहां की मूर्ति को तोड़ा और लूट का बहुतसा माल लेकर वापस ग़ज़नी की राह ली । सोमनाथ पर महमूद ग़ज़नवी के हमले की सचाई के बारे में भी प्रामाणिक इतिहासज्ञों में जबरदस्त मतभेद है । महमूद के चरित्र के अनेक गुणों

की भी अनेक इतिहास-लेखक मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।* किन्तु यह सब बहस हमारे प्रसंग से बाहर है। इसमें सन्देह नहीं कि महमूद की सेना में हज़ारों सिपाही हिन्दू थे, उसका एक प्रसिद्ध सेनापति हिन्दू था, जिसका नाम तिलक था और जिसने एक बार महमूद के एक मुसलमान सेनापति के विद्रोह का दमन किया था। जो-कुछ भी हो, महमूद के हमलों का कोई स्थायी असर भारत पर न रह सकता था। महमूद के हमलों का मूल्य ज्यादा-से-ज्यादा एक धन-लोलुप डाकू के हमलों से अधिक नहीं कहा जा सकता।

मोहम्मद ग़ोरी

सौ साल बाद तुरकों ने पश्चिम की ओर से अफ़गानिस्तान के ग़ोरी राजकुल को दबाना और पूरब की ओर खदेड़ना शुरू किया। ग़ोरी राजाओं का रुख पूरब की ओर मुड़ा, जिसके फलस्वरूप मोहम्मद ग़ोरी का भारत पर हमला हुआ। मोहम्मद ग़ोरी के समय से पंजाब पर भी मुसलमानों का शासन जम गया। मोहम्मद ग़ोरी के भारत आने के समय तक भारत की राजनैतिक अव्यवस्था और बढ़ चुकी थी। तेरहवीं सदी तक सारे उत्तर भारत पर मुसलमानों का राज जम गया। राजपूत नरेशों ने जगह-जगह अलग-अलग खासी वीरता के साथ उनका मुकाबला किया। किन्तु उनमें किसी तरह की एकता या नीतिज्ञता बाक़ी न रह गई थी। इसके बाद धीरे-धीरे सौ साल के अन्दर मैसूर तक अधिकांश भारत पर मुसलमानों की हकूमत क़ायम हो गई।

विदेशी और स्वदेशी

शक नहीं कि ज़ाहिरा देखने में भारतीय जीवन को एक बार गहरा धक्का पहुंचा। किन्तु जिन मुसलमानों ने बाहर से आकर भारत पर हमला किया, वे भारत आकर भारत ही में बस गए और भारत ही के होकर रह गए। भारत पर मुसलमानों की हकूमत क़ायम होने से पहले जो लाखों भारतवासी इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुके थे, उनके सबब और उस आदर के सबब, जो, जैसा हम दिखा चुके हैं, बहुत-से भारतवासियों के चित्त में इस्लाम की ओर पैदा हो चुका था, इन बाहर से आनेवाले मुसलमानों को भारत के अन्दर बसने और घुल-मिल जाने में काफ़ी सुगमता हुई। एक नस्ल के अन्दर ही वे पूरी तरह भारतवासी बन गए। उन्हें देशवासियों के हित में अपना हित और उनके सुख में अपना सुख दिखाई देने लगा। भारत को उस अन्धकारमय युग में एक प्रधान राजनैतिक शक्ति की आवश्यकता थी। जिन मुसलमानों ने विदेशी रूप में इस देश पर हमला किया था, उन्होंने स्वदेशी और भारतीय बन कर भारत की इस आवश्यकता को बड़ी सुन्दरता के साथ पूरा किया।

किसी भी व्यक्ति या क़ौम का दूसरे व्यक्ति या क़ौम पर हमला जायज़ करार नहीं दिया जा सकता। किसी भी विदेशी हमला करने वाले के सामने सिर झुका देना या विदेशी सेना से पराजित हो जाना किसी भी देश के लिए यशस्कर नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि कोई जाति-विशेष किसी देश-विदेश का ठेका लेकर पृथ्वी पर नहीं उतरी। सच यह है कि बहुत दरज़े तक मानव-समाज का जातियों या देशों में बंटवारा भी एक कृत्रिम बंटवारा है। मानव-समाज एक विशाल कुटुम्ब है,

---

**Medieval Hindu India* by C. V. Vaidya, vol. iii, p. 104, and *History of Medieval India,* by Ishwari Prasad, p. 91.

जिसका घर पृथ्वी है । आजकल के राष्ट्रीयता के प्रभाव भी, जो मानव-समाज की आजकल की स्थिति में हर देश के जीवित रहने के लिए एक दरज़े तक आवश्यक प्रतीत होते हैं, वास्तव में एक अनिवार्य रोग ही हैं । इस विषय को अधिक विस्तार देना हमारे इस समय के प्रसंग से बाहर है । फिर भी, कोई मनुष्य किसी देश के अन्दर विदेशी केवल उस समय तक ही कहा जा सकता है, जब तक कि वह उस देश की सीमाओं से बाहर किसी दूसरे देश को अपना देश या अपना घर मानता हो, या उस पहले देश से धन बटोर कर दूसरे देश को ले जाता हो । किन्तु जिस समय कोई मनुष्य किसी देश को अपना घर बना लेता है, वहीं पर बस जाता है, देशवासियों के सुख में अपना सुख और दुख में अपना दुख समझने लगता है, तो फिर चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, अच्छे आचरण का हो या बूरे आचरण का, उसे विदेशी नहीं कहा जा सकता ।

वैदिक समय से लेकर अंगरेज़ों के आने से पहले तक अधिकांश समय में अफ़ग़ानिस्तान भारत का एक प्रान्त था । फिर भी, यदि अफ़ग़ानिस्तान को भारत से बाहर मान लिया जाए, तो महमूद गज़नवी के हमले भारत पर विदेशी हमले थे । मुहम्मद बिन क़ासिम का सिन्ध पर हमला निस्सन्देह विदेशी हमला था । मोहम्मद ग़ोरी का भारत पर हमला भी विदेशी हमला था । किन्तु जो मुसलमान ईरान या अफ़ग़ानिस्तान से आकर एक बार भारत में बस गए, उनकी हकूमत फिर किसी तरह विदेशी हकूमत नहीं कही जा सकती । तेरहवीं सदी के अन्त से लेकर सोलहवीं सदी के शुरू तक ढाई सौ साल का समय देश में लगातार संग्रामों का समय था । इसके बाद भारत पर केवल मुगलों का हमला बाक़ी रह जाता है । जिस बाबर ने तुर्किस्तान से आकर भारत पर हमला किया, वह विदेशी था । पानीपत के मैदान में सन 1526 ईसवी में स्वदेशी और भारतीय इब्राहीम लोधी ने विदेशी बाबर का मुकाबला किया । इब्राहीम लोधी हार गया । बाबर हिन्दुस्तान में बस गया । मुगल साम्राज्य भारत में क़ायम हो गया ।

मुग़ल साम्राज्य से भारत को क्या लाभ हुआ या क्या हानि हुई, यह एक दूसरे स्थान का विषय है । यहां हमें केवल यह दिखाना है कि जिस तरह इस्लाम एक बार भारत में आकर भारत के अनेक सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय बन गया, उसी तरह मुसलमान हमलावर एक बार भारत में बस कर अन्य भारतवासियों के समान भारतवासी बन गए । भारत पर मुसलमानों के शासन के समय की बेशुमार मिसालें इस बात की मिलती हैं, जब कि भारत के मुसलमान शासकों ने बाहर से हमला करनेवाले मुसलमानों का वीरता के साथ मुकाबला किया, या स्वयं भारत की सीमा से बाहर निकल कर बाहर के मुसलमान देशों को विजित किया, उन्हें अपने भारतीय साम्राज्य का एक अंग बनाया और कभी-कभी भारत के हिन्दू नरेशों को वहां का शासक तक नियुक्त किया ।

अपने धार्मिक विचारों के सबब से भी कोई मनुष्य किसी देश में विदेशी नहीं कहा जा सकता । धार्मिक आज़ादी हर सभ्य देश का एक आवश्यक गुण है और उदार तथा सभ्य भारत ने अपने पिछले हज़ारों साल के इतिहास में इस गुण को अन्य देशों की अपेक्षा ख़ासी सुन्दरता के साथ निबाहा है ।

यदि स्वदेशी और विदेशी की इस परिभाषा को स्वीकार न किया जाए, तो भारत, इंगलिस्तान, जर्मनी, फ्रान्स या संसार का कोई भी देश इस समय ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह

5—220 M of I&B/80

विदेशियों से बसा हुआ न हो । फिर न इंगलिस्तान के ऐंग्लो-सैक्शन वहां के असली बाशिन्दे माने जा सकते हैं और न जर्मनी या हिन्दोस्तान के 'आर्य', जिन्हें अपने-अपने देशों का इस समय ख़ासा गर्व है, यहां के असली बाशिन्दे माने जा सकते हैं। सच यह है कि जिस बाबर ने पानीपत में इब्राहीम लोधी को परास्त किया, वह बाबर विदेशी था, किन्तु जिस बाबर ने दिल्ली में अपना साम्राज्य क़ायम करके तातार और ईरान से अपना सम्बन्ध सदा के लिए तोड़ कर भारत को अपना देश बना लिया, वह बाबर भारतवासी था । बाद के मुगल सम्राटों में से किसी सम्राट की किसी नीति-विशेष का कोई नतीजा चाहे भारत के लिए हितकर रहा हो या अहितकर, चाहे सम्राट अकबर के समान उनमें से किसी ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दृष्टि से देखा हो, या चाहे औरंगजेब के समान किसी तरह के भी भेदभाव द्वारा अपने शासन को बदनाम किया हो, फिर भी वे सब सम्राट भारतवासी और केवल भारतवासी थे और उनका साम्राज्य स्वाधीन भारतीय साम्राज्य था ।

मानव धर्म

हम फिर भारत की उस समय की धार्मिक लहरों की ओर आते हैं । रामानुज के धार्मिक विचारों और उनके भक्तिमार्ग को दक्षिण से उत्तर में लाकर उनके प्रचार का कार्य रामानन्द ने किया । रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर राम की भक्ति का उपदेश दिया और हर जाति के लोगों को अपने सम्प्रदाय में शामिल किया । मैकालिफ़ लिखता है कि—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनारस में विद्वान मुसलमानों के साथ रामानन्द की भेंट हुई ।" रामानन्द के शिष्यों और अनुयायियों में अनेक मुसलमान भी थे । उनके शिष्यों में दो नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, एक तुलसीदास और दूसरे कबीर । गोस्वामी तुलसीदास की रामायण सारे उत्तर भारत में प्रसिद्ध है । तुलसीदास का मोहावरा अवधी है । फिर भी संस्कृत, फ़ारसी और अरबी तीनों के शब्द भण्डारों से अपनी पुस्तक को अलंकृत कर एक ऐसी सरल और सर्वप्रिय हिन्दोस्तानी भाषा को रचने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को प्राप्त है, जिसमें ऊंचे-से-ऊंचा साहित्य लिखा जा सका। हिन्दोस्तानी ज़बान के बनानेवालों में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा ।

कबीर

कबीर की शुमार निस्सन्देह भारत के महान-से-महान तत्वदर्शियों, धर्माचार्यों और समाज-सुधारकों में की जानी चाहिए । कबीर एक अत्यन्त स्वतन्त्र विचारों के महापुरुष थे। वह मत-मतान्तरों के भेद और हर तरह के कर्मकाण्ड और रूढ़ियों के कट्टर विरोधी थे। इस देश के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता के वह सबसे पहले प्रचारक और सबसे महान समर्थक थे । उनका जन्म सन् 1398 ईसवी में हुआ और मृत्यु सन् 1518 ईसवी में। कुछ लोगों का ख़याल है कि कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, नवजात बालक को कोई तालाब के किनारे फेंक गया था, नूरुद्दीन जुलाहे की पत्नी उसे वहां से उठा लाई और अपने घर में रख कर उसे अपने बच्चे की तरह पाला-पोसा और बड़ा किया । हमें यह सारी कहानी बाद की गढ़न्त मालूम होती है । हमारी सम्मति में यही सीधी-साधी बात ठीक मालूम होती है और यही कबीर की वाणी और अन्त तक की सारी जीवनी से पता चलता है कि कबीरुद्दीन बनारस के जुलाहे नूरुद्दीन का बेटा था और नूरुद्दीन के ही घर में

पल कर बड़ा हुआ। बनारस में रह कर कबीर साहब हिन्दू और मुसलमान, दोनों मतों के सिद्धांतों से पूरी तरह परिचित हो गए। मोहसिन फ़ानी लिखता है कि कबीर ने लड़कपन में ही अनेक हिन्दू और मुसलमान विद्वानों और सन्तों से भेंट की। बहुत दिनों तक वह जौनपुर, झूंसी इत्यादि में शेख तक़ी और अन्य मुसलमान सूफ़ियों और पीरों के साथ रहे, जिनका जिक्र कबीर साहब ने अपनी रमैनी में किया है। इसके बाद कबीर ने बनारस में अपना सत्संग शुरू कर दिया। कबीर के विचार इतने स्वतन्त्र थे कि शुरू में मुसलमान मौलवी और हिन्दू पण्डित, दोनों उनसे बेहद नाराज़ हुए। इन लोगों ने हर तरह से कबीर को कष्ट पहुंचाने और दिक़ करने की कोशिश की। अन्त में, हिन्दू और मुसलमान, दोनों जातियों में से कबीर के हज़ारों अनुयायी हो गए। जीवन भर कबीर ने अपने पिता का काम, यानी कपड़ा बुनने का धन्धा नहीं छोड़ा। हिन्दुओं में यह एक बात सदा से प्रसिद्ध रही है कि काशी में मरने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत कहा जाता है कि गोरखपुर से 15 मील पश्चिम में मगहर में मरनेवाले को गधे की योनि में जन्म लेना पड़ता है। कबीर ने अन्त समय निकट आने पर जान-बूझ कर इस प्राचीन अन्ध-विश्वास की अवहेलना करने के लिए काशी से बाहर के लिए प्रस्थान किया और मगहर ही में अपने हज़ारों हिन्दू और मुसलमान अनुयायियों की मौजूदगी में चोला छोड़ा। कहा जाता है कि कबीर के मरने के बाद उनके कुछ हिन्दू और मुसलमान अनुयायियों में झगड़ा हुआ। हिन्दू लोग कबीर को हिन्दू कहते थे और उनके शरीर को जलाना चाहते थे। मुसलमान उन्हें मुसलमान मान कर दफ़न करना चाहते थे। अन्त में क्या फ़ैसला हुआ, इसके बारे में अजीब-अजीब कहानियां चल पड़ी हैं। जो हो, मगहर में आज तक एक-दूसरे के पास दो स्थान बने हुए हैं। एक को कबीर साहब की 'समाधि' कहा जाता है और दूसरे को कबीर साहब का 'मज़ार'। हर साल यहां मेला लगता है, जिसमें हज़ारों हिन्दू आकर कबीर साहब की समाधि पर फूल चढ़ाते हैं और हज़ारों मुसलमान कबीर साहब के मज़ार पर फ़ातेहा पढ़ते हैं।

कबीर हिन्दुओं के वर्णाश्रम या जातिभेद के कट्टर विरोधी थे। वेदों-शास्त्रों या कुरान में से किसी को भी वह निर्भ्रान्त या हर बात में प्रमाण न मानते थे। सूफ़ियों के समान प्रेम, इश्क या भक्ति उनका मुख्य धर्म था। अपनी रमैनी, शब्दों और साखियों के जरिए कबीर ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों को एक मानव धर्म की शिक्षा दी, निर्भीकता के साथ दोनों मतों की रूढ़ियों का एक समान खण्डन किया और प्राणिमात्र के साथ प्रेम और एक निराकार ईश्वर की भक्ति का सबको एक समान उपदेश दिया।

कबीर ने हिन्दू मत और इस्लाम, दोनों में से सामान्य सचाइयों को एक समान ग्रहण किया। संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू और हिन्दी, चारों भाषाओं के शब्दों का अपने पद्यों में उन्होंने एक समान उपयोग किया।

हिन्दू और मुसलमान धर्मों की झूठी पृथकता पर दुख प्रकट करते हुए, दोनों

को एक सार्वजनिक धर्म दरशाते हुए और दोनों को प्राणिमात्र पर दया का उपदेश देते हुए कबीर साहब कहते हैं :

भाई रे दुइ जगदीश कहां ते आया ? कहु कौने बौराया ?
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया ।।
गहना एक कनक ते गहना, यामैं भाव न दूजा ।।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा ।।
वही महादेव वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए ।
को हिन्दू को तुरक कहावे ? एक जिमी पर रहिए ।।
वेद कितेब पढ़ें वै कुतुबा, वै मुलना वै पांड़े ।
बेगर बेगर नाम धराए, एक मिट्टी के भांड़े ।।
कहहिं कबीर वें दोनों भूले, रामहिं किनहु न पाया ।
वै खस्सी वै गाय कटावें, बादिहि जन्म गमाया ।।

अर्थात्, हे भाई, दो ईश्वर कहां से आ गए ? तुम्हें किसने बहका दिया? अल्लाह और राम, करीम और केशव, हरि और हज़रत, एक ही सोने के बने आभूषणों के अलग-अलग नाम हैं । इनमें दुई का भाव नहीं है । कहने-सुनने को तुमने दो-दो नाम रख दिए हैं—एक नमाज़ और एक पूजा । वही महादेव है और वही मोहम्मद, वही ब्रह्मा है और वही आदम । हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं, दोनों एक ज़मीन पर रहते हैं । एक वेद पढ़ते हैं और दूसरे क़ुरान पढ़ते हैं । एक मौलाना कहलाते हैं और दूसरे पण्डित । ये सब अलग-अलग नाम धर लिए हैं ; वास्तव में सब एक ही मिट्टी के बर्तन हैं । कबीर कहता है, ये दोनों भूले हुए हैं । इनमें से किसी ने राम को नहीं पाया । एक बकरा काटते हैं और दूसरे गाय काटते हैं—दोनों वृथा जन्म खोते हैं ।

कबीर कहते हैं :

हिन्दू कहूं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।
पांच तत्व का पूतला, गैबी खेले माहिं ।।

अर्थात्, मैं न हिन्दू हूं और न मुसलमान; मैं तो पांच तत्वों का बना हुआ पुतला हूं, जिसके अन्दर गैबी (आत्मा) क्रीड़ा करता है ।

कबीर के उपदेशों पर मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीरों के उपदेशों का प्रभाव साफ़ दिखाई देता है । कबीर से पहले कोई ऐसा हिन्दू महात्मा न हुआ था, जिसका वह अनुसरण करते; इसलिए उनके लिए मुसलमान सूफ़ियों का अनुसरण स्वाभाविक था । फ़रीदुद्दीन अत्तार के 'पन्दनाम' और जलालुद्दीन रूमी और शेख सादी शीराज़ी के काव्यों से कबीर निस्सन्देह भली-भांति परिचित थे । कबीर के पद्यों में इन महापुरुषों और दूसरे सूफ़ियों के उपदेशों की बार-बार झलक आती है । कबीर का नीचे लिखा पद्य :

जब तू आयो जगत में, जगत हँसे तू रोय ।
अब तो ऐसी कर चलो, तू हांसे जग रोय ।।

गोस्वामी तुलसीदास

गुरु नानक

सन्त तुकाराम
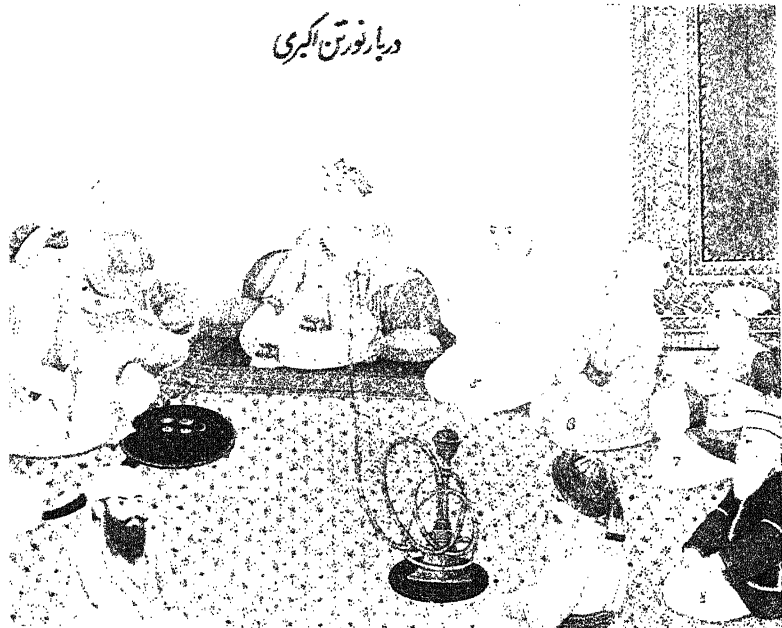
दरबार नौरतन
अकबरी

शेख सादी के इस मशहूर पद का साफ़ भाषान्तर है :

याद दारी के वक्ते जादनें तो,

हमा खन्दा बदन्दो तू गिरियां ।

आंसुनाज़ी के बाद मुर्दनें तो,

हमा गिरियां शबन्दो तू खन्दां ।।

इसी तरह की और भी अनेक मिसालें कबीर के पदों में दी जा सकती हैं । कबीर के पदों में फ़ारसी और अरबी के शब्द और सूफ़ियों की उपमाएं और उनके अलंकार इधर से उधर तक भरे पड़े हैं । अहमदशाह ने कबीर के बीजक में हबीब, महबूब, आशिक़, माशूक, मुसाफ़िर, मुक़ाम, हाल, जमाल, जलाल, साक़ी, शराब, क़हर, मेहर, ग़ैबत, हुजूर, हैरत, नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, हाहूत, हक़ आदि इस तरह के दो सौ से ऊपर अरबी और फ़ारसी के शब्द चुने हैं, जिनका कबीर ने ठीक उन्हीं मायनों में प्रयोग किया है, जिनमें सूफ़ियों ने और जिनसे साफ़ मालूम होता है कि कबीर अपने विचारों और उपदेशों के लिए मुसलमान सूफ़ियों के किस दरज़े आभारी थे ।

कबीर ने संस्कृत की निस्बत भाषा में धर्म का उपदेश देना पसन्द किया । उनका उद्देश्य आम जनता तक अपने विचारों को फैलाना था । कबीर ने अपनी साखी में एक जगह लिखा है :

संस्किरत ह कूप जल, भाषा बहता नीर ।

अर्थात्, संस्कृत कुएं का पानी है, किन्तु भाषा (हिन्दी) बहती हुई नदी के समान है ।

कबीर के पद्यों में कहीं संस्कृत भरी हिन्दी और कहीं फ़ारसी भरी उर्दू, दोनों मिलती हैं । कबीर ने ईश्वर के लिए जगह-जगह राम, हरि, गोविन्द, ब्रह्म, समरथ, साईं, सत्पुरुष, रंगरेजवा, बचूं (अनिर्वचनीय), अल्लाह और खुदा, इन सब शब्दों का उपयोग किया है, किन्तु ईश्वर के लिए उनका सबसे प्यारा नाम 'साहेब' है । कबीर को इस बात का दावा है कि उन्होंने 'तुममें और मुझमें', प्राणिमात्र में और सब पदार्थों में व्यापक 'जाते पाक' का साक्षात् दर्शन किया था । सूफ़ियों के समान ही कबीर ने स्थान-स्थान पर खुदा को 'नूर' बतलाया है और वहदतुलवजूद यानी, अद्वैत-वाद के अनुसार हर चीज को खुदा माना है । कबीर की रमैनी में बदरुद्दीन शहीद, इब्न सीना और जिली के अनेक पद्यों का बिल्कुल तर्जुमा-सा दिखाई देता है । सूफ़ियों ही के समान कबीर ने गुरु को गोविन्द बतलाया है और अपनी साखी में लिखा है ;

हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर ।

अर्थात्, यदि हरि नाराज हो जाए, तो भी कुछ बचत हो सकती है, किन्तु यदि गुरु नाराज हो जाए, तब फिर कोई बचत नहीं । कबीर का यह पद्य मौलाना रूम के एक पद का तर्जुमा-सा मालूम होता है ।

कबीर ने गुरु को 'सिकलीगर' लिखा है । कबीर प्रेम के परम विश्वासी थे ।

वह लिखते हैं कि प्रेम समस्त संसार में व्यापक है । ईश्वर की खोज के विषय में वह लिखते हैं ।

मोको कहां खोजे बन्दे, मैं तो तेरे पास में ।
ना मैं देवल ना मैं मजसिद, ना काबे कैलास में ।।
खोजी होय तो तुरते मिलिहों, पल भर की तालास में ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसों की स्वांस में ।।

अर्थात्, ऐ बन्दे ! तू मुझे कहां ढूंढता है ? मैं तेरे पास हूं । मैं न मन्दिर में हूं, न मस्जिद में, न काबे में हूं, न कैलास में । यदि तू सच्चा खोजी है, तो मैं तुरन्त पल भर की खोज़ में तुझे मिल जाऊंगा । कबीर कहता है—हे साधो ! सुनो, साहेब सबके प्राणों का प्राण है ।

सूफ़ियों की तरह कबीर ने लोगों को इश्क की शराब पीने की दावत दी है । अभ्यास द्वारा ब्रह्मत्व की ओर आत्मा की यात्रा को कबीर ने ठीक उन्हीं शब्दों में बयान किया है, जिन शब्दों में कबीर से पांच सौ साल पहले मनसूर ने बयान किया था । अपनी पुस्तक 'दस मुक़ामी रेख्ता' में कबीर ने हजरत मोहम्मद के मेराज के क़िस्से को अपने ढंग से बयान किया है ।

वास्तव में, कबीर ने भारत का ध्यान एक ऐसे सार्वजनिक धर्म की ओर दिलाया, जो न हिन्दू था, न मुसलमान । इसीलिए उन्होंने हिन्दू और मुसलमान, दोनों के अलग-अलग कर्मकाण्डों, दोनों के मतभेदों, दोनों के धार्मिक ग्रन्थों की भ्रांतियों इत्यादि की अत्यन्त कड़े शब्दों में निर्भीकता के साथ आलोचना की । ब्राह्मणों के प्रभुत्व, जातपांत और छुआछूत के वह कट्टर विरोधी थे । 'राम' शब्द का उन्होंने ईश्वर के अर्थों में उपयोग किया है, किन्तु उन्होंने साफ़ लिखा है कि उनका राम दशरथ का पुत्र राम नहीं है । वह लिखते हैं :

सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पाषाण नहिं बन्धा ।

यानी, सिरजनहार ने सीता से विवाह नहीं किया था और न उसने समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बांधा ।

कबीर ने अनेक स्थानों पर दस अवतारों का खण्डन किया है । वह ईश्वर के विषय में कहते हैं :

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लंका के राव सताया ।
नहीं देवकी गर्भहि आया, नहीं यशोदा गोद खिलाया ।
पृथ्वी रवन धवन नहिं करिया, पैठि पताल नाहिं बलि छलिया ।
नहिं बलिराज सो मांडल रारी, नहिं हरनाकुश बधल पछारी ।
बराह रूप धरणि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्रि नहिं करिया ।
नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया ।
गण्डकि शालिग्राम नहिं कूला, मछ कछ होय नहीं जल डोला ।
द्वारावती शरीर नाहिं छांड़ा, ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा ।

यानी, उस निराकार ईश्वर ने दशरथ के घर में पैदा होकर रावण को नहीं मारा था, इत्यादि ।

जातपांत और छुआछूत के बारे में कबीर ने कहा था :

गुप्त प्रकट है एकै दूधा, का को कहिए ब्राह्मण शूद्रा ।
झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरक झूठ कुल दोई ।
और के छिए लेत हो छींछा, तुमसों कहहु कौन हैं नीचा ।

यानी, गुप्त और प्रकट सब एक ही जाति है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र । झूठा अभिमान न करो । हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग जाति नहीं हैं । सबसे नीच वह है, जो दूसरे के छू जाने से अपने को अपवित्र मानता है ।

सारांश यह कि कबीर ने किसी भी लिखी हुई किताब या आदमी में अन्धविश्वास, दिखावटी हज्ज, रोजे और नमाज इत्यादि का मजाक उड़ाते हुए मुसलमानों को समस्त रूढ़ियां छोड़ देने का उपदेश दिया, हिन्दुओं को उन्होंने उतने ही ज़ोर के साथ जातपांत, मूर्तिपूजा, अवतार, छुआछूत और वेद और शास्त्रों में अन्धविश्वास छोड़ देने की सलाह दी है । दोनों को उन्होंने प्राणिमात्र पर दया रखने, सबको एक खुदा की औलाद और भाई-भाई समझने, अहंकार त्यागने और सबकी सेवा करने का उपदेश दिया । कबीर के नीचे लिखे पद्य इस विषय में बिल्कुल साफ़ हैं :

पूरब दिशा हरी को बासा, पच्छिम अलह मकामा ।
दिल में खोजि दिलहिं मां खोजो, इहै करीमा रामा ।।
जेते औरत मर्द उपानी, सो सब रूप तुम्हारा ।
कबीर पोंगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा ।।
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोइ लखाइ ।
कहंहि कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहूं खुदाई ।।
हिन्दू कहें राम मोहिं प्यारा, तुरुक कहें रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना ।।

यानी, लोग कहते हैं कि हरि पूर्व में रहता है और अल्लाह पश्चिम में, लेकिन कबीर कहता है, अपने दिल के अन्दर खोजो, वहीं करीम है और वहीं राम है ।

जितने पुरुष और स्त्री रचे गए हैं, सब तुम्हारे ही रूप हैं । कबीर अल्लाह का और राम का बेटा है, वही कबीर का गुरु और पीर है ।

हिन्दू और मुसलमान की एक ही राह है, जो सत्गुरु ने बताई है । कबीर कहता है, सुनो भाई सन्तो, राम और खुदा में कोई भेद नहीं है ।

हिन्दू राम कहते हैं, मुसलमान रहीम कहते हैं । आपस में दोनों लड़-लड़ कर मरते हैं, मर्म (हकीक़त) को कोई नहीं जानता ।

कबीर पहले भारतवासी थे, जिन्होंने हिन्दू और मुसलमान, दोनों के लिए बल्कि सारी मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ उपदेश दिया । उनके अनुयायियों में हजारों हिन्दू और मुसलमान शामिल थे । अभी तक कबीरचौरा (काशी) में और मगहर में कबीर के हिन्दू और मुसलमान अनुयायी हर साल

जमा होकर कबीर की याद में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। अपने को कबीर-पन्थी कहनेवालों की तादाद इस समय शायद दस-पन्द्रह लाख से अधिक नहीं है, किन्तु कबीर का प्रभाव इससे कहीं अधिक है और पंजाब, गुजरात, बंगाल और दक्षिण तक में फैला हुआ है।

मुग़ल साम्राज्य के दिनों में कबीर के विचार बराबर फैलते गए, यहां तक कि दूरदर्शी सम्राट अकबर ने 'दीने इलाही' के रूप में उन्हें सर्वसम्मत कराने की कोशिश की। वास्तव में, कबीर ही अकबर के मानसिक पिता थे। विधि ने या देश के भीतर तथा बाहर की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल न होने दिया, किन्तु भारत की अन्तरात्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है, तो यही है और यदि भविष्य के लिए कोई मार्ग है, तो यही है।

कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के समय से फिर एक बार उत्तर भारत ने धार्मिक विचारों के मैदान में सारे भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और कबीर ही के विचार अनेक सन्तों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत में फैलने लगे।

पंजाब के मुसलमान फ़क़ीर

जिस तरह शुरू की सदियों में दक्षिण भारत के, उसी तरह पन्द्रहवीं सदी में सारे पंजाब के नगर और गांव मुसलमान सूफ़ियों और फ़कीरों से भरे हुए थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन, मुलतान और कच्छ में अनेक प्रसिद्ध सूफ़ी शेखों ने अपनी जिन्दगियां गुजारीं, जिनमें बाबा फ़रीद, अला उलहक, जलालुद्दीन बुखारी, मखदूम जहानियां, शेख इसमाइल बुखारी, दाता गंजबख्श आदि के नाम अपनी सचाई, चरित्र और ईश्वरभक्ति के लिए देश भर में प्रसिद्ध थे। जो जबरदस्त क्रान्ति इन महात्माओं ने देशवासियों के विचारों में उत्पन्न की, उसी का फल या फूल गुरु नानक का वह सुन्दर और महान प्रयत्न था, जो उस महापुरुष ने ठीक कबीर के ही समान और उसी की सरणी पर हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने के लिए किया।

नानक

गुरु नानक का जन्म सन् 1469 ईसवी में वैशाख शुक्ल तृतीया को हुआ था। उन्होंने फ़ारसी और संस्कृत, दोनों की शिक्षा पाई थी। 'नानक' उन दिनों हिन्दू और मुसलमान, दोनों का नाम होता था। कुछ दिन उन्होंने नवाब दौलत खां लोधी के यहां नौकरी की। तीस साल की आयु में उन्होंने फ़कीरी ली। अपने मुसलमान शिष्य मरदाना, के साथ उन्होंने भारत में तथा लंका, ईरान, अरब आदि की यात्रा की। लिखा है कि पानीपत के शेख शरफ़, मुलतान के पीरों, बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारी शेख ब्रह्म (इब्राहीम) आदि सूफ़ियों के साथ उन्होंने बहुत दिनों तक धर्मचर्चा की। कबीर के समान नानक के मरने पर भी उनके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में झगड़ा हुआ। अन्त में वहां भी हिन्दुओं ने उनकी स्मृति में एक 'समाधि' बनाई और मुसलमानों ने एक अलग 'मज़ार'; किन्तु दोनों इमारतें रावी की बाढ़ में आकर बह गईं।

नानक का धर्म भी एकता और प्रेम का धर्म था, उनके सम्प्रदाय में भी हिन्दू और मुसलमान, दोनों शामिल हुए। नानक मक्के पहुंचे। वहां मोहम्मद साहब के समान उन्होंने एक खुदा का प्रतिपादन किया और अपने को उसका 'खलीफ़ा' बताया ;

ला इलाह इल्लल्लाह, गोविन्द नानक खलफल्लाह।*

यानी, अल्लाह केवल एक है, वही गोविन्द है, नानक उसका खलीफ़ा है।

नानक के पदों में भी संस्कृत, फ़ारसी और अरबी, तीनों भाषाओं के पदों की भरमार है। दोनों धर्मों की पृथकता को मिथ्या बताते हुए उन्होंने लिखा :

बन्दे इश्क खुदाय दे, हिन्दू मूसलमान,
दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान।
ना हम हिन्दू ना मुसलमान,
दोनों विच्च बसे शैतान।
एकै, एकी, एक सुभान,
गुरुजी कहिया सुन अब्दुर्रहमान।
दावा भूलो तां इक्क पिछान।
हिन्दू जपते राम राम, मूसलमान खुदाय,
इक्को राम रहीम है, मन में देखो लाय।

यानी, हिन्दू और मुसलमान, दोनों एक खुदा के बन्दे हैं, किन्तु दोनों बेईमान हैं, राम और रसूल का झूठा दावा करके लड़ते हैं।

हम न हिंदू हैं और न मुसलमान, इन दोनों के दिलों में शैतान बसा है। गुरु नानक कहते हैं, ऐ अब्दुर्रहमान, सुनो, ईश्वर एक ही है, मत-मतान्तरों का हठ छोड़ दो, तब उस एक ईश्वर को पहचान सकोगे।

हिन्दू राम-राम जपते हैं, मुसलमान खुदा कहते हैं, किन्तु यदि अपनी आत्मा के अन्दर ध्यान से देखोगे, तो मालूम होगा कि राम और रहीम एक ही हैं।

एक दूसरे स्थान पर,

तग्ग न हिन्दू पाइया, तग्ग न मूसलमान।
दोए भूले राह ते, ग़ालिब भया शैतान॥
जित दर लक्ख मोहम्मदां, लख ब्रह्मा बिश्न महेश।
लख लख राम वडीरिएं, लख राहें लख वेश।

यानी, मार्ग न हिन्दू को मिला है और न मुसलमान को, दोनों मार्ग से भटक गए, दोनों पर शैतान ग़ालिब हो गया।

मालिक के दर पर लाखों मोहम्मद, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और राम खड़े लाखों तरीके से स्तुति करते रहते हैं।

---

*गुरु नानक की जन्मसाखी, नं० 36, पाकनामा।

मोहम्मद साहब की तरह नानक ने भी ईश्वर की इच्छा पर अपने-आपको पूरी तरह छोड़ देने का उपदेश दिया ।

गंगास्नान, तीर्थयात्रा, जप, पूजा-पाठ आदि को नानक ने फज़ूल बताया, अठारह पुराण और चारों वेदों को निरर्थक बताया, प्रतिमा-पूजा का विरोध किया, कबीर के समान अवतारवाद का खण्डन किया और जाति-भेद को मिथ्या और हानिकर बताया ।

ऊंच-नीच के विचार के विरुद्ध नानक ने कहा :

ज़ोर न कीजे किसी पर, उत्तम मद्यम न कोय,
हिन्दू मूसलमान नूं, दोहां नसीहत होय ।।
नीचां अन्दर नीच ज़ात, नीचे हों अत नीच,
जित्थे नीच सम्हालिए, उत्थे नज़र तेरी बख्शीश ।
नीचां अन्दर नीच ज़ात, सतगुरु रहे बोलाय ।

यानी, किसी पर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए, कोई ऊंच-नीच नहीं है । हिन्दू और मुसलमान, दोनों को यही नसीहत है ।

ईश्वर की बख्शीश उन्हीं को मिलेगी, जो नीचों से भी नीच को, सबसे नीच को अपनाते हैं ।

सतगुरु उन्हें बुलाते हैं, जो नीच जाति के समझे जाते हैं ।

मुसलमानों को उपदेश देते हुए नानक ने कहा :

मेहर मसीत, सिद्क़ मुसल्ला, हक़ हलाल क़ुरआन,
शर्म सुन्नत, सील रोज़ा, होय मूसलमान ।
करनी काबा, सच्च पीर कलमा करम नेवाज़,
तसबीह सातिश भावसी नानक रक्खे लाज ।

यानी, दया को अपनी मस्जिद बनाओ, सचाई को मुसल्ला बनाओ, इन्साफ़ को अपनी क़ुरान बनाओ, विनय को खतना समझो, सुजनता का रोज़ा रखो, तब तुम सच्चे मुसलमान होगे । नेक कामों को अपना काबा बनाओ, सचाई को अपना पीर बनाओ, परोपकार को कलमा समझो और खुदा की मर्ज़ी को अपनी तसबीह । तब, ऐ नानक, खुदा तुम्हारी लाज रखेगा ।

ठीक इसी तरह का उपदेश नानक ने हिन्दुओं को भी दिया ।

संयम और सदाचार पर नानक ने बहुत ज़ोर दिया है । दूसरे सूफ़ियों की तरह नानक ने आत्मा की उन्नति के लिए गुरु को परमावश्यक बताया है । सूफियों की शरीयत, मारफ़त, उक़्बा और लाहूत के मुक़ाबले में नानक ने धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, कर्मखण्ड और सचखण्ड का उपदेश दिया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नानक सूफ़ी साहित्य से पूरी तरह परिचित थे । अपने पद्यों में उन्होंने उस साहित्य का भरपूर उपयोग किया और उसी के आधार पर हिन्दू और मुसलमान, दोनों को एक मालिक और एक मार्ग का उपदेश दिया ।

हो सकता है, मुगल साम्राज्य के अन्त की शोकजनक परिस्थिति में या उसके बाद भी गुरु नानक के अनुयायी गुरु नानक के सार्वभौम सिद्धान्तों के अनुरूप पूरी तरह न चल सके हों, किन्तु यह बात संसार के लगभग सब महापुरुषों और उनके अनुयायियों के विषय में कही जा सकती है।

अन्य हिन्दू सन्त

कबीर और नानक के अलावा धन्ना जाट, पीपा, सेना नाई, रैदास चमार इत्यादि महात्माओं के उपदेश भी ठीक इसी ढंग के हैं। इन सबके पदों और उपदेशों में सूफ़ी विचार, सूफ़ी शब्द और हिन्दू और इस्लाम धर्मों की एकता का जिक्र है। रैदास ने एक स्थान पर राम के अवतार से साफ़ इनकार किया, उनके कोई-कोई पद्य फ़ारसी भाषा में भी हैं। रैदास ने ईश्वर को 'सुलतानों का सुलतान' और अपने को उसका 'शिकस्ता बन्दा' बताया है। मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, जातपांत, आदि का इन सबने विरोध किया है।

दादू

कबीर के अन्य अनेक शिष्य देश के अनेक भागों में प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक मशहूर नाम अकबर के समय में दादू का था। कहते हैं कि सम्वत् 1642 में दादू की मुलाकात फ़तेहपुर सीकरी में सम्राट अकबर से हुई। जिसमें अकबर ने सवाल किया कि खुदा की जात, अंग, वजूद और रंग क्या है। दादू ने जवाब दिया ;

इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥

यानी, प्रेम (इश्क) अल्लाह की जात है, प्रेम ही उसका शरीर है, प्रेम ही उसका अस्तित्व है और प्रेम ही उसका रंग है।

दादू के पांच हजार पद्यों में से अनेक उर्दू में और कोई-कोई अशुद्ध फ़ारसी में हैं, मसलन,

बे मेहर गुमराह गाफ़िल गोश्त खुरदनी,
बे दिल बदकार आलम हयात मुरदनी।

या—

कुल आलम यके दीदम अरवाहे इखलास,
बद अलम बदकार दुई पाक यारां पास।

दादू ने भी शरीयत और मारफ़त इत्यादि पर दरजे-बदरजे ज़ोर दिया है। दादू लिखते हैं :—

हौद हजूरी दिल ही भीतर, गुस्ल हमारा सारं।
उजू साजि अलह के आगे, तहां निमाज गुजारं॥
काया मसीत करि पंचजमाती, मन ही मुला इमामं।
आप अलेख इलाही आगे, तहें सिजदा करै सलामं॥
सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा कर ले जापं।
रोजा एक दूर करि दूजा, कलमा आपै आपं॥

अठे पहर अलह के आगे, इकटग रहिवा ध्यानं।
आपै आप अरस के ऊपर, जहां रहै रहमानं।।

यानी, ऐ दादू, मालिक की मौजूदगी का तालाब दिल के अन्दर है, उसी तालाब में मैं स्नान करता हूं, अल्लाह के सामने वज़ू करके वहीं पर मैं नमाज़ पढ़ता हूं।

दादू का शरीर उसकी मस्जिद है, जमात के पंच उसके मन के अन्दर हैं, वहीं पर उसका मुल्ला इमाम है, अलख ईश्वर को सामने खड़ा करके वहीं पर वह सिजदा और सलाम करता है।

दादू अपने समस्त शरीर को तसबीह (माला) बना कर उस पर 'करीम' का नाम जपता है, उसका केवल एक रोज़ा है और वह स्वयं अपना 'कलमा' है।

इस तरह, दादू अल्लाह के सामने एकाग्र होकर आठ पहर खड़ा रहता है और अर्श के ऊपर 'रहमान' के रहने की जगह पहुंच जाता है।

नीचे के पद्यों में दादू ने धार्मिक संकीर्णता का विरोध, हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन और एक सच्चे सार्वभौम धर्म का उपदेश दिया है। जाहिर है कि सूफ़ियों से उन्होंने भरपूर शिक्षा ग्रहण की थी। वह लिखते हैं :

सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मूसलमान।
अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरक भेद कछू नाहीं, देखौं दरसन तोरा।
ब्रह्मा विस्नु महेस को कौन पन्थ गुरुदेव।।
मुहम्मद किसके दीन में, जबराइल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर को, कहिए एक अलाह।।
ये सब किसके ह्वि रहे, यह मेरे मन मांहि।
अलख इलाही जगत गुरु, दूजा कोई नांहि।।
दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान।।
न हम हिन्दू होहिंगे, न हम मुसलमान।
षट दरशन में हम नहीं, हम राते रहिमान।।
हिन्दू लागे देहुरे, मूसलमान मसीत।
हम लागे इक अलख सौं, सदा निरन्तर प्रीत।।
न तहं हिन्दू देहुरा, ना तहं तुरक मसीत।
दादू आपे आप है, नहीं तहां रह रीत।।
यहु मसीत यहु देहुरा, सत गुरु दिया दिखाय।
भीतर सेवा बन्दगी, बाहरि काहे जाय।।
दून्यू हाथी ह्वै रहे, मिलि रस पिया न जाय।
दादू आपा मेंटि कर, दून्यू रहे समाय।।

यानी, हिन्दू या मुसलमान सबके घट में एक ही आत्मा है।

अल्लाह और राम एक है। मेरा भ्रम दूर हो गया। हिन्दू और मुसलमान

दारा शिकोह

सम्राट जहांगीर से सर टामस रो की भेंट

कालीकट नरेश सामुरी से वास्को-दे-गामा की भेंट

अलीवर्दी खां

में कोई भेद नहीं है। सबमें मुझे तू ही तू दिखाई देता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पन्थ क्या है, मोहम्मद का दीन क्या है, जिवराईल का क्या मार्ग है? एक अल्लाह उन सबका पीर और मुर्शिद है। दादू अपने दिल में जानता है कि वे सब किसके हैं। वही अलख इलाही सारी दुनिया का गुरु है, उसके सिवा और कोई नहीं।

हिन्दू और मुसलमान, दोनों भाई एक शरीर के हाथ और पैर हैं, दोनों एक शरीर के दो कान हैं, दोनों भाई दो आंखें हैं।

न हम हिन्दू होंगे और न मुसलमान, षट् दर्शन के मतभेद से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हमें केवल रहमान से प्रेम है।

हिन्दू देवालय में जाते हैं और मुसलमान मस्जिद में। हमारा सम्बन्ध केवल एक अलख से है। उसी से हमें सदा प्रीति है। हमारे धर्म में न हिन्दू के देवालय की जरूरत है और न मुसलमान की मस्जिद की; न ही वहां किसी कर्मकाण्ड की जरूरत है। वहां सम्बन्ध केवल अपनी आत्मा से है।

सतगुरु ने दिखला दिया है कि यह शरीर ही हमारी मस्जिद है और यही हमारा देवालय है। असली पूजा और नमाज अपने भीतर ही की जाती है, फिर लोग बाहर क्यों जाते हैं?

हिंदू और मुसलमान अपने-अपने झूठे अभिमान में दो हाथियों की तरह एक-दूसरे से लड़ रहे हैं। जब तक उनमें अपने-अपने धर्म का यह झूठा अभिमान है, वे मिल कर सच्ची ईश्वरभक्ति का रस नहीं ले सकते। दादू ने अपने इस आपे को मिटा दिया है। इसलिए दोनों मत उसके अन्दर समा गए हैं।

पण्डितों, मुल्लाओं, जातपांत, मूर्तिपूजा, तीर्थस्थान, हज्ज इत्यादि के विषय में दादू के विचार ठीक वैसे ही थे, जैसे कबीर के। पुनर्जन्म या आवागमन के सिद्धांत को दादू ने अलंकार की तरह माना है। गुरु को उन्होंने वेद और कुरान, दोनों से बड़ा बताया है।

मलूकदास

एक और प्रसिद्ध महात्मा, मलूकदास, अकबर के समय में सन् 1574 ईसवी में कड़ा, इलाहाबाद में पैदा हुए और औरंगज़ेब के समय में सन् 1682 ईसवी में 108 वर्ष की उम्र में मरे। उनके मठ नेपाल और काबुल तक में मौजूद थे। उनके विचार मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अन्य कर्मकाण्ड आदि के विषय में ठीक कबीर और दादू के से थे। परसेवा, सब धर्मों की एकता, हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर प्रेम आदि पर उनके विचार हर तरह अपने समय के अन्य महात्माओं के समान थे। वह लिखते हैं—

माला कहीं औ कहां तसबीह,
अब चेत इन्हिं कर टेक न टेकै।
काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,
सन्ध्या निवाज समै करि देखै।

है जमराज कहां जबरील है,

काजी है आप हिसाब के लेखै ।

पाप औ पुण्य जमा कर बूझत,

देत हिसाब कहां धरि फेकै ।

दास मलूक कहां भरमौ तुम,

राम रहीम कहावत एकै ।

यानी, कहां माला और कहां तसबीह । जागो और उनके भरोसे न रहो । कौन काफ़िर और कौन म्लेच्छ । वही सन्ध्या और वही नमाज । यम कहां है और ज़िबराईल कहां पर है । खुदा ही आप क़ाजी है और कोई हिसाब नहीं रखता । वही सबके पाप-पुण्य को समझता है और हिसाब रखता है । मलूकदास ! तू कहां भूला है, राम और रहीम एक ही के नाम हैं ।

सत्तनामियों के बारह हुकुम

सत्तनामी सम्प्रदाय के संस्थापक, बीरभान दादू के समकालीन थे । सत्तनामी अपने को साध भी कहते हैं । वीरभान ने केवल एक ईश्वर का उपदेश दिया, जिसका नाम उन्होंने सत्तनाम रखा। सत्तनामी जातपांत और छूआछूत के खिलाफ हैं । वे एक-दूसरे के साथ खाते-पीते हैं और आपस ही में विवाह करते हैं । सत्त-नामियों में तलाक की इजाजत है, वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, ध्यान और सदाचार और मनुष्य मात्र की समता पर जोर देते हैं, मांस-मदिरा का निषेध करते हैं । औरंगजेब के समय में ईश्वरदास नागर ने सम्राट से इस बात की शिकायत की थी कि सत्तनामी हिन्दू और मुसलमानों में किसी तरह का भेद नहीं करते । सत्त-नामियों के 'आदि उपदेश' 'बारह हुकुम' दिए हुए हैं, जिनका सार इस तरह है—

(1) केवल एक ही ईश्वर को मानो ; मिट्टी, पत्थर, लकड़ी या किसी और वस्तु से बनी हुई चीज की पूजा न करो ।

(2) दीनता से रहो ।

(3) कभी झूठ मत बोलो, कभी किसी की निन्दा न करो, कभी चोरी न करो, दूसरे की चीज को कभी लालच की निगाह से न देखो ।

(4) कभी बुरी बात न सुनो, सिवाय मालिक के भजनों के और कुछ न गाओ ।

(5) ईश्वर पर विश्वास करो ।

(6) जातपांत को मत मानो, किसी से बहस मत करो ।

(7) साफ़ कपड़े पहनो, किसी तरह का तिलक न लगाओ और न माला पहनो ।

(8) तम्बाकू और मादक द्रव्यों से बचो । किसी मूर्ति के सामने सिर मत झुकाओ ।

(9) किसी की जान मत लो, किसी को कष्ट मत पहुंचाओ ।

(10) एक पुरुष के लिए केवल एक स्त्री और एक स्त्री के लिए केवल एक पुरुष ही ।

(11) साधुओं की संगत ही तीर्थ है ।

(12) किसी तरह के अन्धविश्वासों, नजूम, शकुन इत्यादि को न मानो ।

निस्सन्देह, ये हुकुम उस समय के हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों के सर्वोच्च सिद्धान्तों को मिला कर रचे गए थे ।

दाराशिकोह का गुरु बाबालाल

औरंगजेब के भाई दारा शिकोह के गुरु बाबालाल भी इसी तरह के विचारों के मनुष्य थे । दाराशिकोह और बाबालाल की बातचीत एक फारसी किताब 'नादिर-उन-निकात' में दर्ज है । बाबालाल ने अपने सिद्धान्तों के समर्थन में जगह-जगह फ़ारसी कवि हाफ़िज़ के हवाले दिए हैं ।

नारायनी सम्प्रदाय

इसी तरह, उस समय के और भी अनेक सम्प्रदायों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने की पूरी कोशिश की । नारायनी सम्प्रदाय में हिन्दू और मुसलमान, दोनों एक समान लिए जाते थे । ये लोग पूरब की तरफ़ मुंह करके दिन में पांच बार ईश्वर-प्रार्थना करते थे । उनके ईश्वर के नामों में एक नाम अल्लाह भी था । वे अपने मुरदों को दफ़न करते थे, इत्यादि ।

प्राणनाथ

औरंगजेब के अन्त के दिनों में प्राणनाथ और धरनीदास के नाम भी मशहूर हैं । प्राणनाथ ने अपनी गुजराती पुस्तक 'कुलजुम सरूप' में वेदों और क़ुरान, दोनों से हवाले देकर दोनों के सिद्धान्तों की समानता दरशाई है । प्राणनाथ जाति-भेद, मूर्तिपूजा और ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध थे । उनके अनुयायियों में हिन्दू और मुसलमान, दोनों के साथ बैठ कर भोजन करना पड़ता था । यही उनकी दीक्षा थी । प्राणनाथ की एक खास पुस्तक 'कयामतनामा' है, जिसमें उन्होंने साफ़ लिखा है कि—"तुम सबका, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, एक ईमान होना चाहिए ।" इस पुस्तक में उन्होंने यहूदी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू, सबके पीर-पैगम्बरों और महात्माओं की जीवनियां दी हैं और सबमें मौलिक समानता दरशाई है । ईश्वर के लिए उन्होंने अल्लाह और खुदा, दोनों नामों का उपयोग किया है ।

अन्य प्रयत्न

जगजीवनदास, बुल्ला साहब, केशव, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, गरीबदास, शिव नारायन रामसनेही आदि के उपदेशों का भी ठीक यही सार था । जगजीवन के शिष्यों में ब्राह्मण, ठाकुर, चमार और मुसलमान, सब जातियों के लोग शामिल थे । बुल्ला साहब के उपदेशों में फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएं भरी हुई हैं । बुल्ला साहब और केशव, दोनों दिल्ली के एक मुसलमान फ़कीर, यारी साहब के शिष्य थे । मुसलमान फ़कीरों के हिन्दू शिष्य और हिन्दू फ़क़ीरों के मुसलमान शिष्य उन दिनों लाखों की तादाद में पाए जाते थे । सहजो और दयाबाई, दोनों स्त्रियां थीं और चरनदास की शिष्या थीं । चरनदास ने मूर्तिपूजा का विरोध किया तथा गुरु की महिमा और भक्ति का उपदेश दिया ; गरीब-दास कबीर के अनुयायी थे । उनके पद्यों में भी फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएं भरी हुई हैं ।

रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक, रामचरण, भी मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे । ये लोग भी दिन में पांच मर्तबा प्रार्थना करते थे और हर जाति और हर मज़हब के लोगों को अपने में ले लेते थे । स्वामी नारायण सिंह के क़ायम किए हुए शिवनारायनी सम्प्रदाय में भी सब जाति और सब मज़हबों के लोग लिए जाते थे । जब कोई शिवनारायनी मरता था, तब उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उसके शरीर को दफ़न कर दिया जाता था, या फूंक दिया जाता था, या दरिया में बहा दिया जाता था । मुगल सम्राट मोहम्मदशाह स्वामी नारायन सिंह का शिष्य था । मोहम्मदशाह की सहायता से यह सम्प्रदाय कुछ दिन खूब फैला ।

पिछले दो-तीन सौ साल के अन्दर इनमें से अनेक सम्प्रदायों के स्वरूप में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया और कहीं-कहीं उनके अनुयायियों का रहन-सहन सम्प्रदाय के क़ायम करनेवालों की इच्छा और उनके उपदेशों के ठीक विपरीत सांचे में ढल गया । फिर भी सम्राट मोहम्मदशाह का दस्तखती परवाना अभी तक शिवनारायनियों के मुख्य मठ (बलिया जिले) में मौजूद है ।

अठारहवीं सदी में सहजानन्द, दुलनदास, गुलाल, भीका और पलटूदास के नाम काफी मशहूर हैं ।

जगजीवन के शिष्य दूलनदास ने अपने पद्यों में मुसलमान सूफ़ियों, मनसूर, शम्श तबरेज़, निजामुद्दीन हाफिज, बूअली क़लन्दर और फ़रीद की खूब तारीफ़ें की है और ईश्वर को 'अल्लाह का मकां' बताया है । गुलाल, भीका और पलटूदास के कोई-कोई पद्य कविता, भाव और भक्तिरस, तीनों की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं । इन सबमें सूफ़ी परिभाषाएं भरी हुई हैं । खुदा को उन्होंने प्राय: 'हक' (सत्य) कह कर पुकारा है । पलटूदास का एक पद है :

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता ।
साहिब वह कहां है, कहां फिर नहीं है,
हिन्दू औ तुरुक तोफ़ान करता ।।
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खेंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता ।
दास पलटू कहै साहिब सबमें रहै,
जुदा ना तनिक मैं सांच कहता ।।

यानी, यदि राम पूरब में है और खुदा पश्चिम में है, तो फिर उत्तर और दक्षिण में कौन रहता है ? खुदा कहां है और कहां नहीं ? हिन्दू और मुसलमान व्यर्थ तूफान खड़ा करते हैं । हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं और दोनों मजहबों को एक-दूसरे के विरुद्ध खींचते हैं । दास पलटू सच कहता है, खुदा सबमें है, वह हरगिज बंटा हुआ नहीं है । यही सच है ।

सत्यपीर की पूजा

जिस तरह उत्तर भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक मेल की लहरें चल रही थीं, उसी तरह बंगाल और महाराष्ट्र में भी उनके अक्स दिखाई देने लगे। बारहवीं सदी के बंगाल में हिन्दुओं का मुसलमानों की दरगाहों में मिठाई चढ़ाना, कुरान पढ़ना और मुसलमानों के त्योहार मनाना और इसी तरह मुसलमानों का हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों की ओर क्रियात्मक आदर दिखलाना एक आम बात थी। इसी मेल-जोल में से बंगाल में एक नए देवता की पूजा शुरू हुई, जिसे 'सत्यपीर' कहते थे। हिन्दू और मुसलमान, दोनों सत्यपीर की पूजा करते थे। कहा जाता है कि गौड़ का बादशाह हुसैनशाह इस नए सम्प्रदाय का संस्थापक था। निस्सन्देह, सत्यपीर की पूजा सम्राट अकबर के 'दीने इलाही' का एक प्रारम्भिक रूप थी।

चैतन्य

पन्द्रहवीं सदी के अन्त में बंगाल में महाप्रभु चैतन्य का जन्म हुआ। दिनेशचन्द्र सेन ने बंगला भाषा और बंगला साहित्य के इतिहास पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसमें वह लिखते हैं कि चैतन्य के जन्म से पहले—

"ब्राह्मणों का प्रभुत्व बहुत कष्टकर हो गया था। कुलीनता के पक्का होने के साथ-साथ जाति-भेद अधिकाधिक कड़ा होता चला गया। ब्राह्मण लोग कहने के लिए अपने धर्म में ऊंचे आदर्शों का प्रतिपादन करते थे, किन्तु जाति-बन्धन के समय मनुष्य-मनुष्य में अन्तर बढ़ता जा रहा था। नीची जातियों के लोग ऊंची जातियों के लोगों के स्वेच्छाचार के नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊंची जाति के लोगों ने नीची जातिवालों के लिए विद्या के दरवाजे बन्द कर रखे थे। इन लोगों के लिए अधिक ऊंचे जीवन में प्रवेश करने की मनाही थी और नए पौराणिक धर्म पर ब्राह्मणों का ठेका हो गया था, मानो वह कोई बाजारी चीज हो।"*

इस्लाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों और मनुष्यमात्र की समता के आदर्श ने उस समय के बंगाली समाज में तहलका मचा दिया। चैतन्य ने इस स्थिति पर गम्भीरता के साथ विचार किया। वह घरबार छोड़ कर देशाटन करने लगे। अनेक साधुओं और फ़कीरों से उनकी भेंट हुई। चैतन्य के जीवन चरित्र का रचयिता कृष्णदास लिखता है कि वृन्दावन में एक मुसलमान पीर के साथ चैतन्य की भेंट हुई और पीर ने अपनी धार्मिक पुस्तक के आधार पर चैतन्य को एक खुदा की पूजा का उपदेश दिया। जदु भट्टाचार्य लिखता है—"चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाएं ऐसी हैं, जिनसे पूरी तरह साबित है कि वह मुसलमानों से बड़ा प्रेम करते थे।"† इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमान सूफ़ियों के विचारों का चैतन्य के उपदेशों पर भी असर पड़ा।

चैतन्य ने गुरु की सेवा और भक्ति का उपदेश दिया, जाति-भेद का कड़ा विरोध किया और ब्राह्मणों के तमाम कर्मकाण्ड को त्याज्य बताया। चैतन्य के शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान, उच्च जाति के लोग और नीच जाति के लोग, सब शामिल थे। उनके

**History of Bengali Language and Literature* by Dinesh Chandra Sen.

†Jaddu Bhattacharya : *Hindu Castes and Sects*, p. 464.

मुख्य शिष्यों में से तीन—रूप, सनातन और हरिदास—मुसलमान थे। अपने तमाम शिष्यों में चैतन्य हरिदास से सबसे अधिक प्रेम रखते थे।

कर्त्ताबाबा

चैतन्य के सम्प्रदाय की एक शाखा का नाम कर्ताभज था। उसके संस्थापक कर्ताबाबा एक मुसलमान फ़क़ीर की दुआ से पैदा हुए थे और उस फ़क़ीर ने ही उन्हें पाला था। कर्ताबाबा के बाईस मुख्य शिष्य 'बाईस फ़क़ीर' के नाम से मशहूर हुए। इनमें से एक रामदुलाल की बाबत, जो कर्ताबाबा का उत्तराधिकारी हुआ, कहा जाता है कि उसके अन्दर उसी मुसलमान फ़क़ीर की रूह आ गई थी। इस सम्प्रदाय के आचार्यों में से अनेक हिन्दू हुए और अनेक मुसलमान। ये लोग केवल एक ईश्वर को मानते थे, गुरू को ईश्वर का अवतार मानते थे, दिन में पांच बार गुरुमंत्र का जप करते थे, मांस-मदिरा से परहेज करते थे, शुक्रवार को पवित्र दिन मानते थे और उसे धर्मचर्चा में व्यतीत करते थे, जातपांत ऊंच-नीच, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का उनमें कोई भेद न था, साल में कम-से-कम एक-दो बार सम्प्रदाय के सब लोग एक साथ मिल कर भोजन करते थे, इत्यादि।

बौद्ध ग्रन्थों में मुसलमान

बंगाल में जिन दिनों बौद्धों के ऊपर शैवों के अत्याचार जारी थे, उन दिनों, मालूम होता है, एक दरजे तक, बौद्धों को मुसलमानों से सहायता, दिलासा और आश्रय मिला। बंगाल के उस समय के बौद्ध ग्रन्थों, 'शून्यपुराण', 'धर्मपूजा पद्धति', 'धर्म गजन', 'बाद जननी' इत्यादि में और बौद्ध गीतों में ब्राह्मणों के प्रति क्रोध और बदले का भाव और मुसलमानों, मुस्लिम विचारों और मुसलमान ग्रन्थों के प्रति प्रेम भरा हुआ है। उस समय के इन बौद्ध काव्यों से कुछ विचित्र बातों का पता चलता है। मसलन यह कि उस समय बंगाल जानेवाले बहुत से-मुसलमान मांस से परहेज करते थे। एक जगह लिखा है :

"खोंकड़ (?) पश्चिम की तरफ मुंह किए ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है।"

"कोई अल्लाह की पूजा करता है, कोई अली की और कोई महमूद साईं की।"

"मियां किसी जीव की हत्या नहीं करता और न मुरदार खाता है।"

"धीमी आंच के ऊपर वह अपना भोजन पका रहा है।"

"जातपांत के भेद अब धीरे धीरे टूट जाएंगे, क्योंकि देखो, हिन्दू कुटुम्ब के अन्दर एक मुसलमान है।"

× × ×

"ऐ खुदा! मैं जानता हूं, तू और सबसे बड़ा है। मैं बहुत चाहता हूं कि तेरे मुंह से क़ुरान सुनूं।"

महाराष्ट्री सन्त

उत्तर भारत की तरह महाराष्ट्र के हिन्दू महात्माओं ने भी हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध महाराष्ट्र विद्वान महादेव गोविंद रानडे लिखते हैं :

"इस्लाम का कठोर एक ईश्वरवाद कबीर, नानक इत्यादि सन्तों के चित्तों में घर कर गया था। हिन्दू त्रिमूर्ति (दत्तात्रेय) के उपासक अक्सर अपने देवता को मुसलमान फ़क़ीर के से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्र की जनता के चित्त पर और भी जोरों के साथ काम कर रहा था। ब्राह्मण और अ-ब्राह्मण, दोनों तरह के प्रचारक वहां लोगों को उपदेश दे रहे थे कि राम और रहीम को एक समझो, कर्मकाण्ड और जाति भेद के बन्धनों को तोड़ दो और ईश्वर में विश्वास और मनुष्यमात्र के साथ प्रेम को, सब मिल कर, अपना एक समान धर्म बनाओ।"*

नामदेव

महाराष्ट्र के पहले सन्त, जिन्होंने लोगों को जाति-भेद, कर्मकाण्ड और धार्मिक संकीर्णता के बन्धन से हटा कर स्वतन्त्रता, प्रेम और भक्ति का उपदेश दिया, नामदेव थे। रानडे लिखते हैं कि नामदेव और दूसरे सन्तों के उपदेशों का नतीजा यह हुआ कि मराठी भाषा के साहित्य की उन्नति हुई, जाति-भेद ढीला हुआ, स्त्रियों का पद ऊंचा हुआ; उदारता और दयालुता फैली, इस्लाम के साथ हिन्दू मत का एक दरजे तक मेल हो गया; कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा आदि का महत्व घटा; प्रेम का महत्व बढ़ा; अनेक देवी-देवताओं की पूजा कम हुई और विचारों और क्रियाओं, दोनों क्षेत्रों में राष्ट्र की ताक़त बढ़ी। §

खेचर

नामदेव के गुरु खेचर ने नामदेव को जो उपदेश दिया, उससे ज़ाहिर है कि खेचर मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने कहा कि—

"पत्थर का देवता कभी नहीं बोलता, तो फिर वह हमारे इस जीवन के दुखों को कैसे दूर कर सकता है? पत्थर की मूर्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं, किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छाएं पूरी कर सकता, तो गिराने पर वह टूट क्यों जाता? जो लोग पत्थर के बने हुए देवता की पूजा करते हैं, वे अपनी मूर्खता से सब कुछ खो बैठते हैं। जो लोग यह कहते हैं और जो यह सुनते हैं कि पत्थर का देवता अपने भक्तों से बातचीत करता है, वे दोनों मूर्ख हैं × × ×।"†

नामदेव के अनेक शिष्यों और अनुयायियों में पुरुष और स्त्री, हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और मराठी, कुनबी, दरजी और कुम्हार, यहां तक कि अन्त्यज, महार और धर्मनिष्ठ वेश्याएं भी शामिल थीं।‡

चोखमेला और बहीराम

नामदेव का एक महार शिष्य, चोखमेला, जिस समय पण्ढरपुर के मशहूर मन्दिर में जाने लगा और ब्राह्मण पुरोहितों ने उसे मना किया, तब चोखमेला ने उत्तर दिया :

"उच्च जाति में पैदा होने से क्या लाभ × × जो मनुष्य नीच जाति का भी हो, किन्तु यदि वह दिल का सच्चा है, ईश्वर से प्रेम करता है, सब प्राणियों

---

*Ranade : *Rise of the Maratha Power*, pp. 50, 51.
§Ranade : *Rise of the Maratha Power.*
†Bhandarkar : *Vaishnavism.*
‡Ranade : *Rise of the Maratha Power*, p. 146.

को अपने समान समझता है, अपने और दूसरों के बच्चों में कोई भेदभाव नहीं रखता और सच बोलता है, तो उसकी जाति पवित्र है और ईश्वर उस से प्रसन्न है। जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वर पर विश्वास है और मनुष्य के साथ प्रेम है, उससे जाति कभी न पूछो। ईश्वर अपने बच्चों से प्रेम और भक्ति चाहता है, वह उनकी जाति की परवाह नहीं करता।"*

बहीराम भट्ट सत्य की खोज में दो दफ़े हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हुआ। अन्त में उसने कहा, "मैं न हिन्दू हूं और न मुसलमान।"

शेख मोहम्मद

दक्षिण भारत में शेख मोहम्मद एक बहुत बड़ा भक्त हुआ है। उसके अनुयायी रमज़ान के रोज़े भी रखते हैं और एकादशी का व्रत भी, मक्के की भी यात्रा करते हैं और पण्ढ़रपुर के मन्दिर की भी।

तुकाराम

सन्त तुकाराम दक्षिण के शायद सबसे अधिक सर्वमान्य भक्त थे। कबीर आदि के समान तुकाराम जातपांत, मूर्तिपूजा, यज्ञ, हवन और अन्य कर्मकाण्ड के कट्टर विरोधी और एक हरि की भक्ति के प्रचारक थे। प्रत्येक प्राणी के रूप में उन्हें हरि ही दिखाई देता था। इस्लाम और हिन्दू धर्म को मिलाने का तुकाराम का प्रयत्न उनके एक पद्य से ज़ाहिर है, जिसका भाषान्तर यह है :

जो 'अल्लाह' चाहता है, ऐ मेरे बाबा, वही होता है। सबका बनानेवाला सबका बादशाह है। पशु और मित्र, बग़ीचे और माल, सब जाते रहेंगे। ऐ बाबा! मेरा चित्त मेरे 'साहेब' पर लगा है। वही मेरा बनानेवाला है। मैं मन के घोड़े पर सवार हूं और आत्मा सवारी करता है। ऐ बाबा! अल्लाह का ज़िक्र करो, सब उसी के रूप हैं। तुका कहता है, जो मनुष्य इस बात को समझे, वही दरवेश है।

बड़े नामों में सबसे पहला नाम 'अल्लाह' है। उसे सदा दुहराते रहो, भूलो नहीं। सचमुच अल्लाह एक है, सचमुच नबी एक है, वहां तू भी एक है, वहां तू भी एक है, वहां तू भी एक है! वहां न मैं हूं और न तू है!†

निस्सन्देह, हिन्दू मत, बौद्ध मत और इस्लाम के मेल से उस समय भारत के अन्दर उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक एक सुन्दर सार्वजनिक मानव धर्म की नींव रखी जा रही थी, जिसका मूलमन्त्र एकता, प्रेम और सबकी सेवा था।

भारतीय कला और मुसलमान

निर्माण-कला

जिस तरह धार्मिक विचारों पर, उसी तरह भारतीय निर्माण-कला और भारत की चित्रकारी पर भी मुसलमानों के आने का बहुत गहरा और हितकर प्रभाव पड़ा। प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार लिखते हैं कि मुसलमानों के शासनकाल में भारत की निर्माण-कला ने उन्नति की।

---

*Ibid, p. 154.

†Tukaram's *Abhanga.* pp. 85, 86, Godbole's edition.

ईसा की आठवीं सदी तक भारतीय शिल्प पर बौद्ध मत का खास असर था। आठवीं से तेरहवीं सदी तक इस कला में पुराने हिन्दू आदर्शों की प्रधानता रही, किन्तु फिर भी बौद्ध मत का प्रभाव उस पर साफ़ दिखाई देता रहा। हम इस विषय की वैज्ञानिक बारीकियों में नहीं पड़ना चाहते। किन्तु एक-दो बातें स्पष्ट हैं। हर देश के लोगों के कला आदर्शों पर सबसे बड़ा असर उस देश की भौगोलिक स्थिति का पड़ता है। भारत अभेद्य जंगलों, प्रचण्ड ऋतुओं, बड़ी-बड़ी नदियों, पहाड़ों और घनी वनस्पतियों का देश है। यही वजह है कि भारतीय शिल्प-कला में सदा से विशालता, स्थूलता और विस्तार पर अधिक ज़ोर दिया जाता रहा है। भारत के वनों में तरह-तरह के बेशुमार फूल-पत्तियां इधर से उधर तक गुंथी हुई दिखाई देती हैं—नीचे की ओर या ऊपर की ओर, कहीं भी नज़र डाली जाए, एक गज भर ज़मीन सूनी दिखाई नहीं देती। यही वजह है कि प्राचीन भारतीय मन्दिरों और महलों की दीवारों के ऊपर और कोनों में कहीं एक फ़ुट ज़मीन भी खाली दिखाई नहीं देती। पुराने समय के हिन्दू मन्दिरों में नींव के ऊपर नींव, मंज़िल के ऊपर मंज़िल, कंगूरे के ऊपर कंगूरा और कलश के ऊपर कलश आकाश तक पहुंचते दिखाई देते हैं और इसके साथ-साथ कोई कोना या दीवार का हिस्सा नहीं रहता, जो मूर्तियों या चित्रों से न भरा हो। शिल्प-कला-विशारदों की राय है कि संसार के किसी भी दूसरे देश की निर्माण-कला विस्तार-बाहुल्य और अतिशोभनीयता में हिन्दू निर्माण-कला का मुकाबला नहीं कर सकती।

इसके ठीक विपरित अरब एक विशाल रेगिस्तान है, जिसमें केवल दूर-दूर और कहीं-कहीं थोड़े-से हरे नख़लिस्तान दिखाई देते हैं। इसके ऊपर अरब की तेज़ गर्मी, भोजन और वस्त्र के लिए परिमित और इनी-गिनी सामग्री और रेत के पहाड़। क़ुदरती तौर पर मुसलमानों की शुरू की निर्माण-कला में बड़े-बड़े भवन, सादी साफ़ दीवारें और ऊंचे मीनार और गुम्बद अधिक देखने में आते हैं। इस्लाम के एक ईश्वरवाद और मूर्ति-भंजकता ने भी पुराने मूर्तिपूजक धर्मों के मुक़ाबले में मुस्लिम कला में इस आदर्श को अपना एक खास रूप दिया और उसे और अधिक पक्का कर दिया। जिस मनुष्य की आंखें प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के विस्तार-प्रपंच से उकता गई हों, उसे एक सीधी-सादी मुस्लिम मस्जिद की साफ़ दीवारों में विश्राम मिलना क़ुदरती है। इसी तरह, जो मनुष्य पुरानी मुस्लिम मस्जिदों या महलों की अभिन्नता से ऊब गया हो, उसके लिए हिन्दू निर्माण-कला का बाहुल्य एक दर्जे तक अवश्य आकर्षक होगा।

दो कलाओं का आलिंगन

यह भी जाहिर है कि इन दोनों आदर्शों के मेल-जोल से एक इस तरह की निर्माण-कला को जन्म दिया जा सकता था, जो दोनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर और अधिक आकर्षक हो। धार्मिक और जातीय पक्षपात इस तरह के संगम के रास्ते में बाधक होते हैं। किन्तु फिर भी दो अलग-अलग आदर्शों के मिलने से, जाने या अनजाने, इस तरह का संगम हुए बिना नहीं रह सकता। इसके अलावा, हम ऊपर दिखला चुके हैं कि मुसलमानों के भारत आने के समय से ही इस धार्मिक या जातीय पक्षपात को मिटाने के लिए भी अनेक कोशिशें जारी थीं। जिस तरह धार्मिक विचारों में, उसी तरह निर्माण-कला और चित्र-कारी के मैदान में भी भारत ने उन नए आदर्शों को जन्म देना शुरू किया, जो हिन्दू और

मुस्लिम; दोनों अलग-अलग आदर्शों से उच्चतर थे और जिनके नतीजे भी उन दोनों के नतीजों से अधिक सुन्दर थे। तीनों तरह के आदर्शों का साक्षात करने के लिए एक ओर दक्षिण के प्राचीन मन्दिरों या जगन्नाथपुरी के मन्दिर, दूसरी ओर अजमेर और दिल्ली आदि की पुरानी मस्जिदों और तीसरी ओर मुग़ल समय के आगरे और दिल्ली के शाही महलों या भारतीय निर्माण-कला के सबसे अधिक सुन्दर नमूने, आगरे के ताज की ओर निगाह डालना काफ़ी है। निस्सन्देह, आगरे का ताज संसार की सबसे शानदार और सबसे अधिक सुन्दर इमारतों में गिना जाता है, भारतीय निर्माण-कला के मस्तक पर वह झूमर का काम देता है, देश की इस पतित अवस्था में भी हर भारतवासी के सच्चे अभिमान और गौरव का पात्र है और शिल्प के मैदान में इस्लाम से पहले के भारतीय आदर्शों और बाद के मुस्लिम आदर्शों, दोनों के प्रेमालिंगन का सबसे सुन्दर नमूना है।

शिल्प-कला के माहिर हमें बताते हैं कि ईसा की तेरहवीं सदी से पहले की भारत की हिन्दू और मुसलमान इमारतें दो साफ़ अलग-अलग आदर्शों के अनुसार बनी हुई दिखाई देती हैं, किन्तु उसके बाद की हिन्दू इमारतों पर मुस्लिम छाप और मुस्लिम इमारतों पर हिन्दू छाप भी उतनी ही साफ़ दिखाई देती है और दोनों सौन्दर्य को बढ़ाती हुई नज़र आती हैं। यही वजह है कि भारत की मुस्लिम शिल्प-कला, मिस्र की मुस्लिम शिल्प-कला, शाम की मुस्लिम शिल्प-कला, ईरान की मुस्लिम शिल्प-कला और तुर्की की मुस्लिम शिल्प-कला, इन सबमें बहुत बड़ा अन्तर है।

दिल्ली और आगरे के अलावा राजपूताना और कश्मीर इत्यादि में भी इस मिले-जुले आदर्श के काफ़ी नमूने अभी तक मौजूद हैं। सोलहवीं सदी के बने हुए वृन्दावन के कुछ वैष्णव मन्दिर, सोनागढ़ के कुछ जैन मन्दिर, विजयनगर की अनेक इमारतें और सत्रहवीं सदी का बना हुआ मदुरा का तिरुमलाई नायक का प्रसिद्ध महल भी इसी मिले-जुले कला-आदर्श के नमूने हैं।

सोलहवीं सदी के क़रीब 'समाधि' या 'छतरियां' बनाना हिन्दुओं में पहली बार शुरू हुआ और निस्सन्देह यह रिवाज हिन्दुओं में मुसलमानों से आया। इमारतों में मेहराब का उपयोग, डाट की गोल छत और आजकल की उद्यान-कला, ये तीनों भारत ने मुसलमानों ही से सीखीं। वर्तमान भारत के सुन्दर-से-सुन्दर बाग़ मुगल सम्राटों के समय के बने हुए ह, जिनमें जहांगीर के समय का बना हुआ कश्मीर का शालीमार बाग़ अभी तक संसार का सबसे सुन्दर बाग माना जाता है।

चित्रकला

इसी तरह, चित्रकला में भी दो अलग-अलग आदर्शों के मेल से मुग़ल सम्राटों के अधीन भारत ने एक अधिक उच्च और अधिक सुन्दर चित्रकला को जन्म दिया। हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शाहजहां के महलों में सैकड़ों हिन्दू चित्रकार केवल अपनी कला को तरक्की देने के लिए बड़ी-बड़ी तनख़ाहें पाते थे। शीराज़, तबरेज़, यहां तक कि चीन के बड़े-बड़े चित्रकार भी वहां मौजूद रहते थे और निस्सन्देह ये सब एक-दूसरे की सहायता से अपनी-अपनी कला की उन्नति करते थे। उस समय की फ़ारसी पुस्तकों और दस्तावेज़ों में जयपुर, ग्वालियर, गुजरात, कश्मीर इत्यादि के रहनेवाले मुग़ल दरबार के अनेक हिन्दू और मुसलमान चित्रकारों के नाम मिलते हैं, जिनमें से कुछ के हाथ के खिंचे हुए सुन्दर चित्र

अभी तक चित्रकला विशारदों को चकित करते रहते हैं। दिल्ली और आगरे से लेकर जयपुर, जम्मू, चम्बा, कांगड़ा, लाहौर, अमृतसर और दक्षिण में तंजौर तक, उस समय एक सुन्दर भारतीय चित्रकला फैलती और उन्नति करती हुई दिखाई देती थी। दिल्ली और आगरे में जिन आदर्शों को जन्म दिया जाता था, राजपूताना और बाक़ी भारत के हिन्दू दरबारों में उनकी नक़ल की जाती थी। प्रोफेसर जदुनाथ सरकार लिखते हैं :

"चित्रकला के मैदान में हमारे चित्रकारों ने जो गरमामूली तरक्की मुगलों के जमाने में की, वह और कभी नहीं की।"*

उस समय के अनेक अंगरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि जहांगीर के उदार प्रोत्साहन की बदौलत जहांगीर के समय की भारतीय चित्रकला संसार में सबसे अधिक उन्नत चित्रकला थी।†

मुग़लों का समय

मुग़लों के हमले

अब यह देखना है कि धार्मिक विचारों, शिल्प और चित्रकारी से बाहर बाक़ी भारतीय जीवन पर बाहर से आनेवाले मुसलमानों का क्या असर पड़ा। ऊपर आ चुका है कि मोहम्मद गोरी के हमले से लेकर 300 साल तक भारत में लगातार घरेलू लड़ाइयों और छोटी-बड़ी अनेक सल्तनतों का समय था। इसके बाद दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य का समय आया। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में ही भारत के अन्दर मुसलमानों की हकूमत, उनकी सभ्यता और उनका प्रभाव पराकाष्ठा को पहुंचा। किन्तु मुग़लों के शासन और भारत पर मुग़ल साम्राज्य के अपकारों या उपकारों को बयान करने से पहले हम मुग़लों द्वारा संसार के अन्य देशों की विजय पर भी एक नज़र डालना चाहते हैं।

ईसा की तेरहवीं सदी के शुरू में चंगेज़ ख़ां ने पूर्वी एशिया से निकल कर उत्तरी चीन, तातार और बाक़ी अधिकांश एशिया को विजित कर लिया था। सन् 1227 ईसवी में चंगेज़ ख़ां की मृत्यु हुई। इसके 68 साल के अन्दर चंगेज़ ख़ां के उत्तराधिकारियों ने भारत को छोड़कर बाक़ी क़रीब-क़रीब तमाम एशिया को और यूरोप के एक बहुत बड़े हिस्से को मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर लिया। यूरोप पर उनका हमला सन् 1238 ईसवीं में हुआ। यूरोपियन इतिहास-लेखक कहते हैं कि ईसा की आठवीं सदी में जब अरबों ने यूरोप पर हमला किया था, उस समय से सन् 1238 तक कोई और इतनी भयंकर आपत्ति यूरोप पर न आई थी। कुछ साल के अन्दर ही तमाम रूस, पोलैण्ड, बलकान, हंगरी, यहां तक उत्तर में बालटिक समुद्र और पश्चिम में जर्मनी तक, आधे से ज्यादा यूरोप मुगलों के अधीन हो गया। रूस के ऊपर दो सौ साल तक मुगलों की हकूमत रही। शुरू के मुग़ल बौद्ध थे। स्वयं चंगेज ख़ां बौद्धमत का अनुयायी था और साथ ही अपने देश मंगोलिया के कुछ प्राचीन धार्मिक रिवाजों, अश्वपूजा, इत्यादि का भी पालन करता था। इन्हीं मुग़लों ने अधिकांश एशिया और यूरोप को जीता। बौद्ध मुग़लों ने मुस्लिम

---

*......the highest genius was displayed by our artists in this field in the Mughal age.—*Mughal Administration* by J. N. Sarkar, p. 128.

†*History of Jehangir* by Dr. Beniprasad, M.A., pp. 92-94.

ईरान और मुस्लिम इराक को फ़तह किया और उसके बाद चंगेज़ ख़ां के पौत्र हिलाकू ख़ां और उसके साथ के दूसरे मुग़लों ने पराजित ईरानियों और अरबों से इस्लाम मत की दीक्षा ली।

भारत पर मुग़लों का सबसे पहला हमला सन् 1398 ईसवी में तैमूर का हमला था। महमूद तुग़लक उस समय दिल्ली के तख्त पर था। किन्तु सिवाय चन्द रोज़ की लूट-खसोट और संहार के, जिसमें हिन्दू और मुसलमानों का कोई फ़र्क़ नहीं किया गया और कोई असर तैमूर के हमले का भारत पर बाक़ी न रह सका और न तैमूर 15 दिन से ज्यादा दिल्ली में ठहर सका।

मुग़लों का दूसरा हमला इस देश पर सन् 1526 ईसवी में बाबर का हमला था। उस समय तक मुग़ल अपनी जन्मभूमि 'मंगोलिया' से कहीं अधिक सभ्य देश ईरान में वर्षों रह चुकने के सबब से चंगेज़ और तैमूर के मुक़ाबले में कहीं अधिक सभ्य और सभ्यताप्रेमी बन चुके थे। पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहीम लोधी को शिकस्त दी और भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव रखी।

पानीपत की विजय के बाद बाबर ने भारत को अपना घर बना लिया। हूमायूं को छोड़कर उसके बाक़ी वंशज भारत में ही पैदा हुए।

भारत में एक प्रधान शक्ति की ज़रूरत

सम्राट हर्षवर्धन के बाद से, यानी ईसा की सातवीं सदी के मध्य से, सोलहवीं सदी के शुरू तक क़रीब 900 साल तक भारत के अन्दर कोई भी प्रधान राजनैतिक शक्ति ऐसी पैदा होने न पाई थी, जो सारे भारत को एक शासन के सूत्र में बांध सकती। 900 साल तक भारत अनेक छोटी-छोटी, एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धी रियायतों का संघर्ष-स्थल बना रहा। वह सारा समय भारत के इतिहास में राजनैतिक निर्बलता, अनैक्य और अव्यवस्था का समय था। भारत को उस समय एक ऐसी प्रधान शक्ति की ज़बरदस्त आवश्यकता थी जो सारे देश पर एक समान हकूमत कायम कर सके, देश की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बांध सके और देशव्यापी शान्ति और सुशासन द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में देश को आगे बढ़ने का मौका दे सके। इतिहास इस बात का गवाह है कि ईसा की सोलहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य ने भारत की इस कमी को ख़ासी सुन्दरता के साथ पूरा किया। निस्सन्देह, राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल, खुशहाली, शिक्षा और सुशासन की निगाह से भारत के सारे इतिहास में मुग़ल साम्राज्य का समय सबसे अधिक गौरवान्वित समय था।

मुग़लों द्वारा भारतीय एकता का निर्माण

मुग़लों के समय से पहले प्रियदर्शी सम्राट अशोक और सम्राट समुद्रगुप्त के साम्राज्य भारत में सबसे अधिक विशाल साम्राज्य रह चुके थे। किन्तु प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार लिखते हैं कि मुग़ल साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा के समय अशोक और समुद्रगुप्त, दोनों के साम्राज्यों से कहीं बड़ा था। इसके अलावा, अशोक या समुद्रगुप्त के दिनों में साम्राज्य के अन्दर विविध प्रान्तों का जीवन एक-दूसरे से इतना अच्छा गुंथा हुआ न था। सबकी अलग-अलग भाषाएं, अलग-अलग शासन-पद्धति और अलग-अलग जीवन था। किन्तु जदुनाथ सरकार लिखते हैं :

"इसके विपरीत, अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से मोहम्मदशाह की मृत्यु के समय तक (1556–1749), इन दो सौ साल के मुग़ल शासन ने सारे उत्तरभारत और अधिकांश दक्षिण को भी, एक सरकारी भाषा, एक शासन–पद्धति, एक समान सिक्के और हिन्दू पुरोहितों या निश्चल ग्रामीण जनता को छोड़ कर बाक़ी समस्त श्रेणियों के लोगों के लिए एक व्यापक सर्वप्रिय बोलचाल की भाषा प्रदान की। जिन प्रान्तों पर मुग़ल सम्राटों का बराहरास्त शासन था (यानी जिनके सूबेदार दिल्ली सम्राट की ओर से नियुक्त किए जाते थे), उनसे बाहर भी आसपास के हिन्दू राजा, कम या अधिक, मुग़लों की शासन प्रणाली, उनकी सरकारी परिभाषाओं, उनके दरबारी शिष्टाचार और उनकी तरह के सिक्कों का उपयोग करते थे।

"मुग़ल साम्राज्य क अन्दर बीस भारतीय 'सूबे' थे। इन सब सूबों पर ठीक एक प्रणाली के अनुसार शासन किया जाता था, सबमें एक शासन–विधि का पालन किया जाता था, और विविध सरकारी ओहदों के नाम और उपाधियां सबमें एक समान थीं। तमाम सरकारी मिसलों, फ़रमानों, सनदों, माफ़ियों, राहदारी के परवानों, पत्रों और रसीदों में फ़ारसी भाषा का उपयोग किया जाता था। साम्राज्य भर में एक समान वजन क, एक–से मूल्य के, एक नाम के और एक ही धातु के सिक्के प्रचलित थे, केवल जिस शहर की टकसाल में कोई सिक्का ढला होता था, उस शहर का नाम उस पर और खुदा होता था। सरकारी कर्मचारियों और सिपाहियों का अक्सर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में तबादला होता रहता था। इस तरह, एक प्रान्त के रहनेवाले दूसरे प्रान्त में पहुंच कर उसे क़रीब–क़रीब अपने घर की तरह समझने लगते थे। सौदागर और यात्री निहायत आसानी से एक शहर से दूसरे शहर और एक सूबे से दूसरे सूबे आ में जा सकते थे, और एक साम्राज्य की छाया में सब लोग इस विशाल देश की एकता को अनुभव करते थे।"*

---

*"On the other hand, the two hundred years of Mughal rule, from the accession of Akbar to the death of Mohammad Shah (1556-1749), gave to the whole of Northern India, and much of the Deccan also, oneness of the official language, administrative system and coinage and also a popular *lingua-franca* for all classes except the Hindoo priests and the stationary village folk. Even outside the territory directly administered by the Mughal Emperors, their administrative system, official nomenclature, court etiquette and monetary type were borrowed, more or less, by the neighbouring Hindoo Rajas.

"All the twenty Indian *subahs* of the Mughal Empire were governed by means of exactly the same administrative machinery with exactly the same procedure and official titles. Persian was the one language used in all office records, farmans, sanads, landgrants, passes, despatches and receipts. The same monetary standard prevailed throughout the Empire, with coins having the same names, the same purity and the same denominations, and differing only in the name of the mint-town. Officials and soldiers were frequently transferred from one province to another. Thus, the native of one province felt himself almost at home in another province; traders and travellers passed most easily from city to city, *subah to subah*, and all realised the imperial oneness of this vast country."—*Mughal Administration by Jadunath Sarkar*, pp. 129, 130.

इतिहास-कला

मुसलमानों के आने से पहले का हिन्दुओं का लिखा हुआ ऐतिहासिक साहित्य अव्वल तो है ही बहुत कम और जो है भी, उसमें तिथियों का क़रीब-क़रीब अभाव है। इसके विपरीत, अरबों के लिखे हुए इतिहासों, सफ़रनामों और जीवनचरित्रों में सदा ठीक-ठीक तिथि दर्ज होती है। प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार का कहना है कि भारतवासियों को दूसरा लाभ जो मुसलमानों से पहुंचा, वह इस देश के अन्दर ऐतिहासिक साहित्य का प्रारम्भ था।

दूसरे देशों से सम्बन्ध

बौद्ध काल के बाद से बाहर के देशों के साथ भारत का सम्बन्ध भी कम होता जा रहा था। तिजारत गिरती जा रही थी। मुग़लों के शासनकाल में भारत का सम्बन्ध बाहर के दूसरे देशों के साथ फिर से क़ायम हुआ। मुग़ल साम्राज्य के क़रीब-क़रीब आख़िर तक अफ़गानिस्तान दिल्ली के सम्राट के अधीन रहा। अफ़गानिस्तान के ज़रिए बुख़ारा, समरक़न्द, बलख, खुरासान, ख्वारज़िम और ईरान से हज़ारों यात्री और व्यापारी भारत आते-जाते थे। सम्राट जहांगीर के दिनों में तिजारती माल से लदे हुए चौदह हजार ऊंट हर साल केवल बोलन दर्रे से होकर भारत आते-जाते थे। इसी तरह, पश्चिम में ठट्टा, भड़ोच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ और कारवार और पूरब में मछलीपट्टन और दूसरे बन्दरगाहों से हज़ारों जहाज़ हर साल अरब, ईरान, टर्की, मिस्र, अफ्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा, स्याम और चीन आते-जाते रहते थे। जदुनाथ सरकार इसे भारत पर मुग़ल साम्राज्य का तीसरा उपकार बताते हैं।

धार्मिक और सामाजिक एकता

चौथा उपकार, प्रोफ़ेसर सरकार की राय में, भारत की उन धार्मिक और सामाजिक लहरों का अधिक ज़ोरों के साथ फैलना था, जिनका हम ऊपर विस्तार के साथ जिक्र कर चुके हैं। पांचवां उपकार शिल्प-कला और चित्रकारी की अपूर्व उन्नति और उसका विस्तार था।

युद्ध-विद्या, सैनिक व्यवस्था और क़िलेबन्दी के कामों में भी जो उन्नति मुग़लों के समय में हुई, उतनी पहले कभी न हुई थी। बन्दूकों और तोपों का रिवाज़ तमाम भारत में अधिकतर मुग़लों ही के समय से फैला।

ख़ास कर उत्तर भारत के रहन-सहन और वेश-भूषा में मुसलमानों का साफ़ प्रभाव दिखाई देता है। पंजाबी, हिन्दी, बंगला, गुजराती और मराठी भाषाओं में आज तक असंख्य फ़ारसी, अरबी और तुर्की शब्द भरे हुए हैं, उत्तर भारत में यदि किसी हलवाई की दुकान पर मिठाइयों के नाम गिने जाएं, तो उनमें बालूशाही, गुलाब जामुन, बरफ़ी, हलवा, क़लाकन्द, खुरमा इत्यादि अधिकांश नाम अरबी या फ़ारसी हैं और इनमें से अधिकांश मिठाइयां मुग़ल समय की ईजाद हैं। यहां तक कि हिन्दुओं के विवाह-जैसे संस्कार में भी 'सेहरा' और 'जामा' जैसी चीज़ों का अभी तक उपयोग किया जाता है।

भारत की प्राचीन ग्राम-पंचायतों और उनके अधिकारों मे मुग़लों ने किसी तरह का भी हस्तक्षेप नहीं किया। जदुनाथ सरकार लिखते हैं :

"उन्होंनें बुद्धिमत्ता के साथ ग्राम शासन की पुरानी पद्धति और लगान वसूल करनें के पुरानें हिन्दू तरीके को ज्यों का त्यों जारी रखा, यहां तक कि लगान क महकमे में अधिकतर केवल हिन्दू ही नौकर रखे जाते थे। नतीजा यह हुआ कि राजधानी के अन्दर राजकुल क बदल जानें से हमारे करोड़ों ग्रामवासियों के जीवन पर किसी तरह का अहितकर प्रभाव न पड़ता था।"*

मुग़लों की प्रजापालकता

किसानों को और रय्यत को मुग़ल सम्राटों के समय में ख़ास सहायता दी जाती थी और उनकी हर तरह रक्षा की जाती थी। जब कोई नया सूबेदार नियुक्त होता था, तब उसे और बातों के साथ-साथ यह आदेश दिया जाता था :

"रय्यत को इस बात के लिए प्रोत्साहन देना कि वे खेती की उन्नति करें और अपने पूरे दिल से खेती बाड़ी को बढ़ाएं। कोई चीज उनसे जबरदस्ती न छीनना। याद रखना कि रय्यत ही राज की आमदनी का एकमात्र स्थायी जरिया हैं।

× × × इस बात का ख़याल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें।"†

इसी तरह, जब किसी प्रान्त के लिए नया सूबेदार नियुक्त होता था, तब सम्राट का वजीर, जिसे दीवानेआला कहते थे, उसे जो हिदायतें करता था, उनमें से एक यह होती थी :

"खयाल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें। तमाम अत्याचारियों को दबा कर रखना।"‡

हर प्रान्त में सूबेदार या नाज़िम के अलावा एक दीवान होता था। सूबेदार का काम फ़ौज का इन्तज़ाम, शासन-प्रबन्ध और न्याय करना होता था तथा दीवान का काम लगान वसूल करना। हर दीवान की नियुक्ति की सनद में लिखा होता था कि उसका सबसे बड़ा काम 'खेती के काम को और ग्रामों की आबादी को बढ़ाना' है। लगान की वसूली में खेतिहर के साथ किसी तरह की ज़बरदस्ती की इजाज़त न थी। एक हिदायत हर सनद में यह होती थी :

"यदि किसी आमिल के इलाके में कई साल की लगान की रक़म बक़ाया चली आती हैं, तो तुम उस रक़म को किसानों से बहुत आसान किस्तों में वसूल करना, बक़ाया का केवल पांच फ़ीसदी हर फ़सल के मौके पर वसूल करना।" §

इसी तरह, फ़ौजदारों, थानेदारों, करोड़ियों, तहसीलदारों इत्यादि सबको हिदायत होती थी कि किसानों को किसी तरह का कष्ट न पहुंचाएं।

**Mughal Administration* by Jadunath Sarkar, pp. 139.

†"Encourage the ryots to extend the cultivation and carry on agriculture with all their hearts. Do not screw anything out of them. Remember that the ryots are permanent, that is the only permanent source of income to the State....................See that the strong may not oppress the "weak"—Ibid, pp. 85, 86.

‡Ibid, p. 81.

§Ibid, p. 88.

उस समय के किसानों की हालत

जदुनाथ सरकार, मुग़ल साम्राज्य के दिनों के भारतीय किसानों की उस समय के फ्रान्स और आयरलैण्ड के किसानों से तुलना करते हुए, लिखते हैं :

> **"किन्तु फ़र्क यह था कि अंगरेज़ों के आने से पहले (मुग़ल भारत में) किसी किसान को लगान अदा न करनें के जुर्म में ज़मीन से बेदखल न किया जाता था, कोई किसान भूखा न रहता था। बंटाई की प्रथा के अनुसार चूंकि लगान पैदावार की शक्ल में लिया जाता था, किसान को बड़ा फ़ायदा रहता था, क्योंकि लगान की अदायगी हर साल की असली पैदावार पर निर्भर होती थी। इसके ख़िलाफ़ आज-कल का लगान रुपयों की शक्ल में नियत होता है, जिसका उस साल की पैदावार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।"**

हर मुग़ल सम्राट की तरफ़ से तमाम सूबों के कर्मचारियों और सामन्त-सरदारों के नाम बार-बार इस मज़मून की आज्ञाएं निकलती रहती थीं कि किसी किसान के साथ लगान की वसूली में या किसी मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती न की जाए और कोई नाज़ायज़ रक़म या 'अबवाब' किसी से वसूल न की जाएं।

इतिहास-लेखक फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है :

> **"जब कभी सम्राट की सेना ग्रामों में से होकर निकलती थी और उसके कूच की वजह से किसान के माल को हानि पहुंचती थी या उसकी बरबादी होती थी, तब विश्वस्त आदमी इस बात के लिए नियुक्त किए जाते थे कि वे उस हानि या बरबादी के मूल्य का ठीक-ठीक तखमीना लगाएं। तखमीना लगाने के बाद ये लोग या तो उस रक़म को किसान के सरकारी लगान में से कम कर देते थे या व्यर्थ की शिकायतों और बहसों से बचने के लिए उसी समय किसानों के दावे के अनुसार उन्हें रक़म अदा कर देते थे।"†**

औरंगज़ेब का एलान

सन् 1673 में सम्राट औरंगज़ेब ने अपने साम्राज्य भर में एक ऐलान प्रकाशित किया, जिसमें 54 चीज़ों की एक सूची दी गई थी और लिखा था कि उनमें से किसी पर प्रजा से किसी तरह का महसूल आदि न लिया जाए। इसी ऐलान में सम्राट ने राजकर्मचारियों और ज़मींदारों को आज्ञा दी कि किसी किसान से किसी तरह की भी 'भेंट या बेगार' न ली जाए। इन 54 चीज़ों में मछली, तेल, घी, दूध, दही, उपले, तरकारियां, घास, ईंधन, मिट्टी के बरतन, ऊंट, गाड़ियां, चरागाह, सड़कों की रहदारी का महसूल, नदियों के घाटों का महसूल, रूई, गन्ना, रस, कपड़े की छपाई इत्यादि भी शामिल थीं। इसी ऐलान में लिखा था कि गंगा या अन्य तीर्थों में नहाने वालों से या अपने मुर्दों की अस्थियां गंगा में ले जाने-वाले हिन्दुओं से किसी तरह का महसूल न लिया जाए।

इस तरह की आज्ञाएं सम्राट अकबर के समय से लेकर बराबर निकलती रहती थीं। हर नए सम्राट को अपने तख्त पर बैठने के समय या कभी-कभी अपने शासनकाल में एक

---

†*The Emperor Akbar,* etc. by Frederick Augustus, translated by A. S. Beveridge, pp. 273-77.

से अधिक बार उन्हें इसलिए दुहराते रहना या कभी-कभी बदलना पड़ जाता था, ताकि कोई सामन्त या कर्मचारी इस विषय में असावधान न हो जाए । जदुनाथ सरकार लिखते हैं :

"उस समय के इतिहास के ग्रन्थों और पत्रों से जाहिर है कि मुग़ल साम्राज्य के अधिराज की नीति सदा यही होती थी कि रय्यत पर किसी तरह का अत्याचार न होने पाए । यह बात साबित की जा सकती है कि यह नीति केवल एक शुभकामना न थी, बल्कि उस समय की सच्ची हालत थी । शाहजहां और औरंगज़ेब के समय की अनेक ऐसी घटनाएं उस समय के इतिहास में मिलती हैं, जिनमें ज्यों ही माल के महकमे के किसी कर्मचारी, या किसी प्रान्त के सूबेदार की सख्ती या जबरदस्ती की कोई शिकायत प्रजा की ओर से सम्राट के कानों तक पहुंची, तुरन्त उस राजकर्मचारी को या उस सूबेदार तक को बरखास्त कर दिया गया ।"*

ऊपर के लेखक ने एक फ़ारसी दस्तावेज़ से मिसाल के तौर पर एक घटना नक़ल की है, जिससे साफ पता चलता है कि शाहजहां किसानों के साथ इन्साफ़ करने, बल्कि उदारता का व्यवहार करने के लिए कितना उत्सुक था ।

शाहजहां और किसान

एक दिन शाहजहां साम्राज्य के माल-क़ागज़ात का मुआयना कर रहा था । उसने देखा कि किसी गांव की उस साल की मालगुज़ारी पिछले वर्षों की मालगुज़ारी से कई हज़ार अधिक दर्ज है । तुरन्त माल के महकमे के प्रधान अफ़सर, दीवाने आला सादुल्ला खां, को तलब किया गया। सम्राट ने दीवान से मालगुजारी के बढ़ने की वजह पूछी । तहक़ीक़ात कराने पर मालूम हुआ कि उस साल गांव के पास की नदी कुछ पीछे को हट गई थी जिससे खेती की ज़मीन बढ़ गई थी । इसीलिए लगान बढ़ाया गया था । सम्राट ने फिर दर्याफ्त किया कि जो ज़मीन बढ़ी है, वह मामूली ज़मीन के पास की है या माफ़ी की ज़मीन के पास की । मालूम हुआ कि पास की ज़मीन माफ़ी की जमीन है । यह बात सुनते ही शाहजहां गुस्से में भर कर चिल्ला पड़ा :

"उस जगह के यतीमों, बेवाओं और ग़रीबों की आहोज़ारी पर वहां की ज़मीन का पानी सूख गया है । यह उनको खुदा की एक देन थी, तुमनें उसे राज के लिए छीननें का साहस किया ! यदि खुदा के बन्दों के लिए दया का भाव मुझे न रोकता, तो मैं उस दूसरे शैतान को यानी उस ज़ालिम फ़ौजदार को, जिसनें इस नई ज़मीन से लगान वसूल किया है, फांसी का हुक्म देता । अब उसे केवल बरख़ास्त कर देना उसके लिए काफ़ी सज़ा होगी, ताकि दूसरे लोग भी आगाह हो

---

*"The policy of the supreme head of the Mughal Government not to commit any exaction on the ryot is manifest from the contemporary histories and letters, and can be proved to have been a reality and not merely a pious wish. Several instances are recorded in the reigns of Shah Jahan and Aurangzeb in which harsh and exacting revenue collectors and even provincial viceroys were dismissed on the complaints of their subjects reaching the Emperor's ears."—*Mughal Administration* by Jadunath Sarkar, p. 108.

जाएं, और इस तरह की बेइन्साफ़ी के बुरे काम न करें। हुकुम जारी कर दो कि जितना ज्यादा लगान वसूल किया गया है, वह सब जिन किसानों से लिया गया है, उन्हें फ़ौरन वापस कर दिया जाए।" *

सन् 1662 में उड़ीसा प्रान्त के दीवान, मोहम्मद हाशिम ने कुछ नए 'करोड़ी' (लगान वसूल करने वाले कर्मचारी) इसलिए नियुक्त किए कि इन लोगों ने पुराने करोड़ियों की निस्बत अपने इलाकों से अधिक लगान वसूल करके भेजने का वादा किया था। समाचार मिलते ही तुरन्त मोहम्मद हाशिम को बरखास्त कर दिया गया।

'अबवाब' की वसूली के खिलाफ़ आज्ञाएं फ़ीरोजशाह तुग़लक (सन् 1375) के समय से सम्राट अकबर (1605) के समय तक और उसके बाद क़रीब-क़रीब हर मुग़ल सम्राट के समय में बराबर जारी होती रहती थी।

मुग़ल सम्राट अपनी विशाल प्रजा के सुख-दुख से बेखबर भी न रहते थे। मुग़ल समय में 'वाके नवीसों', 'सवाने नवीसों', 'अखबार नवीसों', 'खुफ़िया नवीसों' इत्यादि का एक ज़बरदस्त महकमा था, जिसके ज़रिए साम्राज्य के कोने-कोने की खबरें दिल्ली-सम्राट के कानों तक पहुंचती रहती थीं।

निस्सन्देह, किसानों के सुख और उनकी समृद्धी का भारत के लिखे हुए इतिहास में किसी समय भी इतना अच्छा और व्यवस्थित प्रबन्ध न था, जितना मुग़ल सम्राटों के समय में। यही वजह है कि उस समय के अनेक यूरोपियन और अन्य यात्री भारतीय ग्रामों की खुशहाली की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं और लिखते हैं कि संसार के किसी भी दूसरे देश में उस समय किसानों की हालत इतनी अच्छी न थी।†

कोतवाल के कर्त्तव्य

मुग़ल साम्राज्य के अन्दर हर शहर में अन्य कर्मचारियों के अलावा एक कोतवाल होता था, जिसके कामों में से एक काम यह भी होता था :

> **"कोतवाल का यह काम है कि शराब का खिंचना बिल्कुल बन्द कर दे। वह इसके लिए जिम्मेदार होता है कि शहर में कोई वेश्या न रहे × × ×।"‡**

यह बयान एक विद्वान यूरोपियन यात्री का है, जिसने औरंगजेब के समय में स्वयं मुग़ल साम्राज्य की हालत को देखा था। हर कोतवाल की सनद में लिखा होता था कि तुम्हारी यह ज़िम्मेदारी है कि तुम्हारे शहर में कोई चोरी न होने पाए, शहर के लोग सुरक्षित रहें और अमन के साथ अपना व्यापार आदि कर सकें।

हर इलाके के लिए एक 'मुहतसिब' होता था, जिसका खास काम यह होता था कि शहर की हर गली में जाकर शराब बनने और बिकने के स्थानों, जुआखानों आदि को ज़बरदस्ती बन्द कर दे। शायद हिन्दू साधुओं की प्रथा का खयाल करते हुए सूखे मादक द्रव्यों, जैसे गांजा, भांग इत्यादि की इतनी कड़ी मनाही न थी। मुहतसिब की हिदायतों

*India Office Library, *Persian Manuscript* No. 370, interleaf facing folio 68.
†*e.g. Bengal in* 1756-57 by S. C. Hill, vol. i.
‡Manucci, vol. ii, pp. 420, 421.

में लिखा होता था कि "शहरों के अन्दर शराब इत्यादि मादक द्रव्यों के बिकने की इजाज़त न दो और न तवायफ़ों को शहरों के अन्दर रहने दो ।"*

शराब–बन्दी

इतिहास-लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि सम्राट अकबर ने साम्राज्य भर के शहर कोतवालों को यह आज्ञा दे दी थी कि बिना किसी के घर में जबरदस्ती घुसे, शराब का बनना जहां तक सम्भव हो, बन्द करा दिया जाए । इसके बाद सम्राट जहांगीर ने शराब बनाना क़ानूनन बन्द करा दिया । किन्तु शाहजहां के समय में इस आज्ञा का बहुत कड़ाई के साथ पालन कराया गया ।† औरंगज़ेब के समय में भी यह कड़ाई जारी रही । किन्तु बाद के निर्बल सम्राटों के समय में इस शाही आज्ञा पर ठीक-ठीक अमल न हो सका ।

न्यायशासन

अब हम मुग़ल काल के न्यायशासन को थोड़े-से शब्दों में बयान करेंगे । अत्यन्त प्राचीन काल से भारत के हर गांव में एक ग्राम-पंचायत होती थी, जिसके पंचों का चुनना गांववालों के हाथों में होता था । इस ग्राम-पंचायत को अपने गांव के सब म्युनिसिपल अधिकार प्राप्त होते थे और इनके अलावा, गांववालों की जान-माल की रक्षा और आस-पास की सड़कों पर यात्रियों और व्यापारियों की हिफ़ाजत का काम भी इन्हीं के सुपुर्द होता था । हर पंचायत के मातहत चौकीदार होते थे, जो पंचायत से तनखाह पाते थे और जिन पर राज को किसी तरह का अधिकार न होता था । अपने यहां के दीवानी और फौज़दारी के मुक़दमों को तय करने और अपराधियों को दण्ड देने का भी इन पंचायतों को अधिकार होता था । ये पंचायतें ही गांव के बालकों और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करती थीं, जिसका अधिक ज़िक्र हमने इस पुस्तक में दूसरे स्थान पर किया है । अधिकांश नगरों और ख़ास कर छोटे नगरों में भी इसी तरह की पंचायतें थीं, जिन्हें इसी तरह के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे ।

मुग़ल सम्राटों ने इन हजारों भारतीय ग्राम-पंचायतों के प्राचीन अधिकारों में किसी तरह का भी दख़ल नहीं दिया, उन्होंने उन्हें ज्यों का त्यों क़ायम रखा, जिसका मतलब यह है कि अंगरेज़ों के आने से पहले सिवाय राज का लगान अदा करने के भारतीय ग्रामवासियों को स्वराज के अन्य क़रीब-क़रीब सब अधिकार प्राप्त थे ।

इन पंचायतों को मामूली पुलिस के काम में मदद देने के लिए हर ज़िले में एक फ़ौजदार होता था, जिसका काम केवल बड़ी-बड़ी डकैतियों, उपद्रवों आदि में पंचायतों की मदद करना होता था । न्यायशासन में पंचायतों को सहायता देने और उनके काम को पूरा करने के लिए हर इलाके में फ़ौजदारी में मुक़दमों को तय करने के लिए एक 'क़ाजी' और दीवानी के मुक़दमों के लिए 'सदर' होता था । साम्राज्य भर के क़ाज़ियों का अफ़सर एक 'क़ाज़िउलक़ज्ज़ात' होता था, जो राजधानी में रहता था । इसी तरह, तमाम सदरों के ऊपर एक 'सदरुस्सुदूर' होता था । हर नए क़ाजी की नियुक्ति के समय राज की ओर से उसे नीचे लिखी हिदायत दी जाती थी :

**Mughal Administration* by Jadunath Sarkar, p. 41.

†*India At The Death of Akbar* by Moreland, p. 159.

"सदा इन्साफ़ करना, ईमानदार रहना और किसी की रू-रियायत न करना। मुक़दमे या तो अदालत की जगह और या सरकारी दफ्तर में हमेशा दोनों फ़रीकों की मौजूदगी में करना।

"जिस जगह तुम्हारी नियुक्ति हो, वहां क किसी आदमी से किसी तरह का भेंट–उपहार स्वीकार न करना और न किसी के जलसे आदि में जाना।

"अपने फ़ैसले, दस्तावेज इत्यादि बड़ी सावधानी से लिखना, ताकि कोई विद्वान उनमें नुक्स निकाल कर तुम्हें शर्मिन्दा न करे।

"ग़रीबी को ही अपने लिए गौरव जानना।"*

केवल चरित्रवान और विद्वान् लोगों को ही क़ाजी और सदर के पदों पर नियुक्त किया जाता था। इतिहास-लेखक फ्रेडरिक आगस्टस इस बात की गवाही देता है कि मुग़ल साम्राज्य के 'अधिकांश' मुलाज़िम और कर्मचारी ईमानदार और क़ाबिल होते थे।"†

मुक़दमों का फ़ैसला करने में देश के प्राचीन रिवाज और धर्मशास्त्रों का पूरा खयाल रखा जाता था। सम्राट अकबर ने अनेक योग्य ब्राह्मणों को न्यायाधीश के अधिकार प्रदान किए और आज्ञा दे दी कि न्यायालयों में मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों की आज्ञाओं का पालन किया जाए। हर सम्राट सप्ताह में कम-से-कम एक दिन (प्राय: मंगल या बुध) ख़ास-ख़ास मुक़दमों और अपीलों को सुनने में ख़र्च करता था। प्रजा के हर छोटे-से-छोटे आदमी को अपनी शिकायत लेकर सम्राट तक जाने का अधिकार होता था। सम्राट जहांगीर ने, जो अपने इन्साफ़ के लिए मशहूर था, आगरे में अपने क़िले की दीवार के ऊपर से एक सोने की ज़ंजीर लटका रखी थी, जो ज़मीन तक लटकती थी। किसी भी छोटे-से-छोटे फरियादी को उस ज़ंजीर को खींचने और अपनी अर्ज़दाश्त उसमें बांध देने का अधिकार होता था और तुरन्त उसे सम्राट के सामने लाकर पेश कर दिया जाता था।

धार्मिक उदारता

धार्मिक उदारता के विषय में अकेले औरंगज़ेब को छोड़ कर भारतीय मुग़ल सम्राटों का समय वास्तव में आदर्श समय था। बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहां और उनके अधिकांश उत्तराधिकारियों के समय में हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ राज की ओर से एक समान व्यवहार किया जाता था, दोनों धर्मों को एक समान आदर की दृष्टि से देखा जाता था और किसी के साथ किसी तरह का भी पक्षपात न किया जाता था। अंगरेज़ एलची सर टामस रो ने सन् 1616 ईसवीं में सम्राट जहांगीर के शासनकाल में उस समय की हालत को देखते हुए लिखा था :

**Mughal Administration* by Jadunath Sarkar, p. 37.

†"........the mass of the employees were both scrupulous and capable."—*The Emperor Akbar, A Contribution Towards the History of India in the 16th Century* by Frederick Augustus, Count of Noer, translated by Annette S. Beveridge, 1890, p. 293.

"तैमूरलंग की सन्तान अपने साथ मोहम्मद का मजहब भारत में लाई, किन्तु उसनें अपनी विजय के बल पर किसी को जबरदस्ती उस मजहब में शामिल नहीं किया और धर्म के मामले में सबको आज़ाद छोड़ दिया ।"*

औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों के समय की (1688-1723) बंगाल की हालत को बयान करते हुए एक दूसरा अंगरेज कप्तान, अलेक्जेण्डर हैमिल्टन लिखता है :

"यहां पर एक सौ से ऊपर मत–मतान्तरों के लोग हैं, किन्तु वे अपनें असूलों या उपासना विधियों के विषय में कभी नहीं लड़ते–झगड़ते । हर शख्स को आज़ादी हैं कि अपनें तरीक़ें के अनुसार ईश्वर की सेवा और पूजा करे । मज़हब के नाम पर दूसरे को किसी तरह की यातनाएं देनें का यहां कोई नाम भी नहीं जानता × × ×

"बंगाल के शासक का मजहब इस्लाम है, किन्तु हर मुसलमान पीछे वहां सौ से ऊपर हिन्दू हैं और तमाम सरकारी नौकरियां और ओहदे बिना किसी भेद-भाव के दोनों मजहब के लोगों को दिए जाते हैं ।"†

डाक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहांगीर का इतिहास' में लिखा है कि भारतीय मुग़ल सम्राटों के दरबारों में हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के मुख्य-मुख्य त्योहार एक समान जोश और शान के साथ मनाए जाते थे । दशहरे के दिन सम्राट के हाथी और घोड़े सज-धज से जलूस में निकाले जाते थे । रक्षाबन्धन के दिन ब्राह्मण लोग और हिन्दू सामन्त-सरदार सम्राट की कलाई में आकर राखी बांधते थे, दीपावली की रात को महल में रोशनी होती थी और जुआ तक खेला जाता था । शिवरात्रि को महलों के अन्दर ख़ास रौनक दिखाई देती थी । ठीक इसी तरह मुसलमानों की ईद और शबेबरात भी उतने ही जोश के साथ मनाई जाती थी ।‡ हर सम्राट की सालगिरह साल में दो बार मनाई जाती थी, एक मुसलमान चांद की तारीखों के अनुसार और दूसरी हिन्दू तिथियों के अनुसार ।

निस्सन्देह, धार्मिक उदारता ही भारतीय मुग़ल साम्राज्य की आधारशिला थी । सम्राट बाबर ने अपने बेटे हुमायूं के नाम अपनी अन्तिम वसीयत में इस धार्मिक उदारता की नींव रखी । हुमायूं ने ईमानदारी के साथ उस पर अमल किया । सम्राट अकबर ने इस उदारता को उस पराकाष्ठा तक पहुंचाया, जो संसार के धार्मिक इतिहास में सदा के

---

*"Tamerlain's offspring brought in the knowledge of Mohammad, but imposed it on none by the law of conquest, leaving consciences at liberty."—*A General Collection of the Best and Most Interesting Voyages etc.*, edited by John Pinkerton, London, 1811, vol. viii, p. 46.

†There are above one hundred different sects.........but they never have any hot disputes about their doctrine or way of worship. Every one is free to serve and worship God in their own way and persecutions for religion's sake are not known among them.

Further, "The religion of Bengal is established, is Mohammadan yet for one Mohammadan there are above one hundred pagans and the public offices and posts are filled promiscuously with men of both persuasions."—Ibid, pp. 321, 415.

‡*History of Jehangir* by Beniprasad, M.A., Ph.D., D.Sc., p. 100.

लिए एक सीमा-चिह्न रहेगी । जहांगीर और शाहजहां ने आश्चर्यजनक सफलता के साथ उसका पालन किया ।

उस समय का ईसाई यूरोप

हमें याद रखना चाहिए कि यह ठीक वह समय था, जब कि यूरोप के अन्दर धर्म के नाम पर अत्याचार और ज़बरदस्तियां आए दिन की एक मामूली घटना थी । आयरलैण्ड में उस समय न किसी रोमन कैथलिक को अपने पूर्वजों की जायदाद मिल सकती थी, न कोई कैथलिक फ़ौज का अफ़सर हो सकता था और न जजी की बेंच पर बैठ सकता था । फ्रान्स में ह्यूगेनाट सम्प्रदाय के एक-एक आदमी को देश से समुद्र-पार निर्वासित कर दिया गया था । स्वीडन में सिवाय लूथर के सम्प्रदाय के और किसी ईसाई को जूरी का मेम्बर होने का अधिकार न था । स्पेन में प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय के लोगों के मरने के समय किसी पादरी को उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने की इजाज़त न थी । इतना ही नहीं, बल्कि यूरोप के एक-एक देश में उस समय 'ऐक्टस् ऑफ़ यूनिफ़ार्मिटी' पास हो रहे थे, जिनका अर्थ यह था कि सिवाय ईसाई मत के उस सम्प्रदाय-विशेष के माननेवालों के, जिस सम्प्रदाय के वहां के शासक होते थे, किसी दूसरे सम्प्रदाय के लोग देश में सुख-चैन से न रहने पाएं । इन्हीं अत्याचारी कानूनों के फलस्वरूप यूरोप के हर देश में हज़ारों कैथलिक, हजारों एंग्लिकन, हज़ारों लूथरेन, हज़ारों प्यूरिटेन, हज़ारों प्रेसबिटेरियन, हज़ारों लेवेटर, हज़ारों एनेबेप्टिस्ट, और हज़ारों कवेनेण्टर जिन्दा जला दिए गए, तलवार से मौत के घाट उतारे गए, या यातनाएं दे-देकर मार डाले गए । और ये सब-के-सब ईसाई थे, उतने ही कट्टर ईसाई, जितने कि उन पर अत्याचार करनेवाले उनके देशवासी थे । फ़र्क केवल यह था कि वे ईसाई धर्म के एक सम्प्रदाय के थे और ये दूसरे के ।

भारत और यूरोप की तुलना

उस समय के भारत और यूरोप की तुलना करते हुए अंगरेज़ इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है :

> **"दिल्ली के शुरू के सम्राटों के दिनों में, सत्रहवीं सदी के मध्य तक, सब धर्मों के लोगों के साथ पूरी उदारता का व्यवहार किया जाता था । ठीक उसी समय यूरोपनिवासी धर्म के नाम पर अत्याचारों द्वारा अपने महाद्वीप को एक विशाल मुर्दाखाना बनाने की जोरदार कोशिशों में लगे हुए थे । अपने अपने धर्म की रक्षा के लिए लोग यूरोप के विविध देशों से भाग-भाग कर अमरीका में जा जाकर बस रहे थे । क्या आज उन्हीं लोगों के वंशज, उनकी क़ब्रें बनानेवाले, भारत पर दोष लगाने का साहस कर सकते हैं ? क्या वे बेशर्मी के साथ इस बात का दम भर कर इतिहास को कलंकित कर सकते हैं कि उस समय उनकी सभ्यता भारत की सभ्यता से अधिक सच्ची थी ? यदि उन्हीं के लिखे इतिहास पर विश्वास करके उन्हीं की गवाही ली जाए और जो कट्टर ईसाई उस तमाम समय में धर्म के नाम पर फांसियां खड़ी कर रहे थे, बड़ियां कस रहे थे और दूसरे सम्प्रदाय के ईसाइयों को दण्ड देने के लिए, 'ऐक्ट्स ऑफ़ यूनिफ़ार्मिटी' पास कर रहे थे, जिनकी उंगलियों से कवेनेण्टर सम्प्रदाय के लोगों का खून, कैथलिक लोगों का खून और प्यूरिटन लोगों**

का खून लगातार टपक रहा था, यदि उन्हीं को बुला कर उनकी गवाही ली जाए, तो वे क्या मुंह दिखला सकेंगे ?"*

इस पुस्तक में कई स्थानों पर दिखलाया गया है कि मुसलमानों और खास कर मुग़लों के शासन काल में राज की ऊंची-से-ऊंची पदवियां हिन्दुओं को मिली हुई थीं। हर सम्राट की ओर से बेशुमार हिन्दू मन्दिरों को जागीरें और माफ़ियां दी गईं। औरंगजेब मुतास्सिब और अनुदार था, पर उसके दरबार में भी हिन्दू मन्त्री और उसकी सेना में हिन्दू सेनापति मौजूद थे। औरंगजेब की मृत्यु को आज (1928) दो सौ साल से ऊपर हो चुके, किन्तु अभी तक अनेक हिन्दू मन्दिरों के पास, मिसाल के तौर पर इलाहाबाद के पास अरले में सोमेश्वरनाथ के मन्दिर के हिन्दू पुजारियों के पास और काशी में जंगमबाड़ी के मन्दिर के पुजारियों के पास औरंगजेब के दस्तखती परवाने मौजूद हैं जिनमें उन मन्दिरों को राज की ओर से जागीरें दी गई हैं।

अमन और खुशहाली के लिहाज से मुग़ल साम्राज्य का समय भारत के इतिहास में निस्संदेह स्वर्णयुग था। अनगिनत यूरोपियन और एशियाई यात्रियों की गवाहियों और उस समय के ऐतिहासिक उल्लेख इस बारे में नक़ल किए जा सकते हैं। धन-धान्य और सुख-सम्पत्ति की जो रेल-पल भारत के अन्दर सम्राट शाहजहां के शासन काल में देखने में आती थी, वह संसार के इतिहास में शायद ही कभी किसी दूसरे देश को नसीब हुई हो।

इतिहास-लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि विदेशी व्यापारी और यात्री उन दिनों इस बात को देखकर चकित रह जाते थे कि भारत के नगरों में लोगों के माल की रक्षा का कितना सुन्दर प्रबन्ध था। अनेक यात्री इस बात की गवाही देते हैं कि अव्वल तो चोरियां होती ही बहुत कम थीं और यदि किसी नगर में चोरी हो जाती थी और माल बरामद न हो पाता था, तो नगर के कोतवाल को अपने पास से माल की क़ीमत भरनी पड़ती थी।†

हुमायूं के दो शासनकालों के बीच के कुछ साल तक दिल्ली में शेरशाह का शासन रहा। किन्तु फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि "शेरशाह का चन्दरोजा शासन भी हिन्दोस्तान की उन्नति के लिए अहितकर साबित न हुआ, सड़कों के ऊपर आने-जाने, माल के लाने-ले जाने और व्यापारियों की रक्षा का उसने इतना सुन्दर प्रबन्ध कर दिया, जितना पहले न था।"‡

---

*"During the reigns of the earlier Emperors of Delhi, to the middle of the seventeenth century, complete tolerance was shown to all religions. Shall they who build the tombs of those who, at that very time, were busily employed in making Europe one mighty charnel-house of persecution, and in colonising America with fugitives for conscience's sake, rise up in judgment against India or load the breath of history with the insolent pretence of having then enjoyed a truer civilization? What if they were taken at their word, and called forth with the Covenanters' blood and the Catholics' blood and the Puritans' blood dripping quick from the orthodox hands that all that time were building scaffoeds, riveting chains, and penning penal 'Acts of Uniformity'?"—*Empire in Asia, How We Came by It. A Book of Confessions* by W. M. Torrens, M.P.. Panini Office reprint, pp. 96, 97.

†*India at the Death of Akbar* by Moreland, pp. 38, 39.

‡*The Emperor Akbar, etc.*, by Frederick Augustus, p. 277.

सम्राट जहांगीर ने तख्त पर बैठते ही सबसे पहले जो आज्ञाएं जारी कीं, उनमें से एक यह थी कि साम्राज्य भर में सड़कों की और सड़कों के किनारे के सरकारी कुओं, सरायों आदि की मरम्मत की जाए और यात्रियों की हिफ़ाजत का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जाए और दूसरी यह थी की कोई भी राजकर्मचारी या ज़मींदार किसी वजह से भी किसी किसान की ज़मीन से उसकी इच्छा के खिलाफ उसे बेदखल न करे,‡ तीसरी यह थी कि किसी व्यापारी का माल चुंगी इत्यादि के लिए चौकियों और सड़कों पर खोलकर न देखा जाए। जहांगीर ने साम्राज्य भर में अनेक मुसाफ़िरखाने, मदरसे और अस्पताल, तालाब, कुएं और पुल बनवाए, तमाम बड़े-बड़े नगरों में राज के खर्च पर हकीम और वैद्य नियुक्त किए, शराब और तम्बाकू का बनना और पिया जाना क़ानूनन बन्द किया। संसार के किसी भी देश में उस समय राज की ओर से प्रजा की शिक्षा का बाजाब्ता इन्तज़ाम न था। मुग़ल सम्राटों ने इस कमी को पूरा करने के लिए साम्राज्य भर मे हज़ारों विद्वान पण्डितों और मौलवियों को पाठशालाएं और मकतब जारी रखने के लिए माफ़ियां और वजीफ़े अता किए §। अनेक अंगरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि मुग़ल सम्राटों के उदार प्रोत्साहन के प्रताप से उस समय के भारत में शिक्षितों की संख्या आबादी के हिसाब से संसार भर में सबसे अधिक थी।

उद्योग-धन्धों में भारत उस समय न केवल अपनी समस्त आवश्यकताओं को ही पूरा करता था, बल्कि बाकी संसार की अधिकांश मंडियों में भी अधिकतर भारत का बना हुआ माल ही दिखाई देता था। आज (1928) से क़रीब सवा सौ साल पहले तक, यानी उन्नीसवीं सदी के शुरू तक, भारत के बने हुए जहाज उस समय के इंगलिस्तान और अन्य यूरोपियन देशों के बने हुए जहाज़ों से कहीं अधिक सुन्दर, कहीं अधिक मज़बूत और कहीं अधिक टिकाऊ होते थे।*

यूरोपियन यात्री काउण्टी लिखता है कि पन्द्रहवीं सदी में जितने बड़े-बड़े जहाज़ भारत में बनते थे, उतने यूरोप में कहीं देखने को न मिलते थे। मुग़ल साम्राज्य के शुरू के दिनों में जो अंग्रेज भारत आए, उन्होंने और भी अधिक बड़े-बड़ सुन्दर और मजबूत भारतीय जहाजों का हाल अपने सफ़रनामों में लिखा है। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में चीन और जापान से लेकर अफ्रीका के दक्षिण तक जितने जहाज आते-जाते थे, उनमें से अधिकांश भारत के और खास कर गुजरात के बने हुए होते थे। बंगाल से सिन्ध तक का सारा व्यापार केवल भारतीय जहाज़ों द्वारा किया जाता था। मुसाफ़िरों के आने-जाने के लिए जितने बड़े जहाज़ भारत में बनते थे, उतने और कहीं न बनते थे। पूरब में मेक्सिको (अमरीका) तक और पश्चिम में इंगलिस्तान तक भारत का बना हुआ माल भारतीय जहाज़ों में लदकर दूसरे देशों को जाता था। हज के लिए जानेवाले भारतीय मुसलमान भारतीय जहाज़ों ही में भारत से अरब तक आते-जाते थे।†

बारबोसा लिखता है कि सत्रहवीं सदी के शुरू में गुजरात के बने हुए रेशम के कपड़े अफ्रीका और पेगू तक जाते थे। वारथेमा लिखता है कि उन दिनों गुजरात "समस्त

‡*India at the Death of Akbar,* by Moreland, pp. 46 and 129.
§*History of Jehangir* by Beniprasad, M.A., Ph.D., D.Sc., pp. 92-94.
**Prosperous British India* by William Digby, pp. 86, 88.
†*India at the Death of Akbar*, pp. 67-71.

ईरान, तातार, टरकी, शाम, बारबरी, अरब, इथियोपिया (अबीसीनिया, अफ्रीका) और अन्य कई देशों" को अपने यहां के बने हुए "रेशमी और सूती कपड़े" मुहय्या करता था। उस समय के यात्री लिखते हैं कि स्वयं भारत के अन्दर कपड़े की खपत उस समय मामूली न थी। ऊपर की और बीच की श्रेणी के क़रीब-क़रीब सब लोग रेशम पहनते थे और बड़े-बड़े चोगे पहनते थे।

ख़ास कर रेशम के धन्धे ने सम्राट अकबर के समय में अपूर्व उन्नति की। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि अकबर ने खुद रेशम के धन्धे का मेहनत के साथ अध्ययन किया, चीन और अन्य देशों से कारीगर बुलाकर नौकर रखे और लाहौर, आगरा, फ़तेहपुर, अहमदाबाद इत्यादि में राज्य के खर्च पर बड़े-बड़े कारखाने खुलवाए। अकबर के समय में, जब कि गेहूं आजकल (1928) के वजन के हिसाब से एक रुपये का एक मन बारह सेर मिलता था, चार आने में सुन्दर ख़ालिस ऊन का एक कम्बल खरीदा जा सकता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि लाहौर के अन्दर उस समय शाल बनाने के एक हजार सरकारी कारखाने थे, कश्मीर और अन्य स्थानों में तो थे ही। आगरे और लाहौर में दरियों और क़ालीनों के अनेक सरकारी कारखाने थे।

सौ-सवा सौ साल पहले तक के, यानी 19-वीं सदी के शुरू तक के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि बार-बार अपने पत्रों में इंगलिस्तान लिख कर भेजते थे कि इंगलिस्तान के बने हुए कपड़ों की भारतीय कपड़ों के मुकाबले में भारत में कोई खपत नहीं हो सकती।

पुर्तगाली यात्री पिरार्ड लिखता है कि सत्रहवीं सदी के शुरू में बंगाल में, जो अत्यन्त घना बसा हुआ प्रदेश था, सूती कपड़ों का धन्धा घर-घर फैला हुआ था और "आशा अन्तरीप (अफ्रीका) से लेकर चीन तक हर स्त्री और पुरुष सिर से पांव तक कपड़े पहनता था और ये सब कपड़े भारतीय करघों के बने हुए होते थे।" अरब सौदागर मिस्र में और यूरोप में भारत के बने हुए कपड़े ले जाकर बेचते थे। लंका, बरमा, मलाया, चीन, जापान, फिलिपाइन और मेक्सिको में उन दिनों भारत के कपड़ों की बेहद खपत थी। इस पुस्तक के अन्दर 'भारतीय उद्योग-धन्धों का नाश' शीर्षक अध्याय में हमने अंगरेजों के आने से पहले की भारतीय उद्योग-धन्धों की हालत को बयान किया है।

उस समय के इतिहास से और यूरोपियन और दूसरे यात्रियों के सफ़रनामों से यह भी पता चलता है कि मुगल समय का भारत न केवल उस समय के यूरोपियन देशों से ही अधिक घना बसा हुआ था, बल्कि इस समय (1928) के भारत से भी उस समय के भारत की आबादी कम-से-कम खास-खास प्रान्तों में कहीं अधिक घनी थी। कलकत्ता, बम्बई और कराची का उस समय निशान न था। किन्तु आगरा, कन्नौज, विजयनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर, मुलतान, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, उज्जैन, अहमदाबाद, अजमेर और सूरत अत्यन्त घने बसे हुए सुन्दर और बड़े-बड़े नगर थे, जिनमें से हर एक उस समय के लन्दन या पेरिस से कई गुना बड़ा था। यूरोप में कहीं भी उस समय आजकल के समान मर्दुमशुमारी का बाज़ाब्ता रिवाज न था। भारत में घरों के हिसाब से आबादी की गणना की जाती थी। फ्रान्स की आबादी, मोरलैण्ड के अनुसार, उस समय इस समय (1928) से आधी थी और इंगलिस्तान की आबादी आठवां हिस्सा थी। विजयनगर के विषय में काण्टी, अब्बलरज्जाक, पेज़ और दूसरे यात्री लिखते हैं कि वहां की आबादी उस समय "इतनी

अधिक थी कि जिस पर विश्वास करना कठिन है ।'' विजयनगर के हिन्दू राजाओं के पास बीस लाख फौज तैयार रहती थी । इतनी ही घनी आबादी दख्खन, गुजरात, पंजाब और बाकी उत्तर भारत की बताई जाती है । लिखा है कि आगरा शहर से किसी भी समय दो लाख हथियारबन्द सिपाही जमा किए जा सकते थे । बंगाल की राजधानी गौड़ के मकानों की संख्या बारह लाख थी, जिसका अर्थ यह है कि उस समय के गौड़ की आबादी इस समय (1928) के लन्दन की आबादी से बहुत कम न थी । सूरत से लाहौर तक, लाहौर से आगरे तक और आगरे से गौड़ तक जिन घने बसे हुए ग्रामों और नगरों से होकर यूरोपियन यात्रियों को जाना पड़ता था, उन्हें देख कर वे चकित रह जाते थे । निस्सन्देह आबादी और खुशहाली, दोनों के लिहाज से मुगल समय का भारत, केवल चीन को छोड़ कर, संसार के अन्य समस्त देशों से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा था ।

देशी भाषाओं की उन्नति

मुगलों और उन दूसरे मुसलमानों के ऊपर भी, जो बाहर से आकर भारत में बसे, भारतीय जीवन, भारतीय रहन-सहन और भारतीय विचारों की छाप लगे बगैर न रह सकी । यहां तक कि भारत के मुसलमान दूसरे देशों के मुसलमानों से अलग बिल्कुल भारतीय मसलमान बन गए । भारतवासियों से मुगलों ने पान खाना सीखा। हिन्दोस्तानी भाषा को, जिसे वे पहले 'जबाने हिन्दवी' कहते थे, उन्होंने अपनी भाषा बनाया । बाबर और उसके साथी आरम्भ में ईरानी ज़बान बोलते थ । लेकिन धीरे-धीरे मुगलों ने अपने घरों में, दफ्तरों में और दरबारों में हिन्दोस्तानी बोलना शुरू किया, हिन्दोस्तानी उनकी मातृभाषा बन गई । उनका साहित्य और सरकारी पत्र-व्यवहार फ़ारसी में होता रहा । सन् 1750 के करीब उन्होंने साहित्य के लिए भी हिन्दोस्तानी ही को अपनाना शुरू कर दिया । कुदरती तौर पर इस हिन्दोस्तानी में फ़ारसी और तुरकी के बहुत-से शब्द आ गए और शाही दरबार में यह भाषा इस्तेमाल होने और प्रतिदिन मंझने लगी । यही इस समय की सुन्दर मिली-जुली उर्दू भाषा है । अन्तिम मुगल सम्राट, बहादुरशाह उर्दू का सुन्दर कवि था ।

दूसरी भारतीय भाषाओं ने भी मुगल समय में अपूर्व उन्नति की । जदुनाथ सरकार लिखते हैं :

> **"अकबर ही के समय में हिन्दी में तुलसीदास और बंगला में वैष्णव लेखकों के प्रताप से एक जबरदस्त हिन्दू साहित्य देश की भाषाओं में पैदा हुआ । सम्राट अकबर ही ने इस देश में सच्चे राष्ट्रीय दरबार को जन्म दिया और अकबर के शासनकाल में भारतीय मस्तिष्क का बहुत बड़ा उत्थान हुआ ।"***

मुगल साम्राज्य से पहले भी बंगाल और दक्षिण के मुसलमान शासकों के अधीन वहां के देशी साहित्य ने बहुत उन्नति की थी । दिनेशचन्द्र सेन, जिनकी पुस्तक बंगला भाषा और बंगला साहित्य के इतिहास पर अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, लिखते हैं:

> **"बंगला भाषा को साहित्य की भाषा बनाने में कई प्रभावों ने काम किया है, जिनमें निस्सन्देह सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बंगाल विजय**

**Mughal Administration*, p. 146.

करना था। यदि हिन्दू राजा स्वाधीन बनें रहते, तो बंगला भाषा को राजाओं के दरबारों तक पहुंचने का मुश्किल से ही मौका मिल सकता।"*

बंगाल के मसलमान शासकों ने विद्वान पण्डितों को नियुक्त करके रामायण और महाभारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया। बंगाल के मुसलमान शासक नसीर-शाह ने चौदहवीं सदी के शुरू में महाभारत का बंगला में अनुवाद कराया। मैथिल कवि विद्यापति ने इस विषय में नसीरशाह और सुलतान गयासुद्दीन की खूब प्रशंसा की है। राजा कंस के उत्तराधिकारी ने इस्लाम मत स्वीकार किया। कंस के दरबार में मुसलमानों का प्रभाव बहुत अधिक था। रामायण के अनुवादक कृत्तिवास को उस दरबार से पूरी सहायता मिलती थी। सम्राट हुसैनशाह ने मलधर बसु द्वारा भागवत का बंगला में अनुवाद कराया और इसके इनाम में मलधर बसु को 'गुणराज खां' का खिताब दिया। हुसैनशाह के सेनापति परंगल खां ने महाभारत का एक दूसरा बंगला अनुवाद कवीन्द्र परमेश्वर से कराया। परंगल खां के बेटे, चट्टग्राम के शासक, छोटे खां ने श्रीकरण नन्दी से महाभारत के अश्वमेध पर्व का अनुवाद कराया। एक मुसलमान लेखक अलाउल ने मलिक मोहम्मद जायसी की हिन्दी पुस्तक 'पद्मावत' का बंगला में अनुवाद किया। अलाउल ने कुछ फ़ारसी किताबों का भी बंगला में अनुवाद किया। दिनेश चन्द्र सेन लिखते हैं:

"इस तरह की मिसालें बेहद मिलती हैं, जिनमें कि मुसलमान सम्राटों और सरदारों ने संस्कृत और फ़ारसी के ग्रन्थों का अपनी ओर से बंगला में अनुवाद कराया और दूसरों को इस तरह के कामों में मदद दी × × × जब कि बंगाल के बलवान मुसलमान बादशाहों ने देश की भाषा को अपनें दरबारों में यह उच्च स्थान प्रदान किया, तब क़ुदरती तौर पर हिन्दू राजाओं नें भी उनका अनुसरण किया × × × इस तरह, हिन्दू राजाओं के दरबारों में बंगाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखादेखी शुरू हुआ।†

बंगाल के मुसलमान बादशाहों के समान दक्षिण के बहमनी बादशाहों ने भी वहां के साहित्य और कला-कौशल्य को खूब उन्नति दी। आदिलशाही बादशाहों के दफ्तरों में मराठी भाषा का उपयोग किया जाता था और हिन्दू मराठों को माल और सेना विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। कुतुबशाह दक्खिनी खुद मराठी भाषा का सुन्दर कवि था और साहित्य का बड़ा प्रेमी था। मराठी भाषा में हिन्दी और फ़ारसी, दोनों भाषाओं के शब्दों ने खूब प्रवेश किया।

हिन्दी, उर्दू, बंगला और मराठी के अलावा और उन्हीं के समान, पंजाबी और सिन्धी भाषाओं और उनके साहित्य ने भी मुसलमानों के समय में भारत में अपूर्व उन्नति की। वास्तव में, वह समय प्राचीन संस्कृत के स्थान पर देशी भाषाओं के उत्थान का समय था। हिन्दुओं और मुसलमानों का जीवन इस विषय में इतना गुंथा हुआ था कि मिश्रबन्धुओं ने अपनी पुस्तक में अनेक मुसलमान हिन्दी कवियों की और दिल्ली के मुन्शी श्रीराम ने अपनी पुस्तक में उर्दू के अनेक हिन्दू कवियों की सूची दी है। हिन्दी, मराठी, बंगला इत्यादि समस्त भारतीय भाषाओं पर मुस्लिम शासन, फ़ारसी और तुरकी शब्दों और मुहावरों का अभी तक अमिट प्रभाव मौजूद है।

**History of Bengali Language and Literature* by Dinesh Chandra Sen, p. 10.
†Ibid, pp. 13, 14.

साहित्य और विज्ञान की उन्नति

विज्ञान के मैदान में भी भारत की वैद्यक, गणित और ज्योतिष विद्याओं ने आरम्भ के दिनों में अरब विचारों और अरब पुस्तकों द्वारा यूनानी वैज्ञानिक विचारों से अपने ज्ञानकोश को ख़ासा बढ़ाया। सत्रहवीं सदी के अन्त या अठरहवीं सदी के शुरू में महाराजा जयसिंह ने हिन्दू पंचांग का सुधार करने के लिए जयपुर, मथुरा, देहली और बनारस में मानमन्दिर बनवाए और अरबी ग्रन्थ 'अलमजस्ती' का संस्कृत में अनुवाद कराया। भारतीय वैद्यक ने अनेक नई चीजें, खास कर तेज़ाबों और कीमिया के क्षेत्र में, अरबों से सीखी। कई तरह के नए धन्धे—मसलन, कागज़ बनाना, क़लई करना, चीनी मिट्टी के बर्तन और कई तरह के धातुओं के काम—भारत में मुसलमानों के समय से प्रचलित हुए। इसी तरह पोशाक, खाना, संगीत, रहन-सहन इत्यादि में भी मुसलमानों के समय में भारतीय जीवन में गहरे और बहुमूल्य परिवर्तन हुए।

वास्तव में, भारत के अन्दर उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक नई समन्वयात्मक यानी गंगा-जमनी सभ्यता का विकास हो रहा था, जो न हिन्दू थी, न मुसलमान; न वैदिक थी, न बौद्ध; बल्कि जो शुद्ध भारतीय थी, इन सब अलग-अलग सभ्यताओं के मेल से बनी थी और जो प्राचीन भारतीय सभ्यताओं या अरब और ईरान की विदेशी सभ्यताओं, दोनों के सर्वोच्च गुण लिए हुए, पर उन सबसे ऊंची थी। हिन्दू अपने प्राचीन जातपांत के भेदों, अनेक तरह के देवी-देवताओं की पूजा, आडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड, पुरोहितों के प्रभुत्व, असंख्य अन्धविश्वासों और सदियों की संकीर्णता को तिलांजलि दे, मानव समता, एक-ईश्वरवाद और प्रेम और सदाचार के महत्व की ओर बढ़ते हुए दिखाई दे रहे थे। भारत का इस्लाम अरब के प्रारम्भिक इस्लाम से भिन्न एक नई और सुन्दर वस्तु बन रहा था, और मुसलमान सूफ़ी, हिन्दुओं के अनेक उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों और योग प्राणायाम जैसी विधियों को अपना कर उन्हें इस्लाम का एक अंग बना रहे थे। कबीर, दादू, नानक और बाबा फ़रीद-जैसे सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान फ़क़ीर–महात्मा अलग-अलग धर्मों और सम्प्रदायों की बनावटी और हानिकर दीवारों को तोड़ कर मनुष्यमात्र को प्रेम और एक सार्वजनिक उच्चतम सच्चे मानव धर्म का उपदेश दे रहे थे। शिल्प, विज्ञान, कला-कौशल, साहित्य और सामाजिक रहन-सहन में नए और उच्चतर आदर्शों का प्रादुर्भाव हो रहा था। भारत की विविध प्रान्तीय भाषाएं पहली बार अपने अन्दर उच्च और स्फूर्तिदायक साहित्य को जन्म दे रही थीं। समस्त देश सुख-चैन और खुशहाली की ओर बढ़ रहा था। एक देश और एक राष्ट्र के भाव मानव-प्रेम के रंग में रंग कर समस्त भारत को एक समान उच्चतर और पवित्रतर जीवन की ओर ले जा रहे थे।

सम्राट अकबर

लगातार कई सौ साल से बढ़ते हुए और लहलहाते हुए इस राष्ट्रीय वृक्ष का सबसे सुन्दर, सबसे महान और सबसे गौरवान्वित पुष्प सोलहवीं सदी के मध्य में सुप्रसिद्ध सम्राट अकबर के रूप में आकर खिला। प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान एच० जी० वेल्स सम्राट अकबर के विषय में लिखता है :

> **"किसी भी ऐसे पक्षपात की भावना से, जो समाज के टुकड़े-टुकड़े करके मतभेद पैदा करता है, पूर्णतः रहित, दूसरे धर्मों के लोगों की ओर उदार, हिन्दू**

या द्रविड़ सब जातियों के लोगों की ओर समदर्शी, वह एक इस तरह का मनुष्य था, जो स्पष्टतः अपनें साम्राज्य भर की परस्पर विरोधी जातियों और श्रेणियों को मिला कर एक शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र बना देने के लिए पैदा हुआ था।"*

एक दूसरे स्थान पर एच० जी० वेल्स लिखता है :

"एक सच्चे नीतिज्ञ की तरह उसमें समन्वय की सहज प्रवृत्ति मौजूद थी। उसनें निश्चय किया कि मेरा साम्राज्य न मुस्लिम होगा, न मुग़ल; न राजपुत होगा, न आर्य; न द्रविड़ होगा, न हिन्दू; न उच्च जातियों का होगा, न नीच जातियों का; मेरा साम्राज्य केवल भारतीय साम्राज्य होगा।"†

अकबर भारत की उन राष्ट्रीय लहरों का केवल मूर्तिमान फल था, जो अकबर के सैकड़ों साल पहले से भारत में चल रही थीं और जो अकबर के बाद तक अपना काम करती रहीं। धार्मिक विषय में अकबर ने कबीर के ज्वलन्त उपदेशों से शिक्षा और प्रोत्साहन लिया। सम्राट हर्ष अकबर से कई सौ साल पहले प्रयाग में शिव, बुद्ध और सूर्य तीनों के मन्दिरों में जाकर बारी-बारी से पूजा किया करता था। बंगाल में सम्राट हुसैनशाह द्वारा 'सत्यपीर' की पूजा का प्रचार, जिसे हजारों हिन्दू और मुसलमान एक समान मानते थे, अकबर के धार्मिक विचारों का एक प्रारम्भिक रूप था। फिर भी, अकबर का व्यक्तित्व और उसका लक्ष्य, दोनों निराले और अत्यन्त महान थे।

धार्मिक क्षेत्र में अपने 'अल्लाह उपनिषद' और 'दीने इलाही' द्वारा उसने एक सरल सार्वजनिक धर्म की नींव रखने की कोशिश की। सामाजिक जीवन में उसने हजारों साल की उस प्रथा को, जिसके अनुसार हर विजेता अपने युद्ध के क़ैदियों को गुलाम बना दिया करता था, सन् 1573 में कानूनन बन्द कर दिया। बलात वैधव्य, बाल-विवाह, बहु-विवाह, धर्म के नाम पर पशुबलि और सती की प्रथा को उसने यथाशक्ति बन्द करने का प्रयत्न किया। किन्तु उसने अपने किसी भी सुधार को तलवार के जोर से लागू करने की चेष्टा नहीं की। फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि अकबर प्रतिदिन ग़रीबों में जितना भोजन, वस्त्र इत्यादि वितरित किया करता था और अपनी तीर्थ यात्राओं में जितना दान दिया करता था, उस में साम्राज्य की आय का एक खासा हिस्सा खर्च हो जाता था। स्त्री-जाति की स्वतन्त्रता का वह सच्चा पक्षपाती था। उसके हिन्दू-मुस्लिम विवाहों ने हिन्दू-मुस्लिम सम्मिश्रण को और भी अधिक पक्की नींव पर क़ायम करने की चेष्टा की। अकबर ने एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र को अपनी आंखों के सामने साक्षात करने का प्रयत्न किया। वास्तव में, उसने एक नए भारत की रचना करनी चाही। अकबर के स्वप्न सर्वथा पूरे न हो सके, किन्तु "उदारता और खोज की जिस महान प्रवृत्ति" को उसने जन्म दिया,

---

*"Free from all those prejudices which separate society and create dissensions, tolerant to men of other beliefs, impartial to men of other races, whether Hindoo or Dravidian, he was a man obviously marked out to weld the conflicting elements of his kingdom into a strong and prosperous whole."—*The Outline of History* by H. G. Wells, London, p. 455.

†"His instinct was the true statesman's instinct for synthesis. His Empire was to be neither a Moslem nor a Mughal one, nor was it to be Rajput or Aryan or Dravidian, or Hindoo or high or low caste; it was to be Indian."—Ibid, p. 454.

वह अभी तक क़ायम है और इसमें संदेह नहीं कि जिस सच्ची भारतीय राष्ट्रीयता को इस समय भारत में जन्म देने का प्रयत्न किया जा रहा है, उसका सबसे पहला प्रवर्तक और प्रचारक सम्राट अकबर ही था ।

फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है :

"बहैसियत एक सेनापति के अकबर महान था, बहैसियत राजनीतिज्ञ के वह नए समाज का निर्माणकर्ता था और सच्ची मानवता के एक क्रियात्मक व्याख्याता की हैसियत से आज तक कोई उससे बढ़ कर नहीं हुआ ।"†

उस समय की हिन्दू-मुस्लिम संकीर्णता

सम्राट अकबर के बाद उसके दोनों उत्तराधिकारियों, जहांगीर और शाहजहां ने एक-दूसरे के बाद इसी नीति का अनुसरण किया और इसी राष्ट्रीय प्रगति को सुन्दरता के साथ जारी रखा । प्रगति और उसका बल बढ़ता गया, यहां तक कि, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, शाहजहां का समय भारतीय इतिहास में सबसे अधिक समृद्धि का समय और अनेक अर्थों में भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था । किन्तु एकता, समता, उदारता और मानव-प्रेम की जो लहरें उस समय भारत के अन्दर काम कर रही थीं, वे अभी तक भारतीय जीवन के समस्त क्षेत्र को पूरी तरह अपने वश में न कर पाई थीं । निस्सन्देह, उस समय इन शक्तियों का ज़ोर था और वह ज़ोर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था । किन्तु दूसरी ओर हिन्दू धर्म और इस्लाम की पहले की संकीर्ण प्रवृत्तियां भी अभी तक समाप्त न हुई थीं । रामानन्द ही के चेलों में यदि एक कबीर था, तो दूसरा तुलसीदास । दोनों महान थे, दोनों ईश्वर भक्त थे, दोनों पर भारत को गर्व है, दोनों ने अपने-अपने ढंग से भावी भारत की रचना में कम या ज्यादा भाग भी लिया, किन्तु एक ने अलग-अलग धर्मों की दीवारों को तोड़ कर निश्शंकभावी, व्यापक मानव धर्म का उपदेश दिया और दूसरे का झुकाव जातपांत युक्त मध्यमकालीन हिन्दुत्व की ओर था । वल्लभाचार्य इत्यादि अनेक इस तरह की शक्तियां और ख़ास कर शैव और वैष्णव आचार्य सारे भारत में मौजूद थे, जो राष्ट्र को भविष्य की ओर ले जाने के बजाय उसे भूतकाल की संकीर्णताओं में फंसाए रखने की ओर लगे हुए थे । मुसलमानों में भी जब कि एक ओर शरीयत के मोटे-मोटे कर्मकाण्ड की परवाह न करने वाले सूफ़ी और दरवेश मौजूद थे, जो कबीर के समान एक मानव धर्म के प्रचारक थे, वहीं दूसरी ओर इस तरह के अदूरदर्शी मुल्लाओं का भी अभाव न था, जो अकबर, जहांगीर और शाहजहां, तीनों को काफ़िर बतलाते थे । इसी तरह के संकीर्ण लोगों ने मन्सूर को सूली पर चढ़ाया था और शम्स तबरेज़ की खाल खिचवाई थी । निस्सन्देह इस मामले में संसार को किसी भी तरह के लोगों से इतनी हानि नहीं पहुंची, जितनी विविध धर्मों के ऊन पुरोहितों, पादरियों या मुल्लाओं से, जो अपने-अपने धर्मों के अन्तर्गत उदार भावों, सदाचार और मानव-प्रेम की अवहेलना कर कर्मकाण्ड और रूढ़ियों में जनसामान्य को फंसाए रखते हैं और विविध मतों और सम्प्रदायों को एक-दूसरे से पृथक करनेवाली, मानव समाज के टुकड़े करनेवाली कृत्रिम दीवारों को बनाए रखते हैं । दुर्भाग्यवश इनमें से अधिकांश का व्यक्तिगत हित भी इसी में होता है । जिस

---

†"Akbar was great as a general, as a statesman creative and down to the present day he is unsurpassed as a practical exponent of genuine humanity." *The Emperor Akbar, etc.*, by Frederick Augustus, p. 296.

समय भारत में कबीर और अकबर जैसों की चलाई हुई लहरें इन संकीर्ण प्रवृत्तियों का सदा के लिए अन्त करने वाली थीं, ठीक उस समय वह घटना हुई, जिसने इस समस्त राष्ट्रीय प्रगति को उलट-पुलट कर दिया।

दाराशिकोह और औरंगज़ेब

शाहजहां का बड़ा लड़का दाराशिकोह अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के समान भारत की इस राष्ट्रीय प्रगति का सच्चा प्रतिनिधि, उसका भक्त और अनुयायी था। दाराशिकोह प्रसिद्ध हिन्दू सन्त बाबालाल का शिष्य था। दाराशिकोह की फ़ारसी पुस्तक 'नादिरुन्निकात', जिसमें दारा ने अपने गुरु बाबालाल के साथ अपनी बातचीत का बयान किया है, वेदान्त के ऊपर फ़ारसी के सर्वोत्तम ग्रंथों में गिनी जाती है। दारा के लिए ईश्वर का सबसे प्यारा नाम 'प्रभु' था, जो उसकी मोहर तक में खुदा हुआ था। दारा के छोटे भाई औरंगजेब ने दारा को हटा कर स्वयं गद्दी पर बैठना चाहा। देश में समस्त मेल-मिलाप की शक्तियां स्वभावतः दारा की ओर थीं। विशेषकर सारा हिन्दू समाज दारा के पक्ष में था। दारा को शिकस्त देने के लिए औरंगजेब को कट्टर मुल्लाओं और इस्लाम की संकीर्ण प्रवृत्तियों को अपनी ओर करना पड़ा। देश के मेल-मिलाप में बाधा डालनेवाली इन शक्तियों को नया जीवन मिल गया। भारत की किस्मत का फैसला कम-से-कम आइन्दा तीन-चार सौ साल के लिए 30 मई, सन् 1658 को सामूगढ़ के मैदान में उस समय हुआ, जब कि कट्टर और अदूरदर्शी औरंगजेब ने उदार और दूरदर्शी दाराशिकोह पर विजय प्राप्त की।

सम्भव है कि औरंगजेब के स्वभाव में ही कट्टरता रही हो। कहीं अधिक सम्भव है कि, जैसा हमने ऊपर लिखा है, यह कट्टरता उसके लिए एक राज-नैतिक आवश्यकता रही हो। किन्तु हमारे इस समय के प्रसंग या भारत के भाग्य में इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

सिंहासन पर बठते ही औरंगजेब ने देश की समस्त कट्टर मुस्लिम प्रवृत्तियों को अपनी ओर जमा करना शुरू किया। शासन की हैसियत से औरंगजेब अन्यायी न था। साम्राज्य की ऊंची-से-ऊंची पदवियां उसने बिना भेदभाव हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को एक समान दे रखी थीं। बिना किसी खास वजह के वह अपनी हिन्दू प्रजा के दिल को दुखाना भी नहीं चाहता था। गोवध के खिलाफ़ जो कड़ी आज्ञाएं सम्राट अकबर के समय से चली आती थीं, औरंगज़ेब ने उन्हें जारी रखा और अपने 50 वर्ष के शासनकाल में साम्राज्य भर के अन्दर कड़ाई के साथ उनका पालन कराया। किसानों के हित का वह खास खयाल रखता था। औरंगज़ेब के धार्मिक पक्षपात के जो बेशुमार किस्से देश भर में प्रचलित हैं और जिनमें से अनेक इतिहास की पुस्तकों में भी प्रवेश कर गए हैं, वे अधिकांश में झूठे हैं। किन्तु औरंगज़ेब कट्टर शरई मुसलमान था। वह इस्लाम की समस्त रूढ़ियों का माननेवाला था और उनपर अमल करता था। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने एक बार कहा था कि औरंगज़ेब इस्लाम की 'स्पिरिट', यानी आन्तरिक भावना के मुकाबले में 'फ़कीहों', यानी धर्माचार्यों के फ़तवों की अधिक परवाह करता था। अकबर और शाहजहां के दरबारों के बारे में कहा जा सकता था कि वे दरबार न हिन्दू दरबार थे और न मुस्लिम दरबार, वे शुद्ध भारतीय दरबार थे। औरंगज़ेब के दरबार के बारे में यह न कहा जा सकता था। अकबर और शाहजहां को मुसलमान जितना अपना कह सकते थे, उतना ही हिन्दू भी अपना कह सकते थे। औरंगज़ेब के लिए

यह बात नामुमकिन थी। शाही दरबार के अन्दर दशहरे, दीवाली, रक्षाबन्धन और शिवरात्रि का मनाया जाना और भारतीय सम्राट का उनमें हिस्सा लेना औरंगज़ेब ने बन्द कर दिया। ये सब बातें फिर पुरानी कहानी रह गईं।

राष्ट्र के अधिक दूरदर्शी लोगों ने, जो इससे पहले की हितकर राष्ट्रीय प्रगति से परिचित थे, इसका विरोध किया। उन्हें दिखाई दे गया कि औरंगज़ेब की नीति बने-बनाए राष्ट्रीय जीवन के टुकड़े कर देश को नाश की ओर ले जानेवाली है। इन लोगों ने औरंगज़ेब को समझाने की कोशिश की। जिस समय औरंगज़ेब ने 'जज़िए' के उस निरर्थक किन्तु विवादास्पद, कर को, जिसे सम्राट अकबर ने बन्द कर दिया था, फिर से जारी करना चाहा, तो महाराजा सवाई जयसिंह ने सन् 1678 में औरंगज़ेब से कहा :

> **"ख़ुदा केवल मुसलमानों ही का ख़ुदा नहीं, बल्कि तमाम इन्सानों का ख़ुदा है। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान, सब एक समान हैं। हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का अनादर करना उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की इच्छा की अवहेलना करना है।"***

औरंगज़ेब ने इस सलाह की परवाह न की। स्वभावतः राजपूत, मराठे, सिख और अन्य हिन्दू राजे-महाराजे एक-एक कर औरंगज़ेब के खिलाफ़ खड़े हो गए। जिस तरह औरंगज़ेब ने कट्टर मुस्लिम शक्तियों को अपनी ओर किया, उसी तरह कुछ हिन्दुओं, मराठों और सिखों ने हिन्दू कट्टरता का आश्रय लिया। सारा देश दो विरोधी दलों में बंट गया। कुछ वर्षों के अन्दर ही कबीर और अकबर-जैसों के महान प्रयत्नों और सदियों की राष्ट्रीय प्रगति का खात्मा हो गया। औरंगज़ेब संयमी और बलवान था। वह अपनी ज़िन्दगी भर केवल उस संगठित शक्ति के सहारे, जो बाबर से लेकर शाहजहां तक के शासन-कालों में मुगल साम्राज्य ने प्राप्त कर ली थी, चारों ओर के विद्रोह का दमन करता रहा। किन्तु जिस साम्राज्य की नींव देशवासियों के हित और उनकी सहानुभूति पर कायम की गई थी, वह अब केवल हथियारों के बल चलाया जाने लगा। दुर्भाग्यवश औरंगज़ेब का शासनकाल भी बहुत लम्बा था। अलग-अलग धार्मिक कट्टरता का दोनों ओर बल प्राप्त करने और समता, उदारता, प्रेम और एकता की शक्तियों को तितर-बितर होने का काफी मौका मिल गया। औरंगज़ेब के मरते ही भारतीय साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े होने लगे। देश की प्रधान राजनैतिक सत्ता के निर्बल होने के साथ-साथ देश के समस्त उद्योग-धन्धों, व्यापार, साहित्य और सुख-समृद्धि के भी नाश के बीज बोए गए।

औरंगज़ेब के बाद

बहुत सम्भव है कि औरंगज़ेब के बाद देश फिर अपनी गलती को अनुभव कर उस गलती के बुरे नतीजों को दूर कर लेता और शीघ्र ही फिर एक बार पहले की तरह एकता, और उन्नति के पथ पर चलने लगता। बहुत दरज़े तक देश ने ऐसा किया भी। जज़िया औरंगज़ेब ही के समय में चार दिन चल कर बन्द हो गया था। औरंगज़ेब के अनेक उत्तराधिकारियों ने औरंगज़ेब की कट्टर नीति को छोड़कर फिर उदारता और विशालता का सबूत देना शुरू कर दिया। दिल्ली दरबार में फिर से दशहरा और रक्षाबंधन जोश के साथ मनाए जाने लगे। सम्राट शाह आलम ने शिवाजी के उत्तराधिकारी, पूना के पेशवा को अपनी सल्तनत का

**Rise of the Maratha Power* by Ranade, p. 81.

'वकील' करार दिया और माधोजी सिंधिया को, अपना 'फ़रज़ंद जिगरबंद' कह कर, स्वयं देहली और आगरे का सूबेदार और राजधानी का शासक नियुक्त किया। शाह आलम के पुत्र अकबरशाह ने ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध जन्मदाता राममोहन राय को राजा का खिताब देकर और अपना विश्वस्त वकील नियुक्त करके इंगलिस्तान भेजा। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के जीवन की अनेक घटनाएं और उनके अनेक कथन इस तरह के मौजूद हैं, जिनसे जाहिर है कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों को एक आंख से देखता था और स्वयं सूफ़ी विचारों का था। साम्राज्य के केन्द्र की इस हितकर नीति का प्रभाव भारत के दूसरे प्रांतों में भी जगह-जगह साफ़ देखने में आता था। प्लासी के युद्ध के बाद तक बंगाल के मुसलमान सूबेदारों के अधीन बड़े-से-बड़े प्रान्तों की दीवानी हिन्दुओं को मिली हुई थी और सूबेदार के दरबार में हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ व्यवहार में किसी तरह का भेदभाव न किया जाता था। सिराजुद्दौला का सबसे विश्वस्त अनुयायी राजा मोहनलाल था, जिसने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के लिए अपने प्राण दिए। मीर जाफ़र ने दीवान राजा खां के स्थान पर महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त करने की जिद की। नन्दकुमार ने ही मीर जाफ़र के मरने पर एक हिन्दू मन्दिर से गंगाजल लाकर उसे अपने हाथों से गंगाजल से अन्तिम स्नान कराया। यही हालत महाराजा रणजीत सिंह, होलकर, सिंधिया, हैदरअली और टीपू सुलतान के दरबारों की थी। प्रसिद्ध मराठा नीतिज्ञ, नाना फड़नवीस हैदरअली को अपना दाहिना हाथ कहा करता था और दोनों में गहरा भाईचारा था। हमने इस पुस्तक में आगे चलकर दिखलाया है कि हैदरअली की सारी नीति इस विषय में ठीक सम्राट अकबर की नीति की नकल थी। जगद्गुरु शंकराचार्य और टीपू सुलतान में एक-दूसरे के लिए गहरा प्रेम था। अवध के मुसलमान नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े-बड़े ताल्लुकेदार और मुख्य-मुख्य मंत्री तक हिन्दू होते थे और लखनऊ दरबार उदारता, एकता और प्रेम में रंगा रहता था। इसी तरह की और भी मिसालें उस समय के इतिहास से दी जा सकती हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि भारत को मौका मिलता, तो वह शीघ्र एक औरंगजेब की गलती के नतीजों से पनप कर अपना पहले का परस्पर विश्वास और पहले का गौरव प्राप्त कर लेता।

किन्तु भारत के दुर्भाग्य से ठीक उसी समय, जब कि औरंगज़ेब की गलती के नतीजे अभी ताजे थे और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता एक बार निर्बल हो चुकी थी, एक ऐसी तीसरी शक्ति ने भारत के राजनैतिक मंच पर प्रवेश किया, जिसे भारत की उस गलती से पैदा हुए एक-दूसरे के अविश्वास और उसके बुरे नतीजों को स्थायी कर देने में ही अपना सबसे बड़ा हित दिखाई दिया और जिसका यह हित हर तरह भारतवासियों के हित के विरुद्ध था और जिसने भारत की उस समय की अस्त-व्यस्त हालत और कमज़ोरी से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया।

अंगरेज़ों का आना

उस समय के अंगरेज़ व्यापारी

अंग्रेज़ों के भारत आने का और उस समय के इंगलिस्तान और भारत, दोनों की हालत का चित्र ऊपर दिया जा चुका है। भारत में उनकी 100 साल से ऊपर की कोशिशों

और कार्रवाइयों का विस्तृत हाल प्रामाणिक अंगरेज लेखकों ही के आधार पर पाठकों को इस पुस्तक में पढ़ने को मिलेगा। औरंगज़ेब के समय तक भारत के अन्दर अंगरेज व्यापारियों की हालत करीब-क़रीब वैसी ही थी, जैसी आजकल (1928) के भारत में हींग बेचने वाले काबुलियों या शिलाजीत बेचनेवाले तिब्बतियों की। औरंगजेब की अदूरदर्शी नीति ने थोड़े ही दिनों में चारों ओर छोटी-छोटी और एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धी रियासतें पैदा कर दीं, साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति को निर्बल कर दिया, और देश के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों के परस्पर प्रेम और एकता की उन अलौकिक राष्ट्रीय लहरों को एक समय के लिए पीछे हटा दिया, जो कबीर के समय से लेकर क़रीब तीन सौ साल की लगातार कोशिशों से देश को चिरस्थायी एकता, सुख और खुशहाली की ओर ले जाती हुई दिखाई दे रही थीं। देश के शत्रुओं को अपनी कोशिशों के लिए खुला मैदान मिल गया।

औरंगजेब की मृत्यु के चन्द साल के ही अन्दर मद्रास और बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साज़िश शुरू हो गई, जो बढ़ते-बढ़ते औरंगजेब की मृत्यु के पचास साल बाद प्लासी के मैदान में अपना रंग लाई। क़ुदरती तौर पर अंग्रेजों का हित इसी में था कि भारतीय जीवन की उस समय की अव्यवस्था को जिस तरह हो सके, चिरस्थायी बना दें और राष्ट्रीय एकता की उन कल्याणकरी प्रवृत्तियों को, जिनका बढ़ना औरंगजेब के समय में रुक गया था, फिर से पनपने न दें।

उनकी सफलता के कारण

किन्तु एक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने यह आता है कि क्या-क्या कारण हुए, जिनसे अधिक सभ्य, अधिक बलवान और अधिक उन्नत भारतवासी अपने से कम समय के बलवान और अनुन्नत इंगलिस्तान-निवासियों की चालों में लगातार इस आसानी से आसे चले गए, यहां तक कि अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठे। यही प्रश्न इस पुस्तक को पढ़ने से हर पाठक के दिल में पैदा होगा। वास्तव में, यह इतिहास की कठिनतम पहेलियों में से एक है।

सबसे पहले कुशाग्र बुद्धि वाले फ़ान्सीसी सेनापति डूप्ले ने मालूम किया कि यूरोपीय अर्थों में 'राष्ट्रीयता' या 'देशभक्ति' का उस समय भारत में लगभग अभाव था। डूप्ले के अनुसार, यूरोप-निवासियों के लिए भारतवासियों को एक-दूसरे से लड़ा देना निहायत आसान था और इसीलिए भारत अपनी आजादी खो बैठा। निस्सन्देह डूप्ले की बात एक दर्जे तक सत्य थी, किन्तु हमें इस पर गम्भीरता से विचार करना होगा। अंग्रेज विद्वान कर्नल मालेसन लिखता है कि अपने क़ौमी चरित्र की जिन कमजोरियों के कारण भारतवासी पराधीन किए जा सके, उनमें एक यह थी कि उन्हें "स्वभाव से ही गैरों पर विश्वास कर लेने और उनके साथ ईमानदारी का व्यवहार करने की आदत थी"।* कर्नल मालेसन का कथन डूप्ले के कथन की निस्बत सचाई के ज्यादा नज़दीक है।

सबसे पहली बात इस सम्बन्ध में हमें यह समझनी होगी कि किसी एक कम सभ्य कौम का अपने से अधिक सभ्य कौम पर विजय प्राप्त कर लेना या उसे पराजित कर लेना कोई नई घटना नहीं है। संसार के इतिहास में अनेक बार अधिक सभ्य क़ौमें अपने से कम सभ्य क़ौमों का इस तरह शिकार होती रही हैं। यूरोप में गाल और वेण्डाल कौमों के

*"......... the trusting and faithful nature............"—*The decisive Battles of India* by Colonel Malleson, Chapter I.

जिन लोगों ने उत्तर और पूरब से जाकर विशाल रोमन साम्राज्य पर हमला किया और उस साम्राज्य के सदा के लिये टुकड़े-टुकड़े कर डाले, वे रोमन लोगों की निस्बत कहीं कम सभ्य थे। जिन तातारियों और मुग़लों ने आज से हज़ार-डेढ़ हज़ार साल पहले पूरब और मध्य एशिया से निकल कर बग़दाद और ईरान के गौरवान्वित साम्राज्यों का अन्त किया, वे उस समय के अरबों और ईरानियों के मुकाबले में सर्वथा असभ्य थे। मध्य एशिया की असभ्य जातियों ने ही समृद्ध यूनानी साम्राज्य का खात्मा कर डाला। भारतवासियों का भी उस समय की अपने से किसी कम सभ्य जाति के इस तरह अधीन हो जाना इसी तरह की एक घटना थी। इस विचित्र ऐतिहासिक घटना के शायद तीन सबब हो सकते हैं। एक तो अधिक उच्च सभ्यता लोगों में थोड़ी-बहुत आरामतलबी की आदत पैदा कर देती है और असभ्य क़ौमों की-सी उद्दण्ड पराक्रमशीलता उनमें नहीं रह जाती। दूसरे, असभ्य या कम सभ्य लोग जिस निस्संकोच भाव के साथ अपनी पाशविक प्रवृत्तियों और शक्तियों का उपयोग कर सकते हैं, अधिक सभ्य लोग अपने यहां के नैतिक आदर्शों के अधिक स्थिर हो जाने के कारण उस तरह नहीं कर पाते। तीसरे, राजनैतिक हार-जीत अधिकतर हिंसा की शक्ति पर निर्भर होती है और यह आवश्यक नहीं है कि हर अधिक सभ्य क़ौम में हर कम सभ्य कौम के मुकाबले हिंसा की शक्ति भी अधिक ही हो।

पराजय के तीन कारण

भारत की इस दुर्घटना के भी हमें तीन मुख्य कारण साफ़ दिखाई देते हैं :

(1) अपने और पराए का वह भाव, जिसे आजकल 'राष्ट्रीयता' का भाव कहा जाता है, उदार भारतवासियों के चित्तों में कभी भी अधिक स्थान न कर पाया था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि 18-वीं सदी के शुरू में भारत के अन्दर कोई प्रबल केन्द्रीय शक्ति न रही थी। अनेक छोटी-बड़ी शक्तियां उस समय देश के अन्दर राजनैतिक प्रधानता हासिल करने के लिए बेचैन और प्रयत्नशील थीं। मुसलमानों और हिन्दुओं में भी जगह-जगह एक तरह की पृथकता पैदा हो गई थी। ऐसी हालत में एक तीसरी बाहर की ताकत कुछ लोगों को निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह दिखाई दी। इससे पहले जितने लोगों ने बाहर से आकर भारत में प्रवेश किया, उनमें से उनको छोड़कर, जो महमूद गज़नवी या नादिरशाह की तरह लूट-मार कर चार दिन के अन्दर वापस चले गए, और किसी से भारतवासियों को किसी तरह का कड़वा अनुभव न हुआ था। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि इन सब लोगों ने भारत में बस कर भारत को अपना घर बना लिया और समस्त भारतवासियों की उन्नति और विकास में पूरा-पूरा भाग लिया। ऐसी सूरत में अपने और गैर का भेद भारतवासियों के लिए कोई खास अर्थ ही न रखता था। भारतवासियों के धार्मिक और नैतिक आदर्श भी उनके अन्दर इस तरह का विचार पैदा होने न दे सकते थे। कुदरती तौर पर भारतवासियों ने सात समुद्र पार के यूरोपवासियों के साथ उसी तरह के प्रेम और सत्कार का व्यवहार किया, जिस तरह का वे आपस में एक-दूसरे के साथ करने के आदी थे। ऐसी सूरत में अंगरेजों का विविध भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में कभी एक ओर का और कभी दूसरी ओर का साथ देना या अपनी साज़िशों द्वारा इस तरह के संग्राम खड़े करके, उनसे लाभ उठाना अत्यन्त सरल हो गया।

(2) भारत की तिजारत उस समय इंगलिस्तान की तिजारत से हज़ारों गुना ज्यादा बढ़ी हुई थी। फिर भी, तिजारत या व्यापार को जो स्थान उस समय यूरोपियन कौमों और

खास कर अंगरेज़ क़ौम के जीवन में दिया जाता था, वह भारत में कभी न दिया गया था। अंगरेज़ क़ौम एक व्यापारी क़ौम थी। इंगलिस्तान के बड़े-से-बड़े लार्डों के व्यापारी कम्पनियों में हिस्से होते थे, यहां तक कि, जैसा हम ऊपर दिखला चुके हैं, इंगलिस्तान की मलका तक ग़ुलामों में क्रय-विक्रय जैसे निकृष्ट व्यापार में हिस्सा लेना या उससे हज़ार-दो हज़ार गिन्नी कमा लेना अपने लिए जिल्लत की चीज़ न समझती थी।* इसके विपरीत, भारत में कोई भी राजा, नवाब या जमींदार तिजारत में कभी किसी तरह का हिस्सा न लेता था, न राज-दरबार से सम्बन्ध रखनेवाले किसी आदमी की किसी कम्पनी में पत्ती होती थी। तिजारत से धन कमाने का काम इस देश में एक गौण या छोटा काम समझा जाता था और अनादि काल से एक खास श्रेणी के लिए छोड़ दिया गया था। यहां तक कि खेती का पेशा भी तिजारत से ऊंचा समझा जाता था। इसलिए किसी भारतीय नरेश का यह सोच सकना कि इस देश के साथ अंगरेज़ों के व्यापार के राजनैतिक या राष्ट्रीय नतीजे आइन्दा क्या हो सकते हैं, उस समय नामुमकिन था।

इसके साथ ही व्यापारी मात्र की रक्षा करना और अपने राज्य में व्यापार को जहां तक हो सके, प्रोत्साहन और सहायता देना हर भारतीय नरेश सदा से अपना धर्म समझता था। बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे भारतीय नरेशों के इतिहास में एक खास बात यह देखने को मिलती है कि उन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि किसी व्यापारी को हमारे राज्य के अन्दर नुकसान न होने पाए। यही वजह थी कि मुगल सम्राट शाहजहां ने एशियाई नरेशों की मर्यादा के अनुसार उदारता में आकर अंगरेज कौम के व्यापारियों को भारत में रहने और व्यापार करने के लिए इस तरह की रिआयतें अदा कर दीं जो आजकल का कोई शासक किसी भी दूसरी क़ौम के लोगों को अपने देश में देने का कभी विचार तक न करेगा। भारतीय सम्राट को यह गुमान तक न हो सकता था कि उसकी यह नृपोचित उदारता एक दिन बढ़ते-बढ़ते भारतीय व्यापार, भारतीय उद्योग-धन्धों और भारत की राजनैतिक स्वाधीनता, तीनों के सर्वनाश का बीज साबित होगी।

व्यापार की आड़ में राजनैतिक कुचक्र एक ऐसी चीज़ थी, जिसका भारतवासियों को उस समय तक अपने हज़ारों साल के इतिहास में कभी तजुर्बा न हुआ था और जो किसी भी भारतीय नरेश के दिमाग में न आ सकती थी। सम्राट औरंगज़ेब भारत के सबसे अधिक निष्ठुर सम्राटों में गिना जाता है। औरंगज़ेब ही ने अंगरेज कम्पनी की प्रार्थना पर कालीकाता, सूतानटी और गोविन्दपुर, ये तीन गांव व्यापार के लिए एक कोठी बनाने को बतौर जागीर कम्पनी को प्रदान किए थे। थोड़े ही दिनों में अंगरेज़ों ने वहां पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी। औरंगज़ेब के कर्मचारियों ने उससे शिकायत की। औरंगज़ेब यदि चाहता, तो केवल एक शब्द द्वारा उसी समय उस क़िलेबन्दी को बन्द कर सकता था या विदेशी व्यापारियों को भारत से निकाल बाहर कर सकता था। किन्तु इस शिकायत के पहुंचने पर उस भारतीय सम्राट ने बजाय क़िलेबन्दी को बन्द करने के उलटा अपने ही आदमियों को डांटा और कहा—"मुमकिन है, मेरी आसपास की देशी रिआया ने हसद के सबब फ़िरंगियों से कुछ झगड़ा किया हो। क्यों न फ़िरंगी, जिस तरह हो सके, अपनी हिफ़ाजत का इन्तजाम करें? ये बेचारे परदेसी बहुत दूर से आए हैं और बहुत मेहनती हैं। मैं हरगिज दखल न दूंगा।"†

**The Intellectual Development of Europe*, vol. ii, p. 244.
†*Our Empire in Asia* by Torrens, pp. 14, 15.

भारत के व्यापारियों को भी उस समय तक कभी किसी दूसरे देश के व्यापारियों से किसी तरह का कड़वा अनुभव न हुआ था। व्यापारी या आक्रामक, अंगरेज़ों से पहले के किसी भी विदेशी के ज़रिए भारतीय व्यापारियों को किसी तरह की हानि न पहुंची थी। इसके विपरीत, विविध देशों के मेल-जोल से सदा एक-दूसरे को लाभ ही पहुंचता रहा था। इसलिए यह भी असम्भव था कि भारतीय व्यापारी, जिनको अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारण सबसे अधिक हानि पहुंची, कम्पनी के कुचक्रों का मुकाबला करने या उसे देश से बाहर निकलने का मिल कर कोई प्रयत्न करने की सोचते। इसके विपरीत उस समय के अंगरेज व्यापारी हाल ही में आयरलैण्ड और स्काटलैण्ड के व्यापारों का नाश करके इन परस्पर नाशकारी तरीकों का पूरा अनुभव प्राप्त कर चुके थे। यहां तक कि स्काटलैण्ड को भी 'बिल आफ सिक्योरिटी' पास करके इंगलिस्तान के इन नाशकर प्रयत्नों से अपने व्यापार की रक्षा करनी पड़ी थी।

(3) भारतवासियों को इससे पहले किसी विदेशी के वचनों पर अविश्वास करने का कोई कारण न था। भारत में सन्धिपत्रों और राजकीय ऐलानों को सदा से पवित्र माना जाता था और यूरोपियनों के आने से पहले एशियाई नरेशों के संधिपत्र और ऐलान अधिकतर सच्चे होते भी थे। वास्तव में, इस विषय में उस समय के अंग्रेजों और भारतवासियों के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर है। इस देश में मराठे सबसे अधिक चतुर राजनीतिज्ञ माने जाते थे। मराठों ने कई बार बंगाल पर हमला किया। फिर भी बंगाल के मुसलमान सूबेदार अलीवरदी खां ने कहा था कि, "मराठों ने कभी भी अपनी सन्धियों का उल्लंघन नहीं किया"। अंगरेज़ों और भारतीय नरेशों के करीब सौ साल के सम्बन्ध में शायद एक भी मौका ऐसा नहीं हुआ, जिसमें किसी भारतीय नरेश ने अंगरेज़ों के साथ अपनी सन्धि का उल्लंघन किया हो। सच यह है कि उन दिनों अनेक भारतीय नरेशों की मुसीबतों का खास सबब यही हुआ कि उन्होंने ऐसे-ऐसे मौकों पर कम्पनी के साथ अपनी सन्धियों का ईमानदारी के साथ पालन किया, जबकि उन संधियों का पालन उनके और उनके देश के लिए साफ अहितकर दिखाई दे रहा था। हमारे इस कथन के सबूत में बेशुमार मिसालें पाठकों को स्थान-स्थान पर इस पुस्तक में मिलेंगी। इसके विपरीत, अंगरेज़ों के अपनी सन्धियां पालन करने या न करने के विषय में प्रसिद्ध अंगरेज इतिहास-लेखक सर जान के, जो इंगलिस्तान के इंडिया आफिस के 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, लिखता है :

> **"मालूम होता है कि अंगरेज सरकार ने सन्धियों को तोड़ने का ठेका ले रखा था। यदि मौजूदा अहदनामों को तोड़ने की सजा में किसी से उसका इलाका छीना जा सकता है, तो इस समय ब्रह्मपुत्र से लेकर सिन्धु नदी तक एक चप्पा जमीन भी अंगरेजों के पास नहीं बच सकती।"***

एडमण्ड बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सामने वारेन हेस्टिंग्स के मुकदमे के सिलसिले में कहा था—"एक भी ऐसी सन्धि नहीं है, जो अंगरेज़ों ने भारतवर्ष में किसी के साथ की हो और जिसे उन्होंने बाद में तोड़ा न हो।"

---

*"It would seem as though the British Government claimed to itself the exclusive right of breaking through engagements. If the violation of existing covenants ever involved *ipso facto* a loss of territory, the British Government in the East would not now possess a rood of land between the Brahmaputra and the Indus"—Sir John Kaye in the *Calcutta Review*, vol. i, p. 219.

8—220 M of I&B/80

दोनों के चरित्र में अन्तर

अंगरेज़ों और भारतवासियों के सम्बन्ध की अनेक छोटी-बड़ी घटनाएं इस तरह की मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि दोनों जातियों के चरित्र में इस बात में कितना ज़बरदस्त अन्तर था। इस विषय की एक-दो मिसालें यहां पर बेमौके न होंगी। हैदरअली और अंगरेज़ों की लड़ाइयों में अनेक बार ऐसा हुआ कि हैदरअली ने पराजित अंगरेज़ सैनिकों और सेनापतियों को उनसे यह वादा लेकर छोड़ दिया कि हम इसके बाद कम-से-कम बारह महीने तक आपके ख़िलाफ कहीं न लड़ेंगे। किन्तु फिर चन्द दिन के बाद वे ही अंगरेज सैनिक और सेनापति किसी दूसरी जगह के संग्राम में हैदरअली के ख़िलाफ लड़ते हुए दिखलाई दिए। इसके विपरीत, हैदरअली ने एक बार, जबकि वह अंगरेज़ी इलाके में विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ बढ़ता चला जा रहा था, कम्पनी के अंगरेज दूत से यह वादा किया कि मद्रास के फाटक पर पहुंच कर मैं आपकी ओर से सुलह बातचीत सुन लूंगा। विजयी हैदरअली मद्रास के फाटक तक पहुंच गया। वह चाहता, तो बात-की-बात में मद्रास के किले पर कब्ज़ा कर लेता और कम से कम दक्षिण भारत से उसी समय अंगरेज़ों को निकाल बाहर कर देता। किन्तु मद्रास पहुंचते ही उसने अपने वचन का पालन किया। सुलह की बातचीत हुई और विजयी हैदरअली ने पराजित अंगरेज़ों के साथ सुलह स्वीकार कर ली।

सन् 1857 के संग्रामों में अवध के अन्दर बेशुमार मिसालें इस बात की मिलती हैं कि अवध के उन ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों ने, जो अपने-अपने इलाके में स्वतंत्रता संग्राम के खुले नेता थे, मुसीबतज़दा अंगरेज पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िलों के अन्दर पनाह दी और उनकी प्रार्थना पर उन्हें खुद अपनी किश्तियों में बैठा कर इलाहाबाद और बनारस भेज दिया। किन्तु चन्द महीने के बाद ये ही अंगरेज़ अवध वापस जाकर उन्हीं ताल्लुकेदारों के विरुद्ध लड़ते हुए दिखाई दिए। इस तरह की और अधिक मिसालें देना केवल इस विषय को विस्तार देना होगा।

जिन भारतवासियों ने अंग्रेज़ों और भारत के सम्बन्ध में समय-समय पर देशघातकता का परिचय दिया उनमें भी शायद विरले ही ऐसे होंगे, जिन्होंने अंगरेज़ों के साथ अपने वचनों का पालन न किया हो। सच यह है कि यदि मध्यकाल के और इस सदी के यूरोप के इतिहास को ध्यान से पढ़ा जाए, तो मालूम होगा कि 'देशीयता' या 'राष्ट्रीयता' के संकीर्ण भाव यूरोप की विशेष सामाजिक परिस्थिति की उपज हैं। मध्यकालीन यूरोप में ज़मींदारों और काश्तकारों, अमीरों और गरीबों के बीच वह जबरदस्त खींचातानी करीब एक हज़ार साल तक जारी रही, जिसकी वजह से वहां की जनता में अपने और पराए का भेद ज़ोरों से जम जाना कुदरती था। धार्मिक पक्षपात का भी यूरोप में सदियों तक साम्राज्य रहा, जिससे इस तरह की संकीर्णता को बढ़ने का और अधिक मौका मिला। इसके अलावा यूरोप भर में अनेक छोटे-छोटे देश, करीब-करीब हर देश में खाने और कपड़े की कमी, और इस पर, श्रेणी-श्रेणी के बीच लगातार आर्थिक कलह और प्रतिस्पर्धा, इन सब कारणों से भी यूरोप के अन्दर 'मेरे देश' और 'तेरे देश' के भाव ज़ोर पकड़ते चले गए।

किन्तु भारत के दो हज़ार साल के इतिहास में इस तरह का कोई कारण मौजूद न था। यदि प्रान्तीय नरेशों में कभी-कभी लड़ाइयां होती थी, या बाहर से चन्द रोज़ के लिए कोई हमला भी होता था, तो करोड़ों जनता के रहन-सहन, उनके जीवन, उनके धन्धों और उनकी खुशहाली पर इन लड़ाइयों का किसी तरह का भी कोई असर न पड़ता था।

निस्सन्देह, आजकल की 'राष्ट्रीयता' आजकल के राष्ट्रों के स्वार्थमय जीवन-संग्राम का फल है। यह सच है कि राष्ट्रीयता का यह भाव मनुष्य को एक दर्जे तक व्यक्तिगत स्वार्थ के भाव से ऊपर राष्ट्र के नाम पर अपनी आहुति देने के लिए तैयार कर देता है। इस दर्जे तक यह भाव निस्सन्देह मनुष्य को ऊंचा उठानेवाला भी है। किन्तु यदि उच्च मानव-प्रेम और मानव जाति के हित की दृष्टि से देखा जाए, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल की 'राष्ट्रीयता' का भाव अधिक-से-अधिक एक अनिवार्य आपत्ति है और इस समय भी समस्त मानव-समाज के विकास में एक बहुत बड़ी बाधा साबित हो रही है। जो हो, भारत में इस भाव के पैदा होने के लिए अंगरेज़ों के आने से पहले कोई गुंजाइश ही न थी। यही वजह है कि भारतवासियों में अपने और पराए का भेदभाव मौजूद न था।

इसलिए यदि निष्पक्षता के साथ देखा जाए, तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सौ साल के इतिहास में जिन भारतवासियों ने अंगरेजों के साथ मिलकर अपने देश और देशवासियों को हानि पहुंचाई, उनमें से कुछ को छोड़ कर बाकी का पाप केवल इतना ही था, जितना किन्हीं भी दो राजाओं की लड़ाई में किसी एक का पक्ष को छोड़ कर दूसरे पक्ष की ओर चला जाना। यही वजह थी कि इनमें से अधिकांश देशघातकों ने भी विदेशियों के साथ अपनी प्रतिज्ञाओं का सचाई के साथ पालन किया।

इतिहास में स्पष्ट है कि अनेक दोषों के होते हुए भी भारतवासियों में अपने वचन का पालन करना एक सामान्य नियम था, जिसके कहीं-कहीं अपवाद मिल सकते हैं। दूसरी ओर, कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधियों में अपनी प्रतिज्ञाओं का निस्संकोच उल्लंघन करना एक सामान्य नियम था, जिसका शायद ही कोई अपवाद मिल सके। इसीलिए सन् 1757 से लेकर 1857 तक बार-बार के प्रतिकूल अनुभवों के होते हुए भी भारतवासियों ने सदा अंगरेज़ों की प्रतिज्ञाओं पर विश्वास किया।

इस सौ साल के इतिहास से यह भी जाहिर है कि वीरता या युद्धकौशल में भारतवासी अंगरेज़ों से पीछे नहीं थे। कर्नल मालेसन ने अपनी पुस्तक 'दि डिसाइसिव बैटिल्स आफ इंडिया' में स्वीकार किया है कि सन् 1757 से 1857 तक जो बेशुमार लड़ाइयां अंगरेज़ों और भारतवासियों के बीच लड़ी गई, उनमें से एक भी ऐसी नहीं हुई, जिसमें अंगरेज़ी सेना एक तरफ रही हो और हिन्दुस्तानी सेना दूसरी तरफ़ और फिर अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की हो। इस तरह के संग्राम, जिनमें अंगरेज एक तरफ थे और हिन्दोस्तानी दूसरी तरफ, अनेक बार हुए, किन्तु उनमें सदा अंगरेज़ों को हार खानी पड़ी। जहां कहीं किसी संग्राम में अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की है, वहां सदा हिन्दुस्तानियों में दो दल दिखाई दिए हैं—एक विदेशियों के विरुद्ध और दूसरा उनके साथ। यह एक अकाट्य किन्तु लज्जाजनक सच्चाई है कि अंगरेज़ों ने भारतवर्ष को तलवार से नहीं जीता, बल्कि भारतवासियों ने अपनी तलवार से अपने देश को जीत कर विदेशियों के हवाले कर दिया। हमारे इस कथन के काफ़ी सबूत पाठकों को इस पुस्तक के करीब-करीब हर अध्याय में मिलेंगे।

हमारा पतन

किन्तु जो हो, अब हमें इस भीषण सच्चाई की ओर ध्यान देना होगा कि हमारी इन दो सौ साल की लगातार ग़लतियों या कमज़ोरियों ने हमें कहां-से-कहां पहुंचा दिया। केवल दो सौ साल पहले जो देश संसार का सबसे अधिक खुशहाल और सबसे अधिक बलवान देश

समझा जाता था, वह संसार का सबसे अधिक दरिद्र और सबसे अधिक निर्बल और असहाय देश माना जाने लगा। डेढ़ सौ साल पहले जिस देश में एक भी पुरुष या स्त्री किसी गांव के अन्दर ऐसा न मिल सकता था, जो लिखना-पढ़ना न जानता हो, वहां आज (1928 में) 93 फ़ी सदी आबादी बिल्कुल अनपढ़ है। 19-वीं सदी के शुरू तक जो देश अपने उद्योग-धन्धों की निगाह से शायद केवल एक चीन को छोड़ कर संसार का सबसे अधिक उन्नत देश माना जाता था और जो उस समय तक आधे से अधिक सभ्य संसार की, जिसमें इंगलिस्तान और फ्रांस भी शामिल थे, कपड़े इत्यादि की आवश्यकता को पूरा करता था, वह अपने जीवन की एक-एक आवश्यकता के लिए, यहां तक कि अपना तन ढंकने के लिए भी, दूसरों का मोहताज हो गया। इन सब बातों की तफ़सील इस पुस्तक में उचित स्थान पर दी जाएगी।

इन हानियों से कहीं अधिक भयंकर हानि, जो राजनैतिक पराधीनता किसी भी देश को पहुंचा सकती है, उस देश के चरित्र का नाश है। समाज-विज्ञान का प्रसिद्ध अमरीकी विद्वान ई० ए० रास लिखता है :

> **"किसी भी राष्ट्र के चरित्र के अधःपतन के सबसे प्रबल कारणों में से एक, उस राष्ट्र का किसी विदेशी क़ौम के अधीन हो जाना है।"***

अपने समय के भारतवासियों के चरित्र को बयान करते हुए यूनानी इतिहास-लेखक एरियन लिखता है :

> **"इन लोगों में अद्भुत वीरता है, युद्ध-विद्या में ये सारे एशिया-निवासियों से बढ़ कर हैं। सादगी और सचाई के लिए ये विख्यात हैं। ये इतने समझदार हैं कि इन्हें कभी मुक़द्दमेबाजी की शरण नहीं लेनी पड़ती और इतने ईमानदार हैं कि न इन्हें अपने दरवाजों में ताले लगाने पड़ते हैं और न लेन-देन में इन्हें लिखा-पढ़ी की जरूरत होती है। कभी भी किसी भारतवासी को झूठ बोलते हुए नहीं सुना गया।"†**

उस समय के भारतवासियों के चरित्र की 20-वीं सदी के भारतवासियों के चरित्र से तुलना करना अत्यन्त दुखकर है। इस तुलना पर टीका करते हुए और मिश्र, यूनान-इत्यादि की मिसालें देते हुए ई० ए० रास लिखता है :

> **"भारतवासियों के उच्चतर जीवन के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है, जैसे किसी चीज को पाला मार गया हो।"‡**

निस्सन्देह, पिछले दो सौ सालों में यह प्राचीन देश तेजी के साथ मानसिक, नैतिक और भौतिक सर्वनाश की ओर बढ़ता चला गया।

---

*"Subjugation to a foreign yoke is one of the most potent causes of the decay of national character."—Professor E. A. Ross, *Principles of Sociology*, pp. 132, 133.

† "They are remarkably brave, superior in war in all Asiatics; they are remarkable for simplicity and integrity; so reasonable as never to have recourse to a law suit and so honest as neither to require locks to their doors nor writings to bind their agreement. No Indian was ever known to tell an untruth."—The Greek Historian Arrian, as quoted in Ibid, pp. 132, 133.

‡ "...........The alien dominion has a blighting effect upon the higher life of the people of India."—Ibid.

हमारा कर्तव्य

अंगरेजी राज कब से

सबसे अधिक गम्भीर सवाल हमारे सामने यह है कि इस घातक विपत्ति से निकलने का हमारे लिए अब क्या उपाय हो सकता है। इस सम्बन्ध में हमें सबसे पहले दो बातों की ओर से सावधान रहना होगा। एक यह कि घबराहट या किसी तरह के आवेश में आकर हम मानव जीवन के ऊंचे नैतिक सिद्धान्तों से न डिगने पाएं, जिनके बिना मानव समाज का सुख से जी सकना बिलकुल नामुमकिन है और जो मानव-जीवन के आध्यात्मिक आधारस्तम्भ हैं। दूसरे यह कि नैराश्य या अकर्मण्यता को हमें एक क्षण के लिए भी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए। इन दोनों में से हम दूसरी के विषय में पहले कुछ कहना चाहते हैं।

पौने दो सौ साल पहले भारतवर्ष की एक चप्पा जमीन पर भी अंगरेज का किसी तरह का अधिकार न था। आज (1929) से 87 साल पहले, यानी सन् 1842 तक वे दिल्ली सम्राट को अपना सम्राट स्वीकार करते थे, अपने तईं उनकी विनम्र आज्ञाकारी प्रजा कहा करते थे, ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्कों में दिल्ली सम्राट का नाम खुदा होता था और कम्पनी के भारतीय इलाकों के अंग्रेज गवर्नर-जनरल की मोहर में 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदविए खास', ये शब्द खुदे रहते थे। निस्सन्देह नातजरुबेकार और भोले भारतवासी विदेशियों की इन चालों में आते रहे। दिल्ली दरबार की निर्बलता ने धीरे-धीरे हमें और भी अपाहिज कर दिया। किन्तु ज्यों ही भारतवासियों ने यह अनुभव करना शुरू किया कि इस नए राजनैतिक प्रयोग के नतीजे विविध प्रान्तों में देशी रियासतों और देश के जीवन के लिए कितने घातक साबित हो रहे हैं, ज्यों ही सम्राट शाह आलम की मृत्यु (1806) के बाद कम्पनी के प्रतिनिधियों ने सम्राट अकबरशाह के और उसके बाद सम्राट बहादुरशाह के पद की अवहेलना शुरू की, त्यों ही हम भारतवासियों की आंखें खुल गईं। उन्होंने सन् 1857 में विदेशी सत्ता से अपने को आजाद करने का वह जोरदार प्रयत्न किया, जिसने एक बार अंगरेजी राज की जड़ों को हिला दिया और उनके अस्तित्व को खतरे में डाल दिया। सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम हमारी पराधीनता के इतिहास की उस समय तक सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। उसकी प्रगति और असफलता, दोनों के कारणों को हमने इस पुस्तक में विस्तार के साथ बयान किया है।

स्वाधीनता के प्रयत्न

वास्तव में अंगरेजी हकूमत भारतवर्ष में बाजाब्ता, कानून और पूरी तरह सन् 1859 ही में जमी। उस समय ही भारतीय साम्राज्य की बाग विधिवत् उस व्यापारी कम्पनी के हाथों से नहीं, जो अन्त समय तक दिल्ली सम्राट की प्रजा होने का बनावटी दावा करती रही बल्कि स्वयं भारत के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के हाथों से छीनकर इंगलिस्तान की मलका विक्टोरिया के हाथों में दी गई। 70 साल का समय या 170 साल का समय भी किसी देश के इतिहास में और खास कर भारत-जैसे प्राचीन और सुसभ्य देश के इतिहास में कोई लम्बा समय नहीं होता। सन् 1857 के बाद भी भारत ने अपनी आजादी की कोशिशों को एक क्षण के लिए भी ढीला नहीं होने दिया। सन् 1857 की क्रान्ति और

पंजाब के कूका विद्रोह में केवल 15 साल का अन्तर था, सन् 1857 और इण्डियन नेशनल कांग्रेस के जन्म में 28 साल का, कांग्रेस के जन्म और बंगभंग के बाद के आन्दोलन में 20 साल का, बंगभंग और उस असहयोग-आन्दोलन में केवल 15 साल का, जिसने फिर एक बार सन् 1857 की क्रान्ति से भी अधिक और उससे उच्चतर उपायों द्वारा अंग्रेजी राज के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया और जिसके विषय में उस समय के अंग्रेज गवर्नर-जनरल को स्वीकार करना पड़ा कि "महात्मा गांधी के आन्दोलन की सफलता में केवल एक इंच की कसर बाकी रह गई थी और मैं हैरान और परेशान था।"*

ब्रिटिश साम्राज्य की हालत

स्वयं इंगलिस्तान पर रोमन लोगों की हकूमत चार सौ साल तक जारी रही। उसके बाद सदियों नार्मन जाति के लोगों ने इंगलिस्तान को अपने अधीन रखा। इंगलिस्तान निवासियों को रोमन लोगों या नार्मन लोगों के राजनैतिक चंगुल से अपने को मुक्त करने में, आइरिश जाति के अंगरेज़ों के पंजे से अपने को आज़ाद करने में, अमरीका को इंगलिस्तान का जुआ अपने ऊपर से उखाड़ कर फेंकने में, इटली को आस्ट्रिया की पराधीनता से छुटकारा पाने में या रूस को स्वदेशी ज़ार की अत्याचारी सत्ता का अन्त करने में, यदि ध्यान से देखा जाए तो, इससे कम समय नहीं लगा। भारत-जैसे प्राचीन और विशाल देश का अपने प्रियतम आदर्शों के विरुद्ध नई परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन को ढाल सकना और इस नए ढंग के संग्राम के लिए अपने तईं सुसम्बद्ध कर सकना आसान काम नहीं था। फिर भी, इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि इस बारे में भारत की जनता के अन्दर जागृति और तत्परता दिन-प्रति-दिन तेज़ी के साथ बढ़ती गई। हर नया आन्दोलन पिछले आन्दोलन की अपेक्षा हमें साफ़ सैकड़ों कदम आगे पहुंचा देता रहा। दूसरी ओर, जिन लोगों ने संसार के विविध साम्राज्यों के बनने और बिगड़ने के इतिहासों को ध्यान से पढ़ा है और उनके कारणों का अध्ययन किया है, वे पूरी तरह समझ रहे हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य की हालत इस समय (1929) में बिलकुल उस विशाल वृक्ष-की-सी है, जिसका तना ऊपर से देखने में मोटा है, जिसकी शाखाएं लम्बी हैं, जिस पर कहीं-कहीं घने पत्ते भी नज़र आते हैं, किन्तु जिसकी जड़ों को आन्तरिक दोषों ने दीमक की तरह इधर से उधर तक खोखला कर रखा है और जिसका किसी भी समय हवा के एक झोंके से उखड़ कर गिर जाना असन्दिग्ध है।

हम केवल अलंकार की भाषा का उपयोग नहीं कर रहे हैं। इतिहास के एक विनम्र विद्यार्थी की हैसियत से हमारा अनुमान है कि जितने भी लक्षण किसी साम्राज्य के नाश के समय उसमें पैदा हो जाते हैं और जो मौत की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकते, वे इस समय (1929) ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर जोरों के साथ उभर रहे हैं। इंगलिस्तान के प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता एडवर्ड कारपेण्टर ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में अपने देश की तुलना एक ऐसे मरणासन्न व्यक्ति के साथ की है, जिसकी नाड़ियों में जगह-जगह 'स्वर्णरज' के अटक जाने के कारण उन नाड़ियों से रक्त का प्रवाह करीब-करीब बन्द हो चुका है।

---

*"His programme came within an inch of success. I stood puzzled and perplexed."—Lord Reading at Calcutta on the Non-Cooperation Movement of 1921.

हमारे नैतिक आदर्श

दूसरी बात हमने ऊपर यह कही थी कि किसी तरह की घबराहट या आवेश में आकर हम मानव जीवन के उच्चतर नैतिक सिद्धान्तों से न डिगने पाएं। वास्तव में, भारतवासियों के लिए सबसे पहला काम अपने आध्यात्मिक और नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है, उसके बाद उन्हें अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर होना होगा। हमें यह पूरी तरह ध्यान में रखना होगा कि जिन सदाचार रहित स्वार्थमय नीवों पर यूरोप ने अपनी आजकल की सभ्यता को क़ायम करना चाहा और जिनके बल उसने भारतीय जीवन को इतनी भयंकर हानि पहुंचाई, उनका नतीजा अन्त में क्या हुआ। आजकल की सारी यूरोपियन सभ्यता अपने अद्भुत विज्ञान, विशाल पुतलीघरों, विचित्र साम्राज्यवाद और नवीन भयंकर पूंजीवाद को लेकर दो सौ साल भी सुख-चैन से न जी सकी। आज यूरोप मनुष्य-मनुष्य के बीच कलह, श्रेणी-श्रेणी के बीच कलह और देश-देश के बीच कलह का मक़तल बना हुआ है। यूरोप ही के हर देश की 90 फीसदी आबादी के लिए यह अन्तर्वर्गीय और अन्तर्राष्ट्रीय कलह और प्रतिस्पर्धा दुख, विपत्तियों और सार्वजनिक नाश का कारण साबित हो रही है। सन् 1914—19 के महायुद्ध ने यूरोप के कुछ विचारवान लोगों की आंख इस विषय में खोल दीं। वे अपने नैतिक आदर्शों को बदलने, या यूं कहना चाहिए कि अपने यहां के जीवन में नैतिक आदर्श उत्पन्न करने की आवश्यकता को अनुभव करने लगे। रूस-जैसे देश के भी पैर उस ओर को बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। किन्तु कुछ यूरोपियन देशों के जिन शासकों को पूंजीवाद और इस नए साम्राज्यवाद के नशे में पागल कर रखा है, वे अभी तक अपनी इस घातक प्रवृत्ति से पीछे हटने के लिए तैयार नहीं हैं और न शायद वे अभी तक उसे घातक अनुभव करते हैं। नतीजा यह है कि सन् 1914—19 के महायुद्ध से कहीं अधिक भयंकर और विकराल एक नया महायुद्ध इस समय (1929) में संसार की आंखों के सामने फिर रहा है, जो सम्भव है, वर्तमान यूरोपियन सभ्यता के लिए मौत का तांडव नृत्य साबित हो। वास्तव में, समस्त अर्वाचीन यूरोप इस समय एक कठिन परीक्षा के तप्तकुण्ड में से निकल रहा है।

इसके विपरीत, जिन नैतिक आदर्शों पर प्राचीन भारत और प्राचीन चीन-जैसे देशों ने अपने सामाजिक जीवन को क़ायम किया था, उन आदर्शों के सहारे ये देश हज़ारों साल तक सुख-चैन से रह सके और कम या ज्यादा अपने से सम्बन्ध रखने वाले संसार के अन्य देशों को भी सुख-चैन से रख सके।

ऐसी हालत में हमें सबसे ज्यादा ध्यान इस बात का रखना होगा कि हम अपने आज़माए हुए और मानव-समाज के लिए कहीं अधिक कल्याणकर आदर्शों को हाथ से न खो बैठें। जो स्थान भटके हुए यूरोप ने आज बिजली और कूटनीति को दे रखा है, वह हमें मानव-प्रेम और सत्य को देना होगा और हर मनुष्य के 'व्यक्तिगत अधिकारों' पर जोर देने के स्थान पर हमें मनुष्यमात्र के लिए 'कर्तव्यपालन' को अधिक महत्व देना होगा।

एक मानव धर्म की आवश्यकता

इसके बाद हमें अपने राष्ट्रीय रोग की जड़ों की ओर निगाह डालनी होगी और साहस के साथ उन्हें अपने जीवन से उखाड़ कर फेंकना होगा। असत्य को छोड़ कर हमें फ़िर से अपने राष्ट्रीय जीवन को सत्य की नींव पर क़ायम करने का महान प्रयत्न करना होगा।

हमारा पथ इस विषय में बिल्कुल स्पष्ट है। पौने तीन सौ साल पहले जिस मार्ग से विचलित हो जाने के कारण धीरे-धीरे हमारी राष्ट्रीय विपत्तियों का प्रारम्भ हुआ, अपने कल्याण के उसी एकमात्र मार्ग को हमें फिर से ग्रहण करना होगा। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मानव-समाज के टुकड़े करनेवाले पृथक-पृथक् धर्मों और सम्प्रदायों की दीवारें कृत्रिम और हानिकर हैं। कबीर के शब्दों में यह मानना पड़ेगा कि इस संसार में 'दो जगदीश' नहीं हो सकते। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि किसी देश, किसी काल, किसी जाति, या किसी भाषा-विशेष ने, चाहे वह कितनी भी प्राचीन क्यों न हों, ईश्वरीय ज्ञान का इजारा नहीं ले रखा है। वास्तव में, इस तरह के अनुदार विचार ही मानव-समाज की आधी से अधिक विपत्तियों की जड़ हैं। सारांश यह कि जनसामान्य को अपने-अपने ढंग से अपने इष्ट-देव की आराधना करने में स्वाधीन छोड़ कर भी हमें सब धर्मों की मौलिक एकता को साक्षात करना होगा। उस मौलिक एकता की रोशनी में ही हमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, पारसी और ईसाई के भेदों की असत्यता और हानिकरता को भी अनुभव करना होगा और समस्त समाज को एक सच्चे सार्वभौम मानव धर्म की ओर लाने का स्नेह और प्रशान्त प्रयत्न करना होगा। जातपांत या छुआछूत-जैसी रूढ़ियों की अनर्गलता और अन्याय को तो आज अधिकांश विचारवान भारतवासी अनुभव करने लगे हैं। इन समस्त भेदभावों को हमें अपने राष्ट्रीय जीवन से समूल उखाड़ कर फेंक देना होगा। इस सबके स्थान पर हमें मानव-समता, मानव-प्रेम, परसेवा, स्वार्थत्याग, न्याय और सत्य के उस सार्वभौम धर्म को अपना एकमात्र धर्म स्वीकार करना होगा, जिस तक मनसूर और कबीर-जैसे अनेक सूफ़ियों और महात्माओं ने हमें लाने का प्रयत्न किया।

निस्सन्देह, यदि दो सौ साल पहले ही हमने अपने जीवन को इन सच्ची नींवों पर क़ायम कर लिया होता, यदि औरंगजेब के समय के पृथक्-पृथक् धर्मों के झूठे भेदों ने फिर से देशवासियों के विचारों को पथभ्रष्ट न कर दिया होता, तो आज (1929) में इस देश की यह दशा होना असम्भव था। और किसी भी तरह का सुधार, सामाजिक या राजनैतिक केवल रोग की जड़ों को छोड़ कर पत्तियों और डालियों के साथ काट-छांट करना है। इस तरह का कोई सुधार चिरस्थायी नहीं हो सकता। वास्तव में, यदि सत्य है तो यही है और यदि भारत के या संसार के भावी कल्याण का कोई सच्चा मार्ग है, तो यही है।

सत्याग्रह और असहयोग

इसके साथ-साथ हमें प्रेम और सत्य के पवित्र सिद्धान्तों से न डिगते हुए राजनैतिक क्षेत्र में 'सत्याग्रह' की अजेयता को अनुभव करना होगा और सत्याग्रह के अनन्त बल का अपने अन्दर संचार करना होगा। हमें यह समझना होगा कि हर अन्याय, अन्यायी और अन्यायपीड़ित, दोनों की आत्माओं के एक समान पतन का कारण होता है। कोई सच्चा प्रेम किसी अन्याय को अपनी आंखों के सामने देखते हुए निश्चेष्ट नहीं बैठ सकता। घृणा और द्वेष की अपेक्षा प्रेम, सच्चा और क्रियात्मक प्रेम एक कहीं अधिक प्रबल शक्ति है। जो मनुष्य किसी भी अन्याय को दूर करने के लिए सच्चे प्रेम के साथ अपने स्वार्थ, अपने सर्वस्व और अपने प्राणों की आहुति देने को प्रस्तुत हो जाता है और हँसते-हँसते, कर्तव्य के नाम पर, अनन्त कष्टों का सामना करने के लिए मैदान में निकल पड़ता है, उसकी शक्ति तोपों और बन्दूकों की शक्ति के मुकाबले में सर्वथा अजेय

होती है। इस शक्ति का थोड़ा-बहुत अनुभव हमें अपने हाल के राष्ट्रीय संग्रामों में मिल चुका है। हमें अपने इस दुखित देश के उद्धार के लिए इसी एकमात्र अमोघ शक्ति का आश्रय लेना होगा।

तीसरी बात हमें यह भी साफ़ दिखाई दे रही है कि अपनी पराधीनता के एक-एक विभाग में हमारी ही शक्तियां हमारे विरुद्ध काम कर रही हैं। विदेशी व्यापार की हर मद में, विदेशी शासन के हर महकमे में, हम स्वयं ही अपनी बेड़ियों के वास्तविक गढ़नेवाले हैं। बिना भारतवासियों की सहायता के न विदेशी शासन भारत में कायम हो सकता था और न एक क्षण के लिए चल सकता है। जाने या अनजाने, हमारा यह स्वार्थ, हमारा यह पाप ही देश की समस्त वर्तमान आपत्तियों की जड़ है और उसी के द्वारा ये आपत्तियां क़ायम हैं। इलाज साफ़ है। हमें अपने विनाश के साधनों से सहयोग करने के इस महापाप से अपने को मुक्त करना होगा।

निस्सन्देह, मार्ग सर्वथा निष्कण्टक नहीं है। किन्तु संसार का कोई भी महान कार्य बिना स्वार्थत्याग और कष्टसहन के सिद्ध नहीं हो सकता। कोई मनुष्य या राष्ट्र बिना अपने पिछले पापों का प्रायश्चित किए धर्म और कल्याण के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। भारत के राजनैतिक उद्धार का इस समय (1929) यही एकमात्र मार्ग है। हर भारत-वासी के लिए सच्चे कर्त्तव्यपालन का यही एकमात्र पथ है।

हमारा भविष्य

जिस तरह हर मनुष्य से, उसी तरह हर राष्ट्र से अपने जीवन में भूलों का होना स्वाभाविक और अनिवार्य है; अपनी इन भूलों के दुष्परिणाम भी हर व्यक्ति या राष्ट्र को सहने ही पड़ते हैं। किन्तु भविष्य के लिए हमारा हृदय आशा और विश्वास से भरा हुआ है। एक बार अपने कर्तव्य को समझ लेने पर हमें अपने देशवासियों के साहस और उनकी शक्ति में भी पूरा भरोसा है। हमें विश्वास है कि आजकल का आदर्शशून्य संतप्त संसार इन बातों में भारत से सच्चे मार्ग-प्रदर्शन की बाट जोह रहा है। अपने देश के सन् 1919 से अब (1929) तक के इतिहास को ध्यान से देखते हुए हमें निकटवर्ती भविष्य में भारत और फिर स्वाधीन भारत के पग उस भावी अपूर्व दिग्विजय की ओर साफ़ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

पहला अध्याय

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश

चार सौ साल पहले भारत और यूरोप का सम्बन्ध

अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष मानव जाति की सभ्यता और उसकी उन्नति का एक विशेष स्रोत रहा है और पृथ्वी की विविध जातियों के विकास में एक महत्वपूर्ण भाग लेता रहा है। आज (1929) से दो-तीन सौ साल पहले तक यह देश हर तरह स्वाधीन था और ज्ञान-विज्ञान, विद्या-प्रचार, कला-कौशल, शासन-प्रबंध आदि में संसार के समस्त देशों का शिरोमणि था। उस समय यूरोप का कोई भी देश सभ्यता के किसी भी अंग में भारत की बराबरी न कर सकता था। उस समय भारतवर्ष संसार का सबसे अधिक धनवान देश माना जाता था। ईसा की अठारहवीं सदी तक यह देश संसार भर के यात्रियों के लिए एक अपूर्व चमत्कार की जगह, कवियों के लिए उनकी उच्चतम कल्पनाओं का एक विषय और धन-लोलुप जातियों के लिए उनकी लालसा का मुख्यतम पदार्थ बना हुआ था। सैंकड़ों और हज़ारों वर्षों तक समस्त यूरोप, बल्कि समस्त संसार के बाज़ारों और मंडियों में अच्छ-से-अच्छे रेशमी और सूती कपड़े, ज़ेवर, बर्तन और तरह-तरह के अन्य अद्भुत पदार्थ हिन्दोस्तान के बने हुए ही दिखाई पड़ते थे। संसार के व्यापारियों को उस समय भारतीय धन और भारतीय वैभव के ही स्वप्न दिखाई देते थे, और इस भारतीय धन का लालच ही यूरोप-निवासियों को इस प्राचीन देश की ओर खींच कर लाया। वास्तव में, बहुत दर्जे तक भारत का यह प्राचीन धन-वैभव ही इस देश की समस्त आपत्तियों का कारण हुआ।

चार सौ साल पहले तक भारत और यूरोप के बीच का समस्त व्यापार अरब और ईरान के सौदागरों के ज़रिये होता था। ये साहसी सौदागर भारत के पश्चिमी तट पर क़ीमती माल से अपने जहाज़ लादते थे, फिर अरब और ईरान की खाड़ियों से होकर उस माल को अपने देशों में ले जाते थे और फिर वहां से अधिकतर खुश्की के रास्ते ऊंटों और गाड़ियों पर लाद कर उसे यूरोप और अफ्रीका के तमाम देशों में पहुंचाते थे। यूरोप में व्यापार की सबसे बड़ी मंडियां उस समय इतालिया (इटली) देश के वेनिस, जेनोआ आदि बन्दरगाहों में थीं और वहीं से जमा होकर भारत, ईरान आदि एशियाई देशों का बना हुआ माल यूरोप के सब देशों में पहुंचता था। समुद्र के रास्ते यूरोप से भारतवर्ष आने-जाने का मार्ग उस समय किसी को मालूम न था, न उस समय कोई यूरोपियन जाति इतनी बलवान या इतनी धनवान थी और न यूरोप से बाहर का कोई ग़ैर-ईसाई मुल्क उस समय किसी यूरोपियन ईसाई जाति के अधीन था।

भारत के जल-मार्ग की खोज

ईसा की पन्द्रहवीं सदी में कुछ साहसी यूरोपवालों के दिलों में भारत का जल-मार्ग ढूंढ निकालने की उत्कण्ठा पैदा हुई। इसके दो खास सबब थे। एक यह कि स्थल-मार्ग

से माल लाने-ले जाने में अनेक असुविधाएं झेलनी पड़ती थीं । बीच में कई जगह माल को उतारना और फिर से लादना पड़ता था । कई-कई जगह पुलों पर, सड़कों पर और मंडियों में चुंगी देनी होती थी । सड़कें कहीं अच्छी थीं, तो कहीं खराब और कहीं बिल्कुल न थीं । मार्ग में डाकुओं और जंगली जानवरों का भय रहता था । देर अधिक लगती थी और लागत इतनी आ जाती थी कि विशेष कर यूरोप के उत्तर और पश्चिम के हिस्सों तक पहुंचते-पहुंचते माल के दाम बहुत बढ़ जाते थे । दूसरा यह कि यूरोप के अन्दर एशियाई माल का समस्त व्यापार उन दिनों प्रायः इटली के सौदागरों के हाथों में था, जिनकी कमाई को देख-देख कर उत्तर और पश्चिम की यूरोपियन जातियों की स्पर्धा और धन-लोलुपता और अधिक भड़कती थी ।

सबसे पहले स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड (आलन्दाज़), इंगलिस्तान और फ्रान्स, इन पांच देशों के लोगों ने एक-दूसरे के बाद जल-मार्ग से भारत पहुंचने के प्रयत्न शुरू किए । ये प्रयत्न सौ साल से ऊपर तक जारी रहे । भूगोल का ज्ञान और दिशाओं का बोध भी उन दिनों यूरोपवासियों को बहुत कम था । भारत पहुंचने के लिए कोई वीर अपना जहाज़ लेकर उत्तर की ओर बढ़ा चला जाता था, कोई उत्तर-पूर्व की ओर, कोई उत्तर-पश्चिम की ओर, कोई पश्चिम की ओर और कोई दक्षिण की ओर । नतीजा यह हुआ कि इनमें से अधिकांश प्रयत्न निष्फल गए, जिनमें बहुत-सी जानें गईं, अनेक जहाज़ बरबाद हुए और काफ़ी धन नष्ट हुआ । फिर भी, इन कष्टों और विपत्तियों में साहसी यूरोपवासियों ने हिम्मत न हारी और स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, इंगलिस्तान और फ्रान्स के नाविकों के बीच भारत का जल-मार्ग ढूंढ़ निकालने के लिए लाग-डाट बराबर बढ़ती गई ।

भारत की खोज में कोलम्बस

सबसे पहला यूरोपियन नाविक, जिसने इस बात का बीड़ा उठाया, इटली का रहने-वाला सुप्रसिद्ध कोलम्बस था । स्पेन के राजा ने कोलम्बस को बड़ी मदद दी । भारत पहुंचने के लिए वह यूरोप से ठीक पश्चिम की ओर बढ़ा चला गया । उसका जहाज़ सन् 1498 ई० में अमरीका के किनारे जा लगा । अमरीका महाद्वीप का पता लगाने और उससे आजकल के यूरोप का सम्बन्ध जोड़ने का श्रेय कोलम्बस को प्राप्त हुआ, जिसका प्रभाव यूरोप और संसार के बाद के जीवन पर खासा ज़बर्दस्त पड़ा । किन्तु भारत का जल-मार्ग ढूंढ़ निकालने की दृष्टि से कोलम्बस का प्रयत्न बिलकुल निष्फल गया । यह एक खास बात है कि कोलम्बस मरते समय तक अमरीका ही को हिन्दोस्तान समझता रहा और उसी भ्रम के सिलसिले में आज तक यूरोप-निवासी अमरीका के पुराने बाशिन्दों को इण्डियन्स' या 'रेड इण्डियन्स' और अमरीका के पास के टापुओं को 'वेस्ट-इण्डीज़' कहते है ।

भारत में पुर्तगालियों का प्रवेश

सबसे पहले यूरोपवासी, जिसे इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई, पुर्तगाल का रहनेवाला वास्को-दे-गामा नामक एक नाविक था । वास्को-दे-गामा का जहाज़ अफ्रीका के नीचे से आशा अन्तरीप (केप आफ़ गुड होप) का चक्कर लगाता हुआ 22 मई, सन्

1498 ई० को मालाबार तट पर कालीकट के पास आकर ठहरा ।* कालीकट का राजा उस समय एक हिन्दू था, जिसे सामुद्रिक या सामुरी (ज़मोरिन) कहते थे । इस राजा ने वास्को-दे-गामा और उसके ईसाई साथियों का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया और उनकी खूब खातिरदारी की । पुर्तगालियों की प्रार्थना पर सामुरी ने उन्हें अपने राज में रहने और व्यापार करने की इजाज़त दे दी । पुर्तगाल से आना-जाना बढ़ता गया ।

सन् 1500 ई० में पुर्तगालियों ने अपने व्यापार के लिए कालीकट में एक कोठी बनाई । तीन साल बाद उन्होंने सामुरी की इजाज़त से अपनी कोठी की किलेबन्दी कर ली और एक फ़ौजी अफ़सर अल्बुकर्क को उसका किलेदार नियुक्त किया । अल्बुकर्क ने किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़ कर सन् 1506 में गोआ नगर पर कब्ज़ा कर लिया । भोले भारतवासी उस समय तक इन विदेशियों के वास्तविक चरित्र या इनके इरादों से बिल्कुल अपरिचित थे । होते-होते सन् 1510 ई० में पुर्तगालियों का, कालीकट के राजा के साथ कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें पुर्तगालियों ने कालीकट के राजमहल में आग लगा दी और नगर को लूट लिया । केवल बारह साल पहले इन परदेसियों पर अहसान करने का भोले और उदार सामुरी को यह फल मिला ।

उस समय का भारत

राज शासन की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय अनेक छोटी-बड़ी रियासतों में बंटा हुआ था, जो एक-दूसरे के साथ बहुत कम सम्बन्ध रखती थीं । कोई एक प्रधान शक्ति इन रियासतों को वश में रखने या देश को एक सूत्र में बांधने वाली न थी । पुराने हिन्दू साम्राज्य बहुत समय पहले टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे और दिल्ली का मुगल साम्राज्य अभी तक कायम न हुआ था । मालूम होता है, इस बात का विचार तक, कि भारत 'एक देश' है, उस समय किसी के दिल में मौजूद न था । इसके सिवा भारतवासी उस समय तोप, बन्दूक आदि आग्नेय अस्त्रों का बनाना जानते हुए भी आम तौर पर इनके उपयोग को मानव धर्म के विरुद्ध समझते थे और पुर्तगाली इन हथियारों के इस्तेमाल में होशियार थे । इस सबसे बढ़कर भारतवासी राजनीति में अत्यन्त भोले थे । नतीजा यह हुआ कि सौ-सवा सौ साल के अन्दर पूर्तगालियों ने भारतीय व्यापार से इतना अधिक धन कमाया कि उसे देख कर दूसरे यूरोपवासी दंग रह गए । इसी समय के अन्दर पुर्तगाली मंगलोर, कच्चिन, शंका, दिव, गोआ, बम्बई के टापू और नेगापट्टम के मालिक बन बैठे ।

पुर्तगालियों का व्यवहार

पुर्तगालियों के उस समय के व्यापार की दो बातें ख़ास तौर पर जानने योग्य हैं । एक यह कि इन लोगों के कुछ जहाज़ भारत के पूर्व और पश्चिमी तटों के बराबर-बराबर घूमते रहते थे और किसी भी भारतीय जहाज़ को पास से निकलते हुए देख कर, मौका पाकर उसे पकड़ लेते और लूट लेते थे । अपने जहाज़ों में बैठ कर ये लोग किनारे की आबादियों में भी धावा कर देते थे, उन्हें लूट लेते थे और कभी-कभी मौक़ा पाकर वहां के कुछ

*मौजूदा नहर स्वेज़ सन् 1869 में खुली । इससे पहले लोग इसी चक्कर के रास्ते से कई महीनों में यूरोप से भारत आते-जाते थे ।

स्त्री–पुरुषों को गुलाम बना कर पकड़ ले जाते थे। दूसरे ये लोग अफ़्रीका और दूसरे देशों से भी अपने जहाज़ों में गुलाम भर-भर कर लाते थे और भारत के बाजारों में, विशेष कर उन स्थानों में, जो उनके अधीन थे, अत्यन्त सस्तों दामों पर बेच डालते थे।

भारत के जिन हिस्सों पर पुर्तगालियों का कब्ज़ा हो गया था, वहां की प्रजा के साथ इन लोगों का व्यवहार अत्यन्त अनुदार था। ये लोग कट्टर ईसाई थे और जिस देश पर इनका राज होता था, वहाँ की प्रजा को ज़बर्दस्ती ईसाई बना लेना वे अपना धर्म समझते थे। गोआ मे उन्होंने अपनी ग़ैर-ईसाई प्रजा को पकड़ कर और उन्हें 'ला-मज़हब' कह कर मार डालने और जिन्दा जला देने के लिए अदालत क़ायम कर रखी थी, जिसे 'इनक्विज़िशन' कहते थे। इसीलिए आज तक गोआ की अधिकांश आबादी ईसाई है। अपनी हिन्दोस्तानी प्रजा के भले के लिए पुर्तगालियों ने कभी किसी तरह के यत्न नहीं किए।

पुर्तगालियों की सत्ता का अन्त

17–वीं सदी के शुरू में पुर्तगालियों का व्यापार बंगाल की ओर फैलने लगा। बंगाल के किसी हिस्से पर पुर्तगालियों का राज क़ायम न हुआ, किन्तु वहां भी वही लूट-मार, वही ज्यादतियां, वही गुलाम और बांदियों का व्यापार चल पड़ा। इस समय तक मुग़ल साम्राज्य की जड़ें पक्की हो चुकी थीं। शाहजहां अब दिल्ली के तख्त पर था। बंगाल की हकूमत दिल्ली सम्राट के अधीन एक सूबेदार के हाथ में थी। सूबेदार ने अपने अहलकारों के जरिए पुर्तगालियों को उनकी ज्यादती के विरुद्ध आगाह किया। पुर्तगालियों ने सूबेदार की आज्ञाओं की ख़ाक परवा न की। इन बातों की शिकायत शाहजहां के कानों तक पहुंची। उसने तुरन्त पुर्तगालियों के दमन के लिए एक सेना भेजी। पुर्तगाली हरा दिए गए, उनकी हुगली की कोठियां गिरा दी गई। उनके जहाज़ जला डाले गए और बचे-खुचे पुर्तगाली क़ैद करके आगरा पहुंचा दिए गए। यहीं से पुर्तगालियों की भारतीय सत्ता का अन्त शुरू होता है।

भारत से पुर्तगालियों की सत्ता के इतनी जल्दी मिट जाने का एक सबब यह भी बताया जाता है कि बहुत अधिक धनाढ्य हो जाने से ये लोग भोग-विलास में पड़ गए थे। एक पुर्तगाली लेखक लिखता है:

> **"पुर्तगालियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में सलीब (क्रास) लेकर भारत में प्रवेश किया, किन्तु जब उन्हें यहां बहुत अधिक सोना नजर आया, तब उन्होंने सलीब को अलग रख कर उस हाथ से अपनी जेबें भरनी शुरू कर दीं और जब उनकी जेबें इतनी भारी हो गई कि ये उन्हें एक हाथ से न संभाल सके, तो उन्होंने तलवार भी फेंक दी। इस हालत में जो लोग उनके बाद आए, वे आसानी से उन पर हावी हो सके।"***

पुर्तगालियों के आने के क़रीब सौ साल-बाद 16-वीं सदी के अंत में, एक दूसरे यूरोपियन देश हालैण्ड के रहनेवाले, जिन्हें 'डच' कहते हैं, भारत पहुंचे। इन लोगों ने आसानी से पुर्तगालियों के रहे-सहे जहाज़ आदि जला कर उनकी बाक़ी सत्ता अपने हाथों में ले ली।

---

*Alfonzo-de-Souza, Governor of Portuguese India, 1545.

आज दिन (1929) पुर्तगालियों का राज हिन्दोस्तान के अन्दर केवल गोआ और दो-एक छोट-छोटे टापुओं पर बाकी रह गया है।

भारत में डच जाति

यूरोप में डच लोगों ने भारत के धन-वैभव का जिक्र पहले-पहल पुर्तगालियों से सुना। उनके दिल में भारत पहुंच कर धन कमाने की अभिलाषा पैदा हुई। जल-मार्ग से भारत आने के उन्होंने अनेक निष्फल प्रयत्न किए। अन्त में सन् 1598 ई० तक उनके जहाज अफ्रीका के नीचे से जावा होकर भारत पहुंचने लगे।

डच जाति के लिखे हुए इतिहास से मालूम होता है कि भारत के नरेशों ने उनका वैसा ही अच्छा स्वागत किया, जैसा शुरू में पुर्तगालियों का किया था। पुर्तगालियों से उनकी लाग-डाट थी। जिस तरह पुर्तगालियों ने अरब सौदागरों की रोज़ी छीनी थी, उसी तरह डच अब पुर्तगालियों की रोज़ी छीनने या कम-से-कम उसमें हिस्सा बँटाने के लिए उत्सुक थे। उन लोगों ने भारतवासियों से पुर्तगालियों की खूब बुराइयां की। मुग़ल सम्राट ने उन्हें अब व्यापार के लिए कोठियां बनाने और अपनी रक्षा के लिए किलेबन्दी करने की इजाज़त दे दी।

सबसे पहले पुलीकट और सदरास में उन्होंने अपनी कोठियां बनाईं और किले खड़े किए। पुलीकट मौजूदा मद्रास के उत्तर में और सदरास मद्रास के दक्षिण में है। सन् 1663 ईस्वी में उनकी एक कोठी आगरे में थी, जिसमें जौ सड़ा कर उससे शराब तैयार की जाती थी। इसी तरह की उनकी कोठियां सूरत, अहमदाबाद और पटने में मौजूद थीं। धीरे-धीरे बंगाल में भी उनका व्यापार बढ़ने लगा और सन् 1675 में उन्होंने चुंचड़ा (चिनसुरा) में एक कोठी क़ायम की।

जब तक डच लोगों की निगाह केवल व्यापार पर रही, उन्होंने भारत से खूब धन कमाया, किन्तु इसके बाद उनमें भी भारत के अन्दर अपना राज कायम करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसी बीच अंग्रेज जाति भी भारत पहुंच गई और इस देश को अपने अधीन करने के लिए तरह-तरह के उपाय करने लगी। डच जाति को अधिक चतुर अंग्रेज़ों के साथ टक्कर लेनी पड़ी। प्लासी की लड़ाई के दो साल बाद अगस्त, सन् 1759 ई० में डच लोगों के सात जंगी जहाज़ एकाएक चुंचड़ा के नीचे आ धमके। अंग्रेज़ों का प्रभाव उस समय खासा जम चुका था। अंग्रेज़ों ने उन्हें चुंचड़ा तक पहुंचने न दिया और बंगाल के नवाब की सहायता से हरा कर पीछे हटा दिया। उसी समय डच लोगों का भारतीय व्यापार घटने लगा। अन्त में सन् 1805 ई० में अंगरेज़ों ने चुंचड़ा और मलाका के बदले में उन्हें सुमात्रा का टापू देकर डच जाति के अन्तिम चिन्ह को इस देश से मिटा दिया।

भारत पर अंगरेजों की निगाह

16-वीं सदी के शुरू में पुर्तगालियों की हिन्दुस्तान के साथ तिजारत बढ़ जाने के कारण पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन का महत्व और उसकी शान यूरोप में दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। इंगलिस्तान के रहने वालों को इससे ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। इंगलिस्तान में उस समय ब्रिस्टल का बन्दरगाह तिजारत में सबसे आगे था। हर यूरोपियन

क़ौम के लोग उन दिनों की दूसरी यूरोपियन क़ौम के माल से लदे जहाज़ों को पकड़ कर लूट लेना एक जायज़ व्यापार समझते थे। भारत और एशिया के समुद्रों में भी लोगों ने इस तरह की लूट का बाज़ार खूब गरम कर रखा था। ब्रिस्टल के नाविक अनेक पुश्तों से बड़े मशहूर समुद्री डाकू गिने जाते थे। सबसे पहले ब्रिस्टल ही के एक सौदागर ने इंगलिस्तान के बादशाह हेनरी अष्टम को भारत के मार्ग की खोज कराने की सलाह दी।

पचास साल के ऊपर तक इंगलिस्तान के बड़े-बड़े नाविक उत्तर-पश्चिम से होकर भारत पहुंचने के निष्फल प्रयत्न करते रहे। सन् 1578 में इंगलिस्तान के एक मशहूर नाविक, सर फ्रैन्सिस ड्रेक को भारत से लिस्बन जानेवाले एक पुर्तगाली जहाज़ को पकड़ कर लूटते समय जहाज़ में कुछ नकशे मिले, जिनसे अंग्रेज़ों को पहली बार भारत के उस समय के जलमार्ग का कुछ पता चला।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

सन् 1600 ई० में इंगलिस्तान की रानी एलिज़ाबेथ ने सुप्रसिद्ध 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना की। यह कम्पनी उन अंग्रेज़ व्यापारियों की थी, जो हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने की लालसा रखते थे। यह बात याद रखने योग्य है कि जो फ़रमान रानी एलिज़ाबेथ ने इस मौके पर जारी किया, उसमें इस कम्पनी को साफ़-साफ़ इस तरह के साहसी लोगों की मंडली (Society of Adventurers) कहा गया है, जो लूट, सट्टे आदि के लिए निकलते हैं और जो अपने धन कमाने के उपायों में सच-झूठ ईमान-दारी-बेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का अधिक ख़याल नहीं रखते। कम्पनी के डाई-रेक्टरों ने शुरू ही में इस बात का फ़ैसला कर लिया था कि हम अपनी कम्पनी में "किसी जिम्मेदारी की जगह पर किसी शरीफ़ आदमी को नियुक्त न करेंगे।"* उन्होंने मलका के नाम अपनी दरख्वास्त में भी लिखा था कि "हमें अपना व्यापार अपने ही जैसे आदमियों द्वारा चलाने की इजाज़त होनी चाहिए, क्योंकि यदि लोगों को इस बात का सन्देह भी हो गया कि हम शरीफ़ आदमियों को अपने यहां नौकर रखेंगे, तो मुमकिन है, हमारे बहुत-से साहसी पत्तीदार अपनी पत्तियां वापस ले लें।"† यही भारत के अन्दर इस अंग्रेज़ कम्पनी के ढाई सौ साल के कारनामों और उसकी समस्त नीति की कुंजी है, इन ढाई सौ सालों के अन्दर कम्पनी के मेम्बरों, मुलाज़िमों आदि में विरले ही ऐसे होंगे, जिन्हें 'शरीफ़ आदमी' कहा जा सके।

भारत में पहला अंगरेज़

नक़शे मिलने के तीस साल बाद, यानी सन् 1608 ई० में, पहला अंग्रेज़ी जहाज़ हिन्दोस्तान पहुंचा। इस जहाज़ का नाम 'हेक्टर' था। 'हेक्टर' प्राचीन यूनान के एक योद्धा का नाम था। अंग्रेज़ी में 'हेक्टर' शब्द का अर्थ कड़ीबाज़ और झगड़ालू है। यह जहाज़ सूरत के बन्दरगाह में आकर लगा। सूरत उस समय भारतीय व्यापार का एक ख़ास

*"Not to employ any gentleman in any place of charge."—Bruce's *Annals of the Hon'ble East India Company*, vol. i, p. 128.

†Ibid.

केन्द्र था। जहाज़ का कप्तान हाकिन्स पहला अंग्रेज़ था, जिसने समुद्र के रास्ते आकर भारत की भूमि पर कदम रखा। इंगलिस्तान के बादशाह जेम्स प्रथम की ओर से दिल्ली के मुग़ल सम्राट के नाम हाकिन्स अपने साथ एक खत लाया, जो उसने आगरे पहुंच कर सम्राट जहांगीर के सामने पेश किया। यह बात केवल तीन सौ साल पहले की है। उस समय के इंगलिस्तान के बादशाह, जेम्स प्रथम के राज्य और भारत के मुग़ल साम्राज्य की–क्षेत्रफल, आबादी, धन-वैभव, तिजारत, कला-कौशल, दस्तकारी, खुशहाली, शासन-प्रबन्ध, विद्या, बल–किसी बात में भी किसी तरह की तुलना नहीं की जा सकती। जहांगीर के दरबार में उस समय किसी को इस बात का गुमान भी न हो सकता था कि दूर पश्चिम की एक छोटी-सी निर्बल, अर्द्धसभ्य जाति का जो दूत उस समय दरबार में दोज़ानू होकर ज़मीन चूम रहा था, उसी के वंशज एक रोज़ मुग़ल साम्राज्य के अंग-भंग हो जाने पर हिन्दोस्तान के ऊपर शासन करने लगेंगे। जहांगीर ने हाकिन्स की खूब ख़ातिर की। किन्तु पुर्तगाली पहले से दरबार में मौजूद थे। उन्होंने जहांगीर से अंग्रेज़ों की खूब बुराइयां कीं। सन् 1612 ईसवी में अंग्रेज़ों ने सूरत के पास कुछ पुर्तगाली जहाज़ों पर हमला करके उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उसी समय सूरत में पुर्तगालियों का प्रभाव घटने और अंग्रेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा।

जहांगीर और अंग्रेज

6 फरवरी, सन् 1613 को जहांगीर ने एक शाही फ़रमान के ज़रिए अंग्रेज़ों को अपनी तिजारत के लिए सूरत में एक कोठी बनाने की इजाज़त दे दी और यह भी इजाज़त दे दी कि मुग़ल दरबार में इंगलिस्तान का एक एलची रहा करे।

इंगलिस्तान के बादशाह ने सर टामस को मुग़ल दरबार में अपना पहला एलची नियुक्त करके भेजा। सर टामस रो सन् 1615 ई० में भारत पहुंचा। उसने अपनी नम्रता, आजिज़ी और मिठास से अंग्रेज़ी तिज़ारत के लिए सम्राट से अनेक नई रियायतें हासिल कर लीं।

सन् 1616 में अंग्रेज़ों को कालीकट और मछलीपट्टन में कोठियां बनाने की इजाज़त मिल गई। उस समय भारत में रहने वाले अंग्रेज चूंकि अपने को भारत सम्राट की प्रजा कहते थे, इसलिए यदि उनमें कोई झगड़ा होता था, तो देशी अदालत में ही उसकी सुनाई होती थी और वहीं से उन्हें दण्ड आदि दिए जाते थे। सन् 1624 ई० में अंग्रेज़ों की प्रार्थना पर जहांगीर ने एक शाही फ़रमान इस मज़मून का जारी कर दिया कि आइन्दा अपनी कोठी के अन्दर रहने वाले कम्पनी के किसी मुलाज़िम के अपराध करने पर अंग्रेज उसे स्वयं दण्ड दे सकते हैं। इस छोटी-सी घटना की आलोचना करते हुए और बाद की सन 1857 की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, अंग्रेज इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है :

> **"बादशाह न्यायशील और बुद्धिमान था। वह उनकी आवश्यकताओं को समझता था। जो उन्होंने मांगा, उसने मंज़ूर कर लिया। उसे यह स्वप्न में भी नजर न आ सकता था कि एक दिन अंग्रेज इसी छोटी--सी जड़ से बढ़ते--बढ़ते बादशाह की प्रजा और उसके उत्तराधिकारियों तक को दण्ड देने का दावा करने लगेंगे**

और यदि उनका विरोध किया जायगा, तो प्रजा का संहार कर डालेंगे और बादशाह के उत्तराधिकारी को 'बाग़ी' कह कर आजीवन कैद कर लेंगे।"*

शाहजहां और अंगरेज़

इसके बाद शाहजहां का समय आया। सन् 1634 ई० में पुर्तगालियों को बंगाल से निकालने के बाद शाहजहां ने अंग्रेज़ों को बंगाल में तिजारत करने की इजाज़त दे दी। सन् 1639 ई० में अंगरेज़ों ने मद्रास में अपनी एक कोठी क़ायम की। उन दिनों बंगाल में अंग्रेज़ों को दूसरे देशी व्यापारियों की तरह माल पर चुंगी देनी पड़ती थी और उनके जहाज़, शाही फरमान के अनुसार, हुगली के बहुत नीचे पिपली नामक स्थान पर रुक जाते थे। हुगली तक जहाज़ लाने की उन्हें इजाज़त न थी।

सन् 1640 ई० में शाहजहां की एक लड़की किसी तरह जल गई। इसके इलाज करनेवालों में एक अंगरेज़ डाक्टर भी था। शाहज़ादी अच्छी हो गई। जब इलाज करनेवालों को इनाम या इकराम देने का समय आया, तो अंग्रेज़ डाक्टर की प्रार्थना पर शाहजहां ने बंगाल भर के अन्दर अंग्रेज़ों के माल पर चुंगी माफ कर दी और उन्हें उस प्रान्त में कोठियां बनाने और उनके जहाज़ों को हुगली तक आने की इजाज़त दे दी। इसी फ़रमान के अनुसार 1640 ई० में कलकत्ते में कोठी बनी। शाहशुजा उस समय बंगाल का सूबेदार था। उसने सम्राट के फ़रमान के अनुसार 'परदेशी' अंगरेज़ों को अपना कारबार जमाने में हर तरह की मदद दी।

बम्बई का टापू

इसके बाद औरंगज़ेब का समय आया। बम्बई का टापू, जहां पर उस समय केवल एक छोटी-सी पुर्तगाली बस्ती थी, सन् 1661 ई० में इंगलिस्तान के बादशाह को पुर्तगालियों से दहेज में मिला (और सन् 1688 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे अपने बादशाह से ख़रीद लिया)। सन् 1664 ई० के निकट शिवाजी का बल बढ़ने लगा। सूरत के अंगरेज़ कोठीवालों ने औरंगज़ेब से वादा किया कि हम शिवाजी के खिलाफ़ आपको मदद देंगे और मुग़ल सम्राज्य की ओर से सूरत की रक्षा करेंगे। इससे खुश होकर औरंगज़ेब ने उन्हें नई रियायतें दे दीं।

अंगरेज़ व्यापारियों का चरित्र

किन्तु शुरू के इन अंग्रेज़ व्यापारियों का सदाचार और व्यवहार हद दर्जे गिरा हुआ था। किसी भी दूसरी क़ौम के माल से लदे जहाज़ को पकड़ कर लूट लेना उनके लिए एक मामूली बात थी। स्वयं अपने अंगरेज़ भाइयों और दूसरे यूरोपियनों के साथ भी उनके सलूक की यह हालत थी कि जो कोई इनसे सस्ता माल बेचता था या किसी और तरह उससे

---

*"The Padishah, being a just man and wise, understood their needs, and yielded what they asked, little dreaming that the time would come, when, from such root of little, they would claim jurisdiction over his subjects and successors, and, as the penalty of resistance, decimate the one, and imprison the other for life as guilty of rebellion."—Torren's *Empire in Asia*, pp. 10, 11, Allahabad.

9—220 M of I&B/80

इनके व्यापार में बाधा पड़ती थी, उसे ये मौका पाकर पकड़ लेते थे और या तो कोड़े मार-मार कर मार डालते थे और अपनी कोठी में बन्द करके भूखों मार देते थे।*

भारतवासियों के साथ इनका व्यवहार हद दर्जे की ज़्यादती और बेईमानी का था। सूरत की कोठी के अंगरेज़ों की बाबत एक अंगरेज़ पादरी, फ़िलिप एण्डरसन लिखता है :

"जैसे-जैसे इन साहसिक आगन्तुकों की तादाद बढ़ती गई, उससे अंग्रेज़ क़ौम की नेकनामी नहीं बढ़ी। इनमें बहुत जियादा लोग मार--काट और बेईमानियां करते थे × × × हिन्दू और मुसलमान, दोनों, अंगरेज़ों को गाय खानेवाले और आग (शराब) पीनेवाले नीच दरिन्दे समझते थे और कहते थे कि 'ये लोग उन कुत्तों से भी ज़्यादा हिंस्र हैं, जिन्हें ये अपने साथ लाते हैं, ये शैतान की तरह लड़ते हैं और अपने बाप को भी दग़ा देते हैं और दूसरों के साथ गोलियों की बौछार या भालों की मार और माल की गठरी या रुपयों की थैली, चारों में से किसी का भी आदान प्रदान करने के लिए हरदम तैयार रहते हैं।"†

अंगरेज़ों के इस व्यवहार को देख कर भारतवासियों का ख़याल ईसाई धर्म के विषय में भी उन दिनों बहुत ख़राब हो गया था। वही लेखक आगे चल कर लिखता है :

"किन्तु टेरी का बयान है कि भारत के लोग ईसाई धर्म को बड़ी ज़लील चीज़ मानते थे। सूरत में लोगों के मुंह से इस तरह के वाक्य आम तौर पर सुनने में आते थे—'ईसाई मज़हब शैतान का मज़हब है, ईसाई बहुत शराब पीते हैं, ईसाई बहुत बदमाशी करते हैं और बहुत मारपीट करते हैं, दूसरों को बहुत गालियां देते हैं।' टेरी ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारतवासी स्वयं बड़े सच्चे और ईमानदार थे और अपने तमाम वादों को पूरा करने में पक्के थे, किन्तु यदि कोई हिन्दोस्तानी सौदागर अपने माल की कुछ क़ीमत बताता था और उस क़ीमत से कहीं अधिक कम लेने के लिए उससे कहा जाता था, तो वह प्रायः जवाब में कह पड़ता था—'क्या तुम मुझे ईसाई समझते हो कि मैं तुम्हें धोखा देता फिरूंगा?"‡

* "..............they made it a rule to whip to death or starve to death those of whom they wished to get rid,...............to murder private traders."—Mill, *Wilson's Note,* vol. i, chap. ii.

†"As the number of adventurer increased, the reputation of the English was not improved. Too many committed deeds of violence and dishonesty...... Hindus and Musalmans considered the English a set of cow-eaters and fire-drinkers, vile brutes, fiercer than the mastiffs which they brought with them, who would fight like Eblis, cheat their own fathers, and exchange with the same readiness a broadside of shot and thrusts of boarding pikes, or a bale of goods and a bag of rupees."—*The English in Western India* by Rev. Philip Anderson, p. 22.

‡"But according to Terry, the natives had formed a mean estimate of Christianity. It was not uncommon to hear them at Surat giving utterance to such remarks as—Christian religion, devil religion, Christian much drunk, Christian much do wrong, much beat, much abuse others. Terry admitted that the natives themselves were 'very square' and exact to make good all their engagements; but if a dealer was offered much less for his articles than the price which he had named, he would be apt say, 'what? dost thou think me a Christian, that I would go about to deceive thee?"—Ibid, p. 32.

अंगरेज़ सबसे पहले सूरत में पहुंचे और सबसे अन्त में बंगाल पहुंचे, पर वहां भी उनका व्यवहार वैसा ही रहा। इतिहास-लेखक सी० आर० विलसन लिखता है :

"बंगाल में भी अंगरेज़ अपने झगड़ालूपन के लिए उतने ही बदनाम थे× ×× वहां का बूढ़ा सुबेदार नवाब शाइस्ता खां कम्पनी को 'नीच, झगड़ालू और बेईमानों की कम्पनी' कहा करता था और आजकल का कोई बड़ा प्रामाणिक इतिहासज्ञ इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि नवाब के पास अपने इस कथन के लिए काफ़ी अच्छी दलीलें थीं। उस ज़माने के तमाम उल्लेखों की पूरी तरह छान-बीन करने के बाद सर हेनरी यूल के दिल पर यही असर रह गया कि बंगाल की खाड़ी के अन्दर कम्पनी के मुलाज़िमों की नैतिक और सामाजिक हालत 'निस्सन्देह बड़ी गिरी हुई थी।"*

औरंगज़ेब और अंगरेज़

थोड़े ही दिनों में, ख़ास कर बम्बई के अन्दर, अंगरेज़ सौदागरों के अत्याचार इतने बढ़ गए कि उनकी शिकायत औरंगज़ेब के कानों तक पहुंची। औरंगज़ेब ने फ़ौरन हुक्म जारी कर दिया कि इन लोगों की कोठियां ज़ब्त कर ली जाएं और इन्हें मार कर हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाए। सूरत, विशाखापट्टन आदि कई स्थानों की अंगरेज़ी कोठियां ज़ब्त कर ली गईं और वहां से अंगरेज़ों को निकाल कर बाहर कर दिया गया। बम्बई को घेर लिया। किन्तु ये लोग काफ़ी चालाक थे। वे फौरन आकर औरंगजब के क़दमों पर गिर पड़े। उन्होंने कान पकड़ कर अपनी पिछली खताओं के लिए माफ़ी चाही, आइन्दा के लिए नेकचलनी का वादा किया और मुग़ल सम्राट से जानबख्शी की प्रार्थना की।† औरंगज़ेब ने उदारता में आकर और उन पर विश्वास करके उन्हें बख्श दिया और सूरत आदि की कोठियां उन्हें वापस दे दीं। सन् 1699 में औरंगज़ेब ने उन्हें नई-नई कोठियां क़ायम करने और वहां अपनी हिफ़ाज़त के लिए किलेबन्दी करने तक की इजाज़त दे दी।

औरंगज़ेब ही के समय में उसके पौत्र अज़ीमशाह ने बंगाल के सूबेदार की हैसियत से हुगली नदी के ऊपर छुतानटी, कलिकाता और गोविन्दपुर नाम के तीन गांव बतौर जागीर कम्पनी को दे दिए। उसी समय फ़ोर्ट विलियम क़िले की बुनियाद डाली गई। जिस समय वह क़िलेबन्दी की जा रही थी, औरंगज़ेब के पास इसकी ख़बर पहुंची। औरंगज़ेब को सलाह दी गई कि इस क़िलेबन्दी को रोका जाए, किन्तु दिल्ली सम्राट की नज़रों में अंग्रेज़ उस समय तक एक इतनी तुच्छ चीज़ थे कि उनकी इन कार्रवाइयों में दखल देना उसे ग़ैरजरूरी मालूम हुआ। इन 'गरीब परदेशियों' के साथ वह हर तरह दया और उदारता का ही व्यवहार करना चाहता था। औरंगज़ेब ने उत्तर दिया :

---

*"The English in Bengal were equally notorious for their quarrels......... The old Viceroy, Shayista Khan, called them 'a company of base, quarrelling people and foul dealers'; and our great modern authority will not gainsay that the noble had good grounds for his assertion. The impression of the moral and social tone of the Company's servants in the Bay which has been left in the mind of Sir Henry Yule by his exhaustive study of the records of the time is 'certainly a dismal one,"—Dr. C. R. Wilson's *Early Annals of the English in Bengal,* vol. i, p. 66.

†"Stooped to the most abject submission"—Mill, Book i, chap. v.

"मैं इन चीज़ों में क्यों दखल दूं ? बहुत मुमकिन है कि आसपास की मेरी देशी रिआया उनसे ईर्ष्या रखती हो और झगड़े करती हो, फिरंगी लोग अपनी शक्ति भर अपनी हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम क्यों न करें ? ये ग़रीब लोग इतनी दूर से आए हैं और अपनी रोज़ी के लिए बहुत मेहनत करते हैं । मैं उन्हें क्यों रोकूं ?"*

औरंगज़ेब के बाद मुगल साम्राज्य की निर्बलता का समय आया। अंगरेज़ों को मौका मिला। उनके अत्याचारों ने और भी अधिक गम्भीर तथा भयंकर रूप धारण किया। इस बीच धीरे-धीरे भारत के पूर्व और पश्चिमी तटों पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अनेक नई कोठियां बन गईं। अंगरेज़ों का व्यापार भारत में बढ़ता गया। कम्पनी के पत्तीदार और छोटे-बड़े मुलाज़िम, सभी भारत के धन से मालामाल हो गए। औरंगज़ेब की मृत्यु के ठीक पचास साल बाद बंगाल में अंगरेज़ी राज की नींव रखी गई, जिसकी कहानी दूसरे स्थान पर बयान की जाएगी।

फ्रान्सीसियों का प्रवेश

आख़िरी यूरोपियन क़ौम, जो इस सिलसिले में भारत आई, फ्रांन्सीसी क़ौम थी। फ्रान्स देश के रहने वालों को 'फ्रांसीसी' या 'फ्रेंच' कहते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मुक़ाबले की एक फ्रान्सीसी कम्पनी ठीक उसी गरज़ से सन् 1664ई०में क़ायम हुई। फ्रान्सीसियों ने सन् 1668 में सूरत, सन् 1669 में मछलीपट्टन और सन् 1774 में पुद्दुचरी (पाण्डिचेरि) में अपनी कोठियां बनाईं।

फ्रान्सीसियों की नीति आरम्भ से यह थी कि वे भारतीय शासकों की खुशामद करके जिस तरह हो, उन्हें अपने पक्ष में रखने की कोशिश करते थे। पुददुचरी का नगर उस समय कर्नाटक के राज में था। दिल्ली सम्राट का एक सूबेदार दक्षिण में रहता था। कर्नाटक का नवाब और कई अन्य राजा व नवाब सूबेदार के मातहत थे। पुद्दुचरी के फ्रान्सीसी मुखिया दूमास ने कर्नाटक के नवाब दोस्तअली खां को खूब खुश कर रखा था। यह समय 18-वीं सदी के शुरू का समय था, जब कि औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य का बल घटना शुरु हो गया था।

इस बीच मराठों ने कर्नाटक पर हमला किया। दूमास ने मौक़ा पाकर मराठों के ख़िलाफ नवाब को सहायता देने का वादा किया। नवाब से इजाज़त लेकर उसने पुद्दुचरी में क़िलेबन्दी कर ली और 1,200 यूरोपियनों और 5,000 हिन्दोस्तानियों की सेना उसमें जमा कर ली। युरोप-निवासियों के हाथों में वह पहली हिन्दोस्तानी सेना थी। दूमास की सहायता काम कर गई। मराठों का कर्नाटक विजय करने का प्रयत्न विफल हुआ। कर्नाटक का नवाब और दिल्ली का सम्राट, दोनों दूमास से खुश हो गए। सम्राट ने प्रसन्न होकर दूमास को 'नवाब' की उपाधि प्रदान की और मुग़ल साम्राज्य के अधीन उसे दो

---

*"If he (The Mogul) was told of their planting stockade and putting a sort of fortification there, why should he trouble himself regarding it? Likely enough his native subjects around them were jealous and disposed to be quarrelsome. Why should not Firanghees defend themselves as best they might? Poor people! they had come a long way, and seemed to work hard—he would not interfere."—Torrens *Empire in Asia,* pp. 4, 5.

हज़ार सवारों का सेनापति नियुक्त कर दिया। पुद्दुचरी के सारे इलाके पर अब फ्रांसीसियों का कब्ज़ा हो गया।

सन् 1741 में दूमास की जगह डुप्ले फ्रांसीसी कम्पनी की ओर से पुद्दूचरी का हाकिम नियुक्त हुआ। डुप्ले एक अत्यन्त योग्य और चतुर सेनापति था। उसके पूर्वाधिकारी दूमास को दिल्ली से नवाब का ख़िताब मिल चुका था। डुप्ले ने खुद अपने तईं 'नवाब डुप्ले' कहना शुरू कर दिया। डुप्ले पहला यूरोप-निवासी था, जिसके मन में भारत के अन्दर यूरोपियन साम्राज्य क़ायम करने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। डुप्ले को भारतवासियों में दो खास कमज़ोरियां नज़र आईं, जिनसे उसने पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया। एक यह कि भारत के विविध नरेशों की उस समय की आपसी ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और लड़ाइयों के दिनों में विदेशियों के लिए कभी एक और कभी दूसरे का पक्ष लेकर धीरे-धीरे अपना बल बढ़ा लेना कुछ कठिन न था और दूसरे यह कि इस कार्य के लिए यूरोप से सेनाएं लाने की आवश्यकता न थी। बल, वीरता और सहनशक्ति में भारतवासी यूरोप वालों से बढ़ कर थे। अपने अफ़सरों के प्रति वफ़ादारी का भाव भी भारतीय सिपाहियों में ज़बर्दस्त था। किन्तु 'राष्ट्रीयता' के भाव या 'स्वदेश' के विचार तक का उनमें अभाव था। उन्हें बहुत आसानी से यूरोपियन ढंग की सैनिक शिक्षा दी जा सकती थी और यूरोपियन अफ़सरों के अधीन रखा जा सकता था। इसलिए विदेशियों का यह सारा काम बड़ी सुन्दरता के साथ हिन्दोस्तानी सिपाहियों से निकल सकता था। डुप्ले को अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में केवल एक बाधा नज़र आती थी और वह थी अंगरेज़ों की प्रतिस्पर्धा।

फ्रान्सीसी और अंगरेज़

यूरोप के अन्दर भी उन दिनों फ्रांन्स और इंगलिस्तान एक दूसरे के शत्रु थे। थोड़े दिनों के बाद ही वहां फ्रान्स और इंगलिस्तान के बीच युद्ध शुरू हो गया। कर्नाटक में क़रीब सौ साल से मद्रास की बस्ती अंगरेज़ों के अधिकार में थी और यही उस समय उनके भारतीय व्यापार का मुख्य केन्द्र था। डुप्ले ने मद्रास अंगरेज़ों से छीन लेने का विचार किया। दोस्तअली खां का उत्तराधिकारी अनवरुद्दीन इस समय कर्नाटक का नवाब था। डुप्ले ने अंगरेज़ों के विरुद्ध नवाब के खूब कान भरे। लाबूरदौने नामक एक फ्रांसीसी के अधीन उसने कुछ जल-सेना मद्रास विजय करने के लिए भेजी और नवाब से यह कहा कि अंगरेज़ों को मद्रास से निकाल कर मैं नगर आपके हवाले कर दूंगा। लाबूरदौने ने मद्रास विजय कर लिया, किन्तु इसके साथ ही अंगरेज़ों से चालीस हज़ार पाउण्ड नक़द लेकर मद्रास फिर उनके हवाले कर देने का वादा कर लिया। इसके बाद डुप्ले ने अपने वादे के अनुसार मद्रास नवाब के हवाले कर देने की कोई कोशिश न की और न लाबूरदौने के वादे के अनुसार उसे अंगरेज़ों ही को वापस किया। नवाब को जब इस छल का पता चला, तब वह फ़ौरन सेना लेकर मद्रास की ओर रवाना हुआ। डुप्ले भी अपनी सेना सहित नवाब को रोकने के लिए बढ़ा। 4 नवम्बर, सन् 1746 को मद्रास के पास डुप्ले की सेना और नवाब कर्नाटक की सेना में संग्राम हुआ। डुप्ले की सेना में भी अधिकतर भारतीय सिपाही ही थे। इस भारतीय सेना और अपने तोपखाने के बल पर डुप्ले ने विजय प्राप्त की। इतिहास में यह पहली विजय थी, जो किसी यूरोपियन ने किसी भारतीय शासन के विरुद्ध प्राप्त की। विदेशियों के हौसले अब और अधिक बढ़ गए।

अंगरेज़ों और नवाब कर्नाटक, दोनों को फ़ांसीसी धोखा दे चुके थे, इसलिए ये दोनों अब फ़ांसीसियों के विरुद्ध मिल गए। सन् 1748 ई० में अंगरेज़ी सेना ने पुद्दुचरी पर हमला किया, किन्तु डुप्ले की सेना ने इस बार भी अंगरेज़ों को हरा दिया। इसी समय यूरोप के अन्दर फ़्रांस और इंगलिस्तान के बीच सन्धि हो गई, जिसमें एक शर्त यह तय हुई कि मद्रास फिर से अंगरेज़ों के हवाले कर दिया जाए। इस तरह कर्नाटक से अंगरेज़ों को निकाल देने के बारे में डुप्ले की आशा को एक ज़बरदस्त धक्का पहुंचा और फ़ांसीसियों की बरसों की मेहनत पर पानी फिर गया।

किन्तु डुप्ले का हौसला इतनी जल्दी टूटने वाला न था। फ़ांसीसी और अंगरेज़ी कम्पनियों में लाग-डाट बराबर जारी रही। ये दोनों कम्पनियां इस देश में अपनी-अपनी सेनाएं रखती थीं और जहां कहीं किन्हीं दो भारतीय नरेशों में लड़ाई होती थी, तो एक एक का और दूसरी दूसरे का पक्ष लेकर लड़ाई में शामिल हो जाती थीं; भारतीय नरेशों की सहायता के बहाने इनमें से हर एक का उद्देश्य अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धी को समाप्त करना होता था।

दक्षिण भारत में मोर्चे

दक्षिण भारत की राजनैतिक अवस्था इस समय काफ़ी बिगड़ी हुई थी। मुग़ल सम्राट की ओर से नाज़िरजंग वहां का सूबेदार था। नाज़िरजंग का एक भतीजा मुज़फ्फ़रजंग अपने चचा को गद्दी से उतार कर खुद सूबेदार बनना चाहता था। इसलिए नाज़िरजंग ने मुज़फ्फ़रजंग को कैद कर रखा था। उधर अनवरुद्दीन कर्नाटक का नवाब था। किन्तु उससे पहले के नवाब दोस्तअली खां का दामाद चंदा साहब अनवरुद्दीन को गद्दी से उतार कर खुद कर्नाटक का नवाब बनना चाहता था। साहूजी तंजौर का राजा था और एक दूसरा हक़दार प्रताप सिंह साहूजी को हटा कर तंजौर का राज लेना चाहता था। इनमें कर्नाटक का नवाब सूबेदार के अधीन था और तंजौर का राजा कर्नाटक के नवाब का बाजगुज़ार था। इन तीनों राजघरानों की इस आपसी फूट से अंगरेज़, फ़्रान्सीसी और मराठे, तीनों अलग-अलग फ़ायदा उठाने की कोशिशें कर रहे थे। दिल्ली के मुग़ल दरबार में इतना बल न रह गया था कि साम्राज्य के दूर के कोने में इस तरह के झगड़ों को दबा कर सच्चे हक़दारों के हक़ की हिफ़ाजत कर सके। अनेक साज़िशें और लड़ाइयां हुईं, जिनमें अंगरेज़ों ने नाज़िरजंग और अनवरुद्दीन का पक्ष लिया और फ़ांसीसियों ने मुज़फ्फरजंग और चंदा साहब का, किन्तु इन झगड़ों का सूत्रपात तंजौर से हुआ।

सबसे पहले चंदा साहब ने तंजौर के राजा साहूजी को गद्दी से उतार कर उस पर अपना क़ब्जा कर लिया। मराठों ने तंजौर पर चढ़ाई करके चंदा साहब को कैद कर लिया और प्रताप सिंह को वहां की गद्दी पर बैठा दिया। कहते हैं कि तंजौर की प्रजा साहूजी की अपेक्षा प्रताप सिंह से अधिक खुश थी। अंगरेज़ों ने अब साहूजी का पक्ष लिया और साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठाने के बहाने कम्पनी की सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुंच गई। वहां पहुंच कर अंगरेज़ों ने देखा कि प्रताप सिंह का पक्ष अधिक मज़बूत है, इसलिए ऐन मौक़े पर साहूजी के साथ दग़ा करके वे प्रताप सिंह से मिल गए। देवीकोट का नगर और क़िला प्रताप सिंह ने इस कृपा के बदले में अंगरेज़ों को दे दिया। साहूजी को सदा के लिए पेन्शन देकर अलग कर दिया गया और प्रताप सिंह तंजौर का राजा बना रहा। कर्नाटक में नवाब अनवरुद्दीन अंगरेज़ों पर मेहरबान था ही, इसलिए फ़ांसीसी अनवरुद्दीन की जगह चंदा साहब को नवाब बनाना

चाहते थे। डुप्ले ने मराठों को कुछ नक़द धन देकर चंदा साहब को क़ैद से छुड़वा लिया और फिर उसे कर्नाटक की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया। 3 अगस्त, सन् 1749 को आम्बूर की लड़ाई में फ्रांसीसियों की सहायता से अनवरुद्दीन का काम तमाम कर चंदा साहब कर्नाटक का नवाब बन गया। यहां तक डुप्ले को खासी सफलता मिली।

किन्तु तंजौर अभी तक प्रताप सिंह के हाथ में था और प्रताप सिंह अंगरेज़ों की तरफ था। डुप्ले ने इसके लिए दक्षिण के सूबेदार ही को बदलना चाहा। उसने नाज़िरजंग के विरुद्ध मुज़फ्फ़रजंग के साथ साज़िश की। चचा की कैद से भाग कर मुज़फ्फ़रजंग ने फ्रांसीसियों की सहायता से अपने को दक्षिण का सूबेदार घोषित कर दिया और चंदा साहब के साथ मिल कर सबसे पहले तंजौर पर चढ़ाई की। सूबेदार नाज़िरजंग ने तंजौर के राजा प्रताप सिंह की सहायता के लिए सेना भेजी। दोनों पक्षों के बीच एक गहरा संग्राम हुआ, जिसमें मुज़फ्फरजंग फिर से क़ैद कर लिया गया। चंदा साहब की जगह अनवरुद्दीन का बेटा, मौहम्मदअली कर्नाटक का नवाब बना दिया गया और नाज़िरजंग सूबेदारी की गद्दी पर क़ायम रहा। डुप्ले की सब कार्यवाही फिर निष्फल गई। इस पर भी उसके प्रयत्न जारी रहे। जब वह खुले संग्राम में न जीत सका, तब उसने अपने गुप्त अनुचरों द्वारा सूबेदार नाज़िरजंग को क़त्ल करवा दिया और एक बार फिर मुज़फ्फरजंग को दक्षिण का सूबेदार और चंदा साहब को कर्नाटक का नवाब घोषित करवा दिया।

किन्तु तिरुच्चिरापल्ली का मज़बूत क़िला मोहम्मदअली के हाथों में था। तिरुच्चिरापल्ली पर ही वह ज़बर्दस्त और अन्तिम संग्राम हुआ, जिसमें दक्षिण के इन तीनों राजकुलों और अंगरेज़ों तथा फ्रांसीसियों—पांचों की क़िस्मत का फ़ैसला हो गया। तिरुच्चिरापल्ली ही वह चट्टान मानी जाती है, जिससे टकरा कर इस देश के अन्दर डुप्ले और फ्रांसीसियों की समस्त आकांक्षाएं चूर-चूर हो गईं। चंदा साहब और फ्रान्सीसियों की सेनाएं एक ओर थीं, मोहम्मदअली और अंगरेज़ों की सेनाएं दूसरी ओर। एक फ्रांन्सीसी सेना यूरोप से डुप्ले की सहायता के लिए भेजी गई, किन्तु वह भी अंगरेज़ों के इक़बाल से कहीं मार्ग ही में डूब कर खत्म हो गई। तिरुच्चिरापल्ली के संग्राम में फ्रान्सीसियों के पक्ष की हार रही। मजबूर होकर सन् 1754 ई० में फ्रांन्स की सरकार ने डुप्ले को फ्रान्स वापस बुला लिया। फ्रान्स ने इसके बाद भारत के राजनैतिक झगड़ों से तटस्थ रहना ही अपने लिए हितकर समझा। दोनों यूरोपियन कम्पनियों में सन्धि हो गई कि आइन्दा भारत की 'देशी रियासतों के आपसी झगड़ों में दोनों में से कोई कभी दखल न दे।' फ्रान्स ने इस शर्त पर अमल किया। फ्रान्सीसी कमज़ोर पड़ चुके थे। किन्तु अंगरेज़ों ने बराबर उस शर्त का उल्लंघन करना अपने लिए अधिक लाभदायक पाया। सन् 1769 ई० में फ्रान्सीसी कम्पनी तोड़ दी गई। आज (1929) भारत में केवल पुद्दुचेरी, चन्द्रनगर और एक-दो और छोटे-छोटे स्थान फ्रान्स के क़ब्ज़े में बाक़ी हैं।

अंगरेज़ी राज की नींव

अब हम 18-वीं सदी के मध्य तक पहुंच चुके। पुर्तगालियों, डचों और फ्रान्सीसियों, तीनों में से किसी की भी सत्ता भारत में क़ायम न रह सकी। इसके बाद केवल अंगरेज़ों की कहानी बाकी रह जाती है। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ सौदागरों के राजनैतिक प्रभुत्व की नींव सन् 1757 में प्लासी के प्रसिद्ध मैदान में रखी गई, जिसका विस्तृत हाल अगले अध्याय में दिया जाएगा।

दूसरा अध्याय

सिराजुद्दौला

नवाब अलीवरदी खां

सन् 1707 ई० में सम्राट औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। मुग़ल साम्राज्य का बल और फैलाव उस समय अपनी पराकाष्ठा पर थे, किन्तु साम्राज्य के नाश के बीज बोए जा चुके थे। औरंगज़ेब के बाद ही दिल्ली के शाही दरबार का दबदबा घटना शुरू हो गया। चारों ओर छोटी-छोटी बादशाहतें साम्राज्य से टूट-टूट कर अलग होने लगीं और अलग-अलग सूबों के सूबेदार यद्यपि नाममात्र को साम्राज्य के अधीन रहे, किन्तु वास्तव में अपने-अपने विशाल राज्यों के ख़ुदमुख़्तार शासक बन गए।

नवाब अलीवरदी खां मुग़ल सम्राट के अधीन बंगाल, बिहार और उड़ीसा, तीनों प्रान्तों का सूबेदार था। मराठों की शक्ति बढ़ रही थी। मराठों ने बंगाल पर हमले शुरू कर दिए। इन हमलों से अपनी रक्षा करने के लिए अलीवरदी खां ने दिल्ली से मदद की प्रार्थना की, किन्तु दिल्ली दरबार से उसे किसी तरह की सहायता न मिल सकी। मजबूर होकर नवाब अलीवरदी खां ने दिल्ली को सालाना मालगुज़ारी भेजना बन्द कर दिया। किन्तु इस पर भी वह अपने तईं सम्राट का एक वफ़ादार सेवक और उसकी प्रजा मानता रहा और सम्राट के अधीन केवल एक सूबेदार की हैसियत से शासन करता रहा।

उस समय का बंगाल

इसमें सन्देह नहीं कि बंगाल की तमाम रिआया अलीवरदी खां और उसके पूर्वजों के शासन में अत्यन्त सुखी और खुशहाल थी। अंगरेज़ इतिहास-लेखक, एस० सी० हिल उस समय के बंगाल के किसानों के बारे में लिखता है—

> **"मैं समझता हूं कि सामाजिक इतिहास के हर विद्यार्थी को स्वीकार करना होगा कि अठारहवीं सदी के मध्य में बंगाल के किसान की हालत उस समय के फ़्रान्स या जर्मनी के किसानों की हालत से बढ़ कर थी।"***

यह उस समय के ग्रामों की हालत थी। अब उस समय के शहरों की हालत पर नज़र डाली जाए, तो बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के बारे में स्वयं प्रसिद्ध अंगरेज़ सेनापति क्लाइव लिखता है :

> **"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा चौड़ा, आबाद और धनवान है, जितना कि लन्दन का शहर। अन्तर इतना है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य आदमी के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बेइंतहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेक के पास है।"†**

**Bengal in* 1756-57 by S. C. Hill, vol. i, p. xxiii,

†"The city of Murshidabad is as extensive, populous and rich as the city of London with this difference that there are individuals in the first possessing infinitely greater property than any of the last city."—Clive.

हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सूबेदार के व्यवहार में किसी तरह का भेदभाव न था। सूबेदार के अधीन तीनों प्रान्तों में अधिकांश रियासतों का शासन हिन्दू राजाओं के हाथों में था। मुर्शिदाबाद के दरबार में अनेक उच्च से उच्च पद हिन्दुओं को मिले हुए थे। एस० सी० हिल लिखता है कि "देश का व्यापार और दस्तकारियां क़रीब-क़रीब सब हिन्दुओं ही के हाथों में थीं।"*

बंगाल को लूटने की योजना

अंगरेज़ जाति के लोग सबसे पहले भारत के पश्चिमी तट पर उतरे, किन्तु उनकी राजनैतिक सत्ता की नींव पहले-पहल बंगाल में पड़ी। इसके दो सबब बताए जा सकते हैं। पहला और मुख्य सबब यह था कि जब कि पश्चिमी तट पर मराठों की वह विशाल जलसेना उस समय मौजूद थी, जो अपने समय में दुनिया की सबसे ज़बर्दस्त जल-सेना मानी जाती थी, उस समय मुग़लों के पास कोई जल-सेना थी ही नहीं और बंगाल का दरवाज़ा समुद्र से आनेवालों के लिए चौपट खुला हुआ था। दूसरा सबब यह था कि पश्चिमी प्रान्तों की निस्बत बंगाल कहीं अधिक उपजाऊ और मालामाल प्रान्त था। सम्भव है, एक तीसरा सबब यही भी रहा हो कि बंगाल के लोग कुछ ज़्यादा भोले थे और ज़्यादा आसानी से विदेशियों की चालों में आ सके।

सबसे पहले सन् 1764 ई० में एक अंगरेज़, कर्नल मिल ने जर्मनी के साथ मिलकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा विजय करने और उन्हें लूटने की एक योजना तैयार करके यूरोप भेजी, जिसमें उसने लिखा—

> †"मुग़ल साम्राज्य सोने और चांदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक यूरोप के किसी बादशाह ने, जिसके पास जल सेना हो, बंगाल फ़तह करने की कोशिश नहीं की। एक ही हमले में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है, जिससे ब्राज़ील और पेरू (दक्षिण अमरीका) की सोने की खानें भी मात हो जाएंगी।
>
> "मुग़लों की नीति त्रुटिपूर्ण है। उनकी सेना और अधिक खराब है। जल-सेना उनके पास है ही नहीं। साम्राज्य के अन्दर लगातार विद्रोह होते रहते हैं। यहां की नदियां और यहां के बन्दरगाह, दोनों विदेशियों के लिए खुले पड़े हैं। यह देश उतनी ही आसानी से फ़तह किया जा सकता है, या बाजगुज़ार बनाया जा सकता है, जितनी आसानी से स्पेनवालों ने अमरीका के नंगे वाशिंदों को अपने अधीन कर लिया था।
>
> " * * * अलीवरदी खां के पास तीन करोड़ पाउण्ड (क़रीब 50 करोड़ रुपये) का खजाना मौजूद है। उसका सालाना आमदनी कम से कम बीस लाख पाउण्ड होगी। उसके प्रान्त समुद्र की ओर से खुले हैं। तीन जहाज़ों में डेढ़ हज़ार या दो हज़ार सैनिक इस हमले के लिए काफ़ी होंगे * * *।"†

**Bengal in* 1756-57, *Introduction.*

†"The Moghul Empire is overflowing with gold and silver. She has always been feeble and defenceless. It is a miracle that no European prince with a maritime power has ever attempted the conquest of Bengal. By a single stroke infinite wealth might be acquired, which would counterbalance the mines of Brazil and Peru.

कर्नल मिल इस सारी साज़िश को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से छिपा कर पूरा करना चाहता था, क्योंकि उसके अनुसार "कोई भी कम्पनी बात को गुप्त नहीं रख सकती।"

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ग़द्दारी

मिल जिस ढंग से चाहता था, उस ढंग से बंगाल विजय नहीं किया गया और शायद हो भी न सकता, पर लक्ष्य अंगरेज़ कम्पनी का भी यही था। कम्पनी के अंगरेज़ों ने अपनी कोशिशें बराबर जारी रखीं। तिजारत के काम में इन लोगों का हिन्दुओं से अधिक वास्ता पड़ता था। दोनों ही बनिए थे। इसलिए अठाहरवीं सदी के मध्य में बंगाल के अन्दर हमें यह लज्जाजनक दृश्य देखने को मिलता है कि उस समय के विदेशी ईसाई कुछ हिन्दुओं के साथ मिलकर देश के मुसलमान शासकों के खिलाफ बग़ावत करने और उनके राज को नष्ट करने की साज़िशें कर रहे थे। अंगरेज़ कम्पनी के गुप्त मददगारों में खास कलकत्ते का एक मालदार पंजाबी व्यापारी अमीचन्द था। उसे इस बात का लालच दिया गया कि नवाब को खत्म करके मुर्शिदाबाद के खज़ाने का एक बड़ा हिस्सा तुम्हें दे दिया जाएगा और "इंगलिस्तान में तुम्हारा नाम इतना अधिक होगा, जितना भारत में कभी न हुआ था।" कम्पनी के मुलाज़िमों को आदेश था कि "अमीचन्द की खूब खुशामद करते रहो।"*

अंगरेज़ षड्यन्त्रकारियों में एक खास नाम कर्नल स्काट का मिलता है। कर्नल स्काट ने बहुत दिनों तक बंगाल में रह कर खूब मेलजोल बढ़ाया और अमीचन्द की मदद से चुपके-चुपके कई बड़े-बड़े हिन्दू राजाओं और रईसों को अपनी ओर फोड़ लिया। अमीचन्द के धन और अंगरेज़ कम्पनी के झूठे-सच्चे वादों ने मिलकर नवाब के अनेक दरबारियों और सम्बन्धियों की नीयत को भी डांवाडोल कर दिया।

उधर कलकत्ते में अंगरेज़ों और चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों की किलेबन्दियां बराबर जारी थीं।

नवाब अलीवरदी खां को इन सब बातों का थोड़ा-बहुत पता चल गया। उसे इस बात का भी पता चल गया कि दक्षिण में और करमण्डल तट पर किस तरह के कुचक्रों द्वारा ठीक उसी समय अंगरेज़ और फ्रांन्सीसी, दोनों अपने पैर फैलाते जा रहे थे। नवाब ने अपना सन्देह दूर करने के लिए कर्नल स्काट को अपने दरबार में बुलाया। कर्नल स्काट ने आने का वादा किया और फिर टाल कर मद्रास की ओर चला गया। नवाब ने अंगरेज़ों और फ्रांन्सीसियों, दोनों को हुक्म दिया कि आप लोग फौरन क़िलेबन्दियां करना बन्द कर

"The policy of the Moguls is bad; their army is worse; they are without a navy. The Empire is exposed to perpetual revolts. Their ports and rivers are open to foreigners. The country might be conquered, or laid under contribution as easily as the Spaniards overwhelmed the naked Indians of America.

"..................Ali Verdi Khan............has treasure to the value of thirty millions sterling. His yearly revenue must be at least two millions. The provinces are open to the sea. Three ships with fifteen hundred or two thousand regulars would suffice for the undertaking............ The East India Company should be left alone. No Company can keep a secret............"—Colonel Mill's letter to Francis of Lorraine in 1746. Quoted from Bolt's *Considerations of the Affairs of Bengal*, Appendix.

*Clive's letter to Watts.

दें। उसने अंगरेज़ और फ्रांसीसी कम्पनियों के नुमाइन्दों को दरबार में बुला कर उनसे कहा :

> "तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें क़िलों की क्या जरूरत ? जब तुम मेरी हिफ़ाजत में हो, तब तुम्हें किसी दुश्मन का डर नहीं हो सकता।"

सिराजुद्दौला को अलीवरदी खां की आखिरी नसीहत

बहुत सम्भव है, अलीवरदी खां इस मामले में अपनी इच्छा पूरी कर पाता, किन्तु वह इस समय बूढ़ा था। उसकी उम्र ने अधिक वफ़ा न की। अन्त समय निकट आने पर एक दूरदर्शी नीतिज्ञ के समान उसने अपने नवासे और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को पास बुला कर इस तरह नसीहत की :

> **"मुल्क के अन्दर यूरोपियन क़ौमों की ताक़त पर नजर रखना। यदि खुदा मेरी उम्र बढ़ा देता, तो मैं तुम्हें इस डर से भी आज़ाद कर देता—अब, मेरे बेटे, यह काम तुम्हें करना होगा। तैलंग देश में उनकी लड़ाइयां और उनकी कूटनीति की ओर से तुम्हें होशियार रहना चाहिए। अपने-अपने बादशाहों के बीच के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों ने शहनशाह (मुग़ल सम्राट) का मुल्क और शहन्शाह की रिआया का धन-माल छीन कर आपस में बांट लिया है। इन तीनों यूरोपियन क़ौमों को एक साथ निर्बल करने का ख़याल न करना। अंगरेज़ों की ताक़त बढ़ गई है × × × पहले उन्हें जेर करना। जब तुम अंगरेज़ों को जेर कर लोगे, तब बाक़ी दोनों क़ौमें तुम्हें अधिक तकलीफ़ न देंगी। मेरे बेटे, उन्हें क़िला बनाने या फौजें रखने की इजाज़त न देना। यदि तुमने यह ग़लती की, तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जाएगा।"***

10 अप्रैल, सन् 1756 ई० को नवाब अलीवरदी खां की मृत्यु हुई और सिराजुद्दौला अपने नाना की गद्दी पर बैठा।

सिराजुद्दौला और बंगाल की गद्दी

सिराजुद्दौला की उम्र उस समय 24 साल की थी। मुग़ल साम्राज्य की जड़ें काफ़ी खोखली हो चुकी थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साजिशें भीतर-ही-भीतर काफ़ी फैल चुकी थीं और अंगरेज़ों के हौसले बढ़े हुए थे। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की सत्ता कायम होना और सिराजुद्दौला के खिलाफ़ अंगरेज़ों की साजिशें, इन दोनों में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। एक दिन भी बंगाल की राजगद्दी अभागे सिराजुद्दौला के लिए फूलों की सेज साबित न हुई। इंगलिस्तान के व्यापारी आरम्भ से ही उसके पहलू में कांटे की तरह चुभते रहे।

उन अंगरेज़ व्यापारियों ने, जो इससे पहले अपने तईं हर भारतीय नरेश की "विनीत और आज्ञाकारी प्रजा" कहा करते थे और एक-एक रियायत के लिए "अरज़ियां" दिया करते थे, अब अपने गुप्त प्रयत्नों के बल पर जान-बूझ कर नवाब सिराजुद्दौला का तरह तरह से अपमान करना शुरू कर दिया। निस्सन्देह, वे अब छेड़छाड़ का बहाना ढूंढ रहे थे।

**Bengal in* 1756-1757, vol. ii, p. 16.

सिराजुद्दौला के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार

सबसे पहला अपमान जो इन लोगों ने सिराजुद्दौला का किया, वह यह था : प्राचीन प्रथा के अनुसार हर नए सूबेदार के गद्दी पर बैठने के बाद तमाम मातहत राजाओं, अमीरों और विदेशी क़ौमों के वकीलों का दरबार में हाज़िर होकर नज़रें पेश करना ज़रूरी था। इसका एकमात्र अर्थ यह होता था कि वे नए नवाब को नवाब स्वीकार करते हैं। सिराजुद्दौला के गद्दी पर बैठने के समय अंगरेज़ कम्पनी की ओर से कोई नज़र पेश नहीं की गई। इसके बाद जब कभी अंगरेज़ों को मुर्शिदाबाद के दरबार से कोई काम पड़ता था, तब वे कभी सिराजुद्दौला से बात न करते थे, बल्कि ऊपर-ही-ऊपर ले-देकर दरबारियों से अपना काम चला लेते थे। वे सिराजुद्दौला के साथ पत्र-व्यवहार करने से भी बचते थे। उन्होंने एक बार कोई बहाना लेकर अपनी क़ासिम बाज़ार की कोठी में सिराजुद्दौला को आने तक से रोक दिया। निस्सन्देह, कोई शासक या नरेश इस तरह के अपमानों को गवारा न कर सकता था। किन्तु इस व्यक्तिगत अपमान के अलावा और भी कई ज़बर्दस्त सबब थे, जिन्होंने अन्त में सिराजुद्दौला को अंगरेज़ कम्पनी की बढ़ती हुई ताक़त को रोकने के लिए मजबूर कर दिया। इनमें तीन सबब ये थे :

(1) साम्राज्य के क़ानून और नवाब की आज्ञाओं, दोनों के खिलाफ़ अंगरेज़ों ने उस सूबे के अन्दर कलकत्ते में और दूसरी जगह भी क़िलेबन्दी कर ली और कलकत्ते के क़िले के चारों तरफ एक बड़ी खन्दक खोद डाली।

(2) दिल्ली के सम्राट ने इन परदेशियों पर दया करके बंगाल के अन्दर उनके माल पर हर तरह की चुंगी माफ कर दी थी। कम्पनी के दस्तखती पास से, जिसे 'दस्तक', कहते थे, कम्पनी का माल प्रान्त में जहां चाहे, बिना महसूल आ-जा सकता था। अब इन लोगों ने इस अधिकार का दुरुपयोग शुरू किया और अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों से रुपये ले-लेकर उनके हाथ अपने दस्तक बेचने शुरू कर दिए, जिससे राज की आमदनी को ज़बर्दस्त धक्का पहुंचा। इसके अलावा, जिस सम्राट ने इन विदेशियों के माल पर महसूल माफ़ कर दिया था, उसी की देशी प्रजा का माल जब इन विदेशियों को कोठियों में या उनकी बस्तियों में जाता था, तब कम्पनी ने उस पर ज़बर्दस्त चुंगी वसूल करना शुरू कर दिया जिसका क़ानूनन उसे कोई अधिकार न था।

(3) नवाब के जो मुलाज़िम या दरबारी किसी तरह का जुर्म करते थे, या नवाब के खिलाफ़ बग़ावत करते थे, उन्हें अंगरेज़ कलकत्ते में बुला कर अपनी कोठी में पनाह देने लगे।

इन सब बातों की शिकायतें सिराजुद्दौला के कानों तक लगातार और बाज़ाब्ता पहुंचती रहीं, फिर भी वह बरदाश्त करता रहा।

सिराजुद्दौला के मातहतों को फोड़ना

इतने में सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि अंगरेज़ पूर्णिया के नवाब शौकतजंग को सिराजुद्दौला से लड़ा कर, उसे मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठाने की तजवीज़ कर रहे है। शौकतजंग सिराजुद्दौला का एक रिश्तेदार और मुर्शिदाबाद के सूबेदार के अधीन उसका एक सामन्त था। सिराजुद्दौला सेना लेकर पूर्णिया की ओर रवाना हुआ। खबर सुनते ही

शौकतजंग नज़राने लेकर स्वागत के लिए आगे बढ़ा। शौकतजंग ने अपने तईं बेक़सूर बतलाया और अंगरेज़ों के वे सब पत्र सिराजुद्दौला के सामने रख दिए, जिनमें अंगरेज़ों ने शौकतजंग को सिराजुद्दौला के खिलाफ़ भड़काया था। *

किन्तु सिराजुद्दौला की उदारता असीम थी। उसने शौकतजंग को बहाल रखा और अंगरेज़ों के साथ भी दया और क्षमा का बर्ताव जारी रखा। उसने केवल अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों, दोनों के नाम यह आज्ञा जारी कर दी कि आप लोग आइन्दा न कोई नया क़िला बनाएं और न किसी पुराने क़िले की मरम्मत करें। फ्रांसीसियों ने नवाब की आज्ञा मान ली, किन्तु अंगरेज़ों ने इस आज्ञा और आज्ञापत्र को कलकत्ते ले जानेवाले हरकारो, दोनो का खुला अपमान किया।

नवाब मुर्शिदाबाद का एक दीवान उन दिनों ढाका में रहा करता था। उस समय के दीवान राजा राजवल्लभ को अंगरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया। सिराजुद्दौला राजवल्लभ से नाराज हुआ। अंगरेज़ों ने राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास को कलकत्ते बुला कर अमीचन्द के मकान के अन्दर आश्रय दिया। राजवल्लभ की तमाम धन-सम्पत्ति भी किशनदास के साथ कलकत्ते आ गई। सिराजुद्दौला ने अंगरेज़ों को आज्ञा दी कि किशनदास को वापस भेज दो, किन्तु अंगरेज़ों ने साफ इनकार कर दिया।

इतने पर भी सिराजुद्दौला ने शान्ति से ही सब मामले का निबटारा करना चाहा और क़ासिमबाज़ार की अंगरेज़ों की कोठी के मुखिया, वाट्स को बुला कर समझाया कि "यदि अंगरेज़ शान्त व्यापारियों की तरह देश में रहना चाहते हैं, तो अब भी बड़ी खुशी के साथ रहें, किन्तु सूबे के शासक की हैसियत से मेरा यह हुकुम है कि वे फ़ौरन उन सब क़िलों को ज़मीन के बराबर कर दें, जो उन्होने हाल में बिना मेरी इजाज़त बना डाले हैं।"†

किन्तु अंगरेज़ व्यापारियों ने, जिनके हौसले बहुत बढ़े हुए थे और जिनके षडयंत्र दूर-दूर तक पहुंच चुके थे, ज़रा भी परवाह न की। उनकी क़िलेबन्दी और अधिक ज़ोरों के साथ चलती रही। सिराजुद्दौला के पास अब इस खुली बग़ावत और नाफ़रमानी के लिए उन्हें दण्ड देने और रोकने के सिवाय और कोई चारा न था।

सिराजुद्दौला की अंगरेज़ों पर चढ़ाई

लाचार होकर सिराजुद्दौला ने 24 मई, 1756 ई० को कुछ सेना अंगरेज़ी कोठी को घेर लेने के लिए क़ासिमबाज़ार भेजी। बावजूद क़िलेबन्दी और तोपों के क़ासिमबाज़ार की कोठी सिराजुद्दौला की सेना के सामने अधिक देर तक न ठहर सकी। अंगरेज़ मुखिया वाट्स ने हार मान ली और कोठी सिराजुद्दौला के सुपुर्द कर दी। वाट्स और कोठी के दूसरे अंगरेज़ बाग़ी इस समय सिराजुद्दौला के हाथों में थे। वह चाहता, तो वहीं उनका काम तमाम कर सकता था। किन्तु उसने उनकी जानें बख्श दीं और उन्हें अपने साथ ले लिया। क़ासिमबाज़ार की कोठी के तिजारती माल को भी उसने बिल्कुल हाथ न लगाया। केवल वहां के हथियारों और गोला-बारूद को वहां से हटा दिया।

**Bengal in* 1756-1757, vol. iii, p. 164.

†Hastings' MSS. in the British Museum, vol. 29, p. 209.

वाट्स और दूसरे अंगरेज़ों को साथ लेकर 5 जून, 1756 को सिराजुद्दौला कलकत्ते की ओर बढ़ा। उन दिनों की सैन्ययात्रा निस्सन्देह कुछ और ही थी। रेलों का उस समय दुनिया में कहीं भी निशान न था। सड़कें भी हर जगह मौजूद न थीं। बंगाल की सख्त से सख्त धूप और गरमी का महीना, उस पर रमज़ान के दिन, जब कि सेना के अधिकांश मुसलमान अफ़सर और सिपाही दिन-दिन भर रोज़ा रखते थे, भारी-भारी तोपें और बाक़ी सामान, जिसके बिना उन दिनों यात्रा असम्भव थी और जिसे हाथियों और बैलों से खिंचवा कर ले जाना होता था। इन सब हालतों में सिराजुद्दौला की फ़ौज ने 11 दिन के अन्दर 160 मील का सफ़र तय किया।

तान्नाह में अंगरेज़ों की हार

अंगरेज़ों के क़ाफ़ी जंगी जहाज़ इस समय तक कलकत्ते पहुंच चुके थे। इन लोगो ने अपनी ओर से सिराजुद्दौला के विरुद्ध खुली बग़ावत शुरू कर दी थी। इस बीच 13 जून को अंगरेज़ी फ़ौज ने कलकत्ते से पांच मील नीचे हुगली के इस पार तान्नाह का क़िला वहां के मुठ्ठी-भर भारतीय संरक्षकों के हाथों से छीन लिया। सिराजुद्दौला ने कलकत्ते जाने से पहले इस क़िले को फिर से विजय किया। इस छोटे-से संग्राम में नदी के ऊपर अंगरेज़ों की जहाज़ी तोपें थीं और किनारे पर सिराजुद्दौला की तोपें—दोनो में कुछ देर तक खासा मुक़ाबला रहा। किन्तु आखिरकार अंगरेज़ी सेना को हार कर अपने जहाज़ो सहित पीछे हट जाना पड़ा।

सिराजुद्दौला की शान्तिप्रियता

सिराजुद्दौला इस पर भी, जहां तक हो सके, रक्त बहाने के विरुद्ध था। वह अब भी इन अंगरेज़ व्यापारियो के साथ अमन से रहने के लिए तैयार था। इस यात्रा में उसके एक दीवान ने कई बार वाट्स को अपने पास बुलाकर समझाया कि यदि अंगरेज़ अपने इस समय तक के अपराधों के बदले में बतौर जुर्माने या हरजाने के थोड़ा-बहुत भी धन पेश करने को तैयार हों और आइन्दा अमन से रहने का वायदा करें, तो सुलह की जा सकती है और व्यापार सम्बन्धी सब अधिकार उन्हें फिर से मिल सकते हैं। कलकत्ते के अंगरेज़ अफ़सरों को भी इसकी सूचना दे दी गई। यदि वे चाहते, तो उस समय भी सिराजुद्दौला के साथ सुलह कर सकते थे। किन्तु ये लोग अपने षड्यन्त्रों के बल सिराजुद्दौला का नाश करने की ठान चुके थे।

अंगरेज़ों की रिश्वतें और भेद नीति

ईमानदारी की लड़ाई में वे सिराजुद्दौला का किसी तरह भी मुकाबला न कर सकते थे। फ़ौज और सामान, दोनों की उनके पास बेहद कमी थी। उनका सबसे बड़ा हथियार था—रिश्वतें देकर, लालच देकर और झूठे वादे करके सिराजुद्दौला के आदमियों और सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लेना। वही वाट्स और उसके अंगरेज़ साथी, जिनकी सिराजुद्दौला ने जाने बख्शी थीं, इस समय सिराजुद्दौला की सेना के अन्दर इस तह की साज़िशों का जाल बुन रहे थे।

ईसाई पादरियों को फ़तवे

सिराजुद्दौला की सेना में और ख़ास कर उसके तोपखाने में अनेक यूरोपियन और दूसरे ईसाई नौकर थे। ईसाई पादरियों के दस्तखतों से एक-दूसरे के बाद तीन व्यवस्थापत्र

यानी फ़तवे निकाले गए, जिनमें लिखा था कि किसी भी ईसाई धर्मावलम्बी के लिए मुसलमानों की तरफ़ होकर अपने सहधर्मियों के खिलाफ़ लड़ना ईसाई धर्म के विरुद्ध और महापाप है। ये फ़तवे गुप्त ढंग से सिराजुद्दौला के ईसाई मुलाज़िमों में बांटे गए। इन्हीं फ़तवों में सिराजुद्दौला के मुलाज़िमों को यह भी लालच दिया गया कि यदि तुम नवाब की सेना से भाग कर अंगरेज़ों की ओर चले आओगे, तो तुम्हें फौरन अंगरेज़ी सेना में नौकर रख लिया जाएगा। इस तरह की चालों से सिराजुद्दौला की सेना में काफ़ी नमकहराम पैदा कर दिए गए।

अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ व्यवहार

कलकत्ते के अंगरेज़ों का व्यवहार इस अवसर पर अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ भी अत्यन्त खराब था। सिराजुद्दौला के आने की खबर पाते ही इन लोगों ने कलकत्ते के तमाम हिन्दुओं और मुसलमानों को, जिनमें अधिकतर कम्पनी के मुलाज़िम, गुमाश्ते व्यापारी और मज़दूर थे, अरक्षित छोड़ दिया और उनसे कह दिया कि अंगरेज़ तुम्हारी रक्षा न करेंगे। किन्तु यूरोपियनों, हिन्दोस्तानी ईसाइयों, मर्द, औरत और बच्चों, यहां तक कि उनके ईसाई गुलामों तक को उन्होंने अपनी कोठी के आसपास के मकानों में जमा कर लिया और बाहर चारों ओर के हिन्दोस्तानियों के मकानों को आग लगा दी, ताकि सिराजुद्दौला से लड़ने के लिए मैदान साफ़ हो जाए।

इतना ही नहीं, मालूम होता है कि ये लोग उस समय किसी भी हिन्दोस्तानी पर विश्वास न कर सकते थे। अमीचन्द, उसके साले हज़ारीमल और दीवान राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास, इन तीनों को अंगरेज़ों ने कैद करके रखना आवश्यक समझा। यह वही अमीचन्द था, जिसकी सहायता के बिना अंगरेज़ी व्यापार या अंगरेज़ी सत्ता, दोनों में से किसी के भी पैर बंगाल के अन्दर हरगिज़ न जम सकते थे और राजा किशनदास अंग्रेज़ कम्पनी का वह शरणागत था, जिसे उन्होंने सिराजुद्दौला के हवाले करने तक से इंकार कर दिया था।

जनानखाने पर हमला

जिस समय अंगरेज़ सिपाही अमीचन्द को पकड़ने के लिए उसके मकान पर पहुंचे, अमीचन्द ने फ़ौरन अपने को उनके हवाले कर दिया। किन्तु हज़ारीमल और राजा किशनदास से यह अपमान न सहा गया। उन दोनों ने अपने आदमियों को अंगरेज़ी सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। लड़ाई में हज़ारीमल वीरता के साथ लड़ा। उसका बांया हाथ उड़ गया और अन्त में तीनों गिरफ्तार कर लिए गए। इसके बाद जब अंगरेज़ अफ़सरों ने अपने उन्मत्त गोरे सैनिकों को अमीचन्द के ज़नानखाने की ओर बढ़ने का हुकुम दिया, तब अमीचन्द के वफ़ादार हिन्दोस्तानी जमादार का रक्त खौलने लगा। ओर्म नामक यूरोपियन इतिहास-लेखक इस घटना के विषय में लिखता है:

> **"अमीचन्द के जमादार ने, जो एक ऊंची जाति का हिन्दोस्तानी था, मकान को आग लगा दी और फिर, कहा जाता है, इसलिए कि विदेशी लोग घर की स्त्रियों की बेइज्ज़ती न कर सकें, उसने जनानखाने में घुस कर अपने हाथ से तेरह स्त्रियों का काम तमाम किया और अन्त में अपने भी खंजर घोंप लिया। किन्तु उसका अपना ज़ख्म कारगर न हो सका।"***

*Orme, vol. ii, p. 60.

कुछ अंगरेज़ इतिहास-लेखक शिकायत करते हैं कि बहुत-से भारतीय कुलियों, मल्लाहों और नौकरों ने उस समय अंगरेज़ व्यापारियों का साथ छोड़ दिया। यदि यह सच है, तो ऊपर के अत्याचारों में इसके लिए काफ़ी वजह मौजूद थी।

विजयी सिराजुद्दौला का कलकत्ता-प्रवेश

16 जून को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुंचा। 16 और 17 जून को कई छोटी-मोटी लड़ाईयां हुईं। 18 को, शुक्रवार के दिन, कम्पनी की ओर से आज्ञा निकली कि यदि शत्रु का कोई आदमी ज़ख्मी होकर या किसी और वजह से पनाह की प्रार्थना करे, तो उस पर कोई किसी तरह की दया न दिखाए। उसी दिन सिराजुद्दौला की सेना ने कम्पनी की सेना पर बाज़ाब्ता चढ़ाई की और सिराजुद्दौला के अनेक ईसाई नौकरों की नमकहरामी के बावजूद कम्पनी की सेना देर तक सिराजुद्दौला के गोलों का सामना न कर सकी। अन्त में अंगरेज़ों को फिर हार स्वीकार करनी पड़ी।

रविवार, 20 जून, 1756 को सिराजुद्दौला की विजयी सेना ने कलकत्ते की अंगरेज़ी कोठी में प्रवेश किया। कोठी के तमाम अंगरेज़ कैद कर लिए गए। सिराजुद्दौला के लिए इस समय कलकत्ते के इन बाग़ी विदेशी व्यापारियों का वहीं एक-एक कर काम तमाम कर देना और उनकी कोठी को नेस्तोनाबूद कर देना एक बहुत आसान काम था, किन्तु उदार सिराजुद्दौला इन लोगों के छलों से शायद अभी तक पूरी तरह परिचित न हुआ था।

सिराजुद्दौला की उदारता

सिराजुद्दौला के हुक्म से क़िले के अन्दर एक दरबार लगा, जिसमें तमाम यूरोपियन क़ैदी नवाब के सामने पेश किए गए। कैदियों ने नवाब से क्षमा की प्रार्थना की। उदार भारतीय नवाब ने फिर उन सबकी जानें बख्श दीं।*अंगरेज़ इतिहास-लेखक जेम्स मिल लिखता है :

> **"जब मिस्टर हालवेल (कलकत्ता की कोठी का मुखिया) हथकड़ी पहने हुए नवाब के सामनें पेश किया गया, तो नवाब ने फ़ौरन हुक्म दिया कि हथकड़ी खोल दी जाए और स्वयं अपनी सिपहगरी की शपथ खाकर हालवेल को विश्वास दिलाया कि तुम्हारे या तुम्हारे किसी साथी के सर का एक बाल भी किसी को छूने न दिया जाएगा।"†**

यही इतिहास-लेखक स्वीकार करता है, कि विजयी हिन्दोस्तानी सैनिकों ने "पराजित अंगरेज़ों के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।" और उनके साथ के "मुसलमान मुल्ला खुदा की बन्दगी में लगे रहे।" किले और कोठी के अन्दर का गोला-बारूद सब नवाब ने हटवा लिया, किन्तु जितना तिजारती माल कोठी के अन्दर भरा हुआ था, उसे सिराजुद्दौला या उसके सैनिकों ने हाथ तक नहीं लगाया। सिराजुद्दौला की आज्ञा से उसे हिफ़ाजत के साथ ज्यों का त्यों रहने दिया गया। यही व्यवहार सिराजुद्दौला ने अंगरेज़ों की दूसरी कोठियों में किया।

---

*Talboys Wheeler's *Early Records of British India,* vol. i, p. 160.

†*History of India* by James Mill, vol. iii, p. 1179.

नवाब शुजाउद्दौला

सम्राट शाहआलम लार्ड क्लाइव को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्रदान कर रहा है

नजमुद्दौला

कलकत्ते के बहुत से अंग्रेज़ सिराजुद्दौला की सेना के क़िले में दाखिल होने से पहले ही, पीछे की ओर से अपने जहाज़ों में बैठकर भाग गए थे। जो रह गए थे, उन्होंने अब सिराजुद्दौला से प्रार्थना की कि हमारी जान बख्शी जाए और हमें बंगाल छोड़ कर अपने साथियों के पास मद्रास चले जाने की इजाज़त दी जाए। सिराजुद्दौला ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखक इस बात की गवाही देते हैं कि इस अवसर पर सिराजुद्दौला की शक्ति को देखकर अधिकांश यूरोपियन चकित और भयभीत हो गए थे।

जान कुक लिखता है कि सिराजुद्दौला की मुसलमान सेना का नियम था कि वह रात को कभी न लड़ती थी और शाम होते ही गोलाबारी बन्द कर देती थी। कुक यह भी लिखता है कि यदि ऐसा न होता, तो 20 तारीख से पहले ही अंगरेज़ों की बुरी हालत हो गई होती।

अंग्रेज़ों का बंगाल से निकाला जाना

इस तरह, कम्पनी के अंगरेज़ व्यापारी सन् 1756 में भारत के सबसे अधिक उपजाऊ और खुशहाल प्रान्त बंगाल से निकाल बाहर किए गए। हालवेज ने कंपनी के डाइरेक्टरों के नाम अपनी 30 नवम्बर, 1756 की चिट्ठी में लिखा :

> **"इतनी घातक और शोकजनक आपत्ति बाबा आदम के समय से लेकर आज तक किसी भी क़ौम या उसके उपनिवेश के इतिहास में न आई होगी।"**

सिराज़ुद्दौला ने कलकत्ते का नाम बदल कर 'अलीनगर' रखा और अपने एक हिन्दू दीवान, राजा मानिकचन्द को अलीनगर का और उसके आसपास के इलाक़े का हाकिम नियुक्त किया।

'ब्लैक होल' का क़िस्सा

लगभग सब अंगरेज़ इतिहास-लेखक अपनी क़ौम की इस हार के साथ एक भयंकर हत्याकाण्ड का ज़िक्र करते ह, जिसे "ब्लैक होल" हत्याकाण्ड या बंगाल में 'अंधकूप हत्या' कहा जाता है। ब्लैक होल कलकत्ते की अंगरेज़ी कोठी के अन्दर एक अंधेरी कोठरी या काल-कोठरी थी, जो अंगरेज़ व्यापारियों ही की बनाई हुई थी और जिसमें कम्पनी के अफ़सर अपने हिन्दोस्तानी अपराधियों या कर्ज़दारों को बन्द कर दिया करते थे। इन अंगरेज़ इतिहास-लेखकों का बयान है कि 20 जून की रात को इस 18 फुट लम्बी और कुछ कम चौड़ी कोठरी में सिराजुद्दौला के हुकुम से 146 यूरोपियन क़ैदी बन्द कर दिए गए। जून का महीना, जगह की तंगी और ताज़ा हवा न मिल सकने के कारण भीषण यातनाओं के बाद सुबह तक इन 146 में से केवल 23 ज़िन्दा बचे और वह भी अधमरी हालत में।

किन्तु उस समय के इतिहास की खोज करनेवालों पर अब यह बात अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है कि ब्लैक होल का यह सारा किस्सा बिल्कुल झूठा है और केवल सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने और अंगरेज़ों के बाद के कुचक्रों को जायज़ करार देने के लिए गढ़ा गया था।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक अक्षयकुमार मैत्र ने अपने बंगला ग्रन्थ 'सिराजुद्दौला' में इस क़िस्से की सच्चाई के विरुद्ध अनेक अकाट्य दलीलें जमा की हैं। अव्वल तो इतनी छोटी (267 वर्ग फुट) जगह में 146 मनुष्य चावल की बोरों की तरह भी नहीं भरे जा सकते। इसके अलावा सय्यद ग़ुलाम हुसैन की 'सीअरुल-मुताखरीन' में या उस समय के किसी भी प्रामाणिक इतिहास में, या कम्पनी के रोज़नामचों, 'कार्रवाई के रजिस्टरों' या मद्रास कौन्सिल की बहसों में इस घटना का कहीं ज़िक्र तक नहीं आता। क्लाइव और वाट्सन ने कुछ समय बाद नवाब की ज़्यादतियों और कम्पनी की हानियों को दरशाते हुए नवाब के नाम जो पत्र लिखे, उनमें भी इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता, न अलीनगर के सन्धिपत्र में उसका कहीं नाम है। बहुत समय बाद क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने सिराजुद्दौला के साथ कम्पनी के क्रूर व्यवहार के अनेक सबब गिनवाए हैं। उनमें इस घटना का कहीं इशारा भी नहीं मिलता : अंगरेज़ों ने अन्त में मीर जाफ़र के साथ जो सन्धि की, उसमें कम्पनी के हर तरह के हर्जाने का हिसाब लगाया गया है, किन्तु इन 123 आदमियों के कुटुम्बियों को मुआवज़ा दिलवाने का कहीं ज़िक्र नहीं। जो विदेशी लोग जहाज़ों में बैठकर भाग निकले थे, उनके बाद 123 शायद क़िले के अन्दर बचे भी न थे। कुछ लोगों ने बाद में कुछ ऐसे यूरोपवासियों की सूची तैयार करने की कोशिश की, जो उस समय कलकत्ते के क़िले के अन्दर मरे और उसे 123 तक लाने का प्रयत्न भी किया, फिर भी यह सूची 56 से ऊपर न पहुंच सकी और ये 56 भी किसी कोठरी में दम घुट कर नहीं मरे, बल्कि लड़ाई के ज़ख्मों और मामूली रोगों का शिकार हुए। फिर बाकी 67 कौन थे ?

वास्तव में, इस झूठे क़िस्से को फरवरी, सन् 1757 ई० में कलकत्ते के अंगरेज़ मुखिया हालवेल ने भारत से विलायत जाते समय जहाज़ के ऊपर बैठ कर गढ़ा था। यह वही हालवेल है, जिसकी सिराजुद्दौला ने हथकड़ी खुलवा दी थी। अपने झूठों और जालसाज़ियों के लिए अंगरेज़ काफ़ी मशहूर था।

मिसाल के तौर पर, हालवेल के अनेक कारनामों में से केवल एक को यहां बयान कर देना काफ़ी होगा। यह घटना कुछ दिनों बाद की है, किन्तु इस स्थान पर बेमौके न होगी। सिराजुद्दौला के बाद मीर जाफ़र को गद्दी पर बैठाने के लिए हालवेल ने मीर जाफ़र से एक लाख रुपये रिश्वत के ले लिए और मीर जाफ़र की खूब तारीफ़ की। बाद में जब क़ासिम को गद्दी पर बैठने की ज़रूरत हुई, तो उसने तीन लाख रुपये मीर जाफ़र से लेकर चट कर लिए। अब मीर जाफ़र को बदनाम करना उसके लिए ज़रूरी हो गया। इसलिए कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम उसने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें मीर जाफ़र को उसने घोर अन्यायी और हत्यारा बयान किया और अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक सूची साथ में दी, जिन्हें, हालवेल के अनुसार, मीर जाफ़र ने बेक़सूर मार डाला था। हर पुरुष के पिता का नाम और हर स्त्री के पति का नाम सूची में दिया हुआ था। इन हत्याओं की छोटी-से-छोटी तफ़सील तक हालवेल के पत्र में मौजूद है। इसके कई साल बाद क्लाईव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों को एक और पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने बताया कि मीर जाफ़र पर जितने इल्ज़ाम हालवेल ने लगाए हैं, वे सब सर से

पांव तक झूठे हैं और जिन पुरुषों और स्त्रियों की सूची हालवेल ने अपने पत्र में यह कह कर दी है कि मीर जाफ़र ने इन लोगों को बेकसूर मार डाला है, उन में से दो को छोड़कर बाकी सब अभी तक जिंदा हैं।

फिर भी सिराजुद्दौला को बदनाम करने और अपने देशवासियों के काले कारनामों पर मुलम्मा करने के लिए उस समय से आज तक अंगरेज़ इतिहास-लेखकों ने हालवेल की 'ब्लैक होल' नामक कल्पना से पूरा फ़ायदा उठाया है। अंगरेज़ी स्कूलों की सब पाठ्य पुस्तकों में जिनमें कि अंगरेज़ों के ऊपर सिराजुद्दौला के बेशुमार अहसानों का कहीं ज़िक्र नहीं, यह क़िस्सा सच्चा कहकर बयान किया जाता है।

सिराजुद्दौला की कलकत्ते से वापसी

अपनी वीरता और उदारता, दोनों का परिचय देने के बाद विजयी सिराजुद्दौला 24 जून को कलकत्ते से अपनी राजधानी की ओर लौटा। मार्ग में हुगली के ऊपर उसने एक दरबार किया, जिसमें फ़ान्सीसी कोठी के वकील ने साढ़े तीन लाख रुपये और डच कोठी के वकील ने साढ़े चार लाख रुपये अपनी-अपनी राजभक्ति दर्शाने के लिए सिराजुद्दौला की नज़र किए। सिराजुद्दौला ने उन्हें अपना व्यापार जारी रखने की इजाज़त दे दी। सिराजुद्दौला को अभी तक आशा थी कि इसी तरह का समझौता अंग्रेज़ों के साथ भी हो जाएगा। 11 जुलाई, 1756 को सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुंच गया।

थोड़े ही दिनों बाद पूर्णिया के नवाब शौकतजंग ने फिर बग़ावत का झंडा ऊंचा किया। 16 अक्तूबर, सन् 1756 को राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला और शौकतजंग की सेनाओं में मुकबला हुआ, जिसमें शौकतजंग काम आया और सिराजुद्दौला ने विजय प्राप्त की। सिराजुद्दौला अब शौकतजंग की जगह राजा यूगल सिंह नामक एक हिन्दू को पूर्णिया की गद्दी पर बैठा कर मुर्शिदाबाद लौट आया। इस बार सिराजुद्दौला की प्रजा ने उसे बधाइयां दीं और दिल्ली के सम्राट ने एक नए फ़रमान के ज़रिए उसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की सूबेदारी की गद्दी पर फिर से पक्का किया। यह बात याद रखने योग्य है कि सिराजुद्दौला आरम्भ से जो-कुछ करता था, दिल्ली सम्राट के नाम पर और सम्राट के एक सेवक की हैसियत से ही करता था।

फलता में अंग्रेज़

कलकत्ता से भागे हुए अंग्रेज़ कलकत्ते से कुछ नीचे बंगाल की खाड़ी से ऊपर फलता नामक स्थान पर जाकर ठहर गए और करीब छै महीने वहां ठहरे रहे। कम्पनी के कारबार की दृष्टि से उस ज़माने में कलकत्ते की निस्बत मद्रास अधिक महत्व की जगह थी। फलता से इन अंग्रेज़ों ने एक ओर तो मद्रास की कोठी के अंग्रेज़ों को यह लिखा कि मद्रास से नई सेना जमा करके बंगाल भेजी जाए और दूसरी ओर—क्योंकि केवल सेना के बल सिराजुद्दौला से जितना वे असम्भव समझ चुके थे—उन्होंने अपने गुप्तचरों के ज़रिए झूठे-सच्चे लोभ दिखला कर कलकत्ते के राजा मानिकचन्द की ओर सिराजुद्दौला के दूसरे सेनापतियों, दरबारियों और सामन्तों को अपनी ओर फोड़ने के प्रयत्न शुरू किए। निस्सन्देह, भेदनीति का यह विस्तृत जाल ही वह मुख्य उपाय था, जिसके द्वारा ये मुट्ठी-भर निर्बल

*Letter to the Directors, dated 1st October, 1765 by Clive and others.

किन्तु चालाक विदेशी, बलवान किन्तु अनुभवशून्य भारतीय नवाब को गिराने की आशा कर रहे थे। स्क्रैफ़टन नामक अंगरेज़ लिखता है :

> "यह एक बड़े भारी आश्चर्य की बात मालूम होगी कि सूबेदार (नवाब) नें इतने दिनों इतनी शान्ति से हमें फलता में क्यों पड़े रहने दिया। ××× इसकी वजह में केवल यह बता सकता हूं कि वह हमें एक बहुत ही तुच्छ चीज समझता था। ××× और उसे इस बात का गुमान भी न था कि हम सैन्यबल के सहारे फिर बंगाल लौटनें की हिम्मत करेंगे।" *

इस पर जीन ला लिखता है :

> "सिराजुद्दौला यूरोपवासियों को बहुत ही जियादा हक़ीर और तुच्छ समझता था। वह कहा करता था कि इन्हें ठिकाने रखने के लिए केवल एक जोड़ी चप्पल की जरूरत हैं। ××× इसलिए वह यह सोच ही न सकता था कि अंग्रेज सैन्यबल द्वारा फिर से बंगाल में पैर जमानें का विचार कर सकते हैं। यदि वह यह अनुमान कर सकता था कि अंग्रेज कोई नई तरकीब सोच रहे होंगे, तो केवल यही अनुमान कर सकता था कि वे विनम्र होकर एक हाथ से मेरे सामने नजर पेश करेंगे और दूसरे हाथ से फिर अपनी तिजारत शुरू करने के लिए खुशी के साथ मेरा फ़रमान हासिल करेंगे। निस्सन्देह, इसी खयाल से सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को शान्तिपूर्वक फलता में पड़े रहने दिया।"†

सिराजुद्दौला के साथ छल

फलता में अंग्रेज़ों ने नवाब के अफ़सरों से यह कहा कि हमें मौसम खराब होने की वजह से यहां रुकना पड़ रहा है; ज्यों ही मौसम समुद्र-यात्रा के काबिल हुआ, हम मद्रास चले जाएंगे। दूसरी ओर उन्होंने "नवाब को धोका देने के उद्देश्य से" ‡ अत्यन्त दीन और नम्र शब्दों में इस मजमून की अरजियां सिराजुद्दौला के पास भेजनी शुरू कर दीं कि हमें फिर से बंगाल में व्यापार करने की इजाज़त दी जाए।

सिराजुद्दौला की दयालुता

सिराजुद्दौला ने बजाय किसी तरह की कड़ाई के इस समय भी उनके साथ दया का व्यवहार किया। जब उसे यह मालूम हुआ कि अंग्रेज़ों के फलता पहुंचने पर वहां के लोगों ने बाज़ार बन्द कर दिए थे, जिसकी वजह से अंग्रेज़ों को रसद की दिक्कत हो रही थी, तो सिराजुद्दौला ने फ़ौरन हुकुम भेज दिया कि बाज़ार खोल दिए जाएं और "बेचारे परदेशियों को खाने-पीने के सामान की कोई दिक्कत न होने पाए।" सिराजुद्दौला दिल से चाहता था कि अंग्रेज़ अपनी शरारतें छोड़कर फिर से बंगाल में तिजारत करने लगें। इसीलिए उसने अपनी विजय के बाद भी क़ासिमबाज़ार, कलकत्ते इत्यादि की कोठियों में उनके तिजारती माल को हाथ न लगाया था।

---

*"*Reflections*" by Scrafton, p. 58.

†*Bengal in* 1756-57, vol. iii, 176.

‡"To deceive the Nawab.................." S. C. Hill in *Bengal* in 1756-57.

सिराजुद्दौला की नियत यदि कुछ ओर होती, तो कलकत्ते या फलता में से कहीं भी इन विदेशी व्यापारियों का एक-एक कर खात्मा कर डालना और साथ ही उनके सब षड्यन्त्रों का अन्त कर देना उसके लिए बहुत ही आसान काम था । यदि ऐसा वह कर डालता, तो कोई निष्पक्ष इतिहास-लेखक उसे दोषी न ठहरा सकता था । किन्तु उस भोले भारतीय नरेश को इन विदेशियों के चरित्र और उनकी चालों का अभी तक पता न था । इस भोलेपन की क़ीमत सिराजुद्दौला और उसके देश, दोनों ही को बहुत ज़बरदस्त चुकानी पड़ी ।

बंगाल में अंगरेज़ों का फिर से प्रवेश

20 जून, सन् 1756 को अंगरेज़ कलकत्ते से निकाले गए । 16 अगस्त को कलकत्ते के छिन जाने का समाचार मद्रास पहुंचा । अक्तूबर के मध्य में 800 यूरोपियन और 1,300 हिन्दोस्तानी सिपाही मद्रास से रवाना किए गए। जल-सेना का अधिकार एडमिरल वाट्सन को और स्थल-सेना का नेतृत्व सुप्रसिद्ध कर्नल क्लाइव को दिया गया । मद्रास की अंगरेज़ कौन्सिल के मेम्बरों ने 13 अक्टूबर के एक पत्र में इस सेना के अफ़सरों को स्पष्ट आदेश दिया कि आप लोग बंगाल पहुंच कर नवाब के आदमियों को अपनी ओर फोड़ कर किसी दूसरे को नवाबी का हक़दार खड़ा करके और हर तरह के दूसरे उपायों और षड्यन्त्रों से नवाबी को पलट देने का प्रयत्न करें ।* इस तरह, बंगाल में बग़ावत करवाने के इरादे से दिसम्बर सन् 1756 के मध्य में यह सेना फलता पहुंच गई ।

साज़िशों का जाल

यह सैन्यबल बहुत दर्जे तक एक दिखावे की चीज़ थी । असली चीज़ साज़िशों का वह जाल था, जो बंगाल में पूरी तरह फैल चुका था । कलकत्ते का राजा मानिकचन्द भी किसी-न-किसी लालच में फंस कर अपने स्वामी और देश, दोनों के साथ विश्वासघात करने को राज़ी हो गया । फलता पहुंचते ही क्लाइव और वाटसन, दोनों ने नवाब के नाम अलग-अलग दो लम्बे पत्र लिखे जिनमें सिवाय धमकियों, छल और बदतमीज़ी के और कुछ न था । सिराजुद्दौला इन पत्रों का क्या उत्तर दे सकता था ? अंगरेज़ों को भी सिराजुद्दौला के जवाब का कहां इन्तजार था ?

बजबज में दिखावटी लड़ाई

कलकत्ते से कुछ नीचे बजबज में एक बड़ा मज़बूत पुराना क़िला था, जिसके चारों ओर एक गहरी खाई थी । यह क़िला राजा मानिकचन्द के सुपुर्द था । 29 दिसम्बर को क्लाइव के अधीन थोड़ी-सी अंगरेज़ी सेना जहाज से उतर कर बजबज पहुंची । अंगरेज़ों और मानिकचन्द के बीच पहले से तय हो चुका था कि मानिकचन्द केवल दिखावे के लिए एक बार अंगरेज़ों का मुकाबला करे । चुनांचे मानिकचन्द दो हज़ार सैनिक लेकर क्लाइव के 260 सैनिकों का मुकाबला करने के लिए क़िले से बाहर निकला। केवल आध घंटे की झूठी फटफट के बाद मानिकचन्द ने क़िले के दरवाज़े खोल दिए और बिना किसी रुकावट के 29 दिसम्बर की रात को अंगरेज़ी सेना ने बजबज के क़िले में प्रवेश किया । मानिकचन्द अपनी

---

*Letter dated 13th October, 1756, *Bengal in* 1756-57, vol. i, pp. 239, 240.

सेना लिए पीछे की ओर हटता चला गया। मानिकचन्द कायर न था। छै साल बाद कम्पनी ने राजा मानिकचन्द के एक बेटे को अपने यहां तनखाह देकर नौकर रखा, जिसकी वजह सरकारी कागज़ों में इन साफ़ शब्दों में दी हुई है—"क्योंकि पिछले 30 साल के अन्दर मानिकचन्द कई तरह से हमारे लिए उपयोगी साबित हो चुका था।"*

बजबज के क़िले के अन्दर जितने ग़ैर-फ़ौजी हिन्दोस्तानी थे, उनमें से कुछ भाग निकले और जो रहे, उनको अंगरेज़ों ने क़त्ल कर दिया।

कलकत्ते में अंगरेज़ों का फिर से कब्ज़ा

इसके बाद दूसरी जगह, जहां मानिकचन्द अंगरेज़ों का मुकाबला कर सकता था, कलकत्ता थी। किन्तु यहां उसने या उसके विदेशी दोस्तों ने दिखावे की भी जरूरत न समझी। बजबज से भाग कर मानिकचन्द सीधा हुगली पहुंचा। वहां से उसने सिराजुद्दौला को कहला भेजा कि "अंगरेज़ों की विशाल (?) सेना के सामने मैं ठहर न सका।" 2 जनवरी, सन् 1757 को मानिकचन्द की ग़ैरहाज़िरी में बहुत आसानी से कलकत्ता फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। इसके बाद तान्नाह का क़िला भी अंगरेज़ी सेना को पहले ही से खुला हुआ और खाली मिला। 3 जनवरी, सन् 1757 को कलकत्ते का क़िला ड्रेक और उसकी एक कौंसिल के हवाले कर दिया गया।

अंगरेज़ इतिहास-लेखक एस० सी० हिल लिखता है कि इस समय सिराजुद्दौला पर हमला करने से पहले अंगरेज़ों के सामने एक खास सवाल यह था कि सिराजुद्दौला की जगह सूबेदार का हक़दार किसको खड़ा किया जाए। कुछ की सलाह थी कि "सरफ़राज़ खां के उन बेटों में से एक को, जो इस समय ढाका में क़ैद थे, सिराजुद्दौला के खिलाफ़ सूबेदारी का हक़दार खड़ा कर दिया जाए।"† किन्तु यह मामला अभी तय नहीं हुआ था। कलकत्ते के आसपास केवल एक हुगली का क़िला और बाक़ी रह गया था। अंगरेज़ों को मालूम था कि सिराजुद्दौला ने हुगली के पास अनाज की बड़ी-बड़ी कोठियां भर रखी हैं। तय हुआ कि सबसे पहले इन तमाम कोठियों को जाकर आग लगा दी जाए।

हुगली की लूट और क़त्लेआम

हुगली का क़िला अरक्षित पड़ा हुआ था। माल भी वहां बहुत था। किला आसानी से अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। 11 जनवरी का दिन क़िले के पास के मकानों को लूटने में खर्च हुआ। इसके बाद फिर 12 से 18 तक पूरे दिन हुगली नगर और उसके आसपास की तमाम हिन्दोस्तानी रिआया के घरों को लूटने में खर्च किए गए। इस लूट के साथ हुगली के बेशुमार निहत्थे और निरपराध हिन्दोस्तानी बाशिन्दे क़त्ल कर डाले गए।

सिराजुद्दौला का आगे बढ़ना और वाटसन के नाम पत्र

सिराजुद्दौला को मालूम हो गया कि उसके आदमियों में विश्वासघात के बीज बोकर अंगरेज़ों ने बजबज, तान्नाह, कलकत्ता और हुगली के क़िले मुफ्त में ले लिए हैं। एस० सी० हिल लिखता है कि मुर्शिदाबाद के मुख्य-मुख्य दरबारियों को अपनी ओर मिलाने के लिए

---

*Rev. Long's *Selections from the Government Records.*
†*Bengal in* 1756-57, vol. i, p. cxxxviii.

उनके साथ क्लाइव का गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी था। बहुत सम्भव है, इस पत्र-व्यवहार की भी कुछ भनक सिराजुद्दौला के कानों तक पहुंच गई हो। इसके बाद हुगली की निरपराध प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के जुल्मों की ख़बर सिराजुद्दौला को मिली। सिराजुद्दौला सेना लेकर मुर्शिदाबाद से बढ़ा और हुगली के निकट आकर उसने अंगरेज़ी सेनापति वाटसन को इस मज़मून का एक पत्र लिखा :

"तुम लोगों ने हुगली का नगर ले लिया, उसे लूटा और मेरी प्रजा के साथ युद्ध किया। इस तरह के काम व्यापारियों को शोभा नहीं देते, इसलिए मैं मुर्शिदाबाद से चल कर हुगली के निकट आया हूं। इसी तरह मैं अपनी सेना सहित नदी को पार कर रहा हूं और मेरी सेना का एक भाग तुम्हारे पड़ाव की ओर बढ़ रहा है। फिर भी, यदि तुम चाहते हो कि कम्पनी का कारबार पहले की तरह फिर से जम जाए और कम्पनी का व्यापार चलने लगे, तो किसी बाअख्तियार आदमी को मेरे पास भेज दो, जो अपनी इच्छाएं और आवश्यकताएं मुझे बता सके और इस मामले में मुझसे पूरी तरह बातचीत कर सके। इस बात का परवाना जारी करने में मुझे कोई संकोच न होगा कि कम्पनी की तमाम कोठियां तुम्हें वापस दे दी जाएं और जिन शर्तों पर तुम इस मुल्क में पहले तिजारत करते थे, उन्हीं शर्तों पर आइन्दा करते रहो। जो अंगरेज़ इन सूबों में बसे हुए हैं, वे यदि व्यापारियों का सा बर्ताव करेंगे, मेरी आज्ञाओं का पालन करेंगे और मुझे किसी तरह दिक़ न करेंगे, तो तुम विश्वास रखो, मैं उनके नुक़सानों का खयाल रखूंगा और इस बारे में उनकी तसल्ली कर दूंगा।"

"तुम जानते हो, जंग में सिपाहियों को लूटने से रोकना कितना मुश्किल काम है। इसलिए यदि मेरी सेना की लूट द्वारा तुम लोगों का कुछ नुक़सान हुआ है और उसमें से कुछ यदि तुम लोग अपनी ओर से छोड़ दोगे तो तुम्हारी दोस्ती पाने के लिए और भविष्य में तुम्हारी कौम के साथ अच्छा सम्बन्ध क़ायम रखने के लिए मैं इस खास विषय में भी तुम लोगों की तसल्ली कर देने की कोशिश करूंगा।"

"तुम ईसाई हो और जानते हो कि किसी झगड़े को बनाए रखने की निस्बत उसे आपस में तय कर डालना कितना ज्यादा अच्छा है। किन्तु यदि तुम यह तय ही कर चुके हो कि अपनी लड़ाई की इच्छा के सामने अपनी कम्पनी के फ़ायदे और अलग-अलग व्यापारियों के फ़ायदे, दोनों को क़ुरबान कर दो, तो इसमें मेरी कोई जिम्मेदारी न होगी। इस तरह की लड़ाई बरबाद कर देने वाली होती है, उसके नतीजे घातक होते हैं। इन घातक नतीजों को रोकने के लिए ही मैं यह पत्र लिख रहा हूं।"*

निस्सन्देह यह पत्र भी सिराजुद्दौला की शान्तिप्रियता, उसकी बरदाश्त, उसकी उदारता और उसकी प्रजापालकता, इन सबका पूरी तरह द्योतक है। शायद अभी तक उसे इस बात का काफ़ी तजरुबा न हुआ था कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ किसी तरह का भी समझौता कहां तक टिक सकता है।

---

*Ive's *Voyages*, p. 109.

छल से सिरोजुद्दौला का कलकत्ते बुलाया जाना

अंगरेज़ों ने जब नवाब को सुलह के लिए उत्सुक पाया, तो नीचे लिखी शर्तें पेश कीं :

(1) अंगरेज़ों का जितना नुकसान हुआ है, उस सबका पूरा-पूरा हर्ज़ाना दिया जाए;

(2) कम्पनी को बंगाल में जितनी रियाअतें मिली हुई हैं, वे सब पूरी तरह फिर से दी जाएं;

(3) अंगरेज़ों को अधिकार हो कि जिस तरह वे चाहें, अपनी आबादियों की क़िलेबन्दी कर सकें; और

(4) कलकत्ते में कम्पनी की अपनी एक टकसाल क़ायम हो ।

चौथी शर्त को स्वीकार करना सिराजुद्दौला के अधिकार से बाहर था । साम्राज्य भर में कहीं भी टकसाल क़ायम करना या किसी को टकसाल क़ायम करने की इज़ाज़त देना केवल दिल्ली सम्राट के अधिकार में था । पहली तीनों शर्तें सिराजुद्दौला ने मंज़ूर कर लीं और चौथी के विषय में पत्र-व्यवहार होता रहा । इस पत्र-व्यवहार में अंगरेज़ों ने और नई-नई शर्तें नवाब के सामने पेश करनी शुरू कीं । उनका असली उद्देश्य सिराजुद्दौला के साथ सुलह करना नहीं था । उनका उद्देश्य सिराजुद्दौला को धोखा देकर बंगाल में एक जबर्दस्त बगावत खड़ी करना था । इन लोगों ने सिराजुद्दौला से कलकत्ते चलने की प्रार्थना की और उसे यह आशा दिलाई कि कलकत्ते में पहुंच कर सुलह की शर्तें तय हो जाएंगी ।

विश्वासघात

अंगरेज़ इस समय सिराजुद्दौला को धोखे से कलकत्ते लाकर उस पर अचानक हमला करना चाहते थे । सुप्रसिद्ध मीर ज़ाफर इस समय सिराजुद्दौला के साथ और उसके मुख्य सेनापतियों में से था । एस० सी० हिल लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपनी इस यात्रा में मालूम हो गया था कि उसके अनेक सिपाही और कई अफ़सर तक उसका साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं ।"*

इतिहास-लेखक स्क्रैफ़टन लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपने कई मुख्य-मुख्य अफ़सरों में और खास कर मीर जाफ़र में, जिसका व्यवहार इस मामले में बड़ा रहस्यपूर्ण मालूम होता था, विद्रोह के कुछ लक्षण दिखाई दे गए थे ।"†

4 फरवरी, सन् 1757 ई० को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुंचे । कलकत्ते में अंगरेज़ों ने उसे बड़े आदर के साथ अमीचन्द के बाग में ठहराया । सुलह की बातचीत बराबर जारी रही । अंगरेज़ों की गुप्त तजवीज़ थी कि 5 अगस्त को सवेरे सूर्योदय से पहले सिराजुद्दौला पर चुपके से हमला कर दिया जाए । इतिहास-लेखक जीन ला लिखता है :

"जिस दिन अंगरेज़ हमला करने वाले थे, उससे एक दिन पहले सिराजुद्दौला को और अधिक पूरी तरह धोखे में रखने को ग़रज से और उसके खेमे की जगह को

---

*Ibid, vol. i, p. cxlvii.

†Sirajuddaula discovered some appearance of disaffection in some of his principal officers, particularly in Mir Jaffar, whose conduct in this affair had been very mysterious."—*Reflections,* p. 66.

सिराजुद्दौला

मीर जाफ़र और मीरन

मीर क़ासिम

अच्छी तरह देख लेने के लिए उन्होंनें उसके पास अपनें दो नुमाइन्दे भेजे। इन नुमाइन्दों को हुक्म था कि नवाब से सुलह की तजवीज़ें करें, किन्तु सुलह की जो शर्तें उन्होंनें पेश कीं, उन्हीं से नवाब को ज़ाहिर हो जाना चाहिए था कि यह सब उसके शत्रुओं की केवल एक चाल थी।"*

जो दो अंगरेज़ नुमाइन्दे क्लाइव ने इस अवसर पर नवाब के पास भेजे और जो वास्तव में जासूसों का काम कर रहे थे, उनके नाम वाल्श और स्क्रैफ़टन थे। एक और हिन्दोस्तानी देशद्रोही राजा नवकृष्ण इस समय सिराजुद्दौला के दल में अंगरेज़ों के जासूस का काम कर रहा था और उन्हें पल-पल पर नवाब की सब कार्रवाइयों की खबर देता रहता था।

नवाब के खेमे के पास ही अंगरेज़ नुमाइन्दों के खेमे डाल दिए गए। पहले से जो हिदायतें उन्हें दे दी गई थीं, उनके अनुसार 4 तारीख की रात को ये दोनों दूत सिराजुद्दौला से बातचीत करके अपने खेमे में आ गए। इसके बाद सोने के बहाने उन्होंने खेमों की रोशनी बुझा दी और फिर अंधेरे में वहां से निकल कर ये लोग अंगरेज़ों की ओर भाग आए। इसके बाद की घटना के विषय में जीन ला लिखता है :

"अगले दिन 5 फ़रवरी को सुबह 4 या 5 बजे गहरे कोहरे में कर्नल क्लाइव ने अपनी सेना सहित नवाब के दल पर हमला किया और ये लोग ठीक उस खेमे पर आकर गिरे, जिसमें पहले दिन शाम को अंगरेज नुमाइन्दे नवाब से मुलाक़ात कर चुके थे। × × × सौभाग्य से नवाब उस समय उस खेमे में मौजूद न था। उसके एक दीवान को अंगरेज़ नुमाइन्दों पर पहले ही कुछ सन्देह हो चुका था और उसनें नवाब को सलाह दी थी कि आप जरा दूर एक दूसरे खेमे में रात गुजारें।"

सिराजुद्दौला को ऐसे समय में, जब कि सुलह की बातचीत जारी थी, इस विश्वास-घात की कोई आशा न थी। जो लड़ाई इस समय सिराजुद्दौला और अंगरेज़ों के बीच हुई, उसके विषय में रेनाल्ट अपने 4 सितम्बर के एक पत्र में लिखता है :

"अंगरेजों ने अपनी सारी स्थल-सेना और उसके साथ अपनें जहाज़ों के तमाम सिपाही लड़ने को भेज दिए। वे सोते हुए मुसलमानों के ऊपर, धोखा देकर अचानक टूट पड़े। फिर भी इस लड़ाई से जितनें लाभ की उन्हें आशा थी, उतना न हो सका। शुरू में वे शत्रु को थोड़ा सा पीछे हटा पाए, किन्तु फिर ज्यों ही सिराजुद्दौला ने अपनी सेना का एक भाग जमा कर लिया, त्यों ही अंगरेजों को खुद पीछे हट जाना पड़ा। अंगरेजी सेना बेतरतीबी के साथ पीछे को भागी और यह उनकी बड़ी खुशकिस्मती थी कि वे अपनी क़िले की दीवारों के नीचे तोपों से सुरक्षित साए में पहुंच सके। इस लड़ाई में अंगरेजों के करीब 200 आदमी काम आए।"†

---

*"To deceive him (Siraj) more completely and examine the position of his camp the English sent deputies the day before the attack they meditated. These deputies were ordered to propose an accommodation, but the very conditions must have shown the Nawab this was only a ruse on the part of his enemy."—Jean Law, Ibid, vol. iii, p. 182.

†Ibid, vol. iii, p. 246.

निस्सन्देह, अंगरेज़ों को इस विश्वासघात की सज़ा देने के लिए नवाब के पास अब भी काफ़ी सेना थी, किन्तु और आगे चल कर रेनाल्ट लिखता है :

"नवाब के मन्त्रियों ने, जो लगभग सभी अंगरेज़ों के तरफ़दार थे और केवल सुलह कर लेना चाहते थे, इस मौके से फ़ायदा उठा कर नवाब को सुलह के लिए मजबूर किया। दूसरी तरफ़ अपने सेनापतियों की बग़ावत से लाचार होकर × × × नवाब ने देखा कि सुलह के लिए राज़ी हो जाने के सिवा उसके पास और कोई चारा न था। उसे अत्यन्त कड़ी शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।"

अलीनगर की सन्धि

इस हालत में नवाब सिराजुद्दौला ने 9 फरवरी, सन् 1757 ई० को अंग्रेज़ों के साथ वह सन्धि की, जो 'अलीनगर की सन्धि' के नाम से मशहूर है। इस सन्धि की सात शर्तें ये थीं :

(1) जितनी रिआयतें दिल्ली सम्राट ने अंगरेज़ों के साथ कर रखीं थीं, वे सब फिर से मंजूर कर ली जाएं;

(2) बिहार और उड़ीसा भर में जिस किसी माल के साथ अंगरेज़ों का 'दस्तक' हो, वह सब बिना महसूल आने-जाने दिया जाए;

(3) कम्पनी की कोठियां और कम्पनी और उसके नौकरों और असामियों का वह तमाम माल-असबाब, जो नवाब ने ज़ब्त कर लिया था, वापस दे दिया जाए और नवाब के आदमियों ने जो कुछ माल लूट लिया था, उसके बदले में एक नकद रकम दी जाए;

(4) अंगरेज़ जिस तरह उचित समझें, उस तरह कलकत्ते की क़िलेबन्दी कर लें;

(5) अंगरेज़ों को सिक्के ढालने का अधिकार रहे;

(6) नवाब और उसके मुख्य पदाधिकारी और मन्त्री इस सुलहनामे पर दस्तख़त करें; और

(7) अंगरेज़ क़ौम और अंगरेज़ कम्पनी की तरफ़ से ऐडमिरल वाटसन और कर्नल क्लाइव दोनों इस बात का वादा करें कि जब तक नवाब की ओर से सन्धि का उल्लंघन न होगा, तब तक हम नवाब के राज में अमन से रहेंगे।

भारत में अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों के दरम्यान लाग-डाट अभी जारी थी। इसलिए अंगरेज़ों ने इस बात पर जोर दिया कि सुलहनामे में एक शर्त यह भी रखी जाए कि सिराजुद्दौला निरपराध फ्रान्सीसियों पर चढ़ाई करके इन्हें इस मुल्क से बाहर निकाल दे। सिराजुद्दौला ने केवल इस शर्त को मानने से इन्कार कर दिया।

इस सन्धि के साथ-साथ अंगरेज़ों ने नवाब से यह इजाज़त ले ली कि मुर्शिदाबाद के दरबार में अंगरेज़ों का एक एलची रहा करे। यह भी तय हो गया कि जब कभी युद्ध आदि के समय नवाब को ज़रूरत हो और नवाब आज्ञा दे, अंगरेज़ अपनी सेना और धन दोनों से नवाब की मदद करें।

सन्धि तोड़ने के प्रयत्न

इस सुलहनामे की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि अंगरेज़ों ने, जिनका असली उद्देश्य कुछ और था, फ़ौरन उसे तोड़ने के उपाय सोचने शुरू किए। दरबार में एक अंगरेज़

एलची को रहने की इजाज़त देकर सिराजुद्दौला ने एक नई बला अपने ऊपर ले ली थी। 9 फरवरी को सुलहनामे पर दस्तख़त हुए और 12 तारीख को क्लाइव और उसके साथियों ने सिलेक्ट कमेटी के नाम अपने एक पत्र में खुले तौर पर यह राय प्रकट की :

"और भी नई रिआयतें नवाब से मांगी जा सकती हैं × × × और यदि एक ऐसा आदमी नवाब के दरबार में एलची नियुक्त करके भेजा जाए, जो देश की ज़बान और रिवाजों को समझता हो, तो न केवल उसके ज़रिए ये नई शर्तें ही मंजूर कराई जा सकती हैं, बल्कि और बहुत से इस तरह के प्रकट या गुप्त कामों में भी, जो पत्र व्यवहार द्वारा इतनी अच्छी तरह नहीं हो सकते, वह मनुष्य बहुत उपयोगी साबित हो सकता है।"

मुर्शिदाबाद के दरबार में साज़िशों का जाल पूरना अंगरेज़ों के लिए अब और अधिक आसान हो गया और इन कामों के लिए क़ासिमबाज़ार की कोठी का अंगरेज़ अफ़सर वाट्स, जिसकी एक बार सिराजुद्दौला जान बख्श चुका था, एलची नियुक्त करके भेजा गया। 16 फरवरी के एक पत्र में वाट्स को कम्पनी की ओर से यह हिदायत दी गई कि तुम 9 तारीख के सुलहनामे से बाहर दस और नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश करो। इन नई शर्तों में इस तरह की शर्तें भी थीं, जैसे---

नवाब के महकमे चुंगी का कोई मुलाज़िम अंगरेज़ों के किसी दस्तख़ती माल पर यदि किसी तरह का महसूल मांग बैठे, तो बिना नवाब से शिकायत किए या सरकारी अदालतों तक पहुंचे अंगरेज़ों को उसे स्वयं दण्ड देने का अधिकार हो। कम्पनी के ज़िम्मे या किसी भी अंगरेज़ के ज़िम्मे यदि किसी भारतवासी का कोई क़र्ज़ निकलता हो, तो नवाब उसे अपने पास से अदा कर दे। जो अदालतें अंगरेज़ अपनी ओर से कायम करें, उन्हें भारतवासियों को मुजरिम क़रार देने और उन्हें फांसी देने तक का अधिकार मिल जाए। नवाब से भेंट करने के समय अंगरेज़ों को रिवाज के अनुसार किसी तरह की नज़र पेश न करनी पड़े। कलकत्ते के नीचे नचे से एक मील के अन्तर नवाब कभी किसी तरह की क़िलेबन्दी न करे, इत्यादि, इत्यादि।

अंगरेज़ ख़ूब जानते थे कि सिराजुद्दौला इस तरह की नई शर्तें, जिनका साफ़ मतलब उससे शासन अधिकार छीनना था, स्वीकार न कर सकता था। असली मतलब पूरा करने के लिए सुप्रसिद्ध अमीचन्द अपनी थैलियों सहित वाट्स का सलाहकार नियुक्त होकर उसके साथ मुर्शिदाबाद भेजा गया। वाट्स अपने 'मेमायर्स आफ दि रेवोल्यूशन' में स्वीकार करता है कि साज़िशों को सफल बनाने के लिए उसने मुर्शिदाबाद के दरबार में रिश्वतों का बाजार ख़ूब गरम कर रखा था।

सिराजुद्दौला और वाटसन में पत्र व्यवहार

दूसरी ओर अलीनगर की सन्धि के विरुद्ध और उसकी ख़ाक परवा न करते हुए अंगरेज़ों ने फ़ौरन सबसे पहले फ्रान्सीसियों की चन्द्रनगर वाली कोठी पर हमला करने की ठानी। सिराजुद्दौला अभी कलकत्ते लौट कर अपनी राजधानी तक पहुंचा भी न था कि मार्ग ही में उसे अंगरेज़ों के इस इरादे का समाचार मिला। उसने तुरन्त 19 फरवरी को एडमिरल वाटसन के नाम इस मज़मून का एक पत्र लिखा :

"अपने देश और अपने राज के अन्दर लड़ाइयां बन्द करने के उद्देश्य से मैंने अंगरेज़ों के साथ सुलह मंजूर की थी, ताकि तिजारत पहले की तरह जारी रह सके ××× इसी तरह तुमनें भी अपनें दस्तख़त से और अपनी मोहर लगा कर एक मज़मून का इकरारनामा मेरे पास भेज दिया है कि तुम मेरे देश की शान्ति को भंग न करोगे; किन्तु अब मालूम होता है कि तुम हुगली के पास की फ़्रान्सीसी कोठी का मोहासरा करने और फ़्रान्सीसियों से लड़ाई शुरू करनें की तजवीज़ कर रहे हो। यह बात हर क़ायदे और रिवाज के ख़िलाफ़ है कि तुम लोग अपनें यहां के आपसी झगड़ों और दुश्मनियों को मेरे देश में लाओ ××× अगर तुमने फ़्रान्सीसी कोठियों का मोहासरा करने की ठान ही ली है, तो मेरी अपनी आन और अपने बादशाह की ओर मेरा फ़र्ज़, दोनों मुझे मजबूर करेंगे कि मैं अपनी फ़ौज से फ़्रान्सीसियों की मदद करूं। मालूम होता है, अभी हाल में जो सन्धि मेरे-तुम्हारे बीच हुई है, उसे तुम तोड़ना चाहते हो। इससे पहले मराठों नें इस राज पर हमला किया था और बरसों इस देश में लड़ाइयां जारी रखीं। किन्तु जब एक बार झगड़ा तय हो गया और उनके साथ सन्धि हो गई, तब उन्होंनें कभी सन्धि की शर्तों का उल्लंघन नहीं किया और न वे कभी आइन्दा उन शर्तों से हटेंगे। जो सन्धियां निहायत संजीदगी के साथ की जाती हैं, उनकी कतई परवा न करना और उन्हें तोड़ देना ग़लत और बुरा तरीका है। निस्सन्देह, तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम अपनी ओर की शर्तों पर ठीक-ठीक क़ायम रहो और आइन्दा मेरे मातहत सूबों में न कभी किसी तरह के झगड़ों या छेड़छाड़ की अपनी तरफ से कोशिश करो और न अपनें सबब कोई झगड़ा खड़ा होने का मौका दो। दूसरी ओर से जो कुछ मैंनें वादा किया है और मंजूर कर लिया है, उसे मैं बिल्कुल ठीक-ठीक समय पर पूरा करूंगा।" *

इस पत्र की भाषा बिल्कुल साफ़ और निष्कपट है, किन्तु दूसरे ही दिन सिराजुद्दौला को फिर एक पत्र इस मज़मून का लिखना पड़ा।

"मैं अनुमान करता हूं कि जो पत्र कल मैंने तुम्हें लिखा है, वह मिला होगा। उसके बाद फ़्रान्सीसी वकील ने मुझे इत्तला दी है कि तुम्हारे पांच या छः नए जंगी जहाज़ हुगली में आ गए हैं और औरों के आनें की आशा है। फ़्रान्सीसी वकील यह भी कहता है कि बारिश ख़त्म होते ही तुम मेरे और मेरी प्रजा के साथ फिर से लड़ाई शुरू करनें की तजवीज़ें कर रहे हो। यह व्यवहार एक सच्चे सिपाही को और एक ऐसे आनेवाले मनुष्य को, जो अपने वादे का पक्का है, शोभा नहीं देता। यदि तुम उस सन्धि की ओर सच्चे हो, जो तुमनें मेरे साथ की है, तो अपनें जंगी जहाज़ नदी से बाहर भेज दो और अपने अहदनामे पर पूरी तरह क़ायम रहो। मैं अपनी ओर से सन्धि का पालन करनें में न चूकूंगा। इतनी संजीदगी के साथ संधि करनें के फ़ौरन ही बाद फिर जंग शुरू कर देना क्या उचित या ईमानदारी है? मराठे किसी इलहामी किताब से बंधे हुए नहीं हैं, तो भी वे अपनी सन्धियों का बिल्कुल ठीक-ठीक पालन करते हैं। इसलिए यह बड़े आश्चर्य की और विश्वास के अयोग्य बात होगी, यदि ईसाई लोग, जिन्हें इंजील की रोशनी हासिल है, उस सन्धि पर क़ायम और पक्के न रहें, जिसे उन्होंनें ख़ुदा और ईसामसीह के सामनें क़बूल किया है।"

---

*Ive's *Vyages*, pp. 119, 120.

23 फरवरी को यह पत्र वाटसन को मिला। 25 को उसने सिराजुद्दौला के नाम यह उत्तर लिखा :

" ××× मैं नहीं जानता कि आप पर उस हैरानी को किस तरह ज़ाहिर करूं, जो मुझे यह देख कर हुई है कि महज़ इस हल्की-सी बात पर जो किसी कमीनें शख्स नें आपसे यह कह देनें का साहस किया कि में शान्ति भंग करनें की तजवीज़ में हूं, आपने सचमुच मुझ पर यह इल्ज़ाम लगा दिया। ××× जनाब, आपसे मैं यह उम्मीद करता हूं कि आप उस कमीनें शख्स को, जिसनें मुझ पर झूठा इल्ज़ाम लगानें और आपको धोखा देनें का साहस किया है, मुनासिब दण्ड देंगे। इस बीच मैंनें फ्रान्सीसियों से उनके वकील के व्यवहार की शिकायत की हैं और उन्होंनें मुझसे वादा किया है कि 'हम खुद नवाब को लिखेंगे कि जो इल्ज़ाम हमारे वकील नें आप पर लगाया है, वह हमें मालूम है कि झूठा है।' आप विश्वास रखिए कि मै सदा अपना धर्म समझ कर सुलह पर क़ायम रहूंगा ×××!"

निस्सन्देह, यह पत्र कपट से भरा हुआ था। सिराजुद्दौला की इसी सीधी-सी बात का कि "पांच या छः नए जंगी जहाज हुगली में पहुंच चुके हैं," पत्र भर में कहीं उत्तर देने की चेष्टा नहीं की गई। सच यह है कि अंगरेज़ इस समय फ्रान्सीसियों और सिराजद्दौला, दोनों के साथ लड़ने का निश्चय कर चुके थे। चुपचाप तैयारियां हो रही थीं और केवल मौके का इन्तजार था। सिराजुद्दौला को वे अन्त तक धोखे में रखना चाहते थे।

दिल्ली सम्राट और सिराजुद्दौला

इसी समय के निकट कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट के दरबार और सिराजुद्दौला के बीच कुछ खटपट हो गई। खबर मिली कि सम्राट की सेना बंगाल की ओर बढ़ी चली आ रही है। सिराजुद्दौला ने उसके मुकाबले के लिए पटना की ओर बढ़ने का निश्चय किया। 9 फरवरी की सन्धि में यह तय हो चुका था कि इस तरह की कोई आवश्यकता पड़ने पर अंगरेज़ धन, और फौज, दोनों से नवाब की सहायता करेंगें। सिराजुदौला ने वाटसन को सेना भेजने के लिए लिखा और उसी पत्र में यह लिख दिया कि जब तक अंगरेज़ी सेना मेरे पास रहेगी, तब तक मैं एक लाख रुपये माहवार उसके खर्च के लिए दूंगा। सम्भव है, इस तरह सेना मांगने में सिराजुद्दौला का उद्देश्य यह भी रहा हो कि इस बहाने अंगरेज़ कोई और शरारत करने से रुके रहें। इसी बीच सिराजुद्दौला नें फ्रांसीसियों को भी एक पत्र लिखा कि आप लोग अंगरेज़ों के साथ सुलह करके मेरे राज में शांति और अमन से रहें।

किन्तु अंगरेज़ों से फ़ौज की मदद मांगना सिराजुदौला के लिए एक नई और घातक भूल साबित हुई। वाटसन ने सिराजुद्दौला के पत्र का अत्यन्त गोलमोल जवाब दिया। उधर इस पत्र नें अंगरेज़ी सेना को कलकत्ते से बढ़ने का पूरा मौक़ा दे दिया। सेना कलकत्ते से बढ़ी, किन्तु सिराजुद्दौला की मदद के लिए नहीं, वरन् पहले चन्द्रनगर की फ्रान्सीसी कोठी को विजय करने के लिए और फिर सिराजुद्दौला पर हमला करने के गुप्त उद्देश्य से।

चन्द्रनगर पर हमले का इरादा

इस समय अंगरेज़ों का सबसे पहला उद्देश्य बंगाल के अन्दर अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धी, फ्रान्सीसियों की ताक़त को ख़त्म करना था। क्लाइव और वाटसन, दोनों इरादा कर

चुके थे कि सिराजुद्दौला के साथ लड़ने से पहले कोई-न-कोई बहाना निकाल कर फ्रांसीसियों की चन्द्रनगर वाली कोठी पर हमला करके उस पर कब्ज़ा कर लिया जाए, किन्तु ऐसा करना 9 फ़रवरी वाली सन्धि का उल्लंघन करना होता। सिराजुद्दौला भी इस विषय में उन्हें आगाह कर चुका था।

इसके अलावा, फ्रांसीसी भी अंगरेज़ों से लड़ना न चाहते थे। उन्होंने सिराजुद्दौला का पत्र पाते ही, सिराजुद्दौला की इच्छा के अनुसार, आपसी समझौते के लिए अपने वकील अंगरेज़ों के पास भेजे। यहां तक कि समझौते की शर्तें भी लिखी गई, जो दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लीं। नवाब भी समझौते का पालन कराने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए राज़ी हो गया। केवल समझौते के कागज़ पर वाटसन का हस्ताक्षर होना बाकी रह गया था।

किन्तु अंगरेज़ों का असली मतलब इस तरह के समझौते से सिद्ध न हो सकता था। क्लाइव और वॉटसन, दोनों नें फ्रांसीसियों पर हमला करने का निश्चय कर लिया था। ऐन मौक़े पर वाटसन ने समझौते के कागज़ पर दस्तख़त करने से इनकार कर दिया। चन्द्रनगर पर हमला क्लाइव और वाटसन, दोनों करना चाहते थे, किन्तु हमले के ढंग के विषय में इन दोनों में एक खास मतभेद हो गया। वाटसन की राय थी कि बिना सिराजुद्दौला से पूछे या बिना उसे सूचना दिए ही चन्द्रनगर पर हमला कर दिया जाए, किन्तु क्लाइव इसके विरुद्ध था। क्लाइव चाहता था कि पहले रिश्वतें देकर या जालसाज़ी करके किसी तरह सिराजुद्दौला की ओर से इस मज़मून का एक पत्र, जिससे मालूम हो कि सिराजुद्दौला हमारे चन्द्रनगर पर हमला करने में सहमत है, अपने पास रख लिया जाए और फिर चन्द्रनगर पर हमला किया जाए। इस संबंध में क्लाइव ने 4 मार्च, सन 1757 को सिलेक्ट कमेटी के मेम्बरों के नाम जो पत्र लिखा, उससे इस मामले के स्वरुप का ख़ास पता चल सकता है। क्लाइव ने लिखा :

"महाशय ! ज़रा सोचिए कि हमारी इन हाल की कार्रवाइयों के विषय में दुनिया क्या राय क़ायम करेगी। चन्द्रनगर के (फ्रान्सीसी) गवर्नर और उसकी कौंसिल की तरफ़ से हमारे पास इस मज़मून का पत्र आया कि हम गंगा प्रान्त में आपके साथ सुलह से रहनें के लिए राज़ी हैं। हमनें इसके जवाब में यह इच्छा प्रकट की कि आप अपनें वकील भेजें और उन्हें लिख दिया कि हम आपके साथ समझौता करनें को खुशी से तैयार हैं। तो क्या हमनें इस उत्तर द्वारा एक प्रकार से सुलह स्वीकार नहीं कर ली ? इसके अलावा, फ्रान्सीसी वकीलों के आनें के बाद क्या हमनें सुलह की इस तरह की शर्तें तैयार नहीं कीं, जो दोनों पक्षों के लिए सन्तोषजनक हैं और क्या हम इस बात को मंज़ूर नहीं कर चुके हैं कि हर शर्त पर दोनों पक्षों के दस्तखत हों, दोनों की मोहरें लगें और दोनों उसके पालन की प्रतिज्ञा करें ? फिर अब नवाब क्या सोचेगा ? जब हम अपनी ओर से नवाब से वादे कर चुके हैं और वह इस सन्धि का पालन करानें की ज़िम्मेदारी अपनें ऊपर लेनें की रज़ामन्दी तक ज़ाहिर कर चुका है, तब इसके बाद निस्सन्देह नवाब और सारी दुनिया यही समझेगी कि हम हल्की और ओछी तबीयत के आदमी हैं या हमारा कोई भी सिद्धान्त नहीं ××× !"

क्लाइव की धूर्तता

वास्तव में, क्लाइव वाटसन की अपेक्षा कहीं अधिक धूर्त था। वह उस समय चुप-चाप वाट्स के जरिए, जो मुर्शिदाबाद के दरबार में एलची था, जालसाज़ी करवा कर नवाब की अनुमति का परवाना प्राप्त कर लेने की कोशिश में लगा हुआ था।

वाट्स ने 10 मार्च को नवाब के कुछ मन्त्रियों को रिश्वत देकर नवाब की ओर से वाटसन के नाम एक जाली पत्र भिजवाया, जिसके अन्त में वह वाक्य था—

"आप समझदार और उदार हैं। यदि आपका शत्रु शुद्ध हृदय से आपकी शरण चाहे, तो आप उसकी जान बख्श दें, किन्तु आपको उसके इरादों की पवित्रता के विषय में पूरी तसल्ली होनी चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो जो कुछ आप ठीक समझें, करें।"

इस पत्र की मूल फ़ारसी प्रति कहीं नहीं मिलती और अंगरेज़ी तर्जुमा, जिसका हिंदी तर्जुमा ऊपर दिया गया है, वाट्स का किया हुआ है।

वाट्स का दूसरा साथी, स्क्रैफ़टन साफ़ लिखता है कि इस पत्र को लिखाने के लिए अंगरेज़ों ने नवाब के मन्त्रियों को रिश्वतें देने में काफी रुपया खर्च किया।* इतिहास लेखक जीन ला लिखता है कि वाट्स ने मुर्शिदाबाद में रिश्वतों और झूठे वादों का बाज़ार इतना गर्म कर रखा था कि —

"नवाब की सेना के सब मुख्य-मुख्य अफ़सर मीर जाफ़रअली खां, खुदादाद खां लट्टी और कई और × × × पुराने दरबार के सब वज़ीर × × × क़रीब-क़रीब सब मन्त्री, दरबार के मुहर्रिर, यहां तक कि हरमसरा के खोजे तक अंग्रेज़ों की ओर थे × × ×।"†

इस पत्र के संबंध में जीन ला को भी विश्वास है कि वाट्स ने उसे लिखाने के लिए नवाब के मन्त्री को रिश्वत दी।‡ वह यह भी लिखता है कि —

"नवाब जिन पत्रों को अपने हुक्म से लिखवाता था, उन्हें कभी पढ़ता न था। इसके अलावा मुसलमान (शासक) कभी अपने हाथ से दस्तखत नहीं करते। जब लिफ़ाफ़ा बन्द करके अच्छी तरह कस दिया जाता है, तब मन्त्री नवाब से उसकी मोहर मांगता है और नवाब के सामने लिफ़ाफ़े पर मोहर लगाता है। कभी-कभी एक नकली मोहर भी होती है।"§

इन सब कामों में मुर्शिदाबाद के दो जैन जगतसेठों का प्रभाव और अमीचन्द का धन, इन दोनों से अंगरेज़ों को काफ़ी मदद मिल रही थी, यानी रिश्वतों में जो धन खर्च किया जा रहा था, वह भी अंगरेज़ों की जेब से न निकलता था।

**Reflections*, p. 70.

†*Bengal Records*, vol. iii, p. 191.

‡"....................The Secretary must have been bribed to write in a way suitable to the views of Mr. Watts."—M. Jean Law, in his *Memoirs*.

§Ibid.

चन्द्रनगर पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

3 मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को सहायता पहुंचाने के बहाने अपनी सेना की बाग संभाली। 7 मार्च को उसने सिराजुद्दौला को लिख भेजा कि मैं आपकी सहायता के लिए आता हूं। अंगरेज़ों की तैयारी पूरी थी। इस बीच बम्बई से भी कुछ सेना क्लाइव की सहायता के लिए पहुंच चुकी थी। क्लाइव चन्द्रनगर की ओर बढ़ा। उसे इस तरह सेना सहित अपनी ओर बढ़ते हुए देख कर फ्रांसीसियों ने इसकी वजह पूछी। छली क्लाइव ने 9 मार्च को फ्रांसीसियों को पत्र द्वारा विश्वास दिलाया कि---"आपकी क़ौम से लड़ने का मेरा इस समय बिलकुल इरादा नहीं है।" 10 मार्च को सिराजुद्दौला का वह जाली ख़त मुर्शिदाबाद से चला, जिसमें कहा जाता है कि नवाब ने अंगरेज़ों को चन्द्रनगर का मोहासरा करने की इजाज़त दे दी। 11 ता० को एक दूसरे पत्र द्वारा क्लाइव ने फ्रांसीसियों पर यह नया इल्ज़ाम लगाया कि आप लोगों ने अंगरेज़ी सेना से भागे हुए कुछ बाग़ियों को अपने यहां छिपा रखा है। युद्ध के लिए बस यह बहाना काफ़ी था। 12 मार्च को चन्द्रनगर से दो मील की दूरी पर क्लाइव की सेना आ पहुंची। इतने में वाटसन भी अपनी सेना लेक पहुंच गया। 14 मार्च को चन्द्रनगर का मोहासरा शुरू हुआ और 23 मार्च को चन्द्रनगर अंग्रेज़ों के हाथों में आ गया। बंगाल के अन्दर फ्रांसीसियों की दूसरी कोठियों के बारे में अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के बीच एक सन्धि हो गई।

चन्द्रनगर के दो मुख्य विश्वासघाती

चन्द्रनगर की इस सरल विजय में भी युद्धकौशल या वीरता ने अंग्रेज़ों का इतना साथ नहीं दिया, जितना कूटनीति ने। दो बड़े विश्वासघातियों के नाम इस मोहासरे के इतिहास में मिलते हैं। पहला, एक फ्रांसीसी अफ़सर, लेफ्टिनेण्ट दी तेरानो, जिसने रुपये लेकर दरिया की ओर का मार्ग अंगरेज़ों के लिए खोल दिया और दूसरा, हुगली का हिन्दोस्तानी फ़ौजदार, महाराजा नन्दकुमार, जिसे सिराजुद्दौला ने समाचार पाते ही एक बहुत बड़ी सेना सहित फ्रांसीसियों की सहायता और चन्द्रनगर की भारतीय प्रजा की रक्षा के लिए पहले से चन्द्रनगर भेज दिया था, किन्तु जिसे ऐन मौक़े पर अमीचन्द के धन ने अंगरेज़ों की ओर खींच लिया। फ्रांसीसी विश्वासघातक विषय में एक यूरोपियन लेखक, ब्लाकमैन लिखता है :

> **"तेरानो को, जो कि इस विश्वासघात के सबब बदनाम और 'रू-स्याह' हो गया था, अपनी कृतघ्नता के बदले में अंगरेज़ों से बहुत बड़ी रकम प्राप्त हुई। उसनें इस धन का एक भाग अपनें घर फ्रान्स में अपनें बूढ़े कमज़ोर बाप के पास भेजा, किन्तु बाप नें जब अपनें बेटे के इस लज्जास्पद व्यवहार का हाल सुना, तब उसनें धन वापस कर दिया। इस पर तेरानो को बड़ी ग़ैरत आई। शर्म नें 'उसका पल्ला पकड़ लिया', उसनें अपने तई मकान के अन्दर बन्द कर लिया ; चन्द रोज़ के बाद उसका शरीर मकान के दरवाज़े पर एक तौलिए से लटका हुआ मिला। जाहिर था कि उसने आत्महत्या कर ली है।"***

दूसरे, यानी भारतीय विश्वासघातक के विषय में स्क्रैफ़टन और थार्नटन, दोनों ने अपने ग्रन्थों में साफ़ लिखा है कि अंग्रेज़ों ने अमीचन्द की मार्फ़त नन्दकुमार को रिश्वत

*"Notes on Sirajuddowls, Journal of the Asiatic Society, 1867.

दी और अंगरेज़ी सेना के पहुंचने पर फ्रांसीसियों और भारतीय प्रजा, दोनों को अरक्षित छोड़ कर नन्दकुमार अपनी तमाम सेना सहित चन्द्रनगर से हट गया। सिलेक्ट कमेटी की 10 अप्रैल, सन् 1757 की रिपोर्ट में अमीचन्द और नन्दकुमार, दोनों को धन्यवाद देते हुए यह भी साफ़ लिखा है कि—"यदि दीवान नन्दकुमार की सेना न हटा ली गई होती, तो हमारे लिए विजय प्राप्त कर सकना असम्भव होता।"

चन्द्रनगर की विजय अंग्रेज़ों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुई। इससे बंगाल के अन्दर फ्रान्सीसियों का बल टूट गया और नवाब से अन्तिम निबटारा करने के लिए अंग्रेज़ों का मार्ग अधिक साफ़ हो गया।

सिराजुद्दौला को धमकी

वाटसन ने अपने 25 फ़रवरी के उस पत्र में, जिसका ऊपर जिक्र आ चुका है, सिराजुद्दौला को लिखा था कि—"आप ख़ातिरजमा रखिए, मैं सदा अपना धर्म समझ कर शान्ति कायम रखूंगा।" इसी पत्र में उसने लिखा था कि यह अफ़वाह, कि अंग्रेज़ फ्रान्सीसियों पर हमला करने वाले हैं, बिल्कुल झूठ है। किन्तु इसके चन्द रोज़ बाद ही जब सिराजुद्दौला ने 9 फ़रवरी की सन्धि के अनुसार वाटसन से सेना की सहायता मांगी, तब उत्तर में वाटसन ने, तैयारी करके और मौक़ा देखकर, सिराजुद्दौला को लिखा कि—

> **"कुछ दिन हुए, मैंने पिछले महीने की 20 तारीख को आपके पत्र का उत्तर दे दिया है। मैं समझता हूं, वह अब तक आपको मिल गया होगा। उसे पढ़ कर आपको पूरी तरह विश्वास हो गया होगा कि फ्रान्सीसी वकील का यह कहना, कि मेरा इरादा शान्ति भंग करने का है, झूठ है ××× ।**
>
> **" ××× किन्तु अब साफ़ कहने का समय आ गया है। यदि आप वास्तव में अपने देश में शान्ति रखना चाहते हैं और अपनी प्रजा को आपत्ति और बरबादी से बचाना चाहते हैं, तो आज के दस दिन के अन्दर अपनी ओर से सन्धि की हरेक शर्त को पूरा कर दीजिए, ताकि मुझे शिकायत का जरा भी मौक़ा न मिल सके, नहीं तो याद रहे, नतीजों के लिए आप जिम्मेदार होंगे ; ××× चन्द रोज़ के अन्दर मैं ××× और अधिक जहाज और सेना मंगा लूंगा और आपके मुल्क में ऐसी आग लगा दूंगा कि गंगा का तमाम जल भी उसे बुझा न सकेगा।"**

सिराजुद्दौला की सच्चाई

वाटसन ने अब अपना असली रूप धारण कर लिया। 9 फ़रवरी के सुलहनामे में सिराजुद्दौला ने यह वादा किया था कि अंगरेज़ों की तमाम कोठियां और माल उन्हें वापस दे दिया जाएगा और जिन अंगरेज़ों का नुकसान हुआ है, उनको सरकार की तरफ़ से हरज़ाना दे दिया जाएगा। ये वे शर्तें थीं, जिन्हें वाटसन ने "दस दिन के अन्दर" पूरा करने पर अब ज़ोर दिया। मामूली अदालतों की डिगरियों की कार्रवाई होने में भी काफ़ी देर लगती है। क्लाइव के नीचे लिखे पत्र से जाहिर है कि सिराजुद्दौला पूरी ईमानदारी और काफ़ी जल्दी के साथ अपने वादों को पूरा कर रहा था। 30 मार्च को चन्द्रनगर से क्लाइव ने एक पत्र में लिखा :

"सिराजुद्दौला ने जो सन्धि हमारे साथ की थी, उसकी अधिकांश शर्तें वह पूरी कर चुका है। तीन लाख रुपये वह हमें अदा कर चुका है और बहुत सा माल और धन हमारी अनेक मातहत कोठियों में हमारे पास जमा कराया जा चुका है और मुझे कोई सन्देह नहीं कि नवाब के तमाम वादे ठीक समय पर पूरे कर दिए जाएंगे।"*

इसके अलावा, 9 फ़रवरी के सुलहनामे में कोई ऐसा वाक्य न था कि इतने समय के अन्दर हरेक शर्त पूरी हो जानी चाहिए। इसलिए अब वाटसन का सिराजुद्दौला को यह लिखना कि दस दिन के अन्दर सब शर्तें पूरी हो जानी चाहिएं, केवल फिर से लड़ाई शुरू करने का एक बहाना ढूंढ़ना था। उधर सिराजुद्दौला ने सेना की जो सहायता मांगी थी, उसका जवाब तब तक नहीं दिया गया।

सिराजुद्दौला ने गम्भीरता के साथ वाटसन को उत्तर दिया :

"कुछ दिन हुए, आपने मुझे पत्र लिखा था, उसका उत्तर में दे चुका हूं। जो कुछ मैंने (दिल्ली सम्राट के विषय में) लिखा है, उस पर ग़ौर करके कृपा कर मुझे जल्दी जवाब भेजिए। मैं इस बात पर पक्का और जमा हुआ हूं कि जो सन्धि हमने आपस में की है, उसकी शर्तों पर कायम रहूं, किन्तु होली की छुट्टियों की वजह से, जिनमें मेरे बनिये (खज़ान्ची आदि) और मन्त्री दरबार में नहीं आते, मुझे उन शर्तों पर कार्रवाई मुलतवी करनी पड़ी। होली खतम होते ही जिन-जिन बातों पर मैंने दस्तखत किए हैं, उन्हें ठीक-ठीक पूरा कर दूंगा। आप समझ सकते हैं कि इस देरी का कोई इलाज नहीं × × × में जो सन्धि एक बार कर लेता हूं, उसे तोड़ना मेरे यहां का रिवाज नहीं है, इसलिए आप तसल्ली रखिए कि जो सन्धि मैंने अंगरेजों के साथ की है, उसे टालने का मैं प्रयत्न न करूंगा × × ×।

"आप यक़ीन रखिए कि यदि कोई शख्स या गिरोह आपसे लड़ने की कोशिश करेगा या आपसे दुश्मनी का व्यवहार करेगा, तो मैं ख़ुदा की क़सम खा चुका हूं कि मैं आपकी मदद करूंगा। फ्रान्सीसियों को मैंने कभी एक कौड़ी भी नहीं दी और जो सेना मैंने हुगली भेजी है, वह वहां के फ़ौजदार नन्दकुमार के पास भेजी गई है। फ्रान्सीसी कभी आपसे लड़ाई छेड़ने का साहस न करेंगे और मैं विश्वास करता हूं कि पुराने रिवाज को क़ायम रखते हुए गंगा प्रान्त के अन्दर या उन प्रान्तों में, जिनका मैं सूबेदार हूं, आप भी किसी तरह की लड़ाई न छेड़ेंगे।"†

अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

इसके बाद ज्यों ही सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि उसे मदद देने के बहाने अंगरेज़ सेना कलकत्ते से चल कर वास्तव में चन्द्रनगर पर हमला करने जा रही है, उसने फ़ौरन

*"He (Sirajuddowla) has fulfilled most of the articles of the treaty made with us. The three lacs of rupees are already paid and goods and money to a considerable amount delivered up to us at our several subordinates, and I make little doubt but that all his engagements will be duly executed."—Clive's letter to the Select Committee, dated 30th March, 1757.—*Bengal Records*, vol. ii, p. 308.

†Ive's *Voyages*, pp. 124, 125.

अंगरेज़ों को लिख भेजा : "मुझे अब आपकी मदद की ज़रूरत नहीं है।" किन्तु नवाब की इस आज्ञा और अलीनगर की सन्धि, दोनों के खिलाफ़ अंगरेज़ी सेना नवाब के मुल्क और उसकी रिआया, दोनों को रोंदती हुई चन्द्रनगर की ओर बढ़ी। मार्ग में स्थान-स्थान पर उन्होंने सिराजुद्दौला की भारतीय प्रजा पर खूब जी खोलकर अत्याचार किया। उधर अंगरेज़ एलची वाट्स मुर्शिदाबाद में बैठा हुआ नित्य नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश कर रहा था। जब अंगरेज़ी सेना के अत्याचारों की ख़बर सिराजुद्दौला के कानों तक पहुंची, तब उसने दुखी होकर 22 मार्च, सन् 1757 को एडमिरल वाट्सन के नाम यह पत्र भेजा :

सिराजुद्दौला की सद्भावनाएं

"मैंने जो कुछ वादा किया है और दस्तखत किए हैं, उस पर मैं पक्का रहूंगा और किसी तरह भी उससे न हटूंगा। वाट्स साहब की इच्छाएं और जो कुछ उन्होंने मुझसे कहा, मैंने सब पूरा कर दिया और जो कुछ बाक़ी है, वह भी इस चांद की पन्द्रह तारीख तक दे दिया जाएगा। वाट्स साहब ने ये सब बातें मुफ़स्सिल तौर पर आपको लिखी होंगी। किन्तु बावजूद इन सबके मुझे अनेक बातों से मालूम होता है कि आप मेरे साथ अपनी सन्धि को मिटा देना चाहते हैं। हुगली, इंगली, बर्धमान और नदिया के इलाक़ों को आपकी सेना ने वीरान कर डाला है। यह क्यों? इसके अलावा गोविन्दराम मित्र ने रामदीन घोष के लड़के की मार्फ़त (हुगली के फ़ौजदार) नन्दकुमार को लिख भेजा है कि कालीघाट का इलाका कलकत्ते के ज़िले में शामिल है, इसलिए वह गोविन्दराम के हवाले कर दिया जाए। इसका क्या अर्थ है? ××× आपके वादों पर विश्वास करके मैंने सुलह की थी, ताकि देश का भला हो और दोनों ओर की सेनाओं द्वारा शाही इलाक़ों की बरबादी न हो, न कि इसलिए कि प्रजा को पांव तले कुचला जाए और सरकारी मालगुज़ारी में बाधा पड़े।

"आपकी कोशिश यह होनी चाहिए कि जो मित्रता हमारे-आपके बीच जड़ पकड़ गई है, वह दिन-प्रतिदिन मज़बूत होती जाए ×××।"

मुर्शिदाबाद में वाट्स की साजिशें

एक ओर भोला सिराजुद्दौला बराबर इन विदेशियों के साथ अमन से रहने का स्वप्न देख रहा था, दूसरी ओर क्लाइव और वाट्सन की सलाह से मुर्शिदाबाद के दरबार में बैठा हुआ वाट्स सिराजुद्दौला को बंगाल की गद्दी से उठाकर किसी दूसरे को उसकी जगह बैठाने की साज़िशों में लगा हुआ था। इतिहास लेखक एस० सी० हिल लिखता है :

"अंगरेज़ एलची की थैली अधिक लम्बी थी, इसलिए वह न केवल दरबार के खास-खास आदमियों, बल्कि नवाब के मन्त्रियों पर भी प्रभाव जमा सका। चतुर तथा दूरअन्देश अमीचन्द से उसे खूब सहायता मिली।"*

अमीचन्द की थैली ही इस समय अंगरेज़ों की थैली थी। जिन भारतीय देशद्रोहियों ने इस साज़िश में अंगरेज़ों का साथ दिया, उनमें मुख्य राजा मानिकचन्द, राजा राजवल्लभ,

*"The British agent, having the deeper purse, was able to influence not only the leading men at court, but the secretaries, and was much assisted by foresighted cunning of Aminchand..........."—*Bengal Records*, vol. i, p. clxxvii.

राजा दुर्लभराम, मीर जाफ़र और दो जैन सेठ थे। इनमें से हर एक अपना-अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता था। जैन सेठ दो भाई थे, जो शाही ख़ज़ान्ची, तमाम सूबे के सरकारी साहुकार और शाही टकसालों के ठेकेदार थे। ये लोग अपने किसी स्वार्थ के लिए सिराजुद्दौला के एक मुलाज़िम, यारलुत्फ़ खां को गद्दी पर बैठाना चाहते थे। किन्तु मीर जाफ़र सिराजुद्दौला के नाना अलीवरदी खां का बहनोई था, उसका प्रभाव अधिक था, इसलिए अंगरेज़ उसे नवाब बनाना चाहते थे। 26 अप्रैल तक वाट्स ने मीर जाफ़र को राज़ी कर क्लाइव को पत्र लिखा कि––"मीर जाफ़र और उसके साथी नवाब को गद्दी से उतारने में अंगरेज़ों को मदद देने के लिए तैयार हैं" और यह भी लिखा :

"यदि आप इस दूसरी तजवीज़ को पसन्द करें, जो उस तजवीज़ की निस्बत, जो मैं इससे पहले लिख चुका हूं, ज्यादा आसान है, तो मीर जाफ़र चाहता है कि आप अपनी तजवीज़ें लिख भेजें कि आप कितना धन और कितनी जमीन चाहते हैं और सन्धि की क्या शर्तें होंगी।"*

क्लाइव के दोरुखे पत्र

क्लाइव ने इस समय फिर दोरुखी चाल चली : एक ओर उसने सिराजुद्दौला को धोके में रखने के लिए उसे एक अत्यन्त प्रेमभरा पत्र लिखा और दूसरी ओर मीर जाफ़र के लिए वाट्स की असली बात का जवाब दिया। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मैकाले लिखता है :

"क्लाइव नें सिराजुद्दौला को इतनें प्रेमभरे शब्दों में पत्र लिखा कि उन शब्दों के धोखे में आकर वह निर्बल नरेश फिर कुछ समय के लिए अपनें तईं पूरी तरह सुरक्षित समझनें लगा। क्लाइव अपनें इस पत्र को 'सांत्वना देनें वाला पत्र' कहता है। जो हरकारा इस पत्र को लेकर गया, वही एक दूसरा पत्र वाट्स साहब के नाम लेकर गया, जिसमें लिखा था : 'मीर जाफ़र से कह दो कि किसी बात से न डरे। मैं पांच हजार ऐसे सिपाही लेकर, जिन्होंनें कभी पीठ नहीं दिखाई, उससे आ मिलूंगा। उसे विश्वास दिला दो कि मैं दिन-दिन भर और रात-रात भर चल कर उसकी मदद के लिए पहुंचूंगा और जब तक मेरे पास एक आदमी भी बचेगा, तब तक उसका साथ न छोड़ूंगा'।"†

फ़्रांसीसियों के साथ सन्धि का उल्लंघन

किन्तु चन्द्रनगर अंगरेज़ों के हाथों में आ जाने के समय से सिराजुद्दौला का हृदय बहुत कुछ सशंक हो गया था। चन्द्रनगर की विजय के बाद अंगरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के

*"If you approve of this scheme, which is more feasible than the other, I wrote about, he (Mir Jaffir) requests you will write your proposals of what money, what land you want or what treaties you will engage in."—Watts' letter to Calcutta dated 26th April, 1757.

†"He (Clive) wrote to Sirajuddowla in terms so affectionate that they for a time lulled that weak prince into perfect security. The same courier who carried this 'Soothing letter', as Clive calls it, carried to Mr. Watts a letter in the following terms : Tell Mir Jaffir to fear nothing. I will join him with five thousand men who never turned their backs. Assure him, I will march night and day to his assistance, and stand by him as long as I have a man left.' "—Macaulay's *Essay on Clive*.

दरम्यान जो सन्धि हुई थी, उसके विरुद्ध अंगरेज़ों ने सिराजद्दौला के सामने अब यह एक और नई मांग पेश की कि क़ासिमबाज़ार, ढाका, पटना, जूदा, बालेश्वर, इत्यादि में फ्रान्सीसियों की जितनी कोठियां हैं और जितने फ्रान्सीसी आपके राज में हैं, उन सबको आप हमारे सुपुर्द कर दें। फ्रान्सीसियों को बंगाल के अन्दर कोठियां बनाने और व्यापार करने की इजाजत ठीक उसी तरह दिल्ली सम्राट से मिली हुई थी, जिस तरह अंगरेज़ों को। अभी तक फ्रान्सीसियों ने न कभी सम्राट या उसके सूबदार की किसी आज्ञा को भंग किया था और न उन्हें किसी तरह का कष्ट पहुंचाया था। इसलिए अंगरेज़ों की इस बेजा मांग के उत्तर में सिराजद्दौला ने 14 अप्रैल को वाटसन को लिखा कि :

"मैं पहले भी लिख चुका हूं और फिर लिखता हूं यदि अंगरेज कंपनी अपना व्यापार क़ायम करना चाहती है, तो मुझे कोई ऐसी बात न लिखी जाए, जो हमारी संधि के अनुकूल न हो, × × × अगर आप मुझ से लड़ाई करना नहीं चाहते, तो मेरी मोहर लगी हुई और मेरी दस्तख़ती संधि आपके पास है, जब कभी पत्र लिखना हो, उसे देख कर उसके अनुसार लिखिए × × × ।

"यदि आप शांति क़ायम रखना चाहते हैं, तो संधिपत्र के विरुद्ध कोई बात न लिखिए"*

मीर जाफ़र के साथ गुप्त संधि

किन्तु इस दरम्यान वाटसन, क्लाइव, वाट्स और मीर जाफ़र के बीच साज़िश क़रीब-क़रीब पक चुकी थी। 4 जून, सन 1757 ई० को आधी रात के बाद एक जनाना पालकी में बैठकर चोरी-चोरी वाट्स ने मीर जाफ़र के महल में प्रवेश किया। उसी रात को मीर जाफ़र ने अंगरेज़ों के साथ एक गुप्त सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए।

इस सन्धिपत्र का 13 शर्तों का सार इस प्रकार है :

जितने अधिकार सिराजद्दौला ने अंगरेज़ों को दे रखे थे, मीर जाफ़र सूबेदार बनने पर उन सबको क़ायम रखे। अंगरेज़ और मीर जाफ़र, दोनों में से किसी की जब कभी किसी तीसरे के साथ लड़ाई हो, तो दूसरा उसकी मदद करे। तमाम फ्रान्सीसी और उनकी कोठियां अंगरेज़ों के हवाले कर दी जाएं और फ्रान्सीसियों को बंगाल में न रहने दिया जाए। कलकत्ते की तबाही के हरज़ाने में और लड़ाई के खर्च के लिए मीर जाफ़र कम्पनी को एक करोड़ रुपये दे। इसके अलावा, अलग-अलग लोगों के नुक़सानों के लिए कलकत्ते के अंगरेज़ बाशिन्दों को 50 लाख, हिन्दू बाशिन्दों को 20 लाख और आरमीनियन बाशिन्दों को 7 लाख रुपये दिए जाएं। कलकत्ते के ख़न्दक़ के अन्दर और बाहर चारों ओर 600 गज़ तक की ज़मीन अंगरेज़ों को दे दी जाए, साथ ही कलकत्ते के दक्षिण में हुगली नदी और नमक की झीलों के दरम्यान कालपी (बंगाल) तक तमाम इलाक़े की ज़मीनदारी अंगरेज़ों को दे दी जाए। जब कभी अपनी रक्षा के लिए नवाब को अंगरेज़ी सेना की ज़रूरत हो, नवाब उसका खर्च अदा करे। हुगली के नीचे, दरिया के ऊपर नवाब किसी तरह की क़िलबन्दी न करे। गद्दी पर बैठने को तीस दिन के अन्दर मीर जाफ़र इन शर्तों को पूरा कर दे और जब तक वह इस सन्धि के अनुसार चलता रहेगा, कम्पनी उसके शत्रुओं का दमन करने में मदद देती रहेगी।

---

*Ive's *Voyages*, p. 142.

दोनों ओर से सेनाओं का कूच

साज़िश पूरी तरह पक चुकी थी, किन्तु वाट्स और कई अंगरेज़ अभी तक मुर्शिदाबाद में मौजूद थे। लड़ाई का खुला एलान करने से पहले उन्हें वहां से हटा लेना ज़रूरी था।

12 जून की शाम को बागों में हवाखोरी करने* के बहाने वाट्स और उसके अंगरेज़ साथियों ने नवाब से इजाज़त ली और रातोरात वे मुर्शिदाबाद से भाग निकले। अगले दिन जब सिराजुद्दौला को इस छल का पता चला, तो उसने क्लाइव और वाटसन को इस घटना की सूचना देते हुए दुख के साथ लिखा :

> **" ××× इससे साफ़ धोखा साबित होता है और संधि तोड़ने का इरादा जाहिर होता है ×××।**
>
> **"ख़ुदा का शुक्र है कि संधि मेरी ओर से भंग नहीं की गई। ख़ुदा और रसूल के सामने हमने आपस में सुलह की थी और जो कोई पहले उसका उल्लंघन करेगा, अपने किए की सजा पाएगा।"**

निस्सन्देह, सिराजुद्दौला और उसके विपक्षियों के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर था। भोले सिराजुद्दौला ने क्लाइव के 'प्रेमभरे पत्रों' पर विश्वास करके हाल ही में अपनी आधी सेना तक बरखास्त कर दी थी।

12 जून को मीर जाफ़र की ओर से कलकत्ते पत्र पहुंचा, जिसमें लिखा था कि "यहां सब काम तैयार है।" अगले दिन, यानी 13 जून को अंगरेज़ी सेना ने कलकत्ते से कूच किया।

सिराजुद्दौला को भी अब मजबूर होकर अपनी सेना मैदान में निकालनी पड़ी। सिराजुद्दौला की इतनी बेपरवाही और उसका आत्मविश्वास झूठा न था। सिराजुद्दौला की सेना अब भी क्लाइव और उसकी सारी सेना को थोड़े-से समय के अन्दर निर्मूल कर देने के लिए काफ़ी थी। किन्तु वही मीर जाफ़र इस समय सिराजुद्दौला का प्रधान सेनापति था। पुराने हिन्दोस्तानी रिवाज के अनुसार सिराजुद्दौला स्वयं मीर जाफ़र के महल में पहुंचा और उससे अपनी पिछली भूलों के लिए क्षमा मांग कर प्रेम की प्रार्थना की। मीर जाफ़र ने कुरान हाथ में लेकर सिराजुद्दौला के सामने वफ़ादारी की कसम खाई। सिराजुद्दौला को अविश्वास का कोई सबब न हो सकता था।

प्लासी की लड़ाई

मुर्शिदाबाद से 20 मील दूर पलाश वृक्षों का एक वन था, जिसे पलाशी बाग भी कहते थे। उसी वन के पास पलाशी या प्लासी के मैदान में बृहस्पतिवार, 23 जून, सन् 1757 ई० को दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ। प्रधान सेनापति मीर जाफ़र के अलावा सिराजुद्दौला की सेना में तीन और मुख्य सेनापति थे—यारलुत्फ़ खां, राजा दुर्लभराम और मीर मुमउद्दीन, जिसे मीर मदन भी कहते थे। 45,000 सेना मीरजाफ़र, यारलुत्फ़ खां और राजा दुर्लभराम के अधीन थी, 12,000 मीर मदन के अधीन। सिराजुद्दौला का एक ख़ास प्रेमपात्र, मोहनलाल भी मीर मदन के साथ था। थोड़ी

*Ive's *Voyages*, p. 145.

ही देर के युद्ध में क्लाइव की कायरता और अकुशलता, दोनों साफ चमकने लगीं। विजय साफ़ सिराजुद्दौला की ओर नज़र आती थी। ऐन उस मौक़े पर मीर जाफ़र का रुख बदलता हुआ दिखाई दिया। कर्नल मालसेन लिखता है कि ख़बर पाते ही सिराजुद्दौला ने अपना सन्देह दूर करने के लिए मीर जाफ़र को अपने पास बुलवाया। उसने मीर जाफ़र को अपने और मीर जाफ़र के संबध और अपने नाना अलीवरदी खां की याद दिलाई। इसके बाद, अपनी पगड़ी सर से उतार कर सिराजुद्दौला ने मीर जाफ़र के सामने ज़मीन पर फेंक दी और कहा —"मीर जाफ़र, इस पगड़ी की लाज तुम्हारे हाथों में है।" मीर जाफ़र ने बड़े आदर के साथ पगड़ी उठा कर सिराजुद्दौला के हाथों में दी और अपने दोनों हाथ छाती पर रख कर, बड़ी गम्भीरता के साथ फिर एक बार झुक कर, सिराजुद्दौला की वफ़ादारी की कसम खाई। मीर जाफ़र उस समय अपनी आत्मा और सिराजुद्दौला, दोनों को जान-बूझ कर धोखा दे रहा था। वह विश्वासघात पर कमर-कस चुका था। सिराजुद्दौला के सामने से हटते ही उसने फ़ौरन एक पत्र द्वारा क्लाइव को इस तमाम घटना की सूचना दी।

सिराजुद्दौला की सेना में मीर जाफ़र ही अकेला विश्वासघातक न था। वास्तव में, उसकी अधिकांश सेना विश्वासघातकों से छलनी-छलनी हो चुकी थी। राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ खां भी अपने नई शत्रु के हाथ बेच चुके थे। ऐन मौक़े पर, जब कि विजय सिराजुद्दौला के पैरों के पास खेलती दिखाई देती थी, मीर जाफ़र, राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ खां, तीनों अपनी 45,000 सेना सहित मुड़कर अंगरेज़ों की ओर जा मिले। थोड़ी देर बाद सिराजुद्दौला का एक मात्र वफ़ादार सेनापति मीर मदन भी मैदान में काम आया। कर्नल मालेसन लिखता है कि जब तक मीर मदन ज़िन्दा रहा, वह अपने केवल 12,000 सेना से तीनों विश्वासघातकों के प्रयत्नों को निष्फल करता रहा। उसके जीते जी अंगरेज़ी सेना के लिए अपने पैर जमा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु मीर मदन की मृत्यु से सिराजुद्दौला लाचार हो गया। उसका दिल टूट गया। आज तक प्लासी गांव के लोग मीर जाफ़र की दग़ा और मीर मदन की वफ़ादारी, दोनों का अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में ज़िक्र करते हैं।

थोड़े-से रक्तपात के बाद, 23 तारीख की शाम तक असहाय सिराजुद्दौला को अपने हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की ओर भागना पड़ा। मैदान क्लाइव और मीर जाफ़र के हाथों रहा।

सुप्रसिद्ध अंगरेज इतिहास-लेखक कर्नल मालेसन उस दिन की लडाई के विषय में लिखता है :

> **"केवल उस समय, जब कि विश्वासघातकता अपना काम कर चुकी, जब कि विश्वासघातकता नें नवाब को मैदान से बाहर निकाल दिया, जब कि विश्वासघातकता नवाब की सेना को ऊंचे और दुर्जेय स्थान से हटा चुकी, केवल उस समय क्लाइव आगे बढ़ सका, इससे पहले क्लाइव के आगे बढ़ने से उसका (और उसकी सेना का) नेस्तनाबूद हो जाना असन्दिग्ध था।"***

*"It was only when treason had done her work, when treason had driven the Nawab from the field, when treason had removed his army from its commanding position, that Clive was able to advance without the certainty of being annihilated."—Colonel Malleson in *Decisive Battles India,* p. 73.

मीर जाफ़र का पाप

क्लाइव ने अपनी सेना सहित पास के गांव दादपुर में रात गुज़ारी। शुक्रवार 24 ता० को सवेरे क्लाइव ने मीर जाफ़र को अपने खेमे में बुलाया। मीर जाफ़र अपने बेटे मीरन को लेकर क्लाइव के खेमे में पहुंचा। मालूम होता है, मीर जाफ़र का पाप इस समय उसकी छाती पर सवार था। सम्भव है, क्लाइव की ओर से मीर जाफ़र को दिल में दग़ा का डर रहा हो। क्लाइव के सामने पहुंचते ही ठीक उस समय, जब कि गारद उसकी पेशवाई के लिए आगे बढ़ी, मीर जाफ़र घबरा कर चौंक पड़ा। उसका चेहरा एकदम स्याह पड़ गया। क्लाइव ने फ़ौरन उसे गले लगा कर "तीनों प्रान्तों का सूबा" कह कर सलाम किया। मीर जाफ़र संभला। क्लाइव ने उसे विश्वास दिलाया कि अंगरेज़ धर्म समझकर अपने वादों को पूरा करेंगे। इसके बाद, क्लाइव ने उसे सिराजुद्दौला का पीछा करने की सलाह दी। फ़ौरन वहां से कूच कर 25 तारीख़ को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुंचा।

सिराजुद्दौला फ़क़ीरी भेष में

एक दिन पहले, यानी 24 ता० को सवेरे सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुंच चुका था। सिराजुद्दौला का ख़जाना लबालब भरा हुआ था। धन को पानी की तरह बहा कर उसने फिर एक बार फ़ौज खड़ी करने और किस्मत आज़माने का प्रयत्न किया। किंतु प्लासी की पराजय की खबर सारे देश में बिजली की तरह फैल चुकी थी · सिराजुद्दौला के इक़बाल का सूर्य अब अस्त हो रहा था और अस्त होने वाले सूर्य की पूजा कोई नहीं करता। सिराजुद्दौला ने देख लिया कि अब कोई मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं है। उसके कुछ दरबारियों ने उसे सलाह दी कि आप हार मान कर विदेशियों के साथ सन्धि कर लें, किंतु उस वीर ने अत्यन्त तिरस्कार के साथ इस सलाह को ठुकरा दिया। अन्त में देश-द्रोही मीर जाफ़र के आने की ख़बर सुनकर और कोई चारा न देख कर 24 जून की आधी रात को सिराजुद्दौला केवल अपने तीन अनुचरों सहित महल की एक खिड़की से होकर फ़क़ीर के वेष में भगवान भोला नामक नगर की ओर निकल गया।

25 जून को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुंचा। उसके पीछे-पीछे 26 को क्लाइव अपनी सेना सहित मुर्शिदाबाद आया। किन्तु तीन दिन तक क्लाइव मुर्शिदाबाद के बाहर लगभग छै मील दूर सय्यदाबाद की फ्रान्सीसी कोठी में ठहरा रहा। उसके अपने पत्र से ज़ाहिर है कि वह इस समय एकाएक मुर्शिदाबाद में प्रवेश करने से डरता था।

29 ता० को मीर जाफ़र से समय निश्चित करके 200 गोरे और 500 हिन्दोस्तानी सिपाहियों सहित विजयी क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश किया। कुछ दिनों के बाद क्लाइव ने पार्लियामेंट की कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा :

> **"नगर के लोग, जो उस अवसर पर तमाशा देख रहे थे, कई लाख अवश्य रहे होंगे और यदि वे चाहते, तो लकड़ियों और पत्थरों से हम यूरोपियन लोगों को वहीं खत्म कर सकते थे।"***

*"That the inhabitants, who were spectators upon that occasion, must have amounted to some hundred thousands; and if they had an inclination to have destroyed the Europeans, they might have done it with sticks and stones."—Clive's Evidence before the Parliamentary Committee.

यह अनुमान करना अब निरर्थक है कि यदि मुर्शिदाबाद के बाशिन्दे उस समय ऐसा कर बैठते, तो भारत के बाद के इतिहास ने किस ओर पलटा खाया होता। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय क्लाइव ने नवाब मीर जाफ़र के एक पक्ष-समर्थक की हैसियत से मुर्शिदाबाद में प्रवेश किया। यदि नगर-निवासियों को उस समय क्लाइव के वास्तविक रूप का पता होता, यदि उन्हें मालूम होता कि क्लाइव और उसके साथी इन चालों से अन्दर-ही-अन्दर भारत की आज़ादी छीनने की कोशिशें कर रहे हैं, तो सम्भव है, नगर-निवासियों का व्यवहार क्लाइव के साथ कुछ दूसरा होता। किन्तु अभी तो विश्वास-घातक मीर जाफ़र की आंखें खुलने में भी देर थी।

मुर्शिदाबाद : उस समय और आज

मुर्शिदाबाद की उस समय की हालत के बारे में क्लाइव लिखता है :

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है, जितना कि लन्दन शहर; फ़रक इतना है कि लन्दन के धनाढ्य-से-धनाढ्य मनुष्य पास के जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बेइन्तहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेक के पास मौजूद है।"

आज (1929) मुर्शिदाबाद भागीरथी नदी के तट पर 35,000 मनुष्यों की एक छोटी-सी-बस्ती है, जिसकी आबादी प्रति वर्ष घटती जा रही है और जिसमें यात्रियों के देखने के लिए पुराने महलों के खण्डहर और कुछ कब्रें रह गई हैं। उद्योग-धन्धों में वहां पर रेशमी कपड़ों की बुनाई, हाथी दांत का काम और कपड़े पर सोने-चांदी के काम अभी तक प्रसिद्ध हैं, किन्तु अब अरसे से ये सब धन्धे भी मृतप्राय हो रहे हैं।

मीर जाफ़र का गद्दी पर बैठाया जाना

29 ता० का तीसरा पहर मीर जाफ़र के गद्दी पर बैठाए जाने के लिए नियत था। मालूम होता है, उसकी आत्मा भीतर से अशान्त थी। ऐन मौक़े पर उसने सिराजुद्दौला की गद्दी पर बैठने से इन्कार कर दिया। क्लाइव को उसका हाथ पकड़ कर उसे गद्दी पर बैठाना पड़ा। पहले क्लाइव नए नवाब के सामने आकर आदाब बजा लाया और फिर बाकी दरबारियों ने दरजा-बदरजा सलामियां दीं।*

मुर्शिदाबाद की लूट

कम्पनी और उसके मददगारों के लिए अब मुर्शिदाबाद के ख़जाने से अपनी-अपनी जेबें भरने का समय आया। ख़जाने की जांच-पड़ताल के लिए एक दिन नियत किया गया। यह काम दोनों जैन जगतसेठों के सुपुर्द किया गया। क्लाइव और उसके साथियों ने जब देखा कि मुर्शिदाबाद के खज़ाने की हालत, जो उन्होंने सुन रखी थी, अब वह न थी, तो वे इस बात पर राज़ी हो गए कि मीर जाफ़र ने जितना धन उन्हें देने का वादा किया था, उसका आधा वह फ़ौरन अदा कर दे और आधा तीन साल के अन्दर तीन किस्तों में दे दे। क्लाइव का परम मित्र, अंगरेज़ इतिहास-लेखक औम लिखता है :

" × × × 6 जुलाई, सन् 1757 ई० तक (कलकत्ते की अंगरेज) कमेटी के पास चांदी के सिक्कों में 72,71,666 रुपये पहुंच गए। यह खज़ाना

*Clive's Letter to the Select Committee, dated 30th June, 1757.

सात सौ सन्दूकों में भर कर सौ किश्तियों पर लादा गया। सैनिकों की निगरानी में ये किश्तियां नदिया गई। वहां से (अंगरेज़ी) जंगी जहाज़ों की तमाम किश्तियों और अन्य किश्तियों को साथ लेकर, झंडे फहराते हुए और विजय का बाजा बजाते हुए आगे बढ़ी ××× इससे पहले कभी भी अंगरेज़ क़ौम को एक साथ इतना अधिक नक़द धन कहीं किसी लड़ाई में न मिला था।"*

अमीचन्द के साथ दग़ा

बंटवारे के समय छोटे-से-छोटे अंगरेज़ अफ़सर को कम-से-कम 45,000 रु० दिए गए; किन्तु अपने हिन्दुस्तानी मददगारों के साथ क्लाइव और उसके साथियों ने फिर एक बार दग़ा किया। इस तमाम साज़िश में आदि से अन्त तक मुख्य हिस्सा अमीचन्द का था। निस्सन्देह बिना अमीचन्द की सहायता के न बंगाल में अंगरेज़ों का व्यापार इतना बढ़ता, न वे चन्द्रनगर विजय कर सकते और न सिराजुद्दौला सूबेदारी की गद्दी से उतारा जा सकता। आज ही के दिन की आशा में अमीचन्द ने सिराजुद्दौला के भारतीय दरबारियों और मुलाज़िमों को विदेशी अंगरज़ों की ओर से रिश्वतें देने में अपने धन को पानी की तरह बहाया था। अमीचन्द ने अपनी आत्मा के साथ, अपने राजा और मालिक के साथ और अपनी क़ौम के साथ दग़ा किया, किन्तु अंगरेज़ों के साथ उसका व्यवहार बराबर सच्चा रहा। कहते है कि चोर-चोर आपस में एक दूसरे के साथ बड़ा सच्चा व्यवहार करते हैं; किन्तु क्लाइव, वाटसन इत्यादि का व्यवहार अमीचन्द के साथ इसके विपरीत रहा।

जो सन्धि अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र के साथ की, उसमें 13 शर्तें थीं। अमीचन्द का उनमें कहीं ज़िक्र न था? यह सन्धि सफ़ेद काग़ज पर लिखी हुई थी। उसी के साथ एक दूसरी जाली सन्धि 14 शर्तों की, लाल काग़ज पर लिख कर अमीचन्द को दिखाई गई थी, जिसमें एक 14वीं शर्त यह भी थी कि मीर जाफ़र को गद्दी दिए जाने के समय अमीचन्द को 30 लाख रु० नक़द और उसके अलावा नवाब के तमाम ख़जाने का पांच प्रतिशत दिया जाएगा। वाटसन ने इस जाली सन्धि पर दस्तखत करने से इनकार कर दिया था, किन्तु क्लाइव ने लूशिंगटन नामक एक शख्स के हाथ से वाटसन के जाली दस्तख़त उस पर बनवा दिए थे।

मीर जाफ़र के नवाब बन जाने के बाद एक दिन जगतसेठ के मकान पर जब पहली बार सन्धिपत्र पढ़ कर सुनाया गया, तो अमीचन्द चकित होकर चिल्ला पड़ा—"यह वह सन्धि नहीं हो सकती, जो मैंने देखी थी—वह लाल काग़ज पर थी।" इस पर क्लाइव ने शान्ति के साथ उत्तर दिया—"ठीक है अमीचन्द, किन्तु यह सन्धि सफ़ेद काग़ज पर लिखी हुई है।"†

---

*"..............The committee by the 6th of July, 1757 received in coined silver 72,71,666 rupees. This treasure was packed up in 700 chests and laden in 100 boats, which proceeded under the care of soldiers to Nadiya; from whence they were escorted by all the boats of the squadron and many others, proceeding with banners displayed and music sounding, of a triumphal procession.............. Never before did the English nation at one time obtain such a prize in solid money."—*Orme's History of Indoston,* vol. ii, pp. 187, 188.

†Clive's evidence before the Parliamentary Committee.

अमीचन्द के दिल पर इसका जबर्दस्त सदमा पहुँचा । बाद में स्वास्थ्य ठीक करने के लिए क्लाइव ने उसे तीर्थयात्रा की सलाह दी । वह तीर्थयात्रा के लिए गया, किन्तु इसी सदमे से डेढ़ साल के अन्दर अमीचन्द की मृत्यु हो गई ।

उन दिनों इंगलिस्तान में जालसाज़ी की सज़ा मौत थी। किन्तु क्लाइव ने पार्लियामेण्ट की कमेटी के सामने बड़े गर्व के साथ अपनी इस जालसाज़ी का ज़िक्र किया और उसके बदले में क्लाइव को 'लार्ड' की उपाधि दी गई, इंगलिस्तान में क्लाइव का बुत खड़ा किया गया और उसके सम्मान तथा प्लासी की लड़ाई की यादगार में तमग़े ढाले गए ।

सिराजुद्दौला की हत्या

चन्द रोज़ के अन्दर सिराजुद्दौला राजमहल नामक स्थान पर गिरफ्तार कर लिया गया। अपने उस वीर तथा शाही शत्रु के साथ कम्पनी का व्यवहार अत्यन्त लज्जाजनक रहा। 2 जुलाई को वह मुर्शिदाबाद लाया गया। कहा जाता है कि मीर जाफ़र उसे आदर के साथ मुर्शिदाबाद में नज़रबन्द रखना चाहता था । किन्तु उसी रात को मोहम्मद बेग नामक व्यक्ति ने सिराजुद्दौला को क़त्ल कर डाला। अगले दिन सिराजुद्दौला का कटा हुआ शरीर हाथी पर रख कर मुर्शिदाबाद की गलियों में घुमाया गया ।

फ़ारसी पुस्तक 'रियाज़ुस्सलातीन' का मुसलमान रचयिता लिखता है :

> **"अंगरेज़ सरदारों और जगतसेठ की साज़िश से सिराजुद्दौला को क़त्ल किया गया ।"**

सिराजुद्दौला की हत्या के दो दिन बाद क्लाइव ने सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र में बड़े गर्व के साथ अपने अंगरेज़ मालिकों को सूचना दी :

> **"महाशयगण, सिराजुद्दौला खतम हो चुका । नवाब उसकी जान बख्शना चाहता था, किन्तु नवाब के पुत्र मीरन और 'बड़े लोगों' नें देश के अमन के लिए उसे मार डालना जरूरी समझा, क्योंकि उसके शहर के पास आते ही जमींदार लोग बलवा करनें लगे थे ।"**

निस्सन्देह, इन 'बड़े लोगों' में सबसे मुख्य क्लाइव था ।

सिराजुद्दौला का चरित्र

क्लाइव और उसके साथियों के दुष्कृत्यों पर पर्दा डालने के लिए अंगरेज़ इतिहासलेखकों ने आम तौर पर झूठे इलज़ामों और नई-नई जालसाज़ियों द्वारा सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु सिराजुद्दौला की सचाई, उसकी वीरता, उसके सौजन्य, उसकी योग्यता, उसकी दयानतदारी और उसकी ईमानदारी में किसी तरह का भी सन्देह नहीं हो सकता। वास्तव में, उसकी योग्यता के कारण ही इंगलिस्तान के ईसाई 'व्यापारियों' ने अपने और अपनी क़ौम के भावी हित के लिए उसका नाश करना आवश्यक समझा। उसका वह ख़ज़ाना भी, जो चांदी, सोने और जवाहरात से लबरेज़ था, इन विदेशियों के लिए काफ़ी लालच की चीज़ थी। उसमें दोष भी गहरे थे, और वे दोष थे—विदेशियों की चालों को न समझ सकना, उन पर विश्वास और दया करना और बार-बार धोखा खाकर भी उनके साथ अमन से रहने की आशा करना। एक ओर सिराजुद्दौला के ये व्यक्तिगत दोष, दूसरी ओर भारतीय जनता में राजनैतिक जाग्रति

और उससे उत्पन्न होने वाले 'राष्ट्रीयता' के भावों की कमी और तीसरी ओर उच्च श्रेणी के भारतवासियों के चरित्र की लज्जास्पद स्वार्थपरता और विश्वासघातकता—इन तीनों ने मिल कर न केवल सिराजुद्दौला का ही अन्त कर दिया, वरन् सिराजुद्दौला की लाश के साथ-साथ भारत की आज़ादी को भी सदियों के लिए दफ़न कर दिया।

क़त्ल के समय सिराजुद्दौला की आयु 25 साल की भी न थी। समस्त अंगरेज़ इतिहास-लेखकों में शायद कर्नल मालेसन एक ऐसा है, जिसने सिराजुद्दौला के साथ इन्साफ़ करने की कोशिश की है। वह लिखता है :

"सिराजुद्दौला में और चाहे कोई भी दोष क्यों न रहा हो, उसने न अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेचा। इतना ही नहीं, वरन् कोई निष्पक्ष अंगरेज 9 फ़रवरी और 23 जून के बीच की घटनाओं पर इन्साफ़ से राय क़ायम करते हुए इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि शराफत के मयार पर सिराजुद्दौला का नाम क्लाइव के नाम से ऊंचा नजर आता है। उस शोकान्त नाटक के प्रधान पात्रों में से अकेला एक सिराजुद्दौला ही ऐसा था, जिसने कभी किसी को धोखा देने की कोशिश नहीं की।"*

प्लासी बाग़ का अन्त

इस परिस्थिति में और इस तरह के उपायों द्वारा प्लासी के सुप्रसिद्ध मैदान में हिन्दोस्तान के अन्दर अंगरेज़ी राज की नींव रखी गई, जिसका मुख्य श्रेय निस्सन्देह क्लाइव ही को मिलना चाहिए। सम्भवत: उस दिन की लज्जास्पद स्मृति को मिटाने के लिए या भारत में अंग्रेज़ी राज की जड़ों और उनकी याद को इंगलिस्तान में सुरक्षित कर देने के लिए, कुछ दिनों बाद उस समय के कम्पनी के अफ़सरों ने "पलाशी बाग़" के एक-एक वृक्ष का ठंठ और उनकी जड़ें तक खोद कर इंगलिस्तान पहुंचा दीं।

*"Whatever may have been his faults, Sirajuddowla had neither betrayed his master nor sold his country. Nay more, no unbiased Englishman sitting in judgment on the events which passed in the interval between the 9th February and the 23rd June can deny that the name of Sirajuddowla stands higher in the scale of honour than does the name of Clive. He was the only one of the principal actors in that tragic drama who did not attempt to deceive."—*Decisive Battles of India,* p. 71.

तीसरा अध्याय

मीर जाफ़र

हिन्दू–मुस्लिम पक्षपात का प्रारम्भ

विश्वासघात करनेवालों में उच्च मानसिक या नैतिक खूबियों का होना क़रीब-क़रीब नामुमकिन है । इसलिए कोई अचरज नहीं कि शासक की हैसियत से मीर जाफ़र अयोग्य, कमज़ोर और अदूरदर्शी साबित हुआ । इसके अलावा, वह अब क्लाइव और उसके अंगरेज़ साथियों के हाथों की कठपुतली था । क्लाइव की इच्छा के खिलाफ़ वह कोई काम न कर सकता था । मुर्शिदाबाद के एक हाज़िर तबीयत दरबारी ने मीर जाफ़र का नाम "कर्नल क्लाइव का गधा" रख छोड़ा था और मीर ज़ाफर की मृत्यु के समय तक यह उपाधि उसके साथ लगी रही । दिल्ली सम्राट का दरबार इस समय तक काफ़ी निर्बल हो चुका था । मालूम होता है कि सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद सुबेदारी बाज़ाब्ता दिल्ली दरबार से मीर जाफ़र को अता हो गई ।

सिराजुद्दौला का नाना अलीवरदी खां इस बात को समझता था कि प्रजा के सुख और खुशहाली को बढ़ाना और बिना मज़हबी भेदभाव के योग्य आदमियों को राज़ के ऊंचे-से-ऊंचे और ज़िम्मेदार ओहदों पर नियुक्त करना राजा का धर्म है और इसी से राज की जड़ें चिरस्थायी हो सकती हैं । इसलिए उसने अपनी सूबेदारी में क़रीब-क़रीब सब ऊंचे ओहदों पर हिन्दुओं को नियुक्त कर रखा था । सिराजुद्दौला भी अपने थोड़े से शासनकाल में और ऐसे कठिन समय में, जब कि उसे लगातार षड्यन्त्रों और साज़िशों का मुकाबला करना पड़ा, अपने नाना की इस उदार नीति का ठीक-ठीक पालन करता रहा । अलीवरदी खां और सिराजुद्दौला, दोनों अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक आंख से देखते थे और उनके साथ एक बराबर बर्ताव करते थे । किन्तु यह एक विचित्र बात है कि बंगाल के शासन में अंगरेज़ों का दखल शुरू होते ही मुसलमान सूबेदारों की यह नीति एकदम बदल गई । नवाब मीर जाफ़रअली खां ने मसनद पर बैठते ही हिन्दुओं को तमाम ऊंचे-ऊंचे ओहदों से हटा कर उनकी जगह अपने सहधर्मी भरने शुरू कर दिए । यह नीति मीर ज़ाफ़र और उसकी प्रजा, दोनों के लिए अहितकर, किन्तु अंगरेज़ों के लिए हितकर थी और इतिहास से ज़ाहिर है कि मीर जाफ़र इस मामले में क्लाइव और उसके साथियों के इशारे पर चल रहा था और उन्हीं की संगीनों के बल सब खेल खेल रहा था ।

सबसे पहले इन लोगों ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी के अधीन बड़े-बड़े प्रान्तों से हिन्दू नरेशों को हटा कर उनकी जगह मुसलमानों को नियुक्त करना शुरू किया।

राजा रामनारायन पर हमला

पहला हिन्दू नरेश, जिसे क्लाइव और मीर जाफ़र ने मिल कर मिटाना चाहा, बिहार प्रान्त का शासक राजा रामनारायन था । रामनारायन अलीवरदी खां के खास आदमियों में से था । अलीवरदी खां ने ही उसे बढ़ा कर इस ऊंचे ओहदे तक पहुंचाया था ।

अलीवरदी खां और सिराजुद्दौला, दोनों का रामनारायन सदा वफ़ादार रहा। सिराजुद्दौला के विरुद्ध जो साज़िश की गई, उसमें वह शामिल न था, यही उसका सबसे बड़ा अपराध था। किन्तु जब उसने सिराजुद्दौला के मारे जाने और मीर जाफ़र के गद्दी पर बैठने की ख़बर सुन ली, तब अपने प्रान्त में भी मीर जाफ़र की सूबेदारी का बाज़ाब्ता एलान करा दिया।

राजा रामनारायन पर अब यह इल्ज़ाम लगाया गया कि उसने फ्रान्सीसियों को अपने यहां पनाह दे रखी है और अवध के नवाब वज़ीर के साथ मिल कर वह मीर जाफ़र के ख़िलाफ साज़िश कर रहा है। निस्सन्देह, यह सब क़िस्सा केवल उसे बिहार की गद्दी से हटाने के लिए गढ़ा गया था।

6 जुलाई, सन् 1757 को क्लाइव के हुक्म से मेजर कूट 230 गोरे और क़रीब 300 हिन्दोस्तानी सिपाही लेकर मुर्शिदाबाद से पटने की तरफ रवाना हुआ। बहाना यह लिया गया कि यह सेना फ्रान्सीसियों का पीछा करने के लिए भेजी जा रही है। किन्तु 12 अगस्त को मेजर कूट के पास क्लाइव का एक पत्र पहुंचा, जिसमें क्लाइव ने उसे यह हिदायत दी कि तुम पटने पहुंच कर, मीर जाफ़र के एक भाई महमूद अमीन खां के साथ मिल कर रामनारायन को गद्दी से हटाने का प्रयत्न करो।

कूट पटने पहुंचा, किन्तु उस थोड़ी-सी सेना से रामनारायन को हरा सकना नामुमकीन था। राजा रामनारायन को भी मेजर कूट के नाम क्लाइव के पत्र की कुछ खबर मिल गई थी। उसने धीरज से काम लिया। समझौते की बातचीत शुरू हुई। 12 अगस्त को रामनारायन के महल में सभा हुई। जितने इल्ज़ाम रामनारायन पर लगाए गए थे, उन सबको उसने शान्ति के साथ झूठा साबित किया। कूट और महमूद अमीन के साथ मीर जाफ़र का दामाद मीर क़ासिम भी मौजूद था। अन्त में, एक ब्राह्मण को बुला कर सबकी मौजूदगी में राजा रामनारायन ने मीर जाफ़र को सूबेदार स्वीकार किया और उसकी वफ़ादारी की क़सम खाई। मीर क़ासिम और महमूद अमीन ने क़ुरान उठा कर अपने दिलों की सफ़ाई का एलान किया और फिर वे तीनों और मेजर कूट, सब एक-दूसरे से गले मिले। मेजर कूट अपनी सेना सहित 7 सितम्बर को पटने से चल कर सात दिन में मुर्शिदाबाद वापस पहुंच गया। किन्तु क्लाइव की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। राजा रामनारायन एक खासा ज़बर्दस्त नरेश था। क्लाइव का असली उद्देश्य उसके बल को तोड़ना था। इसलिए रामनारायन पर अभी और मुसीबतों का आना बाकी था।

राजा रामरम सिंह पर हमला

दूसरा हिन्दू नरेश, जिस पर मीर जाफ़र और क्लाइव की नज़र गई, उड़ीसा का राजा रामरम सिंह था। उड़ीसा भी बिहार के समान बंगाल के सूबेदार के अधीन था। क्लाइव जिस समय मुर्शिदाबाद में था, मीर जाफ़र ने राजा रामरम सिंह को अपने प्रान्त की मालगुज़ारी का हिसाब समझाने के बहाने मुर्शिदाबाद बुलावा भेजा। रामरम सिंह को संदेह हुआ। उसने ख़ुद न आकर अपने एक भाई और एक भतीजे को हिसाब की किताबों समेत मुर्शिदाबाद

भेज दिया । ये दोनों मुर्शिदाबाद पहुंचते ही कैद कर लिए गए । राजा रामरम सिंह का सन्देह सच्चा साबित हुआ । रामरम सिंह साहसी था, वह यह भी समझता था कि मुर्शिदाबाद के दरबार की असली बाग क्लाइव के हाथों में है। उसने फ़ौरन मीर जाफ़र के इस व्यवहार की शिकायत करते हुए क्लाइव को लिखा : "मैंने एक ज़बर्दस्त सेना जमा कर ली है, जिसमें 2,000 सवार और 5,000 पैदल हैं और यदि नया नवाब मुझे गिरफ्तार करने या दबाने के लिए सेना भेजने की ग़लती करेगा, तो मैं उसके मुकाबले के लिए काफी हूं। किन्तु यदि आप मध्यस्थ होकर मेरी सलामती का ज़िम्मा लें, तो मैं खुद आकर मीर ज़ाफ़र से मिलने और एक लाख रुपये नज़राना पेश करने के लिए तैयार हूं।"

क्लाइव समझ गया कि रामरम सिंह से भिड़ना अभी ठीक नहीं। क्लाइव के कहने पर रामरम सिंह के दोनों रिश्तेदार तुरन्त छोड़ दिए गए और उड़ीसा की गद्दी पर रामरम सिंह को बहाल रखा गया।

राजा युगल सिंह पर हमला

तीसरा हिन्दू नरेश, जिसके बल को क्लाइव और मीर जाफ़र ने तोड़ने का इरादा किया, पूर्णिया का राजा युगल सिंह था । सिराजुद्दौला ने अपने रिश्तेदार शौकतजंग की मृत्यु पर युगल सिंह को उस प्रान्त का हाकिम नियुक्त किया था। मीरजाफ़र युगल सिंह को हटा कर उसकी जगह अपने एक आदमी, ख़ुद्दामहुसैन को वहां का नवाब बनाना चाहता था। युगल सिंह मुकाबले के लिए तैयार हो गया। कम्पनी और सूबेदार की सेनाओं ने मिल कर पूर्णिया पर चढ़ाई की। युगल सिंह गिरफ्तार कर लिया गया और खुद्दामहुसैन पूर्णिया की गद्दी पर बैठा दिया गया।

राजा दुर्लभराम पर हमला

इसके बाद मीर ज़ाफ़र ने अपने हाल के मददगार, राजा दुर्लभराम को मिटाना चाहा। राजा दुर्लभराम मुर्शिदाबाद के दरबार में माल के महकमे का हाकिम था। मीर ज़ाफर के ऊपर उसके अनेक अहसान थे। सिराजुद्दौला के खिलाफ़ साज़िश में उसने अंगरेज़ों और मीर जाफ़र को मदद दी थी। किन्तु उसका बल और प्रभाव, दोनों खूब बढ़े हुए थे। इसीलिए उसके नाश की तदबीरें सोची गईं। वह कमर कस कर मुक़ाबले को तैयार हो गया। अंगरेज़ उसके असर को देख कर डर गए। तुरन्त स्वयं वाट्स ने बीच में पड़ कर मीर जाफ़र और दुर्लभराम, दोनों में सुलह करवा दी।

इस तमाम छेड़छाड़ से क्लाइव का मुख्य उद्देश्य बंगाल के तमाम पुराने और बडे-बडे घरानों के बल को तोड़ना, मीर जाफ़र को आम लोगों में अप्रिय बना देना और सूबेदारी भर में अंग्रेज़ों के बल और प्रभाव की धाक जमा देना था।

राजा रामनारायन पर चढ़ाई

राजा रामनारायन पर एक विशाल सेना लेकर दोबारा चढ़ाई करने की तजवीज़ की गई। अफ़वाह उड़ी या उड़ाई गई कि अलीवरदी खां की बूढ़ी बेवा ने अवध के नवाब वज़ीर को पत्र लिखा है कि आप आकर मीर जाफ़र के विरूद्ध रामनारायन को मदद दें। क्लाइव और मीर जाफ़र के लिए केवल चंद महीने पहले की सन्धि और दोनों ओर की क़समों को मिट्टी में मिला कर अब फिर बिहार प्रान्त पर चढ़ाई करना और

रामनारायन को ज़ेर करना ज़रूरी हो गया। क्लाइव ने इस बहाने से 50,000 सेना जमा कर ली। मीर जाफ़र को डर दिखला कर उससे धन खींचने का भी क्लाइव को यह अपूर्व अवसर दिखाई दिया। किन्तु मीर जाफ़र की माली हालत इस समय बहुत खराब थी। अव्वल तो मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की जो दशा उसने प्लासी से पहले समझ रखी थी, वह प्लासी के बाद न निकली; इस ख़जाने की आशा पर ही उसने अंगरेज़ कम्पनी को अलग और क्लाइव और उसके अनेक साथियों को व्यक्तिगत हैसियत से अलग बड़ी-बड़ी रकमें देने के वादे कर रखे थे। इसमें अधिकांश वह इस समय तक दे भी चुका था। दूसरे, इन्हीं रकमों के कारण उसकी स्थिति इतनी खराब हो चुकी थी कि फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें उसके ज़िम्मे चढ़ गई थीं, जिससे फ़ौज में बदअमनी बढ़ती जा रही थी।

मीर जाफ़र से धन की वसूली

लाचार होकर मीर जाफ़र ने अंगरेज़ों से यह प्रार्थना की कि कम्पनी का जो देना मेरे ज़िम्मे बाक़ी रह गया है, उसमें कुछ कमी कर दी जाए। मालूम होता है कि क्लाइव ने उसे इसकी आशा भी दिखा रखी थी। इसी उद्देश्य से मीर जाफ़र ने कई बार बड़ी-बड़ी रकमें बतौर रिश्वत क्लाइव को भेट कीं। इन रकमों के सम्बन्ध में सन् 1772 ई० में पार्लिमेंट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए क्लाइव ने कहा था कि—"नवाब की दरियादिली ने मुझे सहज ही धनवान बना दिया है।"*

किन्तु कमी करना तो दूर रहा, ऐन उस मौके पर, जब कि बिहार पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी हो गई, क्लाइव ने कम्पनी की एक-एक पाई चुकवाए बिना क़दम उठाने से इन्कार कर दिया। पिछली रक़मों के अलावा और भी नई-नई रक़में इस अवसर पर मीर जाफ़र से तलब की गईं। क्लाइव का बल इस समय तक खूब बढ़ चुका था। उसके पास पचास हज़ार सेना मीर जाफ़र को कुचल देने के लिए मौजूद थीं। मीर जाफ़र को तरह-तरह के डर दिखाए गए। उसे लाचार होकर झुकना पड़ा। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि इस अवसर पर—

> **"एक रक़म सेना के ग़ैरमामूली खर्चों के लिए वसूल कर ली गई। जो ज़मीनें कम्पनी को दी गई थीं, उनके परवानें बाक़ायदा जारी करा लिए गए। (दरबार से) हुक्म जारी कराए गए कि नवाब के पहले छैं महीनें के क़र्ज़ की तमाम बक़ाया रक़म तुरन्त चुका दी जाए। बाक़ी तमाम क़र्ज़ों को चुकाने के लिए उस समय तक, जब तक कि क़र्ज़ा पूरा न हो जाए, बर्धमान, नदिया और हुगली, तीन ज़िलों की सरकारी मालगुज़ारी कम्पनी के नाम करा ली गई। क्लाइव नें कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम 8 फ़रवरी, सन् 1758 के पत्र में लिखा: 'इससे अब हमारे क़र्ज़ का चुकाया जाना नवाब के हाथों से बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया है' × × ×।"†**

---

*"The Nawab's generosity had made his fortune easy."—Clive before the Parliamentary Committee in 1777.

†"A supply of money was procured for the extraordinary expenses of the Army: the perwannah, or grant of lands yielded to the Company, was passed

याद रखना चाहिए कि इस 'क़र्ज़' में एक कौड़ी ऐसी न थी, जो कम्पनी ने या किसी अंगरेज़ ने कभी मीर जाफ़र को सचमुच कर्ज़ दी हो। यह वह धन था, जो मीर जाफ़र ने गद्दी के बदले में अंगरेज़ों को देने का वादा कर लिया था।

राजा रामनारायन से समझौता

क्लाइव और मीर जाफ़र अब 50,000 सेना के साथ पटना की ओर बढ़े। चार महीने से ऊपर यह भारी सेना मैदान में रही। इसका सारा खर्च मीर जाफर पर पड़ा। किन्तु गोली एक भी न चलने पाई। क्लाइव इस समय मीर जाफ़र को खासा चकमा दे रहा था। रामनारायन जैसे आदमी को सदा के लिए अपना शत्रु बना लेना अंगरेजों के लिए हितकर न था। क्लाइव का उद्देश्य इस समय रामनारायन पर कम्पनी के बल का सिक्का जमाना, उसे मीर जाफ़र की ओर से सशंक कर देना, उससे धन वसूल करना और अन्त में स्वयं मध्यस्थ बन कर रामनारायन के हक़ में फ़ैसला करा देना मालूम होता था।

23 फ़रवरी, सन् 1758 को पटना में दरबार हुआ। क्लाइव ने मध्यस्थ का आसन लिया। मीर जाफ़र का बेटा मीरन नाम के लिए बिहार का नवाब बनाया गया और शासन का तमाम अधिकार मीरन के नायब की हैसियत से ज्यों का त्यों राजा रामनारायन के हाथों में छोड़ दिया गया। इस अनुग्रह के बदले में रामनारायन से 7 लाख रुपये नक़द वसूल किए गए। इतिहास-लेखक औमें लिखता है कि—"क्लाइव की जो मुराद थी, वह सब पूरी हो गई।"* कुछ दिनों के बाद एक पत्र में क्लाइव ने रामनारायन को "अंगरेज़ों का पक्का हितसाधक" लिखा है।

क्लाइव अपने मालिकों को भी नहीं भूला। उन दिनों जितना शोरा बंगाल में बिकता था, सब पटने से ऊपर के प्रदेश में तैयार होता था। क्लाइव ने अब नवाब पर ज़ोर देकर शोरा तैयार कराने का ठेका कम्पनी के नाम हासिल कर लिया, जिससे कम्पनी की आमदनी और बढ़ गई और शोरा बनाने वाले सब देसी कारीगर अंगरेज़ों के मजदूर और उनकी रिआया बन कर रह गए।

मई, सन् 1758 ई० में क्लाइव मुर्शिदाबाद लौटा। कुछ दिनों बाद मीर जाफ़र भी अपनी राजधानी वापस आ गया।

शहजादे अलीगौहर की बिहार यात्रा

मीर जाफ़र और रामनारायन, दोनों पर अब एक नई आफ़त टूटी। जिस तरह मीरन केवल नाम के लिए बिहार का नवाब बना दिया गया था, उसी तरह एक अरसे

---

in all its forms; orders were issued for the immediate discharge of all arrears on the first six months of the Nawab's debt, and the revenues of Burdwan, Nuddea and Hugli assigned over for payment of the rest; 'So that', says Clive, writing (8th February, 1758) to the Court of Directors, 'the discharge of the debt is now become independent of the Nawab..........."—Malcolm's *Life of Clive*, vol. i, p. 338.

*Orme, vol. ii, p. 283.

से दिल्ली सम्राट के बड़े बेटे को नाममात्र के लिए 'बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार' कहा जाता था। शहज़ादे का यह ख़िताब केवल एक मानसूचक ख़िताब था और मुर्शिदाबाद के क्रियात्मक सूबेदार सम्राट के अधीन सूबेदारी के सब फ़र्ज अदा करते थे। अब शहज़ादा अलीगौहर अपने इस ख़िताब को सार्थक करने के लिए सेना सहित बंगाल की ओर बढ़ा। बंगाल की हाल की बग़ावत, अंगरेज़ों और मीर जाफ़र के अन्याय और प्रजा की शोकजनक हालत की खबर सम्राट के दरबार तक पहुंच चुकी थी। शहज़ादे के आने का इन बातों के साथ अवश्य कुछ-न-कुछ सम्बन्ध था। मीर जाफ़र शहज़ादे के आने का समाचार पाते ही डर गया। उसने क्लाइव से फ़ौरन मदद चाही। शहज़ादा उस समय तक पटने पहुंच चुका था और रामनारायन ने अपनी वफ़ादारी और विनम्र व्यवहार से शहज़ादे को प्रसन्न कर लिया था। कहते हैं, क्लाइव और मीरन के पहुंचने पर मुर्शिदाबाद की सेना और शहज़ादे की सेना में कुछ लड़ाई भी हुई। मालूम नहीं, इस लड़ाई का होना कहां तक सच है। मुर्शिदाबाद की सेना का शहज़ादे की ज़बर्दस्त सेना पर विजय प्राप्त कर सकना नामुमकिन था। उस समय के उल्लेखों से ज़ाहिर है कि क्लाइव ने शहज़ादे के सामने अपनी सम्राट भक्ति का पूरा प्रदर्शन किया और शहज़ादे को अपनी ओर कर लिया। अन्त में कुछ समझौता हो गया। शहज़ादा अपनी सेना सहित दिल्ली की ओर लौट गया और मीर जाफ़र का डर कुछ समय के लिए दूर हो गया।

क्लाइव की जागीर

मुर्शिदाबाद पहुंच कर इस नए अहसान के बदले में क्लाइव ने मीर जाफर से अपने लिए साम्राज्य के 'उमरा' का ख़िताब और एक जागीर हासिल की। जो जमींदारी कलकत्ते के आसपास कम्पनी को मिली हुई थी, उसके मालिकाने के रूप में कम्पनी को हर साल तीन लाख रुपये नवाब की सरकार में जमा कराने पड़ते थे। अब से यह सब ज़मींदारी 'क्लाइव की निजी जागीर' बन गई और बजाय मुर्शिदाबाद की सरकार के क्लाइव खुद इस तीन लाख सालाना का कम्पनी से हक़दार हो गया। क्लाइव इस समय एक हिन्दोस्तानी नवाब बना हुआ था।

क्लाइव की इस 'जागीर' का, जिसे अपने असहाय 'गधे' मीर जाफ़र से हथिया लेना उसके लिए कुछ भी कठिन न था, अंगरेज़ इतिहास-लेखक बड़े अभिमान के साथ जिक्र करते हैं।

सबसे धनवान अंगरेज़

बंगाल की गद्दी के बदले में मीर जाफ़र ने जितना धन अंग्रेज़ों को देने का वादा किया था, उसकी एक-एक पाई वसूल की जा चुकी थी। व्यापार के लिए बंगाल में अनेक नई रिआयतें कम्पनी को नवाब से मिल चुकी थीं और इन बाक़ायदा रिआयतों के अलावा अनेक चीज़ों की तिजारत का ठेका कम्पनी ने ज़बर्दस्ती अपने हाथों में ले रखा था। तीनों प्रान्तों में अंगरेजों के छल और बल, दोनों का सिक्का जम चुका

था । क्लाइव, जो कुछ साल पहले एक निर्धन क्लर्क की हैसियत से भारत आया था, इस समय शायद संसार में सबसे अधिक धनवान अंगरेज़ था । इस तरह बहुत हद तक अपना मतलब पूरा कर फ़रवरी, सन् 1760 में क्लाइव अपनी जन्मभूमि, इंगलिस्तान के लिए रवाना हो गया ।

भारत में अंगरेज़ी राज क़ायम करने की क्लाइव की योजना

किन्तु अपनी क़ौम के लिए क्लाइव की इच्छाएं और उमंगें अभी बेहद बढ़ी हुई थीं । उसके नीचे लिखे पत्र से मालूम होता है कि भारत में अंगरेज़ी राज क़ायम करने के विषय में क्लाइव का दिमाग़ किस तरह काम कर रहा था । 7 जनवरी, सन् 1759 को इंगलिस्तान के प्रधानमंत्री विलियम पिट के नाम क्लाइव ने यह पत्र लिखा :–

"अंगरेज़ी फ़ौज की कामयाबी के ज़रिए एक महान क्रान्ति इस देश में की जा चुकी है । उस क्रान्ति के बाद एक सन्धि की गई है, जिससे कम्पनी को बड़े जबरदस्त फ़ायदे हुए हैं । मुझे मालूम है कि इन सब बातों की तरफ़ एक दर्जे तक अंगरेज क़ौम का ध्यान आकर्षित हो चुका है । किन्तु मौक़ा मिलने पर अभी बहुत कुछ और किया जा सकता है, बशर्ते कि कम्पनी इस तरह के प्रयत्नों में लगी रहे, जो उसके आज कल के इतने बड़े इलाके और आगे की ज़बर्दस्त सम्भावनाओं, दोनों के अनुरूप हों । मैंने कम्पनी को अत्यन्त ज़ोरदार शब्दों में इस बात की जरूरत दरशा दी है कि उन्हें इतनी सेना हिन्दोस्तान भेज देनी चाहिए और बराबर हिन्दोस्तान में रखनी चाहिए, जिससे वे अपने इस समय के धन और इलाक़े को और बढ़ाने के सबसे पहले मौक़े से फ़ायदा उठा सके । दो साल की मेहनत और तजरबे से मैंने इस देश की हकूमत के बारे में और यहां के लोगों के स्वभाव के बारे में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूं कि इस तरह का मौक़ा जल्दी ही फिर आने वाला है । मौजूदा सूबेदार × × × बूढ़ा है, और उसका नौजवान बेटा इतना ज़ालिम और निकम्मा है और अंगरेज़ों का इतना खुला दुश्मन है कि इस नवाब के बाद उसे गद्दी पर बैठने देना क़रीब-क़रीब ख़तरनाक होगा । केवल दो हज़ार यूरोपियनों की छोटी-सी सेना हमें इन दोनों की ओर से बेखटक कर देगी और यदि इनमें से कोई हमारे साथ लड़ने की हिम्मत करेगा, तो इस सेना द्वारा हकूमत की पूरी बाग हम खुद अपने हाथों में ले सकेंगे ।

"हिन्दोस्तान के लोगों को अपने राजाओं के साथ किसी तरह का प्रेम नहीं है, इसलिए इस तरह का काम कर डालने में हमें और भी कम कठिनाई होगी ।

"किन्तु मुमकिन है, इतना बड़ा राज एक तिजारती कम्पनी के लिए बहुत जियादा हो जाए और मुझे डर है कि बिना अंगरेज़ क़ौम की सहायता के अकेली कम्पनी इतने बड़े राज को संभाल नहीं सकती × × × खूब सोचने की बात है कि यह तमाम नक़्शा बिना अपनी मातृभूमि पर खर्च का बोझ डाले पूरा किया जा सकता है, जब कि अमरीका में अपना राज क़ायम करने के लिए इंगलिस्तान को बेहद खर्च बरदाश्त करना पड़ा था । इंगलिस्तान से एक छोटी-सी सेना इस लिए काफ़ी होगी, क्योंकि हम जब अपने काले सिपाही चाहें, यहां जमा कर सकते

हैं ××× मैं केवल इतना और कहूंगा कि मैंने सिवाय आपके और किसी को यह बात नहीं लिखी और मैं आपको भी कष्ट न देता, यदि मुझे इस बात का विश्वास होता कि अपनी क़ौम के फ़ायदे की जो तजवीज़ भी आपके सामने रखी जाएगी, आप उसका अच्छी तरह स्वागत करेंगे।"*

बंगाल के अन्दर, बल्कि आम तौर पर भारत के अन्दर अंगरेज़ों की उस समय की योजनाओं का यह ख़ासा सुन्दर और सच्चा चित्र है। इस पत्र से यह भी साबित है कि अंगरेज इस समय बंगाल में मीर ज़ाफ़र और मीरन, दोनों के खिलाफ़ दूसरी बग़ावत खड़ी करने का फैसला कर चुके थे।

मीरन की दूरदर्शिता

मीरन एक समझदार युवक था। अंगरेज़ों की चालों और नीयत को वह इस समय तक खासा पहचान गया था। मीर ज़ाफ़र भी इन लोगों की दोस्ती से बेज़ार हो चला था। खास कर मीरन अपने बाप को अक्सर सलाह दिया करता था कि किसी तरह इन लोगों के पंजे से निकलने की कोशिश की जाए। यही वजह थी की क्लाइव "गद्दी पर मीरन को बैठने देना खतरनाक" समझता था।

---

*"The great revolution that has been effected here by the success of the English arms, and the vast advantages gained to the Company by a treaty concluded in consequence thereof, have, I observe, in some measure engaged the public attention; but more may yet in time be done, if the Company will exert themselves in the manner of the importance of their present possessions and future prospects deserves. I have represented to them in the strongest terms the expediency of sending out and keeping up constantly such a force as will enable them to embrace the first opportunity of further aggrandising themselves; and I dare pronounce, from a thorough knowledge of the Country Government, and of the genius of the peoples acquired from two years' application and experiences, that such an opportunity will soon occur. The reigning Soubah....................is advanced in years; and his son is so cruel, worthless a young fellow, and so apparently an enemy to the English, that it will be almost unsafe trusting him with the succession. So small a body as two thousand Europeans will secure us against any apprehensions from either the one or the other; and in case of their daring to be troublesome, enable the Company to take the sovereignty upon themselves.

"There will be less difficulty in bringing about such an event, as the natives themselves have no attachment whatever to particular princes..............

"But so large a sovereignty may possibly be an object too extensive for a mercantile company; and it is to be feared they are not of themselves able, without the nation's assistance, to maintain so wide a dominion...........It is well worthy of consideration, that this project may be brought about without draining the mother country, as has been too much the case with our possessions in America. A small force from home will be sufficient, as we always make sure of any number we please of black troops..............I shall only further remark, that I have communicated it to no other person but yourself; nor shall I have troubled you, Sir, but from a conviction that you will give a favourable reception to any proposal intended for the public good."--Malcolm's *Life of Clive,* vol. ii, pp. 119 *et seq.*

क्लाइव के बाद 'ब्लैक होल' के किस्से का गड़नेवाला मशहूर जालसाज हालवेल कलकत्ते का गवर्नर नियुक्त हुआ। पांच महीने बाद, जुलाई, सन् 1760 में हेनरी वन्सीटार्ट ने उसकी जगह ली। केलो (Cailland) बंगाल में कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ।

सम्राट शाह आलम की बंग-यात्रा

सन् 1759 के अन्त में शहज़ादे अलीगौहर ने दूसरी बार बिहार पर फ़ौजकशी की। इस बीच बंगाल की अफ़सोसनाक हालत की अनेक शिकायतें मुग़ल दरबार तक पहुंच चुकी थीं। इसके सिवा नाम को तो बंगाल अभी तक सम्राट के अधीन था, किन्तु आए दिन की बग़ावतों के सबब बंगाल से दिल्ली खिराज जाना कई साल से बन्द था। इन शिकायतों को दूर करना और शाही खिराज वसूल करना शहज़ादे की इस चढ़ाई का उद्देश्य था।

शहज़ादे की सेना ने अभी बिहार प्रान्त में कदम रखा ही था कि शहज़ादे को सम्राट आलमगीर द्वितीय की मृत्यु का समाचार मिला। शहज़ादा अलीगौहर अब दिल्ली से बाहर होते हुए भी, शाह आलम द्वितीय के नाम से सम्राट एलान हुआ और भारत सम्राट ही की हैसियत से उसने अब बिहार में प्रवेश किया। शाह आलम अब मुग़ल साम्राज्य का अनन्य अधिपति था। उसकी फ़रमाबरदारी हर सूबेदार, तमाम प्रजा और यूरोपीय व्यापारियों, सब पर वाजिब थी। किन्तु अंगरेज़ों की नीति उसकी तरफ़ कुछ अजीब रही। एक तरफ़ उन्होंने मीर ज़ाफर और मीरन, दोनों पर इस बात के लिए ज़ोर दिया कि आप लोग अपनी सेना सहित पटने पहुंच कर सम्राट का मुक़ाबला कीजिए और सम्राट की सेना के बिहार में प्रवेश करते ही कर्नल केलो फ़ौरन अपनी सेना लेकर कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा और वहां से मीरन के अधीन नवाब की कुछ सेना साथ लेकर 18 जनवरी, सन् 1760 को सम्राट की सेना के मुक़ाबले के लिए पटने की ओर रवाना हुआ। दूसरी तरफ़ अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र और मीरन दोनों से ऊपर-ही-ऊपर सम्राट शाह आलम से गुप्त बातचीत शुरु कर दी।

सम्राट के खिलाफ़ खुली बग़ावत

अंगरेज़ों का अब शाह आलम से लड़ने के लिए तैयार हो जाना इतिहास-लेखक मिल के शब्दों में 'खुली बग़ावत' थी।* गवर्नर हालवेल यह भी लिखता है कि—"शाह आलम ने अंगरेज़ों की सब शर्तें मंजूर कर लेने की रज़ामन्दी प्रकट की।"† मालूम नहीं, ये क्या शर्तें थीं और बाद को उनका क्या हुआ?

कर्नल केलो ने अपने पत्रों में इस बात की शिकायत की है कि मीरन ने सम्राट के विरुद्ध केलो का वैसा साथ नहीं दिया, जैसा केलो चाहता था। निस्सन्देह, मीर जाफ़र और मीरन, दोनों सम्राट से लड़ने के खिलाफ़ थे, किन्तु केलो उन्हें लड़ाना चाहता था।

*"To oppose him was undisguised rebellion." Mill, vol. iii, p. 202.
†Ibid.

इस पर एक ओर अंगरेज़ों और दूसरी ओर उन दोनों में खासा मतभेद हो गया। अंग्रेज़ों और मीरन में पहले से भी भीतर-ही-भीतर बदगुमानी बढ़ रही थी।

मुर्शिदाबाद की सेना के पहुंचने से पहले ही 'अंग्रेज़ों का पक्का हितसाधक' रामनारायन अपनी सेना लेकर शाह आलम के मुकाबले के लिए पटने से बाहर निकला। इस मामले में वह पूरी तरह अंगरेज़ों के हाथों में खेल गया। सम्राट की सेना ने उसे हरा दिया, ज़ख्मी करके पीछे हटा दिया और पटने का मोहसारा शुरू कर दिया। 15 फ़रवरी को केलो और मीरन की सेनाएं पटने पहुंची। सम्राट और अंग्रेज़ों में गुप्त पत्र-व्यवहार पहले से जारी था। सम्राट की सेना मोहासरे से हट गई। 22 फ़रवरी को दिल्ली और बंगाल की सेनाओं में थोड़ी-सी लड़ाई हुई, जिसमें मीरन के कुछ चोट आई। न जाने अंग्रेज़ों ने सम्राट को क्या समझाया कि सम्राट की सेना अब खुद-ब-खुद वहां से मुड़ कर मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ी। मीरन सम्राट की सेना का पीछा करने के खिलाफ था, किन्तु केलो ने 29 फ़रवरी, सन् 1760 को उसे पटना छोड़ने पर मजबूर किया। मालूम होता है, मीरन और मीर ज़ाफर, दोनों को एक दर्जे तक मजबूरन अंगरेज़ों के इशारे पर चलना पड़ता था। 4 अप्रैल को केलो और मीरन की सेना मीर ज़ाफर की सेना से आ मिली। 6 अप्रैल को, जब कि दिल्ली और बंगाल की सेनाएं एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ गईं, केलो ने मीर जाफ़र पर फिर ज़ोर दिया कि आप सम्राट की सेना पर हमला कीजिए, किन्तु मीर जाफ़र और मीरन ने मंज़ूर न किया। तीन दिन के अन्दर सम्राट की सेना फिर उसी रास्ते बिहार की ओर लौट गई।

इस समय अंगरेज़ों की ओर से क्या-क्या गुप्त साज़िशें अन्दर-ही-अन्दर चल रहीं थीं, इस बात की कुछ झलक कम्पनी के डाइरेक्टरों के एक सरकारी पत्र से मिलती है, जिसमें डाइरेक्टरों ने लिखा है कि कुछ अंगरेज़ों ने ही कर्नल केलो पर यह इल्ज़ाम लगाया था कि इस मौके पर उसने गुप्त तरीके से सम्राट को मरवा डालने का भी उद्योग किया था, किन्तु वह सफल न हो सका।

शाह आलम की अनिश्चितता

कर्नल केलो खुद मीर जाफ़र और मीरन की सेनाओं के साथ उन्हीं के खेमों में ठहरा रहा और कप्तान नाक्स को उसने कुछ सेना सहित पटने की ओर भेजा। यह सब वृत्तान्त हम कर्नल केलो के बयान के आधार पर दे रहे हैं। मीरन और मीर जाफ़र, दोनों को इस तरह नज़रबन्द रखने का एक सबब यह भी था कि अंग्रेज़ों को डर था कि कहीं मीरन और मीर जाफ़र अंग्रेज़ों के खिलाफ़ सम्राट से न मिल जाएं और अंग्रेज़ सम्राट से अपनी बातचीत का उन्हें पता लगने देना न चाहते थे। सम्राट की सेना के सामने या तो पहले से कोई निश्चित कार्यक्रम न था और या शाह आलम को राजधानी के खाली होने के कारण दिल्ली लौटने की जल्दी थी। जो कुछ रहा हो, दो बार पटने पर चढ़ाई करके कप्तान नाक्स के पहुंचते ही न जाने सम्राट और अंग्रेज़ों में क्या बातचीत हुई कि सम्राट की इतनी ज़बरदस्त सेना शहर का मोहासरा छोड़ कर दिल्ली की ओर लौट गई।

मीरन की हत्या

कहा जाता है कि पूर्णिया का नवाब खुद्दामहुसैन, जिसे मीर जाफ़र ने दो साल पहले युगल सिंह की जगह वहां का नवाब नियुक्त किया था, अब अपनी सेना सहित मीर जाफ़र के खिलाफ़ सम्राट की सहायता के लिए आ रहा था। कैलो और मीरन उसके मुक़ाबले के लिए बढ़े। मीरन पूर्णिया के नवाब से लड़ना न चाहता था, किन्तु अंग्रेज़ मीरन को पूर्णिया के नवाब से लड़ा कर पूर्णिया के नवाब का भी नाश करना चाहते थे। कम्पनी की सेना और पूर्णिया की सेना में कुछ लड़ाई हुई, किन्तु केलो का बयान है कि मीरन ने इस काम में अंग्रेज़ों को मदद न दी, इसलिए अकेले अंग्रेज़ पूर्णिया के नवाब पर विजय प्राप्त न कर सके। 2 जुलाई तक कैलो और मीरन की सेनाएं साथ-साथ नवाब पूर्णिया की सेना के पीछे-पीछे चलती रहीं। खुद्दामहुसैन पर दोबारा अकेले हमला करने की कैलो की हिम्मत न थी और मीरन इसमें कैलो का साथ देने को किसी तरह राज़ी न था। कैलो और मीरन में बदगुमानी बढ़ी। 2 जुलाई की आधी रात को मीर जाफ़र का बेटा और मुर्शिदाबाद का युवराज, मीरन, एकाएक अपने बिछौने पर मरा हुआ पाया गया। कह दिया गया कि मीरन पर बिजली गिर पड़ी। सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सामने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया कि यह कैसी विचित्र बिजली थी। जिस खेमे के नीचे मीरन सो रहा था, उस पर या उसके कपड़े पर बिजली का ज़रा भी असर नहीं हुआ और उसके नीचे सोया हुआ मीरन मर गया। बिजली के गिरने की आम तौर पर बड़ी जबर्दस्त आवाज़ होती है, जो मीलों तक सुनाई देती है। किन्तु जो बिजली मीरन पर गिरी, उससे खेमे के चारों ओर सोए हुए लाखों सिपाहियों और दूसरे आदमियों में से किसी एक की भी आंख न खुली। मीरन उस समय सचमुच अंग्रेज़ों के पहलू में एक कांटा था। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि मीरन को मार डाला गया और इस हत्या में कैलो का खास हाथ था। इस हत्या के ठीक एक महीने बाद हालवेल ने नए अंग्रेज़ गवर्नर वन्सीटार्ट को लिखा :

> **"दरबार में एक दल खड़ा हो गया था, जिसके दो नेता नवाब का बेटा मीरन और राजा राजवल्लभ थे। ये लोग अंग्रेज़ों के जुए को अपने कंधों पर से हटाने के लिए रोज़ तदबीरें सोचा करते थे और लगातार नवाब पर ज़ोर देते रहते थे कि जब तक यह न हो सकेगा, तब तक नवाब की हकूमत केवल एक नाम की हकूमत रहेगी।"***

सारी सेना को पटने लौटा लाया गया और पटने लौट आने तक मीरन की मौत को उसकी सेना से छिपा कर रखा गया।

बंगाल की दर्दनाक हालत

बंगाल और वहां की प्रजा की हालत इस समय बड़ी दर्दनाक थी। मुसलमान

*"A party was soon raised at the Durbar, headed by the Nawab's son, Miran and Raja Rajebullab, who were daily planning schemes to shake off their dependence on the English, and continually urging to the Nawab, that until this was effected his government was a name only."—*First Report*, 1772, Appendix 9, p. 225.

इतिहास-लेखक मौलवी बदरुद्दीन अहमद उस समय की हालत को बयान करते हुए लिखता है :

"कम्पनी और उसके ख़ास-ख़ास मुलाज़िमों से अलग-अलग जो बड़े-बड़े वादे कर लिए गए थे, उन्हें पूरा करने में नाज़िम (मीर जाफ़र) के खजाने का एक-एक सिक्का दिया जा चुका था। बंगाल दिवालिया हो चुका था और तेज़ी के साथ अराजकता की ओर बढ़ा जा रहा था। शहज़ादे की फ़ौजदारी से वहां की हालत और भी खराब हो गई थी, उससे नाज़िम की पूरी बेबसी ज़ाहिर हो गई थी और कम्पनी को पता चल गया था कि बाहर के हमलों से अपने इलाक़े की रक्षा करने के लिए नाज़िम हर तरह हमीं पर निर्भर है।"*

कम्पनी की व्यापार सम्बन्धी ज़्यादती

बंगाल की प्रजा ने अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से संचित मुर्शिदाबाद के खज़ाने को अपनी आंखों के सामने ढुल-ढुल कर विदेशियों के हाथों में जाते हुए देखा। आए दिन के संग्रामों और फ़ौजों के आने-जाने के कारण देश की खेती पर मिट्टी छितर गई थी और उद्योग-धन्धों का नाश हो रहा था। इस पर देश के एक-एक व्यापार के ऊपर कम्पनी ज़बर्दस्ती अपना अधिकार जमाती जा रही थी। मिसाल के लिए नमक, छालियां, इमारती लकड़ी, तम्बाकू, सूखी मछली इत्यादि का व्यापार देशवासियों की रोज़ी और सूबेदार की आमदनी, दोनों का उन दिनों एक खास ज़रिया था। इसीलिए इस तरह की कई चीज़ों का व्यापार शुरू से यूरोप-निवासियों के लिए इस देश में बंद कर दिया गया था। विदेशी व्यापारियों के नाम सम्राट की स्पष्ट आज्ञाएं इस विषय में मौजूद थीं। फिर भी प्लासी के फ़ौरन ही बाद अंग्रेज़ों ने ये सब व्यापार ज़बर्दस्ती अपने हाथों में ले लिए। मीर जाफ़र ने गद्दी पर बैठने के एक महीने के अन्दर क्लाइव से इस ज़बर्दस्ती की शिकायत की। कुछ देर के लिए कुछ रोकथाम का भी ढोंग रचा गया, किन्तु अन्त में किसी ने परवाह न की। शोरे का ठेका कम्पनी को मिल ही चुका था। इस सबसे राज की आमदनी में बहुत बड़ी कमी होती जा रही थी और प्रजा के अन्दर दुख, दरिद्रता और बदअमनी ज़ोरों के साथ बढ़ती जा रही थी। इस पर तारीफ़ यह कि जब कभी मीर जाफ़र अपने राज के आर्थिक, सैनिक या किसी प्रबन्ध में भी किसी तरह का सुधार करना चाहता था, तो उसे फ़ौरन रोक दिया जाता था। मीर जाफ़र भी गद्दी पर बैठने के चन्द महीने के अन्दर अपनी बेबसी को समझने लगा था और अनुभव करने लगा था कि अंग्रेज़ों की नई मित्रता ने उसे और उसके देश, दोनों को चुपचाप नाग की लपेटों की तरह जकड़ लिया था। सिराजुद्दौला के साथ उसके विश्वासघात का फल अब मीर जाफ़र और उसकी प्रजा, दोनों को भोगना पड़ रहा था।

बंगाल में दूसरी बग़ावत की तैयारी

सिराजुद्दौला की हत्या को अभी तीन साल भी पूरे न हुए थे। मीरजाफ़र ने जो सन्धि अंग्रेज़ों के साथ की थी, उसकी तमाम शर्तों को वह अक्षरशः पूरा कर चुका

**Calender of Persian correspondence*, vol. iii, p. viii.

था। सन्धि से बाहर भी अनेक बेजा मांगें पै दरपै मीर जाफ़र के सामने पेश की जा चुकी थीं और जबर्दस्ती पूरी कराई जा चुकी थीं। देश और प्रजा की यह हालत थी। इस स्थिति में अपने सच्चे मित्र मीर जाफ़र को लात मार कर उसकी जगह किसी और ऐसे मनुष्य को गद्दी पर बैठाने के लिए, जिसके द्वारा बंगाल को और अधिक सफलता के साथ चूसा जा सके, अंग्रेज़ों ने अब उस दूसरी बग़ावत के लिए तदबीरें शुरू कर दीं, जिसका इशारा ऊपर क्लाइव के एक पत्र में आ चुका है।

मीर जाफ़र एक बहुत बड़ी रकम नए गवर्नर हालवेल को नक़द भेंट कर चुका था। फिर हालवेल पहले दिन से इस दूसरी बग़ावत की धुन में था। मई सन् 1760 में गवर्नर हालवेल और कर्नल केलो के बीच इस नए षड्यन्त्र के सम्बन्ध में गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू हो गया। जुलाई में गवर्नर वन्सीटार्ट के आने पर इस षड्यन्त्र ने शकल ली। हालवेल और केलो के उस समय के बयानों में मीरन की मौत का साफ़ इस तरह ज़िक्र आता है, जिससे मालूम होता है कि मीरन की हत्या इसी षड्यन्त्र का एक अंग थी। सितम्बर, सन् 1760 में इस षड्यन्त्र को अन्तिम रूप देने के लिए और मीर जाफ़र से छेड़-छाड़ शुरू करने का बहाना ढूंढने के लिए वन्सीटार्ट के सभापतित्व में कलकत्ते में कई गुप्त सभाएं हुईं। 11 सितम्बर की सभा की कार्रवाई में दर्ज है :

कम्पनी की धन और धरती की प्यास

"कर्नल क्लाइव की क्रान्ति से आज तक समय-समय पर हमारा प्रभाव बढ़ता गया है और उस प्रभाव को क़ायम रखने के लिए हमें वैसे-वैसे ही अपनी फ़ौजी ताक़त भी बढ़ानी पड़ी है। अब हमारे पास एक हज़ार से ऊपर यूरोपियन सिपाही और पांच हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही हैं। इनका खर्च और उसके साथ-साथ फ़ौज का ग़ैर-मामूली खर्च मिला कर इतना अधिक है कि जो जागीरें हमें मिली हुई हैं, उनकी सालाना आमदनी से किसी तरह पूरा नहीं हो सकता।

"इसलिए नवाब से कहना चाहिए कि आप इससे कहीं अधिक सालाना आमदनी कम्पनी के नाम पर कर दें और इसके पूरे-पूरे और ठीक-ठीक प्रबन्ध के लिए इस तरह के कुछ ज़िलों का अनन्य अधिकार कम्पनी को दे दें, जिनका हम बहुत आसानी से इन्तज़ाम कर सकें। ××× हम समझते हैं कि हमारी इस तरह की तजवीज़ के रास्ते में जितनी रुकावटें डाली जा सकती हैं, तब अवश्य डाली जाएंगी ×××।

" ××× इस सम्बन्ध में अपनी तमाम इच्छाओं की पूर्ति को पक्का कर लेने का एक ऐसा अच्छा मौक़ा इस समय हमारे सामने है कि जैसा शायद फिर कभी न आ सके। इस मौक़े से शक्ति और अधिकार, दोनों हमें मिल सकते हैं।

"दूसरी खास बात, जो हमें अपनी आजकल की नीति बदलने पर विचार करने के लिए मजबूर करती है, धन की कमी है। यह कमी केवल हम तक ही परिमित नहीं, बल्कि नीचे लिखी चीज़ें भी बहुत दर्जे तक उसी पर निर्भर हैं—

"समुद्रतट की कार्रवाइयां,
"पुदुच्चरी (पाण्डिचेरी) का विजय करना, और

"अगले साल (बम्बई, मद्रास और कलकत्ता) तीनों प्रान्तों से माल लाद कर इंगलिस्तान जहाज भेजने के लिए पहले से धन का प्रबन्ध ।"*

यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि उस ज़माने में इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान के बीच की तिजारत का अर्थ यह नहीं था कि इंगलिस्तान का बना हुआ कोई माल हिन्दोस्तान में लाकर बेचा जाए । ईस्ट इंडिया कम्पनी इस उद्देश्य से नहीं बनी थी, न इंगलिस्तान के उद्योग-धन्धों की उस समय यह हालत थी कि इंगलिस्तान का बना हुआ कोई माल हिन्दोस्तान में लाकर बेचने का किसी को स्वप्न में भी गुमान हो सकता । भारत से इंगलिस्तान की तिजारत का अर्थ उस समय केवल यह था कि भारत के उद्योग-धन्धों और यहां की आन्तरिक तिजारत में किसी तरह भाग लिया जाए और जिस तरह हो, व्यापार द्वारा या लूट द्वारा यहां से माल और धन लाद कर इंगलिस्तान भेजा जाए ।

मीर जाफ़र से नई मांगें

मीर जाफ़र पर किसी तरह का भी झूठा-सच्चा दोष नहीं लगाया जा सका, किन्तु अंगरेज़ कम्पनी के लिए अपनी धन और धरती की प्यास को बुझाना ज़रूरी था । कम्पनी की ओर से नई मांगें मीर जाफ़र के सामने पेश की गईं । इन मांगों के विषय में इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

"मीर जाफ़र की हालत शुरू से शोकजनक थी । खजाना सुत चुका था,

---

*"Our influence increasing from time to time since the revolution brought about by Colonel Clive, so have we been obliged to increase our force to support that have now more than a thousand Europeans, and five thousand Sepoys, which the contingent expenses of an army, is far more than the revenues allotted for their maintenance.................

... ...

"It must therefore be proposed to the Nawab, to assign to the Company a much larger income, and to assign it in such a full and ample manner, by giving to the Company the sole right of such districts, as lay most convenient for our management....................it is to be supposed, that such a proposal would meet with all the difficulties that could possibly by thrown in our way...

".................There seems now to offer such an opportunity of securing to ourselves all we could wish in this respect, as likely may never happen again; an opportunity that will give us both power and right.

"Another principal motive, that urges us to think of changing our system, is the want of money; a want that is not confined to ourselves alone, but on which greatly depend—

"The operations on the coast,

"The reduction of Pondicherry, and

"The provision of an investment for loading home the next year's ships at all the three presidencies."—Proceedings at Fort William, 11th September, 1760, *First Report*, 1712, pp. 228, 229.

देश लुट चुका था, बड़े-बड़े अनिवार्य खर्च उसके सामने थे और इस पर कड़ी से कड़ी मांगें पूरी करने के लिए उसे मजबूर किया जाता था × × ×।"*

मौलवी बदरुद्दीन अहमद ने लिखा है कि जो मांगें इस समय अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र के सामने पेश कीं, उनमें एक यह भी थी कि श्रीहट्ट (सिलहट) और इस्लामाबाद के इलाक़ों में 'फ़ौजदारी' के अधिकार कम्पनी को दे दिए जाएं। मीर जाफ़र इस हद तक जाने के लिए तैयार न था। उसने अपने विश्वस्त, नौजवान और होशियार दामाद मीर क़ासिम को अंगरेज़ों से बातचीत करने के लिए कलकत्ते भेजा।

मीर क़ासिम के साथ गुप्त सन्धि

15 सितम्बर, सन् 1760 की गुप्त सभा में अंगरेज़ों ने तय किया कि मीर क़ासिम और राजा दुर्लभराम, इन दोनों को भी इस नई साज़िश में शामिल कर लिया जाए और राजा दुर्लभराम की मार्फ़त सम्राट शाह आलम को अपनी ओर करने की कोशिश की जाए। यह भी तय हुआ कि कुछ मामूली लोगों को ख़ास-ख़ास नौकरियों के वादे देकर इस साज़िश में शामिल किया जाए और इस समय उनसे रुपये वसूल कर लिया जाएं। मीर क़ासिम से बात करने के लिए गवर्नर वन्सीटार्ट और राजा दुर्लभराम से बात करने के लिए हालवेल नियुक्त हुए। उसी रात को अलग-अलग वन्सीटार्ट की मीर क़ासिम से और हालवेल की राजा दुर्लभराम से बातचीत हुई। अगले दिन गुप्त सभा में आकर वन्सीटार्ट और हालवेल, दोनों ने अपनी-अपनी सफलता का हाल सुनाया। क़रीब दस दिन शर्तों को तय करने इत्यादि में खर्च हुए। इतिहास-लेखक मालेसन लिखता है कि 27 सितम्बर को कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल और मीर क़ासिम में एक गुप्त सन्धि हो गई, जिसमें यह तय हुआ कि मीर क़ासिम को मुर्शिदाबाद दरबार का वज़ीरे आज़म बना दिया जाए, वज़ीरे आज़म की हैसियत से सूबेदारी के तमाम अधिकार मीर क़ासिम को दिलवा दिए जाएं और मीर जाफ़र को केवल 'सूबेदार' की सूखी उपाधि और व्यक्तिगत खर्च के लिए एक सालाना रक़म बतौर पेन्शन ज़िन्दगी भर मिलती रहे, अंगरेज़ों और मीर क़ासिम में स्थायी मित्रता रहे, मीर क़ासिम को जब ज़रूरत हो, अंगरेज़ अपनी सेना से उसकी मदद करें, इसके बदले में मीर क़ासिम बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम, तीनों ज़िले हमेशा के लिए कम्पनी के नाम कर दें, जो जवाहरात मीर जाफ़र ने कम्पनी के पास गिरवी रखे थे, उन्हें मीर क़ासिम नक़द रुपया देकर छुड़वा ले, सम्राट शाह आलम के साथ अंगरेज़ या मीर क़ासिम बिना एक-दूसरे से सलाह किए समझौता न करें, बंगाल, बिहार और उड़ीसा, तीनों प्रांतों में से किसी में सम्राट के पैर न जमने दिए जाएं, श्रीहट्ट ज़िले में चूना खरीदने के लिए अंगरेज़ों को विशेष सुविधा दी जाएं, मीर क़ासिम अधिकार मिलते ही इस उपकार के बदले में वन्सीटार्ट को पांच लाख, हालवेल को दो लाख सत्तर हज़ार और इसी तरह कौन्सिल के दूसरे मेम्बरों में से किसी को ढाई लाख, किसी को दो लाख इत्यादि, कुल मिला कर बीस लाख रुपये दे और इनके अलावा पांच लाख रुपये कम्पनी को बतौर क़र्ज़ दे। गवर्नर वन्सीटार्ट

---

*"The situation of Jaffir was deplorable from the first. With an exhausted treasury and exhausted country, and vast engagements to discharge, he was urged to the severest exactions;..............."—Mill, vol. iii, pp. 213, 214.

उसकी कौन्सिल के दूसरे मेम्बरों और मीर क़ासिम, सबके इस सन्धिपत्र पर दस्तख़त हो गए । यह वही मीर क़ासिम था, जिसे मीर जाफ़र ने अपना विश्वस्त प्रतिनिधि बना कर अंगरेज़ों के पास बातचीत के लिए भेजा था ।

मीर जाफ़र के महल पर रात को अचानक हमला

30 सितम्बर को सौदा पक्का करके मीर क़ासिम कलकत्ते से मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुआ । 2 अक्तूबर को मीर जाफ़र पर दबाव डालने के लिए गवर्नर वन्सीटार्ट और उसके कुछ साथी कलकत्ते से चले । मुर्शिदाबाद भागीरथी के एक ओर और क़ासिम बाज़ार की कोठी दूसरी ओर थी । 15, 16 और 18 अक्तूबर को वन्सीटार्ट और मीर जाफ़र में बातचीत हुई । मीर जाफ़र अंगरेज़ों की नई तजवीज़ें और मीर क़ासिम के इरादों का हाल सुन कर घबरा गया । उसने मीर क़ासिम के हाथों में शासन के अधिकार सौंपने से इन्कार कर दिया । मीर क़ासिम और अंगरेज़ों के लिए अब पीछे हट सकना असम्भव था । 20 अक्तूबर को सवेरे सूरज निकलने से कुछ घंटे पहले कम्पनी की सेना ने अचानक मीर जाफ़र को महल में सोते हुए जा घेरा । मीर जाफ़र की उस समय की मानसिक स्थिति को मालेसन ने बड़े सुन्दर शब्दों में चित्रित करने का यत्न किया है । वह लिखता है :

मीर जाफ़र का दुख और पछतावा

"निस्सन्देह, उस महत्वपूर्ण सुबह को बूढ़े नवाब को तीन साल से कुछ अधिक पहले के उस दिन की अवश्य याद आई होगी, जब प्लासी के मैदान में, इन्हीं अंगरेज़ों के साथ गुप्त समझौता करके उस गद्दी के लिए, जिसे अब उसका एक दूसरा सम्बन्धी उसी तरह के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने मालिक और रिश्तेदार सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था । मीर जाफ़र अवश्य इस समय सोचता होगा कि –– "जिस सत्ता को मैंने इतने नीचे और कलंकित उपाय से प्राप्त किया था, उससे मुझे क्या लाभ पहुंचा ? मैंने सिराजद्दौला से उसका महल छीना ! उस महल में तीन साल तक नवाबी की ! किन्तु इन तीन सालों के अन्दर जो यातनाएं मुझे सहनी पड़ीं, उनके सामने मेरे जीवन के पहले 58 सालों के तमाम कष्ट फीके हैं; वे लोग, जिनके हाथ मैंने अपना मुल्क बेचा था, आज मुझे डर दिखला रहे हैं ! यदि प्लासी में मैं अपने उस बालक रिश्तेदार के साथ वफ़ादार रहा होता, जिसने अत्यन्त हसरत भरे शब्दों में मुझसे अपनी पगड़ी की लाज रखने की प्रार्थना की थी, तो इस समय मेरी हालत कितनी अच्छी होती । निस्सन्देह, जो गुस्ताख विदेशी प्लासी से अब तक मुझ पर हुक्म चलाते रहे और जो अब मुझे गद्दी से उतारने की धमकी दे रहे हैं, यदि प्लासी के मैदान में मैंने उनके नाश का मुख्य साधन बनने का यश प्राप्त कर लिया होता, तो इस समय मेरे हाथों में वास्तविक सत्ता होती, मेरा नाम इज्जत से लिया जाता और मेरा मुल्क बच गया होता ! किन्तु अब, अपने महल की खिड़की से बाहर नजर डालते ही मुझे लाल वर्दीवाले अंगरेज सिपाही दिखाई दे रहे हैं, मेरे ही बाग़ी रिश्तेदार के झंडे के नीचे जमा हैं! जैसा

व्यवहार मैंने स्वयं सिराजुद्दौला के साथ किया; क्या मैं मीर क़ासिम से अधिक दया की आशा कर सकता हूं ?' निस्संदेह, अपने मालिक और रिश्तेदार के साथ मीर जाफ़र ने जो व्यवहार किया था, उसकी याद इस समय मीर जाफ़र की आंखों के सामने से फिर गई होगी—— ××× । *

मीर जाफ़र का गद्दी से हटाया जाना

एक बार मीर जाफ़र ने हिम्मत करके अंगरेज़ों को मुक़ाबला करने की धमकी दी, किन्तु तुरन्त ही उसने अपनी बेबसी को महसूस कर लिया । उसका साहस टूट गया । पर उसने अपने तईं मीर क़ासिम के हाथों में सौंपने से इन्कार कर दिया । उसी दिन सवेरे मीर जाफ़र को गद्दी से हटा कर कलकत्ते भेज दिया गया और मीर क़ासिम को उसकी जगह सूबेदारी की गद्दी पर बैठा दिया गया ।

मीर जाफ़र की आयु उस समय 60 साल की और मीर क़ासिम की करीब 40 साल की थी ।

21 अक्तूबर को वन्सीटार्ट और केलो ने इस घटना को विस्तार से बयान करते हुए सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र लिखा, जिसका सार क़रीब-क़रीब उन्हीं के शब्दों में इस तरह है :

"15 अक्तूबर को नवाब मीर जाफ़र गवर्नर वन्सीटार्ट से भेंट करने के लिए क़ासिमबाजार आया । अगले दिन वन्सीटार्ट और केलो नवाब से मिलने मुर्शिदाबाद गए । दोनों दिन मामूली बातचीत होती रही । 18 ता० को अंगरेज़ों की पुरानी शिकायतों और नई मांगों पर बातचीत करने के लिए नवाब फिर क़ासिमबाजार आया । ये सब शिकायतें और मांगें पहले से तीन पत्रों के अन्दर लिख दी गई थीं । ये पत्र बातचीत के शुरू ही में वन्सीटार्ट ने मीर जाफ़र को दे दिए ।

---

*"Well, indeed, on that eventful morning, might the thoughts of the old man have carried him back to a period little more than three years distant, when, on the field of Plassy, he too, in secret compact with these same English, had betrayed his kinsman and master to obtain the seat which another kinsman was now by similar means wresting from him. What to him had been the power thus basely and dishonourably obtained? All the agonies of the preceding fifty-eight years of his life paled before those which he had suffered during the three years he had ruled as Nawab in the usurped palace of Sirajuddowlah. He could not but contrast his position, threatened by the men to whom he had sold his country, with that which he would have occupied if at Plassy, he had been loyal to the boy relative who had, in the most touching terms, implored him to defend his turban. With the prestige of having been the main factor in the destruction of the insolent foreigners who had since dictated to him, and who now threatened to dethrone him he would have wielded a real power; his name would have been honoured; his country would have been secure. But now—a glance from the window of his palace showed him the red-coated English soldiers rallying round the standard of his kinsman in revolt against himself. Would Mir Kasim show him more mercy than he had shown to Sirajuddowlah? The recollection of the fate to which he had abandoned his kinsman and master must have passed through his mind.............." *The Decisive Battles of India* by Colonel Malleson, pp. 131, 132.

"मीर जाफ़र पत्रों को पढ़ कर बहुत घबरा गया। उसने अपने महल वापस जाकर खाना खाने और सलाह करने के लिए समय चाहा। किन्तु अंगरेज़ों ने उस पर ज़ोर दिया कि आप यहां ही खाना मंगवा कर हाथ-के-हाथ तमाम मामले का फ़ैसला कर दें। अन्त में बूढ़ा मीर जाफ़र इस दर्जे थका हुआ मालूम हुआ कि अंगरेज़ों को मजबूर होकर उसे आराम करने और फिर विचार करने के लिए अपने महल लौटने की इजाज़त देनी पड़ी। अंगरेज़ों ने यह भी देख लिया कि बिना थोड़ी-बहुत जबर्दस्ती किए मीर जाफ़र राज को बाग मीर क़ासिम के हाथों में देने के लिए राजी न होगा। मीर जाफ़र के जाने के दो घंटे बाद मीर क़ासिम वहां पहुंचा। मीर क़ासिम इस समय मीर जाफ़र के सामने आने से डरता था। 19 ता० मीर जाफ़र को विचार करने के लिए दी गई, किन्तु उस दिन मीर जाफ़र की तरफ़ से कोई जवाब न मिल सका। फ़ौरन वन्सीटार्ट और उसके साथियों ने जबर्दस्ती करने का निश्चय किया। 19 की रात को महल के अन्दर किसी त्यौहार की तक़रीब में दावत थी। तमाम लोग थक कर सोए हुए थे। अंगरेज़ों ने उस मौके को बहुत ग़नीमत समझा। चुपचाप रात को तीन बजे कर्नल केलो ने दो कम्पनी गोरों को और छै कम्पनी काले सिपाहियों को लेकर नदी को पार किया और पौ फटते-फटते मीर क़ासिम और उसके कुछ आदमियों को साथ लेकर मीर जाफ़र को महल के अन्दर सोते हुए जा घेरा। सब कार्रवाई अच्छी तरह गुप्त रखी गई, चूंकि महल के अन्दर के सहन के फाटक बन्द थे, इसलिए केलो ने बाहर के सहन में अपने सिपाहियों को खड़ा कर दिया। मीर जाफर के पास वन्सीटार्ट का एक पत्र भेजा गया। मीर जाफ़र पत्र पढ़ कर एक बार क्रोध से भर गया। उसने मुक़ाबले का इरादा जाहिर किया। क़रीब दो घंटे तक सन्देश आते-जाते रहे। अन्त में अपनी बेबसी को पूरी तरह अनुभव कर मीर जाफ़र ने मीर क़ासिम को बुला भेजा और गद्दी उसके सुपुर्द कर देने की रजामन्दी जाहिर की।

"मीर क़ासिम ने शासन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और फ़ौज की पिछली तनख्वाहों की बक़ाया अदा करने और सम्राट को ख़िराज भेजते रहने का वादा किया। इस तरह 20 अक्तूबर को सवेरे मीर जाफ़र बंगाल की गद्दी से अलग किया गया और उसकी जगह मीर क़ासिमअली खां के नाम की नौबत बजने लगी।"*

अंगरेज़ दुभाषिए लशिंगटन के अनुसार मीर जाफ़र ने अन्त में कर्नल केलो से जो कुछ कहा, वह यह था :

"आप ही लोगों ने मुझे गद्दी पर बैठाया था, आप चाहें तो मुझे उतार सकते हैं। आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में इसी तरह की चालें होतीं और मैं चाहता, तो बीस हज़ार फ़ौज जमा कर सकता था और आप से लड़ सकता था। मेरे बेटे मीरन ने मुझे इन सब बातों के बारे में पहले ही से आगाह कर दिया था।"†

**First Report*, 1772, p. 231.

†Malcolm's *Life of Clive*, vol. ii, p. 268.

बंगाल की इस दूसरी बग़ावत का यह सारा बयान उस बग़ावत के कर्ता-धर्ता अंगरेज़ों ही की ज़बानी दिया गया है ।

मीर जाफ़र पर झूठे दोष

मीर जाफ़र के साथ इस व्यवहार को जायज़ करार देने के लिए उस पर कुछ-न-कुछ इल्ज़ाम लगाना आवश्यक था । 10 नवम्बर, सन् 1760 को कलकत्ते में अंगरेज़ अफ़सरों की एक सभा हुई, जिसमें कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम मशहूर जालसाज हालवेल का लिखा हुआ वह पत्र पढ़ा गया, जिसका ज़िक्र ऊपर एक जगह आ चुका है । उस पत्र में लिखा था :

"नवाब जाफ़र अली खां निहायत ज़ालिम और लालची तबीयत का आदमी था, साथ ही बड़ा काहिल भी था और उसके आसपास के आदमी या तो नीच, ग़ुलाम और ख़ुशामदी थे या उसकी बुरी इच्छाओं को पूरा करने के ज़रिए थे । हर श्रेणी के इस तरह के लोगों की बेहद मिसालें मौजूद हैं, जिनका बिना किसी वजह के उसने ख़ून कर डाला ।"*

इसके बाद इसी पत्र में पिता या पति के नाम इत्यादि समेत बड़ी तफ़सील के साथ अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की सूची दी गई है, जिनकी बाबत कहा गया कि मीर जाफ़र ने उन्हें मार डाला । किन्तु 1 अक्तूबर, सन् 1765 को मीर जाफ़र की मौत के बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों के नाम एक दूसरा पत्र भेजा, जिसमें लिखा है :

" ××× हम आपको सूचित कर देना अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि मिस्टर हालवेल ने ××× जिन भयंकर हत्याओं का इल्ज़ाम मीर जाफ़र पर लगाया है, वे उस नवाब के चरित्र पर झूठे कलंक और उसके साथ ज़ुल्म हैं । उनमें ज़रा भी सचाई नहीं है ; जिन स्त्री-पुरुषों की (हालवेल के उस पत्र में) सूची दी गई है और कहा गया है कि मीर जाफ़र ने उन्हें मरवा डाला, सिवाय दो के उनमें से सब इस समय ज़िन्दा हैं ××× ।" ‡

न जाने इसी तरह के और कितने झूठ सिराजुद्दौला और मीर जाफ़र, दोनों के ख़िलाफ़ इस समय तक प्रचलित हैं और इतिहास की पुस्तकों में दर्ज हैं ।

---

*"The Nawab Jaffir Ali Khan was of a temper extremely tyrannical and avaricious, at the same time very indolent, and the people about him being either abject slaves and flatterers, or else the base instruments of his vices;…… ……………numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has spilt without the least assigned reason."—Hollwell's Address to the proprietors of the East India Stock, p. 46.

‡"……………In justice to the memory of the late Nawab Mir Jaffir, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres wherewith he is charged by Mr. Hollwell, in his 'Address to the proprietors of East India Stock' (p. 46), are cruel aspersions on the character of that prince, which have not the least foundation in truth. The several persons there affirmed and who have been generally thought to have been murdered by his order, are all now living, except two…………………………."—Letter addressed to the Hon'ble Court of Directors by Clive and others 1st October, 1765.

मीर जाफ़र को गद्दी से उतार कर कलकत्ते में नज़रबन्द रखा गया। दो हज़ार रुपये माहवार उसके खर्च के लिए नियत किए गए। कहते हैं कि इस पर बूढ़े मीर जाफ़र ने कर्बला जाने की इजाज़त चाही और उसके लिए खर्च की दरख़ास्त की, किन्तु उसे कर्बला जाने की भी इजाज़त न मिल सकी।

कम्पनी और अंगरेज़ों को लाभ

अब केवल यह देखना बाक़ी है कि मीर जाफ़र के साथ इस विश्वासघात से अंगरेज़ों और अंगरेज़ कम्पनी को क्या-क्या लाभ पहुंचे।

सबसे पहले तीन ज़िले——बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम——जिनकी सालाना आमदनी तमाम बंगाल की आमदनी की एक-तिहाई थी, सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दिए गए। इन तीनों ज़िलों के लिए मुर्शिदाबाद के दरबार से कम्पनी के नाम अलग-अलग सनदें जारी कर दी गईं। बर्धमान के लिए जो सनद जारी की गई, उसमें लिखा है कि वहां के ज़मींदार और काश्तकार, दोनों पहले की तरह कायम रहेंगे, केवल सरकारी मालगुज़ारी का जो रुपया अभी तक सूबेदार के कर्मचारी वसूल करके मुर्शिदाबाद भेजा करते थे, वह आइन्दा कम्पनी के नौकर वसूल करके कम्पनी के पास कलकत्ते भेजा करेंगे, और इस धन के खर्च से कम्पनी साम्राज्य की रक्षा के लिए या जब ज़रूरत हो, सम्राट या सूबेदार की मदद के लिए, पांच सौ यूरोपियन सवार, दो हज़ार यूरोपियन पैदल और आठ हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक सेना रखेगी। इसी तरह की सनदें मेदिनीपुर और चट्टग्राम के लिए भी जारी की गईं।

इसके अलावा वन्सीटार्ट और केलो ने कलकत्ता कमेटी को लिखा कि इस बग़ावत से——

> **"निस्सन्देह, कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ है। ××× पटने की फ़ौज को देने के लिए कर्नल के हाथ रुपये की रक़म भेजी जाएगी, और हमें यह भी आशा है कि इसके अलावा कलकत्ते भेजने के लिए हमें तीन या चार लाख रुपये और मिल जाएंगे, जिनसे कम्पनी की वहां की और मद्रास की इस समय की ज़रूरतें पूरी हो सकेंगी।"***

कम्पनी की टकसाल

सिराजुद्दौला ने एक बार कम्पनी को अलग टकसाल क़ायम करने से रोक दिया था। बाद में कुछ शर्तों के साथ उसे इजाज़त देनी पड़ी, किन्तु इस पर भी सिराजुद्दौला के समय में कम्पनी की टकसाल बंगाल में क़ायम न हो सकी। इतिहास-लेखक औमें लिखता है कि प्लासी के युद्ध के बाद कलकत्ते में कम्पनी की टकसाल क़ायम हुई और 19 अगस्त,

---

*"The advantages to the Company are great indeed.................A supply of money, will be sent with the Colonel for the payment of the troops at Patna, and we have even some hopes of obtaining three or four lacks besides to send down to Calcutta, to help out the Company in their present occasions there and at Madras...................."—Vansittart and Caillaud in their letter to the Select Committee at Fort William, dated 21st October, 1760.

1757 को पहले-पहल कम्पनी के नाम के रुपये ढाले गए। फिर भी तीन साल तक अंगरेज़ों को इस टकसाल से अधिक लाभ न हो सका, क्योंकि बंगाल भर में मुर्शिदाबाद के सरकारी रुपयों के सामने कम्पनी के रुपयों को, उनमें चांदी कम होने के कारण, बिना बट्टे कहीं कोई न लेता था। अब अंगरेज़ों को इस असुविधा को दूर करने का मौक़ा मिला। 20 अक्तूबर को गद्दी पर बैठते ही मीर क़ासिम ने कम्पनी के नाम एक परवाना जारी किया, जिसमें उसने उन्हें अपनी कलकत्ते की टकसाल में अशरफ़ियां और रुपये ढालने की इजाज़त दी, इस शर्त पर कि कम्पनी के सिक्के वज़न और धातु में मुर्शिदाबाद के सरकारी सिक्कों के बिलकुल बराबर हों। इसके साथ-साथ उसने एक निहायत कड़ा हुकुम जारी कर दिया कि कोई सराफ़ या सौदागर कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार न करे, न उन पर किसी तरह का बट्टा मांगे।

इससे सरकारी आमदनी की एक बड़ी मद टूट गई और मुर्शिदाबाद दरबार की माली और राजनैतिक स्थिति को और अधिक धक्का पहुंचा। नवाब और उसकी प्रजा के साथ यह ज़बर्दस्त अन्याय था। किन्तु कम्पनी के लिए आमदनी का और, जैसा आगे चल कर साबित हुआ, जालसाजी की एक बहुत बड़ी नई मद खुल गई।

कम्पनी को इस तरह जो कुछ लाभ हुआ, उसके अलावा मीर क़ासिम ने इस एंहसान के बदले में वन्सीटार्ट और उसके साथियों को बीस लाख रुपये नक़द बतौर नज़राने के भेंट किए।

अनेक इतिहास-लेखकों ने कड़े शब्दों में मीर जाफ़र के साथ अंगरेज़ों के इस विश्वासघात की आलोचना की है। इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है :

"उन लोगों तक में, जिन्होंने यूरोप निवासियों को दिखाने के लिए यूरोप वालों की एशियाई करतूतों पर मुलम्मा फेलने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है, इस अन्याय को लगभग कोई भी क्षम्य नहीं कहता। मीर जाफ़र ××× और कम्पनी के बीच मित्रता की क़समें खाई जा चुकी थीं और वह मित्रता खून से पक्की की जा चुकी थी। और यदि कभी भी ईमानदारी का कम से कम ऊपरी रूप बनाए रखना मनुष्य के लिए ज़रूरी था, तो इस मामले में कलकत्ते के गवर्नर और उसकी कौन्सिल को इतनी शर्म होनी चाहिए थी। किन्तु इस पर भी उस दो लाख पाउण्ड के बदले, जो उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से मिले, और उन तीन जरखेज़ इलाक़ों के बदले, जो कम्पनी को मिले, इन लोगों ने अपने ऐसे मित्र और सहायक को बेच दिया, जो इन पर हद से जियादा विश्वास करता था।"*

*"The iniquity of his transaction finds few apologists even among those who have taken upon themselves to dress and to enamel Oriental deeds for European view. The treaty with Mir Jaffir still subsisted;..............He was the sworn and bloodknit ally of the Company; and if ever men were bound by decency to maintain at least the forms of good faith, the Governor and Council of Calcutta were so bound. Yet, being so, for the sum of £s. 200,000 to them privately paid, and for the cession of three rich and populous provinces, they sold their too confiding friend and ally"—*Empire in Asia* @ by W. M. Torrens, M. P., p. 42.

चौथा अध्याय

मीर क़ासिम

बंगाल की हालत

मुर्शिदाबाद के दरबार और बंगाल की प्रजा, दोनों की हालत मीर क़ासिम के गद्दी पर बैठते ही और अधिक शोचनीय होती चली गई। सबसे पहले मीर क़ासिम ने देखा कि राज की माली हालत बहुत बिगड़ी हुई थी। सरकारी मालगुज़ारी ठीक तौर पर वसूल न हो रही थी। ख़ज़ाना क़रीब-क़रीब ख़ाली था। सालाना ख़र्च आमद से बढ़ गया था और फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं। इसके अलावा, ठीक मीर जाफ़र के समान मीर क़ासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े-बड़े वादे उसने अंगरेज़ों के साथ कर रखे थे, उन्हें पूरा करना इतना आसान न था। इन वादों और दूसरी नई-नई मांगों को पूरा करने के लिए मीर क़ासिम ने अपने यहां के ज़मींदारों और रईसों को अंगरेज़ों ही के सिपाहियों की मार्फ़त बुला कर ज़बर्दस्ती उनसे रक़में वसूल करना शुरू किया। जब इससे भी काम न चल सका, तब उसे जगतसेठ से क़र्ज़ लेना पड़ा और अन्त में अंगरेज़ों को रक़में देने के लिए रियासत के जवाहरात बेच कर और महल के सोने-चांदी के बर्तन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

कम्पनी के खोटे सिक्के

कम्पनी की टकसाल कलकत्ते में कायम हो चुकी थी। किन्तु अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम की इस शर्त की बिल्कुल परवाह न की कि जो सिक्के कलकत्ते में ढाले जाएं, वे मुर्शिदाबाद की सरकारी टकसाल के सिक्कों के समान वज़न और समान धातु के हों। अंगरेज़ बराबर अपनी टकसाल में घटिया सिक्के ढालते रहे। नतीजा यह हुआ कि बावजूद मीर क़ासिम की कड़ी आज्ञाओं के प्रजा ने कलकत्ते से सिक्कों को बिना बट्टे के लेने से इन्कार किया। इस पर अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम से प्रार्थना की कि जो सिक्के हम कलकत्ते में ढालें, उन पर भी हमें मुर्शिदाबाद का नाम और मुर्शिदाबाद की ही छाप रखने की इजाज़त दी जाए। मीर क़ासिम ने इस खुली जाली कार्रवाई की तो इजाज़त न दी, किन्तु उसने अंगरेज़ों को सन्तुष्ट करने के लिए कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार करने वाले या उन पर बट्टा मांगने वाले ज़मींदारों और दूसरे लोगों को सज़ाएं देना शुरू कर दिया। इन सख्तियों की वजह से अनेक ज़मींदार मीर क़ासिम से असन्तुष्ट हो गए, यहां तक कि कई जगह नए नवाब के ख़िलाफ़ बग़ावत की तैयारियां होने लगीं।

बर्धमान में कम्पनी के अत्याचार

कुछ साल पहले कम्पनी का क़र्ज़ चुकाने के लिए मीर जाफ़र ने बर्धमान के इलाके की मालगुज़ारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उस समय से बर्धमान का इलाक़ा अंगरेज़ों के इन्तज़ाम में था और कम्पनी के सिपाहियों ने, जिनमें अधिकांश मद्रास से लाए गए थे,

उस इलाके भर में लूट-मार जारी कर रखी थी। इन तिलंगे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर सन् 1760 में बर्धमान के जमींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते की अंगरेज़ कमेटी को लिखा :

"अनेक तिलंगों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद, चितवर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों और दूसरे स्थानों में घुस कर वहां के बाशिंदों को लूट लिया है और उनके साथ इस तरह के ज़ुल्म किए हैं, जिनसे लोगों की जान तक ख़तरे में पड़ गई है। इन ज़ुल्मों से मजबूर होकर वहां के बाशिंदे गांव छोड़ कर भाग गए हैं और उन मौज़ों की मालगुज़ारी में दो या तीन लाख रुपये का नुक़सान हुआ है।" *

इस पर भी इन तिलंगों की लूट-मार जारी रही और राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर लिखना पड़ा :

"तिलंगों के व्यवहार से रय्यत को ज़बर्दस्त कष्ट हो रहा है और मजबूर होकर रय्यत अपने घर-बार छोड़-छोड़ कर भाग रही है।"

यह सोच कर हमें लज्जा आती है कि तिलंगे भी हिन्दोस्तानी थे और बर्धमान की प्रजा भी हिन्दुस्तानी और अंगरेज़ विदेशी ।

कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया । लिखा है कि बर्धमान के कई परगने इस समय वीरान पड़े हुए थे ।

अब मीर क़ासिम ने यह तमाम इलाक़ा हमेशा के लिए कम्पनी को सौंप दिया और वहां के ज़मींदार को अंगरेज़ों के अधीन कर दिया। जब यह नया परवाना राजा तिलकचन्द के पास पहुंचा, तो उसे दुख होना स्वाभाविक था। उसने गवर्नर वन्सीटार्ट को अपनी ज़मींदारी की शोचनीय अवस्था की फिर से इत्तला दी और अपने यहां की मालगुज़ारी का सब हिसाब भेज दिया ।

बर्धमान और बीरभूम पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

वन्सीटार्ट ने किसी तरह उसकी मदद न की और न कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार बन्द हुए । मजबूर होकर, कहा जाता है, राजा तिलकचन्द ने बीरभूम के राजा के साथ मिल कर अंगरेज़ों और मीर क़ासिम, दोनों से लड़ने के लिए फ़ौज जमा करना शुरू किया। इस पर कलकत्ते की कौन्सिल ने "बर्धमान और मेदनीपुर के इलाकों पर क़ब्ज़ा करने के लिए" कप्तान व्हाइट के अधीन कुछ सेना बर्धमान भेजी । राजा तिलकचन्द के एक पत्र से मालूम होता है कि इस सेना ने भी मार्ग भर में असहाय ग्रामवासियों पर तरह-तरह के ज़ुल्म किए, उन्हें खूब लूटा और खूब खून बहाया ।

28 दिसम्बर, सन् 1760 को कप्तान व्हाइट की फ़ौज और बर्धमान के राजा की फ़ौज में लड़ाई हुई, जिसमें राजा की फ़ौज हार गई। अंगरेज़ी फ़ौज का एक हिस्सा बीरभूम की राजधानी नागौर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेज दिया गया। वहां का राजा अपनी राजधानी छोड़ कर पहाड़ों की ओर भाग गया और बर्धमान और नागौर, दोनों पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया ।

---

*Long's *Records*, p. 236.

आए दिन के राज-परिवर्तन की वजह से बंगाल के शासन की हालत बहुत अस्त-व्यस्त हो रही थी। व्यापार के नाम पर कम्पनी के जुल्म बंगाल भर में ज़ोरों के साथ बढ़ रहे थे। अंगरेज़ों ने जो क़रीब तीस हज़ार नई फ़ौज मीर क़ासिम और सम्राट की सहायता के नाम पर और साम्राज्य की रक्षा के लिए कह कर जमा कर रखी थी, जिसके खर्च के लिए मीर क़ासिम से तीन बड़े-बड़े जिले लिए गए थे, वह सब सूबे भर में इन जुल्मों को जारी रखने के लिए काम में लाई जा रही थी।

महसूल की माफ़ी और उसका दुरुपयोग

प्राचीन भारतीय नरेशों के अधीन राज की आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया तिजारती माल पर महसूल था। मुग़ल सम्राटों के अधीन ईरान, अरब, मिस्र, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, इंगलिस्तान, बरमा, चीन, जापान इत्यादि अनेक बाहर के मुल्कों के साथ और स्वयं भारत के अन्दर भारतीय तिजारत बेहद बढ़ी हुई थी, जिसमें हज़ारों भारतीय जहाज़ हर साल लगे रहते थे और हर व्यापारी को अपना माल एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सरकारी महसूल देना पड़ता था। केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए मुग़ल सम्राट ने खुश होकर यह महसूल माफ़ कर दिया था। इस माफ़ी का मतलब यह था कि कम्पनी अगर विलायत से कोई माल लाकर हिन्दोस्तान में बेचना चाहे या हिन्दोस्तान का बना माल ख़रीद कर विलायत ले जाना चाहे, तो उस माल पर महसूल न लिया जाए। शाही फ़रमान में कम्पनी के मुलाज़िमों या दूसरे अंगरेज़ों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिए तिजारत करने की इजाज़त कहीं न थी और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिए हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं, बल्कि जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, नमक, छालिया, तम्बाकू, इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि बहुत-सी चीजों में शुरू से ही बंगाल भर के अन्दर यूरोप-निवासियों को तिजारत करने की मनाही थी।

सबसे पहले मीर जाफ़र के समय में अंगरेज़ों ने ज़बर्दस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक वग़ैरह की तिजारत शुरू कर दी, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। मीर जाफ़र ने बहुतेरा एतराज़ किया, किन्तु उसकी एक न चली। अंगरेज़ों का यह तमाम व्यापार शाही फ़रमान के ख़िलाफ़ था, किन्तु कुछ दिनों तक अंगरेज़ व्यापारी अपनी इस नाजायज़ तिजारत के माल पर महसूल उसी तरह अदा करते रहे, जिस तरह तमाम देशी व्यापारी अपने माल पर करते थे।

अब मीर क़ासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के मुलाज़िम और दूसरे अंगरेज़ कम्पनी का पास (दस्तक) लेकर, बिना किसी तरह का महसूल दिए, देश भर में हर चीज़ का व्यापार करने लगे और जब नवाब के कर्मचारी एतराज़ करते या महसूल मांगते, तब उन्हें कम्पनी के नए सिपाहियों के हाथों दुरुस्त कर दिया जाता। इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

> **"इस तरह कम्पनी के मुलाजिमों का माल बिल्कुल बिना महसूल सब जगह आता-जाता था, जब कि और सब व्यापारियों को अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। नतीजा यह हुआ कि देश का सारा व्यापार तेजी के साथ**

कम्पनी के मुलाज़िमों के हाथों में आने लगा और सरकारी आमदनी का एक स्रोत बिल्कुल सूखने लगा। यदि महसूल जमा करने वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के दस्तक के इस दुरुपयोग पर एतराज़ करता और माल को रोकता था, तो उसे गिरफ्तार करके पास की अंगरेज़ी कोठी में पहुंचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"*

व्यापार में ज़ुल्म

अंगरेज़ों की इस नाजायज़ तिजारत के साथ जो-जो ज़ुल्म और ज़बर्दस्तियां होती थीं, उनकी गवाही अनेक अंगरेज़ लेखकों के बयानों से मिलती है। जहां-जहां कोई अंगरेज़ बैठ कर इस तरह व्यापार करता था, वहां-वहां ही अंगरेज़ी झंडा और कम्पनी के कुछ सिपाही उसके साथ रहते थे। वारेन हेस्टिंग्स 25 अप्रैल, सन् 1762 के एक पत्र में लिखता है :

"जहां-जहां मैं गया हूं, वहां-वहां अनेक अंगरेज़ी झंडे लहराते हुए देख कर मैं चकित रह गया हूं × × × चाहे किसी भी अधिकार से ऐसा क्यों न कर लिया गया हो, मुझे विश्वास है कि जगह-जगह इन झंडों की मौजूदगी से नवाब की आमदनी, देश के अमन या हमारी क़ौम की इज्ज़त, तीनों में से किसी को भी लाभ नहीं पहुंच सकता। × × × रास्ते में हमारे सिपाहियों के व्यवहार के खिलाफ़ मुझसे अनेक शिकायतें की गईं। हम लोगों के पहुंचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को खाली छोड़ कर भाग जाते थे और दुकानों को बन्द कर देते थे, क्योंकि उन्हें हमसे भी उसी तरह के व्यवहार का डर था।"†

वेरेल्स्ट नामक अंगरेज़ इस सम्बन्ध में हमें एक और नई बात बताता है। वह लिखता है :

"उन दिनों बहुत-से काले (हिन्दोस्तानी) व्यापारी अपनी सुविधा के लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धन देकर उसका नाम खरीद लेते थे और उसके नाम के 'दस्तक' के ज़रिए देश के लोगों को तंग करते और उन पर ज़ुल्म करते थे। इस ज़रिए से इतनी ज़्यादा आमदनी होने लगी कि कई

*"The Company's Servants, whose goods were thus conveyed entirely free from duty, while those of all other merchants were heavily burdened, were rapidly getting into their own hands the whole trade of the country, and thus drying up one of the sources of the public revenue. When the Collectors of these tolls, or transit duties, questioned the power of the Dustuck, and stopped the goods, it was customary to send a party of sepoys to seize the offender and carry him prisoner to the nearest factory."—Mill's *History of India,* vol. iii, pp. 229, 230.

†"I have been surprised to meet with several English flags flying in places which I have passed;........................By whatever title they have been assumed, I am sure their frequency can bode no good to the Navab's revenues, the quiet of the country, or the honour of our nation.........Many complaints against them (Sepoys) were made to me on the road; and most of the petty towns and serais were deserted at our approach and the shops shut up from the apprehensions of the same treatment from us."—Warren Hastings in a letter to the President, dated Bhagalpur, 25th April, 1762.

मुहर्रिर 15 हजार और 20 हजार रुपये साल खर्च कर सकते थे, नफ़ीस कपड़े पहनते थे और अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे ।"

वह आगे चल कर लिखता है :

"बिना महसूल दिए तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में बेहद जुल्म किए जाते थे । × × × मीर क़ासिम के साथ लड़ाई की यही उस समय वजह हुई ।"*

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने फ़रवरी, सन् 1764 के एक पत्र में स्वीकार किया है कि "कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजेन्टों और दूसरों की यह निजी तिजारत नाजायज" थी, "दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग" थी, "हर तरह से अनधिकार युक्त" थी, और नवाब और उसकी "क़ुदरती प्रजा", दोनों के साथ "दुहरा अन्याय" था, किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र के बाद भी इस अन्याय में कोई कमी न पड़ी ।

उन सिपाहियों के ज़रिए, जो नवाब के पैसे से नियुक्त किए गए थे, नवाब ही की प्रजा के ऊपर जिस-जिस तरह के ज़ुल्म किए जाते थे, उनका कुछ अनुमान मीर क़ासिम के नाम बाकरगंज के एक सरकारी कर्मचारी के 25 मई, सन् 1762 के ख़त से किया जा सकता है । उसमें लिखा है :

" × × × यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी कार्रवाईयों की वजह से बरबाद हो गई । कोई अंगरेज माल खरीदने या बेचने के लिए वहां किसी गुमाश्ते को भेजता है । फ़ौरन वह गुमाश्ता यह फ़र्ज कर लेता है कि यहां के किसी भी आदमी के हाथ जबर्दस्ती अपना माल बेचने या उसका माल जबरदस्ती खरीदने का उसे पूरा अधिकार है और यदि वह आदमी खरीदने या बेचने की हैसियत न रखता हो और इन्कार करे, तो फ़ौरन या तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं या उसे क़ैद कर लिया जाता है । यदि वह राज़ी हो जाए, तब भी केवल इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी जबर्दस्ती यह की जाती है कि अनेक चीज़ों की तिजारत का ठेका अपने ही हाथों में ले लिया जाता है, यानी जिन-जिन चीज़ों की तिजारत अंगरेज करते हैं, उनकी तिजारत किसी दूसरे को नहीं करने दी जाती और न किसी दूसरे के पास से किसी को खरीदने दिया जाता है । × × × और फिर अंगरेज समझते हैं कि कम-से-कम जो वह कर सकते हैं, वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस दाम पर कोई चीज खरीदता है, अंगरेज उसी चीज को उससे बहुत कम दाम पर खरीदें । अक्सर

---

*"At this time many black merchants found it expedient to purchase the name of any young writer, in the Company's Service, by loans of money, and under this sanction harassed and oppressed the natives. So plentiful a supply was derived from this source that many young writers were enabled to spend £s. 1,500 and £s. 2,000 per annum, were clothed in fine linen, and fared sumptuously every day."

As trade was carried on without payment of duties, in the prosecution of which infinite oppressions were committed...........................This was the immediate cause of the war with Mir Cassim."—Verelst's *View of Bengal,* pp. 8 and 46.

ये लोग दाम देने से इन्कार कर देते हैं और मैं दखल देता हूं, तो फ़ौरन मेरी शिकायत होती है ।"*

तिजारत के बहाने लूट

18वीं सदी के पिछले पचास साल में बंगाल भर के अन्दर यह जबर्दस्त ज़ुल्म सब जगह फैला हुआ था। अब हम इंगलिस्तान के मशहूर नीतिज्ञ और वक्ता एडमण्ड बर्क के कुछ वाक्य इसके बारे में देते हैं। बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने कहा था :

"तिजारत, जो दुनिया के हर मुल्क को धनवान बनाती है, बंगाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। इससे पहले, जब कि कम्पनी को देश में कहीं भी हकूमत करने का हक़ हासिल न था, अपने दस्तक या पास के ऊपर उन्हें बड़े-बड़े अधिकार मिले हुए थे, कम्पनी का माल बिना महसूल दिए देश भर में आ-जा सकता था। (धीरे-धीरे) कम्पनी के नौकर अपनी-अपनी निजी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा-थोड़ा होता रहा, देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे गवारा कर लिया, किन्तु जब सभी लोग ऐसा करने लगे, तब तिजारत की जगह उसे डकैती कहना ज़्यादा ठीक मालूम होता था।

"ये व्यापारी हर जगह पहुंचते थे, अपने ही दामों पर माल बेचते थे और दूसरे लोगों को जबर्दस्ती मजबूर करके उनका माल अपने ही दामों पर खरीदते थे। बिल्कुल ऐसा मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फ़ौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देसी अदालतों से रक्षा की आशा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अंगरेज़ व्यापारियों की यह सेना जिधर जाती थी, उधर ही तातारी विजेताओं से बढ़ कर लूट-मार और बरबादी करती थी। × × × इस तरह, इस अभागे देश पर दुहरा अन्याय जारी था, जिसकी भयंकर लूट द्वारा देश चूर-चूर हो रहा था।"†

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बंगाल में किसका राज था। वास्तव में, राज न मुग़ल सम्राट का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का ; राज था विदेशियों की कूटनीति

*Vansittart's *Narrative*, vol. ii, p. 112.

†"Commerce, which enriches every other country in the world, was bringing Bengal to total ruin. The Company, in former times, when it had no sovereignty or power in the country, had large privileges under this Dustuck or permit; their goods passed without paying duties through the country. The servants of the Company made use of this dustuck for their own private trade, which, while it was used with moderation, the native Government winked at in some degree; but when it got wholly into private hands, it was more like robbery than trade. These traders appeared everywhere; they sold at their own prices, and forced the people to sell to them at their own prices also. It appeared more like an army going to pillage the people, under pretence of commerce, than anything else. In vain the people claimed the protection of their own Country Courts. This English army of traders in their march, ravaged worse than a Tartarian Conqueror..................Thus his miserable country was torn to pieces by the horrible rapaciousness of a double tyranny"—Burke in his impeachment of Warren Hastings.

और अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का और यह नतीजा था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देशघातकता का और जनता में राजनैतिक समझ और साहस की कमी का। हम ऊपर कह चुके है कि बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आमदनी से वे सब फ़ौजें रखी गई थीं, जिनके हाथों बंगाल भर में यह भयंकर नादिरशाही चलाई जा रही थी। सच यह है कि इसे नादिरशाही कहना भी नादिरशाह के साथ अन्याय करना है। नादिरशाह यदि ग़ैर मुल्क में पहुंच कर अपने सिपाहियों की शान क़ायम रखने के लिए चन्द घड़ी के लिए क़त्लेआम का हुक्म दे सकता था, तो वह अपनी एक आवाज पर अमन क़ायम करना भी जानता था और क्षमा और उदारता की शक्ति भी उसमें अपार थी। वास्तव में, अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों की मिसाल संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने पर मिलनी कठिन है।

मीर क़ासिम की शिकायतें

बंगाल और बिहार भर में इस समय कम्पनी की कोठियां फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीज़ों का सारा व्यापार अंगरेज़ों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अंगरेज़ नौकर जिस भाव चाहे, खरीद लेते थे। देश के हज़ारों-लाखों व्यापारियों की रोज़ी छिन चुकी थी और किसानों की हालत इससे भी अधिक करुणाजनक थी। नवाब के मुलाज़िमों के साथ कम्पनी के गुमाश्तों और एजेन्टों के रोज़ाना जगह-जगह झगड़े होते रहते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी-सच्ची शिकायतें रोज़ाना कलकत्ते भेजते रहते थे और वहां से वही फ़ौजी सिपाही नवाब के मुलाज़िमों या स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह-जगह भेज दिए जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बंगाल भर के अन्दर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूली न होती थी। मीर क़ासिम ने अनेक बार पत्रों द्वारा दर्दनाक शब्दों में गवर्नर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर क़ासिम के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चल कर किया जाएगा।

राजा नन्दकुमार का देशप्रेम

इस सब अपमान से बंगाल की सचमुच रक्षा करने और देश को आइन्दा की आफ़तों से बचाने का केवल एक ही तरीका हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झंडे के नीचे और तमाम शक्तियों का मिलना मुमकिन हो सकता था। वह शक्ति दिल्ली के मुग़ल सम्राट की रही-सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशियों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली सम्राट के झंडे के नीचे देश की हिन्दू और मुसलमान राज-शक्तियों को मिलाया जाए और उनके सम्मिलित प्रयत्नों से विदेशियों को बंगाल और भारत से निकाल कर बाहर कर दिया जाए।

यह एक आश्चर्य की बात है कि यह उपाय उस समय उसी राजा नन्द कुमार को सूझा, जिसने सन् 1757 में अमीचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा और फ्रान्सीसियों, तीनों के साथ विश्वासघात किया था। मालूम होता है, नन्दकुमार अब अपने देश को अंगरेज़ों के हाथों बिकते हुए देख कर और प्रजा के ऊपर नेक अन्यायों को देख कर अपनी ग़लती पर पछता रहा था। राजा नन्दकुमार ने

जी तोड़ प्रयत्न शुरू किए। सम्राट शाह आलम अभी तक बिहार में था। सम्राट और मराठों से राजा नन्दकुमार ने पत्र-व्यवहार शुरू किया। उसकी कोशिशों से मराठों ने मीर क़ासिम और अंगरेज़ों, दोनों के खिलाफ़ सम्राट की ओर से बंगाल पर हमला करने का वादा किया। बर्धमान, बीरभूम और अन्य अनेक स्थानों के राजा और ज़मींदार इस काम के लिए सम्राट के झंडे के नीचे आ-आकर जमा होने लगे।

ये सब प्रयत्न अभी चल ही रहे थे, इतने में एक ऐसी घटना हुई, जिसका भारत के अन्दर ब्रिटिश राज के क़ायम होने पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। यह घटना 6 जनवरी, सन् 1761 ई० की पानीपत की तीसरी लड़ाई थी।

मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता

भारत का राजशासन उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई हालत में था। औरंगज़ेब की संकीर्ण नीति और उसके अविश्वासी स्वभाव तथा बाद के दिल्ली के सम्राटों की विलास-प्रियता और अयोग्यता ने मुग़ल साम्राज्य को अंग-भंग और खोखला कर दिया था। अनेक छोटे-बड़े नरेशों के अलावा अवध के नवाब और दक्षिण के निज़ाम अपने-अपने सूबों के स्वच्छन्द शासक बन बैठे थे। बंगाल अभी तक नाममात्र को दिल्ली के अधीन था। किन्तु बंगाल से भी दिल्ली ख़िराज जाना कई साल से बन्द हो गया था, जिसकी वजह से शाह आलम द्वितीय को बिहार पर चढ़ाई करनी पड़ी थी। स्वयं राजधानी के पास भरतपुर के जाट राजा और रामपुर के रुहेला नवाब, दोनों अपने-अपने स्वाधीन राज क़ायम कर रहे थे। मराठों की शक्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। दिल्ली के सम्राट अभी तक भारत के सम्राट कहलाते थे, किन्तु बहुत दर्जे तक केवल नाम के लिए। पश्चिम में सिन्ध और पंजाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे और पूरब में बंगाल और बिहार, दोनों के अन्दर अंगरेज़ों की साज़िशें सफल हो रही थीं।

वास्तव में, सारे भारत पर अपनी हकूमत जमा लेने के लिए उस समय अफ़ग़ानों, मराठों और अंगरेज़ों के बीच एक तरह का तिकोना संग्राम जारी था, जिसमें अफ़ग़ान और मराठे अपने युद्ध-बल पर और अंगरेज़ अपनी कूटनीति के बल पर कामयाबी की उम्मीद कर रहे थे। उस समय देश को इस विपज्जाल से निकालने का केवल एक ही उपाय हो सकता था, वही उपाय राजा नन्दकुमार को सूझा। दिल्ली और पूना के कुछ नीतिज्ञ भी नन्दकुमार के इस विचार से सहानुभूति रखते थे।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों का नेतृत्व

सम्राट आलमगीर द्वितीय के समय में वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों को सम्राट की सहायता के लिए दिल्ली बुलवाया। उस समय के पेशवा ने अपने भाई रघुनाथ राव (राघोबा) को सम्राट की आज्ञा पालने के लिए एक बड़ी सेना सहित दिल्ली भेजा। सम्राट और पेशवा के बीच प्रेम का सम्बन्ध कायम हो गया। रघुनाथ राव ने अपनी सेना सहित और आगे बढ़ कर अहमदशाह अब्दाली के नायब के हाथों से पंजाब विजय कर लिया और एक मराठा सरदार को दिल्ली सम्राट के अधीन वहां का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

राघोबा दक्षिण लौट आया। मराठों की शक्ति इस समय शिखर पर थी। किन्तु इस अन्तिम घटना ने उनके विरूद्ध अहमदशाह अब्दाली का क्रोध भड़का दिया और सन् 1759 ई० में एक ज़बरदस्त सेना लेकर वह पंजाब पर फिर से अपना राज क़ायम करने और मराठों का विध्वंस करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान से निकल पड़ा।

सदाशिव भाऊ 20 हज़ार सवार, 10 हज़ार पैदल और तोपखाना लेकर अहमदशाह के मुकाबले के लिए पूना से रवाना हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी सदाशिव के साथ था। मार्ग में होलकर और सिंधिया की सेनाएं सदाशिव से आ मिली। राजपूत राजाओं ने सहायता के लिए अपने सवार भेजे। भरतपुर का जाट राजा 30,000 सेना लेकर स्वयं सदाशिव से आ मिला। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में सदाशिव का खूब स्वागत हुआ। अवध का नवाब शुजाउद्दौला अपनी सेना और सम्राट की सेना, दोनों को लेकर सदाशिव की मदद के लिए तैयार हो गया। एक बार मालूम होता था कि भारत के सब हिन्दू और मुसलमान विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कस के मैदान में उतर आए।

मराठा सेनापति की अदूरदर्शिता और पराजय

किन्तु सदाशिव भाऊ उस ऐन परीक्षा के समय समझदार नीतिज्ञ साबित न हो सका। गर्व ने उसकी दूरदर्शिता पर पर्दा डाल दिया। मार्ग में ही उसने कई मराठा सरदारों को अपने अनुचित व्यवहार से नाराज़ कर लिया। राजा भरतपुर को भी वह सन्तुष्ट न रख सका। दिल्ली के अन्दर उसका बर्ताव और भी बुरा रहा। क़िले में घुसते ही बहुत-सा शाही सामान उसने अपने कब्ज़े में कर लिया। दीवान ख़ास की सुन्दर क़ीमती चांदी की छत को उखड़वा कर और गलवा कर उसने 17 लाख रुपये ढलवा लिए। यह भी कहा जाता है कि वह इस समय विश्वासराव को दिल्ली के तख्त पर बैठाना चाहता था। सदाशिव भाऊ की इस अदूरदर्शी और घातक नीति का नतीजा यह हुआ कि उसके मुसलमान मित्रों के दिल उसकी ओर से फिर गए। अवध का नवाब वज़ीर उसकी ओर से सशंक हो गया और जिस उत्साह के साथ वह आक्रामक अहमदशाह के विरुद्ध मराठों की सहायता करना चाहता था, न कर सका।

6 जनवरी, सन् 1761 को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें दोनों ओर के हताहतों की संख्या लाखों तक पहुंच गई। ऐन मौक़े पर सदाशिव के व्यवहार से बेज़ार होकर भरतपुर का राजा अपनी सेना सहित मैदान से हट गया। होलकर तटस्थ रहा। सदाशिव और विश्वासराव, दोनों मैदान में काम आए। विजय अहमदशाह की ओर रही। नवाब शुजाउद्दौला ने मजबूर होकर विजयी अहमदशाह के साथ मेल कर लिया। किन्तु अहमदशाह को भी अपनी इस विजय की बहुत ज़बर्दस्त क़ीमत देनी पड़ी। उसके इतने अधिक आदमी लड़ाई में काम आए और घायल हुए कि आगे बढ़ने का इरादा छोड़ कर उसे फ़ौरन अफ़ग़ानिस्तान लौट जाना पड़ा। लौटने से पहले उसने शाह आलम द्वितीय को भारत का सम्राट स्वीकार किया और गाज़ीउद्दीन को हटा कर उसकी जगह नवाब शुजाउद्दौला को दिल्ली की सलतनत का वजीर क़रार दिया। निस्सन्देह, सदाशिव राव की नासमझी और अदूरदर्शिता की वजह से पानीपत के मैदान

में मराठों की बढ़ती हुई शक्ति चकनाचूर हो गई और उसके साथ-साथ ही दिल्ली साम्राज्य और भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता, दोनों की आशाएं कुछ समय के लिए ख़ाक में मिल गईं।

प्रोफ़ेसर सिडनी ओवेन ने सच कहा है :

"कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ-साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इतिहास के पढ़ने वाले को इसके बाद से दूर पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"*

पानीपत का परिणाम

निस्सन्देह, जिस तिकोनिया संग्राम का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसकी तीन शक्तियों में से अफ़ग़ानों को अब और आगे बढ़ कर दिल्ली सम्राट के निर्बल हाथों से भारतीय साम्राज्य की बाग छीनने का साहस न हो सकता था। मराठों की कमर टूट चुकी थी और वे अंगरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अब बंगाल तक पहुंचने के नाक़ाबिल थे। इस तरह नन्दकुमार और उसके साथियों की आशाओं पर पानीपत ने पानी फेर दिया।

एक अंगरेज़ लेखक साफ़ लिखता है :

"पानीपत की लड़ाई से मराठा संघ को जो थोड़ी देर के लिए धक्का पहुंचा, उसकी वजह से मराठे बंगाल पर हमला करने से रुक गए। इस हमले में शायद शुजाउद्दौला और शाह आलम मराठों के साथ मिल जाते और मुमकिन है कि ये लोग अंगरेज़ कम्पनी की उस सत्ता को, जो अभी उस समय तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी, सफलता के साथ उखाड़ कर फेंक देते।"†

इसके बाद केवल अंगरेज़ बाक़ी रह गए। विविध सूबों के निर्बल और अदूरदर्शी शासकों की एक-दूसरे से तोड़-फोड़ कर अपने लिए अनन्य राजनैतिक प्रभुत्व का मार्ग बना लेना अब उनके लिए काफ़ी सरल हो गया।

शाह आलम और अंगरेज़

पानीपत से हट कर हम फिर अपने असली इतिहास की ओर आते हैं। सम्राट शाह आलम द्वितीय अभी तक बिहार प्रान्त में था। सितम्बर, सन् 1760 ही में अंगरेज़ शाह आलम को अपनी ओर फोड़ने का निश्चय कर चुके थे। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक ज़मींदार, जो नई बग़ावत के ख़िलाफ़ थे, सम्राट के झंडे के नीचे जमा हो रहे थे। अंगरेज़ों ने अब जिस तरह हो, बिहार पहुंच कर सम्राट से मामला तय कर लेना जरूरी समझा। कर्नल केलो की जगह मेजर कारनक बंगाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी, सन् 1761 में कारनक पटने पहुंचा। कम्पनी की सेना के अलावा राम नारायन की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएं भी कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर के

*"With the battle of Panipat, the native period of Indian History may be said to end. Henceforth the interest gathers round the progress of the Merchant Princes from the far west."—*India in the Eve of the British Conquest* by Professor Sydney Owen.

†H. G. Keene's *Madhava Rao Scindhia*, p. 46.

पास सम्राट की सेना और इन सेनाओं का आमना-सामना हुआ । अन्त में सुलह-समझौते की बातचीत होने लगी ।

सम्राट शाह आलम कारनक को साथ लेकर पटना आया । मीर क़ासिम पटने में मौजूद था। मीर क़ासिम ने हाज़िर होकर पिछले ख़िराज के बदले में एक बहुत बड़ी नक़द रक़म सम्राट को भेंट की और अपने यहां की सरकारी टकसाल में शाह आलम द्वितीय के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टकसाल के बारे में अंगरेज़ों ने किया। मीर क़ासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से 24 लाख रुपये सालाना दिल्ली सम्राट की सेवा में भेजने का वचन दिया। सम्राट ने मार्च, सन् 1761 में तीनों प्रान्तों की सूबेदारी का परवाना बाज़ाब्ता मीर क़ासिम के नाम जारी कर दिया। अंगरेज़ों का असली मतलब पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस तरह मीर क़ासिम को शाही परवाना अता हुआ, उसी तरह जो इलाक़े अंगरेज़ कम्पनी के पास थे, उनके लिए कम्पनी को अलग सूबेदारी का परवाना मिल जाए ; किन्तु शाह आलम ने इसे मंजूर न किया । एक और प्रार्थना इस समय अंगरेज़ों ने शाह आलम से यह की कि सूबेदार मीर क़ासिम को रहने दिया जाए, किन्तु तीनों प्रान्तों की 'दीवानी' के अधिकार सूबेदार से लेकर कम्पनी को दे दिए जाएं । इस दीवानी का मतलब यह था कि अंगरेज़ सूबेदार के मातहत तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट और सूबेदार, दोनों को दे दें और वसूली का खर्च निकाल कर बाकी सब रुपया सूबेदार के सुपुर्द कर दें । इस धन से सरकारी फ़ौजें रखना, अपने प्रान्तों के शासन का बाक़ी सारा काम चलाना और सम्राट को सालाना ख़िराज भेजना सूबेदार का काम रह जाए ।

शाह आलम इस समय दिल्ली लौटने के लिए उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हक़दार के खड़े हो जाने का भी डर था। सम्राट ने चाहा कि अंगरेज़ अपनी सेना सहित मेरे साथ दिल्ली चलें । इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का 'दीवान' बना देने के लिए भी तैयार हो गया। किन्तु अंगरेज़ों के पास उस समय इस काम के लिए काफ़ी फ़ौज न थी । बंगाल के अन्दर भी वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे । इसलिए वे सम्राट की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके और जून, सन् 1761 में सम्राट शाह आलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया ।

अंगरेज़ों का राजा रामनारायन से विश्वासघात

अब अंगरेज़ों को मराठों का डर न रहा था। शाह आलम से किसी तरह निपटारा हो गया। बंगाल का मैदान फिर कम्पनी के मुलाज़िमों की लूट और जबर्दस्तियों के लिए खाली हो गया। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायन पर हुआ। अंगरेज़ों ही के बयान के अनुसार रामनारायन एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह बहुत धनवान भी मशहूर था और शुरू से अंगरेज़ों का 'पक्का हितसाधक' रह चुका था। किन्तु अब मीर क़ासिम और अंगरेज़, दोनों को रुपये की ज़रूरत थी। अपनी सेना के हाथों लोगों को पकड़वा-पकड़वा कर मीर क़ासिम के सामने पेश करना और उनसे रक़में वसूल करना अंगरेज़ों का इस समय एक ख़ास पेशा था । यह इल्ज़ाम लगा कर, कि रामनारायन के ज़िम्मे

सूबेदार का बक़ाया निकलता है, गवर्नर वन्सीटार्ट ने रामनारायन को छल से गिरफ़तार कर मीर क़ासिम के हवाले कर दिया। इसके कुछ ही समय पहले वन्सीटार्ट ने कारनक को लिखा था कि तुम्हें नवाब के हर तरह के अन्यायों से रामनारायन की रक्षा करनी चाहिए। कारनक ने सन् 1772 में पार्लियामेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि राजा रामनारायन पर बक़ाया का इलज़ाम 'बेबुनियाद' था। 17 जुलाई, सन् 1761 को कर्नल कूट ने गवर्नर और कौन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें साफ़ लिखा है कि मीर क़ासिम इस काम के लिए अंग्रेज़ों को साढ़े सात लाख रुपये देने को तैयार है। गवर्नर वन्सीटार्ट के इस काम की निन्दा करते हुए इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

> **"मिस्टर वन्सीटार्ट के शासन की यह घातक भूल थी, क्योंकि इसकी वजह से ऊंचे दर्जे के हिन्दोस्तानियों के दिलों से यह विश्वास बिल्कुल उठ गया कि अंगरेज़ कभी भी उनकी रक्षा करेंगे। इस मामले में जिस घोर अन्याय का मि० वन्सीटार्ट ने साथ दिया, उससे लोगों की यह राय हो गई कि वन्सीटार्ट अपनी कमज़ोरी से या रिश्वत लेकर किसी भी पक्ष का समर्थन करने को तैयार हो सकता है × × ×।"***

मुर्शिदाबाद में निर्दोष रामनारायन को कैद करके रखा गया, उससे खूब धन वसूल किया गया और पटने में उसकी जगह दूसरा नवाब नियुक्त कर दिया गया।

मीर क़ासिम का चरित्र

मीर क़ासिम मामूली चरित्र का मनुष्य न था। मीर जाफ़र में और उसमें बड़ा अन्तर था। मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल, स्वार्थी, अदूरदर्शी और भीरु था। इसके विपरीत, मीर क़ासिम की योग्यता, उसके बल, अपनी प्रजा के लिए उसकी हित-चिन्ता, उसकी दूरदर्शिता, उसकी वीरता और शासक की हैसियत से उसकी कार्यकुशलता की क़रीब-क़रीब सब इतिहास-लेखकों ने प्रशंसा की है। इतिहास-लेखक कर्नल मालेसन लिखता है कि मीर क़ासिम "अत्यन्त योग्य और व्यवहारकुशल मनुष्य था. . .अपने इरादों का वह लोहे की तरह पक्का था, हर बात को समझ कर उसका जल्दी से फैसला कर सकता था, उसके विचार उदार थे . . . उसका दिमाग साफ़ था और उसका चरित्र मज़बूत था।†"

एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है : "मीर क़ासिम के अन्दर एक सिपाही की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता, दोनों मौजूद थीं" !‡ कर्नल मालेसन लिखता है कि मीर क़ासिम को मीर जाफ़र के साथ देशघातकों की पंक्ति में रखना मीर क़ासिम के साथ अन्याय करना है। वह यह भी लिखता है कि मीर क़ासिम का

---

*"This was the fatal error of Mr. Vansittart's administration; because it extinguished among the natives of rank all confidence in the English protection; and because the enormity to which, in this instance, he had lent his support, created an opinion of a weak or corrupt partiality............"—Mill, vol. iii, p. 224.

†"..................a man of great tact and ability............of iron will, quick decision large views...............of clear head and strong character,"—*The Decisive Battles of India* by Colonel Malleson, pp. 127, 145.

‡"He united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman." *ansactions in India from* 1757 to 1783.

इरादा मीर जाफ़र के साथ विश्वासघात करने का न था। मीर क़ासिम ने, अपने बूढ़े ससुर मीर जाफ़र की निर्बलता, कायरता और अयोग्यता को अच्छी तरह महसूस कर लिया था। उसकी आत्मा यह देखकर दुखी थी कि बंगाल का सूबेदार विदेशियों के हाथों की केवल एक कठपुतली बन कर रह गया था। इसलिए मीर क़ासिम ने जिस तरह हो सके, सूबेदार की सत्ता को फिर से कायम करने का संकल्प किया।* मीर क़ासिम और अंगरेज़ों में जो गुप्त समझौता हुआ था, वह केवल मीर क़ासिम को मीर जाफ़र का प्रधान मन्त्री बनाने का हुआ था और मीर क़ासिम को आशा थी कि प्रधान मन्त्री की हैसियत से मैं सूबेदारी की सत्ता को फिर से कायम कर सकूंगा। किन्तु जब एक बार यह सब मामला निर्बल और सशंक मीर जाफ़र पर प्रकट कर दिया गया और मीर जाफ़र को मीर क़ासिम पर भरोसा न हो सका, तब फिर मीर क़ासिम के लिए पीछे हट सकना नामुमकिन हो गया। इसमें भी शक नहीं कि मीर क़ासिम ने गद्दी पर बैठते ही बंगाल की हालत को सुधारने की जी तोड़ कोशिश की और इस कोशिश में उसे एक दर्जे तक सफलता भी मिली।

मीर क़ासिम के सुधार

माल और खज़ाने के महकमों में उसने कई सुधार किए। सन् 1762 तक उसने न केवल अपनी फ़ौज की तमाम पिछली तनखाहों को अदा कर दिया और अंगरेज़ों की एक-एक पाई चुकता कर दी, बल्कि शासन का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि सूबेदारी की आमदनी सालाना खर्च से बढ़ गई। अंगरेज़ों पर उसे शुरू से विश्वास न था, इस पर भी उसने अंगरेज़ों के साथ अपने वचन का पूरी तरह पालन किया। मुर्शिदाबाद की राजधानी में इन विदेशियों का प्रभाव बढ़ गया था, इसलिए मीर क़ासिम ने मुंगेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने अधिकतर मुंगेर ही में रहना शुरू कर दिया। मुंगेर की उसने बड़ी सुन्दर और मज़बूत किलेबन्दी की। क़रीब चालिस हज़ार फ़ौज वहां जमा की। उस फ़ौज को यूरोपियन ढंग से हथियारों की शिक्षा देने के लिए अपने यहां कई योग्य यूरोपियन नौकर रखे। एक बहुत बड़ा नया कारखाना तोपें डालने का उसने क़ायम किया जिसकी तोपों के बारे में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से हर तरह बढ़ कर थीं। मीर क़ासिम की प्रजा उससे सन्तुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीर क़ासिम के खिलाफ़ अंगरेज़ों की साज़िश

किन्तु ज्यों ही मीर क़ासिम और उसकी प्रजा के थोड़ा-बहुत पनपने का समय आया, त्यों ही मीर क़ासिम को भी गद्दी से उतारने की तैयारियां शुरू हो गईं। कर्नल मालेसन साफ़ लिखता है कि मीर क़ासिम ने अंगरेज़ों के साथ अपने सब वादे पूरे कर दिए, "किन्तु लालची अंगरेज़ों को अपनी धन-पिपासा शान्त करने का सबसे अच्छा उपाय यही दिखाई दिया कि मीर क़ासिम का नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नए सिरे से सौदा किया जाए।"†

**The Decisive Battles of India*, p. 128.

†"Mir Kassim performed his covenant. But...........men greedy of gain, ...deeming that the shortest road to their end lay in compassing the ruin of Mir Kassim, in order to make a market of his successor."—*The Decisive Battles of India*, **p. 134.**

जिस तरह मीर जाफ़र के ख़िलाफ अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम को अपनी साज़िश का केन्द्र बनाया था, उसी तरह अब उलट कर मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ बढ़े मीर जाफ़र को इन नई साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। मीर क़ासिम के खिलाफ़ सामग्री तैयार करते के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी से कुछ मेम्बरों ने 11 मार्च, सन् 1762 को कम्पनी के डायरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीर क़ासिम और उसके चरित्र पर अनेक झूठे-सच्चे दोष लगाए, मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ें की, यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इससे पहले जो दोष लगाए जा चुके थे, वे सब झूठ थे और मीर जाफ़र को गद्दी से उतारना एक भूल और अन्याय था और लिखा –

> **"जब से वह (मीर क़ासिम) सूबेदार बना है, तब से उसके ज़ुल्मों और लूट—खसोट की बेशुमार मिसालें हम आपको दे सकते हैं। किन्तु उससे यह पत्र बेहद लम्बा हो जाएगा × × × । हम केवल एक रामनारायन का हाल खास तौर पर देते हैं, जिसे मीर क़ासिम ने पटने की नवाबी से अलग कर दिया। यह बात मानी हुई है कि रामनारायन अपने वचन का सच्चा है, इसीलिए उसकी नायबी का समर्थन करना हम सदा अपने लिए हितकर समझते रहे। मीर क़ासिम आजकल रामनारायन को हथकड़ी डाल कर रखे हुए है और उस समय तक रखेगा जब तक कि वह उससे हद दर्जे धन न चूस ले। इसके बाद कोई सन्देह नहीं कि रामनारायन का काम तमाम कर दिया जाएगा। जिन-जिन लोगों ने अंगरेज़ों को साथ दिया था, उनमें से सब नहीं, तो अधिकांश से मीर क़ासिम भारी-भारी रक़में वसूल कर चुका है। रुपये वसूल करने के लिए जो-जो तकलीफ़ें उन्हें दी गई हैं, उनसे कई मर चुके। बहुतों को या तो कमीनेपन के साथ क़त्ल कर दिया गया और या (जो हिन्दोस्तानियों में अकसर होता है) बेइज्ज़ती से बचने के लिए उन्होंने ख़ुद आत्महत्या कर ली × × ×।"**

मीर क़ासिम पर झूठे इल्ज़ाम

मीर क़ासिम के चरित्र को कलंकित करने में अब इन लोगों ने कोई कसर उठा न रखी। अंगरेज़ों को रुपए देने के लिए ही मीर क़ासिम को अपने अनेक आश्रितों पर ज़ुल्म करने पड़े। ख़ुद अंगरेज़ों ही इस तरह के अनेक अभागों को ला-लाकर मीर क़ासिम के हवाले करते थे। अंगरेज़ों ही ने साढ़े सात लाख रुपये या कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र, निर्दोष रामनारायन को छल से पकड़ कर मीर क़ासिम के हाथों में दिया और अब अंगरेज़ ही मीर क़ासिम को इन सब अन्यायों के लिए ज़िम्मेदार ठहराते थे।

एक इल्ज़ाम मीर क़ासिम पर यह भी था कि वह अपनी फ़ौज बढ़ा रहा है, उन्हें यूरोपियन ढंग की क़वायद और यूरोपियन हथियारों का इस्तेमाल सिखा रहा है और नई क़िलेबन्दियां कर रहा है (!)।

इसी पत्र में इन लोगों ने लिखा कि मीर जाफ़र के चरित्र के ख़िलाफ जितने इल्ज़ाम गवर्नर वन्सीटार्ट ने लगाए थे, वे सब झूठे हैं, उनका उद्देश्य केवल "लोगों के चित्तों को मीर जाफ़र की ओर से फेर देना था" और यह कि मीर जाफ़र को गद्दी से उतारने और मीर क़ासिम को उसकी जगह बैठाने से सारी प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट है। कमेटी के छै मेम्बरों

के इस पत्र पर दस्तख़त हैं। इस पत्र को पढ़ने के बाद कम्पनी के उस समय के अंग्रेज मुलाज़िमों के किसी भी पत्र या बयान पर कुछ भी विश्वास कर सकना क़तई नामुमकिन है।

अंगरेज़ों की लूट-खसोट

तिजारत और सरकारी महसूल सम्बन्धी अंगरेज़ों के अत्याचार इस समय तक सारे बंगाल में फैल चुके थे और बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के विषय में कर्नल मालेसन लिखता है :

> **"इस लज्जास्पद और अन्यायपूर्ण व्यवहार का नतीजा यह हुआ कि प्रतिष्ठित देशी व्यापारी सब बरबाद हो गए, ज़िले-के-ज़िले निर्धन हो गए, देश का सारा व्यापार उलट-पुलट हो गया और व्यापार के ज़रिए नवाब को जो आमदनी होती थी, उसमें लगातार और तेज़ी के साथ कमी आती गई। मीर क़ासिम ने बार-बार कलकत्ते की कौन्सिल से इस ज़्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।"***

अन्त को इन बेशुमार शिकायतों के जवाब में इस सब मामले का निपटारा करने के लिए 30 नवम्बर, सन् 1762 को गवर्नर वन्सीटार्ट और वारेन हेस्टिंग्स नवाब से भेंट करने के लिए मुंगेर पहुंचे। मीर क़ासिम ने जो शिकायतें इस मौके पर वन्सीटार्ट के सामने पेश कीं, उनमें से एक यह भी थी :

> **"जब सूबेदार (मीर क़ासिम) बिहार की ओर गया हुआ था और बंगाल में कोई हाकिम न रहा था, उस समय अंगरेज़ों ने अपने अत्याचारों से सब सूबे के हर ज़िले और हर गांव को तबाह कर डाला, प्रजा से उनकी रोज़ की रोटी तक छीन ली और सरकारी महसूलों और मालगुज़ारी का जमा होना बिल्कुल बन्द हो गया था। इससे सूबेदार को क़रीब एक करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ × × ×।"†**

मुंगेर की सन्धि

15 दिसम्बर, सन् 1762 को वन्सीटार्ट और मीर क़ासिम के बीच एक सन्धि हुई, जो 'मुंगेर की सन्धि' के नाम से मशहूर है। और बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अंगरेज़ व्यापारी आइन्दा से नमक, तम्बाकू, छालिया इत्यादि सब चीज़ों के ऊपर 9 फ़ीसदी महसूल दिया करें और हिन्दोस्तानी व्यापारी इन्हीं तमाम चीज़ों पर 25 फ़ीसदी महसूल दिया करें। देश के व्यापारियों के साथ यह घोर अन्याय था, फिर भी मीर क़ासिम ने शान्ति बनाए रखने की इच्छा से इसे स्वीकार कर लिया।

---

*"The results of this shameful and oppressive system were that the respectable class of native merchants were ruined, whole districts became improverished, the entire native trade became disorganised and the Nawab's revenue from that source suffered a steady and increasing declension. In vain did Mir Kassim represent, again and again, these evils on the Calcutta Council."—*The Decisive Battles of India*, p. 137.

†"When His Excellency went to Behar, Bengal being left without a ruler, every village and district in that province was ruined through the oppression of the English, the subjects of the Sarkar were deprived of their daily bread, and the collection of the revenues was entirly stopped, so that His Excellency lost nearly a crore of rupees.................." *Calendar of Persian Correspondence*, p. 194, No. 1695.

वन्सीटार्ट और हेस्टिंग्स, दोनों ने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किए और दोनों ने कलकत्ता कौन्सिल के नाम अपने 15 दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की 'न्यायसंगता' और 'उदारता' और मीर क़ासिम की 'सच्चाई', तीनों की तारीफ़ की। वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम से वादा किया कि कलकत्ते पहुंच कर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूंगा। किन्तु कलकत्ते वापस पहुंचते ही बजाय 'सब मामला तय' करने के, गवर्नर वन्सीटार्ट ने कम्पनी और उसके आदमियों की धींगाधींगी को पहले की तरह जारी रखने के लिए जगह-जगह नई फ़ौजे रवाना कर दीं। इसके साथ-साथ कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल ने अपना बाज़ाब्ता इजलास करके फ़ौरन तमाम अंगरेजी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास ये खुली हिदायतें भेज दीं और मुंगेर की शर्तों पर हरगिज़ कोई अमल न करें और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर ज़ोर दें, तो उनकी खूब गत बनाई जाए। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुंगेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सीटार्ट ने नवाब मीर क़ासिम से सात लाख रुपये रिश्वत ली थी। जो हो, सन्धिपत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई बोलते थे या महसूल मांगते थे, तो पहले की तरह उन पर मार पड़ती थी। मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट को 5 मार्च, सन् 1763 के पत्र में फिर लिखा कि—

> **"तीन साल से सरकार को अंगरेजों से एक भी पाई या एक भी चीज नहीं मिली। उसके खिलाफ़ सरकार के कर्मचारियों से अंगरेज बराबर जुर्माने और हर्जाने वसूल कर रहे हैं।"**

मीर क़ासिम का चुंगी उठवा देना

मीर क़ासिम ने बार-बार शिकायत की, किन्तु कोई फल न हुआ। विदेशी व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना, दोनों बराबर जारी रहे। इस अन्याय से देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। अन्त को मजबूर होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख 22 मार्च, सन् 1763 को मीर क़ासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुंगी की तमाम चौकियों के उठवा दिए जाने का हुक्म दे दिया और सूबे भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक किसी तरह के तिजारती माल पर किसी से किसी तरह का भी महसूल न लिया जाएगा। मीर क़ासिम की सालाना आमदनी को इससे ज़बरदस्त धक्का पहुंचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें ज़िन्दा रखने का मीर क़ासिम को और कोई उपाय न सूझ सका। इस आज्ञा से मीर क़ासिम की बेबसी और उसकी प्रजापालकता, दोनों प्रकट होती हैं।

बंगाल में फिर से खुशहाली

हजारों हिन्दोस्तानी व्यापारियों को इस एलान से लाभ हुआ। वे अंगरेज़ों से कम खर्च में ज़िन्दगी बसर कर सकते थे और अपना माल सस्ता बेच कर भी नफ़ा कमा सकते थे। तिजारत का दरवाजा एक बार फिर खुल गया। फिर चारों ओर से आ-आकर बंगाल में व्यापारियों की तादाद बढ़ने लगी और देश की तिजारत और खेती, दोनों फिर ज़ोरों के साथ उन्नति करने लगीं। अंगरेज़ों को यह कब गवारा हो सकता था। फ़ौरन कलकत्ते में

फिर कौन्सिल का इजलास हुआ। यह तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा नाजायज़ है और नवाब को मजबूर किया जाए कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापारियों से पहले की तरह महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नाम के दो अंगरेज़ जाकर नवाब से मिलने और सब बातें नए सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

दूसरा सूबेदार खड़ा करने की तजवीज

बंगाल की प्रजा और बंगाल के शासक, दोनों के साथ ज़बर्दस्तियों का प्याला अब लबालब हो चुका था। मीर क़ासिम को यह भी मालूम था कि बंगाल के तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली सम्राट के साथ अंगरेज़ों का गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी है। मीर क़ासिम और वन्सीटार्ट के दरम्यान इस समय जो पत्र-व्यवहार हुआ वह पढ़ने के योग्य है। मीर क़ासिम ने बार-बार अपने कर्मचारियों और अपनी प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के अत्याचारों की शिकायतें कीं। अत्यन्त दर्दभरे शब्दों में उसने लिखा कि—"कम्पनी के जो तिलंगे सिपाही सम्राट और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रखे गए थे और जिनके खर्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपये की ज़मींदारी दे चुका हूं, वे अब देश भर में मेरे और मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाए जा रहे हैं।" अन्त को एक पत्र में उसने साफ़-साफ़ लिखा कि—"मुझे मालूम हुआ है कि बहुत-से अंगरेज़ एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। हर शख्स पर ज़ाहिर है कि यूरोपवालों का एतबार नहीं किया जा सकता।"

मीर क़ासिम के साथ अंगरेज़ों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है :

> **"मीर जाफ़र को गद्दी से हटाने के बाद से तीन साल तक जो अनुचित, नीच और शर्मनाक काम कलकत्ते की अंगरेज़ गवर्नमेण्ट ने किए, उनसे अधिक अनुचित, नीच और शर्मनाक कामों की मिसालें किसी भी क़ौम के इतिहास में नहीं मिलतीं*।"**

मालेसन यह भी लिखता है —कि "मीर क़ासिम का एकमात्र कसूर यह था कि उसने यूरोप-निवासियों की लूट से अपनी प्रजा की रक्षा करने की कोशिश की।"† इस पर भी "मीर क़ासिम अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख, इन दोनों का नाश किए बिना और किसी भी क़ीमत पर अंगरेज़ों के साथ अमन से रहने को उत्सुक था।"‡

मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश अभी पूरी तरह पकने न पाई थी, इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिख दिया : "यह क़िस्सा कि अंगरेज़ दूसरा नाज़िम खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज़ लोगों की मनगढ़न्त है × × ×।"

---

*"The annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful, than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jaffar."—*The Decisive Battles of India*, p. 133.

†"Whose only fault..................was his endeavour to protect his subjects from European extortion."—Ibid, p. 136.

‡"Mir Kassim, still anxious for peace at any price short of sacrificing his own independence and the happiness of his people."—Ibid, p. 140.

मीर क़ासिम से नई-नई मांगें

इसके बाद जब बन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नय। संधि करने के लिए मुंगेर भेजे जा रहे हैं, तब मीर क़ासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई संधि करना क़ायदे के खिलाफ़ है, क्योंकि इंसानों की संधियों की कुछ उम्र होती है।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों तरफ़ फ़ौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझ से बातचीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं!"

ऐमयाट और हे को मुंगेर भेजना केवल एक दिखावे की चाल थी। बंगाल के अन्दर इस तीसरी बग़ावत के लिए अंगरेज़ों की तैयारी ज़ोरों के साथ जारी थी।

मीर क़ासिम को इतने में पता चला कि उसके विरुद्ध साज़िशों का जाल स्वयं उसकी राजधानी के अंदर पूरा फैल चुका है। वही जैन जगतसेठ, जो छह साल पहले सिराजुद्दौला को गिराने में अंगरेज़ों का सहायक था, अब फिर इस नई साज़िश में शामिल था। पता चलते ही मीर क़ासिम ने जगतसेठ और उसके भाई स्वरूपचंद, दोनों को मुंगेर बुला कर नज़रबंद कर दिया। ये दोनों भाई मीर क़ासिम की प्रजा थे। अंगरेज़ों को इस पर एतराज़ करने का कोई हक़ न था, किंतु बन्सीटार्ट ने इस पर भी एतराज़ किया।

इस बीच ऐमयाट और हे, दोनों मुंगेर पहुंच गए। 25 मई, सन् 1763 को इन दोनों ने कंपनी की ओर से 11 नई मांगें लिख कर मीर क़ासिम के सामने पेश कीं—(1) यह कि अंगरेज़ कौंसिल ने तिजारती महसूल और एजेंटों के बारे में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों-का-त्यों लिख कर स्वीकार करे; (2) यह कि नवाब अपनी प्रजा यानी देशी व्यापारियों पर नए सिरे से महसूल लगाए और अंगरेज़ों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे; (3) यह कि अंगरेज़ों और उनके जिन-जिन आदमियों को महसूल सम्बन्धी नई आज्ञा से धन का नुकसान हुआ है, नवाब उन सबका हर्जाना पूरा करे; (4) यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को, जिन्हें अंगरेज़ कहें, दंड दे; इत्यादि, इत्यादि।

हथियारों से भरी हुई किश्तियां

निस्संदेह, कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार नवाब के साथ बहुत रूखा और धृष्टतापूर्ण था। यहां तक कि उसने मीर क़ासिम की शिकायतें सुनने तक से इन्कार कर दिया। वास्तव में अंगरेज़ फिर युद्ध चाहते थ और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। 14 अप्रैल, सन् 1763 ही को अंगरेज़ों ने अपनी सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अंगरेज़ कंपनी के एजेंट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहां के नायब नाज़िम को दिक़ करना और बात-बात के उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करना शुरू कर दिया। मीर क़ासिम ने अनेक बार बन्सीटार्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर क़ब्जा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की क़ाफी सेना पहले ही पटने पहुंचा दी गई थी। उधर ऐमयाट साहब सुलह के लिए मुंगेर में ठहरे हुए थे। और इधर हथियारों से भरी हुई कई किश्तियां एलिस की मदद के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये किश्तियां मुंगेर के पास से निकलीं, नवाब उन्हें देख कर चौंक गया। उसने किश्तियों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

और 2 जून, सन् 1763 को बन्सीटार्ट को लिखा : "कम्पनी की नई मांगें बेजा और पहली संधियों के ख़िलाफ़ हैं × × × पटने की अंगरेज़ी फ़ौज या तो कलकत्ते वापस बुला ली जाए और या मुंगेर में रखी जाए, नहीं तो मैं निज़ामत छोड़ दूंगा।"

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर क़ासिम से साफ़-साफ़ कहा कि बजाय वापस बुलाने के, पटने में अंगरेज़ी फ़ौज बढ़ाई जाएगी। हथियारों की किश्तियां मुंगेर में रुकते ही कलकत्ते की कौंसिल ने, जो केवल एक बहाने के इंतज़ार में थी, ऐमयाट और हे को वापस बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम फ़ौरन पटने पर हमला करके नगर पर क़ब्ज़ा कर लो।

पटने पर अचानक रात के समय हमला

24 जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर क़ब्ज़ा कर लिया। मीर क़ासिम की बरदाश्त की कोई हद न थी। इतिहास-लेखक एलफ़िन्सटन लिखता है कि—"उसे गुस्सा आने के बेशुमार कारण होते हुए भी उसने धीरज और बरदाश्त से काम लिया।"* किंतु अब मजबूर होकर उसे एलिस के खिलाफ़ सेना भेजनी पड़ी। मीर क़ासिम की सेना के मुक़ाबले अंगरेज़ी सेना अब भी कोई चीज़ न थी। मीर क़ासिम की सेना ने पटने पहुंचकर फिर से नगर अंगरेज़ों से विजय कर लिया। इस बार की लड़ाई में कंपनी के 300 यूरोपियन और ढाई हजार हिंदोस्तानी सिपाही काम आए। एलिस और उसके कई यूरोपियन साथी 1 जुलाई को क़ैद करके मुंगेर पहुंचा दिए गए।

ऐमयाट की मौत

ऐमयाट चुपके से किश्ती में बैठ कर कलकत्ते की ओर भाग गया। मीर क़ासिम ने हे को मुंगेर में रोक लिया। मालूम होता है, मीर क़ासिम ने अपने आदमियों को हुक्म भेज दिया कि ऐमयाट को भी रोक कर वापस मुंगेर भेज दिया जाए। क़ासिमबाज़ार के निकट नवाब के एक कर्मचारी, मोहम्मद तक़ी खां ने अपने एक आदमी को भेज कर ऐमयाट से खाना खाने के बहाने किनारे पर आने की प्रार्थना की। ऐमयाट ने इंकार किया और उसकी किश्तियां बीच धार से चलती रहीं। एक दूसरा उच्च कर्मचारी भेजा गया, जिसने किनारे से फिर कहा कि खाना तैयार है और यदि आप सेनापति मोहम्मद तक़ी खां की प्रार्थना स्वीकार न करेंगे, तो उन्हें दुख होगा। ऐमयाट ने फिर इंकार कर दिया। इसके बाद किनारे के अफ़सरों ने किश्तियों को रुकने का साफ़ हुक्म दिया। जवाब में ऐमयाट ने वहीं से किनारे की ओर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। नवाब के आदमियों ने अब ज़बर्दस्ती किश्तियों पर पहुंच कर अंगरेज़ों की मरम्मत की। ऐमयाट का वहीं पर काम तमाम हो गया।

मीर क़ासिम की प्रजा के साथ ज़ुल्म

28 जून को मीर क़ासिम ने बन्सीटार्ट और उसकी कौंसिल के नाम यह ख़त लिखा :

"× × × रात को डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के क़िले पर हमला किया, वहां के बाज़ार को, तमाम व्यापारियों और नगर के लोगों को लूटा

---

*"......He conducted himself under innumerable provocations with temper and forbearance,......"—*Rise of the British Power in India by Elphinstone,* pp. 390, 391.

और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और क़त्ल जारी रखा। × × × चूंकि आप लोगों ने बेइन्साफ़ी और ज़ुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बर्बाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया है, इसलिए अब इन्साफ़ यह है कि कम्पनी ग़रीबों का नुक़सान भर दे, जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसा मसीह के नाम से क़सम खाई। इस शर्त पर, कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी, आपने सेना के खर्च के लिए मुझसे इलाक़ा लिया। असल में मेरे ही नाश के लिए आप फ़ौज रख रहे थे, क्योंकि उसी फ़ौज के हाथों से सब काम हुए हैं × × × इसके अलावा कई साल से अंगरेज़ गुमाश्तों ने मेरी निज़ामत के अन्दर जो-जो ज़ुल्म और ज्यादतियां की हैं, जो बड़ी-बड़ी रक़में लोगों से जबर्दस्ती वसूल की हैं और जो नुक़सान किए हैं, मुनासिब और इन्साफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उस सबका हर्जाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की जरूरत है कि जिस तरह से बर्धमान और दूसरे इलाक़े आपने लिए थे, उसी तरह मुझ पर इनायत करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"*
निस्संदेह, मजबूर होकर मीर क़ासिम ने अब सख्ती से काम लेना चाहा।

मीर जाफ़र के साथ दोबारा साज़िश

7 जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुंचा। उसी रोज़ कलकत्ते की अंगरेज़ी कौंसिल की ओर से मीर क़ासिम के साथ युद्ध का ऐलान प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर क़ासिम की जगह मीर जाफ़र को अब फिर से बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफ़र ही के नाम पर बंगाल भर से सेना जमा की गई और मीर जाफ़र ही के नाम पर प्रजा से अंगरेज़ी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस ऐलान से पहले ही पटना विजय हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अंगरेज़ व्यापारियों की कौंसिल को बंगाल के सूबेदार को गद्दी से उतारने का और दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

मीर जाफ़र के साथ जो नई संधि इस अवसर पर की गई, उसका ज़िक्र अगले अध्याय में किया जाएगा।

कई छोटी-छोटी लड़ाइयां

कंपनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन 5 जुलाई को, यानी युद्ध के ऐलान से दो दिन पहले, कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर क़ासिम की सेना सिपहसालार मोहम्मद तक़ी खां के अधीन मुंगेर से चली। तक़ी खां बहादुर और योग्य सेनापति था, किन्तु उसकी तमाम तजवीजों में बात-बात में मुर्शिदाबाद का नायब-नाज़िम सैयद मोहम्मद खां, जो अब अंगरेज़ों से मिला हुआ था, रुकावटें डालता रहता था। तक़ी खां की सेना के अंदर भी अंगरेज़ काफ़ी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे।

---

*Long's *Selections*, pp. 325, 326.

तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटी-बड़ी लड़ाइयां हुईं। इन लड़ाइयों का विस्तृत हाल 'सीअरुल-मुताख़रीन' नामक ग्रंथ में दिया हुआ है। उस ग्रंथ में मुसलमान सेना के अंदर एक ख़ास देशघातक, मिर्ज़ा ईरज खां का ज़िक्र आता है जिसने भीतर-ही-भीतर अंगरेज़ों से मिल कर मीर क़ासिम और मोहम्मद तक़ी ख़ां, दोनों के साथ दग़ा की। क़रीब दो सौ यूरोपियन और दूसरे ईसाई, जो नवाब की सेना में, खास कर तोपखाने में नौकर थे, ऐन मौक़े पर शत्रु की ओर जा मिले। इन लड़ाइयों में से एक में मोहम्मद तक़ी ख़ां मार डाला गया। इन लड़ाइयों के संबंध में मालेसन लिखता है कि—"अंगरेज़ों की सफलता में जितनी मदद भारतीय नेताओं और नरेशों की आपसी कलह से मिली, उतनी दूसरी किसी चीज़ से नहीं मिली।"*

उदवा नाला में दोनों ओर की फ़ौजें

मीर क़ासिम की सेना ने अब उदवा नाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अंतिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर क़ासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिल कर इस स्थान को सुरक्षित और अभेद्य बना रखा था। एक ओर गंगा थी, दूसरी ओर उदवा नाला नामक गहरी नदी, जो गंगा में गिरती थी, तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियां और चौथी ओर मीर क़ासिम की बनाई हुई जबर्दस्त खाड़ियां और क़िलेबंदी, जिसके ऊपर सौ से अधिक मजबूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर की ओर एक झील और एक लंबी-चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अंदर से ही दुर्ग से बाहर आने-जाने का एक अत्यंत पेचदार रास्ता था, जिसका अंगरेज़ी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर क़ासिम की सेना इस दुर्ग के अंदर और कंपनी की सेना, जिसके साथ बूढ़ा 'गधा' मीर जाफ़र भी था, उदवा नाला के बाहर पड़ी रही किंतु न अंगरेज़ अपनी तोपों के गोलों से संगीन क़िलेबंदी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को ज़रा भी हानि पहुंचा सकें। दूसरी ओर एक साहसी और परहेज़गार मुसलमान सेनापति, मिर्ज़ा नजफ़ ख़ां रोज़ रात के पिछले पहर उसी दलदल के रास्ते आकर अंगरेज़ी सेना पर धावा करता और अनेक को ख़त्म कर और बहुत-सा माल लेकर उसी रास्ते लौट जाता। अंगरेज़ी सेना किसी तरह उसका पीछा न कर पाती थी। लड़ाई का सामान भी अंगरेज़ों की निस्बत मीर क़ासिम की सेना के पास कहीं अच्छा था। अंगरेज़ इतिहास-लेखक ब्रूम लिखता है कि भारत की बनी हुई जो बंदूकें इस समय मीर क़ासिम की सेना के पास थीं, वे अंगरेज़ी सेना की इंगलिस्तान की बनी हुई बंदूकों से धातु, बनावट, मज़बूती, उपयोगिता इत्यादि सब बातों में कहीं बढ़िया थीं।† ईमानदारी की लड़ाई से अंगरेज़ किसी तरह मीर क़ासिम पर विजय न प्राप्त कर सकते थे।

मीर क़ासिम के ईसाई अफ़सरों की नमकहरामी

मीर क़ासिम की सेना का एक खास दोष, जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के बड़े-बड़े

*"Few things have more contributed to the success of the English than the action of jealously of each other of the native princes and leaders of India."—Ibid, p. 150.

† *History of the Bengal Army* by Broome, p. 351.

ओहदों पर नियुक्त कर रखा था। ईसा कि 11-वीं सदी से लेकर, जब कि यूरोप की कई ईसाई शक्तियों ने मिल कर पहली बार मुसलमानों से जेरूसेलम (बैतुलमुक़द्दस) छीनना चाहा, आज तक हज़रत ईसा और हज़रत मोहम्मद के अनुयायियों के बीच लगभग लगातार संग्राम होते रहे हैं। ईसाई ताक़तों ने अनेक मुसलमान राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटा कर अनेक बार अपना जुआ मुसलमान क़ौमों के कंधों पर रखा है। ईसाइयों और मुसलमानों की सदियों की इस दुश्मनी के अलावा भी यूरोपियनों का, खास कर किसी यूरोपियन क़ौम के विरुद्ध, अपने किसी एशियाई मालिक के साथ वफ़ादारी बरत सकना क़रीब-क़रीब नामुमकिन है। इस सच्चाई को न समझ सकना बार-बार अनेक भारतीय और दूसरे एशियाई शासकों के लिए घातक साबित हुआ है।

कलकत्ते में इस समय आरमीनिया का एक मशहूर ईसाई सौदागर, ख़ोजा पेतरूस रहता था। इस सौदागर का एक भाई, ख़ोजा ग्रिगरी मीर क़ासिम की सेना में एक अफ़सर था। और भी कई आरमीनियन ईसाई मीर क़ासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने ख़ोजा पेतरुस की मार्फ़त गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन सब लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

एक अंगरेज़ विश्वासघातक

इनके अलावा मीर क़ासिम की सेना में एक अंगरेज़ सिपाही भी था, जो कुछ समय पहले अंगरेज़ी सेना को छोड़ कर नवाब के यहां भरती हो गया था। इस अंगरेज़ को अपनी सेना में भरती कर लेना भी मीर क़ासिम के नाश का सबसे बड़ा सबब साबित हुआ। उस अंगरेज़ ने मिर्ज़ा नजफ़ ख़ां के आने-जाने के मार्ग धीरे-धीरे अच्छी तरह देख लिया और एक दिन, जब कि मालूम होता है दुर्ग के भीतर के दूसरे ईसाई और ग़ैर-ईसाई विश्वासघातकों के साथ जारी साज़िश पक चुकी थी, 4 सितम्बर की रात को क़रीब दस बजे यह अंगरेज़ चुपके से नवाब की सेना से निकल कर अंगरेज़ी सेना की ओर चला गया और वहां से शत्रु की सेना को साथ ले उसी मार्ग से रातो-रात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। क़िले के अंदर के और भी कई अफ़सर शत्रु से मिले हुए थे और 'सीअरुल मुताख़रीन' से पता चलता है कि अनेक अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की कमजोरी पर ज़रूरत से ज़्यादा भरोसा करके अपने कर्तव्य से बेख़बर हो गए थे। ऐसी स्थिति में सेना का भी कर्तव्यविमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। नतीजा यह हुआ कि मीर क़ासिम के पूरे पंद्रह हज़ार सैनिक उस रात की अचानक लड़ाई में काम आए।

इस अंगरेज़ विश्वासघातक के काम के बारे में कर्नल मालेसन लिखता है:

> **"केवल इस एक व्यक्ति ने अंगरेज़ों की नाउम्मेदी को विश्वास में बदल दिया और इस काम के नतीजे ने मीर क़ासिम की सेना के आत्मविश्वास को नाउम्मेदी में बदल दिया। अंगरेज़ी सेना के लिए इस आदमी ने इस मौक़े पर ईश्वर का सा काम किया।"***

---

* "It was the act of a single individual which converted the despair of the English into confidence; it was the consequence of that act which changed the confidence of Mir Kassim's army into despair. The individual on this occasion performed the divine function for the English army."—*History of the Bengal Army* by Broome, p. 157.

"जनरल एडम्स ने मीर क़ासिम की सेना को केवल विजयी ही नहीं किया, बल्कि उसका संहार कर डाला।"* मीर क़ासिम की क़रीब चार सौ तोपें इस युद्ध में अंगरेज़ों के हाथ आईं।

उदवा नाला की पराजय

उदवा नाला ही विदेशी व्यापारियों के विरुद्ध बंगाल के भारतीय सूबेदारों की आशा का अंतिम आधार था। 4 सितंबर, सन् 1763 की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज़ सिराजुद्दौला के लिए प्लासी साबित हुई, वही मीर क़ासिम के लिए उदवा नाला साबित हुआ और दोनों जगह क़रीब-क़रीब एक ही से उपायों से अंगरेज़ व्यापारियों ने बंगाल की शाही सेना पर विजय प्राप्त की।

उदवा नाला की पराजय का एक सबब यह भी बताया जाता है कि उस रात को मीर क़ासिम खुद अपनी सेना के साथ दुर्ग के अंदर मौजूद न था। अंगरेज़ इतिहास-लेखक बोल्ट्स की राय है कि यदि मीर क़ासिम स्वयं अपने अफ़सरों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को उत्साह दिलाने के लिए मौजूद होता तो—"शायद ही नहीं, बहुत ज्यादा मुमकिन है कि उस दिन से अंगरेज़ कंपनी के पास इन प्रांतों में एक फुट ज़मीन भी न रह जाती।"†

कुछ खास-खास विश्वासघातक

उदवा नाला की पराजय से मीर क़ासिम को बहुत बड़ा धक्का लगा, किन्तु फिर भी उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। उदवा नाला के बाद उसके मुंगेर के क़िले को संभाला। यह क़िला भी अत्यंत मज़बूत था। उसकी रक्षा का उचित प्रबंध कर मीर क़ासिम अज़ीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। 'सीअरूल-मुताख़रीन' से पता चलता है कि मीर क़ासिम के जाते ही मुंगेर के क़िलेदार अरब अली खां ने नक़द रिश्वत लेकर अपना क़िला चुपचाप अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया। अंगरेज़ों ने मुंगेर पर क़ब्ज़ा जमा कर, अब मीर क़ासिम का पीछा किया। महाराजा कल्यानसिंह की पुस्तक 'खुलासतुल-तवारीख' में लिखा है कि अज़ीमाबाद क़िले के संरक्षक मीर मोहम्मदअली खां ने अपने लिए पांच सौ रुपए मासिक पेंशन कंपनी से मंजूर करा कर बिना लड़े वहां का क़िला भी शत्रु के हवाले कर दिया।

मीर क़ासिम को इस समय अपने चारों ओर सिवाय दग़ा के और कुछ नज़र न आता था। अंगरेज़ों को अब केवल दो बातों की चिंता थी। एक तो एलिस इत्यादि जो अंगरेज़ मीर क़ासिम के पास अभी तक क़ैद थे, उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी तरह मीर क़ासिम को गिरफ्तार कर लेना। 19 सितंबर, सन् 1763 को एडम्स और कारनक ने मीर क़ासिम के एक फ्रांसीसी मुलाज़िम जांती (Gentil) को इस मज़मून का पत्र लिखा :

"मुसलमानों के हाथों में जब कभी ताक़त होती है और उन्हें कोई डर नहीं

**History of the Bengal Army* by Broome, p. 160.

† "......It is more than probable that the English Company would have been left, from that day, without a single foot of ground in these Provinces."—*Consideration on Indian Affairs* by Bolts, p. 43.

होता, तब वे सदा हमारे सहधर्मियों और यूरोप-निवासियों के साथ क्रूर-से-क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हैं। किसी ईसाई के लिए मुसलमानों की नौकरी करना बड़ी जिल्लत का काम है। हमारा यह भी अनुमान है कि किसी बहुत ही जबर्दस्त जरूरत से मजबूर हो कर ही आपनें इतनी जिल्लत की नौकरी स्वीकार की होगी। अब ऐसी कष्टकर गुलामी से बच निकलनें का और हमारी क़ौम की फिर से मित्रता लाभ करनें का आपके लिए अच्छा मौक़ा है। आप इससे इन्कार नहीं कर सकते कि हमारी क़ौम के साथ आपने बहुत बेजा सलूक किया है (जब कि आजकल हमारी और आपकी क़ौमों में सुलह है)। यदि आप हमारे आदमियों को क़ासिम अली ख़ां के हाथों से निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें, तो आप अंगरेज़ों की कृतज्ञता पर पूरा भरोसा रखिए और हम आपको पचास हज़ार रुपये फ़ौरन देने का वादा करते हैं।"*

मीर क़ासिम को गिरफ्तार करने की योजना

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि इसके बाद मीर क़ासिम को किसी तरह गिरफ़्तार करने की अंगरेज़ों को चिंता हुई। वन्सीटार्ट और वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई सौदागर ख़ोजा पेतरुस, जिसे आगा बेदरूस भी कहते थे, से ख़ोजा ग्रिगरी, जिसे गुरघिन ख़ां भी कहते थे, के नाम इस संबंध में एक पत्र लिखाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर क़ासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगा कर ख़बर दी —"आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं, आपका सेनापति गुरघिन ख़ां आपको फ़िरंगियों के हाथ बेच रहा है। कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों, यानी आपके क़ैदियों के साथ भी उसकी साज़िश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अंगरेज़ साथियों के साथ मीर क़ासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले बाग़ियों को खत्म कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदरपूर्वक अपने साथ रखे था और खिला-पिला रहा था। किंतु 'सीअरुल-मुताख़रीन' के अनुसार, जब उसे पता चल गया कि ये सब लोग अब मेरे ख़िलाफ़ गहरी साज़िश कर रहे हैं और बाहर से हथियारों वग़ैरह का भी गुप्त प्रबंध कर चुके हैं, तब उसने मज़बूर होकर पटने में ख़ोजा ग्रिगरी को, एलिश और उसके तमाम साथियों को—केवल एक अंगरेज़ डाक्टर फुलरटन को छोड़ कर—जगतसेठ और उसके भाई महाराजा

---

* "We are persuaded also that it must have been the most absolute necessity only which could have engaged you in so dishonourable a service to a Christian as that of the moors who always treat with the grossest brutality those of our religion and Europeans when it is in their power to do it with impunity. A favourable opportunity now offers to enable you rid yourself of so irksome a slavery and to reconcile yourself with our nation towards which you can not deny but you have acted very improperly (and which is now at peace with yours). If you can contrive means for the delivery of our gentlemen from the power of Cossim Ally Khan and will convey them to us, you may place a firm reliance on the gratitude of the English; and we promise you fifty thousand Rupees immediately."--Letter dated 19th September, 1763 from Adams and Carnac to one Monsieur Gentil in the employ of Mir Kassim—Long's *Records*, pp. 332, 333.

स्वरूपचंद को, यानी उन सबको जो इस साज़िश में शामिल थे, कत्ल करवा दिया। कहा जाता है कि ख़ोजा ग्रेगरी इस साज़िश का सरग़ना था।

मीर क़ासिम के शासन का अन्त

इसके बाद जब अंगरेज़ पटने की ओर बढ़े तो मीर क़ासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोपख़ाने सहित 4 दिसंबर, सन् 1763 को अपनी सरहद से निकल कर, नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन साल तक वह बंगाल का सूबेदार रह चुका था। उसका सारा शासन काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस तरह उसके शासन का अन्त हुआ। मीर क़ासिम के बाकी प्रयत्नों और उसकी मृत्यु का ज़िक्र अगले अध्याय में किया जाएगा। निस्संदेह, वह योग्य, वीर और अपने देश और प्रजा, दोनों का सच्चा हितचिंतक था। सिराजुद्दौला के समान वह भी विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके शासन और उसके पतन के सारे क़िस्से को पढ़ कर और उसकी कोशिशों के साथ उसके विरोधियों की समस्त करतूतों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम और सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। एक दर्जे तक वह अंतिम हिन्दोस्तानी था, जिसने उन दिनों बंगाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने-आपको मिटा डाला।

पांचवां अध्याय

फिर मीर जाफ़र

अंगरेज़ों की ओर से एलान

7 जुलाई, सन् 1763 को कलकत्ते के अंगरेज़ों ने समस्त बंगाल, बिहार और उड़ीसा में यह एलान प्रकाशित कर दिया कि 'मीर मोहम्मद क़ासिमअली ख़ां' के ज़ुल्मों के कारण उन्हें सूबेदारी की गद्दी से उतार कर उनकी जगह 'मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ां बहादुर' को फिर से गद्दी पर बैठा दिया गया है। इसी एलान में सब सरकारी कर्मचारियों और प्रजा से अपील की गई कि आप लोग "मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ां बहादुर की मदद के लिए उनके झंडे के नीचे आकर जमा हो जाएं, ताकि मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ां बहादुर क़ासिमअली ख़ां के प्रयत्नों को निष्फल करके अपनी सूबेदारी को पक्का कर सकें।"

मीर जाफ़र के साथ नई सन्धि

7 जुलाई से पहले ही एक और नई संधि मीर जाफ़र के साथ कर ली गई थी, जिस के विषय में इतिहास-लेखक एल्फ़िन्स्टन लिखता है :

> **"अधिकांश अंगरेज़ यही कहते थे कि मीर जाफ़र को फिर से गद्दी पर बिठाना केवल उसके न्यायोचित अधिकारों को उसे वापस देना है, किन्तु फिर भी वे उससे नई और अधिक कड़ी शर्तें स्वीकार करा लेने में न झिझके।"***

वर्धमान इत्यादि तीनों जिले और जितनी रिआयतें मीर क़ासिम ने उन्हें दे रखी थीं, वे सब कायम रखी गईं। एल्फ़िन्स्टन लिखता है कि आइन्दा के लिए यह नियत कर दिया गया कि नवाब छै हज़ार सवार और बारह हज़ार पैदल से ज्यादा फ़ौज अपने पास न रखे। तमाम हिंदोस्तानी व्यापारियों से पहले की तरह सब माल पर 25 फ़ीसदी महसूल वसूल किया जाए। अंगरेज़ व्यापारी नमक पर ढाई फ़ीसदी महसूल दिया करें और बाक़ी हर तरह के माल पर उन्हें बिना महसूल दिए देश भर में व्यापार करने का अधिकार रहे। मीर जाफ़र अंगरेज़ों को युद्ध के ख़र्च के लिए 30 लाख, अंगरेज़ी स्थल-सेना के लिए 25 लाख और जल-सेना के लिए साढ़े 12 लाख रुपये दे, और अंगरेज़ व्यापारियों का जितना नुक़सान मीर क़ासिम के समय में देशी व्यापारियों से महसूल न लिए जाने के कारण हुआ है, अब मीर जाफ़र उसे पूरा करे। संधि के समय कहा गया कि यह हरजाने की रक़म पांच लाख से अधिक न होगी, किंतु बाद में इस पांच लाख की जगह 53 लाख वसूल किए गए। संधि की इन शर्तों के विषय में कर्नल मालेसन लिखता है :

> **"देशभक्त मीर क़ासिम ने जिन-जिन रिआयतों को देने से इन्कार कर**

**Rise of British Power in India,* p. 397.

दिया था, नीच महत्वाकांक्षी मीर जाफ़र ने वह सब अंगरेज़ों को प्रदान कर दीं ।"*

इतिहास-लेखक स्क्रैफ़टन लिखता है :

"नवाब इसके बाद केवल एक बैंक की तरह रह गया, जिससे कम्पनी के मुलाज़िम जितनी दफ़े और जितनी रकम चाहें, ले सकते थे ।"

बंगाल की और बुरी हालत

मीर क़ासिम के ख़िलाफ मीर जाफ़र अंगरेज़ों के हाथों में एक उपयोगी हथियार था । उसी के नाम पर मीर क़ासिम के अनेक आदमियों को बहका-बहका कर अंगरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ा । उदवा नाला की लड़ाई में मीर जाफ़र अंगरेज़ी सेना के साथ था । फिर भी मीर जाफ़र का अहसान मानने के स्थान पर अंगरेज़ों ने उसे अब और अधिक दबाना शुरू किया, यहां तक कि इस दूसरे बार की सूबेदारी में उसकी और उसकी प्रजा, दोनों की हालत धीरे-धीरे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक दर्दनाक होती चली गई । सितंबर, सन् 1764 में मीर जाफ़र ने कलकत्ते को कौंसिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें उसने तेरह शिकायतें अंगरेज़ों के सामने रखीं । इन शिकायतों का सार नीचे दिया जाता है, जिससे उस समय के बंगाल की हालत का ख़ासा अंदाज़ा लगाया जा सकता है । शिकायतें ये थीं—

1—पटने में कर्नलगंज और मारुगंज नाम की दो नई मंडियां अंगरेज़ों ने क़ायम की हैं । वहां के अंगरेज़ अफ़सर पुरानी सरकारी मंडियों के व्यापारियों को ज़बरदस्ती पकड़-पकड़ कर अपने यहां ले जाते हैं, जिसके कारण मेरी मंडियां उजड़ गईं और मुझे एक लाख का नुक़सान हो रहा है ।

2—पटना और मुर्शिदाबाद की कचहरियों की यह हालत है कि वहां तमाम व्यापारी अंगरेज़ी कोठियों की आड़ लेकर सरकारी महसूल देने से इंकार कर देते हैं ।

3—जगह-जगह अंगरेज़ गुमाश्ते सरकार के बाग़ियों और मुजरिमों को अपने यहां पनाह देते हैं ।

4—हलके और घटिया सिक्के ढाल कर टकसाल के अधिकार का दुरूपयोग किया जा रहा है ।

5—क़ासिम बाज़ार की कोठी के गुमाश्तों ने ज़बरदस्ती दमदम, शिवपुर और बामनघाट, इन तीनों गांवों पर कब्जा कर लिया है और एक कौड़ी मालगुज़ारी नहीं देते ।

6—अंगरेज़ गुमाश्ते अपना तंबाकू और दूसरा माल ताल्लुकेदारों और रय्यत के सर ज़बरदस्ती मढ़ देते हैं, जिससे मुल्क वीरान हो रहा है और सरकार की आमदनी को भारी नुक़सान हो रहा है ।

7—पटना, मुंगेर इत्यादि के क़िलों में अंगरेज़ों के आदमी ज़बरदस्ती घुसे बैठे हैं और मेरी एक नहीं सुनते ।

---

* "Having obtained from the low ambition of Mir Jaffir the advantages which the patriotism of Mir Kassim had refused to them."—*Rise of British Power in India,* p. 145.

8—बंगाल के गंजों (मंडियों) और गोलों में कई अंगरेज़ों के आदमी ज़बर-दस्ती नाज ख़रीद लेते हैं और जिस तरह चाहते बेचते हैं, यहां तक कि मेरे फ़ौजदारों को फ़ौज की आवश्यकताओं के लिए भी नाज नहीं मिलता।

9—पटने के अंदर क़रीब चालीस मकानों पर, जो मुसाफ़िरों के लिए बने हैं, कुछ अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया है, यहां तक कि मुझे अपने और अपने कुटंम्बियों के ठहरने के लिए भी जगह न मिल सकी।

10—पूर्णिया की लकड़ी की मंड़ी से मुझे पचास हज़ार रुपये साल वसूल होते थे। अब अंगरेज़ों ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया है और मुझे एक कौड़ी नहीं मिलती।

11—यह क़ायदा कर दीजिए कि सरकार के नौकरों या आदमियों को न कोई अंगरेज़ भड़काए और न उन्हें पनाह दे।

12—कंपनी की कोठियों से जो सिपाही मुल्क के विविध भागों में भेजे जाते हैं, वे गांव-के-गांव उजाड़ डालते हैं और उनके अत्याचारों के कारण रय्यत गांव छोड़ कर भाग जाती है।

13—इस मुल्क के जो गरीब लोग सदा से नमक, छालियां, तंबाकू इत्यादि का व्यापार करते थे, उन सब की रोज़ी अब यूरोप-निवासियों ने छीन ली है, जिससे कंपनी को कोई फ़ायदा नहीं और सरकारी आमदनी को बहुत बड़ा नुक़सान है।*

मीर जाफ़र ने प्रार्थना की कि उसकी ये शिकायतें दूर की जाएं, किंतु कलकत्ते की अंगरेज़ कौंसिल ने इस पर तनिक भी ध्यान न दिया।

मीर क़ासिम के अन्तिम प्रयत्न

उधर मीर क़ासिम का साहस अभी तक टूटा न था। अपनी सरहद से बाहर निकल कर वह इन विदेशियों के बल को तोड़ने का अंतिम प्रयत्न कर रहा था। सूबेदारी की सनद मीर क़ासिम को सम्राट की ओर से बाज़ाब्ता अता हो चुकी थी और मीर जाफ़र को बिना सम्राट की इजाज़त ज़बरदस्ती अंगरेज़ों ने सूबेदार बना दिया था। सम्राट शाह आलम अभी तक फाफामऊ (इलाहाबाद) में था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला इस समय मुग़ल साम्राज्य का प्रधान मंत्री और सम्राट का विशेष संरक्षक था। मीर क़ासिम ने सम्राट और शुजाउद्दौला, दोनों से मिल कर उन्हें अंगरेज़ों और बंगाल का सब हाल कह सुनाया। शुजाउद्दौला की मां को उसने मां और शुजाउद्दौला को अपना भाई कह कर सम्बोधित किया। शुजाउद्दौला ने क़ुरान हाथ में लेकर अंगरेज़ों को सजा देने और मीर क़ासिम को फिर से मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठाने की क़सम खाई।

बुंदेलखंड का राजा इधर कई वर्ष से विद्रोह कर रहा था। उसने भी दिल्ली दरबार को खिराज भेजना बंद कर दिया था। शुजाउद्दौला सम्राट की ओर से उस पर चढ़ाई की तैयारी कर रहा था। मीर क़ासिम ने इस मौके को ग़नीमत समझा। सम्राट और शुजाउद्दौला से इजाज़त लेकर अपनी सेना और तोपखाने सहित उसने बुंदेलखंड पर चढ़ाई की और शीघ्र ही वहां के राजा को काबू में कर लिया। राजा ने तमाम पिछला

*Long's *Selections*, pp. 356-359.

ख़िराज अदा करने का वादा किया। मीर क़ासिम इलाहाबाद लौट आया। सम्राट और उसका नवाब वज़ीर मीर क़ासिम की इस सेवा से इतने खुश हुए कि उन्होंने तुरंत अंगरेज़ों के विरुद्ध बंगाल पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरु कर दी। सम्राट की इस चढ़ाई का स्पष्ट उद्देश्य मीर क़ासिम को फिर से गद्दी पर बैठाना था।

अंगरेज़ों के नाम शुजाउद्दौला का पत्र

किंतु चढ़ाई करने से पहले अंगरेज़ों को इसकी सूचना देना और उससे जवाब तलब करना जरुरी था। नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला ने इस समय सम्राट की ओर से नीचे लिखा पत्र अंगरेज़ गवर्नर और उसकी कौंसिल के नाम कलकत्ते भेजा :

"हिन्दोस्तान के पिछले बादशाहों ने अंगरेज़ कम्पनी का महसूल माफ़ कर दिया, उन्हें बहुत सी बस्तियां और कोठियां अता कीं और उनके तमाम कारबार में मदद दी। इस तरह उन्होंने कम्पनी पर इतनी मेहरबानियां की हैं और उसकी इतनी इज्जत बढ़ाई है, जितनी न अपने मुल्क के व्यापारियों के साथ की और न किसी दूसरी यूरोपियन क़ौम के साथ। इसके अलावा, हाल ही में बादशाह ने मेहरबानी करके मुनासिब से ज़्यादा ख़िताब और रुतबे और उसके बाद जागीरें और दूसरी रिआयतें आप लोगों को अता की हैं। बावजूद इन सब इनायतों के आप लोगों ने बादशाह के मुल्क में दखल दिया, वर्धमान, चट्टग्राम वगैरह सरकारी इलाक़ों पर क़ब्जा कर लिया, और बिना दरबार की रजामन्दी के जिस नवाब को चाहा मसनद से उतार दिया और जिसे चाहा बैठा दिया। आप लोगों ने दरबार के आदमियों को अपने यहां क़ैद कर लिया और शहन्शाह की हुकूमत की तौहीन और उसकी बेइज्जती की, आपने देश के व्यापारियों की तिजारत को बरबाद कर दिया, बादशाह के बागियों को अपने यहां पनाह दी, दरबार की आमदनी को नुक़सान पहुंचाया और अपने जुल्म से मुल्क के बाशिन्दों को पामाल कर किया। आप लोग अभी तक कलकत्ते से नई-नई फ़ौजें भेज कर शाही इलाक़ों पर लगातार हमले करते रहते हैं, यहां तक कि इलाहाबाद के सूबे के कई गांव और परगनों को भी आप लोगों ने लूट लिया है ; इन सब नाजायज हरकतों की क्या वजह समझी जा सकती है, सिवाय इसके कि आपको दरबार की कतई परवाह नहीं और आप खुद मुल्क पर क़ब्जा करने की बेजा कोशिशों में लगे हुए हैं।

"अगर आपने यह सब अपने बादशाह के हुकुम या कम्पनी की हिदायत से किया है, तो मेहरबानी करके मुझे पुरा-पुरा हाल बताइए, ताकि मैं उसका मुनासिब इलाज कर सकूं, लेकिन अगर इन शरारतों की वजह आपकी अपनी ही बेजा ख्वाहिशें हैं, तो आइन्दा ऐसी हरकतों से बाज रहिए ; हुकूमत के कामों में दखल न दीजिए, हर जगह से अपने आदमियों को हटा कर उन्हें अपने मुल्क वापस भेज दीजिए, पहले की तरह कम्पनी की तिजारत जारी रखिए और महज तिजारती कारबार तक ही अपने तईं महदूद रखिए। अगर आप इस तरह रहना चाहें, तो शाही दरबार हमेशा से ज्यादा आपकी तिजारत में मदद देगा और आपके साथ रिआयतें करेगा। किसी ऊंचे दरजे के ओहदेदार को बतौर अपने वकील के यहां भेज दिजिए, जो तमाम हालत की मुझे ठीक--ठीक इत्तला दे, ताकि

मैं उसके मुताबिक अमल कर सकूं। अगर (खुदा न करे) आप सरकशी और नाफ़रमानी करते रहे, तो इन्साफ़ की तलवार बगावत करनेवालों के सरों को खा जाएगी और आप शहन्शाह की खफ़गी के भार को महसूस करेंगे, जो खुदा के क़हर का एक नमूना है ; फिर बाद में आपके अपनी ग़लती मानने या दरख्वास्तें देने से भी काम न चलेगा। क्योंकि शुरू ज़माने से बादशाह आपकी कम्पनी के साथ काफ़ी रियायतें करते रहे हैं, इसलिए मैंने आपको लिख दिया है, आप जैसा मुनासिब समझिए, वैसा कीजिए और मुझे जल्दी जवाब दीजिए।"

निस्सन्देह, मुग़ल साम्राज्य के वज़ीर की हैसियत से शुजाउद्दौला का पत्न उचित उदार और न्यायानुकूल था। किंतु इस पत्न से यह भी ज़ाहिर है कि उस समय के भारतीय शासकों को पाश्चात्य कूटनीति का कुछ पता न था और न वह इतने बड़े तजुर्बे से फ़ायदा उठाने के ही काबिल थे।

इस पत्न को पाते ही और यह सुनते ही कि सम्राट और शुजाउद्दौला को साथ लेकर मीर क़ासिम बिहार लौटने वाला है, अंगरेज़ डर गए। 'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है:

"शुजाउद्दौला के बल की ख्याति और उसकी सेवा की अधिकता और वीरता का हाल सुन कर वे डर गए और उन्होंने अपने आपको मैदान में शुजाउद्दौला का मुक़ाबला कर सकने के नाक़ाबिल समझा।"

मीर क़ासिम के प्रांत छोड़ने के समय अंगरेज़ों ने अज़ीमाबाद (पटना) से आगे बढ़ कर, सोन नदी को पार कर बक्सर में अपनी छावनी डाल ली थी। अब फिर फुर्ती के साथ बक्सर की छावनी को छोड़ कर, सोन नदी को फिर से पार कर वे अज़ीमाबाद की चहारदीवारी के अंदर आ गए।

जब इस पत्न का कोई संतोषजनक उत्तर न मिला तो शुजाउद्दौला ने सम्राट और मीर क़ासिम के साथ आकर अपनी फौज़ से पटना को घेर लिया।

सम्राट को शुजाउद्दौला से फोड़ने की कोशिश

बंगाल के अंगरेज़ इस समय ज़बरदस्त संकट में थे, किन्तु उनकी पुरानी कूटनीति ने इस अवसर पर भी उनका पूरा साथ दिया। सबसे पहले उन्होंने सम्राट और शुजाउद्दौला को एक दूसरे से फोड़ने की कोशिश की। 'सीअरुल-मुताखरीन' का विद्वान लेखक, सय्यद गुलाम हुसैन, जो अपने पिता के साथ इस अवसर पर सम्राट की सेना में मौजूद था, अपनी पुस्तक में स्वीकार करता है कि लोभवश वह खुद इस समय अंगरेज़ों से मिल गया था। उसी की मारफ़त अंगरेज़ों ने शाह आलम को विश्वास दिलाया कि हम आपके सच्चे 'वफ़ादार और ख़ैरख़ाह' हैं। उन्होंने सम्राट से यह वादा किया कि हम शुजाउद्दौला को ज़ेर करके उसका सारा सूबा आपके हाथों में दे देंगे। सम्राट शाह आलम को इस समय दिल्ली में अपने विपक्षियों के विरुद्ध चारों ओर से मदद की ज़रुरत थी। उसकी इस कमज़ोरी और अदूरदर्शिता से अंगरेज़ों को अपनी कूटनीति में काफ़ी मदद मिली। भारत सम्राट का इस समय का भोलापन भी दर्दनाक और हैरतअंगेज़ था। अंगरेज़ों ने अपनी चालों द्वारा सम्राट को अपने पक्ष में तो नहीं, किंतु संग्राम से उदासीन अवश्य कर दिया।

शुजाउद्दौला की सेना में विश्वासघात

एक दूसरा विश्वासघातक महाराजा शिताबराय का बेटा महाराजा कल्यान सिंह शुजाउद्दौला की सेना में एक ऊचा ओहदेदार था और अपने यहां की सेना की तादाद, सामान, और इरादों इत्यादि की पूरी सूचना अंगरेज़ कंपनी के अफ़सरों को देता रहता था । उसने अपने एक लेख में स्वीकार किया है :

"महाराजा शिताबराय उस समय अज़ीमाबाद में थे, उनका एक मुंशी राय साधोराम फलवाड़ी में मुझसे मिलने के लिए आया—— —— ——मैंने उससे कहा कि अंगरेज़ अफ़सरों को और मीर मोहम्मद जाफ़र खां को विश्वास दिला दो कि मै उनके साथ हूं और इस बात की इन्तज़ार में बैठा हूं कि मौक़ा मिले और मैं लड़ाई का सारा रुख उनके पक्ष में मोड़ दूं । राय साधोराम ने मेरा सन्देश पहुंचा दिया और वापस आकर मुझे इत्तला दी कि आपकी सहानुभूति और आशा से भरे सन्देश को पाकर अंगरेज़ और नवाब, दोनों खुश हुए और उन्हें आप पर पूरा भरोसा हैं ।"*

एक तीसरे देशघातक और विश्वासघातक ज़ैनुल आबदीन का एक पत्र अंगरेज़ सेनापति मेजर मनरो के नाम 22 सितंबर सन् 1764 को कलकत्ते पहुंचा । इस पत्र में लिखा है :

"असद खां बहादुर की मार्फत आपका मित्रतासूचक पत्र मेरे पास पहुंचा, जिससे मेरी इज्ज़त बढ़ी । उस पत्र में आपने इच्छा प्रकट की है कि जितने अधिक मज़बूत और हथियारबन्द मुग़ल, तूरानी और दूसरे सवारों को हो सके, साथ लेकर मैं आपसे आ मिलूं ।

"जनाबमन, हर आदमी के लिए और खास कर खानदानी लोगों के लिए अपनी वक्त की मुलाज़मत को छोड़ कर अपने मालिक के दुश्मनों से जा मिलना बड़ी ज़िल्लत की बात हैं, फिर भी कुछ हालात ऐसे हैं, जिनसे हम लोगों के लिए ऐसा करना जायज़ है—— —— —— ।"†

निस्सन्देह, भारतीय नरेशों में एक-दूसरे से ईर्ष्या और लागडाट और खुदग़र्ज़ी इस समय हद को पहुंची हुई थी ।

इस बीच बरसात शुरू हो गई और मौसम ख़राब होने की वजह से या इन सब बातों से विवश होकर शुजाउद्दौला पटने का मौहासरा छोड़ कर बक्सर लौट आया । बक्सर ही में उसने बरसात गुज़ारने का निश्चय किया ।

दीवान नन्दकुमार के साथ जबरदस्ती

उधर मीर जाफ़र ने गद्दी पर दोबारा बैठते ही महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त किया । नन्दकुमार सच्चा और वफ़ादार साबित हुआ । अंगरेज़ों की चालों को वह ख़ासा समझ गया था । नन्दकुमार की सलाह से मीर जाफ़र ने अब यह कोशिश की कि

*J. B. & O. R. S. vi, pp. 148, 149.

†Long's *Selections*, pp. 358, 359.

वह सम्राट शाह आलम और वज़ीर शुजाउद्दौला को खुश करके अपनी सूबेदारी के लिए बाज़ाब्ता शाही फ़रमान हासिल कर ले। मीर जाफ़र की यह इच्छा उचित और नियमानुकूल थी। किन्तु सम्राट और मीर जाफ़र का मेल अंगरेज़ों के लिए हितकर न हो सकता था। इसलिए खबर पाते ही अंगरेज़ों ने फ़ौरन निर्दोष नन्दकुमार को जबरदस्ती दीवानी से अलग कर दिया और मीर जाफर को पटने से कलकत्ते बुलवा लिया। कठपुतली तथा बेबस मीर जाफ़र को अंगरेज़ों की आज्ञा माननी पड़ी।

मनरो का रोहतास के क़िले पर क़ब्ज़ा

मेजर कारनक की जगह मेजर मनरो अब पटना की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। जुलाई मास में वह पटने पहुंचा। अंगरेज़ों को डर था कि यदि लड़ाई देर तक चली तो संभव है, मराठों और अफ़ग़ानों की सेनाएं शुजाउद्दौला की मदद के लिए आ जाएं। इसलिए मेजर मनरो को आज्ञा दी गई कि वह शुजाउद्दौला की सेना पर हमला करके लड़ाई का शीघ्र अंत कर डाले। मालूम होता है, मेजर मनरो के आते ही कम्पनी के कुछ हिंदोस्तानी, मीर जाफ़र के साथ अंगरेज़ों के इस अन्याय को देख कर या किसी दूसरी वजह से अंगरेज़ों के खिलाफ़ बग़ावत कर बैठे। मेजर मनरो ने फ़ौरन बिना किसी तहक़ीकात या पूछताछ के तमाम बाग़ियों को तोप के मुंह से उड़वा दिया।

इसके बाद मेजर मनरो ने रोहतास के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। इस क़िले के बारे में सय्यद ग़ुलामहुसैन लिखता है कि मेजर मनरो ने आते ही डाक्टर फ़ुलरटन की मारफ़त सय्यद ग़ुलामहुसैन को पत्र लिखा कि—"यदि आप रोहतास का क़िला अंगरेज़ों के हवाले करने की तदबीर कर सकें, तो आप अंगरेज़ों की मित्रता और कृतज्ञता के हक़दार होंगे।" सय्यद ग़ुलामहुसैन लिखता है कि—"इस सूचना के मिलने पर मैंने राजा साहूमल से बातचीत की।" राजा साहूमल रोहतास के क़िले का क़िलेदार था। वह ग़ुलामहुसैन की बातों में आ गया। उसने अपनी शर्तें पेश कीं। अंगरेज़ों ने उसकी शर्तें मंजूर कर लीं और चुपचाप उसकी मदद से क़िले पर कब्ज़ा कर लिया। बाद में अंगरेज़ों ने राजा साहूमल के साथ एक भी शर्त का पालन नहीं किया। राजा साहूमल ने ग़ुलामहुसैन से शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।

यह भी कहा जाता है कि इस समय मीर क़ासिम के साथ शुजाउद्दौला का व्यवहार जैसा चाहिए, वैसा न रहा था।

बक्सर की मशहूर लड़ाई

15 सितम्बर, सन् 1764 को बक्सर में दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुआ। शाह आलम के दिल और दिमाग़ पर अंगरेज़ों की चालों का काफ़ी असर हो चुका था। 'सीअरुल-मुताख़रीन' का रचयिता, जो इस काम में अंगरेज़ों का ख़ास मददगार था, लिखता है :

> **"किन्तु शाह आलम ने, जो भीतर से वज़ीर (शुजाउद्दौला) से असन्तुष्ट था × × × कई तरह के बहाने करके समय टालना उचित समझा। वजह यह थी कि वह कुछ पहले ही से अंगरेज़ों से मिल जाने की तदबीर सोच चुका था। अंगरेज क़ौम इस विषय का कुछ सन्देश उसके पास भेज चुकी थी, जिससे वह**

उनसे मिल जाने का इच्छुक हो गया था और उनकी सहायता से लाभ उठाने का भी निश्चय कर चुका था ।"

जब स्वयं भारत के सम्राट की यह हालत थी, तब न जाने और कितने भारतीय सेनानियों ने सक्रिय या निष्क्रिय रूप में उस शत्रु का साथ दिया होगा । नतीजा यह हुआ कि दिन भर के घमासान में क़रीब पांच-छः हज़ार आदमी काम आए और असहाय शुजाउद्दौला को अपनी सेना सहित मैदान से हट जाना पड़ा, जिसमें कहा जाता है, उसके हज़ारों सैनिक गंगा की दलदल में फंस कर रह गए ।

मीर क़ासिम की मृत्यु

मीर क़ासिम जानता था कि यदि वह अंगरेज़ों के हाथों में पड़ गया, तो जो व्यवहार उन्होंने सिराजुद्दौला के साथ किया, उससे बेहतर से सलूक की उसे अंगरेज़ों से आशा नहीं हो सकती । इसलिए वह बक्सर से भाग कर सीधा इलाहाबाद पहुंचा । वहां से चल कर उसने बरेली में दम लिया और अंत को 12 साल से ऊपर एक गृहविहीन जलावतन की तरह जगह-जगह मुसीबत उठा कर सन् 1777 ई० में दिल्ली में उसकी मृत्यु हुई । निस्सन्देह, भारत की स्वाधीनता के लिए अपने को मिटा देने वालों में मीर क़ासिम का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा ।

सम्राट शाह आलम ने लड़ाई समाप्त होते ही शुजाउद्दौला का साथ छोड़ कर अंगरेज़ी सेना के साथ डेरा डाला । अंगरेज़ों ने फ़ौरन उसके सामने हाज़िर होकर उसका बाक़ायदा आदर-मान किया और उसे 'अपना सम्राट' कह कर सलाम किया । सम्राट ही के साथ अंगरेज़ों ने गंगा को पार किया और वहां से शुजाउद्दौला के दीवान बेनीबहादुर को बुलवा कर शुजाउद्दौला के साथ सुलह की बातचीत शुरु की । अंगरेज़ों ने दीवान बेनीबहादुर को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि कंपनी ने अपने मुलाज़िमों को आज्ञा दे दी है कि हिन्दोस्तान के अन्दर अब और नए इलाके फ़तह न किए जाएं । इस पर भी शुजाउद्दौला और अंगरेज़ों में इस समय सुलह न हो सकी ।

मालूम होता है कि सम्राट बक्सर से इलाहाबाद की ओर चल दिया । शुजाउद्दौला फिर से मुक़ाबला करने की तैयारी के इरादे से पीछे हटा और अंगरेज़ शुजाउद्दौला का पीछा करने के लिए आगे बढ़े ।

चुनारगढ़ में अंगरेज़ों की हार

मार्ग में अंगरेज़ों ने चुनार के क़िले का मोहासरा किया । 'सीअरुल-मुताखरीन', में लिखा है कि अंगरेज़ सेनापति ने कम्पनी के नाम सम्राट का एक दस्तख़ती परवाना क़िलेदार मोहम्मद बशीर ख़ां के सामने पेश किया, किन्तु क़िले के भीतर की भारतीय सेना ने इस परवाने की ख़ाक परवाह न की । इस सेना ने जब यह देखा कि हमारा क़िलेदार भी डांवाडोल हो रहा है, तब उन्होंने उसे क़िले से बाहर निकाल कर उसे सड़क पर छोड़ दिया, जो नवाब शुजाउद्दौला की ओर जाती थी, और स्वयं वीरता के साथ विदेशियों से क़िले की रक्षा शुरु की। अंगरेज़ों ने अपनी तोपें सामने कीं। कई दिन की गोलाबारी के बाद वे क़िले की दीवार का केवल एक छोटा-सा टुकड़ा गिरा पाए, किन्तु ज्यों ही एक दिन अंधेरी रात में अंग्रेज़ी सेना ने इस रास्ते से क़िले के भीतर प्रवेश

करना चाहा, भीतर की भारतीय सेना ने अपनी बंदूकों से उनमें से अधिकांश का वहीं दीवार के ऊपर काम तमाम कर दिया। लाचार होकर और बुरी तरह हार कर अंगरेज़ों को चुनार का मोहासरा छोड़ इलाहाबाद का रास्ता लेना पड़ा। वास्तव में बिना रिश्वत, दग़ा या इसी तरह के दूसरे उपायों के अंगरेज़ों ने कभी कहीं किसी एक लड़ाई में भी भारतीय सेना के ऊपर विजय प्राप्त नहीं की।

इलाहाबाद पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

इलाहाबाद के क़िले की संरक्षक सेना ने भी अंगरेज़ी सेना का ख़ासा मुक़ाबला किया। किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से वही नजफ़ खां, जिसने उदवानाला पर अंगरेज़ों को बुरी तरह दिक़ किया था और जो बहुत अरसे तक इलाहाबाद के क़िले में रह चुका था और उसके रहस्यों से परिचित था, इस मौक़े पर अंगरेज़ों से मिल गया। क़िले की दीवारों को गिराने के लिए अंगरेज़ी सेना के पास इस समय जो एक सबसे अच्छी तोप थी, वह हिंदोस्तान ही की बनी हुई थी और शुजाउद्दौला के ख़ेमों की लूट में उन्हें मिली थी। नजफ़ खां ने अंगरेज़ों को किले के सब गुप्त रास्ते बतला दिए और इस तोप ने भी उन्हें ख़ासी मदद की। अंत में थोड़ी-सी लड़ाई के बाद अंगरेज़ी सेना ने इलाहाबाद के क़िले में प्रवेश किया। क़िले पर हमला करने और भीतरवालों से शर्तें तय करने में महाराजा शिताबराय की फ़ौज आगे थी, किन्तु क़ब्ज़ा करते समय कम्पनी की सेना आगे थी।

कम्पनी और नवाब शुजाउद्दौला में सन्धि

शुजाउद्दौला अब भाग कर बरेली पहुंचा। वहां से लौट कर मलहारराव होलकर की कुछ मराठा सेना की सहायता से उसने कड़ा में अंगरेज़ी सेना पर फिर हमला किया। एक-दो छोटी-मोटी लड़ाइयां भी हुईं। अंत में महाराजा शिताबराय ने बीच में पड़ कर नीचे लिखी शर्तों पर कम्पनी और शुजाउद्दौला में सुलह करवा दी—

1—युद्ध में कम्पनी का जो ख़र्च हुआ है, उसके लिए शुजाउद्दौला पचास लाख रुपये कम्पनी को दे। पच्चीस लाख फ़ौरन और पच्चीस लाख कई सालाना क़िस्तों में।

2—इलाहाबाद के आस-पास का प्रांत, जो उस समय अवध के सूबे में शामिल था, सम्राट के उपयोग के लिए अलग कर दिया जाए। इलाहाबाद का शहर और क़िला सम्राट के रहने के लिए नियत हो और इलाहाबाद के किले में सम्राट की रक्षा के लिए कम्पनी की एक सेना रहे।

3—ग़ाज़ीपुर और उसके आस-पास का इलाक़ा कम्पनी को दे दिया जाए।

4—अंगरेज़ों का एक वकील शुजाउद्दौला के दरबार में रहा करे, किन्तु नवाब शुजाउद्दौला के राज-प्रबंध में वह किसी तरह का दख़ल न दे।

5—आइंदा हर पक्ष दूसरे पक्ष के शत्रु या मित्र को अपना शत्रु या मित्र समझे।

अवध के नवाब वज़ीर के साथ अंगरेज़ों की यह पहली संधि थी। अवध की नवाबी का प्रारंभ सन् 1720 के क़रीब दिल्ली दरबार की निर्बलता के दिनों में हुआ था। दिल्ली के सम्राट ने पहले नवाब सआदत खां को अवध सूबेदार नियुक्त करके भेजा था। उनके बाद सआदत ख़ां के भतीजे दूसरे नवाब सफ़दरजंग ने दो करोड़

रुपये नादिरशाह को नज़र करके अपनी नवाबी कायम रखी। सफ़दरजंग ही को पहली बार दिल्ली सम्राट ने साम्राज्य के वज़ीर को पदवी प्रदान की और तभी से अवध के नवाब 'नवाब वज़ीर' कहलाने लगे। शुजाउद्दौला सफदरजंग का बेटा था।

निस्सन्देह, नवाब शुजाउद्दौला ने अंगरेज़ों का ख़ासा मुक़ाबला किया। इसमें भी संदेह नहीं कि यदि स्वयं शाह आलम और उसके कुछ साथी अंगरेज़ों के हाथों में न खेल जाते, तो बक्सर के मैदान में ही शुजाउद्दौला अंगरेज़ों की उभरती हुई ताक़त का सदा के लिए अंत कर देता। पर शाह अलाम की अयोग्यता ने शुजाउद्दौला को पंगु कर दिया।

मीर जाफ़र का अन्त

मीर जाफ़र को अंगरेज़ों ने अपनी महत्वाकांक्षा के शिखर तक पहुंचाने के लिए बतौर एक सीढ़ी के इस्तेमाल किया और ज्यों ही वे ऊपर तक पहुंच गए, उन्होंने बिना संकोच उसे लात मार कर अलग कर दिया। उसकी ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों को उन्होंने अत्यंत दुखमय बना दिया। अक्तूबर, सन् 1764 में उससे पांच लाख रुपये माहवार कम्पनी को देने का वादा करा लिया, जिससे वह अंत तक बहुत तंग रहा और सदा शिकायत करता रहा। संधि से बाहर नित्य नई और बढ़-बढ़ कर मांगे उससे की जाती रहीं। आए दिन की इन ज़बर्दस्तियों ने उसके स्वास्थ्य और आयु दोनों पर असर डाला। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर विलियम हंटर लिखता है :

> **"मीर जाफ़र जनवरी, सन् 1765 में मरा और कहा जाता है कि जिस बेजा तरीक़े से कलकत्ते के अंगरेज़ों ने अपने व्यक्तिगत नुक़सानों के हर्जाने की अदायगी के लिए उससे तकाज़े शुरू किए, उससे उसकी मौत और जल्दी हुई।"***

वास्तव में, मीर जाफ़र की मृत्यु फरवरी, सन् 1765 के आरंभ में मुर्शिदाबाद के महल में हुई। उसकी आयु उस समय 65 वर्ष की थी। अंत समय में मीर जाफ़र की इच्छा के अनुसार, उसके अनेक सम्बंधियों और बेटों के रहते हुए, उसके चिर मित्र महाराजा नन्दकुमार ने एक हिन्दू मंदिर से गंगाजल लाकर मीर जाफ़र के मुंह में डाला और उसी जल से अपने हाथों से उसने मीर जाफ़र को आख़िरी स्नान कराया।

---

* "His death took place in January 1765, and is said to have been hastened by the unseemly importunity with which the English at Calcutta pressed upon him their private claims to restitution."—Sir W. W. Hunter in *Statistical Account of Bengal,* vol. ix, p. 191.

छठा अध्याय

मीर जाफर की मृत्यु के बाद

नवाब नजमुद्दौला और उसके साथ नई सन्धि

मीर जाफ़र के बड़े बेटे मीरन की हत्या का हाल ऊपर आ चुका है। मीर जाफ़र का दूसरा बेटा नजमुद्दौला अब मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठा, किन्तु असंभव था कि अंगरेज़ हर ऐसे अवसर से पूरा लाभ न उठाते। कलकत्ते का अंगरेज़ गवर्नर उन दिनों 'बंगाल में फ़ोर्ट विलियम क़िले का गवर्नर' कहलाता था। अंगरेज़ 'गवर्नर और कौंसिल' के पास मुर्शिदाबाद की सरकारी फ़ौज से कहीं अधिक फ़ौज थी। बिना इस 'गवर्नर और कौंसिल' की रज़ामंदी के मुर्शिदाबाद का कोई सूबेदार अब अपने-आपको क्रियात्मक सूबेदार न समझ सकता था। उस समय के गवर्नर स्पेन्सर, जो वन्सीटार्ट का उत्तराधिकारी था, और उसकी अंगरेज़ कौंसिल ने नजमुद्दौला को उस समय तक सूबेदार मानने से इंकार कर दिया, जब तक कि उससे एक नई संधि पर दस्तख़त न करा लिए। इस नई संधि की मुख्य शर्तें ये थीं——

1——नवाब नजमुद्दौला 'नायब सूबेदार' का एक नया ओहदा क़ायम करे, नायब सूबेदार नवाब के नाम पर शासन का सारा काम करे, और अंगरेज़ों का एक खास आदमी मोहम्मद रजा ख़ां, नायब सूबेदार के ओहदे पर नियुक्त किया जाए।

2——माल के महकमे बिना कलकत्ते की अंगरेज़ कौंसिल की रज़ामंदी के नवाब न किसी को बरखास्त करे और न कोई नया आदमी नियुक्त करे।

3——कम्पनी की फ़ौज के खर्च के लिए पांच लाख रुपये माहवार बराबर मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने से मिलते रहें।

4——सिवाय इतनी फ़ौज के, जो सरकारी मालगुजारी वसूल करने और दरबार की इज़्ज़त क़ायम करने के लिए जरूरी हो, नवाब और अधिक फ़ौज अपने पास न रखे।

5——देश भर में हर तरह के व्यापार पर अंगरेज़ों के लिए महसूल माफ़ करे।

इन शर्तों के बाद बंगाल के सूबेदार की सत्ता केवल छायामात्र रह गई। किन्तु नजमुद्दौला को ये सब बातें स्वीकार करनी पड़ीं, और इनके अलावा बीस लाख रुपये नक़द बतौर दोस्ताने या रिश्वत के स्पेन्सर और उसके साथियों की नज़र करने पड़े। यह बीस लाख की रक़म गवर्नर और उसकी कौंसिल के मेंबरों ने आपस में बांट ली।

नन्दकुमार की गिरफ्तारी

नए नवाब ने महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त करना चाहा। अंगरेज़ नन्दकुमार से क़ाफी सावधान हो चुके थे। उन्होंने इज़ाजत न दी और नवाब पर उसकी बेबसी प्रकट कर देने के लिए वे महाराजा नन्दकुमार को क़ैद करके ज़बर्दस्ती मुर्शिदाबाद से कलकत्ते ले आए।

क्लाइव का दोबारा भारत आना

कम्पनी का कारबार अब काफ़ी बढ़ गया था। उसकी आकांक्षाएं बहुत ऊंची हो गई थीं। अपने कारबार की ठीक व्यवस्था करने और इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए डाइरेक्टरों ने क्लाइव को, जो अब 'लार्ड क्लाइव' था, दोबारा भारत भेजना आवश्यक समझा। क्लाइव फिर एक बार 'फ़ोर्ट विलियम का गवर्नर' नियुक्त हुआ। जिस समय क्लाइव इंगलिस्तान से कलकत्ते आ रहा था, मद्रास में उसने मीर जाफ़र की मृत्यु का समाचार सुना। उसका ख़ास उद्देश्य इस सयम बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार शाह आलम से प्राप्त करना था। इतिहास लेखक व्हीलर लिखता है :

> **"मीर जाफ़र की मृत्यु की ख़बर सुन कर क्लाइव बहुत खुश हुआ। वह अब बंगाल प्रान्तों के राजशासन में उस नई पद्धति को जारी करने के लिए उत्सुक था, जिसका सात साल से अधिक हुए वह इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री पिट से ज़िक्र कर चुका था। वह चाहता था कि एक ऐसे नए आदमी को नवाब बना दिया जाए, जो केवल शून्यमात्र हो, सारा शासन-प्रबन्ध हिन्दोस्तानी कर्मचारियों के हाथों में रहे, असली मालिक अंगरेज़ रहें। वे ही मालगुज़ारी वसूल करें, वे ही बाहर के हमलों और भीतर के विद्रोहों से तीनों प्रान्तों की रक्षा करें, जंग करें और सन्धियां करें, किन्तु अंगरेज़ों की बादशाहत जन-सामान्य की आंखों से छिपी रहे। अंगरेज़ इस तरह नवाब के नाम पर और मुग़ल सम्राट के दिए हुए अधिकार से शासन करते रहें।"***

क्लाइव की तजवीज़

क्लाइव को उस समय तक यह मालूम न था कि अंगरेज़ों ने नजमुद्दौला को नवाब मान लिया है। उसकी तजवीज़ यह थी कि मीर जाफ़र के छै साल के एक पोते को मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठा कर उसके नाम पर अपनी यह सारी योजना पूरी की जाए।

मई सन् 1765 में क्लाइव कलकत्ते पहुंचा। यहां आकर जब उसने सुना की स्पेन्सर और उसके साथियों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया और इस सौदे में बीस लाख रुपये नक़द अपनी जेबों में भर लिए, तो क्लाइव को बड़ा क्रोध आया। किन्तु वह उसी समय से अपनी ऊपर लिखी योजना को पूरा करने के प्रयत्नों में लग गया।

क्लाइव का इलाहाबाद आना

सम्राट शाह आलम अभी तक इलाहाबाद में था। सम्राट और नवाब वज़ीर

* "......was delighted at the news. He was anxious to introduce the new system for the Government of the Bengal provinces, which he had unfolded to Pitt more than seven years before. He would set up a new Navab who should be only a cypher. He would leave the administration in the hands of native officials. The English were to be the real masters; they were to take over the revenues, defend the three provinces from invasion and insurrection, make war and conclude peace. But the sovereignty of the English was to be hidden from the public eye. They were to rule only in the name of the Navab and under the authority of the Moghul Emperor."—Wheeler's *Early Records of British India,* pp. 329, 330.

शुजाउद्दौला, दोनों अंगरेजों से दबे हुए थे। बंगाल के तीनों प्रांतों की दीवानी के अधिकार सम्राट से प्राप्त कर लेने की अंगरेज़ पहले भी कोशिशें कर चुके थे यही बात क्लाइव की ऊपर लिखी योजना में भी शामिल थी। उसने इस काम के लिए अब सीधे इलाहाबाद पहुंचने का इरादा किया।

शुजाउद्दौला से नई सन्धि

मार्ग में सबसे पहले क्लाइव मुर्शिदाबाद ठहरा। वहां पर मोहम्मद रज़ा ख़ाँ की सहायता से क्लाइव ने पांच लाख रुपये नक़द बतौर नज़र के अपने लिए नवाब नजमुद्दौला से वसूल किए और इस तरह का पक्का इंतज़ाम कर लिया कि जिससे आइंदा के लिए क़रीब-क़रीब सारी अमली हकूमत अंगरेज़ों के हाथों में आ गई, और सूबेदार केवल एक नाम की चीज़ रह गया। वहां से चल कर क्लाइव जनरल कारनक के पास बनारस पहुंचा। शुजाउद्दौला भी उस समय बनारस में था। शुजाउद्दौला और अंगरेज़ों के बीच हाल ही में संधि हो चुकी थी। 2 अगस्त को क्लाइव की शुजाउद्दौला से भेंट हुई। उसी दिन इस हाल की संधि की ख़ास परवाह न करते हुए क्लाइव ने शुजाउद्दौला को फिर से लड़ाई की धमकी देकर उससे एक नई संधि मंज़ूर करा ली, जिसके अनुसार नवाब वज़ीर ने अब इलाहाबाद और कड़ा, दोनों स्थान 'सम्राट के लिए' (?) कह कर कम्पनी को दे दिए, और लड़ाई का जो हर्जाना जो पिछली संधि में पचास लाख रुपये नियत किया गया था, उसे बढ़ा कर अब 6 लाख पाउंड यानी क़रीब 60 लाख रुपये कम्पनी को भर देने का वादा किया।

कम्पनी को दीवानी के अधिकार

बनारस से आगे बढ़ कर क्लाइव इलाहाबाद पहुंचा। 9 अगस्त, सन् 1765 को उसने सम्राट शाह आलम से भेंट की। उसी रोज़ बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार अंगरेज़ कम्पनी को देकर निर्बल और अदूरदर्शी शाह आलम ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी और मुग़ल साम्राज्य, दोनों की मौत के परवाने पर दस्तख़त कर दिए। इसका मतलब यह था कि आइंदा से तीनों प्रांतों का लगान और दूसरे सरकारी टैक्स वसूल करने और उसमें से 26 लाख रुपये सम्राट की मालगुज़ारी दिल्ली भेजते रहने और मुर्शिदाबाद दरबार के ख़र्च के लिए रक़म अदा करने का काम कपम्नी के सुपुर्द हो गया। तीनों प्रांतों का शेष शासन-प्रबंध सूबेदार के हाथों में रहा और जो मालगुज़ारी बची, वह कम्पनी की संपत्ति हो गई। इस समय से बंगाल में दो अलग-अलग 'सरकारें' साफ़ दिखाई देने लगीं—एक मुर्शिदाबाद की दिखावटी सरकार और दूसरी कलकत्ते की अमली अंगरेज़ सरकार।

सम्राट से इस महत्वपूर्ण परवाने के हासिल करने में बल प्रदर्शन से भी काम लिया गया। 'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि सम्राट और वज़ीर दोनों को—

> **"अपनी इच्छा के विरुद्ध, मजबूर होकर यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी।"**

क्लाइव अब अपना उद्देश्य पूरा कर इलाहाबाद से कलकत्ते वापस आ गया।

नजमुद्दौला की हत्या

क्लाइव जब मुर्शिदाबाद से बनारस के लिए रवाना हुआ था, उसी समय अचानक नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हो गई। जिन हालात में यह मृत्यु हुई, वे काफ़ी शक पैदा करने वाले थे। 'सीअरुल-मुताख़रीन' से मालूम होता है कि नजमुद्दौला और मोहम्मद रजा खां, दोनों मुर्शिदाबाद के बाहर एक बाग़ तक क्लाइव को छोड़ने के लिए आए। क्लाइव के रवाना हो जाने पर जब ये दोनों अपने-अपने महलों की ओर लौटे तो मार्ग ही में नौजवान नवाब के पेट में एकाएक ज़बर्दस्त दर्द पैदा हुआ और महल तक पहुंचते-पहुंचते उसकी मृत्यु हो गई। लिखा है कि उन दिनों आम लोगों का ज़ोरों के साथ यह ख़याल था कि मोहम्मद रजा खां ने कुछ खिला कर नजमुद्दौला को मरवा डाला।

मोहम्मद रजा खां अंगरेज़ों का ख़ास आदमी था। वेरेल्स्ट नामक अंगरेज़ के एक खत से मालूम होता है कि कलकत्ते में उन दिनों यह ज़बर्दस्त अफ़वाह थी कि नबाव नजमुद्दौला की हत्या में लार्ड क्लाइव और उसके कई अंगरेज़ साथियों की साज़िश थी।* इसमें संदेह नहीं, क्लाइव नजमुद्दौला के ख़िलाफ़ था। नजमुद्दौला से पांच लाख रुपये नक़द ले लेने के बाद उसने डाइरेक्टरों के नाम एक ख़त में लिखा : "नजमुद्दौला के हाथों में सत्ता सौंप देना और ख़ैरियत से रह सकना नामुमकिन है।"† इसके अलावा कोई नीच-से-नीच काम ऐसा न हो सकता था, जिसे अपनी इष्टसिद्धि के लिए क्लाइव करने को तैयार न हो जाता। नजमुद्दौला की मृत्यु से एक लाभ कम्पनी को और हुआ। उन्होंने दीवानी मिलनेपर नवाब के सैनिक इत्यादि ख़र्च के लिए 55 लाख रुपये सालाना देश की आमदनी में से देने का वादा किया था। अब उसे घटा कर 41 लाख 81 हज़ार रुपये कर दिया गया।

नजमुद्दौला की मृत्यु के साथ-साथ मुर्शिदाबाद के नवाबों की सत्ता की रही-सही छाया भी बंगाल के इतिहास से लोप हो जाती है। यद्यपि नाम या उपचार के लिए नजमुद्दौला के बाद उसका एक छोटा भाई गद्दी पर बैठा दिया गया, और यह दो-अमली वारेन हेस्टिंग्स के समय तक जारी रही, किन्तु वास्तव में बंगाल का सूबेदार अब हर तरह केवल एक 'शून्य' रह गया, तीनों प्रांतों का शासन अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए तीन 'नायबों' के हाथों में आ गया, और 'अंगरेज़ सरकार' का ही बंगाल भर में ज़हूर दिखाई देने लगा। इसके बाद से बंगाल का इतिहास केवल अंगरेज़ गवर्नरों के कारनामों का इतिहास रह जाता है।

भयंकर लूट और दो अमली

ईस्ट इंडिया कम्पनी के तमाम छोटे-बड़े अंगरेज़ मुलाज़िमों में धन का लोभ और दुराचार, दोनों अब इस दरजे फैल गए थे कि नेकी-बदी या न्याय-अन्याय का विचार तो दूर रहा, अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने ये लोग कम्पनी के अहित की भी परवाह न करते थे। 30 दिसम्बर, सन् 1765 को क्लाइव ने

**Third Report*, 1773, p. 325.

† "It is impossible, therefore, to trust him with power, and be safe."—Clive's letter to the Court of Directors, dated 30th September, 1765.

कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिससे उस समय के अंगरेज़ों की हालत का ख़ासा पता चलता है। इस पत्र में क्लाइव लिखता है :

"××× ये लोग (कम्पनी के अंगरेज़ मुलाज़िम) अपने--अपने व्यक्तिगत और तात्कालिक लाभ के पीछे इस जोश के साथ बढ़े जा रहे हैं कि इनमें से अपनी इज्ज़त का ख़याल या अपने मालिकों की ओर अपना कर्त्तव्य पूरा करने का ख़याल, दोनों जाते रहे। इन लोगों के पास दौलत यकायक बढ़ गई है और बहुतों ने उसे नाजायज़ तरीक़ों से हासिल किया है ; जिसकी वजह से तरह-तरह की ऐशपरस्ती इन लोगों में घर कर गई है और यह ऐशपरस्ती बड़ी खतरनाक हद को पहुंच गई है। ×××यह बुराई लगनी बीमारी की तरह एक से दूसरे को लगती चली जा रही है और दीवानी तथा फ़ौजदारी, दोनों महकमों के अंगरेज़ मुहर्रिरों, झंडाबरदारों और स्वतन्त्र व्यापारियों तक में फैल गई है×××

"मैं कभी समझ भी नहीं पाया था कि यह धन किन--किन विविध उपायों से प्राप्त किया गया है कि इतने में, मैं यह देख कर दंग रह गया कि ये लोग इतनी जल्दी धनवान हो गए हैं कि अंगरेज़ी बस्ती भर में शायद ही कोई अंगरेज़ ऐसा होगा, जिसने बहुत थोड़े समय के अन्दर अपनी विशाल पूंजी सहित इंगलिस्तान लौट जाने का निश्चय न कर रखा हो।"

खुले डाके

कंपनी के अंगरेज़ों के धन कमाने का एक ख़ास तरीका उन दिनों खुले डाके डालना था। इतिहास-लेखक टारेंस ने साफ़ लिखा है कि ये लोग "बंगाल और दूसरे स्थानों में निडर होकर लूट के लिए निकलते थे।" और "बार-बार अपनी दुकान छोड़ कर दल बना कर इधर-उधर डाके डालने जाते थे।" "उन दिनों कम्पनी के हर अंगरेज़ मुलाज़िम का काम केवल यह था कि जितनी जल्दी हो सके, भारतवासियों से दस या बीस लाख रुपये लूट-खसोट कर इंगलिस्तान लौट जाए।"*

और आगे चल कर क्लाइव अपने उस ख़त में लिखता है :

" ×××दौलत अनुशासन की शत्रु है ही। इसी दौलत की वजह से हमारी सेना प्रतिदिन बरबाद होती जा रही है××× जब अंगरेज़ी फ़ौज किसी शहर पर क़ब्ज़ा करती है, तब उसके बाद सारा दुश्मन का माल, आम लूट का माल और दण्ड का रुपया बेरोक-टोक फ़ौज के लोग आपस में बांट लेते हैं ×××मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि बनारस में भी ऐसा ही हुआ। इससे भी अधिक विचित्र बात यह है कि बनारस की लूट से कई साल पहले आपकी ये स्पष्ट आज्ञाएं आ चुकी थीं कि इस तरह के तमाम माल में से आधा कम्पनी को

---

* "The razzias made with impunity in Bengal and elsewhere. ....the counting-house was deserted continually for marauding expeditions......During this period the business of a servant of the Company was simply to wring out of the natives a hundred or two hundred thousand pounds as speedily as possible, that he might return home......"—Torrens' *Empire in Asia*, pp. 82, 83.

मिलना चाहिए, फिर भी उस समय के गवर्नर और कौन्सिल ने बजाय आपकी आज्ञा के अनुसार काम करने के ××× तमाम माल और रुपया विजयी फ़ौज के सैनिकों में बांट दिया××× ।

" ×××ऐयाशी और रिश्वतखोरी का बाजार गरम है×××।"

संसार के इतिहास में अपूर्व अन्याय

उस समय के अंगरेज़ हिंदोस्तानियों पर जिस तरह के अत्याचार करते थे, उनके विषय में क्लाइव ने लिखा :

"जो यूरोपियन एजेण्ट और जो बेशुमार काले (हिन्दोस्तानी) एजेण्ट और नायब एजेण्ट कम्पनी के मुलाज़िमों के अधीन काम करते हैं, उन सब ने प्रजा पर ज़ुल्म ढाने और उन्हें चूसने के जो-जो तरीक़े जारी कर रखे हैं, वे, मुझे डर है कि, इस देश में अंगरेज़ों के नाम पर सदा के लिए एक कलंक रहेंगे× × ×। मैं देखता हूं कि हर आदमी में बड़े बनने और धन कमाने की लालसा, इसमें सफलता और ऐशपरस्ती, इन तीनों ने मिल कर एक नई क़िस्म की राजनीति प्रचलित कर दी है, जिससे अंगरेज क़ौम की इज्जत, कम्पनी पर लोगों के विश्वास और मामूली इन्साफ़ और इन्सानियत--सब का खून हो रहा है ।"*

क्लाइव के इसी पत्र के उत्तर में डाइरक्टरों ने मई, सन् 1766 में क्लाइव को लिखा :

"हम समझते हैं कि देश के आन्तरिक व्यापार में इन अंगरेज़ों ने व्यक्तिगत

---

* "......men, whose sense of honour, and duty to their employers, had been estranged by the too eager pursuit of their own immediate advantage. The sudden and, among many, the unwarrantable acquisition of rickes. had introduced luxury in every shape, and in its most pernicious excess......the evil was contagious, and spread among the Civil and Military, down to the writer, the ensign, and the free merchant......

"Before I had discovered these various sources of wealth, I was under great astonishment to find individuals so suddenly enriched, that there was scarce a gentleman in the settlement who had not fixed upon a very short period for his return to England with affluence.

"......riches, the bane of discipline, were daily promoting the ruin of our army......they are suffered, without control, to take possession, for themselves of the whole booty, donation, money, and plunder. on the capture of a city. This, I can assure you, happened at Benares; and, what is more suprising, the then Governor and Council, so far from laying in a claim to the moiety which ought to have been reserved for the Company, agreeable to those positive orders from the Court of Directors a few years ago,......gave up the whole to the captors......

"......the rage of luxury and corruption......

"The sources of tyranny and oppression, which have been opened by the European agents acting under the authority of the Company's servants, and the numberless black agents and sub-agents acting also under them, will I fear, be a lasting reproach to the English name in this country......Ambition, success, and luxury have, I find, introduced a new system of politics, at the severe expense of English honour, of the Company's faith, and even of common justice and humanity."—Cliver's letter to the Directors, dated 30th September, 1765.

हैसियत से जो बड़ी-बड़ी पूंजियां कमाई हैं, वे इस तरह के जबर्दस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा हासिल की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी जमाने और किसी देश में भी देखने या सुनने में न आए होंगे।"*

ऊपर का लंबा पत्र लार्ड क्लाइव का लिखा हुआ है, जो स्वयं हद-दरजे का लालची और रिश्वतख़ोर था, जो अपने इस दूसरी बार के भारत आने से भी लाखों रुपये नाजायज़ तरीक़ों से कमा कर विलायत ले गया, और जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए न्याय-अन्याय या पाप-पुण्य का ज़रा भी विचार न रखता था। इसी पत्र में एक जगह उसने भारतवासियों को 'अंगरेज़ों के क़ुदरती दुश्मन' कहा है और उनसे बचते रहने के उपाय दरशाए हैं। किन्तु क्लाइव जितना स्वार्थी था, उतना ही चतुर और कपटी भी था। उसके कई पत्रों से साबित है कि ज़रूरत पड़ने पर वह न्यायप्रेमी और सदाचारी का बाहरी वेष बना लेना भी जानता था। इसके अलावा इस समय अंगरेज़ों का व्यक्तिगत लोभ इतना बढ़ गया था कि यदि उसे परिमित न किया जाता, तो कम्पनी ही का चारों ओर दिवाला निकल जाने का डर था। यही क्लाइव के इस लम्बे पत्र के लिखे जाने का सबब था।

नमक पर महसूल

तिजारती माल पर महसूल वसूल करने का अधिकार अब कम्पनी को मिल चुका था। किन्तु कम्पनी के मुलाज़िमों के व्यापार सम्बंधी अन्यायों को रोकने के बजाय क्लाइव ने इस बार नमक जैसे पदार्थ की, जो कि हर मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है, तिजारत का ठेका कम्पनी के मुलाज़िमों को दे दिया और उस पर कम्पनी की ओर से 35 फ़ीसदी महसूल लगा दिया, जिससे प्रजा के लिए यह अन्याय और भी कष्टकर हो गया। ऐसे ही पान-तम्बाकू और इसी तरह की और अनेक चीजों की तमाम तिजारत बंगाल भर में अंगरेज़ों और उनके आदमियों के हाथों में दे दी गई। क्लाइव की यह खुली नीति थी कि नमक जैसी ज़रूरी चीज़ पर महसूल ज़्यादा और पान-तम्बाकू जैसी ग़ैरज़रुरी चीज़ों पर महसूल कम रहे और अंगरेज़ कम्पनी तमाम महसूल लेनेवाली रहे।

क्लाइव के जीवन का कोई भी काम ऐसा न था, जिससे कोई भारतवासी उसे कृतज्ञता के साथ याद कर सके।

क्लाइव का व्यक्तिगत चरित्र

क्लाइव का व्यक्तिगत चरित्र भी अत्यंत पतित था। कैरेकोली ने अपनी 'क्लाइव की जीवनी' में उसके पापमय कृत्यों की अनेक मिसाले दी हैं, जिन्हें इस पुस्तक में उद्धृत करना व्यर्थ तथा पुस्तक को गंदा करना होगा। कैरेकोली ने लिखा है :

---

* "......we think the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannic and oppressive conduct that ever was known in any age or country."—Letter from the Court of Directors to Lord Clive, dated May, 1766.

"बंगाल भर में यूरोपियन और हिन्दोस्तानी, दोनों तरह की स्त्रियों की ऐसी अनेक मिसालें थीं, जिन्होंने नफ़रत के साथ उसके प्रेम--प्रदर्शन को अस्वीकार किया और उसे संसार के सामने हास्यास्पद बना दिया।"*

इनमें से अनेक स्त्रियां विवाहित थीं।

सन् 1767 में क्लाइव ने सदा के लिए भारत छोड़ा और इंगलिस्तान में एक भारतीय 'नवाब' के ठाठ से रहना शुरु कर दिया। अंत में उसने आत्महत्या कर ली। इंगलिस्तान के अनेक सरल-विश्वासी लोगों ने उसकी आत्महत्या का सबब यह बतलाया कि "अमीचंद के साथ जालसाज़ी करके ब्रिटिश राज क़ायम करने, सिराजुद्दौला और नजमुद्दौला की हत्याएं कराने और अपने अनेक ईसाई मित्रों की पत्नियों को बहका कर उनके घरों का सुख नाश करने इत्यादि पापों की याद ने क्लाइव की आत्मा को चैन से न रहने दिया।"

क्लाइव के बाद

क्लाइव के बाद वेरेल्स्ट बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ। वेरेल्स्ट के एक ख़त से मालूम होता है कि सम्राट शाह आलम को दिल्ली जाने से रोकने और इतनी देर तक इलाहाबाद में ठहराए रखने में अंगरेज़ों का काफ़ी हाथ था। वेरेल्स्ट कम्पनी के हित में सम्राट को बंगाल लाना चाहता था, किन्तु वह चाहता यह था कि कोई ऐसी तरकीब की जाए, जिससे अंगरेज़ों को उसे बंगाल बुलाना न पड़े, बल्कि शाह आलम स्वयं उनके साथ बंगाल चलने की इच्छा प्रकट करे। अगस्त, सन् 1769 में वेरेल्स्ट की जगह करटियर गवर्नर नियुक्त हुआ। स्कालफ़ील्ड अपनी पुस्तक में इस अंगरेज़ गवर्नर के बारे में लिखता है :

"इस जिल्द के अधिकांश पत्र या तो बंगाल के फ़ोर्ट विलियम क़िले के गवर्नर के नाम भेजे गए थे या उसकी ओर से दूसरों को भेजे गए थे ; किन्तु इन सब बातों और चालों के जवाब में चालों, साजिशों और आशंकाओं के जाल में से इस गवर्नर का व्यक्तित्व कुछ बहुत चमकता नज़र नहीं आता।"†

उस समय के अंगरेज़ गवर्नरों के मुख्य कार्य का यह खासा सार है। सन् 1772 में करटियर की जगह वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर नियुक्त हुआ। क्लाइव के जाने के समय से वारेन हेस्टिंग्स की नियुक्ति के समय तक उत्तर भारत में कोई भी महत्व की राजनैतिक घटना नहीं हुई।

'सीअरुल-मुताख़रीन' में विस्तार के साथ बयान किया गया है कि किस तरह उन दिनों बंगाल के तीनों प्रांतों में अलग-अलग शिताबराय, मोहम्मद रज़ा ख़ां, और जसारत

---

* "There were several instances of both white and black women in Bengal who rejected his offer with disdain and exposed him to the ridicule of the world."—*Life of Clive,* by Caraccioli, vol. i.

† "From the tangle of plot and counterplot, of intrigue and suspicion, the personality of the Governor of Fort William in Bengal, to whom most of the letters in this volume are addressed or in whose name they were issued, does not emerge with any great distinctness."—A. F. Scholfield, in the preface to the Third Volume of *Calendar of Persian Correspondence.*

ख़ां कम्पनी के नायबों की हैसियत से सारा काम करते थे, उनके साथ बैठ कर और हर ज़िले में छोटे-से-छोटे देशी अफ़सरों के पास बैठ कर अंगरेज़ माल के महकमे का सारा काम सीखते थे और देश के रस्मो-रिवाज की जानकारी प्राप्त करते थे और फिर उन्हीं से सीख कर उन्हीं पर हावी रहते थे या उन्हें निकाल कर उनकी जगह ले लेते थे।

दो-अमली द्वारा बंगाल का नाश

इस दो-अमली ने तीनों प्रांतों का सत्यानाश कर डाला। चारों ओर अराजकता थी। हर समय हर एक की जान और माल को ख़तरा रहता था। हर तरह की तिजारत पर अंगरेज़ों का अनन्य अधिकार था। देश के समस्त उद्योग-धंधे, जिन्हें कुछ ही वर्ष पहले संसार चकित होकर देखता था, कुचल कर मटियामेट कर दिए गए थे। सोना, चांदी, जवाहरात, रुपये और अशर्फ़ियां लद-लद कर देश से बाहर जाने लगी, यहां तक कि देश में रूपया दिखाई देना तक कठिन हो गया। बोल्ट्स नामक अंगरेज़ ने विस्तार के साथ बयान किया है कि किस तरह अंगरेज़ दलालों ने बंगाल की फली-फूली दस्तकारियों का नाश कर डाला।* इसी अपराध के दंड में बोल्ट्स को भारत से देश-निकाला दे दिया गया।

गवर्नर वेरेल्स्ट के एक पत्र से मालूम होता है कि अंगरेज़ों के अधिकार से पहले बंगाल की बनी हुई चीज़ें हिंदोस्तान के कोने-कोने में और पश्चिम में ईरान और अरब की खाड़ियों, और पूरब में चीन इत्यादि के समुद्रों से होकर दूर-दूर के देशों में पहुंचती थीं और 'हज़ारों रास्तों से धन बह-बह कर' बंगाल में आता था। किन्तु अब वह रास्ते बंद हो गए। यूरोप की कम्पनियां जो भारतीय माल हर साल जहाज़ों में भर कर अपने देशों को ले जाती थीं, उस माल के बदले में एक पैसा यूरोप से भारत न आता था। इस माल की पूरी क़ीमत बंगाल ही से वसूल की जाती थी। भारत के दूसरे प्रांतों का अपना ख़र्च, यहां तक कि अपनी चीन की बस्तियों तक का खर्च, अंगरेज़ बंगाल ही से वसूल करते थे। व्हीलर नामक अंगरेज़ लिखता है :

> **"तीन साल के अन्दर पचास लाख पाउण्ड (पांच करोड़ रुपये) से ऊपर का सोना चांदी बंगाल से विदेशों को गया, जब कि कुल पांच लाख पाउण्ड (पचास लाख रुपये) का सोना चांदी बाहर से बंगाल आया। इसी समय के अन्दर एक रुपये की कीमत दो शिलिंग छ पेन्स हो गई।"†**

दरिद्रता, दुष्काल और महामारी

'सीअरुल-मुताख़रीन' का बयान है :

> **"इस समय यह देखा गया कि बंगाल में रुपया कम होता जा रहा था...... हर साल बेशुमार नक़दी लाद कर इंगलिस्तान भेजी जाती थी। यह एक मामूली बात थी कि हर साल पांच, छ या इससे भी अधिक अंगरेज बड़ी बड़ी पूंजियां**

---

* *Consideration of the Affairs of the East India Company,* by Bolts.

† "During three years the exports of bullion from Bengal exceeded five millions sterling, whilst the imports of bullion were little more than half million. Meantime the rupee rose to an exchange value of two and six pence."—*Early Records of British India,* by Wheeler, p. 375.

साथ लेकर अपने वतन को लौटते हुए दिखाई देते थे। इसलिए लाखों के ऊपर लाखों चिन-चिन कर इस देश से निकल गए। ××× सरकारी फ़ौज, जमींदारों की फ़ौजें, उम्मेदवार और उनके नौकर—सब मिला कर कम से कम 70 या 80 हजार हिन्दोस्तानी सवार पहले बंगाल और बिहार के मैदानों में भरे रहते थे ; और अब बंगाल के अन्दर एक सवार ऐसे ही अलभ्य है, जैसे दुनिया में 'उनका' पक्षी। हर जिले में पैदावार कम होती जा रही है और असंख्य जनता दुष्काल और महामारी से मिटती जा रही है, जिससे देश बराबर उजड़ता चला जा रहा है। नतीजा यह है कि बेहद जमीन बिना जोती बोई पड़ी हुई है और जो हम लोगों ने जोती है, उसकी भी पैदावार की निकासी के लिए हमें बाजार नहीं मिल सकता। यह बात यहां तक सच है कि यदि अंगरेज हर साल बंगाल और बिहार भर से शोरा, अफ़ीम, कच्चा रेशम और सफेद कपड़े के थान न खरीदते होते, तो शायद बहुत से हाथों में एक रुपया या अशरफी वैसे ही अलभ्य हो जाती, जैसे पारस पथरी। और वह समय आनेवाला है, जब बहुत-से नए पैदा हुए आदमी यह न समझ सकेंगे कि लोग पहले रुपया किस चीज को कहा करते थे और अशरफ़ी शब्द के क्या अर्थ होते थे।"*

दुर्भाग्य से इसी मौक़े पर बंगाल में सूखा पड़ा। फिर भी यदि कम्पनी के आदमियों की अनीति जारी न होती, तो इस सूखे के होते हुए भी बंगाल में अन्न की कमी न होती।

कम्पनी के सरकारी काग़ज़ों में इस दुष्काल की भयंकरता का बयान करते हुए लिखा है कि—

"कुछ एजेण्टों ने चावलों की कोठियां भर लेने का अच्छा मौक़ा देखा। उन्होंने अपनी कोठियां भर लीं। वे जानते थे कि हिन्दू मर जाएंगे, लेकिन मांस खाकर अपने धर्म से भ्रष्ट न होंगे, इसलिए मरने से बचने के लिए अपना सर्वस्व देकर अंगरेज़ों से चावल खरीदने के सिवा उनके पास और कोई चारा न रहेगा। देश के बाशिन्दे मर मिटे। जमीन उन्होंने खुद जोती थी और देखा कि पैदावार दूसरों के हाथों में चली गई। उन्होंने सशंक हृदय से बीज बोया—अकाल पड़ा। फिर (चावल के व्यापार पर) अपना ठेका जमाए रखना (अंगरेज़ों के लिए) और अधिक आसान हो गया—महामारी फैली। बाजे जिलों में जीवित, किन्तु अधमरे लोग अपने बेशुमार मरे हुए रिश्तेदारों के शरीरों को बिना दफ़नाए छोड़ कर चल दिए।"†

**Searul-Mutakherin*, vol. iii, p. 32, Calcutta Reprint.

† "Some of the agents saw themselves well situated for collecting the rice into stores; they did so. They knew the gentoos (Hindoos) would rather die than violate the principles of their religion by eating flesh. The alternative would therefore be between giving what they had or dying. The inhabitants sunk; they had cultivated the land and saw the harvest at the disposal of others, planted in doubt—scarcity ensued. Then the monopoly was easier managed—sickness ensued. In some districts the languid living left the bodies of their numerous dead unburied."—*Short History of the English Transactions in the East Indies*, p. 145.

अन्न के काल और महामारी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी समय बंगाल भर में चेचक की महामारी फैली, जिससे न बच्चा बच सका और न बूढ़ा, न पुरुष बच सके और न स्त्री किन्तु अंगरेज़ों ने न चावल का व्यापार का ठेका अपने हाथों से छोड़ा और न मुंहमांगी कीमतों में कमी की ।

कम्पनी के डायरेक्टरों ने 18 दिसम्बर, सन् 1771 के पत्र में स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि इस अवसर पर कम्पनी के मुलाज़िमों ने चावल और दूसरे अनाज के व्यापार पर अपना अनन्य अधिकार जमा रखा था, जिसके सबब से देश भर में चारों ओर अन्न का अभाव दिखाई देता था ।

खून के आंसू

बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता का इस तरह प्रारम्भ हुआ। कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल में 17वीं सदी के शुरू का बना हुआ संगमूसा का वह सुन्दर तख्त अभी तक रखा है, जिस पर मुर्शिदाबाद के सूबेदार बैठा करते थे। इसी तख्त पर बैठ कर अलीवरदी खां और सिराजुद्दौला ने बंगाल पर शासन किया था। इसी तख्त पर प्लासी के संग्राम के बाद क्लाइव ने मीर जाफ़र को बैठा कर 'तीनों प्रान्तों का सूबा' कह कर सलाम किया था। इसी तख्त पर बैठ कर मीर क़ासिम ने बंगाल की स्वाधीनता की रक्षा के अन्तिम प्रयत्न किए थे ।

विक्टोरिया मेमोरियल के सूचीपत्र में पृष्ठ 40 पर लिखा है कि अभी तक खून के-से रंग की लाल बूंदें इस तख्त के कई हिस्सों से समय-समय पर टपकती रहती हैं। वैज्ञानिकों की राय है कि इन लाल बूंदों के टपकने की वजह से पत्थर के अन्दर की कुछ रासायनिक विशेषता है। किन्तु बंगाल में यह एक आम किम्वदन्ती है कि भारतीय नवाबी के पतन और अंगरेज़ कम्पनी की सत्ता के प्रारम्भ पर मुर्शिदाबाद का सूना और निर्जीव तख्त अभी तक खून के आंसू बहाता रहता है। जो हो, नवाबी के पतन के साथ-साथ बंगाल और वहां की प्रजा की इस हृदयविदारक अवस्था को देखते हुए पूर्वोक्त किम्वदन्ती आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होती ।

सातवां अध्याय

वारेन हेस्टिंग्स

(1772–1785)

दो-अमली का अन्त

सन् 1772 ई० में कम्पनी की ओर से वारेन हेस्टिंग्स कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले का गवर्नर नियुक्त हुआ। वारेन हेस्टिंग्स की तालीम बहुत कम ही थी। सन् 1750 के करीब वह एक मामूली क्लर्क की हैसियत से हिन्दोस्तान आया और बहुत दिनों तक चालीस रुपये मासिक पर मुर्शिदाबाद दरबार के अंगरेज़ वकील के पास काम करता रहा। मुर्शिदाबाद में रह कर वह क्लाइव की देख-रेख में भारतवासियों के रीति-रिवाज और कूटनीति के दांव-पेच सीखता रहा। धीरे-धीरे वह क्लाइव से बढ़ कर चतुर साबित हुआ। न्याय-अन्याय या पाप पुण्य की उससे भी कम परवाह करता था।

इस समय तक कुछ इलाका बंगाल के अन्दर, बंगाल, बिहार और उड़ीसा, तीनों प्रान्तों की दीवानी, और थोड़े-थोड़े इलाके मद्रास और बम्बई की ओर कम्पनी को मिल चुके थे। मुर्शिदाबाद का गद्दी-नशीन नवाब केवल एक अधिकारशून्य खिलौना था, और तीनों प्रान्तों का सारा शासन पटने में महाराजा शिताबराय, मुर्शिदाबाद में मोहम्मद रज़ा खां और उड़ीसा में जरारत खां, इन तीन नायबों के हाथों में था, और ये तीनों हर तरह अंगरेज़ों के हाथों की कठपुतली थे।

निस्सन्देह, इन दोनों नायबों ने कम्पनी के ऊपर बेशुमार अहसान किए थे। अंगरेज़ों और शुजाउद्दौला के युद्ध के समय शिताबराय ने कदम-कदम पर अंगरेज़ों का साथ दिया था और उसी से अंगरेज़ों का अधिकांश काम निकला।

'सीअरुल-मुताखरीन' में लिखा है कि आए दिन कम्पनी के कर्मचारी एक-न-एक अंगरेज़ को शिताबराय के पास भेजते रहते थे और बिना किसी वजह यह लिख भेजते थे कि इसे इतनी रकम दे दी जाए। शिताबराय ने इन अंगरेज़ों को देने के लिए लोगों से रुपये वसूल करने के अनेक उपाय निकाल रखे थे, जिनमें से एक उपाय यह था कि ऐसे मौकों पर वह अपने खास-खास जागीरदारों, माफ़ीदारों इत्यादि को उनके पट्टों और सनदों सहित बुलवा भेजता था; फिर इस बहाने से कि अमुक अंगरेज़ आपके कागज़ देखना चाहता है, उनसे कागज़ लेकर अपने किसी कर्मचारी को दे देता था और जब तक एक खास रकम उनसे वसूल न कर लेता था, कागज़ वापस न देता। अन्त में ये रकमें जमा करके उस अंगरेज़ को दे दी जाती थीं।*

वारेन हेस्टिंग्स के समय में हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी का इलाका नहीं बढ़ा। फिर भी वारेन हेस्टिंग्स का शासनकाल ब्रिटिश भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। क्लाइव ने इस देश के अन्दर अंगरेज़ी राज की जो बुनियादें डाली थीं,

---

**Seir*, vol. iii, pp. 65-66, Calcutta Reprint.

वारेन हेस्टिंग ने भारत की राज-शक्तियों को और अधिक कमज़ोर करके उन बुनियादों को पक्का कर दिया।

मालूम होता है कि इस समय तक अंगरेज़ भारतीय शासन का सब कारोबार सीख चुके थे। वारेन हेस्टिंग्स ने सब से पहला काम यह किया कि क्लाइव की कायम की हुई दो-अमली का अन्त करने के लिए उसने मोहम्मद रज़ा खां और शिताबराय, दोनों नायबों पर गबन और खयानत के इलज़ाम लगा कर उन्हें कैद कर लिया। मोहम्मद रज़ा खां को फंसाने के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने राजा नन्दकुमार को अपनी ओर फोड़ा। नन्दकुमार को यह लालच दिया गया कि रज़ा खां की जगह तुम्हें बंगाल का नायब बना दिया जाएगा। इस लालच में आकर नन्दकुमार ने मोहम्मद रजा खां को दोषी साबित करने में अंगरेज़ों को काफ़ी मदद दी। 'सीअरुल-मुताखरीन' में लिखा है कि महाराजा शिताबराय को भी धोखा देकर गिरफ्तार किया गया।

कलकत्ते लाकर इन दोनों हिन्दोस्तानी शासकों के मुकदमों की सुनाई हुई। राजा नन्दकुमार ने अपने बयान में लिखा है कि इन दोनों से कई-कई लाख रुपये रिश्वत लेकर अन्त में वारेन हेस्टिंग्स ने दोनों को निर्दोष कह कर छोड़ दिया। किन्तु उन दोनों का काफ़ी अपमान किया जा चुका था। उनके अधिकार छीन कर कम्पनी को दे दिए गए। मुर्शिदाबाद के नवाब के सालाना खर्च की रकम को वारेन हेस्टिंग्स ने और अधिक कम कर दिया और दीवानी तथा फ़ौजदारी, दोनों की सदर अदालतों को मुर्शिदाबाद से कलकत्ते हटा लिया। इस तरह दो-अमली का भी अन्त हो चला और तीनों प्रान्तों के ऊपर कम्पनी की राज-सत्ता और साफ़-साफ़ चमकने लगी। मुक़दमा समाप्त होने के बाद नन्दकुमार को मालूम हुआ कि उसे बंगाल की नायबी का झूठा लालच केवल काम निकालने के लिए ही दिया गया था।

अभी तक क्लाइव के समय की सन्धि के अनुसार कम्पनी सम्राट शाह आलम को 26 लाख रुपये वार्षिक खिराज भेजती थी। सन् 1771 में सम्राट शाह आलम इलाहाबाद से दिल्ली चला गया। वारेन हेस्टिंग्स ने गवर्नर नियुक्त होते ही सम्राट को खिराज़ भेजना बन्द कर दिया। इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा क्लाइव ने शुजाउद्दौला से सम्राट के लिए कह कर लिया था। अब हेस्टिंग्स ने पचास लाख रुपये के बदले में इलाक़ा फिर शुजाउद्दौला के हाथ बेच दिया। किन्तु इलाहाबाद के क़िले में सेना बराबर कम्पनी ही की रहती रही।

वारेन हेस्टिंग्स के इन सब कामों को 'सुधार' का नाम दिया जाता है। इनका उद्देश्य था बंगाल के राजशासन से धीरे-धीरे भारतीय अंश को मिटा देना।

निरपराध रुहेलों का संहार

कम्पनी के डाइरेक्टर अब वारेन हेस्टिंग्स पर बार-बार ज़ोर दे रहे थे कि जिस तरह हो सके अधिक से अधिक धन भारत से वसूल करके इंगलिस्तान भेजा जाए। वारेन हेस्टिंग्स ने भी, लार्ड मैकाले के शब्दों में—"चाहे ईमानदारी से हो और चाहे बेईमानी से, जिस तरह

16—220 M of I&B/80

हो सके, धन बटोरने का निश्चय कर लिया ।'' *देश की स्थिति का उसे पूरा ज्ञान था और सूझ की भी उसमें कमी न थी ।

सबसे पहले वारेन हेस्टिंग्स की नज़र रुहेलखण्ड की ओर गई । अवध की उत्तर-पश्चिम सरहद पर रुहेल पठानों का राज था । इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

> **"एशिया भर में जिन देशों का शासन सबसे अच्छा था, उनमें एक रुहेलखण्ड का इलाक़ा था । वहां की प्रजा सुरक्षित थी, उनके उद्योग-धन्धे को राज की ओर से सहायता दी जाती थी और देश में खुशहाली बराबर बढ़ती जाती थी । इन उपायों से और अपने पड़ोसियों का इलाक़ा फ़तह करने के स्थान पर कोशिश करके सबके साथ मेल-जोल बनाए रख कर, उन लोगों ने अपनी स्वाधीनता को क़ायम रखा था ।"†**

अवध के नवाब के साथ रुहेलों की सन्धि हो चुकी थी, जिसका ये लोग सदा ईमानदारी के साथ पालन करते थे । अंगरेज़ों के साथ रुहेलों का कोई किसी तरह का झगड़ा न था और न "झगड़े का कोई छोटे-से-छोटा बहाना ही अंगरेज़ों को मिल सकता था ।'' फिर भी वारेन हेस्टिंग्स ने सन् 1773 ई० में रुहेलों के विरुद्ध नवाब शुजाउद्दौला के साथ एक गुप्त सन्धि कर डाली । इस सन्धि में यह तय हो गया कि कोई मुनासिब बहाना मिलते ही कम्पनी और नवाब की सेनाएं मिल कर रुहेलखण्ड पर चढ़ाई करेंगी । रुहेला जाति को 'निर्मूल' कर उनका राज शुजाउदौला के हवाले कर दिया जाएगा और इस उपकार के बदले में शुजाउद्दौला चालीस लाख रुपये नकद और युद्ध का सारा खर्च कम्पनी को अदा करेगा । मिल के इतिहास से मालूम होता है कि शुजाउद्दौला ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश होकर इस सन्धि को स्वीकार किया । इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है कि—"17 अप्रैल, सन् 1774 को इस ज़बरदस्त अन्याय में एक-दूसरे को मदद देने वाली दोनों सेनाओं ने रुहेलखण्ड में प्रवेश किया । रुहेले वीर थे, किन्तु उनकी तादाद बहुत कम थी । उन्होंने पहले दया की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ ।'' मजबूर होकर उन्होंने वीरता के साथ मुकाबला किया, किन्तु क्या हो सकता था ? अन्त में, 23 अप्रैल को रामपुर की मशहूर लड़ाई में उनकी क़िस्मत का फ़ैसला हो गया । उनका नेता, नवाब फैजुल्ला खां, पहाड़ों की ओर भाग गया । "एक-एक आदमी, जो रुहेला कहलाता था, या तो अपना देश छोड़ कर

---

* "The object of Mr. Hasting's diplomacy was at this time simply to get money......by some means, fair or foul"—*Critical and Historical Essays,* by Lord Macaulay, vol. iii, p. 244.

† "Their territory was one of the best governed in Asia; the people were protected, their industry encouraged, and the country flourished steadily. By these cares, and by cultivating diligently the arts of neutrality, and not by conquering from their neighbours, they provided for their independence."—Mill's *History of India,* Book v. Chap. i.

"We had not the slightest pretence of quarrel with the Rohillas."—Torrens' *Empire in Asia,* p. 111.

"The Rohillas should be exterminated."—Warren Hastings' letters.

भाग गया या चुन-चुन कर मार डाला गया।"*सारा हरा-भरा देश लूट-खसोट कर उजाड़ कर दिया गया। रुहेलखण्ड की लूट से चालीस लाख रुपये नकद कम्पनी को मिले और दो लाख नकद वारेन हेस्टिंग्स की जेब में गए।

रामपुर और उसके आस-पास का थोड़ा-सा इलाका बतौर जागीर नवाब फैजुल्ला खां को वापस दे दिया गया। रुहेलखण्ड का बाकी इलाका शुजाउद्दौला को मिल गया। किन्तु वीर रुहेला जाति और उसकी स्वाधीनता का सदा के लिए अन्त हो गया।

वारेन हेस्टिंग्स को इनाम

इससे पहले वारेन हेस्टिंग्स केवल फ़ोर्ट विलियम क़िले और बंगाल के इलाकों का गवर्नर कहलाता था। मद्रास और बम्बई, दोनों प्रान्तों के अंगरेज़ी इलाकों का प्रबन्ध दो अलग गवर्नरों के सुपुर्द था, जिनकी दो अलग-अलग कौन्सिलें थीं। रुहेला युद्ध के अगले साल मद्रास और बम्बई के गवर्नर और उनकी कौन्सिलें बंगाल के गवर्नर के अधीन कर दी गईं और कम्पनी के समूचे भारतीय राज का पहला 'गवर्नर जनरल' वारेन हेस्टिंग्स नियुक्त हुआ।

वारेन हेस्टिंग्स पर इलज़ाम

ऊपर लिखा जा चुका है कि मुहम्मद रज़ा खां के विरुद्ध काम निकालने के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने महाराजा नन्दकुमार से बंगाल की नायबी का झूठा वादा कर दिया था। किन्तु नन्दकुमार भी एक अरसे से अंगरेज़ों की आंखों में खटक रहा था। उस झगड़े के बाद नन्दकुमार ने एक लम्बी अरज़ी लिख कर कलकत्ते की कौन्सिल के सामने पेश की, जिसमें उसने वारेन हेस्टिंग्स पर बंगाल के रईसों और ज़मीदारों से रिश्वतें लेने, ज़बरदस्ती धन वसूल करने, यहां तक कि मुर्शिदाबाद के नवाब की मां, मुन्नी बेगम से रकमें वसूल करने, लोगों को धोखा देने, इत्यादि के अनेक इलज़ाम लगाए। नन्दकुमार की अरज़ी में ठीक-ठीक रक़में और पूरे नाम और पते मौजूद थे। उसने शहादतें पेश करके अपने सब दावों को सच्चा साबित कर दिया।

महाराजा नन्दकुमार को फांसी

कौन्सिल के मेम्बरों ने नन्दकुमार के इल्ज़ामों को सच्चा स्वीकार किया। †किन्तु हेस्टिंग्स को कोई दण्ड न मिल सका। उसने इस बात से इन्कार ही किया कि कौन्सिल को गवर्नर के विरुद्ध शिकायत सुनने का अधिकार है। हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के इल्ज़ामों का जवाब देने के बजाय उलटा नन्दकुमार पर अब यह जुर्म लगाया कि की पांच साल पहले, यानी सन् 1770 ई० में नन्दकुमार ने किसी कागज़ पर जाली दस्तखत किए थे।

---

* "On the 17th April the allies in iniquity entered Rohilkhund. In vain the brave but out-numbered people used for mercy......Seldom, if ever, have what are calculated the rights of victory been more inhumanly abused. Every man who bore the name of Rohilla was either put to death or forced to seek safety in exile."—Torrens' *Empire in Asia,* p. 110.

†Minute of Council, 11th April, 1775.

सन् 1773 ई० में कम्पनी की ओर से कलकत्ते में एक नई अदालत 'सुप्रीम कोर्ट' के नाम से क़ायम हुई थी। वारेन हेस्टिंग्स का एक बचपन का दोस्त, सर एलिजाह इम्पे, उसका चीफ़ जस्टिस था। सर एलिजाह इम्पे के सामने महाराजा नन्दकुमार पर जालसाज़ी का मुकदमा चलाया गया। मिल की पुस्तक और उस समय के दूसरे इतिहासों से साफ़ ज़ाहिर है कि नन्दकुमार पर जालसाज़ी का इल्ज़ाम बिल्कुल झूठा था। फिर भी कई झूठे गवाह खड़े कर दिए गए। दूसरे पक्ष की सफ़ाई के सबूत की खाक परवाह नहीं की गई। भारत में उस समय देशी या अंगरेज़ी, कोई कानून भी इस तरह का न था, जिससे जालसाली के जुर्म में मौत की सजा दी जा सके। किन्तु हेस्टिंग्स के दोस्त सर एलिजाह इम्पे ने फ़ौरन महाराजा नन्दकुमार को मुजरिम क़रार देकर, हज़ारों भारतवासियों की आंखों के सामने 5 अगस्त, सन् 1776 को कलकत्ते में फांसी पर चढ़वा दिया। मिल लिखता है कि महाराज नन्दकुमार ने अपूर्व शान्ति और धैर्य के साथ मौत का सामना किया और अपने हज़ारों देशवासियों को फांसी स्थल के चारों ओर ज़ोर-ज़ोर से रोता और चीखता छोड़ कर इस दुनिया से कूच किया।

जालसाज़ी ही के ऊपर क्लाइव ने भारत के अन्दर ब्रिटिश राज की नींव रखी और खुले शब्दों में उसने अपनी इस जालसाज़ी को स्वीकार किया। उस जालसाज़ी के इनाम में क्लाइव को 'लार्ड' की उपाधि दी गई किन्तु उसी क्लाइव के उत्तराधिकारी के समय में एक स्वतन्त्र भारतीय शासक को जालसाज़ी के झूठे इल्ज़ाम में फांसी पर लटका दिया गया।

वारेन हेस्टिंग्स 3 साल गवर्नर और 10 साल गवर्नर-जनरल रहा। उसका सारा शासनकाल भारतीय प्रजा और भारतीय नरेशों के साथ घोरतम अन्यायों से भरा हुआ था। मराठों और हैदरअली के साथ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र दूसरे अध्यायों में किया जाएगा। बंगाल और उत्तर भारत के उसके सब अत्याचारों को बयान कर सकना इस पुस्तक में असम्भव है। इसलिए उसके उत्तर भारत के केवल दो और ज्वलन्त कृत्यों को यहां पर संक्षेप में बयान किया जाता है।

बनारस की समृद्ध रियासत

इनमें पहली घटना बनारस की है। बनारस की समृद्ध रियासत उस समय अवध के नवाब के अधीन थी, किन्तु अवध के नवाब बनारस के महाराजा से अपना मामूली वार्षिक खिराज़ वसूल कर लेने के अलावा और किसी तरह का हस्तक्षेप उस रियासत के आन्तरिक शासन में न करते थे।

इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है: "बनारस का महाराजा बलवन्तसिंह बड़ा अच्छा शासक था। ××× उसकी प्रजा सुखी थी और देश खुशहाल था। ××× किसानों को न बेजा मांग का डर था और न किसी तरह की जबरदस्ती का। वे अपने खेतों को बागों की तरह जोतते थे और अपने अथक परिश्रम की पैदावार पर फलते-फलते थे। उनकी तादाद पांच लाख से ऊपर अनुमान की जाती थी"।*

---

* "Bulwant Singh was an excellent ruler; ......his people were happy, and the country prosperous......the peasantary, fearless of unjust exaction or

किन्तु महाराजा बनारस आस-पास के राजाओं में सबसे अधिक धनवान मशहूर था ।

सन् 1776 में अवध के नवाब ने बनारस का इलाक़ा कम्पनी के नाम कर दिया । कम्पनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी करके बलवन्तसिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिए । अंगरेज़ रेज़िडेन्ट बनारस के दरबार में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह की शुमार अंगरेज़ कम्पनी के मित्रों में होने लगी ।

वारेन हेस्टिंग्स की महाराजा बनारस से छेड़छाड़

अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों में लड़ाई छिड़ी । वारेन हेस्टिंग्स ने महाराजा चेतसिंह को पांच लाख रुपये सालाना खर्च पर अपने यहां तीन पलटनें रखने का हुक्म दिया। चेतसिंह की प्रजा उससे सन्तुष्ट थी । उसे इस सेना की कोई ज़रूरत न थी । पांच लाख सालाना का खर्च भी उसके लिए बहुत अधिक था । उसने एतराज़ किया, किन्तु कोई सुनाई न हुई । अन्त में उसे वारेन हेस्टिंग्स की आज्ञा माननी पड़ी । तारीफ़ यह कि इन पलटनों के अफ़सरों का अंगरेज़ होना और कम्पनी का उन पर अधिकार रहना ज़रूरी था ।

दो साल बाद महाराजा चेतसिंह को हुक्म मिला कि अपने यहां इसी तरह सवारों की भी एक पलटन रखो । इस बार उसने इन्कार कर दिया । वारेन हेस्टिंग्स केवल बहाना ढूंढ रहा था । उसने फौरन फ़ौज लेकर बनारस पर चढ़ाई की । चेतसिंह ने आगे बढ़ कर बक्सर में वारेन हेस्टिंग्स से भेंट की और अपनी अधीनता प्रकट करने के लिए अपनी पगड़ी उतार कर वारेन हेस्टिंग्स के पैरों पर रख दी । फिर भी वारेन हेस्टिंग्स न रुका । उसने सीधे बनारस पहुंच कर चेतसिंह के महल को घेर लिया और रेज़िडेन्ट को आज्ञा दी कि चेतसिंह को कैद कर लिया जाए ।

बनारस की प्रजा इस अन्धेर को देख कर भड़क उठी । वहां के लोगों में भी जान बाक़ी थी । वे कम्पनी की सेना पर टूट पड़े । तुरन्त तमाम अंगरेज़ सिपाही एक-एक कर कत्ल कर डाले गए । लोगों से बदला लेने के लिए अब और अधिक फ़ौज भेजी गई । खूब घमासान युद्ध हुआ ।

रात को चेतसिंह के कुछ नौकरों ने जब यह देखा कि बनारस का क़िला शत्रु के हाथों में पड़ने वाला है, तब अपनी पगड़ियों की रस्सी बना कर उसके ज़रिये महाराजा चेतसिंह को महल की एक खिड़की से नीचे उतार दिया । गंगा के उस पार रामनगर के क़िले में चेतसिंह का मुख्य खज़ाना था । चेतसिंह अपनी माता और रानी समेत भाग कर वहां पहुंचा । पर अन्त में रामनगर का क़िला भी जीत लिया गया और चेतसिंह ने एक गृह विहीन बटोही की तरह वहां से भागकर ग्वालियर की रियासत में अपने शेष दिन बिताए ।

बनारस की लूट और बरबादी

हेस्टिंग्स ने फौरन चेतसिंह की जगह उसी कुल के एक 19 साल के लड़के को बनारस की गद्दी पर बैठा दिया । कम्पनी का खिराज बढ़ा कर बीस लाख रुपये सालाना कर

personal wrong cultivated their fields like gardens, and throve on the fruits of their unwearied industry. Their numbers were estimated at more than half a million......"—Torrens' *Empire in Asia*, p. 124.

दिया गया । नए महाराजा के अनेक अधिकार छीन कर रेज़िडेण्ट को दे दिए गए। शासनप्रणाली और राज-कर्मचारियों में अनेक उलट-फेर हुए । प्रजा पर अब नित्य नए अत्याचार होने लगे । दुखित और बिना सरदार की प्रजा ने नए अमलदारों और उनके अत्याचारों के विरुद्ध बार-बार विद्रोह किया और सत्याग्रह किए, किन्तु अन्त को जिसकी लाठी उसकी भैंस । लूट-खसोट और इस नई अमलदारी का नतीजा यह हुआ कि "थोड़े दिन पहले जहां सुख और शान्ति विराजमान थी, वहां अब दुख और असन्तोष ने उनकी जगह ले ली। दो साल बाद जब वारेन हेस्टिंग्स फिर बनारस गया, तब उसे तमाम नगर उजड़ा हुआ दिखाई दिया।"* आबादी घटते-घटते सन् 1822 में केवल दो लाख रह गई।

अवध की बेगमों पर अत्याचार

किन्तु इंगलिस्तान से धन की मांग बढ़ती गई । वारेन हेस्टिंग्स की व्यक्तिगत धनपिपासा भी बनारस की लूट से शान्त न हो सकी । बनारस से लौटते ही उसने अवध की ओर दृष्टि डाली । बनारस का हाल हमने इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के मेम्बर और इतिहास लेखक टारेन्स की पुस्तक 'अम्पायर इन एशिया' से लिया है। अवध की कहीं अधिक दुखमय कहानी भी ठीक टारेन्स ही के शब्दों में नीचे बयान की जाती है। अनेक बार कम्पनी की ओर से बड़ी-बड़ी रकमें बिना किसी कारण अवध के नवाब से मांगी जा चुकी थीं और ज़बरन वसूल की जा चुकी थीं, किन्तु इस बार—

"नवाब आसफ़ुद्दौला ने अपनी निर्धनता की बिना पर माफ़ी चाही और इस निर्धनता का एक कारण यह बताया कि मुझे अपने यहां की 'सबसीडियरी' सेना के खर्च के लिए एक बड़ी रकम हर साल कम्पनी को देनी पड़ती ह । निस्सन्देह, यह कारण सच्चा था । इसके बाद, इस डर से कि कहीं (बनारस की तरह) गवर्नर जनरल लखनऊ न आ धमके, आसफ़ुद्दौला स्वयं हेस्टिंग्स से मिलने और अपनी हालत समझाने के लिए आगे बढ़ा । चुनार के क़िले के अन्दर दोनों में बातचीत हुई । वहां एक ऐसी अद्भुत तदबीर निकाली गई, जिससे कलकत्ता का खजाना भी भर जाए और लखनऊ का खजाना भी खाली न करना पड़े । लार्ड मैकाले ने लिखा है : 'तदबीर केवल यह थी कि गवर्नर जनरल और नवाब वजीर, दोनों मिल कर एक तीसरे शख्स को लूटें, और जिस तीसरे शख्स को लूटने का उन्होंने निश्चय किया, वह इन दोनों लूटने वालों में एक की मां थी।' समझा जाता था कि नवाब शुजाउद्दौला मरते समय अपनी मां और अपनी विधवा बेगम, दोनों को बड़े-बड़े खज़ाने दे गया है। फ़ैजाबाद के महल भी वह उन्हीं के नाम पर कर गया था, और ये दोनों बेगमें अपने अनेक रिश्तेदारों, बांदियों और नौकरों के साथ अपने इन्हीं प्यारे महलों में रहती थीं । इस धूर्तता की राय देने वाला माननीय गवर्नर जनरल था । आसफ़ुद्दौला सुन कर शर्म से कांप उठा । ××× अन्त को ××× सौदा पक्का हो गया और दोनों अलग

* "Misery and distraction took the place which had recently been occupied by comfort and content......two years later, when Hastings revisited the scene......he found it one of desolation".—Torrens' *Empire in Asia,* p. 125.

अलग अपनी-अपनी ओर से इस दगाबाजी की जाब्तापूरी में लग गए। तय हुआ कि × × × फ़ैजाबाद में रहने वाली कुम्हलाई हुई औरतों के सर यह इल्जाम मढ़ा जाए कि तुम अंगरेजों के खिलाफ़ चेतसिंह के साथ साजिश कर रही हो। यदि किसी तरह यह साजिश साबित की जा सके, तो फिर बेगमों को हर तरह का दण्ड देना या उनके धन की जब्ती जायज ठहराई जा सकेगी ; इसलिए साबित करना जरूरी था और साबित भी बाजाब्ता तरीक़े से करना। जब लोगों को पता चला कि अंगरेज क्या चाहते हैं, तो झूठे गवाह खड़े हो गए × × × बेगमों की तरफ़ से न कोई जवाबदेही करने वाला था और न कोई वकालत करने वाला × × ×। अब पेश्तर इसके कि बेगमों के महल के फाटकों को तोड़ कर अंगरेजी फ़ौज भीतर घुस सके, केवल एक कठिनाई और बाक़ी थी—लोकाचार और शिष्टता के एक रेशमी बन्धन को तोड़ना जरूरी था। वह बन्धन यह था कि शुजाउद्दौला मरते समय अपने घर के इन लोगों को अंगरेज सरकार की खास हिफ़ाजत में छोड़ गया था, और जो कि अब हालत बदल चुकी थी, फिर भी उस समय अंगरेज सरकार ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। × × × सर एलिजाह इम्पे पहले भी कई ऐसी कठिनाइयों के मौके पर काम दे चुका था। इस संकट के समय वह फिर वारेन हेस्टिंग्स का दोस्त साबित हुआ। × × × अपनी पालकी में बैठ कर, गर ईसाई कहारों की डाक लगवा कर उनके कन्धों पर सर एलिजाह इम्पे कलकत्ते से लखनऊ रवाना हुआ ; × × × एक माननीय वाइसराय की आज्ञा पर उस वाइसराय को डकैती में मदद देने के लिए ईसाई चीफ़ जस्टिस को पूरी तेजी के साथ अपने कन्धों पर ले जाने में गैर ईसाई हिन्दुओं का उपयोग किया गया। रूहानी अन्धकार में डूबी हुई जनता को यूरोपियन व्यवहार और यूरोपियन सदाचार की श्रेष्ठता का इससे बढ़ कर और क्या सबूत मिल सकता था ? अवध की राजधानी में पहुंच कर चीफ़ जस्टिस ने बहुत से हलफ़नामे लिए, जिनमें बेगमों पर यह इल्जाम लगाया गया कि वे चेतसिंह के मालिकों, यानी कम्पनी के विरुद्ध उस फ़रजी साजिश में चेतसिंह से मिली हुई थीं। सर एलिजाह ने न हलफ़नामे पढ़े, न किसी से पढ़वा कर सुने। वे एक ऐसी जबान में थे, जिसे इम्पे समझता तक न था और न उसके पास इतना समय था कि किसी दूसरे से तर्जुमा करवाने का इन्तजार करता। एशिया के अन्दर इंगलिस्तान के प्रधान न्यायाधीश की हैसियत से उसने हलफ़नामे लिए और 'अपने उच्च अधिकार के इस घृणित दुरुपयोग' को पूरा कर फिर पालकी में बैठ कलकत्ते लौट आया। × × × फ़ैजाबाद के महलों को अंगरेजी फ़ौज ने घेर लिया। बेगमों से कहा गया कि आप कैदी हैं और अपने तमाम जेवर, सोना, चांदी और जवाहरात दे दीजिए। जब बेगमों ने इन्कार किया तो महल की शरीफ़ औरतों को भूखों मारा गया और उनके नौकरों को बड़ी-बड़ी यातनाएं पहुंचाई गईं। बेगमें जब इन लोगों के रोने चीखने की आवाजों को न सह सकीं, तब उन्होंने पिटारों-पर-पिटारे और खजानों-पर-खजाने देना शुरू किया, यहां तक कि कुल लूट की क़ीमत का अन्दाज एक करोड़ बीस लाख किया गया। जब तक यह रकम पूरी न हुई, तब तक उन अभागे नौकरों और बांदियों को रिहा न किया गया। उस भयंकर काण्ड का यह

सब केवल एक खाका है। जिन-जिन बातों से इस चित्र (खाके) में सही रंग भरे जाते हैं, उन सब पर आज विस्मृति-काल ने परदा डाल दिया है, जो अब किसी तरह हटाया नहीं जा सकता।"*

इसके बाद टारेन्स बयान करता है कि किस प्रकार इन सब अत्याचारों ने, अवध के नवाब पर कम्पनी की आए दिन की मांगों ने, और वहां के राजशासन में अंगरेजों के नित्य

---

* "Asafuddoula pleeaded poverty, and named, with some truth, that amongst its causes was the annual contribution he was obliged to pay for the maintenance of the subsidiary force. Dreading a visit from the Viceroy, he went to meet him; and at the fortress of Chunar the negotiations took place which resulted in the memorable device for replenishing the exchequer of Calcutta without exhausting that of Lucknow. 'It was', says Lord Macaulay, 'simply this, that the Governor-General and the Nawab-Vizier should join to rob a third party, and the third party whom they determined to rob was the parent of one of the robbers'. The mother and the widow of the late Vizier were supposed to have derived, under his will, vast treasures. They dwelt with a numerous retinue at the favourite palace of Fyzabad, which he had bequeathed to them. Asafuddoula shrank in shame from the villainy suggested by his Right Honourable Accomplice......The confederates, having ratified the bargain, parted, and each went his way to prepare the formalities of fraud. A consipiracy to aid Chait Singh in his resistance to intolerable exaction was to be imputed to the withered women who dwelt at Fyzabad. If such a breach of friendship could be proved, it would justify any penalty or forfeiture; therefore it must be proved and proved in a regular respectable way. When it was known what was wanted, false witnesses rose up......against the undefended Princesses of Oudh......no advocate......Still there was a difficulty; a silken cord of conventional decency had to be snapped before the palace gates of the Begums could be forced open by English troops. The dying Vizier had placed these members of his family under the special protection of the British Government, and for reasons apparently good at the time but good no longer, that Government had accepted the trust......Not for the first time Sir Elijah Impey proved himself to be a friend in need......Sir Elijah got into palanquin, and posted to Lucknow, by relays of 'pegan bearers'—for were not pegans made to bear Christian Chief Justice on their shoulders, when at full speed to aid in the commission of robbery at the command of a Right Honourable Viceroy? What could more clearly prove to a soul-darkned population superiority of European manners and morals? Arrived in the capital of Oudh, the Chief Justice took a number of affidavits which accused the Begum of complicity with Chait Singh, in his supposed conspiracy against his lawful masters, the Company. Sir Elijah did not read the affidavits, or hear them read. They were in a dialect he did not understand, and he had not time to wait for an interpreter. So he took them as Chief Magistrate of England in the East; and this 'scandalous prostitution of his high authority' beying completed, he got into his palanquin again, and returned to Calcutta...... The farce concluded, tragic scenes began. The palace of Fyzabad was surrounded by English troops. The princesses were told that they were capitives, and required to deliver up their gold and jewels on their refusal; their ladies were subjected to semi-starvation and their servants to torture. Unable to endure their groans and tears, the Begums gave up casket after casket, and store after store, until the sum of spoil was reckoned at £ 12,00,000. Then,

हिन्दोस्तानी पोशाक में लखनऊ का रेजिडेण्ट, सर जान रसेल और उसका मुन्शी, अल्ताफ़ हुसैन
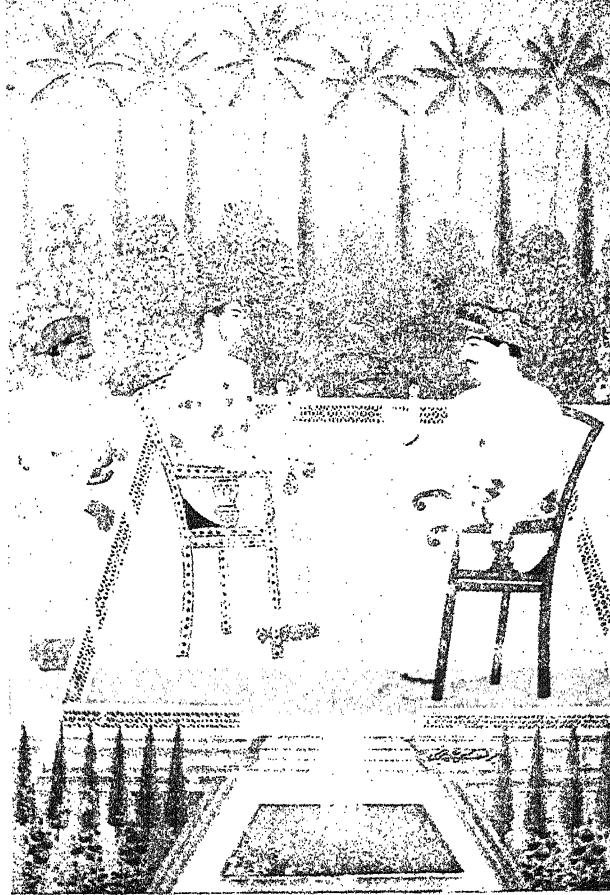
टीपू सुल्तान की पताकाएं और सिंहासन का चरणासन

टीपू के साम्राज्य का चिह्न सिंह था। जिस अद्भुत सिंहासन का कलगी मोर था, उसका चरणासन सोने का बना सिंह का सर था। दोनों आंखें और दांत बिल्लौर के थे। सिर के ऊपर की धारियां चमकते हुए सोने की थीं।

टीपू की पताकाओं पर सूर्य का चिह्न होता था। इधर-उधर की दोनों पताकाएं लाल रेशम की थीं, जिनके बीच में स्वर्ण-रश्मियों के सूर्य बने थे। बीच की पताका हरे रंग की थी, जिस पर सुनहरा सूर्य कढ़ा था। पताकाओं के सिरे ठोस सोने के थे, जिनमें लाल, हीरे और जमुर्रद जड़े हुए थे। ये तीनों बहुमूल्य पताकाएं और चरणासन इस समय इंगलिस्तान के राजमहल में रखे हैं।

महाराजा दौलतराव सिंधिया

माधोजी सिंधिया
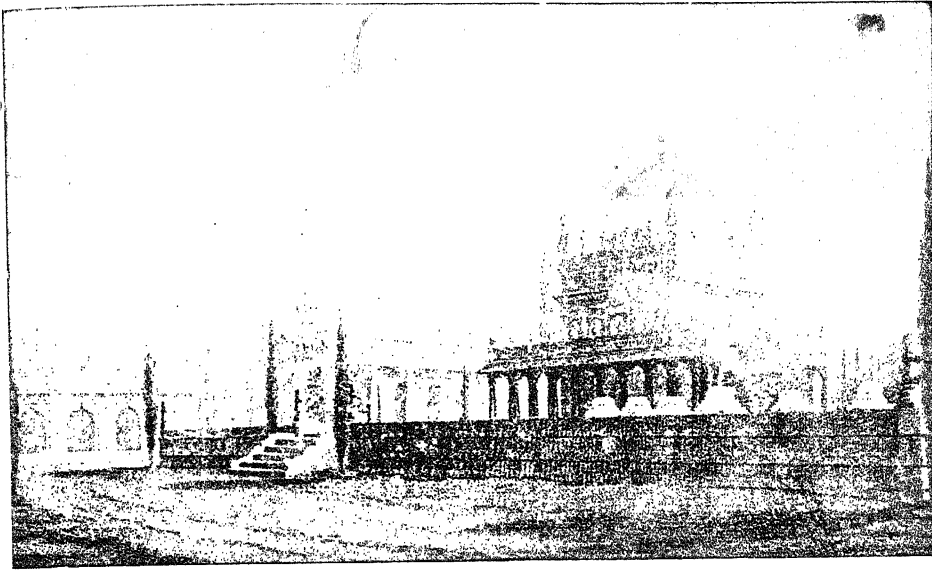
श्रीरंगपट्टन में हैदर अली और टीपू सुलतान की समाधि
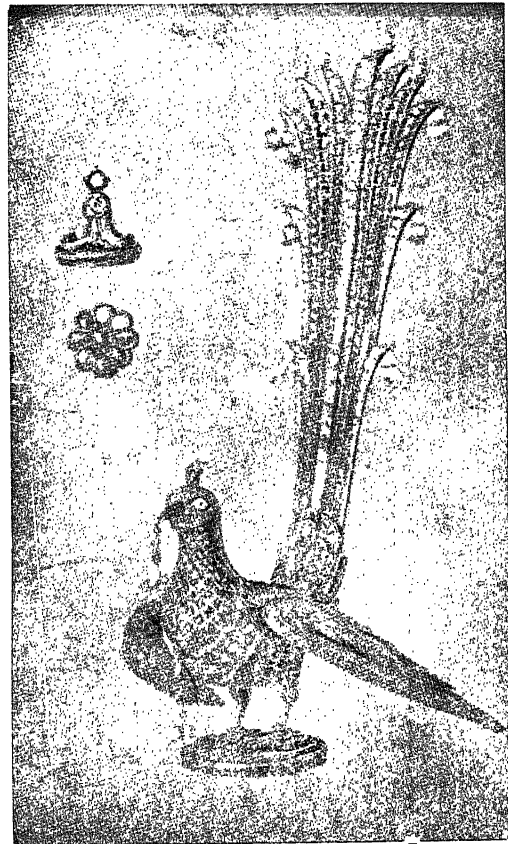
टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्न-जटित मोर
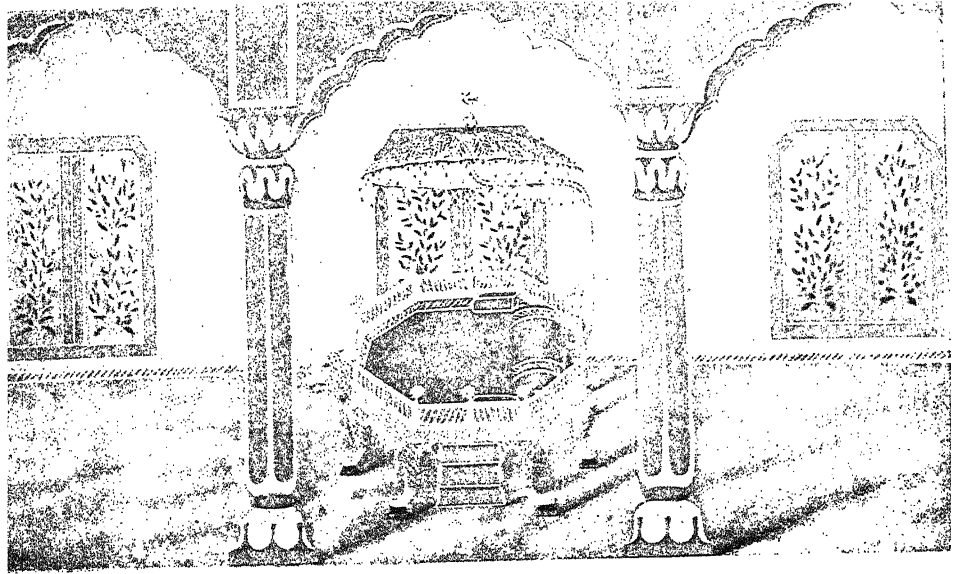
टीपू सुलतान का सिंहासन

नाना फड़नवीस

हस्तक्षेप ने मिलकर आसफ़ुद्दौला को मिटा डाला, अवध-निवासियों की हिम्मतों को कुचल कर खाक कर दिया और उत्तर भारत के उस हरे-भरे बाग़ को थोड़े ही दिनों में इधर-से-उधर तक वीरान कर डाला।

भारत से हेस्टिंग्स की कमाई

उन दिनों कम्पनी के प्रायः सब अंगरेज़ मुलाज़िम कम्पनी के लाभ के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत लाभ का भी खासा खयाल रखते थे। वारेन हेस्टिंग्स को भी अपनी हर राजनैतिक चाल में इस बात का पूरा-पूरा विचार रहता था। नज़रानों और रिश्वतों का बाज़ार चारों ओर गरम था। इतिहास-लेखक जे० टालबायज़ व्हीलर लिखता है :

> **"हेस्टिंग्स ने क़बूल किया कि सन् 1782 में आसफ़ुद्दौला से उसने 10 लाख रुपए लिए। इससे नतीजा निकलता है कि सन् 1773 में भी उसने इतनी ही रक़म शुजाउद्दौला से लेकर ज़रूर चुपके से जेब में डाल ली होगी। जिन कर्म-चारियों को कुछ भी राजनैतिक तजुर्बा है, उन्हें इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि यदि इससे पहले आसफ़ुद्दौला के बाप शुजाउद्दौला ने इतनी ही रकम हेस्टिंग्स को न दी होती और हेस्टिंग्स ने मंजूर न कर ली होती, तो आसफ़ुद्दौला हरगिज़ दस लाख रुपये हेस्टिंग्स की नजर न करता।"***

कलकत्ता कौन्सिल की 11 अप्रैल, सन् 1775 की कार्रवाई की रिपोर्ट में दर्ज है कि अपनी गवर्नरी के केवल पहले तीन साल के अन्दर वारेन हेस्टिंग्स इन ज़रियों से 'चालीस लाख रुपये से ऊपर' कमा चुका था। वास्तव में, हेस्टिंग्स के खिलाफ़ नन्दकुमार की शिकायतें झूठी न थीं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि डेढ़ सौ साल पहले भारत के अन्दर चालीस लाख रुपये की उतनी क़ीमत थी, जितनी आज (1929) आठ करोड़ की, और 'चालीस लाख' के आदमी उन दिनों इंगलिस्तान में इतने ही कम थे, जितने 'आठ करोड़' के आज भारत में।

कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा देशव्यापी लूट

वारेन हेस्टिंग्स जिस तरह रिश्वतें लेता था, उसी तरह देता और दिलवाता भी था। उसके अनेक छोटे और बड़े काले और गोरे दलाल कम्पनी की अमलदारी भर में तमाम महकमों के अन्दर फैले हुए थे, जो देशी नरेशों और भारतीय प्रजा, दोनों को तरह-तरह से लूटते थे और उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे।

कोलब्रुक नामक अंग्रेज़ ने 28 जुलाई, सन् 1788 को एक पत्र भारत से इंगलिस्तान अपने पिता के नाम भेजा, जिसमें उसने लिखा :

> **"मिस्टर हेस्टिंग्स ने इस देश को ऐसे कलेक्टरों और जजों से भर दिया है, जिनके सामने एकमात्र लक्ष्य धन कमाना है। ज्यों ही ये गिद्ध मुल्क के ऊपर**

---

and not till then, their wretched menials were let go. Such are the bare outlines of the dreadful tale. Over all that could furnish forth the true colouring of the picture, the veil of oblivion has fallen, and it cannot now be raised...... Asafuddoula......lost influence and power......the desolation that overspread the country, ..."—Torrens, *Empire in Asia*, pp. 126-128.

* "Hastings acknowledged to having taken a hundred thousand pounds from Asafuddoula in 1782. The inference follows that in 1773 he received a like sum from Shujauddoula and silently pocketed the money. Officers of any political experiences would be satisfied that Asafuddoula would never have offered the hundred thousand pounds to Hastings, unless a like sum had been previously offered by his father, Shujauddoula, and accepted by Hastings"—J. Talboys Wheeler in his *Short History of India, etc.*

छोड़े गए, उन्होंने कहीं कोई बहाना निकाल कर और कहीं बिना किसी बहाने के देशवासियों को लूटना शुरू कर दिया। * * * जज लोग मुक़दमे का फ़ैसला उसके हक़ में करते हैं, जो उन्हें सबसे ज्यादा रुपये देता है। और चोर बेरोक-टोक डाके डालने के बदले में बाजाब्ता सालियाना अदा करते हैं।''

गोरखपुर के अत्याचार

आगे चल कर कोलब्रुक लिखता है—

''वारेन हेस्टिंग्स की कूटनीति और उसके निर्लज्ज विश्वासघात का प्रभाव केवल राजाओं और बड़े लोगों पर ही नहीं पड़ा। जमींदारों की जमींदारियां छीन लेना, बेगमों को लूटना, रुहेलों को निर्वंश कर डालना, ये सब भूले जा सकते हैं, किन्तु जो अत्याचार उसने गोरखपुर में किए, वे सदा के लिए ब्रिटिश जाति के नाम पर एक कलंक रहेंगे।''

गोरखपुर के इन अत्याचारों के विषय में जेम्स मिल लिखता है कि सन् 1778 में वारेन हेस्टिंग्स ने अपने एक अफ़सर, कर्नल हैनेवे को कम्पनी की नौकरी से निकाल कर अवध के नवाब के यहां भेज दिया। नवाब पर ज़ोर देकर बहराइच और गोरखपुर के ज़िलों का दीवानी और फ़ौजी शासन कर्नल हैनेवे को दिलवा दिया गया। मिल लिखता है कि—''यह तमाम इलाक़ा नवाब के शासन में खूब खुशहाल था, किन्तु कर्नल हैनेवे के अत्याचारों के कारण तीन साल के अन्दर यह तमाम इलाक़ा वीरान हो गया।'' लिखा है कि —हैनेवे ने कोई लगान नियत न कर रखा था, बल्कि जिस समय जिस ज़मींदार या रय्यत से जितना चाहता था, अपने कलेक्टरों को भेज कर वसूल कर लेता था। इलाक़े भर के अन्दर, जो लोग अदा करने में असमर्थ होते थे, उन्हें आम तौर पर क़ैद और कोड़ों को सज़ा दी जाती थी। लोग अपने घरबार और गांव छोड़-छोड़ कर निकल गए। बहुतों को इतना दिक़ किया गया कि उन्हें अपने बच्चे तक बेच देने पड़े।

मिल लिखता है कि कम्पनी का एक मुलाज़िम, कप्तान एडवर्ड्स, सन 1780 में इस इलाके को देखने के लिए गया। उसने देखा कि देश के बहुत कम हिस्से में खेती की गई थी,

---

* "It was Mr. Hastings who filled the country with collectors and Judges who adopted one pursuit—a fortune. These harpies were no sooner let loose upon the country, then they plundered the inhabitants with or without pretences......Justice was dealt out to the highest bidders by the Judges, and thieves paid a regular revenue to rob with impunity......

"Nor did his crooked politics and shameless breach of faith affect none but the princes and great men; the deposition of zemindars, the plundering of Begums, the extermination of the Rohillas may be forgotten, but the cruelties acted in Gorakhpore will for ever be quoted to the dishonour of the British name."—Colebrooke in a private letter to his father, dated 28th July, 1788.

"......the country, from a very flourishing state......had been reduced to misery and desolation; that taxes were levied, not according to any fixed rule but according to the pleasure of the Collector; that imprisonments and scourgings, for enforcing payment, were common in every part of the country; that emigrations of the people were frequent; and that many of them so distressed as to be under the necessity of selling their children."—Mill, Book v, Chapter 8.

आबादी बहुत कम रह गई थी और जो इने-गिने आदमी उस इलाक़े में रह गए थे, वे अत्यन्त दुखी दिखाई देते थे। मिल यह भी लिखता है कि जिस समय कर्नल हैनेवे ने नवाब के यहां जाकर नौकरी की, उस समय हैनेवे के ज़िम्मे क़र्जा था, किन्तु तीन साल के अन्दर क़र्जा अदा करने के बाद उसके पास करीब 45,00,000 रुपये नक़द मौजूद थे।

नवाब ने इन अत्याचारों की खबर सुनकर, सन् 1781 में कर्नल हैनेवे को बरखास्त कर दिया। इसके बाद जब नवाब को मालूम हुआ कि हेस्टिंग्स फिर कर्नल हैनेवेको मेरे सिर मढ़ने की तजवीज कर रहा है, तब नवाब ने हेस्टिंग्स को लिख दिया कि—"मैं हज़रत मोहम्मद की क़सम खाता हूं कि यदि आपने मेरे यहां किसी काम पर भी कर्नल हैनेवे को नियुक्त किया, तो मैं सल्तनत छोड़ कर निकल जाऊंगा।"*

दुर्भाग्यवश उस समय के कम्पनी के शासन का कोई सच्चा और विस्तृत इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ मौजूद नहीं है।

लगान का बढ़ाया जाना

अब हम फिर कोलब्रुक के पत्र की ओर आते हैं। याद रखना चाहिए कि कम्पनी ही इस समय सारे बंगाल, बिहार और उड़ीसा की प्रजा से लगान वसूल करती थी। यह लगान जिस हिसाब से वसूल किया जाता था, उसके बारे में कोलब्रुक लिखता है :

> **"जिस पद्धति के अनुसार इस देश के अन्दर अंगरेज़ी इलाक़ों का शासन किया जा रहा है, उससे प्रजा की खुशहाली पर बुरा असर पड़ा है। * * * नमक और अफ़ीम के ठेकों को या उन तरीक़ों को, जिनसे कम्पनी की तिजारती पूंजी जमा की जाती है, बात छोड़ कर मैं केवल ज़मीन के लगान की बात करता हूं। ज़मीन का लगान जहां तक बढ़ाया जा सकता था, बढ़ा दिया गया है। मुगल सरकार के अधीन कोई ज़मींदार अपनी ज़मींदारी की पैदावार का आधा भी सरकार को न देता था और छोटी ज़मींदारियों से तो इससे भी कहीं कम लिया जाता था। इसके अलावा ज़मींदारों को कुछ रक़म बतौर पेन्शन के अपने हिसाब में जमा कर लेने की इजाजत थी या उसकी जगह उन्हें कुछ ज़मीनें माफ़ी में मिल जाती थीं। इसके विपरीत, कम्पनी के अधीन ज़मींदार के पास अपने यहां की पैदावार का केवल दस फीसदी रहने दिया जाता है। * * * प्रजा के साथ जिस तरह का बर्ताव किया जा रहा है, उससे वे सदा याद रखेंगे कि कभी किसी भी विजेता ने अपनी किसी पराजित जाति के कन्धों पर इससे भारी जुआ नहीं रखा।" †**

---

*Mill, Book v, Chapter 8.

† "The system upon which the British dominions have been governed in the East, has affected the happiness of the people......not to mention monopolies of salt and opium, or the principles upon which the Company's investment has been provided, I may confine myself to the stretching the land rents to the utmost sum they can produce. A proprietor of an estate under the Mogul Government seldom paid half of the produce of his estate, and in small properties much less; he was further allowed to take credit for a certain sum by way of pension or held rent-free lands in lieu thereof, Under the Company, a landholder is allowed ten per cent of net produce as his share......

"The treatment of the people has been such as will make them remember the yoke as the heaviest that ever conquerors put upon the necks of conquered nations."—Colebrooke in the above letter.

वारेन हेस्टिंग्स पर मुक़दमा

वारेन हेस्टिंग्स के अत्याचारों की अनेक संगीन शिकायतें इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के कुछ मेम्बरों के पास पहुंची। पार्लियामेण्ट में कुछ न्यायप्रेमी मेम्बर भी मौजूद थ। उनकी ओर से पार्लियामेण्ट के सामने वारेन हेस्टिंग्स पर रिश्वतखोरी और अनेक घोर अन्यायों के लिए मुक़दमा चलाया गया। सुप्रसिद्ध विद्वान एडमण्ड बर्क ने अपनी अमर वक्तृताओं में कम्पनी और वारेन हेस्टिंग्स के उन दिनों के क़लुषित कृत्यों की खूब पोल खोली। इन वक्तृताओं का पढ़ना ब्रिटिश भारतीय इतिहास के हर विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। सात साल तक मुकदमा चलता रहा, किन्तु वास्तव में इंगलिस्तान के सामने सवाल न्याय-अन्याय का न था। सवाल था अंगरेज़ क़ौम के हित और अंगरेज़ क़ौम के राज का। वारेन हेस्टिंग्स ने जो कुछ किया था, अधिकतर अपनी क़ौम के हित के लिए और भारत में अंगरेज़ी राज को मजबूत करने के लिए किया था। इसलिए अन्त में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने उसे सब इल्ज़ामों से साफ़ बरी कर दिया।

इस तमाम मुक़दमे में वारेन हेस्टिंग्स के क़रीब 10 लाख रुपये खर्च हुए, जो निस्सन्देह उसकी भारत की कमाई का केवल एक हिस्सा था। कम्पनी के मालिकों ने फ़ौरन हर्जाने के तौर पर आइन्दा 28 साल तक के लिए चालीस हज़ार रुपये सालाना वारेन हेस्टिंग्स को देने का वादा किया, जिसमें से अधिकांश उन्होंने उसी समय पेशगी अदा कर दिया। हेस्टिंग्स इससे कई गुना अधिक कम्पनी को लाभ पहुंचा चुका था।

सर इलिजाह इम्पे पर भी "रिश्वतें लेने, खुला अन्याय करने, जिन कानूनों के मातहत उसे अधिकार मिला हुआ था, उन्हें जानबूझ कर तोड़ने, झूठी गवाहियां बनाने, झूठे हलफ़नामे तसदीक़ करने"† इत्यादि का मुक़दमा चलाया गया। किन्तु अन्त में इंगलिस्तान के शासकों ने यह कह कर कि "उसके जुर्मों का केवल प्रकट हो जाना ही काफ़ी है", उसे छोड़ दिया।

भारत में अंगरेज़ी राज की जड़ें इस तरह पक्की की गईं।

---

† "Gross corruption, positive injustice, ...intentional violation of the Acts under which he held his powers, ...having suborned evidence and given to falsehood the sanctity of an affidavit."—Impeachment of Sir Elijah Impay, Dec. 12th 1787.

आठवां अध्याय

पहला मराठा युद्ध

मराठा मण्डल

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के करीब 75 साल के अन्दर 18वीं सदी के मध्य में मराठों की सत्ता अपने शिखर तक पहुंच चुकी थी। मुग़ल साम्राज्य उस समय अत्यन्त जर्जर हालत में था और दो सौ साल से ऊपर के उस पुराने साम्राज्य के खण्डहरों से उत्पन्न होकर मराठों का साम्राज्य एक बार समस्त भारत पर फैलता हुआ मालूम होता था। स्वयं दिल्ली और दिल्ली का सम्राट्, दोनों मराठों के हाथों में थे। रघुनाथ राव की मराठा सेना राजधानी से आगे बढ़ कर लाहौर विजय कर चुकी थी और पराजित अफ़गान सेना को अटक के पार भगा कर पंजाब का सूबा मराठा साम्राज्य में शामिल कर चुकी थी।

पेशवा की गद्दी पर बालाजी बाजीराव था। शिवाजी के अयोग्य वंशज, सतारा के क़िले के अन्दर पेशवा की सेना की हिफ़ाजत में, अभी तक अपनी नाममात्र की गद्दी क़ायम रखे हुए थे। किन्तु सारा शासन-प्रबन्ध पेशवा के योग्य और प्रबल हाथों में था। पेशवा के अलावा मराठा साम्राज्य के चार मुख्य स्तम्भ यानी 'महराष्ट्र मण्डल' के चार मुख्य सदस्य, सिंधिया, होलकर, गायकवाड़ और भोंसले थे। ये चारों चार बड़े-बड़े राज्यों के स्वतन्त्र शासक थे, किन्तु सब पेशवा को अपना अधिराज मानते थे। उसे बराबर खिराज देते थे और हर लड़ाई में आज्ञा मिलने पर अपनी सेनाओं सहित पेशवा की सहायता के लिए पहुंच जाते थे। प्रथम पेशवा, बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली सम्राट् फर्रुख़सीयर के दरबार में उपस्थित होकर प्रसिद्ध देश हितैषी भाइयों, सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसैनअली की मदद से सम्राट् से मराठा राज के लिए 'स्वराज' का परवाना हासिल किया। सम्राट् ने फ़रमान जारी कर दिया कि इस मराठा 'स्वराज' के अलावा दक्षिण के सूबेदार के बाकी तमाम इलाकों पर भी मराठों को 'चौथ' मिला करे। पेशवा ने सम्राट् की वफ़ादारी की क़सम खाई और अपनी सेना द्वारा साम्राज्य की रक्षा करने का वादा किया। वास्तव में यह चौथ इसी उद्देश्य से दी गई थी कि उससे पेशवा मुगल साम्राज्य के तमाम दक्षिणी इलाके की हिफ़ाजत के लिए सेना रख सके। इसके बाद हर पेशवा और उसके मातहत समस्त मराठा नरेश, कम-से-कम नाम के लिए, दिल्ली के सम्राट को सारे भारत का सम्राट और अपना महाराजाधिराज मानते रहे। रघुनाथ राव ने दिल्ली सम्राट ही के नाम पर अफ़गानों से पंजाब विजय किया और जिस मराठा सरदार को वहां की हुकूमत सौंपी उसे "दिल्ली सम्राट का एक सूबेदार" कह कर नियुक्त किया। फिर भी दिल्ली दरबार की निर्बलता के सबब मराठों की उस समय की सत्ता वास्तव में स्वाधीन सत्ता थी। और पेशवा ही हिन्दोस्तान के उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक, यानी अटक से कर्नाटक और बंगाल की सरहद से खम्भात की खाड़ी तक, फैले हुए इस विशाल मराठा साम्राज्य का क्रियात्मक शासक था।

मराठा साम्राज्य की अवनति

किन्तु यह मराठा साम्राज्य चन्द रोज़ भी अपने वैभव को क़ायम न रख सका। मालूम होता है कि साम्राज्य के साथ-ही साथ मराठा सरदारों में एक-दूसरे से ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी। वे श्रीहीन किन्तु निरपराध और राष्ट्रोपयोगी दिल्ली सम्राट को भी तख्त से उतार कर उसकी जगह लेने के चक्कर में पड़ गए। उनमें से कुछ अपने या अपने कुलों के लाभ के लिए अपने देशवासियों, यहां तक कि स्वयं पेशवा के खिलाफ विदेशियों से मेल करने में भी न झिझके। एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि इस तरह के भीतरी दोषों के कारण ही मराठों की सत्ता को पहला धक्का सन् 1761 में पहुंचा, जब कि पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में अहमदशाह अब्दाली की सेना ने मराठों की संयुक्त सेना को हरा कर उन्हें उत्तर भारत से सदा के लिए निकाल बाहर किया। उसी समय से दिल्ली के सम्राट् पर से मराठों का प्रभाव उठ गया और उस समय धीरे-धीरे गायकवाड़, भोंसले, होलकर और सिंधिया एक-एक कर पेशवा की अधीनता से अपने तईं स्वाधीन समझने लगे।

पानीपत की लड़ाई के कुछ सप्ताह बाद ही बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गई। बालाजी का नाबालिग़ बेटा माधोराव पेशवा की गद्दी पर बैठा और माधोराव का चचा रघुनाथ राव, जिसे इतिहास में अधिकतर राघोबा कहा जाता है और जिसकी सेना ने अफ़गानों से पंजाब विजय किया था, अपने भतीजे पेशवा का संरक्षक नियुक्त हुआ। राघोबा वीर किन्तु अदूरदर्शी था। वह महत्वाकांक्षी भी था और महत्वाकांक्षा ने उसकी नीतिज्ञता पर और भी पर्दा डाल दिया था। इसलिए जब अंगरेज़ों ने अपने मतलब के लिए मराठों की सत्ता को नष्ट करने का विचार किया, तब राघोबा आसानी से उनके हाथों में खेल गया।

दक्षिण में कम्पनी की नीति

कम्पनी की सत्ता उन दिनों भारत में बढ़ती जा रही थी। मराठों-जैसी प्रबल भारतीय शक्ति के अस्तित्व को अंगरेज अपनी उन्नति के लिए हितकर न समझ सकते थे। एक-न-एक दिन इन दोनों शक्तियों का एक-दूसरे से टकरा जाना अनिवार्य था।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक ग्राण्ट डफ लिखता है कि उस समय—

> **"कम्पनी के डाइरेक्टर इस बात के लिए इच्छुक थे कि मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को किसी तरह धक्का पहुंचे, और यदि देश की दूसरी शक्तियां मराठों के खिलाफ मिल सकतीं, तो यह देख कर उन्हें बहुत बड़ा सन्तोष होता।"***

इसी इच्छा को पूरा करने के लिए अंगरेज़ों ने राघोबा को झूठमूठ बहकाना शुरू किया कि दक्षिण का सूबेदार निज़ामुलमुल्क मराठों पर हमला करने वाला है।

---

* "The Court of Directors were desirous of seeing the Marhattas checked in their progress, and would have beheld combinations of the other native powers against them with abundant satisfaction".—*History of the Marhattas*, by Grant Duff.

राघोबा की अदूरदर्शिता से पेशवा माधोराव और बम्बई के अंगरेज़ गवर्नर, इन दोनों के बीच यह सन्धि हो गई कि यदि निज़ाम मराठों पर हमला करे, तो अंगरेज़ सेना और सामान से मराठों की मदद करेंगे और इसके बदले में पश्चिमी तट पर साष्टी (Salsette) का टापू और बसई (Bassein) का किला, दोनों पेशवा की ओर से अंगरेज़ों को दे दिए जाएंगे।

न निज़ाम ने मराठों पर हमला किया, न मराठों को अंगरेज़ों की मदद की ज़रूरत हुई, और न साष्टी और बसई उस समय अंगरेज़ों के हवाले किए गए, फिर भी इस सन्धि के समय से ही अंगरेज़ों की पेशवा दरबार के अन्दर पहुंच हो गई। उन्हें मराठों की भीतरी कमज़ोरियों का पता लगने लगा और मराठा साम्राज्य के अन्दर अपनी साज़िशों के फलाने का मौक़ा मिलने लगा।

दक्षिणी भारत के सम्बन्ध में इस समय कम्पनी की नीति के तीन मुख्य पहलू थे। दूसरे शब्दों में उनकी तीन मुख्य इच्छाएं थीं, जो डाइरेक्टरों और गवर्नर-जनरल के पत्रों से बिल्कुल साफ़ हैं :

(1) अंगरेज़ जानते थे कि यदि दक्षिण की तीन मुख्य शक्तियां—निज़ाम, हैदरअली और पेशवा—आपस में मिल गईं, तो दक्षिणी भारत से अंगरेज़ों के अस्तित्व को आसानी से मिटा देंगी, इसलिए जिस तरह हो, इन तीनों को एक-दूसरे से लड़ाए रखना जरूरी था।

(2) इन में मराठे सबसे अधिक महत्वाकांक्षी और साम्राज्य प्रेमी थे, इसलिए उन्हें घरेलू झगड़ों में इस तरह फंसाए रखना जरूरी था कि जिससे बंगाल और उत्तर भारत के अन्दर अंगरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव में हस्तक्षेप करने का उन्हें अवकाश न मिल सके।

(3) भारत के पश्चिमी तट पर आहिस्ता-आहिस्ता अपने पैर फैलाने के लिए साष्टी का टापू, बसई का इलाक़ा और गुजरात प्रान्त का कुछ थोड़ा-सा भाग कम्पनी को अपने अधीन कर लेना ज़रूरी था।

साष्टी और बसई पर अंगरेज़ों के दांत

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बम्बई के गवर्नर और वहां की कौन्सिल के नाम 18 मार्च, सन् 1768 के एक पत्र में लिखा कि—"हम आपसे जितने ज़ोर के साथ हो सकता है, उतने ज़ोर के साथ सिफ़ारिश करते हैं कि आपको जब-जब मौक़ा मिल सके, आप इन स्थानों (साष्टी और बसई) को प्राप्त करने के यत्न करते रहें। इसमें हम अपना बहुत बड़ा लाभ समझते हैं।"* इसके बाद 31 मार्च, सन् 1769 के डाइरेक्टरों के पत्र में फिर यह वाक्य आता है—"साष्टी और बसई और उनके साथ के इलाक़े सूरत प्रान्त का मराठा भाग × × × ये चीज़ें हैं, जिन्हें आपको अपनी तमाम सन्धियों में, पत्र-व्यवहार

* "We recommend to you, in the strongest manner, to use your endeavours, upon every occasion that may offer, to obtain these places, which we should esteem a valuable acquisition."—Directors' letter to the President and Council of Bombay, dated 18th March, 1768.

में और लड़ाइयों में अपनी नज़र के सामने रखना चाहिए, जिन्हें प्राप्त करने के लिए हमेशा मौक़े की ताक में रहना चाहिए ।"*

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि—"इसी मनोरथ को अधिक लगन के साथ सिद्ध करने और पेशवा माधोराव से बातचीत करने के लिए डाइरेक्टरों ने हिदायतें देकर मिस्टर मास्टिन को भारत भेजा ।"†

सन् 1772 में डाइरेक्टरों का विशेष दूत मास्टिन भारत पहुंचा और तुरन्त उसे बम्बई की कौन्सिल का वकील बना कर पेशवा के दरबार में भेज दिया गया ।

मराठों, हैदर और निज़ाम में फूट डालने का प्रयत्न

इतिहास-लेखक ग्राण्ट ड़फ़ स्पष्ट शब्दों में लिखता है : "बम्बई की गवर्मेण्ट ने मि० मास्टिन को इस उद्देश्य से पूना भेजा कि वह × × × मराठों को घर-ही-घर में एक-दूसरे से लड़ा कर या जिस तरीके से हो सके, इस बात की कोशिश करे कि मराठे हैदर के साथ या निज़ाम के साथ मिलने न पाएं ।"‡

गंगा के उत्तर में कुछ इलाक़ों पर उस समय तक मराठों का कब्जा हो चुका था और मिल के इतिहास से पता चलता है कि सन् 1773 में यदि आपस के घरेलू झगड़े मराठों को बाहर जाने से न रोकते, तो वे इलाहाबाद, कड़ा, अवध और रुहेलखण्ड पर हमला करने वाले थे ।§

इस तरह कम्पनी की उस समय की नीति के तीनों पहलू महत्वपूर्ण और साफ़ थे ।

नाना फड़नवीस की दूरदर्शिता

मास्टिन ने पूना पहुंच कर बड़ी होशियारी के साथ अपना काम शुरू किया । स्वार्थान्ध राघोबा से उसे इस काम में पूरी मदद मिली । किन्तु पेशवा दरबार में उस समय एक और दूरदर्शी नीतिज्ञ मौजूद था, जो राघोबा की स्वार्थपरता और अंगरेज़ों की चालों, दोनों को खूब समझता था । यह नीतिज्ञ सुप्रसिद्ध नाना फड़नवीस था । नाना की मृत्यु के बरसों बाद सन् 1850 में उसकी योग्यता को स्वीकार करते हुए जे० सलीवन नामक अंगरेज़ ने कर्नल ब्रिग्स के नाम एक पत्र में लिखा था : "नाना फड़नवीस और उस-जैसे

---

* "Salsette and Bassein, with their dependencies, and the Marhatta's portion of the Surat Provinces:.....These are the objects you are to have in view, in all treaties, negotiations, and military operations,—and that you must be ever watchful to obtain."—Directors' letter, dated 31st March, 1769.

† "In more earnest prosecution of the same design, Mr. Mostyn arrived from England, in 1772, with instructions from the Court of Directors, that he should be sent immediately to negotiate with Madho Rao the Peshwa......for the cession of the island and peninsula of Salsette and Bassein......"—Mill, vol. iii, pp. 423, 24.

‡ "Mr. Mostyn was sent to Poona by the Bombay Government, for the purpose of......using every endeavour, by fomenting domestic dissensions or otherwise, to prevent the Marhattas from joining Hyder or Nizam Ally."—Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 340.

§ Mill's *History of British India*, p. 221.

आदमी हमें दीजिए । उस योग्यता के भारतवासियों के मुकाबले में भारत के शासकों की हैसियत से हम अत्यन्त तुच्छ और बौने मालूम होते हैं ! *

नाना फड़नवीस और अंगरेज़

इतिहास-लेखक टारेन अंगरेज़ों की ओर नाना फड़नवीस की नीति के विषय में लिखता है :

> **"नाना फड़नवीस अंगरेज़ों के प्रति आदर प्रकट करता था, उनकी तारीफ करता था, किन्तु उनके राजनैतिक आलिंगन से पीछे हटता था और चाहे कोई कैसी भी आपत्ति क्यों न सामने खड़ी हो, वह अंगरेज़ों से स्थायी सैनिक सहायता स्वीकार करने से सदा इन्कार करता रहा ।"†**

नाना की यह नीति ही उस समय के भारतीय शासकों के लिए एकमात्र कुशल नीति हो सकती थी । इसीलिए राघोबा और अंगरेज़ों के बीच जो सन्धि हो चुकी थी, नाना फड़नवीस उसके खिलाफ़ था । पेशवा माधोराव भी नाना के प्रभाव में था । ऐसी सूरत में मास्टिन की चालें कुछ दिनों तक न चल सकीं । इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि थोड़े दिनों की बातचीत के बाद मास्टिन ने देख लिया कि साष्टी और बसई इतनी आसानी से न मिल सकेंगे ।

अंगरेज़ दूत मास्टिन की करतूतें

फिर भी मास्टिन के प्रयत्न जारी रहे । सबसे पहले उसने राघोबा और नाना फड़नवीस को एक-दूसरे से फोड़ने की कोशिश की । पेशवा माधोराव बालिग हो गया था । तब भी राघोबा मास्टिन के कहने में आकर उसे नाना के प्रभाव से हटा कर अपने प्रभाव में रखने की चेष्टा करने लगा । धीरे-धीरे माधोराव और राघोबा में अनबन इतनी बढ़ गई कि एक बार माधोराव ने विवश होकर अपने चचा राघोबा को कैद कर दिया । शीघ्र ही राघोबा को फिर छोड़ दिया गया । इतने में 18 नवम्बर, 1772 को 28 साल की अल्प आयु में माधोराव की मृत्यु हो गई । माधोराव की मृत्यु मराठा साम्राज्य के लिए बड़े दुर्भाग्य की घटना थी । इस नौजवान पेशवा की मौत का ज़िक्र करते हुए ग्राण्ट डफ़ लिखता है :

> **"दूर-दूर तक फैले हुए मराठा साम्राज्य के उस वृक्ष को, जिसे कुछ हानि पहले ही पहुंच चुकी थी, जो जड़ नीचे से रस पहुंचाती थी, वह तने से कट कर अलग हो गई । उस साम्राज्य को पानीपत के मैदान से भी इतना धक्का न पहुंचा था, जितना इस सुयोग्य शासक की अकाल मृत्यु से पहुंचा । माधोराव युद्ध-विद्या में तो चतुर था ही, नरेश की हैसियत से भी उसका चरित्र उसके पूर्वाधिकारियों से कहीं अधिक प्रशंसा और आदर के योग्य था ।"‡**

---

* "Give us Nana Fadnavis and such like. What poor pigmies we are as Indian Administrators when compared with native of that stamp!!!"—J. Sullivan's letter to Colonel Briggs, 1850.

†Torren's *Empire in Asia,* p. 221.

‡Grant Duff's *History of the Marhattas,* p. 352.

17—220 M of I&B/80

पेशवा माधोराव की अचानक मृत्यु के सम्बन्ध में कम्पनी के दूत मास्टिन पर सन्देह होना, खास कर मास्टिन की अन्य करतूतों को देखते हुए, बिल्कुल स्वाभाविक है; किन्तु इन गुप्त पापों का ठीक भेद इतने समय के बाद खुल सकना अत्यन्त कठिन है ।

माधोराव के कोई बच्चा न था । मरने से पहले उसने अपने भाई नारायणराव को पेशवा की गद्दी के लिए नियुक्त कर दिया और अपने चचा राघोबा से प्रार्थना की कि आप नारायणराव की रक्षा और सहायता कीजिएगा ।

पेशवा नारायणराव की हत्या

राघोबा के लिए अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने और मास्टिन के लिए राघोबा द्वारा अपने मालिकों की इच्छा को सफल बनाने, दोनों का अब खासासुन्दर अवसर था । 30 अगस्त, सन् 1773 को राघोबा ने अपने भतीजे नारायणराव पेशवा को मरवा डाला । मास्टिन ने बड़े उल्लास के साथ बम्बई की अंगरेज़ कौन्सिल को इस घटना की सूचना दी ।

नारायणराव की हत्या का भेद उसी समय दूसरी तरह खुल गया । जिन आदमियों ने नारायणराव को मारा, वे राघोबा के आदमी थे । पूछताछ होने पर राघोबा ने बयान किया कि जो मराठी पत्र मैंने अपने उन आदमियों के नाम भेजा था, जिन्होंने नारायणराव को कत्ल किया, उसमें शब्द 'धरावे' था जिस का अर्थ 'पकड़ना' है और मेरा मतलब केवल नारायणराव को गिरफ्तार कराने का था, किन्तु बाद में बीच ही में किसीने कहीं पर 'धरावे' शब्द को बदल कर 'मारावे' कर दिया । इसमें भी कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस हत्याकाण्ड में मास्टिन का भी पूरा हाथ था । सर हेनरी लारेन्स लिखता है : "बाद में राघोबा ने नारायणराव को मार डाला × × × और अंगरेज़ सरकार ने उसका साथ दिया । अंगरेज़ों के भारतीय इतिहास का यह एक अत्यन्त पापमय अध्याय है ।"*

उधर बम्बई की कौन्सिल ने नारायणराव की मृत्यु का समाचार पाकर इस मौके को अपनी इच्छापूर्ति के लिए गनीमत समझा । 30 अगस्त को पूना में पेशवा नारायण-राव की हत्या हुई और 17 सितम्बर को बम्बई की कौन्सिल ने मास्टिन को पत्र लिखा कि— "इस अवसर पर साष्टी और बसई प्राप्त करने में जितनी चीज़ें हमें मदद दे सकें, उन्हें तुम खूब परिश्रम के साथ बढ़ाना और चाहे कुछ भी क्यों न हो, पूना छोड़ कर कहीं न जाना ।"†

विद्रोही राघोबा और अंगरेज़

नारायणराव की मृत्यु के बाद राघोबा ने अपने-आपको पेशवा एलान कर दिया । मास्टिन और उसके साथियों ने राघोबा को पेशवा बनने में पूरी सहायता दी । पेशवा नारायण के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए ग्रान्ट डफ़ अन्त में लिखता है कि—"सिवाय

---

* "Roghoba afterwards murdered Narain Rao......and was supported by the British Government. *A very evil chapter* in Anglo-Indian history."—*Calcutta Review,* vol. p. 430.

† "......to improve diligently every circumstance favourable to the accomplishment of that event (the possession of Salsette and Bassein), and on no account whatever to leave the Marhatta Capital."—Mill, vol. iii, p. 425.

उसके शत्रुओं के, बाकी सब उससे प्रेम करते थे।''* किन्तु अंगरेज़ों ने अब नारायणराव की खूब बुराई और राघोबा की तारीफें करनी शरू कर दीं।

पूना के अधिकांश दरबारी और वहां की प्रजा, सब राघोबा के विरुद्ध थे। राघोबा हर तरह से मास्टिन के हाथों की कठपुतली था। मास्टिन ने अब उसे समझा-बुझा कर निज़ाम और हैदरअली के साथ उसका बाज़ाब्ता युद्ध छिड़वा दिया और इस युद्ध के लिए उसे सेना सहित पूना से रवाना कर दिया। किन्तु इस लड़ाई में राघोबा को सिवाय कष्ट और अपमान के और कुछ न मिला।

नाना फड़नवीस और उसके साथियों ने, जो अच्छी तरह देख रहे थे कि राघोबा विदेशियों के हाथों में खेल कर मराठा साम्राज्य की जड़ें खोखली कर रहा है, राघोबा की इस ग़ैरमौजूदगी में अपना बल और बढ़ा लिया, यहां तक कि राघोबा को पूना लौटने का साहस न हो सका। वह जान बचा कर गुजरात की ओर भाग गया।

पूना में दूसरे पेशवा की नियुक्ति

इसी बीच पूना में 18 अप्रैल, सन 1774 को पेशवा नारायणराव की विधवा स्त्री के, जो अपने पति की हत्या के समय गर्भवती थी, एक पुत्र हुआ। पूना दरबार ने एक मत से इस बालक के पेशवा नियुक्त होने का एलान कर दिया। प्रजा ने गद्दीनशीनी की खुशियां मनाईं।

पहले मराठा युद्ध की जड़

किन्तु अंगरेज़ों का हित राघोबा को ही पेशवा बनाने में था। उन्होंने राघोबा को अपने पास सूरत बुलवा लिया। सूरत में 6 मार्च, 1775 को राघोबा और अंगरेज़ों में एक सन्धि हो गई, जिसमें राघोबा ने साष्टी, बसई और सूरत प्रान्त का एक भाग कम्पनी के नाम लिख दिया और बम्बई की अंगरेज़ी कौन्सिल ने इसके बदले में राघोबा को कम्पनी की सेना सहित पूना भेजने और पेशवा की गद्दी पर बैठाने का वादा किया। यह नाजायज़ सन्धि ही पहले मराठा युद्ध की जड़ थी।

अंगरेज़ों की पहली हार

कर्नल कीटिंग के अधीन कम्पनी की सेना और राघोबा की सेना, दोनों मिल कर राघोबा को ज़बर्दस्ती पेशवा की गद्दी पर बैठाने की गरज़ से पूना की ओर बढ़ीं। उधर पूना दरबार ने सेनापति फड़के के अधीन एक सेना राघोबा की बगावत का दमन करने के लिए गुजरात की ओर रवाना कर दी। 18 मई, सन् 1775 को आरस नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में घमासान संग्राम हुआ जिसमें राघोबा और उसके मददगारों की हार हुई। अंगरेज़ों की बहुत-सी सेना और अनेक अंगरेज़ अफ़सर मारे गए।

किन्तु बरसात सर पर थी, इसलिए बागियों का पीछा करके उसका सर्वनाश किए बिना ही हरिपन्त फड़के को अपनी सेना सहित पूना लौट आना पड़ा।

---

* "......all but his enemies loved him"—Grant Duff, *History of the Marhattas.*

नतीजा यह हुआ कि राघोबा और अंगरेज़ों को गुजरात में अपनी साज़िशों के पक्का करने का अब और अच्छा मौका मिल गया ।

अंगरेज़ों और गायकवाड़ में सन्धि

भारतीय नरेशों की आपसी ईर्ष्या की वजह से इस तरह की साज़िशों के लिए मैदान उन दिनों भारत के प्रायः हर प्रान्त में मिल सकता था। सन् 1768 में गुजरात के अन्दर महाराजा दमनाजी गायकवाड़ की मृत्यु हुई । तीन रानियों से उसके चार बेटे थे—सयाजी, गोविन्दराव, मानिकजी और फतहसिंह । कई साल से सयाजी और गोविन्दराव में गद्दी के लिए लड़ाइयां हो रही थीं; फतहसिंह चारों में सबसे चलता हुआ और सयाजी के पक्ष में था ।

कर्नल कीटिंग जब राघोबा की सहायता के लिए सेना लेकर बम्बई से गुजरात आया, उसने गोविन्दराव के विरुद्ध सयाजी के साथ सन्धि करने की कोशिश की। 22 अप्रैल, सन् 1775 को उसका एक दूत, लेफ्टिनेन्ट जार्ज लवीबाण्ड, बातचीत के लिए फतहसिंह के पास पहुंचा । नौजवान फतहसिंह ने सन्धि करने से इन्कार कर दिया और तिरस्कार के साथ लवीबाण्ड को अपने यहां से निकाल दिया ।

बम्बई की कौंसिल ने जब यह समाचार सुना, तब फौरन अपने खुर्राट दूत मास्टिन को कीटिंग की मदद के लिए पूना से गुजरात भेजा । इस समय तक फड़के की विजयी सेना पूना वापस पहुंच चुकी थी । मास्टिन अब पूना से गुजरात चला आया और वहां पर उसने अपनी चालों का जाल बिछाना शुरू किया । अन्त में अंगरेज़ों और फतहसिंह गायकवाड़ के बीच सन्धि हो गई ।

इस सन्धि के अनुसार भड़ौच, चिखली, बड़ियाव और कोरल के तीनों परगने, जिनकी आमदनी कई लाख रुपये सालाना थी, बिना किसी तरह की लड़ाई के कम्पनी को मिल गए और सयाजीराव गायकवाड़ अंगरेज़ों की मदद से बड़ौदा की गद्दी पर बैठ गया । गायकवाड़ का राजकुल अभी तक पेशवा को अपना अधिराज मानता था, किन्तु अब से वह सदा के लिए मराठा मण्डल से फूट कर अलग हो गया और गुजरात में अंगरेजों के पैर जम गए ।

सूरत की सन्धि के अनुसार अंगरेजों ने साष्टी और बसई, दोनों पर कब्जा कर लिया । किन्तु सूरत की सन्धि को पेशवा सरकार ने स्वीकार न किया था और बाग़ी राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने का निष्फल प्रयत्न कर अंगरेज़ पूना सरकार को अपना दुश्मन बना चुके थे ।

अंगरेज़ों के सामने उस समय वास्तव में एक कठिन समस्या थी । राघोबा के पेशवा बन सकने की सम्भावना बहुत ही कम थी और बाग़ी राघोबा को मदद देने के बाद पूना सरकार से बातचीत करने का उन्हें अब कोई मुंह न था । उनके गुप्तचर मास्टिन का अब फिर पूना में घुस सकना तक नामुमकिन मालूम होता था ।

वारेन हेस्टिंग्स की दोरुखी चालें

वारेन हेस्टिंग्स को इस समय एक खासी अच्छी तरकीब सूझी । उसने सीधे कलकत्ते से अपने एक विशेष दूत, कर्नल अपटन को पूना दरबार के पास भेजा और यह रुख लिया

कि बम्बई की कौन्सिल ने राघोबा के साथ जो सन्धि की है और उसे जो कुछ मदद दी है, वह मेरी मर्ज़ी के खिलाफ़ और मेरी इजाज़त के बिना दी गई है, इसलिए वह सन्धि नाजायज़ है और अंगरेज़ सरकार न बाग़ी राघोबा का साथ देना चाहती है और न पेशवा सरकार से लड़ना चाहती है ।

वारेन हेस्टिंग्स ने बम्बई सरकार को हुकुम दिया कि पेशवा दरबार से युद्ध फ़ौरन बन्द किया जाए और कर्नल कीटिंग और उसकी सेना को वापस बुला लिया जाए । बम्बई सरकार ने आज्ञा पाते ही कीटिंग और उसकी रही-सही सेना को सूरत वापस बुला लिया पेशवा दरबार के मन्त्री उस समय पुरन्धर में थे, इसलिए कर्नल अपटन 28 दिसम्बर, सन् 1775 को पुरन्धर पहुंचा ।

सखाराम बापू उस समय पेशवा का प्रधान मंत्री था । कर्नल अपटन के पूना जाने का उद्देश्य ज़ाहिरा यह था कि बम्बई कौन्सिल के समस्त कार्यों को नाजायज़ बता कर उनके लिए कम्पनी की ओर से दुख प्रदर्शित करे और पेशवा दरबार के साथ कम्पनी की मित्रता और वफ़ादारी प्रकट करे । किन्तु कर्नल अपटन के पास वारेन हेस्टिंग्स के दस्तखती दुहरे पत्र मौजूद थे । एक सखाराम बापू के नाम, जिसका आशय ऊपर दिया जा चुका है, और दूसरा बाग़ी राघोबा के नाम, जिसमें वारेन हेस्टिंग्स ने राघोबा के प्रति मित्रता करते हुए बम्बई कौन्सिल की समस्त कार्रवाई का समर्थन किया । अपटन को हिदायत कर दी गई थी कि यह दूसरा पत्र केवल उस समय सूरत में उपयोग करना, जबकि इस बीच किसी सबब से राघोबा के पक्ष की जीत हो चुकी हो । साथ ही हेस्टिंग्स ने जो पत्र सखाराम बापू के नाम भेजा, उसमें भी अपनी मित्रता प्रकट करते हुए पेशवा दरबार से प्रार्थना की कि साष्टी और बसई अंगरेज़ों ही के पास रहने दिए जाएं ।

मराठों को सन्देह

पेशवा दरबार के मन्त्री, जिनमें सखाराम बापू और नाना फड़नवीस जैसे नीतिज्ञ मौजूद थे, मामले को खूब समझते थे । कर्नल अपटन ने वारेन हेस्टिंग्स के नाम 2 फ़रवरी, सन् 1776 के पत्र में लिखा :

> **"वे मुझसे हज़ार बार पूछते हैं कि आप बराबर इतनी वफ़ादारी की क़समें क्यों खाते हैं ? बम्बई गवर्नमेण्ट की छेड़ी हुई लड़ाई को तो आप लोग बुरा कहते हैं और उस लड़ाई द्वारा जो इलाके आपको मिल गए हैं, उन्हें अपने पास रखने के लिए इतने इच्छुक हैं, यह सब मामला क्या है ?"***

पेशवा दरबार ने इस बात पर ज़िद की कि अंगरेज़ फ़ौरन साष्टी और बसई खाली कर दें। मजबूर होकर अपटन ने 7 फरवरी, सन् 1776 को वारेन हेस्टिंग्स को लिख दिया कि--"पूना दरबार हमारी शर्तों पर राज़ी नहीं होता ।"

* "They ask me a thousand times, why we make such professions of honour? How disapprove the war entered into by the Bombay Government, when we are desirous of availing ourselves of the advantages of it?"--Colonel Upton to Warren Hastings, 2nd Feb., 1776.

वारेन हेस्टिंग्स की युद्ध की तैयारी

वारेन हेस्टिंग्स ने जब देख लिया कि सुलह से काम नहीं चल सकता, तब अपटन के पूना रहते हुए फ़ौरन एक बहुत बड़े पैमाने पर जंग की तैयारियां शुरू कर दीं। कलकत्ता और मद्रास, दोनों स्थानों पर पूना भेजने के लिए सेनाएं जमा की जाने लगीं। भोंसले, सिंधिया और होलकर, तीनों को वारेन हेस्टिंग्स ने अपनी ओर फोड़ने की कोशिशें शुरू कीं। हैदरअली और निज़ाम से भी उसने गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया, और यह कोशिश की कि यदि हैदरअली और निज़ाम पेशवा दरबार के खिलाफ़ अंगरेज़ों को मदद न भी दें, तो कम-से-कम तटस्थ रहें।

पूना दरबार को इन सब बातों की खबर मिलती रही। इतिहास से पता नहीं चलता कि और कौन-कौन सी बातें थीं, जिनसे डर कर या मजबूर होकर अन्त में नाना फड़नवीस जैसे नीतिज्ञों ने अपने विचार बदल दिए। कर्नल अपटन जिस समय निराश होकर पुरन्धर से बंगाल लौटने को तैयार हुआ, कहा जाता है कि पेशवा के मन्त्रियों ने उसे रोक लिया।

पुरन्धर की सन्धि

3 जून, सन् 1776 को पुरन्धर में पेशवा दरबार और कम्पनी के दरमियान एक नई सन्धि हुई, जिसमें सूरत वाली नाजायज़ सन्धि को रद्द करार दिया गया, अंगरेज़ों ने वादा किया कि हम फिर कभी राघोबा को सहायता न देंगे, बसई का क़िला पूना दरबार को लौटा देंगे और इस दरबार के साथ सदा मित्रता कायम रखेंगे। पूना दरबार ने राघोबा के गुज़ारे के लिए प्रबन्ध कर दिया और 'दोस्ताना क़ायम रखने के लिए' कम्पनी को साष्टी का टापू, भड़ोच शहर की मालगुज़ारी और उसके आस-पास तीन लाख रुपये सालाना का इलाक़ा बतौर जागीर दे दिया। यह भी तय हुआ कि कम्पनी का एक वकील पेशवा के दरबार में रहा करे। पूना दरबार को निस्संदेह यह आशा थी कि इस उदारता के बाद हम इन विदेशी व्यापारियों के साथ अमन से रह सकेंगे, किन्तु उनकी यह आशा झूठी निकली। पूना के चतुर ब्राह्मण भी कूटनीति में इन विदेशियों से टक्कर न ले सके। वास्तव में, इन दोनों के नैतिक आदर्शों में भी बहुत बड़ा अन्तर था। ज्यों ही कम्पनी के डाइरेक्टरों को इस नई सन्धि की सूचना मिली, उन्होंने फ़ौरन वारेन हेस्टिंग्स को लिखा :

> **"हम चाहते हैं कि राघोबा के साथ जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार कम्पनी को जितना इलाक़ा मिला था, उस सबको हर हालत में अपने कब्ज़े में रखा जाए और हम आपको आज्ञा देते हैं कि जो उपाय उसे क़ायम रखने और उसकी रक्षा करने के लिए ज़रूरी हों, आप तुरन्त कर डालें।"***

---

* "We approve, under every circumstance, of the keeping of all the territories and possessions ceded to the Company by the treaty concluded with Raghoba; and direct that you forthwith adopt such measures as may be necessary for their preservation and defence."—Court of Directors to the Government of Bengal, Mill, p. 436.

कम्पनी के डाइरेक्टरों का कपट

बम्बई कौन्सिल, कलकत्ता कौन्सिल और कम्पनी के डाइरेक्टर, इन तीनों में इस सम्बन्ध में जो पत्र-व्यवहार हुआ, उससे इतिहास-लेखक मिल ने डाइरेक्टरों के कपट और लालच को अच्छी तरह प्रकट किया है। डाइरेक्टरों ने इन पत्रों में साफ़ लिखा कि बसई जैसे महत्वपूर्ण इलाके को छोड़ देना मूर्खता है। अपनी मद्रास कौन्सिल को युद्ध के लिए तैयार रहने और समय पड़ने पर वारेन हेस्टिंग्स की मदद करने को आज्ञा दी। भारत के तमाम अंगरेज़ अधिकारियों को साफ़ हिदायत की कि आप लोग राघोबा का साथ न छोड़ें और जिस बहाने हो सके, पुरन्धर की सन्धि को तोड़ कर या मराठों को उकसा कर, उनकी ओर से तुड़वा कर, राघोबा को फिर सामने कर दें, इत्यादि।

वारेन हेस्टिंग्स और उसके तमाम मातहतों के लिए ये हिदायतें काफ़ी थीं।

सन्धि को तोड़ने की कोशिशें

पुरन्धर की सन्धि हो चुकी थी। उस पर बाज़ाब्ता कम्पनी की मोहर लग चुकी थी। फिर भी अंगरेज़ों ने उस सन्धि की शर्तों को पूरा करने में टालमटोल शुरू की। न उन्होंने राघोबा का साथ छोड़ा और न बसई का क़िला खाली किया। कर्नल अपटन सन्धि करके कलकत्ते लौट गया और जब उस सन्धि के अनुसार कम्पनी के एक वकील को पूना भेजने का मौक़ा आया, तब फिर वही प्रसिद्ध अंगरेज़ दूत मास्टिन बम्बई से पूना भेजा गया।

पेशवा दरबार के नीतिज्ञ मास्टिन और उसके कृत्यों से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि मास्टिन ही अंगरेज़ों और मराठों के बीच की सारी आपत्तियों की जड़ है। उन्होंने मास्टिन-जैसे आदमी के फिर अपने दरबार में भेजे जाने पर एतराज़ किया, किन्तु कम्पनी के अधिकारियों ने उनकी एक न सुनी और मार्च सन् 1777 में मास्टिन कम्पनी के वकील की हैसियत से पूना पहुंच गया।

अंगरेज दूत मास्टिन का पूना दरबार में फूट डलवाना

मास्टिन ने इस बार अपने गुप्त कुचक्रों द्वारा धीरे-धीरे पेशवा दरबार के एक और मन्त्री, मोरोबा, को अपनी ओर फोड़ लिया। उसने मोरोबा को नाना फड़नवीस से लड़ा दिया और नाना फड़नवीस तथा प्रधानमंत्री सखाराम बापू में भी फूट डलवा दी। ये झगड़े यहां तक बढ़े कि दरबार के अन्दर नाना की जगह मोरोबा को मिल गई और नाना कुछ दिनों के लिए दरबार के कार्य से उदासीन होकर पुरन्धर चला गया। नाना की गैरहाज़िरी में मोरोबा ने मास्टिन के कहने पर बम्बई की कौन्सिल को यह गुप्त पत्र लिख भेजा कि आप फौरन राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने के लिए फिर से पूना ले आइए। बम्बई कौन्सिल ने, जो केवल एक सहारा ढूंढ रही थी, पुरन्धर की सन्धि के विरुद्ध फ़ौरन तैयारियां शुरू कर दीं। वारेन हेस्टिंग्स ने भी खबर पाते ही बम्बई की कौन्सिल की मदद के लिए बहुत बड़ी सेना बंगाल से पूना भेजे जाने की आज्ञा दे दी।

कर्नल अपटन और उस समय के अन्य अंगरेज़ों के बयानों से साफ़ ज़ाहिर है कि पूना दरबार सचाई के साथ पुरन्धर की सन्धि पर क़ायम रहना चाहता था; किन्तु वारेन हेस्टिंग्स और उसके साथियों को इंगलिस्तान से विश्वासघात करने की आज्ञा मिल चुकी थी।

कम्पनी की सेनाएं अभी पूना के लिए रवाना भी न हो पाई थीं कि पूना मन्त्रि-मण्डल के फिर से बदलने की खबर कलकत्ते पहुंची। मालूम होता है कि अंगरेज़ों के नाम मोरोबा के पत्र का हाल किसी तरह खुल गया। मोरोबा अहमदनगर के क़िले में क़ैद कर दिया गया। नाना फड़नवीस अब पेशवा का प्रधानमन्त्री नियुक्त हुआ। सखाराम बापू बहुत बूढ़ा था। वह अब दरबार के कामों से अलग रहता था। उसमें और नाना में फिर से प्रेम हो गया। पूना दरबार में कोई भी अब हत्यारे राघोबा के पक्ष में न था। किन्तु कम्पनी की दुरंगी नीति जारी रही। एक ओर मास्टिन पूना दरबार में रह कर नाना फड़नवीस और उसके साथियों को यह विश्वास दिलाता रहा कि अंगरेज़ पुरन्धर की सन्धि पर क़ायम रहना चाहते हैं और शीघ्र उसकी सब शर्तों को पूरा कर देंगे, और दूसरी ओर वारेन हेस्टिंग्स पुरन्धर की इस सन्धि के खिलाफ राघोबा को पेशवा बनाने के लिए बम्बई, मद्रास और कलकत्ते से सेनाएं भेजने की जबर्दस्त तैयारियां करता रहा।

कलकत्ते से अंगरेज़ी सेना का कूच

वारेन हेस्टिंग्स ने जो सेना कलकत्ते में तैयार की, वह मई 1778 में कर्नल लेसली के अधीन बंगाल से चली। इस सेना को भोंसले, होलकर, सिंधिया इत्यादि कई भारतीय नरेशों के इलाकों से होकर गुज़रना था। इनमें भोंसले, होलकर और सिंधिया तीनों महाराष्ट्र मण्डल के सदस्य थे। यदि इन नरेशों को अंगरेज़ी सेना का असली उद्देश्य मालूम होता, तो उस सेना का पूना तक पहुंच सकना असम्भव होता। इसलिए वारेन हेस्टिंग्स ने इन तीनों को धोखे में रखने के लिए उनके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया।

सबसे पहले उसने इन सब नरेशों पर यह ज़ाहिर किया कि फ्रांस की सेना भारत के पश्चिमी तट पर हमला करने वाली है और बंगाल से कम्पनी की सेना केवल फ्रांसीसियों से अपने इलाके की हिफ़ाजत करने के लिए भेजी जा रही है, उसका उद्देश्य किसी भारतीय नरेश से युद्ध करना नहीं है। इसके अलावा बरार के राजा मूदाजी भोंसले के साथ उसने एक और खासी सुन्दर चाल चली। हाल ही में सतारा के राजा की मत्यु हो चुकी थी। उसके कोई औलाद न थी। भोंसले कुल की उत्पत्ति शिवाजी के वंश से थी। वारेन हेस्टिंग्स ने मूदाजी भोंसले को उकसाया कि आप सतारा गद्दी पर अपना हक़ जमाइए, कम्पनी आपकी मदद करेगी। वारेन हेस्टिंग्स का मतलब यह था कि सतारा की अधिकारशून्य गद्दी पर एक प्रबल नरेश को बैठा कर पेशवा दरबार के अधिकारों को तोड़ दिया जाए, मराठा मण्डल में फूट डाल दी जाए और फिर मूदाजी को अवध के नवाब वज़ीर की तरह अपने हाथों में रखा जाए।

बरार के राजा को फोड़ने के प्रयत्न

इस काम के लिए अंगरेज़ दूत, ईलियट, को बरार के राजा के पास भेजा गया। एक अंगरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है :

"मिस्टर ईलियट को इस काम के लिए नियुक्त किया गया कि तुम जाकर बरार के राजा को मराठा मण्डल से फोड़ो। ईलियट के द्वारा बरार के राजा से बातचीत की गई। ईलियट को यह अधिकार दिया गया कि तुम राजा से कह दो गवर्नर-जनरल अपनी पूरी शक्ति के सतारा के राजा का तमाम इलाक़ा और पेशवा की पदवी आपको दिलवाने के लिए तैयार है।"*

किन्तु मूदाजी ने किसी वजह ने वारेन हेस्टिंग्स की इस सलाह को स्वीकार न किया। वारेन हेस्टिंग्स की चाल पूरी न चल सकी। पर इस पत्र-व्यवहार से उसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि बंगाल की सेना शान्ति के साथ बरार के इलाके से गुज़र सकी।

होलकर और सिंधिया, दोनों, मालूम होता है, फ्रान्सीसी हमले के धोखे में आ गए। इसके अलावा वे उस समय पूना में थे, इसलिए उन्होंने इस सेना को अपने राज्यों में से गुजरने की इजाज़त दे दी।

नाना फड़नवीस का अंगरेज़ी सेना को रोकना

वारेन हेस्टिंग्स ने ठीक यही धोखा नाना फड़नवीस को देना चाहा और उससे यह इजाज़त मांगी कि पेशवा के इलाके में से कम्पनी की सेना को जाने दिया जाए। किन्तु नाना फड़नवीस ताड़ गया। उसने कम्पनी की सेना के आगे बढ़ने पर एतराज़ किया, और जब देखा कि एतराज़ का कोई फल नहीं हुआ और अंगरेज़ी सेना बढ़ी आ रही है, तब मजबूर होकर युद्ध की तैयारी शुरू कर दी।

मार्ग में इस सेना के सामने कई छोटी-मोटी रुकावटें आईं। बुन्देलखण्ड के राजाओं ने उसे अपने इलाके में से गुज़रने से रोका। किन्तु किसी से लड़ कर और किसी से मिल कर, किसी को चाल से और नवाब भोपाल-जैसे को धन से शान्त करते हुए कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। मार्ग में 3 अक्तूबर, सन् 1778 को कर्नल लेसली की मृत्यु हो गई और कर्नल गाडर्ड उसकी जगह सेनापति नियुक्त हुआ।

बम्बई से कम्पनी की सेना

बम्बई के अंगरेज़ों ने इस सैना के पहुंचने का इन्तज़ार न किया। उन्होंने राघोबा को युद्ध के खर्च के लिए एक खासी रक़म बतौर क़र्ज़ के दी, जिसके लिए उससे पट्टा लिखा लिया और 22 नवम्बर, सन् 1778 को राघोबा तथा कर्नल इजर्टन के अधीन एक विशाल सेना राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने के लिए बम्बई से पूना की ओर रवाना कर दी। यह सेना राघोबा के नाम पर आगे बढ़ती जाती थी और उसके साथ-साथ मार्ग भर में एलान बंटते जाते थे, जिनमें महाराष्ट्र की प्रजा से राघोबा की सहायता करने के लिए प्रार्थना की गई।

---

* "Overtures were made to the Raja of Berar through Mr. Elliot, who was deputed, with the view of detaching him from the confederacy, and who was empowered to offer him the full support of the Governor-General in his claims to the possession of the Raja of Sattara, and to the situation of Peshwa."—*Origin of the Pindaries, etc.* by an Officer in the service of the Honourable East India Company, 1818.

इसी बीच मास्टिन पूना में अचानक बीमार पड़ गया, उसे बम्बई लौट आना पड़ा और 1 जनवरी, सन् 1779 को उसकी मृत्यु हो गई ।

खण्डाला तक बम्बई की इस सेना को किसी ने न रोका, किन्तु नाना असावधान न था । उसके गुप्तचरों का संगठन इतना अच्छा था कि पूना में बैठे हुए उसे भारत भर की राजनैतिक हालत का ठीक-ठीक पता रहता था । सिंधिया और होलकर, दोनों उस समय पूना में थे। नाना ने उन्हें सेनापति नियुक्त करके उनके अधीन अंगरेज़ों के मुकाबले के लिए सेना रवाना की ।

तालेगांव की लड़ाई

मराठे युद्ध-विद्या में अत्यन्त होशियार थे। वे धीरे-धीरे पीछे हटते हुए अंगरेज़ी सेना को पूना से 18 मील दूर तालेगांव के मैदान तक ले आए । 9 जनवरी, सन् 1779 को अंगरेज़ी सेना तालेगांव पहुंची । वहां पहुंचते ही अंगरेज़ों ने अचानक अनुभव किया कि एक विशाल मराठा सेना ने उन्हें तीन ओर से घेर रखा था । इस पर वे इतने भयभीत हो गए कि उन्हें फ़ौरन पीछे हटने के सिवा कोई चारा दिखाई न दिया ।

अंगरेज़ों की दोबारा हार और दूसरी सन्धि

11 जनवरी को 11 बजे रात अंगरेज़ी सेना ने पीछे हटना शुरू किया । उन्होंने स्वयं अपने बहुत से गोले-बारूद को आग लगा दी और भारी तोपों को एक बड़े तालाब में फेंक दिया । मराठा सेनापतियों ने अब आगे बढ़ कर सामने से शत्रु को रोका और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। एक भयंकर संग्राम हुआ। अंगरेज़ी सेना को दूसरी बार पूरी तरह हार खानी पड़ी । उनके तमाम अस्त्र-शस्त्र छीन लिए गए । पेशवा की सेना उस समय यदि चाहती, तो राघोबा और उसके एक-एक देशी और विदेशी साथी को वहीं पर ख़त्म कर सकती थी, किन्तु अंगरेज़ों ने हार मान कर दया की प्रार्थना की । 13 जनवरी को अंगरेज़ों का एक दूत सन्धि के लिए मराठों के पास पहुंचा । मराठों ने शरणागत शत्रु को छोड़ दिया । दोनों पक्षों में फिर एक सन्धि हो गई, जिसमें अंगरेज़ों ने वादा किया कि——

1——राघोबा को फ़ौरन पूना दरबार के हवाले कर दिया जाएगा ।

2——भड़ोच, सूरत और मराठा के जितने और इलाकों पर कम्पनी ने अपना अधिकार जमा रखा है, वे सब फ़ौरन पेशवा दरबार को वापस दे दिए जाएंगे ।

3——जो अंगरेजी सेना बंगाल से आ रही है, उसे वापस लौटाने के लिए अंगरेज़ अफ़सर उस सेना के पास साफ़ सन्देशा भेज देंगे और यह सन्देशा पूना दरबार के एक वकील की मार्फ़त भेजा जाएगा ।

4——जब तक अंगरेज़ इन शर्तों को पूरा न कर दें, तब तक के लिए दो अंगरेज़ अफ़सर बतौर बन्धक मराठों के पास क़ैद रहेंगे ।

सन्धि पर बाज़ाब्ता दोनों ओर के सेनापतियों के दस्तख़त हो गए और कम्पनी तथा पेशवा दरबार, दोनों की मोहरें लग गईं । राघोबा और दो अंगरेज़ मराठों के हवाले कर दिए गए । कर्नल गाडर्ड के नाम पत्र लिख कर पूना दरबार के एक वकील के सुपुर्द

कर दिया गया । नाना फड़नवीस ने राघोबा और उसके साथ दोनों अंगरेज़ों को माधोजी सिंधिया (महादजी सिंधिया) के हवाले कर दिया ।

इस दूसरी सन्धि का उल्लंघन

किन्तु अंगरेज़ अब भी अपने छल से बाज न आए । बम्बई पहुंचते ही उन्होंने उस पत्र को रद्द करने के लिए, जो हाल की सन्धि के अनुसार मराठा वकील की मारफ़त कर्नल गाडर्ड के पास भेज दिया गया था, कर्नल गाडर्ड को एक दूसरा गुप्त पत्र भेजा और उसमें लिखा कि आप जितनी जल्दी हो सके, बम्बई पहुंच जाइए ।

बम्बई की अंग्रेज़ी सेना की हार का समाचार सुन कर करनल गाडर्ड पहले सूरत की ओर बढ़ा । 9 फ़रवरी को पूना दरबार का वकील अंगरेज़ सेनापति के पत्र सहित गाडर्ड से जा मिला । वकील ने पत्र देकर गाडर्ड पर बंगाल लौट जाने के लिए ज़ोर दिया । गाडर्ड यह झूठ बोल कर कि मेरी सेना का उद्देश्य पेशवा सरकार से लड़ना नहीं है, बल्कि उससे मित्रता क़ायम रखना और फ्रान्सीसियों का मुक़ाबला करना है, बराबर आगे बढ़ता गया । 26 फरवरी, सन् 1779 को वह अपनी विशाल सेना सहित सूरत पहुंच गया ।

वारेन हेस्टिंग्स को जिस समय बम्बई की सेना की इस अपमानजनक हार और नई सन्धि का पता लगा, उसने फ़ौरन कर्नल गाडर्ड को लिख भेजा कि आप उस सन्धि की बिल्कुल परवाह न करें, और आगे बढ़ते जाएं ।

सिंधिया और होलकर कुलों की उत्पत्ति

मराठा मण्डल के पांच मुख्य स्तम्भों में से एक महाराजा गायकवाड़ को अंगरेज़ अपनी ओर फोड़ चुके थे । बरार के महाराजा भोंसले ने वारेन हेस्टिंग्स की सलाह न मानी थी, फिर भी वारेन हेस्टिंग्स ने अपनी चालों द्वारा उसे इस संग्राम से तटस्थ कर रखा था । पेशवा की मदद के लिए अब केवल होलकर और सिंधिया, दो नरेश बाकी रह गए थे ।

मालवा का प्रान्त, जिसे मध्य भारत कहते थे, 18-वीं सदी के प्रारम्भ तक मुग़ल साम्राज्य का एक भाग था और निज़ाम की सूबेदारी में था । सन् 1721 में निज़ाम के बग़ावत करने पर दिल्ली सम्राट ने निज़ाम की जगह एक हिन्दू राजा गिरधरराय को मालवे का सूबेदार नियुक्त कर दिया था । कुछ समय बाद पेशवा ने राजा गिरधरराय से मालवा विजय करके उत्तरी भाग अपने एक अनुचर, रानोजी सिंधिया, को और दक्षिणी भाग एक दूसरे अनुचर, मल्हारराव होलकर को दे दिया । यही इन दोनों राजकुलों का प्रारम्भ था ।

महारानी अहिल्याबाई

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं, उस समय दक्षिण मालवे का शासन उस महारानी अहिल्याबाई के हाथों में था, जिसकी बुद्धिमत्ता, योग्यता, न्यायशासन, सच्चरित्रता और आदर्श राज-प्रबन्ध की प्रशंसा अनेक भारतीय और विदेशी लेखकों ने की है; जिसकी प्रगाढ़ धार्मिकता के कारण उत्तर से दक्षिण तक समस्त हिन्दू और मुसलमान भारतीय नरेश उसे अपनी श्रद्धा और आदर का पात्र स्वीकार करते थे; और जिसका नाम आज भी भारत के एक-एक गांव और एक-एक झोंपड़े में श्रद्धा के साथ लिया जाता है ।

अहिल्याबाई इन विदेशियों के साथ मेल या अपने यहां उनका हस्तक्षेप पसंद न करती थी, इसलिए वारेन हेस्टिंग्स को पेशवा के खिलाफ़ सिंधिया कुल के साथ साजिश करनी पड़ी ।

माधोजी सिंधिया के साथ झूठा वादा

माधोजी सिंधिया उस समय पेशवा के अत्यन्त योग्य और विश्वस्त सेनापतियों में से था । वारेन हेस्टिंग्स ने देख लिया कि नाना को पंगु कर देने का सबसे अच्छा तरीक़ा माधोजी को अपनी ओर फोड़ लेना है । अदूरदर्शी माधोजी विदेशियों की बातों में आकर पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात करने को राज़ी हो गया । तालेगांव ही में अंगरेज़ों और माधोजी के बीच गुप्त बातचीत शुरू हो गई । माधोजी को ख़ास लालच यह दिया गया कि यूरोपियन अफ़सरों और यूरोपियन ढंग के शस्त्र ढालनेवालों की मदद से तुम्हारे पास एक जबरदस्त सेना तैयार कर दी जाएगी, जिसके द्वारा महाराष्ट्र, बल्कि सारे भारत में तुम्हारा प्रभाव थोड़े ही दिनों के अन्दर सर्वोपरि हो जाएगा । इस चाल के ज़रिए अंगरेज़ उससे राघोबा और अपने दोनों बन्धकों को छुड़ा लेना चाहते थे ।

सिंधिया और राघोबा के साथ गुप्त सन्धि

अन्त में माधोजी, राघोबा और अंगरेज़ों के बीच गुप्त सन्धि हो गई, जिसमें तय हुआ कि बालक माधोराव नारायण, जिसकी आयु उस समय पांच साल की थी, पेशवा की गद्दी पर क़ायम रहे, उसी के नाम के सिक्के ढलते रहें, राघोबा का बेटा बाजीराव, जिसकी आयु चार साल की थी, पेशवा का दीवान नियुक्त हो, माधोजी नाबालिग़ दीवान के नाम से शासन का सारा काम करें और राघोबा को पेशवा दरबार से बारह लाख सालाना पेन्शन पर झांसी भेज दिया जाए । इसके अलावा, अंगरेज़ों ने भड़ोच का ज़िला माधोजी को और 41,000 रुपये नक़द उसके आदमियों को देने का वादा किया । स्वार्थान्ध माधोजी ने अपने स्वामी पेशवा के साथ विश्वासघात करके राघोबा और दोनों अंगरेज़ बन्धकों को चुपके से छोड़ दिया । राघोबा फिर अंगरेज़ों से जा मिला । इसके थोड़े ही दिनों के अन्दर अंगरेज़ों ने माधोजी सिंधिया के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया, जैसा वे बंगाल में अमीचन्द से लेकर मीर जाफ़र तक—एकएक देश घातक के साथ कर चुके थे ; फिर भी उस समय भारत के अन्दर कम्पनी की सत्ता के जमने में माधोजी ने बहुत बड़ी मदद दी ।

नाना फड़नवीस को जब अंगरेज़ों के इरादों का पता चला और मालूम हुआ कि गाडर्ड की सेना गुजरात पहुंच गई है, तो उसने एक ओर माधोजी सिंधिया को सेना देकर गुजरात भेजा, ताकि वह गुजरात से अंगरेज़ों को बाहर निकाल दे, और दूसरी ओर मुदाजी भोंसले को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन तीस हजार सेना लेकर बंगाल पर चढ़ाई कर दो । नाना की तजवीज़ काफ़ी जबर्दस्त थी ; किन्तु नाना को उस समय पता न था कि माधोजी और अंगरेज़ों में गुप्त सन्धि हो चुकी थी और मुदाजी भोंसले भी भीतर से वारेन हेस्टिंग्स के साथ मिला हुआ था । माधोजी का बाक़ी हाल आगे चल कर दिया जाएगा । मुदाजी ने नाना को धोखे में रखने के लिए 30,000 सेना लेकर बंगाल पर चढ़ाई अवश्य की, किन्तु उसने पहले ही से वारेन हेस्टिंग्स को एक गुप्त पत्र लिख दिया कि—"मैं यह चढ़ाई केवल नाना फड़नवीस और दूसरे मराठों को

खुश करने के लिए कर रहा हूं, यह केवल दिखावा है । मैं मार्ग में जान कर इतनी देर लगा दूंगा कि बरसात से पहले बंगाल की सरहद पर न पहुंच सकूं और फिर बरसात का बहाना लेकर बरार वापस लौट आऊंगा ।'' मूदाजी भोंसले ने वारेन हेस्टिंग्स के साथ अपने वचन का पालन किया । सारांश यह कि इन दोनों मराठा सेनापतियों ने भी अपने स्वामी और देश, दोनों के साथ विश्वासघात किया ।

अंगरेज़ों का सिंधिया के साथ विश्वासघात

कर्नल गाडर्ड अब सूरत में बैठा हुआ एक ओर नाना फड़नवीस के पास सुलह के पत्र भेज रहा था और दूसरी ओर पूना पर चढ़ाई करने की ज़ोरदार तैयारी कर रहा था । नाना फड़नवीस ने गाडर्ड के पत्रों के उत्तर में स्पष्ट लिख भेजा कि सुलह की बातचीत के लिए सबसे पहली शर्त यह है कि पिछली सन्धि के अनुसार साष्टी का टापू और विद्रोही राघोबा, दोनों पेशवा दरबार के हवाले कर दिए जाएं । किन्तु साष्टी पर अंगरेज़ों के शुरू से दांत थे और राघोबा इस तमाम खेल में उनके हाथ का तुरुप था ।

इस दरमियान गाडर्ड ने गुजरात में पेशवा के इलाकों पर धावे मारने शुरू किए और वहां की प्रजा को खूब लूटा और तबाह किया । माधोजी सिंधिया नाना को दिखाने के लिए सेना लेकर गुजरात पहुंच गया था और इस समय गुजरात में मौजूद था । किन्तु अंगरेज़ों ने बड़ी सफलता के साथ उसे झूठी आशाओं के नशे में सुला रखा था । नाना फड़नवीस ने प्रजा की बरबादी और माधोजी की नाफ़रमानी का हाल सुन कर अब होलकर को सेना सहित गुजरात भेजा । किन्तु गायकवाड़ इस समय तक मराठा मण्डल से पृथक् हो चुका था । माधोजी सिंधिया विदेशियों के हाथों में खेल रहा था । मूदाजी भोंसले वारेन हेस्टिंग्स की चालों में आकर पेशवा के साथ विश्वासघात कर चुका था । इन हालातों में अकेला होलकर गाडर्ड की सेना के हाथों गुजरात की प्रजा की बरबादी को न रोक सका ।

16 मार्च, सन् 1780 को माधोजी सिंधिया ने अपना एक वकील गाडर्ड के पास भेजा और प्रार्थना की कि तालेगांव की गुप्त सन्धि के अनुसार, राघोबा को झांसी की ओर भेज दिया जाए, ताकि वह राघोबा के पुत्र बाजीराव को साथ लेकर पूना के लिए रवाना हो जाए । किन्तु गाडर्ड का मतलब निकल चुका था । वह राघोबा को इस तरह हाथ से छोड़ देने के लिए तैयार न था । उसने अब तालेगांव की गुप्त सन्धि को भी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया ।

माधोजी को ज़बर्दस्त निराशा और दुख हुआ । गाडर्ड ने इस हालत में उसे देर तक गुजरात में रहने देना ठीक न समझा । चन्द रोज़ के अन्दर ही उसने बिल्कुल अचानक माधोजी की सेना पर हमला कर दिया । माधोजी की सेना को तैयार होने का समय भी न मिल सका । जिस तरह पेशवा के दल में माधोजी अंगरेज़ों से मिल गया था, उसी तरह माधोजी की सेना में न मालूम कितने इस समय गाडर्ड से मिले हुए हों । अन्त में गाडर्ड ने कर्तव्यविमूढ़ माधोजी और उसकी सेना को गुजरात से खदेड़ कर बाहर कर दिया । कर्नल गाडर्ड के लिए अब केवल पूना पर हमला करना बाकी था ।

समस्त भारतीय नरेशों को मिलाने की नाना की कोशिश

दूरदर्शी नाना को जब माधोजी की कर्तव्यविमुखता, होलकर की असफलता और अंगरेज़ों के इरादों का पता चला, तो उसने फ़ौरन हिन्दोस्तान के क़रीब-क़रीब सब मुख्य-मुख्य नरेशों को इन विदेशियों के खिलाफ़ अपने साथ मिलाने के ज़ोरदार प्रयत्न शुरू किए । हैदराबाद के निज़ाम, अरकाट के नवाब, मैसूर के सुलतान हैदरअली और दक्षिण के और कई छोटे-छोटे हिन्दू और मुसलमान नरेशों को उसने इस विषय के पत्र लिखे । नाना, निज़ाम और हैदरअली में तय हो गया कि तीनों एक साथ अपने-अपने पास के अंगरेज़ी इलाक़ों पर हमला करके अंगरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दें । नाना की ओर से मूदाजी भोंसले तीस हजार सेना सहित अंगरेज़ों को बंगाल से निकालने के लिए भेजा जा चुका था । निज़ाम हैदरअली की कोशिशों का ज़िक्र और आगे चल कर किया जाएगा । इसके अलावा, जैसा ऊपर आ चुका है, कम-से-कम उपचार के लिए पूना के पेशवा दिल्ली सम्राट को सारे भारत का अधिराज स्वीकार करते थे और पेशवा का एक वकील सम्राट के दरबार में रहा करता था । नाना को मालूम हुआ कि वारेन हेस्टिंग्स दिल्ली सम्राट को अपनी ओर करने की कोशिशों में लगा हुआ है ।

दिल्ली सम्राट के नाम नाना का पत्र

नाना ने 6 मई, सन् 1780 को अपने दिल्ली के वकील पुरुषोत्तम महादेव हिंगने के नाम इस मज़मून का एक पत्र लिखा :

"यहां पर समाचार मिला है कि कलकत्ते के अंगरेज़ दिल्ली के सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करके सम्राट को अपनी ओर करने वाले हैं । इस लिए आप सम्राट और नजफ़ खां, दोनों को इस तरह साफ़–साफ़ समझा दीजिए ।

"इन टोपीवालों (यूरोप निवासियों) के तरीक़े बेईमानी और चालबाज़ी के हैं । इनकी आदत यह है कि पहले तो किसी हिन्दोस्तानी नरेश को खुश करते हैं, उसे अपने साथ सन्धि करने के फ़ायदे दिखलाते हैं और फिर उसे क़ैद करके खुद उसके राज पर कब्जा कर लेते हैं । मिसाल के तौर पर शुजाउद्दौला, मोहम्मदअली खां, अरकाट के सूबे और तंजौर के नरेश इत्यादि की हालत देख लीजिए । इसलिए आपका इन टोपीवालों का दमन करना लाज़मी है । केवल इस उपाय से ही देश के नरेशों की इज्जत बच सकती है, नहीं तो विदेशी टोपी वाले इस भूमि की तमाम रियासतों को छीन लेंगे, और सारे देश पर कब्ज़ा कर लेंगे । ऐसा होना अच्छा नहीं है और भविष्य में सब नरेशों के लिए अत्यन्त हानिकर साबित होगा । सम्राट समस्त पृथ्वी का स्वामी है, इसलिए हर तरह मुनासिब है कि सम्राट इस मामले की ओर ध्यान देना अपना पवित्र कर्तव्य समझे । दक्षिण के सब नरेश मिल गए हैं । नवाब, निज़ामअली खां, हैदर नायक और पेशवा, इन चारों में सन्धि हो गई है; इन्होंने चारों ओर से अंगरेज़ों का दमन करने का निश्चय कर लिया है और अपने-अपने इलाक़ों में अंगरेज़ों से युद्ध करने के लिए फ़ौज, तोपखाने और अस्त्र-शस्त्र की तैयारी कर ली है ।

"उत्तर भारत में सम्राट और नजफ खां को चाहिए कि सब नरेशों को मिला कर अंगरेज़ों का दमन करें । इससे साम्राज्य की कीर्ति और मान, दोनों बढ़ेंगे ।"

वारेन हेस्टिंग्स और नाना फड़नवीस के बीच मुकाबला ज़बरदस्त था। नाना की दूरदर्शिता और देशभक्ति, दोनों अपूर्व थीं। इस पत्र को पढ़ कर ऐसा मालूम होने लगता है, मानो वह सन् 1857 के प्रसिद्ध नाना धोन्डुपन्त के हाथ का लिखा हुआ हो। नाना फड़नवीस जो बात चाहता था, वह न हो सकी। किन्तु उसके प्रयत्न बिल्कुल निष्फल नहीं गए।

तीसरी बार अंगरेज़ों की हार

कर्नेल गाडर्ड अपनी विशाल सेना सहित पूना की ओर बढ़ा। रास्ते में कल्याण, बसई और कोंकण प्रान्त के दूसरे कई स्थानों को उसकी सेना ने खूब रौंदा और बरबाद किया। किन्तु अभी वह मराठा साम्राज्य के केन्द्र पूना के निकट भी न पहुंच पाया था कि भोरघाट के ऊपर हरिपन्त फड़के, परशुराम भाऊ और होलकर के अधीन पेशवा की सेना ने उसे रास्ते ही में घेर लिया। मैदान खूब गरम हुआ, किन्तु फिर तीसरी बार विजय मराठों ही की ओर रही और अप्रैल सन् 1781 के आखीर में जान और माल, दोनों की भारी हानि उठा कर, पूना के दर्शन किए बिना ही, कम्पनी की इस विशाल सेना को उसी तरह ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा, जिस तरह जनवरी सन् 1779 में बम्बई की सेना को भागना पड़ा था। बचेखुचे आदमी जान बचा कर बम्बई पहुंच गए, किन्तु इस दूसरी लज्जाजनक हार से अंगरेज़ों को मराठों की वीरता और युद्धकौशल का खूब पता चल गया और उनकी हिम्मत कुछ दिनों के लिए टूट गई।

अंगरेज़ों का गोहद के राणा को अपनी ओर फोड़ना

इस बीच भारत के दूसरे हिस्सों में भी वारेन हेस्टिंग्स की साज़िशें जारी थीं। माधोजी सिंधिया को अंगरेज़ों की दग़ाबाज़ी का काफ़ी तर्जुबा हो चुका था। उसकी हालत इस समय अधमरे सांप की-सी थी। वारेन हेस्टिंग्स ने सबसे पहले उसे पूरी तरह कुचल डालना ज़रूरी समझा। सिंधिया का मुख्य गढ़ ग्वालियर था। वारेन हेस्टिंग्स ने सिंधिया के एक बाजगुज़ार, गोहद नरेश, को ग्वालियर का लालच देकर सिंधिया के ख़िलाफ़ अपनी ओर फोड़ लिया। कप्तान पोफ़म के अधीन कम्पनी की एक सेना ग्वालियर भेजी गई और गोहद के राणा की सहायता से 4 अगस्त, 1780 को ग्वालियर का क़िला माधोजी सिंधिया से जीत कर गोहद के राणा को दे दिया गया। आजकल के धौलपुर के जाट राणा उसी गोहद के राणा की औलाद हैं। इसके बाद कर्नल कारनक ने वारेन हेस्टिंग्स की आज्ञा से फ़रवरी और मार्च सन् 1781 में सिंधिया के अनेक इलाक़ों को रौंदा, उन्हें लूटा और तबाह किया।

माधोजी को अपने विश्वासघात की काफ़ी सज़ा मिल चुकी थी। वारेन हेस्टिंग्स ने इसके बाद माधोजी का सर्वनाश करने के लिए राजपूताने के नरेशों को उसके विरुद्ध भड़काना चाहा, किन्तु माधोजी के सौभाग्य से इसमें हेस्टिंग्स को सफलता न मिल सकी।

इतने में हेस्टिंग्स को मालूम हुआ कि अंगरेज़ों के विरुद्ध नाना फड़नवीस, निज़ाम और हैदरअली से सलाह हो गई है। मूदाजी भोंसले का बंगाल पर हमला हेस्टिंग्स की चालों और मूदाजी के विश्वासघात द्वारा विफल हो ही चुका था। केवल दो प्रबल शक्तियां

मैदान में बाक़ी थीं, निज़ाम और हैदरअली। हेस्टिंग्स ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ने के भरसक यत्न किए। निज़ाम के साथ उसे पूरी सफलता हुई, किन्तु हैदरअली को वह अपनी ओर न फोड़ सका। वास्तव में हैदरअली और निज़ाम के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर था।

हैदरअली और निज़ाम में तुलना

हैदरअली एक ग़रीब घराने में पैदा हुआ था। केवल अपनी वीरता और योग्यता के बल वह एक मामूली सिपाही से बढ़ते-बढ़ते एक विशाल राज का स्वामी बन गया था। वह प्रजापालक था और उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी। अपने देश या देशवासियों के साथ उसने कभी भी दग़ा नहीं की। हैदरअली के चरित्र, अंगरेज़ों के साथ उसके युद्ध और उसके अद्भुत पराक्रम का बयान अगले अध्याय में किया जाएगा। इसके खिलाफ़ हैदराबाद के राजकुल का संस्थापक निज़ामुलमुल्क दिल्ली का एक चलता हुआ दरबारी था, जो केवल चालबाज़ियों से बढ़ा और जिसने अपने स्वामी, दिल्ली सम्राट के साथ विश्वास-घात करके अपने लिए एक स्वतन्त्र राज क़ायम किया। जिस समय दोनों प्रसिद्ध भाई, सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसैनअली, उस 'जज़िए' को, जिसे अकबर ने रद्द कर दिया था और जिसे औरंगज़ेब ने दोबारा जारी किया था, फिर से रद्द करवा कर तथा अन्य अनेक उपायों से मुग़ल साम्राज्य के नाश को रोकने के प्रयत्न कर रहे थे, उस समय निज़ामुलमुल्क ने इन दोनों दूरदर्शी भाइयों के ख़िलाफ़ साज़िशें करके उनकी सत्ता को नष्ट किया। निज़ामुल-मुल्क ने ही मराठों को उकसा कर मुग़ल साम्राज्य पर उनसे हमले करवाए। निज़ामुलमुल्क ने ही नादिरशाह को ईरान से बुलवा कर भारत तथा भारत सम्राट, दोनों को अप-मानित करवाया। निज़ामुलमुल्क ही सम्राट का पहला सूबेदार था, जिसने अपने सूबे को साम्राज्य से पृथक करके साम्राज्य के अंग-भंग की नींव रखी और दूसरे सूबेदारों के लिए एक बुरी मिसाल क़ायम की। अंगरेज़ों को भारत के अन्दर अपना राज जमाने में भी समय-समय पर निज़ाम घराने से काफ़ी सहायता मिली।

निज़ाम का विश्वासघात और अंगरेज़ों पर हैदरअली के हमले

वारेन हेस्टिंग्स ने उस समय के निज़ाम को बहकाया कि दिल्ली सम्राट तुम्हें दक्षिण की सूबेदारी से हटा कर हैदरअली को तुम्हारी जगह देना चाहता है। गुण्टूर का इलाका कुछ समय पहले अंगरेज़ों ही ने निज़ाम से छीन कर अपने मित्र कर्नाटक के नवाब मोहम्मदअली को दे दिया था। हेस्टिंग्स ने अब यह इलाक़ा निज़ाम को वापस दिलवा दिया। इस तरह हेस्टिंग्स ने नाना और हैदरअली, दोनों के खिलाफ़ निज़ाम को अपनी ओर फोड़ लिया। किन्तु हैदरअली पर वारेन हेस्टिंग्स की चालों का कोई असर नहीं हुआ। उसने नाना का सन्देशा पाते ही अपने पास के अंगरेज़ी इलाकों पर हमला कर दिया। उसकी विजयों का हाल अगले अध्याय में दिया जाएगा। इधर हेस्टिंग्स को कर्नल गाडर्ड की हार का समाचार मिला। इस समाचार को सुन कर हेस्टिंग्स का साहस एक बार टूट गया। एक ओर हैदरअली के भयंकर हमले और दूसरी ओर गाडर्ड की लज्जाजनक हार, इन दोनों से घबरा कर हेस्टिंग्स ने पेशवा दरबार के साथ तुरन्त सन्धि कर लेने ही में अपनी खैरियत देखी।

अंगरेज़ों की ओर से सन्धि की कोशिशें

वारेन हेस्टिंग्स ने अब नागपुर के मूदाजी भोंसले से प्रार्थना की कि आप मध्यस्थ बन कर नाना फड़नवीस और अंगरेज़ों में सुलह करवा दें। किन्तु मूदाजी नाना के साथ विश्वासघात कर चुका था। उसे फिर नाना के सामने जाने का साहस न हो सका। मजबूर होकर हेस्टिंग्स ने 13 अक्तूबर, सन् 1781 को फिर माधोजी सिंधिया के साथ एक गुप्त सन्धि की और उसी माधोजी द्वारा नाना फड़नवीस से सन्धि की बातचीत शुरू की।

11 सितम्बर, सन् 1781 को मद्रास की अंगरेज़ कौन्सिल ने भी हैदर से हार पर हार खाकर एक पत्र द्वारा बड़ी नम्रता के साथ नाना से सुलह की प्रार्थना की, जिसमें उन्होंने खुदा और ईसा मसीह के अलावा इंगलिस्तान के बादशाह, अंगरेज़ क़ौम और कम्पनी, तीनों की क़सम खाई कि हम लोग अब जो सन्धि होगी, उस पर सदा क़ायम रहेंगे।

सालबाई की सन्धि

कई महीने तक पत्र-व्यवहार जारी रहा। अन्त में 17 मई, सन् 1782 को सालबाई नामक स्थान पर पूना दरबार और कम्पनी के बीच तीसरी बार सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार—

1—शुरू से अब तक छल से या बल से पेशवा के जितने इलाक़ों पर अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था, वे सब पेशवा दरबार को वापस दे दिए गए।

2—गायकवाड़ के इलाक़ों और तमाम गुजरात की ठीक वही स्थिति रही, जो सन् 1775 से, यानी अंगरेज़ों के दख़ल देने से पहले थी।

3—राघोबा को 25,000 रुपये मासिक पेन्शन पर एक जगह रहने की इजाज़त दी गई।

4—जो सन्धि वारेन हेस्टिंग्स ने गोहद के राणा के साथ की थी वह रद्द ठहराई गई, ग्वालियर माधोजी सिंधिया को वापस मिल गया, और गोहद का राणा, जिसे अंगरेज़ों ही ने माधोजी के खिलाफ़ भड़काया था, जिसकी सहायता के बिना कप्तान पोफ़म माधोजी को कभी भी वश में न कर पाता और बिना माधोजी को वश में किए पेशवा दरबार के साथ इतनी आसानी से सुलह भी न हो सकती, अब दण्ड भोगने के लिए अपने शत्रु माधोजी के हवाले कर दिया गया।

सन्धिपत्र 17 मई को लिखा गया, किन्तु नाना फड़नवीस ने सात महीने बाद तक उस पर दस्तखत न किए, क्योंकि नाना का सच्चा मित्र और अंगरेज़ों का जानी दुश्मन हैदरअली अभी तक अंगरेज़ों से लड़ रहा था। नाना की आशाएं अभी टूटी न थीं। इसके अलावा, जब तक हैदरअली मैदान में था, नाना का अंगरेज़ों के साथ सन्धि कर लेना हैदरअली के साथ विश्वासघात करना होता। अन्त में दिसम्बर महीने में नाना को हैदरअली की मृत्यु का समाचार मिला। अंगरेज़ों को भारत से निकालने की उसकी आशाएं टूट गईं। नाना ने अब सालबाई के सन्धिपत्र पर दस्तखत कर दिए।

पहले मराठा युद्ध का अन्त

इस तरह ले-देकर पहले मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध से भारत के अन्दर न अंगरेज़ों का ज़रा भी इलाका बढ़ा; न वीरता, युद्धकौशल या ईमानदारी के लिए

18—220 M of I&B/80

उनकी कीर्ति बढ़ी। इसके ख़िलाफ मराठों की वीरता, उनका युद्ध कौशल और नाना फड़नवीस की नीतिज्ञता, तीनों इस युद्ध में अत्यन्त उच्च कोटि की साबित हुईं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि गायकवाड़, सिंधिया और भोंसले, तीन-तीन मराठा नरेशों ने पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात न किया होता, या यदि ऐन मौक़े पर हैदरअली की ज़िन्दगी ने धोखा न दिया होता, तो हिन्दोस्तान से विदेशी सत्ता, जिसे जड़ पकड़े अभी 20 साल भी न हुए थे, उसी समय समूल उखड़ कर फिंक गई होती। किन्तु नाना फड़नवीस की-सी उच्च नीति और दूरदर्शिता उस समय के दूसरे मराठा नरेशों में मौजूद न थी और इस देश को पुनर्जन्म की प्रसव-वेदना में से निकलना आवश्यक था।

नवां अध्याय

हैदरअली

हैदरअली का जन्म

पिछले अध्याय में हम हैदरअली और अंगरेज़ों की लड़ाई की ओर इशारा कर चुके हैं। यह सच है कि हैदरअली से बढ़ कर बहादुर, होशियार और ख़ौफ़नाक शत्रु अंगरेज़ों को भारत के अन्दर दूसरा नहीं मिला। जिस तरह नाना फड़नवीस ने अपनी नीतिज्ञता द्वारा, उसी तरह हैदरअली ने जीवन भर अपनी तलवार द्वारा अंगरेज़ों को भारत से निकालने का प्रयत्न किया। इसलिए अंगरेज़ों और हैदरअली की लड़ाइयों का बयान करने से पहले हैदरअली के जीवन और उसके अदभुत् चरित्र को संक्षेप में बयान करना ज़रूरी है।

हैदरअली का जन्म किसी राजघराने में नहीं हुआ था। उसका पितामह वली मोहम्मद एक मामूली मुसलमान फ़क़ीर था, जो गुलबर्गा में दक्षिण के मशहूर मुसलमान सन्त हज़रत बन्दा नवाज़ गोसू दराज़ की दरगाह में रहा करता था। वली मोहम्मद के खर्च के लिए दरगाह से एक छोटी-सी माहवारी रकम बंधी हुई थी। प्राचीन भारतीय ऋषियों के समान उस समय के अनेक मुसलमान फ़क़ीर अत्यन्त सरल, किन्तु कौटुम्बिक जीवन व्यतीत किया करते थे। वली मोहम्मद को एक बेटा था, जिसका नाम शेख मोहम्मदअली था। उसे शेख अली भी कहते थे। शेख अपने बाप के समान पहुंचा हुआ फ़क़ीर माना जाता था। वह कुछ दिन बीजापुर में रहा, फिर कर्नाटक के कोलार स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हकिम, शाह मोहम्मद दक्खिनी, शेख अली का बड़ा भक्त था। शेख अली के चार बेटे थे। खर्च की तंगी के सबब बेटों ने बाप से प्रार्थना की कि हमें इजाज़त दीजिए कि हम कहीं और जाकर नौकरी कर लें और धन और इज्ज़त हासिल करें। किन्तु शेख अली ने बेटों को समझाया—

> **"हमारे बाप—दादा खुदातर्स (ईश्वर से डरने वाले) और परहेज़गार लोग थे। वे इस क़ाबिल थे कि दुनिया में नाम हासिल करते, फिर भी दुनिया के बंधनों और उसके संसर्ग से वे अपने को सदा अलग रखने की कोशिश करते रहे, क्योंकि दुनिया की लालसा से रूहानी शान्ति जाती रहती है और सच्चे सुख की खोज का शौक मिट जाता है, इसलिए तुम्हें उचित है कि अपने पूर्वजों के कदम ब क़दम चलो और इस चन्दरोज़ा हस्ती के फंदों में न आओ * * * इसके अलावा मनस्वी और आज़ाद तबीयत के लोग अपनी संसारी हालत के तंग रहने से कभी दुखी नहीं होते और यदि उनके दुनिया से सम्बन्ध हों, तो भी वे उन सम्बन्धों को छोड़ देने और दुनिया से तआल्लुक तोड़ लेने में ही फ़ख्र करते हैं।"***

निस्सन्देह, हैदरअली के पितामह और प्रपितामह, दोनों सच्चे फ़क़ीर थे। जब तक शेख अली जिन्दा रहा, उसके बेटे उसके साथ रहे। सन् 1695 ईसवी में शेख अली की मृत्यु हुई। बड़ा बेटा शेख इलियास, बाप का उत्तराधिकारी हुआ। सबसे छोटे बेटे का नाम फ़तह

**History of Hyder Naik*, by Mr. Hussen Ali Khan Kirmani, translated by Col. W. Miles, p. 5.

मोहम्मद था। फ़तह मोहम्मद अपने बड़े भाई की इच्छा के खिलाफ़ अरकाट के नवाब सआदतउल्ला खां की फ़ौज में जमादार हो गया। फ़तह मोहम्मद ने एक दूसरे मुसलमान फ़क़ीर, तंजौर के पीरज़ादा बुरहानुद्दीन, की लड़की के साथ विवाह कर लिया। इस स्त्री से फ़तह मोहम्मद के दो लडके हुए। एक का नाम शहबाज और दूसरे का हैदरअली था। हैदरअली का जन्म सन् 1720 ईसवी के करीब हुआ।

आज से दो-ढाई सौ साल पहले अधिकांश भारत में हिन्दू और मुसलमानों का सामाजिक जीवन एक विचित्र ढंग से परस्पर गुंथा हुआ था। हैदरअली की एक फ़ारसी जीवनी से पता चलता है कि हैदरअली के जन्म के समय हिन्दू ज्योतिषियों ने उसकी जन्मपत्री तैयार की। हैदर 'सिंह' राशि में पैदा हुआ था, इसलिए ज्योतिषियों की ही राय से उसका नाम हैदर (शेर) अली रखा गया। ज्योतिषियों ही ने भविष्यवाणी की कि नवजात बालक एक दिन राजसिंहासन पर बैठेगा, किन्तु साथ ही उसके जन्म के थोड़े ही दिनों के बाद उसके पिता की मृत्यु हो जाएगी। इस पर फ़तह मोहम्मद के कुछ रिश्तेदारों ने बालक को मार डालना चाहा। फ़तह मोहम्मद को पता लगा तो उसने स्वयं अपने जीने की परवाह न कर बालक का पक्ष लिया। इस तरह हैदरअली की जान बच गई और माता पिता ने उसे बड़े प्रेम से पाला।

शाहबाज़ और हैदरअली के जन्म से पहले फ़तह मोहम्मद ने अरकाट की नौकरी छोड़ कर पहले मैसूर में नौकरी की और फिर वहां से छोड़ कर सूबा सीरा के नवाब दरगाह कुली खां के यहां नौकरी कर ली। सीरा में वह बालापुर कलां का किलेदार बना दिया गया। थोड़े दिनों बाद दक्षिण के नरेशों की आपसी लड़ाइयों में फ़तह मोहम्मद किसी लड़ाई में काम आया। बाप की मृत्यु के समय शहबाज़ की उम्र आठ साल की और हैदरअली की आयु 3 साल की थी। विजयी नवाब अब्बास कुली खां ने फ़तह मोहम्मद की बेवा और उसके यतीम बच्चों का सब माल असबाब ज़ब्त कर लिया और उसने सम्बधियों से अधिक धन वसूल करने के उद्देश्य से शहबाज़ और हैदरअली, दोनों मासूम बालकों को पकड़ कर एक बड़े नगाड़े के अन्दर बन्द कर दिया और ऊपर से नगाड़े पर चोट लगवानी शुरू की।

मसूर की सेना में भरती

हैदरअली का एक चचेरा भाई, जिसका नाम भी हैदर साहब था और जो हैदरअली के ताऊ शेख इलियास का बेटा था, इस समय मैसूर के राजा के यहां नायक था। हैदरअली की मां ने अपने इस भतीजे को अपनी मुसीबत की इत्तला दी। हैदर साहब ने फौरन धन भेज कर शाहबाज़, हैदरअली और उसकी मां, तीनों को छुड़वाया और उन्हें श्रीरंगपट्टन में बुलवा कर बड़े आदर और प्रेम से अपने पास रखा। यहां पर शुरू से ही शाहबाज़ और हैदरअली, दोनों को घोड़े की सवारी, निशानाबाज़ी, शस्त्रों का उपयोग और युद्ध-विद्या की पूरी तालीम दी गई। बालिग होने पर शहबाज़ और हैदरअली, दोनों भाई मैसूर की फ़ौज में भरती हो गए।

मैसूर की हिन्दू रियासत दिल्ली सम्राट् की आज्ञानुसार मराठों को 'चौथ' दिया करती थी। इस एक बात के अलावा और सब तरह अपने भीतरी शासन में मैसूर की रियासत स्वाधीन थी। दक्षिण के सूबेदार निज़ामुलमुल्क को मैसूर दरबार के ऊपर किसी तरह का क्रियात्मक आधिपत्य प्राप्त न था।

सन् 1748 ई० में हैदराबाद के निज़ाम का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले निज़ाम ने मुज़फ्फ़रजंग को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अंगरेज़ों ने एक दूसरे व्यक्ति, नाज़िरजंग, को हक़दार खड़ा कर दिया और उसका पक्ष लेकर लड़ना शुरू किया। फ्रांसीसियों तथा मैसूर दरबार ने मुज़फ्फ़रजंग का साथ दिया। अन्त में मुज़फ्फ़रजंग ही की विजय रही। इन लड़ाइयों में हैदरअली का बड़ा भाई शाहबाज़ मैसूर की ओर से लड़ रहा था। उसके अधीन दो सौ सवार और एक हज़ार पैदल थे। हैदरअली उस समय अपने भाई के अधीन एक मामूली घुड़सवार था।

'दैव' की पदवी

मैसूर के महाराजा एक अरसे से सिंहासन की केवल एक शोभा समझे जाते थे। महाराजा का अधिकांश समय महल के अन्दर पूजा-पाठ और धार्मिक कर्मकाण्ड में व्यतीत होता था। यहां तक कि महाराजा साल में केवल दो बार अपनी प्रजा के सामने आता था। शासन के काम से उसे किसी तरह का सम्बन्ध न था। सारा शासन प्रधान मंत्री के सुपुर्द था, जिसे 'दैव' या 'दलवाई' कहते थे। दैव ही राजा का क्रियात्मक स्वामी होता था। दैव की गद्दी पैतृक थी। यह रिवाज़ कई पीढ़ियों से चला आता था। पिछले युद्ध में मैसूर का दैव नन्दीराज हैदरअली की योग्यता और वीरता को देख इतना खुश हुआ कि सन् 1755 में उसने हैदरअली को डिण्डीगल का फ़ौजदार नियुक्त कर दिया। इस युद्ध में ही हैदरअली ने फ्रान्सीसियों की सैनिक व्यवस्था और उनकी क़वायद को अच्छी तरह देखा और डिण्डीगल में फ़ौज को क़वायद सिखाने के लिए कुछ फ्रान्सीसी अफ़सर नौकर रखे। अपने तोपखाने में भी उसने कुछ फ्रान्सीसी कारीगर नियुक्त किए।

हदरअली का दैव नियुक्त होना

धीरे-धीरे हैदरअली का बल बढ़ता गया। यहां तक कि वह रियासत का प्रधान सेनापति हो गया। थोड़े दिनों बाद मैसूर दरबार के मन्त्रियों में आपसी झगड़े बढ़े। खांडेराव में किसी तरह साज़िश कर नन्दीराज़ को गद्दी से अलग कर अपने को मैसूर का दैव नियुक्त करा लिया। लिखा है कि राजधानी श्रीरंगपट्टन की प्रजा खांडेराव से बहुत असन्तुष्ट थी। खांडेराव एक मराठा ब्राह्मण था। जिसे हैदरअली ने ही किसी समय रियासत के अन्दर नौकर रखाया था। खांडेराव ने अब गुप्त तरीके से मराठों को श्रीरंगपट्टन पर हमला करने के लिए बुलावा भेजा। हैदरअली उस समय रियासत का प्रधान सेनापति था। इस तरह खांडेराव ने मैसूर दरबार और हैदरअली, दोनों के साथ विश्वासघात किया। हैदरअली को अपनी सेना सहित खांडेराव और मराठों का मुकाबला करना पड़ा। हमें इन लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने की जरूरत नहीं है। राजकुल के लोगों ने और खास कर नन्दीराज से पहले के दैव देवराज की विधवा ने, जिसका उस समय श्रीरंगपट्टन में बहुत अधिक प्रभाव था, हैदरअली की पूरी मदद की। अन्त में हैदरअली की विजय रही। प्रजा की इच्छा के अनुसार अब मैसूर के महाराजा ने विश्वासघातक खांडेराव को अलग कर हैदरअली को दैव के सर्वोच्च पद पर नियुक्त कर दिया।

सम्राट् की ओर से सीरा का सूबेदार नियुक्त किया जाना

ऊपर आ चुका है कि बहुत समय पहले से दैव ही मैसूर के क्रियात्मक शासक होते थे।

मैसूर के दैव और यहां के महाराजा में करीब-करीब वैसा ही सम्बन्ध था जैसा पूना के पेशवा और शिवाजी के वंशजों में। इसके बाद भी मैसूर के राजा नाममात्र को अपने महल के अन्दर सिंहासन पर बैठते रहे, किन्तु वास्तव में इस समय से हैदरअली मैसूर का क्रियात्मक शासक बन गया और दैव की गद्दी उसके खानदान में पैतृक हो गई। कुछ समय बाद दिल्ली सम्राट् ने हैदरअली की योग्यता और उसके बल की खबर सुनकर उसे मैसूर के पास सीरा प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

शासन-प्रबन्ध और सुधार

मैसूर दरबार की हालत पिछली आपसी लड़ाइयों के सबब उस समय खासी बिगड़ी हुई थी। हैदर ने सबसे पहले राज्य की माली हालत की ओर ध्यान दिया। रियासत के अधिकांश ज़ेवर और जवाहरात श्रीरंगपट्टन के एक धनाढ्य साहूकार के घर में गिरवी पड़े हुए थे। साहूकार ने कई मौकों पर रियासत को बड़ी-बड़ी रकमें क़र्ज दी थीं। रियासत से उसने बेहद धन कमाया था। अपने धन के लिए वह दूर-दूर तक मशहूर था। कहा जाता है कि उसके बच्चों के पालने ठोस सोने के बने हुए थे और ठोस सोने ही की जंजीरों से लटके रहते थे। हैदरअली ने आज्ञा दी कि उसका क़र्ज़ चुका दिया जाए और रियासत का सामान उसके यहां से ले लिया जाए। हिसाब की जांच-पड़ताल के लिए पंच मुकर्रर किए गए। पंचों की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि साहूकार के हिसाब में काफ़ी बेईमानी और जालसाज़ी है। पंचों ही ने फैसला किया कि उस बेईमान साहूकार की तमाम सम्पत्ति जब्त कर ली जाए और उसे आजन्म क़ैद रखा जाए। हैदरअली ने उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली, किन्तु उसे क़ैद करने के बजाए उसके गुज़ारे के लिए एक पेन्शन नियत कर दी और उसके बेटों को रियासत के अन्दर अच्छे अच्छे ओहदों पर नियुक्त कर दिया। मालगुज़ारी की वसूली और राज के खर्च का हैदरअली ने बहुत सुन्दर प्रबन्ध कर दिया।

जिस तरह मैसूर का राजा दिल्ली सम्राट के मातहत था, उसी तरह मैसूर के मातहत अनेक छोटे-छोटे सामन्त राजा थे। मैसूर के अनेक सामन्त उस समय मैसूर के खिलाफ़ बग़ावत कर रहे थे। इनमें से अनेक के बीच आपसी लड़ाइयां जारी थीं। इन सामन्तों या प्रान्तीय शासकों को अधिकतर 'पालीगार' कहा जाता था। हैदर ने सेना भेज कर इन सब पालीगारों को वश में किया और सारे राज्य में शान्ति और सुशासन क़ायम किया।

इन बाग़ी सामन्तों में मुख्य बेदनूर का राजा था। लिखा है कि राजधानी बेदनूर की आधी आबादी उस समय ईसाई थी। बेदनूर के राजा और उसकी विधवा माता में कुछ झगड़ा हुआ। राजा ने हैदरअली से मदद चाही। बेदनूर की प्रजा भी राजा के पक्ष में थी। हैदरअली ने राजा का पक्ष लेकर बेदनूर पर चढ़ाई की। रानी ने बड़ी वीरता के साथ अपने दुर्ग की रक्षा की। अन्त में रानी की सेना हार गई। हैदरअली ने एक बार रानी और उसके बेटे में सुलह करवा दी और बेटे के राजतिलक का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद भी रानी ने बेटे के साथ गुप्त साजिश करके हैदरअली को मरवा डालने का प्रबन्ध किया। हैदरअली पर भेद खुल गया। तहकीक़ात के बाद रानी और उसके पुत्र दोनों को उसने क़ैद कर लिया और उनकी जगह अपने एक आदमी, राजाराम को बेदनूर का शासक नियुक्त कर दिया। बेदनूर की रियासत इतनी धनाढय थी कि क़िले के अन्दर हैदरअली को करीब बारह करोड़ रुपये का माल—सोना, चांदी और जवाहरात मिले। हैदरअली ने इस धन से

अपने तमाम सिपाहियों को छः-छः महिने का वेतन इनाम में दिया, गरीबों और साधुओं में भोजन, वस्त्र, धन, बंटवाया और बेदनूर का नाम बदल कर हैदरनगर रख दिया।

इसके बाद और भी नए-नए प्रान्तों को विजय कर हैदरअली ने मैसूर राज्य की सीमा को बढ़ाया और वहां के शासन को सुदृढ़ और व्यवस्थित रूप दिया।

मराठे भी चारों ओर अपना साम्राज्य बढ़ाने के प्रयत्नों में लगे हुए थे। चार बार उन्होंने मैसूर पर हमला किया किन्तु इन हमलों से मराठों को कोई खास लाभ नहीं हो सका। हैदरअली का बल कुछ कम न था। वह कभी लड़ कर और कभी थोड़ा-बहुत ज़र-ज़मीन देकर मराठों से छुटकारा पाता रहा। अन्त में जो थोड़ा-बहुत इलाका मराठों ने इस तरह हैदरअली का ले लिया था, वह भी उन्हें वापस लौटा देना पड़ा और दोनों को अपने-अपने हित के लिए एक-दूसरे के साथ सन्धि करनी पड़ी।

अंगरेज़ों के साथ पहली लड़ाई

किसी भी स्वाधीन भारतीय नरेश के इस प्रकार बढ़ते हुए बल को उन दिनों अंगरेज गवारा न कर सकते थे। वे तरह-तरह से हैदरअली को कुचलने की तदबीरें करने लगे। हैदरअली के साथ उनका पहला युद्ध सन् 1767 में हुआ। छेड़छाड़ अंगरेज़ों की ओर से हुई। अंगरेज़ों ने बिना वजह उस साल हैदर के बारामहल के इलाके पर हमला कर दिया। कर्नाटक के नवाब मोहम्मदअली के साथ हैदरअली की इससे पहले खासी मित्रता थी। अंगरेज़ों ने कर्नाटक के नवाब को यह कह कर हैदरअली के खिलाफ़ फोड़ा कि बारामहल का इलाका हैदरअली से जीत कर उसे दे दिया जाएगा।

अंगरेज़ों का मुकाबला करने के लिए हैदरअली ने अब निज़ाम के साथ सन्धि की। तय हो गया कि निज़ाम और हैदरअली, दोनों की सेनाएं मिल कर कर्नाटक और अंगरेज़ी इलाके पर हमला करें और नवाब मोहम्मदअली को दण्ड देने के लिए उसे कर्नाटक की गद्दी से हटा कर हैदरअली के बेटे टीपू को उसकी जगह बैठा दें। करीब पचास हज़ार सेना निज़ाम की ओर से वज़ीर रुकनुद्दौला के अधीन हैदरअली की मदद के लिए आई। इतनी ही सेना जनरल स्मिथ के अधीन मद्रास से बढ़ी। इतने में, जबकि अभी अंगरेज़ों और हैदरअली में पत्र-व्यवहार हो ही रहा था, जनरल स्मिथ ने हैदर के वनियमवाड़ी, कावेरीपट्टम इत्यादि कुछ सरहदी किले अपने अधीन कर लिए। हैदरअली के पास कुल सेना इस समय दो लाख के करीब थी। इसमें से पचास हज़ार सेना लेकर वह जनरल स्मिथ के मुकाबले के लिए बढ़ा। रुकनुद्दौला की सेना भी हैदरअली की सेना के साथ-साथ थी। इस बीच अंगरेज़ों ने निज़ाम और रुकनुद्दौला के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया। कई जगह ऐन मौके पर रुकनुद्दौला के व्यवहार से दगा का शक होने लगा। हैदरअली के साथ अंगरेज़ों की कई छोटी-बड़ी लड़ाइयां हुईं, जिनमें विजय कहीं अंगरेज़ों की रही और कहीं हैदरअली की। हैदरअली के मज़बूत क़िलों पर अंगरेज़ कोई विशेष असर न डाल सके। फिर भी हैदरअली का बहुत-सा इलाका अंगरेज़ों के हाथों में गया। अरकाट का नवाब अंगरेज़ों से मिल चुका था और निज़ाम भी हैदरअली को धोखा देता हुआ मालूम होता था। दूसरे, उन दिनों मराठों के हमले का हैदरअली को बराबर डर लगा रहता था। तीसरे, स्वयं मैसूर में उसका शासन अभी हाल ही का जमा हुआ था और वह बहुत दिनों तक राजधानी से दूर न रह सकता था। इन सब बातों से मजबूर होकर सितम्बर सन् 1768 में हैदरअली ने अंगरेज़ों से सुलह की बातचीत शुरू की।

अंगरेज़ों को इससे विश्वास हो गया कि हैदरअली की हालत कमजोर है और हम आसानी से उसके सारे इलाके को फ़तह कर लेंगे। उन्होंने अपमान के साथ हैदरअली के दूत को अपने यहां से लौटा दिया। किन्तु हैदर कायर न था, उसने अब ज़ोरों के साथ युद्ध की तैयारी शुरू की। नवम्बर सन् 1768 में अंगरेज़ों को मैसूर राज्य से बाहर निकालने के लिए उसने अपने एक सेनापति फ़ज़लल्लाह खां को सेना सहित रवाना किया। इसके बाद हैदर खुद सेना लेकर आगे बढ़ा।

हैदरअली की विजय और शत्रु के साथ उनकी उदारता

सबसे पहले उसने अपने उन किलों पर फिर से एक-एक कर विजय करना शरू किया, जिन पर अंगरेज़ी सेना ने कब्ज़ा कर लिया था। इनमें कावेरीपट्टम का किला मुख्य था। हैदर-अली ने उसका मोहासरा शुरू किया। अंगरेज़ों ने अपनी तोपों से किले की रक्षा का पूरा प्रबंध कर रखा था। हैदरअली की तोपों ने क़िले के बाहर से गोलाबारी शुरू की। करीब तीन घंटे की गोलाबारी के बाद अंगरेज़ी सेना को फ़सील छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। अंगरेज़ सेना-पति ने विवश होकर सुलह का सफेद झंडा दिखलाया। हैदर ने लड़ाई बन्द कर दी और क़िले पर कब्ज़ा कर लिया। क़िले के भीतर के तमाम अंगरेज़ सिपाहियों की हैदर ने जान बख्श दी और उन्हें इस बात की इजाज़त दे दी कि वे लोग अपने हथियार रख कर मद्रास लौट जाएं। कम्पनी के देशी सिपाहियों को उसने मौका दिया कि वे लोग चाहे अपने घर लौट जाएं और चाहे मैसूर की सेना में भर्ती हो जाएं। ये हिन्दोस्तानी सिपाही क़रीब-क़रीब सब हैदरअली की सेना में आकर भर्ती हो गए। हैदरअली ने इस बात का भी हुक्म दे दिया कि कम्पनी का हर अफ़सर और सिपाही, सिवाय हथियारों, गोले-बारूद, घोड़ों और उस तमाम माल के, जो इंगलिस्तान के बादशाह या अंगरेज़ कम्पनी या नवाब मोहम्मदअली का है, बाक़ी सब निजी सम्पत्ति अपने साथ ले जा सकता है। क़िले के पराजित अंगरेज़ सेनापति ने जब हैदरअली से निवेदन किया कि रसद इत्यादि का बहुत-सा सामान उसने अपने निजी रुपये से ख़रीदा था, तो उदार हैदरअली ने उसे अपने खज़ाने से उस तमाम माल का दाम तक दिलवा दिया।

अंगरेज़ों के व्यवहार के साथ तुलना

एक ओर हैदरअली का व्यवहार पराजित शत्रु के साथ इतना उदार था, दूसरी ओर अंगरेज़ों ने इसी युद्ध में हैदरअली के एक छोटे-से क़िले, धर्मपुरी पर कब्ज़ा करते हुए, उस समय जबकि सुलह का सफेद झंडा फ़सील पर गढ़ा हुआ था, क़िले में घुस कर वहां के क़िलेदार, उसके बाल-बच्चों और एक-एक सिपाही को, जो हथियार डाल चुके थे, कत्ल कर दिया, और यह सब अंगरेज़ सेनापति की आज्ञा से किया गया।

कावेरीपट्टम के बाद हैदरअली ने अपने बाक़ी किलों को भी एक-एक करके अंगरेज़ों से विजय किया। इन तमाम लड़ाइयों और मोहासरों का बयान करना यहां पर अनावश्यक है। इन लड़ाइयों में जनरल स्मिथ की सेना को काफ़ी ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा। जगह-जगह उसे अपना माल असबाब पीछे छोड़ देना पड़ा, अपनी तोपें और गोला-बारूद तालाबों और नदियों में फेंक देना पड़ा और कहीं-कहीं अपने मुर्दों तक को बिना दफनाए मैदान में छोड़ कर भागना पड़ा। किन्तु अपनी तमाम लड़ाइयों में हैदर का यह एक नियम था कि वह आगे बढ़ने से पहले शत्रु के मुर्दों को जमा करके ठीक विधि के अनुसार दफना दिया करता था और तब आगे बढ़ता था।

टीपू का मद्रास पर हमला

हैदर के बड़े बेटे फ़तहअली टीपू की आयु इस समय 18 वर्ष की थी। टीपू अपने बाप के साथ मैदान में मौजूद था। हैदर स्वयं जनरल स्मिथ को अपनी सरहद से बाहर निकालने के लिए पीछे रहा और टीपू को उसने पांच हज़ार सवार देकर एक दूसरे रास्ते मद्रास की ओर भेजा। टीपू अपनी सेना सहित इस तेजी के साथ आगे बढ़ा कि मद्रास का गवर्नर और उसकी कौन्सिल टीपू को अचानक मद्रास के सामने देख कर घबरा गए। लिखा है कि जिस दिन प्रातःकाल टीपू के सवार मद्रास के पास पहुंचे, गवर्नर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर और नवाब मोहम्मदअली मद्रास के क़िले से कुछ दूर कम्पनी के एक बग़ीचे में हवा खा रहे थे और दरख्तों के नीचे खाना सजा हुआ था। इन लोगों को इस तेज़ी से भागना पड़ा कि घबराहट में गवर्नर की तलवार और उसकी टोपी तक रह गई। सौभाग्यवश एक छोटा-सा जहाज उस समय सामने था। गवर्नर और उसके अंगरेज़ साथियों ने भाग कर इस जहाज में पनाह ली। एक यूरोपियन इतिहास-लेखक लिखता है कि यदि वह जहाज़ मौके पर न होता तो गवर्नर और उसके साथियों को टीपू के सवारों ने अवश्य कैद कर लिया होता*। नवाब मोहम्मदअली अपने तेज़ घोड़े पर सवार होकर सड़क के रास्ते मद्रास से भाग निकला।

टीपू ने मद्रास के किले से पांच मील दूर सेण्ट टामस की पहाड़ी पर कब्ज़ा कर लिया और आस-पास के अंगरेज़ी इलाके को अपने अधीन कर लिया।

हैदरअली के साथ निज़ाम का विश्वासघात

इस बीच त्रिनमल्ली नामक स्थान पर हैदरअली और जनरल स्मिथ का मुक़ाबला हुआ। निज़ाम की सेना अभी तक हैदर की सेना के साथ-साथ थी, किन्तु निज़ाम और अंगरेज़ों में गुप्त बातचीत हो चुकी थी। ऐन इस मौक़े पर अंगरेज़ सेना पर हमला करने के बहाने निज़ाम ने अपनी तमाम सेना को हैदर और अंगरेज़ों की सेना के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। थोड़ी ही देर बाद निज़ाम ने अपनी सेना को इस बुरी तरह पीछे की ओर भगाया कि हैदर की तमाम सेना में खलबली मच गई। हैदरअली को अब बुरी तरह निज़ाम के विश्वास-घात का पता चल गया। उसे मजबूर होकर अपनी सेना कुछ पीछे हटा लेनी पड़ी। फिर भी हैदर के एक सिपाही को भी गिरफ्तार करने का अंगरेज़ों को मौका न मिल सका और न जनरल स्मिथ को आगे बढ़ कर हैदर पर हमला करने का साहस हुआ।

हैदर के इस तरह पीछे हटने को उसकी पराजय बता कर अंगरेज़ों ने खूब बढ़ा कर इस खबर को दूर-दूर तक फैला दिया।

हैदरअली की मां

यहां पर युद्ध ने प्रसंग से हट कर हम हैदरअली और उसकी बूढ़ी मां के सम्बन्ध की एक घटना बयान करना चाहते हैं। हैदर की मां उस समय लड़ाई के मैदान के करीब दो सौ मील दूर हैदरनगर के महल में थी। बेटे की इस पराजय की झूठी खबर उसके कानों तक पहुंची। वह फौरन पालकी में बैठ कर अपने बेटे को हिम्मत दिलाने के लिए हैदरनगर से चल पड़ी। बरसात के दिन, उस ज़माने की यात्रा के कष्ट और उस पर लड़ाई का मैदान !

**History of Hyder Shah*, By M. M. D. L. T., p. 192.

फिर भी रात-दिन चल कर बूढ़ी मां चन्द रोज़ के अन्दर ही अपने बेटे की सेना के निकट आ पहुंची। खबर पाते ही हैदर अपने छोटे बेटों सहित स्वागत के लिए आगे बढ़ा। मां के साथ क़रीब एक हज़ार सिपाही, घोड़ों और ऊंटों पर, इनके अलावा पालकी के आगे-आगे दो सौ स्त्रियां बुरक़े पहने हुए घोड़ों पर सवार थीं। कहा जाता है कि मां के खेमें में उतरते ही हैदर ने हैरान होकर पूछा--"आप इतना कष्ट उठा कर इस समय यहां कैसे आईं?" बूढ़ी मां ने उत्तर दिया--"बेटा, मैं यह देखना चाहती थी कि तुम अपनी पराजय को कितने धैर्य के साथ सह सकते हो।" हैदर ने जवाब में अपनी हिम्मत दिखलाते हुए मां को विश्वास दिलाया कि वह पराजय कोई पराजय ही न थी। इस पर मां ने उत्तर दिया--"खूब, बहुत खूब, अगर यही बात है तो खुदा का शुक्र है और मैं फ़ौरन लौट जाऊंगी, ताकि मेरे रहने से काम में रुकावट न पड़े।" अपने पहुंचने के ठीक तीसरे रोज़ हैदर की बूढ़ी मां बेटे को दुआ देकर हैदरनगर की ओर लौट गई। निस्संदेह, इस तरह की वीर माता ही हैदर जैसे वीर पुत्र को जन्म दे सकती थी।

टीपू के साथ छल

टीपू मद्रास के क़िले से केवल एक कोस की दूरी पर था। उस समय के उल्लेखों से ज़ाहिर है कि टीपू के लिए उस समय मद्रास विजय कर सकना कुछ भी मुश्किल न था। जनरल स्मिथ ने त्रिनमल्ली की विजय के बाद टीपू को पीछे हटाने की एक खासी सुन्दर चाल चली। उसने एक सांडनीसवार फौरन मद्रास की ओर भेजा। इस सवार ने टीपू की सेना में पहुंच कर यह ज़ाहिर किया कि मुझे सुलतान हैदरअली ने अपने बेटे की खबर लेने के लिए भेजा है। टीपू को उसने त्रिनमल्ली की पराजय की खबर दी और कहा कि सुलतान का हुक्म है कि आप फौरन लौटकर सुलतान से जा मिलें। इस छल के बाद इसी दूत ने टीपू की सेना से निकल कर आगे बढ़ कर मद्रास के अंगरेज़ों को विजय की सूचना दी, जिसकी झूठी खुशी में एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले से छोड़ी गईं।

नातजुर्बेकार टीपू ने धोखे में आकर अपने सेनापतियों से सलाह की। सब की सलाह यही हुई कि इस हालत में मद्रास के क़िले का मोहासरा करना ठीक नहीं। टीपू अपनी सेना सहित पीछे लौट कर पिता से आ मिला।

वनियमवाड़ी में हैदर की विजय

मां के जाने के दूसरे दिन हैदरअली वनियमवाड़ी के क़िले की ओर बढ़ा। वनियमवाड़ी का क़िला भी एक निहायत मज़बूत किला था, किन्तु हैदर की चन्द घंटे की गोलाबारी ने किले की अंगरेज़ी तोपों को ठण्डा कर दिया। क़िले के अंगरेज़ अफ़सर ने सफेद झण्डा गाड़ दिया। हैदर की सेना ने क़िले पर क़ब्जा कर लिया। हैदर ने क़िले के तमाम अंगरेज़ अफ़सरों और सिपाहियों को उनसे यह वादा करा कर छोड़ दिया कि हम लोग कम-से-कम एक साल तक किसी लड़ाई में आपके खिलाफ़ न लड़ेंगे।

पीरज़ादा खाकीशाह

इस किले की रक्षा का उचित प्रबन्ध करके हैदरअली आम्बूर की ओर बढ़ा। आम्बूर के मोहासरे में हैदरअली का एक प्रसिद्ध मित्र, पीरज़ादा ख़ाकीशाह, घायल हो कर मर गया।

यह पीरज़ादा एक मुसलमान फ़क़ीर था, जो अकसर हैदर की सेना के साथ रहा करता था। उसका खास काम यह था कि वह हर विजय के बाद यह देखने के लिए घर-घर घूमता फिरता था कि हैदर के सिपाही सिवाय नकदी और अस्त्र-शस्त्र लेने के, प्रजा के साथ किसी तरह का अत्याचार न करें। इस सराहनीय प्रयत्न में ही पीरज़ादा ख़ाकीशाह की जान गई। क़िले के अन्दर की अंगरेज़ी सेना ने अपने कारतूस एक तालाब के अन्दर फेंक दिए और शस्त्रागार को आग लगा दी। फिर भी हैदर को इस क़िले के अन्दर अंगरेज़ों की 18 पीतल की तोपें, तीन हज़ार बन्दूकें और बहुत-कुछ गोला-बारूद और रसद का सामान मिला।

विश्वासघात के पक्ष में ईसाई पादरियों का फ़तवा

जनरल स्मिथ की सेना अब हार-पर-हार खाकर पीछे हटती जा रही थी। उसकी सहायता के लिए कर्नल वुड एक नई सेना सहित बंगाल से रवाना किया गया। इसी समय के निकट अंगरेज़ों ने हैदर की सेना में विश्वासघात के बीज बोने का एक खासा षड्यन्त्र रचा। अनेक यूरोपियन उस ज़माने में यूरोप से आकर अनेक हिन्दोस्तानी नरेशों की फौजों में नौकरियां कर लेते थे। हैदर की सेना में भी अनेक यूरोपियन कई ऊंचे पदों पर नियुक्त थे। कई कम्पनियां फ्रांन्सीसी सिपाहियों की भी उसकी सेना में शामिल थीं। अंगरेज़ों ने ईसाई पादरियों के ज़रिए हैदर के इन तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को फोड़ने की कोशिश की। इस षड्यन्त्र की कुछ भनक हैदर के कानों तक पहुंच गई। उसने अपने तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को जमा करके उनकी तनख्वाहें दिलवा दीं और उनसे कह दिया कि तुम लोग अगर चाहो तो नौकरी छोड़ कर जा सकते हो। किन्तु उन सब ने 'इंजील और सलीब हाथ में लेकर' हैदर की वफ़ादारी की क़सम खाई। वे फिर से नौकर रख लिए गए। अंगरेज़ों के जासूस अब फिर इन लोगों के पास पहुंचे, तब अधिकांश यूरोपियन सिपाहियों ने यह एतराज किया कि हम 'इंजील और सलीब हाथ में लेकर' सुलतान की वफ़ादारी की क़सम खा चुके हैं। इस पर अंगरेज़ों ने यूरोपियन ईसाई पादरियों के दस्तखत से एक फ़तवा लिख कर उसकी नक़लें हैदर के यूरोपियन नौकरों में बंटवा दीं, जिसमें लिखा था कि—"जो क़समें इंजील और सलीब लेकर भी मुसलमानों के सामने खाई जाएं, ईसाई उनके पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं।" एक फ्रांन्सीसी लेखक, जो उस समय हैदर की सेना में मौजूद था, लिखता है कि इस षड्यन्त्र को सफल करने के लिए अंगरेज़ों ने गुप्त हत्या और जालसाज़ी से भी काम लिया। अंगरेज़ी जासूसों के पास हैदर के फ्रान्सीसी सिपाहियों को फ़ोड़ने के लिए इस समय पुद्दुचरी के फ्रान्सीसी गवर्नर का एक जाली खत भी मौजूद था। इस पर भी हैदर के यूरोपियन मुलाज़िमों में से, जिनमें अधिकांश फ्रान्सीसी थे, बहुत कम ने हैदर के साथ विश्वासघात किया। जिन यूरोपियन पादरियों ने ऊपर फ़तवे पर दस्तखत किए, उनमें से अनेक हैदर की प्रजा थे और हैदर ने उनको अनेक रियायतें दे रखी थीं।

इस समय तक, यानी सन् 1768 के अन्त से पहले-पहले हैदर ने अपना यह तमाम इलाक़ा जो थोड़े दिनों के लिए अंगरेज़ों के हाथों में चला गया था, फिर से विजय कर लिया।

किन्तु जिस समय हैदर अपनी तमाम सेना सहित मैसूर राज की पूर्वी सरहद पर था, अंगरेज़ों ने एक नई सेना पीछे की ओर से हैदरअली के पश्चिमी इलाके मंगलौर पर हमला करने के लिए भेज दी। इस सेना ने हैदरअली की ग़ैरमौजूदगी में एक बार आसानी से मंगलौर पर क़ब्ज़ा कर लिया। मंगलौर-विजय की खुशी में फिर एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले

से छोड़ी गई। हैदरअली को अब दो ओर अंगरेज़ों का मुक़ाबला करना पड़ा। सामने की ओर जनरल स्मिथ और कर्नल वुड की सेनाएं और पीछे की ओर बम्बई की सेना।

मंगलौर के पतन की खबर पाते ही हैदर ने अपने बेटे टीपू को तीन हज़ार सवार देकर मंगलौर की ओर भेजा। टीपू के पीछ-पीछे हैदर खुद थोड़ी-सी सेना लेकर मंगलौर की ओर रवाना हुआ। बाक़ी सेना उसने अपने सम्बन्धी मखदूम के अधीन स्मिथ और वुड के मुकाबले के लिए पूर्वी सरहद पर छोड़ दी।

जनरल स्मिथ की चाल और उसका जवाब

जनरल स्मिथ और कर्नल वुड ने हैदर की ग़ैरहाज़िरी से पूरा लाभ उठाया। जनरल स्मिथ ने एक छोटा-सा क़िला इस समय एक बड़ी सुन्दर चाल द्वारा मखदूम के आदमियों से ले लिया। स्मिथ ने अपने एक हरकारे को मख़दूम के हरकारों की-सी पोशाक पहनाई। उसके हाथ मखदूम का एक जाली पत्र क़िलेदार के पास भेजा, जिसमें लिखा था कि—"अंगरेज़ी सेना तुम्हारे क़िले पर हमला करने वाली है, इसलिए तुम्हारी मदद के लिए पांच सौ सिपाही आज शाम को भेजे जाएंगे, क़िले का फाटक खुला रखना।" चाल काम कर गई और उसी दिन शाम को कम्पनी के, वर्दी बदले हुए सिपाहियों ने जाकर क़िले पर क़ब्जा कर लिया। मखदूम को जब यह बात मालूम हुई तो उसने बदला लेने का इरादा किया। चन्द रोज़ के अन्दर ही उसने अपने कुछ सवारों को अंगरेज़ी वर्दियां पहना कर क़िले के सामने भेजा। इन सवारों में से एक ने, जो इत्तफाक से अंगरेज़ी सेना का भागा हुआ एक अंगरेज़ सिपाही था, आगे बढ़ कर क़िले के अंगरेज़ अफिसर से चिल्ला कर कहा —"हैदर की सेना हम लोगों का पीछा कर रही है। मेरी सेना के कमाण्डर की प्रार्थना है कि आप फाटक खोल दीजिए, ताकि हम सब लोग भीतर आ जाएं।" यह चाल भी चल गई और मखदूम की सेना ने फिर से क़िले के ऊपर क़ब्जा कर लिया।

स्मिथ और वुड, दोनों की सेनाएं मिलकर अब हैदर की ग़ैरहाज़िरी में बंगलौर विजय करने के इरादे से आगे बढ़ीं। राजधानी श्रीरंगपट्टन के बाद पूर्व में बंगलौर और पश्चिम में मंगलौर ही मैसूर राज के प्रधान नगर थे।

मंगलौर में टीपू की शानदार विजय

उधर मंगलौर की प्रजा ने टीपू का बड़े उल्लास के साथ स्वागत किया। बम्बई की अंगरेज़ी सेना और टीपू की सेना में एक भयंकर लड़ाई हुई, जिसमें टीपू ने पूरी विजय प्राप्त की। अंगरेज़ सेनापति, 46 अंगरेज़ अफसरों, 680 अंगरेज़ सिपाहियों और 6,000 से ऊपर कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों को टीपू ने इस लड़ाई में कैद कर लिया और उनके तमाम अस्त्र-शस्त्र और सामान ज़ब्त कर लिया। मंगलौर की यह लड़ाई वास्तव में अंगरेज़ों और हैदर, दोनों के लिए बड़े मार्के की लड़ाई थी। केवल तीन दिन तक अंगरेज़ी सेना के क़ब्ज़े में रहने के बाद मंगलौर का क़िला और नगर टीपू के हाथों में आ गया। नौजवान बेटे की इस शानदार विजय के एक दिन बाद हैदरअली सेना सहित मंगलौर पहुंचा। फ़तह की खबर सुनते ही सुलतान हैदर ने टीपू को छाती से लगा लिया और मारे खुशी के उसकी आंखों में आंसू आ गए।

ब्राह्मण ईसाई

मंगलौर में पुर्तगाली ईसाइयों के तीन गिरजे थे । ये यूरोपियन पादरी उस समय की प्रथा के अनुसार अपने को 'ब्राह्मण ईसाई' कहा करते थे । ब्राह्मणों के-से कपड़े पहनते थे, गले में जनेऊ डालते थे, निरामिष भोजन करते थे, खड़ाऊ पहनते थे और सब आचार-विचार ब्राह्मणों का-सा रखते थे । इस चाल से उन्हें हिन्दू जनता को ईसाई बनाने में आसानी होती थी । ये लोग हैदर की प्रजा थे । हैदर ने इनको अनेक रिआयतें दे रखी थीं, फिर भी अंगरेज़ों के मंगलौर पर हमला करते समय इन तीनों गिरजों के यूरोपियन पादरियों ने हैदर के खिलाफ़ उसके शत्रुओं को मदद की । हैदर को जब इसका पता लगा तो उसने उनका माल-असबाब ज़ब्त कर लिया और उन्हें उस समय तक के लिए क़ैद कर दिया, जब तक कि हैदर और अंगरेज़ों में सुलह न हो गई ।

हैदरअली मद्रास के फाटक पर

मंगलौर की विजय के बाद हैदर वहां की हिफ़ाज़त का उचित प्रबन्ध कर स्वयं टीपू तथा सेना सहित बंगलौर की रक्षा से लिए पीछे लौट आया । इस बार हैदर ने अपनी सेना के तीन हिस्से किए और वह तीन रास्तों से आगे बढ़ा । जनरल स्मिथ के लिए बंगलौर विजय करने का इरादा स्वप्नमात्र साबित हुआ । हैदर की सेना के लौटते ही जनरल स्मिथ और कर्नल वुड की सेना को बुरी तरह हैदर की सेना के आगे भागना पड़ा । अपने तमाम इलाके से अंगरेज़ी सेना को फिर एक बार बाहर निकाल देने के बाद हैदर की तीनों सेनाएं अब अंग-रेज़ों और नवाब कर्नाटक के इलाक़ों में बढ़ती चली गईं । हैदरअली की सेना के मुकाबले में कम्पनी की सेना के कहीं भी पैर न जम सके । नवाब मोहम्मदअली बेहद डर गया । बढ़ते-बढ़ते हैदर की सेना मद्रास के निकट पहुंचने लगी । मद्रास का अंगरेज़ गवर्नर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर घबरा गए ।

मद्रास की कौन्सिल ने अब कप्तान ब्रुक को हैदर के पास सुलह के लिए भेजा । हैदर को मौक़ा मिला कि जो व्यवहार चन्द महीने पहले अंगरेज़ों ने हैदर के दूत के साथ किया था, वही अब हैदर अंगरेज़दूत के साथ करे । हैदर ने कप्तान ब्रुक को उत्तर दिया—

> **"मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूं और गवर्नर और उसकी कौन्सिल को जो कुछ कहना होगा, वहीं आ कर सुनूंगा ।"**

अंगरेज़ों का भयभीत हो जाना

कप्तान ब्रुक निराश होकर मद्रास लौट आया । हैदर ने अपना तमाम भारी सामान और माल-असबाब मैसूर भेज दिया और खुद सेना सहित मद्रास की ओर बढ़ा । हैदर की तमाम सैन्य यात्राएं अत्यन्त आश्चर्यजनक होती थीं । विशाल सेनाओं सहित पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व, सैकड़ों मील की यात्राएं चन्द दिनों के अन्दर तय करना और फिर बिना आराम किए घबराई हुई अंगरेज़ी सेना पर जा टूटना उसके लिए एक मामूली बात थी । इस बार साढ़े-तीन दिन के अन्दर उसने 130 मील का फ़ासला तय किया और एक दिन अचानक मद्रास के क़िले से दस मील की दूरी पर दिखाई दिया । अंगरेज़ भय से कांप उठे । हैदर की सेना और मद्रास के बीचों-बीच सेण्ट टामस की पहाड़ी थी । यह वही जगह थी, जिस पर टीपू एक बार क़ब्ज़ा कर चुका था । अंगरेज़ों ने अब बड़ी फुर्ती के साथ इस पहाड़ी की रक्षा का इन्तजाम किया और वहां पर अपनी सेना जमा की, ताकि हैदर आसानी से

मद्रास तक न पहुंचने पाए । किन्तु अंगरेज़ी सेना अभी सेण्ट टामस पर जमने भी न पाई थी कि हैदर अपनी विशाल सेना सहित दूर का चक्कर देकर मद्रास क़िले के दूसरी ओर के फाटक पर आ पहुंचा । अंगरेज़ी सेना क़िले के दूसरी ओर फ़सील से दो-तीन मील के फ़ासले पर थी। अंगरेज़ों के भय की उस समय कोई सीमा न थी । हैदर यदि चाहता तो उसी दम बड़ी आसानी से मद्रास पर क़ब्ज़ा कर सकता था और कम-से-कम दक्षिण भारत से अंगरेज़ों के रहे-सहे प्रभाव का खात्मा कर सकता था । किन्तु उसने कप्तान ब्रुक के साथ वादा कर लिया था कि मद्रास के फाटक पर आकर मैं सुलह की बातचीत सुन लूंगा । पूर्वीय मर्यादा के अनुसार उसने अपने वचन का पालन किया । उसने मद्रास के अंगरेज़ गवर्नर को अपने पहुंचने की सूचना दी । गवर्नर ने तुरन्त डूप्रे और बौशियार, दो अंगरेज़ अफ़सरों को सुलतान हैदरअली से सुलह करने के लिए भेजा । इन दोनों अंगरेज़ों में डूप्रे आइन्दा के लिए मद्रास का गवर्नर नियुक्त हो चुका था और बौशियार उस समय के गवर्नर का सगा भाई था ।

हैदर ने बड़े आदर के साथ अंगरेज़ दूतों का स्वागत किया और उनकी प्रार्थना के अनुसार सेण्ट टामस की पहाड़ी पर अपना खेमा लगवाया । सुलह की शर्तें लिखी जाने लगीं । हैदरअली की उस समय की स्थिति को बयान करते हुए अंगरेज़ इतिहास-लेखक कर्नल मालेसन लिखता है :

> **"वास्तव में हैदर उस समय सारी स्थिति पर हावी था । मद्रास का देशी नगर और अंगरेज़ों के मकान, सब उसकी दया पर थे । उसके आने से सब के ऊपर इतना आतंक छा गया था कि मद्रास का क़िला भी उसके हाथों में आ जाता । उसकी स्थिति इस समय ऐसी थी कि वह जो शर्तें चाहता, अंगरेज़ों से मंज़ूर करा सकता था और वास्तव में उसने ऐसा किया भी ।"***

सीरा के सूबेदार और बादशाह तृतीय जार्ज में सन्धि

15 अप्रैल, 1769 को अंगरेज़ों, सुलतान हैदरअली और अरकाट के नवाब मोहम्मदअली के दरमियान दो अलग-अलग सुलहनामे लिखे गये और हर सुलहनामे पर तीनों के दस्तखत हुए ।

अब तक की सन्धियां ईस्ट इंडिया कम्पनी और भारतीय नरेशों के बीच हुआ करती थीं । हैदरअली ने कम्पनी के किसी तरह के राजनैतिक अस्तित्व ही को स्वीकार करने से इन्कार किया । इसलिए इनमें पहला सुलहनामा इंगलिस्तान के बादशाह के नाम से, जिस तरह हैदर ने चाहा, उस तरह लिखा गया । इस सन्धि में तय हुआ कि इंगलिस्तान के बादशाह जार्ज तृतीय और सीरा प्रान्त के सूबेदार, हैदरअली खां और इन दोनों की प्रजा के बीच सदा अमन और मित्रता क़ायम रहेगी, इत्यादि । हैदरअली का जो कुछ इलाक़ा युद्ध के शुरू में अंगरेज़ों ने ले लिया और जिसे हैदरअली फिर से विजय कर चुका था, वह सब हैदरअली के पास रहा और अंगरेज़ों का जो कुछ इलाक़ा हाल में हैदरअली ने जीत लिया था, वह उसने अंगरेज़ों को लौटा दिया । केवल कारूड़ का प्रान्त, जो अंगरेज़ों के दोस्त अरकाट के नवाब

* "Hyder, in fact, was master of the situation. The native town and the private houses of Madras were at his mercy. In the panic which his arrival had caused, the fort itself might have fallen. He was in a position to dictate his own terms, and virtually, he did dictate them."—*The Decisive Battles of India,* by Colonel Malleson, p. 230.

मोहम्मदअली के राज में शामिल था, अंगरेज़ों ने उससे लेकर सदा के लिए हैदरअली को नज़र कर दिया । युद्ध के खर्च और जुर्माने के तौर पर एक बहुत बड़ी रकम अंगरेज़ों ने हैदरअली को भेंट की और यह तय हुआ कि भविष्य में यदि कोई तीसरा हैदरअली पर हमला करेगा तो अंगरेज़ हैदरअली की मदद करेंगे और यदि अंगरेज़ों पर हमला करेगा, तो हैदरअली उनकी मदद करेगा ।

हैदरअली और अरकाट के नवाब में सन्धि

दूसरे सुलहनामे में, जो हैदरअली और मोहम्मदअली के दरमियान था, यह तय हुआ कि मोहम्मदअली अरकाट का नवाब बना रहे ; किन्तु आइन्दा से अरकाट का नवाब मैसूर का सामन्त समझा जाए, छः लाख रुपये सालाना बतौर खिराज़ मैसूर दरबार को अदा किया करे, और पहले साल का ख़िराज पेशगी इसी समय अदा किया जाए ।

दोनों सन्धियों के पालन की जिम्मेदारी अंगरेज़ों ने अपने ऊपर ली और इन सब बातों के अलावा हैदरअली के एक जहाज़ के बदले में, जो उन्होंने युद्ध के शुरू में धोखे से बम्बई में ले लिया था, अंगरेज़ों ने एक नया जंगी जहाज़ पचास तोपों सहित हैदर को भेंट करने का वादा किया ।

इस युद्ध ने साबित कर दिया कि हैदर की वीरता, उसका युद्धकौशल और उसकी उदारता तीनों ही ऊंचे दरजे की थीं और अंगरेज़ किसी तरह भी उसके मुकाबले में न ठहर सकते थे ।

मद्रास क़िले के फाटक पर एक चित्र

दक्षिण भारत में अंगरेज़ों की अब क़ाफ़ी दुर्दशा हो चुकी थी । एक फ्रान्सीसी इतिहास-लेखक लिखता है कि इस विजय के अवसर पर हैदर ने अंगरेज़ों से कह कर मद्रास के सेण्ट जार्ज क़िले के सदर फाटक पर एक चित्र बनवाया, जिसमें हैदर एक शामियानें के नीचे तोपों के ढेर के ऊपर बैठा हुआ है, पीछे की ओर सेण्ट जार्ज का क़िला जिसकी फ़सील पर गवर्नर और उसकी कौन्सिल के सब अंगरेज़ मेम्बर दोजानू बैठे हुए हैदर की ओर अपने हाथ बढ़ा रहे हैं । अंगरेज़ दूत डूप्रे और बौशियार, दोनों हैदर के सामने ज़मीन पर दोज़ानू बैठे हैं । डूप्रे के नाक की जगह हाथी की सी सूंड़ बनी है, हैदर उसकी सूंड़ को पकड़े हुए है और उसमें से अशर्फिया हैदर के सामने खनाखन ज़मीन पर गिर रही हैं । दूसरी ओर पराजित अंगरेज़ सेनापति स्मिथ सन्धिपत्र हाथ में लिए हुए अपने हाथ से अपनी तलवार के दो टुकड़े कर रहा है ।

कम्पनी के हिस्सों की दर का गिरना

इस सन्धि का यहां तक असर हुआ कि इंगलिस्तान में उसकी खबर पहुंचते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर एकदम गिर कर 40 फ़ीसदी रह गई । युद्ध के दिनों में ही जैसे-तैसे हैदर और टीपू की विजयों की खबरें इंगलिस्तान पहुंचती जाती थीं, कम्पनी के हिस्सों की दर गिरती जाती थी । इस पर डाइरेक्टरों ने बार-बार मद्रास के अधिकारियों पर ज़ोर दिया कि हैदर के साथ सुलह कर ली जाए । किन्तु अब सुलह हो जाने पर उन्हीं डाइरेक्टरों ने मद्रास के गवर्नर को लिखा कि जिस तरीके से आपने सन्धि की है उससे—

> **"आपने हिन्दोस्तान में रहनेवाले लोगों के लिए यह समझने की बुनियाद डाल दी है कि वे जब उनका जी चाहे, बेखटके कम्पनी की हतक कर सकते हैं ।"**

दोनों सन्धियों पर कम्पनी की मोहरें लग चुकी थीं, किन्तु इसके बाद से ही अंगरेज़ों ने सन्धि को तोड़ने के मौके ढूंढने शुरू कर दिए ।

मराठों का मैसूर पर हमला और अंग्रेज़ों का सन्धि को तोड़ना

थोड़े दिनों बाद मराठों ने चौथी बार अचानक मैसूर पर हमला किया। हैदर ने संधि की शर्तों के अनुसार अंगरेज़ों से मदद चाही। ऐन मौके पर मद्रास कौन्सिल ने मदद देने से इन्कार कर दिया। मजबूर होकर हैदर ने कुछ धन और अपना कुछ इलाका मराठों को देकर उनसे पीछा छुड़वाया। किन्तु अंगरेज़ों की नीयत का पता चल गया।

इसके बाद हैदर ने कुर्ग के राजा को, जो पहले मैसूर का बाजगुज़ार रह चुका था और अब बाग़ी हो गया था, युद्ध द्वारा फिर से अपने अधीन किया।

हैदर को जो अपना इलाका मराठों को देना पड़ गया था, वह उसकी नज़रों में खटक रहा था। वह पूना दरबार की अवस्था की पूरी खबर रखता था। जब उसे पेशवा नारायण-राव की हत्या और राघोबा और अंगरेज़ों की साज़िशों की खबर मिली, तब उसने इस इलाके को मराठों से वापस लेने के लिए अपने बेटे टीपू को सेना सहित भेजा। टीपू ने वह सारा इलाका फिर मराठों से विजय कर लिया। इसके बाद सन् 1778 में छः साल के लिए मराठों और हैदर में सन्धि हो गई ।

अंगरेज़ों और हैदर के दरमियान जो सन्धि हुई थी, उसका उल्लंघन हैदर पर मराठों के हमले के समय अंगरेज़ कर ही चुके थे । दूसरी सन्धि मोहम्मदअली और हैदर के दरमियान थी। उसके पालन की ज़िम्मेदारी भी अंगरेज़ों ने अपने ऊपर ली थी। किन्तु मोहम्मदअली का अंगरेज़ों के पंजे से निकल कर मैसूर का बाजगुज़ार हो जाना अंगरेज़ों के लिए बहुत बुरा था। इसलिए सन्धि के बाद उन्होंने अपने वादे को पूरा करने की बजाय नवाब मोहम्मदअली को हैदरअली के खिलाफ़ भड़काए रखा। मैसूर की अन्य सामन्त रियासतों को भी उन्होंने अब हैदरअली के खिलाफ़ भड़काना शुरू किया । इनमें एक छोटी-सी रियासत चित्तलद्रुग की थी। अंगरेज़ों ने वहां के राजा को भड़का कर उससे हैदर के खिलाफ़ बग़ावत करवा दी। हैदर ने चित्तलद्रुग पर हमला करके राजा को फिर से अपने अधीन कर लिया। इस लड़ाई में ही हैदर ने अंगरेज़ों की बेवफाई का पूरा परिचय पाकर खुला एलान कर दिया कि मैं अंगरेज़ी इलाके पर हमला करने वाला हूं । उसने फिर एक बार दक्षिण के अन्दर मुगल दरबार के मुख्य नायब निज़ाम से मदद की प्रार्थना की । निज़ाम ने फिर मदद का वादा किया और फिर दूसरी बार ऐन मौके पर हैदर के साथ दगा की ।

हैदर और नाना फड़नवीस में अंगरेज़ों के खिलाफ सन्धि

अब वह समय आया जबकि नाना फड़नवीस ने अंगरेज़ों की चालों और उनसे देश की हानि को अच्छी तरह समझ कर सन् 1780 में अपना एक दूत गणेशराव हैदर के पास मेल करने के लिए भेजा। हैदर को भी अंगरेज़ों के चरित्र का काफ़ी अनुभव हो चुका था। हैदर और नाना फड़नवीस, दोनों में खास समझौता हो गया । चौथ की उस रकम को जो मैसूर दरबार से पेशवा दरबार को मिला करती थी और जिस पर मराठों और हैदर में अनेक बार झगड़े हो चुके थे, आइन्दा के लिए नाना ने बहुत कम कर दिया। हैदर का जो

इलाका पहले मराठों ने ले लिया था और हाल में टीपू ने मराठों से विजय किया था, उसे पेशवा दरबार ने हैदर ही का इलाका स्वीकार कर लिया, और हैदर ने मराठों से वादा किया कि अंगरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकालने में मैं आप लोगों की पूरी मदद करूंगा।

अंगरेज़ों को जब इस सन्धि का पता चला और मालूम हुआ कि हैदर अंगरेज़ी इलाक़े पर फिर से हमला करने की तैयारी कर रहा है, तो उन्होंने मद्रास से एक के बाद एक, दो दूत दोबारा सन्धि करने के लिए हैदर के दरबार में भेजे। किन्तु हैदर अंगरेज़ों को पूरी तरह समझ चुका था, उसने स्वीकार न किया। अंगरेज़ दूत ग्रे की उसने अंगरेज़ों की दग़ाबाजी पर लानत-मलामत की और अपने यहां उसके साथ वह सलूक किया जो एक राजदूत के साथ नहीं बल्कि किसी जासूस के साथ किया जाता है।

हैदरअली का कर्नाटक विजय करना

नवाब मोहम्मदअली अंगरेज़ों के खास मददगारों में से था। अंगरेज़ों के बहकाने से मोहम्मदअली ने हैदरअली के साथ सन्धि का पालन करने से इन्कार कर दिया था। कर्नाटक के मामले में अंगरेज़ बराबर दखल देते रहे थे, जिसकी वजह से कर्नाटक की प्रजा अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट थी। हैदरअली अपनी सेना सहित जुलाई सन् 1780 में सबसे पहले कर्नाटक की ओर बढ़ा। कर्नाटक के क़िलों की रक्षा के लिए जगह-जगह कम्पनी की सेनाएं नियत थीं। ये सब सेनाएं कर्नल कास्बी के अधीन थीं। हैदरअली ने पहले की तरह अपनी सेना के कई हिस्से किए और एक हिस्सा अपने अधीन, दूसरा अपने बड़े बेटे टीपू के, तीसरा टीपू के छोटे भाई करीम साहब के और बाकी छोटे-बड़े दस्ते अन्य योग्य हिन्दू और मुसलमान सेनापतियों के अधीन कर्नाटक के अनेक क़िलों को विजय करने के लिए अलग-अलग दिशाओं में रवाना कर दिए। कर्नाटक की दुखी प्रजा ने बड़े हर्ष के साथ हर जगह हैदर का स्वागत किया। कर्नल कास्बी और नवाब मोहम्मदअली की सेनाओं से जगह-जगह हैदर की लड़ाइयां हुईं, जिनमें अंगरेज़ों को हार-पर-हार खानी पड़ी। नवाब मोहम्मदअली और उसके अंगरेज़ साथी हैदर की बढ़ती हुई बाढ़ को न रोक सके। क़िले-पर-क़िला और इलाके-पर-इलाक़ा हैदर के हाथों में आता चला गया। इसमें एक मुख्य महमूद बन्दर का क़िला था, जिसे अब पोर्टो नोवो कहते हैं। महमूद बन्दर उन दिनों भारत की विदेशी तिजारत का एक जबर्दस्त केन्द्र था, दूर-दूर के व्यापारी वहां पर जमा होते थे और करोड़ों रुपये का माल महमूद बन्दर की मंडियों में भरा रहता था। अंगरेज़ी सेना महमूद बन्दर की रक्षा के लिए मौजूद थी। करीम साहब ने सेना सहित महमूद बन्दर पर हमला करके उसे अंगरेज़ी सेना से विजय किया, क़िले और नगर पर कब्ज़ा कर लिया और वहां से करोड़ों का माल लाकर अपने बाप के सामने पेश किया। इसी तरह की अनेक विजय टीपू और दूसरे सेनापतियों ने की। यहां तक कि स्वयं हैदरअली की सेना बढ़ते-बढ़ते कर्नाटक की राजधानी अरकाट के निकट जा पहुंची और नवाब मोहम्मदअली को भाग कर मद्रास में पनाह लेनी पड़ी।

हैदरअली फिर मद्रास की ओर

10 अगस्त, सन् 1780 को हैदर के कुछ सवार बढ़ते-बढ़ते मद्रास के निकट फिर सेण्ट टामस् की पहाड़ी पर जा पहुंचे। हैदर की मुख्य सेना अभी तक कर्नाटक की राजधानी के आस-पास थी, तब भी मद्रास फिर खतरे में था। दो बड़ी सेनाएं हैदर को परास्त करने

19—220 M of I&B/80

के लिए तैयार की गईं । इनमें पहली जनरल मनरो के अधीन मद्रास से रवाना हुई और दूसरी, करनल बेली के अधीन गुण्टूर से राजधानी अरकाट की ओर चली । इनके अलावा तीन नई सेनाएं, गुण्टूर, पुद्दुचरी और तिरुच्चिरापल्ली में तैयार की गईं ।

पूरिमपाक की लड़ाई

हैदर ने सबसे पहले टीपू को कर्नल बेली के मुकाबले के लिए गुण्टूर की ओर रवाना किया । मार्ग में 10 सितम्बर, सन् 1780 को पूरिमपाक में टीपू और कर्नल बेली की सेनाओं में लड़ाई हुई । जनरल मनरो ने अपना एक दस्ता बेली की सहायता के लिए भेजा । उधर हैदर भी रातों-रात चल कर टीपू की सहायता के लिए आ पहुंचा । मैदान खूब गरम हुआ, टीपू की सेना ने सामने और पीछे, दोनों ओर से अंगरेज़ी सेना पर हमला करके और उनके बीच में घुस कर अंगरेज़ी सेना का संहार शुरू किया । यहां तक कि अंगरेज़ी सेना का तोपखाना बेकार हो गया । अन्त में तोपखाने में आग लग गई और अंगरेज़ी सेना को बुरी तरह हार खानी पड़ी । लिखा है कि इस लड़ाई में कम्पनी के हज़ारों भारतीय सिपाहियों के अलावा सात सौ अंगरेज़ मारे गए और दो हज़ार को, जिनमें स्वयं कर्नल बेली और सर डेविड बेयर्ड--जैसे अफ़सर शामिल थे, हैदर ने गिरफ्तार कर लिया । अंगरेज़ों के लिए पूरिमपाक की हार अत्यन्त अशुभ-सूचक और लज्जाजनक थी । हैदर ने अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टन में दरियादौलत नामक बाग़ की दीवारों पर इस लड़ाई का एक विशाल सुन्दर चित्र खिंचवाया, जो अभी तक मौजूद है ।

अरकाट की विजय

जनरल मनरो इस समय अपनी सेना सहित गंजी स्थान में ठहरा हुआ था । विजयी हैदर ने गुण्टूर की अंगरेज़ी सेना को खतम करके गंजी की ओर रुख किया । हैदर अभी गंजी से कुछ मील दूर ही था कि कर्नल बेली की पराजय का हाल सुन कर और हैदर के सवारों को अपनी ओर बढ़ते हुए देख कर जनरल मनरो का साहस टूट गया । उसे हैदर के मुकाबले की हिम्मत न हो सकी । उसने अपनी तोपें और तमाम भारी सामान गंजी के एक बड़े तालाब में फेंक दिया और स्वयं अपनी सेना सहित पीछे हट कर मद्रास में पनाह ली । हैदर ने पहले गंजी में पड़ाव किया, आस-पास के कुछ क़िलों को फ़तह किया और फिर उस तमाम इलाके के शासन और रक्षा का उचित प्रबन्ध कर, पीछे लौट कर राजधानी का मोहासरा शुरू कर दिया ।

तीन महीने तक अरकाट का मोहासरा जारी रहा । इस मोहासरे में दोनों ओर काफ़ी जानें गईं । हैदर का दामाद सय्यद हाफ़िज़अली खां भी अरकाट ही के मैदान में काम आया । अन्त में हैदरअली की सेना ने अरकाट के क़िले और नगर, दोनों पर कब्ज़ा कर लिया ।

हैदरअली की उदारता

विजय के सवेरे हैदरअली ने अरकाट के बाज़ारों और गलियों में एलान करवा दिया कि नगर-निवासियों के जान-माल पर कोई किसी तरह का हमला न करे, कोई किसी गरीब को किसी तरह का कष्ट न दे और मैसूर की सेना का कोई सिपाही न किसी के धन को हाथ लगाए और न किसी स्त्री की ओर आंख उठा कर देखे ।* अरकाट के बचे हुए अंगरेज़ों को

*Colonel W. Miles' *History of Hyder*, p. 395.

उसने अपनी गारद के साथ हिफ़ाजत से मद्रास भिजवा दिया । अपने एक आदमी, मीर सादिक, को शहर और उसके आस-पास के इलाकों का सूबेदार नियुक्त कर दिया । शहर के अधिकांश कर्मचारियों को अपने-अपने ओहदों पर बहाल रखा और क़िले की मरम्मत तथा रक्षा और नगर के शासन का उचित प्रबन्ध कर दिया ।

हैदर की विजयों की एक विशेषता यह थी कि वह जिन इलाक़ों को फतह करता था वहां के क़िलों की मरम्मत, हिफ़ाजत और शासन का प्रबन्ध करके आगे बढ़ता था । हैदर हर जगह इस बात का खास इन्तज़ाम रखता था कि इसके सिपाही प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार न करें। वह अक्सर विजय के बाद गरीबों, साधुओं और धार्मिक संस्थाओं में धन तक़सीम किया करता था। यही व्यवहार हैदर के अन्य सेनापतियों का होता था ।

हैदरअली और टीपू की सफलताएं

जिन अनेक स्थानों और क़िलों को, अरकाट की विजय से पहले और उसके बाद, हैदर की सेना ने अंगरेज़ी सेना से एक-दूसरे के बाद विजय किया, उन सब का बयान यहां कर सकना नामुमकिन है । हैदर के सेनापति मीर मुइउद्दीन ने इस दिन के मोहासरे के बाद चितोर के क़िले को फ़तह किया और फिर चन्द्रगिरि के क़िले को जीत कर नवाब मोहम्मदअली के भाई, अब्दुलवहाब खां को कैद किया । टीपू ने एक महीने के अन्दर महीमण्डलगढ़, कैलाशगढ़, सातगढ़ इत्यादि अनेक मज़बूत किले फ़तह किए । टीपू हर जगह अपने बाप के समान क़िले की पराजित सेना से हथियार रखवा कर उन्हें आज़ाद छोड़ देता था और प्रजा के जान-माल और उनकी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर देता था।* आम्बूरगढ़ का क़िला टीपू ने वहां के अंगरेज़ क़िलेदार और उसकी सेना से 15 दिन के मोहासरे के बाद विजय किया । इसी प्रकार, हैदर के दूसरे सेनापतियों ने अन्य अनेक क़िलों और इलाकों को विजय किया ।

अंगरेज़ों की घबराहट

गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स कर्नल बेली की सेना के सर्वनाश, जनरल मनरो की भगदड़ और हैदर की अपूर्व विजयों के समाचार सुन-सुन कर घबरा गया । बंगाल में उस समय भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। लिखा है कि प्लासी से उस समय तक, यानी अंगरेज़ी राज के शुरू के बीस साल के अन्दर, बंगाल की आबादी घटते-घटते 90 लाख से 60 लाख रह गई थी।† उस पर भी वारेन हेस्टिंग्स ने इन समाचारों को सुन कर अकाल पीड़ित बंगाल के खज़ाने से 15 लाख रुपये नकद और सर आयर कूट के अधीन एक बहुत बड़ी सेना मय तोपखाने के बंगाल से मद्रास के लिए रवाना की। यह सेना 5 नवम्बर, सन् 1781 को मद्रास पहुंची। मद्रास में नवाब मोहम्मदअली ने सर आयर कूट के सामने अपनी तबाही का रोना रोया। मोहम्मदअली के पास अभी तक धन मौजूद था, नई सेना के खर्च के लिए कूट ने दो लाख पैगोडा यानी करीब सात लाख रुपये मोहम्मदअली से वसूल किए । तीन महीने तक सर आयर कूट मद्रास में रह कर हैदर अली से लड़ने की केवल तैयारी करता रहा। उसके बाद वह अपनी विशाल सेना सहित हैदरअली के मुकाबले के लिए बढ़ा । हैदरअली उस समय मद्रास के नीचे की बन्दरगाहों और क़िलों को फ़तह कर रहा था। दो बार

*Colonel W. Miles' *History of Hyder,* p. 405.

†*History of Hyder,* by M.M.D.L.T., p. 162.

जनरल कूट अपनी विशाल सेना लेकर हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। दोनों बार कई-कई जगह कूट और हैदरअली की सेनाओं में संग्राम हुए। किन्तु दोनों बार जनरल कूट को बेहद नुकसान उठा कर मद्रास लौट आना पड़ा। इस बीच बंगाल से और अधिक सेना कूट की मदद के लिए भेजी गई। अन्त में तीसरी बार जनरल कूट हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। इस बार आरनी की प्रसिद्ध लड़ाई में हार खा कर और लाचार होकर, सितम्बर, सन् 1782 में सर आयर कूट को अपनी जान बचा कर बंगाल लौट जाना पड़ा। इस तमाम समय में हैदरअली की सेना क़िलों-पर-क़िलों और इलाक़ों-पर-इलाक़े विजय करती बढ़ी चली आ रही थी और कहीं पर भी अंगरेज़ी सेना हैदरअली की उमड़ती हुई बाढ़ को न रोक सकी।

इन तमाम लड़ाइयों में दो छोटी-सी, किन्तु मनोरंजक, घटनाएं बयान करने के क़ाबिल हैं।

दो मनोरंजक घटनाएं

पहली घटना तरकाटपल्ली की है। तरकाटपल्ली एक छोटा-सा क़िला था, जिस पर हैदरअली की सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया था। तिरुच्चिरापल्ली से अंगरेज़ों ने अपनी सेना का एक दस्ता इस क़िले पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेजा। अकस्मात उसी दिन रात को तंजोर से एक दूसरा अंगरेज़ी दस्ता उसी किले पर कब्जा करने के लिए रवाना हुआ। ये दोनों अंगरेज़ी दस्ते दो ओर से क़िले की फ़सील पर चढ़ने लगे। दोनों को एक-दूसरे का पता न था। क़िला टीपू के कब्जे में था, किन्तु टीपू उस समय अपनी सेना सहित क़िले से कुछ दूर था। किले के अन्दर बहुत थोड़े-से हिन्दुस्तानी थे। इस अचानक हमले का पता लगते ही वे लोग क़िले के और भीतर के हिस्सों में चले गए। वे शायद टीपू के इन्तजार में थे। रात को अंधेरे में एक ओर से अंगरेज़ी दस्ते ने फ़सील के ऊपर चढ़ कर गोलियां चलाईं। दूसरी ओर के अंगरेज़ी दस्ते ने समझा कि वे गोलियां किले वाले चला रहे हैं उन्होंने जवाब में आवाज़ के निशाने पर गोलियों की बौछार शुरू की। दस मिनट के ऊपर तक दोनों ओर ने गोलाबारी होती रही। एकाएक जब एक ओर के किसी अंगरेज़ की आवाज़ दूसरी ओर के किसी अंगरेज़ के कानों तक पहुंची तो दोनों को मालूम हुआ कि वे आपस में ही गोलियां चला रहे थे। उस समय तक कम्पनी के करीब सात सौ सिपाही अंगरेज़ी गोलियों के शिकार हो चुके थे। अगले दिन सुबह को जब टीपू ने तरकाटपल्ली पहुंच कर इस घटना का हाल सुना, तो उसे बड़ी हंसी आई।

दूसरी घटना मनियारगुडी की है। एक दिन मनियारगुडी के किले की सेना रात को रसद आदि जमा करने के लिए आस-पास के इलाक़े में गई हुई थी। अंगरेज़ी सेना ने मौका पाकर उसी रात को अचानक क़िले पर हमला कर दिया। केवल नायक, बीस सिपाही और कुछ स्त्रियां क़िले में रह गईं थीं। अंगरेज़ी सेना के हमले की खबर पाकर नायक ने क़िले का फाटक बन्द करवा दिया, बड़े-बड़े पत्थर अंधेरे में किले की फ़सील पर रखवा दिए और स्त्रियों ने बहुत-सा गोबर और पानी घोल कर बड़े-बड़े बर्तनों में खौलाना शुरू किया। जिस समय अंगरेज़ी सिपाही दीवारों पर चढ़ने लगे, स्त्रियों ने चिल्ला कर पत्थर नीचे की ओर लुढ़का दिए और खौलता हुआ गोबर का पानी अंगरेज़ी सेना के सर पर डालना शुरू किया। भीतर के बीस सिपाहियों ने भी अपनी बन्दूकों का उचित उपयोग किया। अंगरेज़ सिपाहियों को एक बार घबरा कर नीचे उतर आना पड़ा। इतने में किले की वह सेना जो बाहर गई हुई थी, आवाज़

सुन कर क़िले की ओर लपकी। अंगरेज़ी सेना के बचे हुए आदमियों को जान बचा कर भाग जाना पड़ा।

हैदरअली की अचानक मृत्यु

एक बार साफ़ मालूम होता था कि हैदरअली दक्षिण भारत से अंगरेज़ों को निकाल बाहर कर देगा। नाना फड़नवीस पूना में बैठा हुआ यह सब सुसमाचार सुन रहा था और इन्हीं आशाओं के आधार पर सालबाई के सन्धिपत्र पर दस्तखत करने से इन्कार कर रहा था। जिस समय गायकवाड़, सिंधिया और भोंसले, तीन-तीन ज़बरदस्त मराठा नरेश, मराठा मण्डल और अपने देश, दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ामुल-मुल्क भी अंगरेज़ों की चालों में फंस चुका था, उस समय इन विदेशियों के विरुद्ध नाना फड़नवीस की समस्त आशाओं का आधार केवल वीर हैदरअली था। यदि हैदरअली एक बार मद्रास प्रान्त से अंगरेज़ों को निकाल सकता तो निस्सन्देह, नाना फड़नवीस मराठा मण्डल को मज़बूत करके उत्तर में अंगरेज़ों के साथ फिर से युद्ध शुरू कर देता। उत्तर भारत में अंगरेज़ अपने अनेक दुश्मन पैदा कर चुके थे और इस हालत में नाना को सफलता प्राप्त होने की बहुत ही बड़ी सम्भावना थी। किन्तु मालूम होता है कि भारत-वासियों के अनेक पापों के प्रायश्चित्त और सच्ची भारतीय आत्मा के विकास के लिए अभी इस देश का विदेशी शासन के अग्नि-स्नान में से निकलना आवश्यक था। ठीक उसी समय, जबकि वीर हैदरअली इलाक़ों-पर-इलाक़े और गढ़ों-पर-गढ़ विजय करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था, जबकि भारत के अन्दर स्वतंत्रता और परतंत्रता के इस द्वन्द्व को एशिया और यूरोप की समस्त जागरूक शक्तियां ध्यान से देख रही थीं, जबकि हैदरअली का नाम सुन कर भारत के अंगरेज़ चौंक पड़ते थे और इंगलिस्तान में कम्पनी के हिस्सों की दर धड़ाधड़ गिर रही थी, अचानक 7 दिसम्बर, सन् 1782 की रात को अरकाट के क़िले में हैदरअली की मृत्यु हो गई। हैदरअली की मृत्यु ने नाना फड़नवीस की आशाओं को चूर-चूर कर दिया और लाचार होकर उसने सालबाई की सन्धि पर दस्तखत कर दिए। अंगरेज़ों के लिए हैदरअली की मृत्यु वास्तव में एक बहुत बड़ी बरकत साबित हुई।

आरनी की विजय के बाद हैदरअली की कमर में एक फोड़ा निकला, जिसके कारण उसे अरकाट लौट आना पड़ा। यह फोड़ा ही हैदरअली की मौत का पैगाम साबित हुआ। जब हैदरअली को अपने रोग के असाध्य होने का पता लगा, उसने अपने तमाम मन्त्रियों और सरदारों को बुला कर राज्य के कार्य के विषय में अंतिम आदेश दिए। एक सेना पांच हज़ार सवारों की उसने मद्रास की ओर रवाना की। अपनी विशाल सेना के हर सिपाही और मुलाज़िम को, एक-एक महीने की तनख्वाह बतौर इनाम के दिलवाई और टीपू को, जो उस समय एक दूसरे मैदान में था, बुलवा भेजा।

हैदरअली के हिन्दू मन्त्री

हैदरअली की आयु उस समय साठ साल से कुछ ऊपर थी। डर था कि हैदरअली की मृत्यु के समाचार से उसकी विजयी सेना का उत्साह न टूट जाए। हैदरअली के दोनों मुख्य मन्त्री हिन्दू थे, जिनके नाम पुनिया और कृष्णराव थे। इन दोनों वफ़ादार मन्त्रियों ने हैदरअली की मृत्यु को बड़ी होशियारी के साथ उस समय तक शत्रु और अपनी सेना, दोनों से छिपाए रखा जिस समय तक कि हैदरअली के बड़े बेटे फतहअली टीपू ने अरकाट में पहुंच कर अपने बाप की

जगह न ले ली। टीपू के आने पर सुलतान हैदरअली का शव मैसूर की राजधानी श्रीरंग-पट्टन भेजा गया, जहां बड़े समारोह के साथ उसे लाल बाग में दफ़न किया गया, और टीपू ने पिता की क़ब्र के ऊपर एक सुन्दर और आलीशान समाधि बनवाई।

युद्ध का अन्त

टीपू अपने बाप के समान वीर, किन्तु अभी नातजुर्बेकार था। मैसूर के अन्दर अपनी नई सत्ता को मज़बूत करने की ओर भी उसे क़ाफ़ी ध्यान देना पड़ा। फिर भी उसने पहले बड़ी सफ़लता के साथ युद्ध जारी रखा और अंगरेज़ी सेना को शिकस्त-पर-शिकस्त दी। यहां तक कि अंगरेज़ों को चारों ओर 'निर्बलता, निरुत्साह और नैराश्य' के सिवा कुछ दिखाई न देता था। अन्त में सन् 1783 में अंगरेज़ों ने बड़ी नम्रता के साथ टीपू से सुलह की प्रार्थना की।* टीपू उनकी बातों में आ गया। 11 मार्च, सन् 1784 को मंगलौर में टीपू सुलतान और अंगरेज़ कम्पनी के बीच सन्धि हो गई। अंगरेज़ों ने वादा किया कि फिर कभी मैसूर के मामले में दखल न देंगे, टीपू और उसके उत्तराधिकारियों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार रखेंगे और उनके शत्रुओं के विरुद्ध सदा उन्हें सहायता देने के लिए तैयार रहेंगे। इस वादे पर वीर, उदार, किन्तु नातजुर्बेकार टीपू ने अंगरेज़ों से जीता हुआ तमाम इलाक़ा उन्हें लौटा दिया। टीपू ने निस्सन्देह, एशियाई मर्यादा के अनुसार अपनी शाहाना आन क़ायम रखी और अंगरेज़ों को काफ़ी नीचा दिखाया, किन्तु जो बात हैदर और नाना चाहते थे, वह पूरी न हो सकी।

हैदरअली का बल

हैदरअली एक ग़रीब घर में पैदा हुआ था और एक मामूली सिपाही से बढ़ते-बढ़ते केवल अपनी वीरता और योग्यता के बल पर एक विशाल राज्य का स्वामी बन गया। हैदर-अली 'सुलतान हैदरअली शाह' कहलाता था। दिल्ली दरबार के सूबेदारों में उसकी गिनती थी। मैसूर का वह दैव था। और हम ऊपर लिख चुके हैं कि मैसूर राज्य के अन्दर दैव का पद ठीक वैसा ही था जैसा मराठा साम्राज्य के अन्दर पेशवा का। दैव की गद्दी अब हैदरअली के कुल में पैतृक हो गई थी। अपनी वीरता द्वारा उसने मैसूर राज्य को बहुत अधिक बढ़ा लिया था। मरते समय उस तमाम इलाक़े को छोड़ कर, जो उसने हाल के युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था, उसके बाकी राज्य का क्षेत्रफल अस्सी हज़ार वर्ग मील था, जिसकी सालाना बचत शासन का तमाम ख़र्च निकाल कर तीन करोड़ रुपये से ऊपर थी। उसकी कुल स्थायी सेना तीन लाख चौबीस हज़ार थी, जिन में 19,000 सवार, 10,000 तोप-ख़ाने के सिपाही, 1,15,000 पैदल और 1,80,000 इस तरह की सेना थी, जो दूसरे सरदारों के अधीन हर समय तैयार रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर बुला ली जाती थी। उसके ख़ज़ाने के जवाहरात और नक़दी का अन्दाजा अस्सी करोड़ रुपये से ऊपर का था। उसकी पशुशालाओं में 700 हाथी, 6,000 ऊंट, 11,000 घोड़े, 4,00,000 गाय और बैल, 1,00,000 भैंस और 60,000 भेड़ें थीं। उसके शस्त्रागार में 6,00,000 बन्दूकें, 2,00,000 तलवारें और 22,000 तोपें थीं।

जल-सेना

हैदरअली अपने समय का अकेला भारतीय नरेश था, जिसने अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिए एक जहाज़ी बेड़ा, जिसके हर जहाज़ पर तोपें लगी हुई थीं, रख रखा था। उसकी

* "*Debility, dejection and despair.*"—Mill, vol., iv, p. 222.

जल-सेना अपने समय की एक जबर्दस्त जल-सेना थी । उसके जल-सेनापति, अलीरज़ा, ने मलद्वीप नाम के क़रीब बारह हज़ार छोटे-बड़े टापुओं को विजय कर उन्हें हैदरअली के राज्य में मिला लिया था ।

शिक्षा

हैदरअली लिखना-पढ़ना बिल्कुल नहीं जानता था । एक मुसलमान इतिहास-लेखक लिखता है कि उसने फ़ारसी अक्षरों में अपना नाम लिखने का प्रयत्न किया । बड़े परिश्रम से वह अपने नाम का केवल पहला अक्षर 'हे' सीख पाया । किन्तु इस 'हे' को भी वह सदा उलटा और गलत लिखा करता था । यही उसके दस्तख़त थे । इस पर भी तमाम भारतीय और विदेशी इतिहास के लेखक मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि उसकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता नीतिज्ञता और शासन-प्रबन्ध, सभी में उसकी योग्यता बड़े ऊंचे दरजे की थी । वीरता और युद्धकौशल में वह अपने समय में अपना सानी नहीं रखता था ।

धार्मिक उदारता

धार्मिक पक्षपात या तास्सुब का उसमें निशान तक नहीं था । राज्य की ऊंची-से-ऊंची पदवियां उसने हिन्दुओं को दे रखी थीं। उसके बड़े-से-बड़े मन्त्री हिन्दू थे। मैसूर से जिन बाग़ी सामन्तों को उसने परास्त किया, उनकी गद्दियां या तो उन्हीं को वापस कर दीं और या दूसरे हिन्दू नरेशों को उनकी जगह बैठा दिया । अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ वह एक समान उदार व्यवहार करता था । उसने अनेक हिन्दू मन्दिर बनवाए और अनेक मन्दिरों को जागीरें अदा कीं । हाल में उस समय के इतिहास की खोज द्वारा अंगरेज़ लेखक मिस्ट गैलेटिक, आई०सी०एस० ने दिखाया है कि हैदरअली ने अपनी सलतनत भर में गोरक्षा का उसी तरह सुन्दर प्रबन्ध कर रखा था, जिस तरह बाबर और उसके उत्तराधिकारी मुग़ल सम्राटों ने । हैदरअली के राज भर में यदि कोई मनुष्य गोवध का अपराधी होता था, तो उसके हाथ काट लिए जाते थे ।

हैदरअली और जगद्गुरु शंकराचार्य

जगद्गुरु शंकराचार्य के चार मुख्य मठों में शृंगेरी का मठ मैसूर के राज में था । शृंगेरी मठ के स्वामी, उस समय के जगद्गुरु शंकराचार्य के साथ हैदरअली का खास प्रेम था । दोनों में खूब पत्र-व्यवहार होता था । वर्तमान मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग ने कृपा कर हमारे पास कन्नड़ भाषा में जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम हैदरअली के एक मूल पत्र का फोटो भेजा है, जिसे पढ़ने से मालूम होता है कि हैदरअली जगद्गुरु का कितना अधिक आदर करता था और किस तरह राज्य के गम्भीर मामलों में जगद्गुरु की सलाह लेकर काम किया करता था । इसी पत्र के साथ हैदरअली ने 'एक हाथी, पांच घोड़े, एक पालकी, पांच ऊंट....... पांच सोने के ताफ्ते (सूर्य-चन्द्रांकित पताकाएं, जो जगद्गुरु के साथ चलती हैं)..... एक जोड़ी शाल, साढ़े-दस हज़ार रुपये नकद ....इत्यादि' जगद्गुरु की नज़र के तौर पर और 'एक ठोस सोने का फ़तीलसोज़ (शमई) शृंगेरी मठ की देवपूजा' के लिए जगद्गुरु की सेवा में भेजा ।

हिन्दू त्यौहार

हैदरअली अपने दरबार के अन्दर हिन्दू त्यौहारों को बड़े समारोह के साथ मनाया करता था । विशेष कर दशहरे के मौके पर उसके दरबार में दस दिन तक लगातार जश्न

रहता था, रोज़ शाम को आतिशबाज़ी छूटती थी, सांड़ों, बारहसिंगों, हाथियों और शेरों की लड़ाइयां होती थीं, कुश्तियां होती थीं, दावतें होती थीं, इनाम और इकराम दिए जाते थे, ग़रीबों को भोजन, वस्त्र और धन बांटा जाता था ।

शिया-सुन्नी

मज़हब के नाम पर किसी तरह के भी लड़ाई-झगड़ों को वह बड़ी नफ़रत की नज़र से देखता था। एक बार उसके राज्य में कहीं पर शिया और सुन्नियों में झगड़ा हो गया। ज़बान से बढ़ते-बढ़ते मामला खंजर और भालों तक पहुंच गया। हैदर के कानों तक ख़बर पहुंची। उसने दोनों पक्षों के लोगों को अपने सामने बुलवाया और उनसे पूछा—"यह क्या बेवकूफ़ी का झगड़ा है, और तुम लोग कुत्तों की तरह एक-दूसरे पर क्यों भोंकते हो?" दोनों ने अपनी-अपनी बात कह सुनाई, मालूम हुआ कि झगड़ा केवल इस बात पर है कि हज़रत मोहम्मद के कुछ उत्तराधिकारियों के उचित अधिकारों के विषय में शियों की एक राय है और सुन्नियों की दूसरी। हैदरअली ने उनसे पूछा—"जिन व्यक्तियों के बारे में तुम्हारा झगड़ा है, क्या वे ज़िन्दा हैं?" जवाब मिला—नहीं।" इस पर हैदरअली ने उनसे कहा—"जो लोग मर चुके, उनकी बाबत झगड़ा करना हिमाकत है," और दोनों को आगाह कर दिया कि—"अगर तुम लोग फिर कभी अपना और सरकार का समय इन बेतुके और बदमाशी के झगड़ों में नष्ट करोगे, तो यक़ीन रखो, तुम्हारे सर कुचल दिए जाएंगे।"

हैदरअली का इन्साफ़

हैदरअली का इन्साफ उस समय दूर-दूर तक मशहूर था। उसके जीवन-चरित्र का एक फ्रान्सीसी लेखक लिखता है कि उसकी प्रजा में किसी भी निर्धन-से-निर्धन पुरुष या स्त्री को अधिकार था कि हैदर के सामने आकर अपनी दाद-फ़रियाद पेश करे। पहरेदारों को हुकुम था कि किसी फ़रियादी को किसी समय भी हुजूर से आने से न रोका जाए। वह बड़े ग़ौर से सबकी फ़रियाद सुनता था और उसका इन्साफ करता था। एक बार सन् 1767 ई० में, जबकि हैदरअली कोयम्बतूर में था, एक दिन शाम को वह हवाखोरी के लिए जा रहा था। मार्ग में एक बुढ़िया सड़क के एक ओर आकर लेट गई और "इन्साफ़! इन्साफ़!" चिल्लाने लगी। हैदरअली ने फ़ौरन अपनी सवारी रोक दी, बुढ़िया को पास बुलाया और पूछा—"क्या मामला है?" बुढ़िया ने जवाब दिया—"जहांपनाह! मेरे केवल एक बेटी थी, आग़ा मोहम्मद उसे भगा ले गया।" सुलतान ने जवाब दिया—"आग़ा मोहम्मद को यहां से गए एक महीने से ज़ियादा हो गया, तुमने आज तक शिकायत क्यों नहीं की?" जवाब मिला—"जहांपनाह! मैंने कई बार अर्जियां लिख कर हैदरशा के हाथों में दीं, किन्तु मुझे कोई जवाब नहीं मिला।" हैदरशा हैदरअली का खास जमादार था, जो उस समय हैदरअली के आगे-आगे चल रहा था। आग़ा मोहम्मद उससे पहले का खास जमादार था और पच्चीस साल तक हैदरअली की खिदमत कर चुका था। आग़ा मोहम्मद को हैदरअली ने पेन्शन और जागीर देकर एक महीना हुआ विदा कर दिया था। हैदरशा ने अपनी सफ़ाई में आगे बढ़ कर अर्ज़ किया—"जहांपनाह! यह बुढ़िया और उसकी बेटी, दोनों बदचलन हैं।" हैदरअली फ़ौरन महल की ओर लौट पड़ा और बुढ़िया को अपने साथ ले गया। महल में पहुंच कर जब लोगों ने हैदरअली से प्रार्थना की कि इस बार हैदरशा को क्षमा कर दिया जाए, तो हैदरअली ने उत्तर दिया—"मैं आप लोगों की प्रार्थना

छत्रपति शिवाजी

महारानी अहिल्याबाई होलकर

पेशवा नारायण राव

हैदरअली

स्वीकार नहीं कर सकता। किसी बादशाह और उसकी प्रजा के बीच के पत्र-व्यवहार को रोकने से बढ़ कर कोई गुनाह हो ही नहीं सकता। बलवानों का कर्तव्य है कि निर्बलों का इन्साफ़ करें। खुदा ने निर्बलों की रक्षा के लिए ही बादशाह को बनाया है और जो बादशाह अपनी प्रजा के ऊपर जुल्म होने देता है और जुल्म करने वाले को दण्ड नहीं देता, वह इस योग्य है कि उसकी प्रजा का प्रेम और विश्वास उस पर से हट जाए और प्रजा उसके खिलाफ़ बग़ावत करने लगे।"*

हैदरअली ने सबके सामने अपने जमादार हैदरशा के दो सौ कोड़े लगवाए। साथ ही उसने एक सवार उस बुढ़िया के साथ आग़ा मोहम्मद के रहने की जगह भेजा और हुकुम दिया कि यदि लड़की मोहम्मद के यहां मिल जाए, तो उसे उसकी मां के हवाले कर दिया जाए और आग़ा मोहम्मद का सर काट कर मेरे सामने पेश किया जाए। और यदि लड़की न मिले, तो आग़ा मोहम्मद को गिरफ्तार करके मेरे सामने लाया जाए। लड़की आग़ा मोहम्मद के यहां मौजूद थी। उसे उसकी मां के हवाले कर दिया गया और आग़ा मोहम्मद का सर काट कर हैदरअली के सामने पेश किया गया।

हैदरअली के इन्साफ़ की इसी तरह की और अनेक रोशन मिसालें उसकी जीवनियों में मिलती हैं। मीर हुसैनअली खां किरमानी लिखता है कि चोर, उच्चके अथवा डाकू का नाम तक हैदरअली के राज्य में कहीं सुनने में न आता था और यदि अकस्मात कहीं पर चोरी हो जाती थी, तो उस जगह के पुलिस कर्मचारी को फौरन मौत की सज़ा दी जाती थी और दूसरा आदमी उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता था। हैदरअली के हज़ारों जासूस सलतनत भर में घूमते रहते थे और उसे प्रजा के सुख-दुख की खबरें देते रहते थे। हैदरअली खुद अक्सर वेश बदले, कम्बल ओढ़े, रात को श्रीरंगपट्टन और अन्य नगरों की गलियों में घूमा करता था और गरीबों और यात्रियों की ख़बर रखता था।

हैदरअली को प्रजापालकता

हैदरअली की सारी प्रजा उससे अत्यन्त खुश थी, उसके राज भर में चारों ओर खुशहाली थी। तिजारत, उद्योग-धन्धों और खेती-बाड़ी को खूब प्रोत्साहन दिया जाता था। वह खुद कारीगरों और सौदागरों की खूब मदद करता था। लिखा है कि अकेले कोयम्बतूर के बाज़ार में बीस हज़ार रेशम के थान हर हफ्ते बिकने के लिए आते थे। यदि कोई सरकारी कर्मचारी प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार करता था तो हैदरअली सदा उसे कड़ी-से-कड़ी सज़ा देता था। उसके राज भर में इस बात की सख्त मनाही थी कि किसानों से उनकी नियत मालगुज़ारी के अलावा एक कौड़ी भी किसी बहाने न ली जाए।

बुद्धि की प्रखरता

हैदरअली की बुद्धि की प्रखरता और उसकी याददाश्त अद्भूत थी। नेपोलियन के समान वह एक साथ कई-कई काम किया करता था। वह जिस वक्त कोई मामूली तमाशा देखता रहता था, उसी वक्त कुछ लोगों से प्रश्न करता रहता था, जवाब देता रहता था, अख़बार सुनता था, चिट्ठियां सुनता था, चिट्ठियां लिखवाता था और साथ ही अपने

**History of Hyder Shah,* by M.M.D.L.T., p. 20.

मंत्रियों के साथ गम्भीर-से-गम्भीर प्रश्नों पर बातचीत करता रहता था और उनका फैसला करता रहता था। ये सब काम एक साथ चलते रहते थे। एक साथ वह तीस-तीस और चालीस-चालीस मुंशियों से काम लेता रहता था।

रोज सुबह को, जब वह एक चौकी पर बैठ कर हाथ-मुंह धोया करता था उसी समय उसके अनेक जासूस उसकी चौकी के चारों ओर खड़े हो जाते थे और पिछले चौबीस घंटों का अपना-अपना हाल सुनाते थे। ये सब जासूस एक साथ बोलते थे। हैदर मुंह धोते-धोते सब की बात सुनता था, केवल आवाज़ से उन्हें पहचानता था और जिससे ज़रूरत समझता था, बीच-बीच में सवाल कर लेता था। मनुष्य के चरित्र को वह केवल एक बार शक्ल देख कर पहचान जाता था, रंगरूटों को केवल चेहरे से देख कर भरती कर लेता था। घोड़ों और जवाहरात की भी उसे ग़ज़ब की पहचान थी।

वीरता और सादगी

हैदरअली वीर था और वीरता की बड़ी क़द्र करता था। अपने सिपाहियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त प्रेम, उदारता और बराबरी का रहता था। जिन्हें वह युद्ध में हरा देता था, उनके साथ भी उसका व्यवहार सदा दया और उदारता का होता था। इतना बड़ा नरेश होने पर भी उसमें घमण्ड या अभिमान का निशान तक न था। अपने राज्य को वह सदा 'खुदादाद' कहा करता था। अपने दरबार तक में वह मामूली सिपाहियों के साथ बराबरी का व्यवहार करता था। स्वयं एक मामूली सिपाही का-सा जीवन व्यतीत करता था। जो भोजन सामने आता था, खा लेता था। सफ़र में वह अकसर भुने हुए चने बादाम और ज्वार की सूखी रोटी या इनमें से जो सामने आ जाए खाकर रह जाता था। अपने तख्त पर वह ज्यादा-से-ज्यादा साल में एक बार ईद के दिन चन्द घंटे के लिए बैठता था और वह भी दूसरों की प्रार्थना पर।

हैदरअली का शारीरिक बल

हैदरअली का क़द मंझोला था। उसका रंग सांवला था किन्तु उसके शरीर की बनावट सुन्दर थी। वह मज़बूत और निहायत फ़ुर्तीला था। वह घोड़े का बहुत अच्छा सवार था। पैदल लम्बे सफ़र करने का भी उसे बेहद शौक था और आदत थी। सप्ताह में दो बार वह अपने सर, दाढ़ी और मूंछों के बाल मुंड़वा देता था। दाढ़ी और मूंछें वह इतनी साफ़ रखता था कि नकचुटनी से एक-एक बाल निकलवा देता था। उसकी देखादेखी उसके अधिकतर दरबारी भी दाढ़ी न रखते थे और मूंछें यदि रखते थे तो इतनी कम कि जो दूर से दिखाई न देती थीं। हैदरअली को लाल कपड़ों का शौक था और अपने सर पर वह एक सौ हाथ लम्बी लाल पगड़ी बांधता था।

शेर पालना

शिकार का, और खास कर शेर के शिकार का उसे बड़ा शौक़ था। उसके यहां अनेक शेर पले हुए थे, जो रोज सुबह खुले हुए उसके सामने लाए जाते थे। हैदरअली अपने हाथ से इन शेरों को लड्डू खिलाया करता था। उनके पंजों और जबड़ों में वह लड्डू दे देता था। लिखा है कि उसका निशाना कभी चूकता न था। अपने सामने अखाड़े में वह अकसर शेर के साथ अपने किसी एक वीर सिपाही की कुश्ती कराया करता था। यदि सिपाही शेर

को पछाड़ पाता तो उसे इनाम-ओ-इकराम दिए जाते थे और यदि शेर हावी होने लगता, तो हैदर फ़ौरन दूर से बैठा हुआ शेर की कनपटी पर गोली मार देता और इससे पहले कि शेर का पंजा सिपाही पर पड़ सके, शेर गोली खाकर गिर पड़ता था ।

हैदरअली का कष्टसहन

हैदरअली के शारीरिक परिश्रम और कष्टसहन की कोई सीमा न थी । वह कई-कई रातें जंगल में बारिश और सर्दी के अन्दर घोड़े की पीठ पर गुज़ार देता था । घोड़ों, हाथियों, तोपों और रसायन यानी कुश्तों का उसे खास शौक़ था । उसके एक प्यारे हाथी का नाम 'पवनगज' था, जिसके मरने पर हैदरअली ने बड़ा दुख मनाया । घोड़े खरीदने का उसे इतना अधिक शौक़ था कि दूर-दूर के मुल्कों से घोड़े के सौदागर उसके दरबार में पहुंचते थे और यदि किसी सौदागर का घोड़ा उसके राज्य के अन्दर मर जाता और सौदागर अपने घोड़े की अयाल और दुम काट कर स्थानीय कर्मचारी की सनद के साथ हैदरअली के दरबार में पेश करता, तो घोड़े की आधी क़ीमत उसे खज़ाने से दिलवा दी जाती थी ।

हैदरअली और अंगरेज़

इन सब बातों के अलावा हैदरअली अंगरेज़ों का कट्टर शत्रु था । अंगरेज़ों के लिए उसका नाम एक 'हउआ' था । जो कि हैदरअली की नीतिज्ञता नाना फड़नवीस के टक्कर की न थी, सबसे बड़ी ग़लती उसकी यह थी कि अपनी सेना के अनेक बड़े-बड़े ओहदों पर उसने फ्रान्सीसियों को नियुक्त कर रखा था, जिसका फल उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू सुलतान को भोगना पड़ा, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि अपने जीवन भर अंगरेज़ों को भारत से निकालने का हैदर ने जी तोड़ प्रयत्न किया । वह जब तक जिया, अजेय रहा और अन्त में इसी प्रयत्न में उसने अपनी जान दी । हम ऊपर लिख चुके हैं कि जिस समय गायकवाड़, सिंधिया और भोंसले, तीन-तीन जबर्दस्त मराठा नरेश महाराष्ट्र मण्डल और अपने देश, दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ामुलमुल्क भी अंगरेज़ों के साथ मिल कर अपने साथियों और मुल्क, दोनों को दग़ा दे चुका था, उसी समय नाना फड़नवीस और भारत की स्वाधीनता, दोनों की आशा का एकमात्र आधार वीर हैदरअली था । इतना ही नहीं, बल्कि जिस समय नाना फड़नवीस भी अपनी सन्धि के अनुसार हैदरअली की मदद करने के नाक़ाबिल हो गया और निज़ाम ने अपना वादा साफ तोड़ दिया, उस समय अंगरेज़ों की पूरी शक्ति के मुक़ाबके का सारा बोझ हैदरअली के कन्धों पर पड़ा । इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि हैदरअली ने आश्चर्यजनक साहस और सफलता के साथ अकेले इस बोझ को बरदाश्त किया, और यदि भवितव्यता बीच में न पड़ती, यदि ठीक उस समय, जबकि भारत में अंगरेज़ों के हाथ-पांव बिल्कुल फूल चुके थे, भारतीय स्वाधीनता के उस अन्तिम आधार को मौत उठा कर न ले गई होती, तो उसके बाद का भारत और अंगरेज़ जाति, दोनों का इतिहास बिल्कुल दूसरे ढंग से लिखा गया होता । हैदरअली के बाद फिर 75 साल तक भारत के पुत्रों को अपनी स्वाधीनता के लिए उस तरह का व्यापक प्रयत्न करने का साहस न हो सका । निस्सन्देह, भारत की आज़ादी के लिए प्रयत्न करनेवालों में हैदरअली का पद सर्वोपरि है और आज़ादी के चाहने वालों में उसका नाम सदा के लिए जिन्दा रहेगा ।

दसवां अध्याय

सर जान मैक्फरसन

अब हम नमूने के तौर पर उस ज़माने के एक अंगरेज़ गवर्नर-जनरल के चरित्र पर एक निगाह डालते हैं। वारेन हेस्टिंग्स के बाद कलकत्ते की कौन्सिल का प्रमुख सदस्य सर जान मैक्फरसन अस्थायी तौर पर कम्पनी के भारतीय इलाकों का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। मैक्फरसन के समय में कोई खास लिखने योग्य घटना नहीं हुई, किन्तु उसका चरित्र खासा मनोरंजक था।

नवाब मोहम्मदअली को इंगलिस्तान के बादशाह की भेंट

मैक्फरसन सबसे पहले सन् 1767 में किसी जहाज़ का बख्शी (पे मास्टर) नियुक्त होकर हिन्दुस्तान आया। वह खासा पढ़ा-लिखा और चलता—पुर्ज़ा था। इस पुस्तक के पहले अध्याय में आ चुका है कि करनाटक की गद्दी के ऊपर अंगरेज़ों, फ्रान्सीसियों और निज़ाम ने अलग-अलग हक़दारों का पक्ष लेकर काफ़ी लड़ाइयां लड़ीं। अन्त में अंगरेज़ों की सहायता से मोहम्मदअली करनाटक का नवाब बना। इस सहायता के बदले में मोहम्मदअली ने अंगरेज़ों को साढ़े-चार लाख पैगोदा, यानी करीब 16 लाख रुपये सालाना का इलाक़ा अदा किया। शुरू में अंगरेज़ नवाब मोहम्मदअली का बड़ा आदर करते थे। यहां तक कि एक बार मोहम्मदअली ने एक पत्र कुछ उपहारों और भेंट सहित इंगलिस्तान के बादशाह जार्ज तृतीय के पास भेजा और उसके जवाब में बादशाह जार्ज ने अपने हाथों से लिख कर एक अत्यन्त आदर और प्रेम का पत्र और उसके साथ बतौर नज़राने के दो बढ़िया पिस्तौल और बतौर नमूने के इंगलिस्तान का बना कुछ कपड़ा मोहम्मदअली के पास भेजा।

मोहम्मदअली के साथ कम्पनी की ज्यादतियां

किन्तु थोड़े ही दिनों में ठीक वही सलूक मोहम्मदअली के साथ होने लगा, जो उत्तर अवध के नवाबों के साथ हो रहा था। धन की नित्य नई मांगें उसके सामने पेश की जाती थीं और जबरन पूरी कराई जाती थीं। मिसाल के लिए यह एक प्रथा बन गई थी कि मोहम्मद-अली मद्रास के हर नए गवर्नर को अपने यहां दावत करे और उसे तीस हज़ार पैगोदा नज़र करे। कम्पनी के छोटे-मोटे नौकरों की मांगें भी मोहम्मदअली के ऊपर नित्य बढ़ती गई, यहां तक कि जब अरकाट का खज़ाना खाली हो गया तो कुछ अंगरेज व्यापारियों ने ही अपने दूसरे देशवासियों की मांगें पूरी करने के लिए मोहम्मदअली को क़र्ज देने शुरू किए। लाचार होकर मोहम्मदअली अंगरेज़ों की मांग भी पूरी करता रहा और यूरोपीयन व्यापारियों का दिन-पर-दिन क़र्जदार भी होता चला गया। कम्पनी के नौकरों के इन अत्याचारों से बचने का उसे कोई उपाय न सूझता था।

ऐसी हालत में नौजवान मैक्फरसन, गवर्नर-जनरल होने से बहुत दिनों पहले, अरकाट पहुंचा। उसने नवाब मोहम्मदअली से मिल कर उसे यह पट्टी पढ़ाई कि यदि आप मुझे अपनी

ओर से वकील बना कर इंगलिस्तान भेज दें, तो वहां के मंत्रियों से कह कर मैं आपकी सब शिकायतें दूर करा दूं और क़र्ज़ माफ़ करा दूं। भोले नवाब ने मंजूर कर लिया। मैक्फरसन उसका वकील बन कर सन् 1768 में इंगलिस्तान पहुंचा। इस चाल से मैक्फरसन ने मोहम्मद अली को खूब जी भर कर लूटा। यहां तक कि उसने कई लाख रुपये इंगलिस्तान के प्रधान मंत्री तक को रिश्वत देने चाहे। और जब प्रधान मंत्री ने यह रिश्वत स्वीकार न की, तो मैक्फरसन ने उसे 70 लाख रुपये से ऊपर क़र्ज (?) के तौर पर देना चाहा। किन्तु लिखा है कि प्रधान मंत्री ने इसे भी मंजूर न किया।

कर्नाटक के नवाब की शिकायतें तो इंगलिस्तान में कौन सुनता था और कहां दूर हो सकती थीं, किन्तु इन तरीक़ों से मैक्फरसन ने कम्पनी के डाइरेक्टरों और इंगलिस्तान के मन्त्रियों पर अपना खूब असर जमा लिया। वह फिर कम्पनी की नौकरी में भारत भेजा गया और तरक्की करके पहले कलकत्ते की कौन्सिल का मेम्बर और फिर मौक़ा मिलने पर गवर्नर-जनरल बना दिया गया। इसके बाद मैक्फरसन का नवाब करनाटक की मुसीबतों की ओर कभी ध्यान भी न गया।

मैक्फरसन के कृत्य और चरित्र

मैक्फरसन केवल 20 महीने गवर्नर-जनरल रहा। इससे पहले कम्पनी अपने भारतीय इलाकों के लिए दिल्ली सम्राट शाहआलम को ख़िराज दिया करती थी। इस ख़िराज के चार करोड़ रुपये अब कम्पनी की ओर निकलते थे। माधोजी (महादजी) सिंधिया ने सम्राट की तरफ़ से यह रक़म तलब की, किन्तु मैक्फरसन ने देने से इन्कार कर दिया। अवध के नवाब को मैक्फरसन ने अपने से पहले के गवर्नर-जनरल के समान खूब चूसा। मैक्फरसन के बाद उसके उत्तराधिकारी, लार्ड कार्नवालिस, ने 8 अगस्त सन् 1789 को कलकत्ते से इंगलिस्तान के भारत मन्त्री हेनरी डण्डास के नाम एक गुप्त पत्र लिखा, जिसमें कार्नवालिस ने मैक्फरसन के 'नाजायज़ तरीकों से कमाए हुए धन' उसकी चालबाजियों उसके 'निर्लज्ज झूठों', उसकी दुरंगी चालों और कमीनी साज़िशों* का जगह-जगह ज़िक्र किया है।

भारत से लौट कर मैक्फरसन पार्लियामेंट की मेम्बरी के लिए खड़ा हुआ। चुनाव में वह जीत गया। बाद में साबित हुआ कि वह रिश्वतें देकर जीता है और उसका चुनाव रद्द कर दिया गया। उसके करीब 60 मददगारों को रिश्वतें देने के जुर्म में सज़ाएं मिलीं। स्वयं मैक्फरसन पर 82 नालिशें दायर हुईं। जवाबदेही से बचने के लिए वह इंगलिस्तान छोड़ कर कहीं भाग गया। अन्त में रिश्वत देने ही के जुर्म में उस पर तीन हजार पौण्ड जुर्माना हुआ।

भारत के अनेक गवर्नर-जनरलों में से एक के चरित्र का यह छोटा सा ख़ाका है।

---

*"......ill earned money......His flimsy cunning and shameless falsehoods......his duplicity and low intrigues......"—Lord Cornwallis' letter dated 8th August, 1789 to the Rt. Hon'ble Henry Dondas concerning Sir John Macpherson.

ग्यारहवां अध्याय

लार्ड कार्नवालिस

(1786—1793)

गवर्नर—जनरल के नए अधिकार

सर जान मैक्फरसन केवल अस्थायी गवर्नर-जनरल था। उसके बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों और इंगलिस्तान के मंत्रियों ने मिल कर लार्ड कार्नवालिस को अपने भारतीय इलाकों का स्थायी गवर्नर-जनरल नियुक्त कर के भेजा।

कम्पनी के सन् 1773 के चार्टर ऐक्ट के अनुसार वारेन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ था। उसी कानून के अनुसार कलकत्ते में गवर्नर-जनरल की मदद के लिए चार और अंगरेज़ों की एक कौन्सिल होती थी, जिसका प्रधान खुद गवर्नर-जनरल होता था। कौन्सिल में जो बात कसरत राय से तय हो जाती थी, गवर्नर-जनरल के लिए उसका मानना ज़रूरी था। यही हालत मद्रास और बम्बई के गवर्नरों की भी थी। इस नियम की वजह से वारेन हेस्टिंग्स की चालों में कई बार बाधाएं पड़ीं। जिस तरह की अंगरेज़ी नीति उस समय भारत में जारी थी, उसके लिए गवर्नर-जनरल के हाथों में पूरे अधिकार का होना ज़रूरी था। इसलिए कार्नवालिस के इंगलिस्तान से चलने से पहले पार्लियामेण्ट ने एक नया कानून पास किया, जिसमें कलकत्ते के गवर्नर-जनरल और मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को यह अधिकार दे दिया कि वे जिस मामले में चाहें, अपनी कौन्सिलों की राय के ख़िलाफ़ या कौन्सिलों से बिना पूछे काम कर सकते हैं। इसके अलावा, भारत में अंगरेज़ों का इलाका बढ़ता जा रहा था, इसलिए इस इलाके के शासन को चलाने के लिए अब इंगलिस्तान में एक नया सरकारी बोर्ड, जिसे 'बोर्ड आफ कण्ट्रोल' कहते थे, बना दिया गया। इससे धीरे-धीरे कम्पनी के, यानी डाइरेक्टरों के अधिकार कम होते गए और ब्रिटिश भारत की हकूमत इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट और वहां के मंत्रिमण्डल के हाथों में आती गई।

इस तरह नए अधिकार लेकर भारत का तीसरा अंगरेज़ गवर्नर-जनरल सितम्बर सन् 1786 में भारत पहुंचा।

टीपू और अंगरेज़

कार्नवालिस के समय की सबसे बड़ी घटना हैदरअली के बड़े बेटे और वारिस टीपू सुलतान के साथ अंगरेज़ों का युद्ध था, जिसे दूसरा मैसूर युद्ध कहा जाता है।

टीपू का जन्म सन् 1749 ई० में हुआ। लिखा है कि एक मुसलमान फ़क़ीर टीपू मस्तान औलिया के आशीर्वाद से हैदरअली के यहां इस पुत्र का जन्म हुआ, इसलिए उसका नाम फ़तहअली टीपू रखा गया। इतिहास में वह टीपू सुलतान के नाम से मशहूर हुआ। पराक्रम और युद्धकौशल में टीपू अपने बाप के मुक़ाबले का था। उसका शुमार भारत के,

बल्कि संसार के ऊंचे-ऊंचे वीरों में किया जाता है। टीपू के चरित्र का अधिक दिग्दर्शन एक अगले अध्याय में किया जाएगा, यहां पर केवल कार्नवालिस और टीपू के युद्ध का बयान कर देना ज़रूरी है।

टीपू से अंगरेज़ों को डर

सन् 1784 में टीपू और कम्पनी के बीच सन्धि हो चुकी थी, जिसमें कम्पनी ने टीपू सुलतान को मैसूर का वास्तविक अधिपति स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि आइन्दा हम कभी मैसूर के राज में दख़ल न देंगे और टीपू सुलतान के साथ सदा मित्रता क़ायम रखेंगे। तब से अब तक टीपू ने अपनी ओर से सन्धि का ठीक-ठीक पालन किया था और अंगरेज़ों के साथ कभी किसी तरह की छेड़छाड़ न की थी। किन्तु टीपू और उसके पिता हैदर के हाथों जो हार-पर-हार और ज़िल्लत-पर-ज़िल्लत अंगरेज़ों को उठानी पड़ी थी, वह हर अंगरेज़ के दिल में कांटे की तरह खटक रही थी। बाप के मरने के बाद क़रीब एक साल तक जिस शान और सफलता के साथ टीपू ने अंगरेज़ों के साथ युद्ध जारी रखा, उसकी वजह से उन दिनों टीपू का नाम सुन कर अंगरेज़ चौंक उठते थे। पादरी डब्ल्यू० एच० हटन लिखता है कि अंगरेज़ माताएं टीपू का नाम ले-लेकर नटखट बच्चों को चुप कराती थीं*।

इसके अलावा टीपू के साथ कम्पनी के युद्ध छेड़ने की एक और जबरदस्त वजह थी। अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' किसी समय इंगलिस्तान के अधीन थीं। किन्तु वहां के बाशिन्दे अधिकतर यूरोप ही के अलग-अलग देशों से जाकर बसे थे। उन्होंने अपनी आबादी के लिए युद्ध किया। भयंकर रक्तपात हुआ। अन्त में इंगलिस्तान हारा और अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' सदा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से अलग और आज़ाद हो गईं। इंगलिस्तान की कीर्ति को इस घटना से खासा धक्का पहुंचा। तुरन्त इंगलिस्तान के शासकों ने अपनी क़ौम के यश को फिर से क़ायम करने और इस कमी को पूरा करने के लिए हिन्दोस्तान में अपना राज बढ़ाने का फ़ैसला किया। लार्ड कार्नवालिस को जो हिदायतें देकर भारत भेजा गया। उनमें से एक यह थी कि जितनी जल्दी हो सके, भारत में अमरीका की कमी को पूरा करने का यत्न किया जाए। ये सब बातें उस समय के सरकारी पत्र-व्यवहार में बिल्कुल स्पष्ट हैं।

टीपू के साथ युद्ध की तैयारी

कार्नवालिस ने भारत पहुंचते ही टीपू से युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। टीपू एक वीर और सुयोग्य शासक था। उसने अपनी प्रजा के साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं किया। उसके राज में चारों ओर वह उन्नति और खुशहाली नज़र आती थी, जो उस समय के ब्रिटिश भारतीय इलाके में कहीं देखने को भी न मिलती थी। किन्तु विदेशियों से देश को कितना खतरा था और उस खतरे को दूर करने के लिए अपने भारतीय पड़ोसियों से मेल बनाए रखने की कितनी ज़रूरत थी, इन दोनों चीजों को टीपू अभी पूरी तरह न समझ पाया था। कुछ सरहदी इलाकों के बारे में मराठों और निज़ाम, दोनों से उसके झगड़े चले आते थे, जिन में ज्यादती चाहे किसी की भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि टीपू अपने पड़ोसियों के साथ उस तरह का प्रेम और मेल क़ायम न रख सका, जिस तरह का हैदर ने रखा था। निज़ाम और

Marquess of Wellesley, p. 32.

मराठों के साथ टीपू के इन आपसी झगड़ों से ही कम्पनी को टीपू के ख़िलाफ़ सबसे ज्यादा मदद मिली। कार्नवालिस ने सबसे पहले टीपू के विरुद्ध निज़ाम के साथ एक नया समझौता किया। इस समझौते का मतलब यह था कि कम्पनी की वह सबसीडियरी सेना, जो निज़ाम के यहां निज़ाम के खर्च पर रखी गई थी, टीपू पर हमला करने के लिए काम में लाई जा सकेगी, और निज़ाम टीपू पर हमला करने में अंगरेज़ों को मदद दे* ।

मराठों और निज़ाम को टीपू के खिलाफ़ फोड़ना

इस बीच टीपू और मराठों में सुलह-सफ़ाई की बातचीत हो रही थी, और यदि कार्नवालिस बीच में बाधा न डालता, तो निस्संदेह सुलह हो ही गई थी। किंतु कार्नवालिस खूब जानता था कि टीपू को वश में करना अकेले अंगरेज़ों और निज़ाम के बूते का काम नहीं है। यह खबर पाते ही कि टीपू और मराठों में सुलह हो रही है, कार्नवालिस ने फौरन 23 अक्तूबर सन् 1787 को अपने एक अफसर, जार्ज फ़ार्सटर, को लिखा कि आप मूदाजी भौंसले के पास नागपुर पहुंच कर गुप्त रीति से वहां के सैन्य बल इत्यादि का पता लगाएं और मूदाजी और उसके साथियों को टीपू के ख़िलाफ अंगरेज़ों की ओर फोड़ने का यत्न करें। इसी पत्र में कार्नवालिस ने लिखा था : "यदि मराठों ने टीपू के साथ सुलह कर ली है या सुलह करने का फ़ैसला कर लिया है, तो यह नाममकिन है कि हमारे समझाने-बुझाने से मराठे फौरन ही अपने उस फैसले से टल जाएं. . . . . . . .इसलिए आप इसमें कोई कोशिश उठा न रखिए. . . कि टीपू को दोनों का दुश्मन दिखा कर और मराठों को उकसा कर टीपू के खिलाफ़ मराठों के साथ गहरा सम्बन्ध और मेल कर लिया जाए।"†

इसी मज़मून का एक पत्र कार्नवालिस ने 10 मार्च, सन् 1788 को पूना के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट मैलेट को लिखा, जिसमें मैलेट से पेशवा दरबार को टीपू के विरूद्ध फोड़ने के लिए कहा गया। पेशवा दरबार और निज़ाम, दोनों से कार्नवालिस ने यह वादा किया कि यदि आप लोग टीपू के विरूद्ध अंगरेज़ों को युद्ध में मदद देंगे, तो जितना इलाक़ा टीपू से विजय किया जाएगा, वह सब कम्पनी, निज़ाम और मराठों में बराबर-बराबर बांट देंगी। कार्नवालिस का दिया हुआ लोभ अपना काम कर गया। निज़ाम का चरित्र कभी भी अधिक विश्वास के योग्य न रहा था। किन्तु इस समय पेशवा दरबार का, हैदर के बेटे के ख़िलाफ़ विदेशियों के हाथों में खेल जाना, निस्सन्देह अत्यन्त अफ़सोसनाक था। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों, मराठों और निज़ाम में सन्धि हो गई। इस सन्धि के बारे में उस समय के प्रसिद्ध अंगरेज़ नीतिज्ञ फ़ाक्स ने कहा था कि वह वास्तव में एक वास्तविक "नरेश को मिटा देने के उद्देश्य से डकैती की साज़िश थी।"‡

इंगलिस्तान के मंत्रियों ने समाचार पाते ही फ़ौरन कुछ गोरी फ़ौज और पांच लाख पाउण्ड नक़द बतौर क़र्ज़ कार्नवालिस की मदद के लिए इंगलिस्तान से रवाना किए।

**Historical Sketches*, by Colonel Wilks, vol. iii, p. 38.

†In his letter to George Forster dated October 23, 1787. Lord Cornwallis wrote:—"If the Marathas have engaged or resolved to keep peace with Tipoo, it is not probable that our solicitations would induce them to depart immediately from that plan." Forster was therefore instructed to spare no pains to incite Marathas "to form a close connexion and alliance against Tipoo as a common enemy."

‡A plundering confederacy for the purpose of extirpating a lawful prince."—Fox.

टीपू के साथ युद्ध का बहाना

तमाम तैयारी पूरी हो गई। कार्नवालिस के लिए अब केवल कोई बहाना ढूंढ़ना बाक़ी था। कहते हैं कि त्रिवानकुर के राजा और टीपू में कुछ झगड़ा चला आता था। त्रिवानकुर के राजा को यह कह कर भड़काया गया कि टीपू तुम पर हमला करने का इरादा कर रहा है। उस समय के तमाम पत्रों और उल्लेखों में से साबित होता है कि टीपू का त्रिवानकुर पर हमला करने का कतई कोई इरादा न था। मद्रास के गवर्नर हालैण्ड के एक पत्र में यह भी लिखा है कि—"कम्पनी से लड़ने का टीपू का बिल्कुल इरादा न था और यदि कोई बात शिकायत की भी थी, तो वह उन्हें आपस में पत्र-व्यवहार द्वारा तय करने को राज़ी था।" टीपू ने खुद अंगरेज़ों को यक़ीन दिलाया कि मेरा इरादा न शान्ति भंग करने का है और न त्रिवानकुर की प्राचीन रियासत पर हमला करने का है। कर्नल विल्क्स लिखता है कि टीपू "लड़ाई के लिए तैयार न था।" किन्तु कार्नवालिस को अपने मालिकों की आज्ञा मिल चुकी थी। वह सन् 1784 की सन्धि को पैरों तले रौंद कर, जिस तरह हो, टीपू को मिटाने और भारतीय ब्रिटिश राज्य की सीमाओं को बढ़ाने का संकल्प कर चुका था। उसने मद्रास के गवर्नर को जवाब में लिखा कि "टीपू का तैयार न होना ही कम्पनी के लिए सबसे अच्छा मौक़ा है।" टीपू को बदनाम करने और अपने अन्याय को लोगों की नज़रों में जायज़ क़रार देने के लिए टीपू के अन्यायों और अत्याचारों के अनेक झूठे क़िस्से गढ़ कर चारों ओर फैलाए गए, जिनमें से अनेक अभी (1929) तक भारतीय स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में पाए जाते हैं।

त्रिवानकुर की सहायता के नाम पर युद्ध छेड़ा गया, किन्तु इसके बाद की तमाम कार्रवाईयों में त्रिवानकुर के राजा का कहीं नाम भी नहीं आता।

युद्ध का प्रारम्भ और टीपू की विजय

सबसे पहले जून सन् 1790 में मद्रास से एक फ़ौज जनरल मीडोज़ के अधीन मैसूर पर हमला करने के लिए रवाना हुई। इस फ़ौज के साथ बहुत सी फ़ौज कर्नल मैक्सवेल के अधीन बंगाल की थी। टीपू अपनी सेना सहित मुकाबले के लिए आगे बढ़ा। मीडोज़ ने टीपू के कई सामन्तों को लोभ देकर अपनी तरफ़ फोड़ लिया। अनेक स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुए, जिनके विस्तार में पड़ने की ज़रूरत नहीं है। अन्त में टीपू की वीरता और उसके बढ़े हुए युद्धकौशल की वजह से बजाय इसके कि अंगरेज़ी सेना मैसूर का कोई हिस्सा विजय कर सकती, टीपू की सेना ने कम्पनी की सेना को पीछे भगाते-भगाते मद्रास तक पहुंचा दिया। टीपू ने फिर कर्नाटिक के काफ़ी इलाक़े पर क़ब्जा कर लिया और जनरल मीडोज़ को जगह-जगह ज़बर्दस्त हार खाकर, जान और माल का नुकसान उठा कर, नाकाम मद्रास लौट जाना पड़ा।

तीन-तीन शत्रुओं का एक साथ मुकाबला

मीडोज़ की हार सुन कर कार्नवालिस ने सेना की बागडोर अपने हाथों में ले ली। 12 दिसम्बर, सन् 1790 को वह एक बहुत बड़ी फ़ौज लेकर कलकत्ते से मद्रास के लिए रवाना हुआ। मुमकिन है कि कार्नवालिस और उसकी वह नई सेना भी टीपू को वश में करने के लिए काफ़ी न होती। किन्तु इस बीच निज़ाम और मराठों की सेनाएं अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुंच चुकी थी। मालूम नहीं, नाना फड़नवीस उस समय पूना में मौजूद था

20—220 M of I&B/80

या नहीं और यदि था, तो दरबार में उसका कहां तक प्रभाव था। जो हो, पेशवा दरबार का उस समय अंगरेज़ों के हाथों में खेल कर उन्हें उस घोर अन्याय में मदद देना न केवल टीपू, बल्कि तमाम भारतीय राजशक्तियों के भविष्य के लिए अशुभसूचक था। इस सब के अलावा हैदर की अदूर-दर्शिता का नतीजा भी इस समय टीपू को भोगना पड़ा। टीपू के तमाम यूरोपियन नौकर यानी उसकी सेना के यूरोपियन अफ़सर और सिपाही ऐन मौके पर शत्रु से जा मिले। कार्नवालिस ने गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन तमाम लोगों को, जिन्हें हैदर ने नौकर रखा था, धन का लोभ देकर अपनी ओर कर लिया। पांच लाख पाउण्ड नक़द कार्नवालिस को इस तरह के कामों के लिए विलायत से क़र्ज़ मिल चुके थे। इतिहास-लेखक थार्नटन लिखता है :

> **"टीपू सुलतान के यूरोपियन नौकर जिस तरह पहले अपनी विद्या और अपने कौशल को टीपू की रक्षा करने के लिए काम में लाते थे, उसी तरह अब वे अपनी उन्हीं ताक़तों को टीपू के नाश के लिए काम में लाने को हर तरह तैयार हो गए।"** *

टीपू की सेना में विश्वासघात

मीर हुसैनअली खां किरमानी लिखता है कि टीपू के कुछ अमीरों और सरदारों को भी अंगरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ लिया था। टीपू जो इस युद्ध के लिए पहले से तैयार न था, एक ओर अंगरेज़ों, मराठों और निज़ाम, तीन-तीन ताक़तों की सेनाओं द्वारा कई तरफ़ से घिर गया, और दूसरी ओर, उसकी अपनी सेना में विश्वासघातक पैदा हो गए।

'शोकजनक संहार'

इस पर भी कार्नवालिस का काम इतना आसान न था। टीपू ने वीरता के साथ अपने तीनों शत्रुओं का मुक़ाबला किया। कई महीने युद्ध जारी रहा। उस युद्ध की अनेक लड़ाइयों को विस्तार के साथ बयान करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अकेला टीपू इस तरह के तीन शत्रुओं का मुक़ाबला इन हालतों में कब तक कर सकता था? अन्त में टीपू को पीछे हटना पड़ा, यहां तक कि बंगलौर का नगर अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। बंगलौर विजय के बाद कार्नवालिस की आज्ञा से उसकी सेना ने बंगलौर निवासियों के साथ जो व्यवहार किया, उसे इतिहास-लेखक मिल शोकजनक संहार† कह कर बयान करता है। बंगलौर के नगर को जी भर कर लूटा गया।

श्रीरंगपट्टन पर अंगरेज़ों की चढ़ाई

बंगलौर लेने के बाद कार्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन पर चढ़ाई की। जिस समय अंगरेज़ी सेना राजधानी के निकट पहुंची, टीपू ने अपने एक दूत के हाथ अनेक ऊंट फलों से लदवा कर सुलह की इच्छा के चिह्न स्वरूप कार्नवालिस की सेवा में भेजे, किन्तु कार्नवालिस ने उन फलों को बिना हाथ लगाए लौटा दिया। टीपू के दूत से उसने सुलह की बातचीत करने तक से इन्कार कर दिया। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि लूट के लोभ

* "Tipu's European servants were now quite as ready to exercise their skill and knowledge for his destruction as they had previously been assiduous in using them for his defence."—*History of British India,* by Thornton.

† "Deplorable carnage."—Mill.

और यश की इच्छा ने इस समय भारत के अंगरेज़ों को अन्धा कर रखा था। और वे टीपू और मैसूर निवासियों के साथ उस अमानुषिक व्यवहार पर उतारू थे, जिसका कोई सभ्य क़ौम अपने बुरे-से-बुरे शत्रु के साथ विचार तक नहीं कर सकती।‡

मीडोज की हार

टीपू ने अपनी शक्ति पर युद्ध जारी रखा। साथ ही, उसने फिर कार्नवालिस के साथ सुलह की बातचीत करने की कोशिश की। वह अपनी उस समय की अवस्था खूब समझ रहा था। किन्तु कार्नवालिस ने इस बार टीपू के दूत को अपने सामने तक न आने दिया। आखिरकार श्रीरंगपट्टन का मोहासरा शुरू हुआ। टीपू ने फिर अंगरेज़ों और मराठों, दोनों से सुलह की बातचीत शुरू की। इस बीच जनरल मीडोज़ ने कार्नवालिस की इजाज़त से सोमरपीठ के प्रसिद्ध बुर्ज़ पर हमला किया। सोमरपीठ उस समय 'श्रीरंगपट्टन के किले की नाक कहलाता था। सय्यद गफ्फ़ार इस मोर्चे का रक्षक था। सय्यद गफ्फ़ार ने खूब वीरता के साथ जनरल मीडोज़ का मुकाबला किया। घमासान संग्राम हुआ, जिसमें मीर किरमानी के अनुसार दो हज़ार अंगरेज़ सिपाही मैदान में काम आए। पराजित अंगरेज़ सेनापति को अपने बचे हुए आदमियों सहित पीछे लौट आना पड़ा। लिखा है कि जनरल मीडोज़ को इस पराजय पर इतनी लज्जा आई कि उसने अपने खेमे में जाकर आत्महत्या करनी चाही। उसने अपनी पिस्तौल का उपयोग किया। पहली गोली उसकी बगल को छीलती हुई निकल गई। उसने दोबारा पिस्तौल चलानी चाही, इतने में कर्नल मैल्कम ने, जो आवाज़ सुन कर खेमे में घुस आया था, मीडोज़ के हाथ से पिस्तौल छीन ली। कार्नवालिस को इस घटना की सूचना दी गई। उसने आकर मीडोज़ को सान्त्वना दी और अब टीपू के साथ सुलह की इच्छा प्रकट की।

हैदरअली की समाधि का अपमान

श्रीरंगपट्टन से पूरब की ओर लालबाग़ नाम का एक बड़ा सुन्दर बाग़ है, जिसमें हैदरअली की समाधि बनी हुई है। टीपू सुलतान ने अपने पिता की याद में इस बाग़ और समाधि के सौन्दर्य को बढ़ाने में काफ़ी धन खर्च किया था। लार्ड कार्नवालिस ने इस बाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहां के लम्बे 'सर्व' और अन्य सुन्दर वृक्षों को कटवा डाला और हैदरअली की समाधि का अपमान किया। टीपू को यह देख कर बड़ा दुख हुआ।

श्रीरंगपट्टन की सन्धि

टीपू और मराठों के बीच भी इस समय सुलह के लिए पत्र-व्यवहार हो रहा था। अब तक अंगरेज़ों ने टीपू पर जो विजय प्राप्त की थी, वह अधिकतर मराठों और निज़ाम ही के बल पर की थी। कहा जाता है कि इस अवसर पर मराठों और खास कर नाना फड़नवीस ने कार्नवालिस को सुलह के लिए मजबूर किया। मराठों की इच्छा के विरोध का साहस अंगरेज़ न कर सकते थे। अन्त में 23 फरवरी, सन् 1792 को श्रीरंगपट्टन में

---

‡ "......the fact is that the English in India, at that time, had been worked up into a mixture of fury and range against Tipoo more resembling the passion of savages against their enemy......than the feelings with which a civilized nation regards the worst of its foes."—Mill, vol. v., p. 278.

दोनों दलों के बीच सन्धि हो गई, जिसके अनुसार टीपू का ठीक आधा राज उससे लेकर कम्पनी, निज़ाम और मराठों ने आपस में बराबर-बराबर बांट लिया ।

इसके अलावा, असहाय टीपू ने तीन सालाना क़िस्तों में, तीन करोड़ तीस हज़ार रुपये दण्डस्वरूप देने का वादा किया । और इस दण्ड की अदायगी के समय तक के लिए अपने दो बेटे, जिनमें शहज़ादे अब्दुल ख़ालिक़ की उम्र दस साल की और शहज़ादे मुईज़ुद्दीन की उम्र आठ साल की थी, बतौर बन्धकों के अंगरेज़ों के हवाले कर दिए ।

टीपू की प्रतिज्ञा

इस तरह दूसरे मैसूर युद्ध का अन्त हुआ । टीपू के दिल पर इस युद्ध का इतना ज़बर-दस्त असर हुआ कि मीर हुसैनअली खां किरमानी लिखता है कि सन्धि के दिन ही टीपू ने पलंग और बिस्तर पर सोना छोड़ दिया । उस दिन से मृत्यु के समय तक वह केवल चन्द टुकड़े 'खादी' के ज़मीन पर डाल कर उनके ऊपर सोया करता था । यों तो उस समय तक भारत का बना तमाम कपड़ा ही हाथ का कता और हाथ का बुना होता था, किन्तु किरमानी लिखता है कि 'खादी' उस समय एक मोटे क़िस्म के कपड़े को कहते थे, जो ख़ेमे बनाने के काम में आता था ।

अगले साल, यानी सन 1793 ई० में, कार्नवालिस ने फ्रांन्सीसियों के तमाम भारतीय इलाक़ों पर हमला करके उन्हें अंगरेज़ कम्पनी के अधीन कर लिया ।

कार्नवालिस और दिल्ली सम्राट

इसके बाद भारत के अन्य नरेशों के साथ कार्नवालिस के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है । दिल्ली का सम्राट अभी तक कहने के लिए समस्त भारत का अधिराज था । अंगरेज़ क़ायदे के अनुसार उसकी प्रजा थे । वारेन हेस्टिंग्स के समय तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के लिए वे दिल्ली दरबार को सालाना ख़िराज भेजा करते थे । हेस्टिंग्स ने माधोराव सिंधिया के साथ मिल कर दिल्ली सम्राट को मराठों के हवाले करवा दिया, और कलकत्ते से दिल्ली ख़िराज जाना रुक गया । उसके बाद सर जान मैक्फरसन केवल अस्थायी गवर्नर-जनरल था । इस दरमियान दिल्ली से ख़िराज की मांग बराबर आती रही । कार्नवालिस के समय में सम्राट की ओर से फिर मांग आई । कार्नवालिस ने अब सदा के लिए ख़िराज देने से इन्कार कर दिया । इसलिए नहीं कि दिल्ली सम्राट ने इस बीच अंगरेज़ों का कोई अहित किया हो, बल्कि केवल इसलिए क्योंकि दिल्ली का सम्राट अब काफ़ी बलहीन हो चुका था और अंगरेज़ अपना बल काफ़ी बढ़ा चुके थे । मुग़ल दरबार में इतनी हिम्मत न थी कि सेना भेज कर कलकत्ते से ख़िराज वसूल कर सके । इस तरह बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त अब दिल्ली साम्राज्य से कट कर अंगरेज़ कम्पनी के शासन में आ गए, यद्यपि इसके बाद भी अंगरेज़ अपने को दिल्ली सम्राट की प्रजा कहते रहे ।

कार्नवालिस और नवाब अवध

अवध के नवाब के साथ कार्नवालिस का सलूक इसी तरह का था । कम्पनी की एक विशाल सेना, जिसके सब अफ़सर अंगरेज़ थे, जबरदस्ती अवध के ऊपर मढ़ दी गई थी । नवाब को उनका खर्च देना पड़ता था । वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब से वादा किया था

कि भविष्य में जब ज़रूरत न रहेगी, तो यह सेना अवध से वापस बुला ली जाएगी। नवाब ने अब उस वादे को पूरा करने के लिए कार्नवालिस से प्रार्थना की। किन्तु इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

> **"गोकि उस समय अवध के सामने कोई खास खतरा न था, और जितने रुपये नवाब से कम्पनी को लेने का हक़ था, उससे ज्यादा फतहगढ़ की इस सेना पर नवाब का खर्च होता था, फिर भी कार्नवालिस अपने इस निश्चय पर कायम रहा कि सेना फ़तहगढ़ से न हटाई जाए।"***

इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य-पिपासा को भविष्य में शान्त करने के वास्तविक उद्देश्य से पचास लाख रुपये सालाना से ऊपर का दण्ड ज़बरदस्ती कम्पनी के मित्र अवध के नवाब से वसूल किया जाता रहा।

कार्नवालिस और निज़ाम

कम्पनी के दूसरे मित्र निज़ाम के साथ कार्नवालिस का सलूक इससे बेहतर न था। इंगलिस्तान से चलते समय डाइरेक्टरों ने उसे हिदायत कर दी थी कि 'गुण्टूर का इलाक़ा' किसी तरह निज़ाम से ले लिया जाए। कार्नवालिस जानता था कि यदि मैसूर युद्ध से पहले निज़ाम पर यह बात ज़ाहिर हो गई, तो निज़ाम के टीपू से मिल जाने का डर है। वह मौके की ताक में रहा। युद्ध के बाद जब उसने निज़ाम को निर्बल पाया, तब अपने एक अफसर, कप्तान केन्नावे, को इस काम के लिए निज़ाम के दरबार में भेजा। इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

> **"तय हो गया था कि जब तक कप्तान केन्नावे दरबार में पहुंच न जाए, तब तक निज़ाम को यह खबर न होने पाए कि उससे गुण्टूर मांगे जाने की तजवीज़ की जा रही है × × × मद्रास की गवर्नमेण्ट ने इधर-उधर के बहाने लेकर एक सेना गुण्टूर के आसपास पहुंचा दी, और इससे पहले कि कोई दूसरी शक्ति लड़ने के लिए या एतराज करने के लिए पहुंच सके, खुद उस इलाके पर कब्जा करने की तैयारी कर ली।"†**

निज़ाम पहले ही कायर और कमज़ोर था। युद्ध की ज़रूरत भी न पड़ी और गुण्टूर का इलाक़ा कम्पनी के हाथों में आ गया। कहा जाता है कि किसी डाकू की मां ने सिकन्दर के सामने विजेताओं और डाकुओं की परस्पर समानता दरशाई थी। निस्सन्देह उसे इससे बढ़ कर मिसाल न मिल सकती।

कम्पनी के मुलाजिमों की नियुक्ति

अन्त में लार्ड कार्नवालिस के शासनकाल की और कुछ कार्रवाईयों और उसके 'शासन-सुधारों' पर नज़र डालना ज़रूरी है। सब से पहले उसके समय के कम्पनी के नौकरों की नियुक्ति का ढंग लें। इतिहास में दर्ज है कि उस समय के इंगलिस्तान के युवराज

---

*Mill, vol. v, p. 222.

† "No intimation was to be given to the Nizam of the proposed demand, till after the arrival of Captain Kennaway at his Court......the Government of Madras, under spacious pretences, conveyed a body of troops to the neighbourhood of the Sircar; and held themselves in readiness to seize the territory before any other power could interpose, either with arms or remonstrance."—Mill. vol. v, p. 225.

(प्रिन्स ऑफ वेल्स) ने अनेक बार अपने अनेक मित्रों या आश्रितों की भारत की ख़ास-ख़ास नौकरियों के लिए सिफ़ारिश की और कार्नवालिस बराबर युवराज की इच्छा पूरी करता रहा। एक बार युवराज ने कार्नवालिस को लिखा कि आप 'एलीकान' नामक एक काले को बनारस की फौजदारी की चीफ़ जजी से हटा कर पैल्लेग्राइन ट्रीब्ज़ नामक एक अंगरेज़ को उसकी जगह नियुक्त कर दें । पैल्लेग्राइन ट्रीब्ज़ इंगलिस्तान के एक बदनाम महाजन का बेटा था और युवराज को उस महाजन का कुछ क़र्जा अदा करना था। कार्नवालिस इस बार युवराज की इच्छा पूरी न कर सका। उसने युवराज को लिखा कि अली इब्राहीम खां (जिसे युवराज ने 'काला एलीकान' लिखा था) जो कि हिन्दोस्तानी है, फिर भी "भारत के सबसे अधिक योग्य और सबसे अधिक सम्मानित सरकारी अफ़सरों में से है।" जबकि ट्रीब्ज़ नौजवान और बिल्कुल नातजुर्बेकार है; और एक इतने जिम्मेदारी के ओहदे पर उसे नियुक्त करना केवल मज़ाक उड़वाना होगा, इत्यादि।

कार्नवालिस ने अब कम्पनी के बढ़े हुए राज को स्थायी बनाने की तदबीरें शुरू कीं। सबसे पहले उसने देखा कि उस समय ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर कम्पनी के ज्यादातर यूरोपियन नौकर अयोग्य और रिश्वतख़ोर थे। कार्नवालिस ने इसे महसूस किया और इसके दो इलाज किए। एक यह कि उसने नियम कर दिया कि आइन्दा सिवाय छोटी-छोटी नौकरियों के कम्पनी से इलाके में कोई बड़ी नौकरी किसी हिन्दोस्तानी को न दी जाए। दूसरे उसने कम्पनी के यूरोपियन मुलाज़िमों की तनख़ाहें बढ़ा दीं।

भारत की ग्राम पंचायतें

अत्यन्त प्राचीन काल से भारत की 99 फ़ीसदी आबादी ग्रामों में रहती रही है। हर गांव में सदा से एक ग्राम पंचायत होती थी। इतिहास-लेखक टारेन्स के शब्दों में "भारत-वासियों का सारा सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक जीवन इन्हीं ग्रामों और ग्राम पंचायतों के आधार पर क़ायम था और इन्हीं का बना हुआ था"* इन ग्राम पंचायतों के संगठनों और उनके कामों के बारे में हम उस समय के केवल एक-दो अंगरेज़ इतिहास-लेखकों की गवाही पेश करते हैं। टारेन्स लिखता है :

> **"उस प्राचीन काल से लेकर, जिसकी कि कोई याद तक बाकी नहीं रही, हर गांव के बड़े-बूढ़ों की एक पंचायत गांव पर शासन करती रही है, गांव के पंचायती कामों को चलाती रही है और गांव भर के हितों की रक्षा करती रही है। पंचों की तादाद पहले पांच हुआ करती थी, अब अकसर पांच से अधिक होती है। किन्तु पंचों में सदा सब बिरादरियों के चुने हुए लोग शामिल रहे हैं। जब कभी कोई झगड़ा होता है, पंच ही प्राचीन मर्यादा के अनुसार उसका फ़ैसला करते हैं, और जब कभी कोई नए ढंग का प्रश्न आ खड़ा होता है, तब पंच ही नए नियम बना कर आइन्दा के लिए मर्यादा क़ायम करते हैं।"** †

---

* "......the village Community was, as it is still, the unit of social, industrial and political existence."—Torrens' *Empire in Asia,* p. 100.

† "Time out of mind, the village and its common interests and affairs have been ruled over by a council of elders, anciently five in number, now frequently more numerous, but always representative in character, who, when any dispute arises, what is the customary law, and who, when any new or unprecedented case occurs occasionally legislate."—Ibid, p. 101.

सर जान मैलकम लिखता है :

"भारत की म्युनिसिपल और ग्राम पंचायतों को छोटे बड़े सब लोगों ने मिल कर जो अधिकार दे रखे थे, उनके बल पर ये पंचायतें अपने-अपने दायरे के अन्दर पूरी तरह शान्ति और व्यवस्था कायम रख सकती थीं । मध्य भारत में अन्यायी शासकों ने भी कभी इन पंचायतों के स्वत्वों और अधिकारों पर हमला नहीं किया, जबकि तमाम न्यायशील नरेशों की कीर्ति और सर्वप्रियता का खास सबब यही होता था कि वे इन पंचायतों का पूरा खयाल रखते थे।"*

सर टामस मनरो, जो हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों से भी अच्छी तरह परिचित था, लिखता है :

"हिन्दोस्तान के हर गांव में बाकायदा एक पंचायत (म्युनिसिपैल्टी) होती थी जो गांव की मालगुजारी और पुलिस, दोनों का इन्तज़ाम करती थी और जो बहुत बड़े दरजे तक, मुजरिमों को सज़ा देने और मुक़दमों के फ़ैसले करने का भी काम करती थी।"†

सर टामस मनरो ने बड़े विस्तार के साथ बयान किया है कि इन सुसंगठित ग्राम पंचायतों में कौन-कौन कर्मचारी होते थे, उनके क्या-क्या अधिकार और क्या-क्या कर्तव्य होते थे, गांव की मालगुज़ारी वसूल करने वाला (कलेक्टर) और गांव में अमन-अमान क़ायम रखने वाला (मैजिस्ट्रेट) ये दो अलग-अलग अफ़सर एक-दूसरे से बिल्कुल स्वतंत्र होते थे। ग्राम-निवासियों के जान-माल की रक्षा के लिए हर पंचायत के अधीन 'तहारों' यानी कांस्टेबलों का एक दल होता था, इत्यादि ।

टारेन्स लिखता है कि भारत की इन ग्राम पंचायतों में सबसे विचित्र व्यवस्था जूरियों की थी। दीवानी, फ़ौजदारी, हर मुक़दमे के लिए अलग-अलग जूरी या अस्थायी पंच चुने जाते थे। इनका फ़ैसला सबके लिये मान्य होता था। इन्हें जनता चुनती थी। उच्च-से-उच्च चरित्र, साहस और त्यागवाले मनुष्य इनके मुखिया चुने जाते थे। मैलकम लिखता है कि ये मुखिया आमतौर पर ऐसे लोग होते थे, जो हर न्यायशील नरेश की सहायता करते थे और हर अन्यायी नरेश का साहस के साथ विरोध करते थे और गांव के जीवन की अन्याय से रक्षा करते थे। हर श्रेणी और हर बिरादरी के लोगों में से ये पंच चुने जाते थे। मुद्दई और मुद्दालै, दोनों को इनके चुनाव पर एतराज़ करने का हक़ होता था। ये पंचायतें ही अत्यन्त प्राचीन समय से लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के समय तक भारतीय न्याय-पद्धति के रंग-पट्ठे थीं। भारतवासियों के चरित्र पर इनका प्रभाव बड़ा गहरा पड़ता था : मैलकम लिखता है : "यदि कभी किसी आपत्ति के समय कोई मनुष्य अपना घर या खेत छोड़ कर

---

* "The Municipal and village institutions of India were competent, from the power given them by the common assent of all ranks, to maintain order and peace within their respective circles. In Central India, their rights and privileges never were contested even by tyrants, while all just princes founded their chief reputation and claim to popularity on attention to them."—Malcolm, vol. i, Chap. xii, Ibid, p. 101.

† "In all Indian villages there was a regularly constituted municipality, by which its affairs, both of revenue and police, were administered, and which exercised, to a very great extent, Magisterial and Judicial authority"—Sir Thomas Munro, Ibid, p. 101.

कहीं चला जाता था, तो वह या उसकी औलाद, जब चाहे, अपने झोंपड़े या अपने खेत पर फिर से आकर कब्जा कर लेती थी, न किसी दीवार के लिए कोई झगड़ा होता था और न किसी खेत के लिए मुक़दमेबाजी ।"* हर किसान अपनी ज़मीन का पूरा मालिक समझा जाता था । मनरो लिखता है कि उस समय के भारतवासी "सरल, निष्पाप और ईमानदार होते थे और इतने सच्चे थे, जितने संसार के किसी भी दूसरे देश के लोग हो सकते थे ।"†

ग्राम पंचायतों का नाश

इन हज़ारों बरसों की ग्राम पंचायतों पर सबसे पहले हमला उस समय हुआ जबकि बंगाल के अन्दर मीर जाफ़र और मीर कासिम के शासनकाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भयंकर तिजारती तथा कारबारी लूट और अनेक मौक़ों पर बेपर्दा और खुली डकैतियों का दौर शुरू हुआ । दूसरा बाक़ायदा हमला भारत की ग्राम पंचायतों पर सन् 1773 में हुआ, जबकि वारेन हेस्टिंग्स के शासनकाल में इंगलिस्तान के अन्दर 'रेगुलेशन ऐक्ट' नाम का क़ानून पास हुआ, जिसके अनुसार वारेन हेस्टिंग्स के मशहूर दोस्त सर एलिजाह इम्पे के अधीन कलकत्ते में पहली अंगरेज़ी हाईकोर्ट क़ायम हुई । उस समय से ही टारेन्स लिखता है :

"राजकुलों के इससे पहले के सब परिवर्तनों में मुसलमान या मराठे, सब भारतीय नरेश जिन (म्युनिसिपल) पंचायतों का पूरा-पूरा लिहाज़ रखते थे और जिन्हें उन लोगों ने निस्सन्देह बिल्कुल ज्यों-का-त्यों कायम रखा था, अब नए विदेशी शासकों ने उन प्राचीन पंचायतों का पूरी तरह निरादर किया और उनमें से अधिकांश को निर्दयता के साथ उखाड़ कर फेंक दिया । देशी पंचों की अदालत की जगह अब एक-एक स्वेच्छाचारी विदेशी जज बैठा दिया गया ।"‡

आगे चल कर टारेन्स लिखता है :

"कोई भी समझदार और न्यायशील इतिहास-लेखक इन कामों पर बिना आश्चर्य प्रकट किए और इन्हें निन्दनीय ठहराए इनका उल्लेख नहीं कर सकता ।§

नई अंगरेज़ी अदालतें

कार्नवालिस ने देश भर में नई अंगरेज़ी अदालतें क़ायम करके इन भारतीय ग्राम पंचायतों के रहे-सहे चिह्न का अब सदा के लिए अन्त कर दिया । कार्नवालिस की इन करतूतों को 'शासन-सुधारों' का नाम दिया जाता है । इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दरशाया है कि किस प्रकार कार्नवालिस के इन 'शासन सुधारों' (?)

---

* "Every wall of a house, every field, was taken possession of by the owner or cultivator without dispute or litigation."—Malcolm, vol. ii, Chap. i, Ibid, p. 100.

† "Simple harmless, honest and having as much truth in them as any people in the world."—Munro, vol. i, p. 280, Ibid, p. 100.

‡ "Yet these Municipal institutions, which confessedly had been scrupulously respected in all former changes of dynasty, whether Mohammadan or Maratha, were henceforth to be disregarded, and many of them to be rudely uprooted by the new system of foreign administration. Instead of the native Panchayat, there was established an arbitrary Judge."—Ibid, pp. 102, 103.

§ "No wise or just historian will note these things without expression of wonder and condemnation."—Ibid, p. 103.

ने—"भारत की प्राचीन ग्राम पंचायतों का सत्यानाश कर दिया, नई अंगरेज़ी कचह-रियों की तमाम कार्रवाइयों को जान-बूझ कर लम्बा और पेचीदा बना दिया, वकीलों को जन्म दिया और इस तरह के क़ानून बना दिए कि बिना वकील की मदद के किसी मुक़दमे का चल सकना क़रीब-क़रीब नामुमकिन हो गया, ग़रीबों के लिए न्याय प्राप्त कर सकना नामुमकिन कर दिया, सरकार के लिए एक तरह के नियम और मामूली प्रजा के लिए दूसरी तरह के नियम रख कर सरकार के लिए अपनी मालगुज़ारी वसूल कर सकना सस्ता और आसान कर दिया, इंगलिस्तान के हज़ारों निकम्मे लड़कों की जीविका का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया और भारतवासियों में मुक़दमेबाजी, जालसाजी, दरोग़-हलफ़ी, रिश्वतसितानी, फूट और बरबादी के फैलने के लिए मैदान साफ़ कर दिया।"*

इन सब सुधारों (?) और उनके नतीजों को यहां और अधिक विस्तार के साथ बयान करना व्यर्थ है। निस्सन्देह, भारतवासियों के चरित्र पर इनका असर सब से अधिक हानिकर हुआ।

वकालत की नई प्रथा

सुप्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान एस० लाब लिखता है :

"हमारी न्याय पद्धति कितनी ज़लील है! वकालत की जिस यूरोपियन प्रथा को हम इस देश में प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, क्या उससे अधिक सदाचार से गिरी हुई किसी दूसरी प्रथा का अनुमान भी किया जा सकता है! ×××× क्या हमारी अदालतें रिश्वत लेने-देने के अड्डे नहीं हैं? और क्या मुक़दमेबाजी का शौक़ क़ौम के दिमाग़ पर लगनी बीमारी की तरह असर करके उसे पूरी तरह सदाचार भ्रष्ट नहीं कर रहा है? जहां तक हो सके, वहां तक लोगों को अपने मुक़दमे आपस ही में तय करने का मौक़ा क्यों न दिया जाए?"†

कितना सच्चा चित्र है? किन्तु कार्नवालिस खूब समझता था कि किसी भी परतन्त्र देश में पराजित क़ौम का चरित्र भ्रष्ट कर देने और उसे चरित्रभ्रष्ट रखने में ही विदेशी शासकों का सबसे अधिक बल है।

इस्तमरारी बन्दोबस्त

लार्ड कार्नवालिस के शासनकाल की सब से अधिक महत्व की घटना बंगाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त बताई जाती है। असली बात यह थी कि जिस समय कम्पनी ने तीनों प्रान्तों की दीवानी दिल्ली सम्राट से प्राप्त की और धीरे-धीरे उन प्रान्तों पर अपना शासन जमाना शुरू किया, उस समय से उन्होंने हर जगह नया बन्दोबस्त करके सरकारी लगान बेहद बढ़ा दिया, जिसका ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। एडमन्ड

---

*Mill, vol. v, p. 355, etc.

† "Look at our miserable legal system. Can any thing be conceived more thoroughly immoral than the system of Western Advocacy which we are doing our best to introduce into this country?......are not our law-courts hot-beds of corruption, and is not the love of litigation contaminating and thoroughly perverting the national mind? Why not let the people settle their own disputes as far as possible?"—S. Lobb, the famous English Positivist.

बर्क लिखता है कि लगान बेहद बढ़ा दिए जाने की वजह से ही सारा "देश वीरान दिखाई देने लगा।"* इस लगान बढ़ाए जाने ही का एक नतीजा बंगाल भर के अन्दर सन् 1770 का वह भयंकर दुष्काल था, जिसके समान आपत्ति देश पर पहले कभी न आई थी और जिसमें लाखों गांव उजड़ गए।

जिस समय कार्नवालिस बंगाल पहुंचा, कम्पनी का खज़ाना खाली पड़ा था, अच्छी-से-अच्छी ज़मीन बिना ज़ोती-बोई और वीरान पड़ी हुई थी और अधिकांश ज़मींदारों के ज़िम्मे कई-कई साल का लगान बाक़ी चला आ रहा था, जिसे चुका सकना उनकी शक्ति से बिल्कुल बाहर था। इस शोचनीय अवस्था में कम्पनी को दिवाले से बचाने के लिए केवल एक ही उपाय हो सकता था। वह यह था कि नए सिरे से बन्दोबस्त करके सदा के लिए एक मुनासिब लगान तय कर दिया जाए। कार्नवालिस से दस साल पहले कुछ अंगरेज़ अफ़सर यह सलाह दे चुके थे और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कार्नवालिस को भारत भेजते समय उसे इस्तमरारी बन्दोबस्त करने की हिदायत कर दी थी।

इस इस्तमरारी बन्दोबस्त के साथ-साथ कार्नवालिस ने यह क़ानून भी पास कर दिया कि जिन-जिन ज़मींदारों के ज़िम्मे लगान बाकी है, उनकी ज़मींदारियां फ़ौरन नीलाम कर दी जाएं और ज्यों ही आइन्दा किसी के ज़िम्मे बक़ाया निकले, त्यों ही उसकी ज़मीन नीलाम कर दी जाए और ऐसे मौक़ों पर बड़ी-बड़ी ज़मींदारियों के टुकड़े करके उन्हें अलग-अलग नीलाम किया जाए।

एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि कार्नवालिस के इस्तमरारी बन्दोबस्त के दस साल के अन्दर बंगाल भर की तमाम ज़मींदारियों की शकलें और उनके मालिक, सब बदल गए। इस प्रकार कार्नवालिस ने इस्तमरारी बन्दोबस्त के बहाने बंगाल के हज़ारों पुराने घरानों और तमाम बड़ी-बड़ी ज़मींदारियों का ख़ात्मा कर दिया और उनकी जगह नए छोटे-छोटे निर्बल और ख़ुशामदी ज़मींदार पैदा कर दिए।†

देश की दशा

कार्नवालिस के समय में हिन्दोस्तान का केवल थोड़ा-सा हिस्सा कम्पनी के अधीन था और बाक़ी बहुत हिस्सा मराठों, टीपू, निज़ाम और नवाब अवध के शासन में था, किन्तु दोनों हिस्सों की तुलना अत्यन्त शिक्षाप्रद थी। ब्रिटिश भारत चारों ओर उजाड़, दरिद्र और वीरान नज़र आता था और देशी भारत इधर से उधर तक हरा-भरा, खुशहाल और आबाद दिखाई देता था। देशी भारत के अन्दर की आपसी लड़ाइयां भी प्रजा की खुशहाली के लिए उतनी घातक न होती थीं, जितनी ब्रिटिश भारत का लगातार कुशासन और आए दिन की जायज़ और नाजायज़ लूट-खसोट। प्रजा के जान-माल की उस समय के ब्रिटिश भारत में कोई भी क़ीमत या हिफ़ाजत न थी। इस बात के समर्थन में उस समय के अनेक देशी और विदेशी लेखकों की गवाही पेश की जा सकती है। हम यहां केवल कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट से एक वाक्य नक़ल करते हैं। सन् 1812 की पांचवी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है :

* "The country has turned into a desert."—Edmund Burke.

†*Memorandum on the Revenue Administration of the Lower Provinces of Bengal* by J. Macneile, p. 9.

"राजशाही में डकैती खूब फैली हुई है। ×××× फिर भी लोगों की हालत की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में लोगों की जान और माल की कोई हिफ़ाजत नहीं की जाती। बंगाल के अधिकांश ज़िलों की यही हालत है।"*

वास्तव में, कम्पनी के शासन से पहले बुरे-से-बुरे समय में भी देश की कभी वह हालत न हुई थी, जो कम्पनी के शासन के तीस साल के अन्दर दिखाई दे गई।

सात साल भारत में शासन करने के बाद लार्ड कार्नवालिस सन् 1793 में विलायत लौट गया। उसे दोबारा हिन्दोस्तान भेजा गया, किन्तु उसके चन्द महीने के अन्दर हिन्दोस्तान ही में उसकी मृत्यु हो गई।

भारत के अन्दर अंगरेज़ी राज की जड़ों को मजबूत और टिकाऊ करने में कार्नवालिस ने ख़ास हिस्सा लिया।

* "That dacoity is very prevalent in Raj Shaye......Yet the situation of the people is not sufficiently attended to. It can be denied, that, in point of fact, there is no protection for persons or property. Such is the state of things which prevails in most of the Zillahs in Bengal."—*The Fifth Report of* 1812.

बारहवां अध्याय

सर जान शोर

(1793–1798)

सर जान शोर की नियुक्ति

सर जान शोर वारेन हेस्टिंग्स के समय में बंगाल के अन्दर कम्पनी का एक मामूली नौकर रह चुका था। वारेन हेस्टिंग्स का वह पट्ट शिष्य था और वारेन हेस्टिंग्स ही के ज़रिए उसने इतनी तरक्की की।

इंगलिस्तान के मन्त्रियों और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने मिल कर जिस समय सर जान शोर को गवर्नर-जनरल बना कर भेजने का इरादा किया उस समय पार्लियामेण्ट में वारेन हेस्टिंग्स के ऊपर मुकदमा चल रहा था। एडमण्ड बर्क उस मुक़दमे में सरकारी वकील था। बर्क ने कम्पनी के डाईरेक्टरों को लिखा :

> **"× × × × हमें पता लगा है कि जिन जुर्मों का इलज़ाम वारेन हेस्टिंग्स पर लगाया जा रहा है, उनमें से कुछ में मिस्टर शोर वास्तव में हेस्टिंग्स का एक खास साथी और सहायक था। × × ×**
>
> **"ऐसी हालत में आपके लिए यह सोच लेना बुद्धिमानी होगी कि एक ऐसे आदमी को, जिसका चरित्र जाहिरा आप ही के क़ाग़ज़ात से अत्यन्त निन्दनीय मालूम होता है, सबसे ऊंचे और सबसे अधिक अधिकारयुक्त पद पर नियुक्त करने के क्या नतीजे हो सकते हैं × × ×।"***

बर्क ने इससे कहीं अधिक जोरदार पत्र इंगलिस्तान के 'भारत मन्त्री' हेनरी डण्डास के पास भेजा।

किन्तु इन पत्रों का इंगलिस्तान के अधिकारियों पर कोई असर न हुआ और 28 अक्तूबर, सन् 1793 को सर जान शोर ने कलकत्ते पहुंच कर गवर्नर-जनरल का काम संभाल लिया।

उसी साल पार्लियामेण्ट ने एक नए शाही चार्टर के ज़रिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ज़िन्दगी बीस साल के लिए और बढ़ा दी। हिन्दोस्तान का बना हुआ माल और ख़ास कर

---

* "......we have found Mr. Shore materially concerned as a principal actor and party in certain of the offences charged upon Mr. Hastings; ......

....

"In that situation, it is for the prudence of the court to consider the consequences which possibly may follow from sending out, in offices of the highest rank and of the highest possible power, persons whose conduct, appearing in their own Records, is, at the first view, very reprehensible; ......"—Letter from Edmund Burke to Farncis Baring, Chairman of the Court of Directors, dated October 14, 1792.

यहां का बुना कपड़ा उन दिनों इंगलिस्तान में खूब जाता और बिकता था। उसका इंगलिस्तान जाना बन्द करने के लिए उस समय इंगलिस्तान में ज़बरदस्त आन्दोलन जारी था। किन्तु यह कहानी दूसरे अध्याय में दी जाएगी।

मीर जाफ़र के उत्तराधिकारी अभी तक मुर्शिदाबाद की नुमायशी गद्दी पर बैठते चले आते थ। चुनांचे सर जान शोर के भारत पहुंचने के एक महीने पहले 37 साल की आयु में 23 साल तक सूबेदारी की गद्दी पर बैठने के बाद नवाब मुबारकुद्दौला की मृत्यु हुई। मुबारकुद्दौला के बारह लड़के और तेरह लड़कियां थीं, जिनमें सबसे बड़े लड़के वज़ीरुद्दौला के गद्दी पर बैठने का 28 सितम्बर, सन् 1793 को कलकत्ते में कम्पनी की ओर से बाक़ायदा एलान किया गया।

वारेन हेस्टिंग्स की दोहरी साज़िशें

एक पिछले अध्याय में पहले मराठा युद्ध और सन् 1782 की सालवाईवाली सन्धि का ज़िक्र आ चुका है। माधोराव नारायण उस समय पेशवा था। नाना फड़नवीस उसका प्रधान मन्त्री था और हत्यारे राघोबा को गोदावरी के तट पर कोपरगांव भेज दिया गया था। सन् 1784 के शुरू में कोपरगांव ही में राघोबा की मृत्यु हुई। उसका बेटा बाजीराव, जिसकी आयु 9 साल की थी, उस समय पूना में था।

माधोजी सिंधिया वारेन हेस्टिंग्स के हाथों की एक ख़ास कठपुतली था। माधोजी के साथ गुप्त सन्धियां और समझौते करके हेस्टिंग्स उसके ज़रिए एक ओर मराठों की शक्ति का नाश करना चाहता था और दूसरी ओर दिल्ली सम्राट के रहे-सहे मान और अधिकार का अन्त कर देना चाहता था। इंगलिस्तान पहुंच कर वारेन हेस्टिंग्स पर जो मुकदमा चला, उसमें एक इलज़ाम उस पर यह भी था—

> **"मुग़ल सम्राट के थोड़े से रहे-सहे इलाक़ों को छीन लेने के लिए वारेन हेस्टिंग्स मराठा राजा के प्रधान सेनापति माधोजी सिंधिया से मिल गया ; और जब कि एक ओर उसने अपना एक दूत इस काम के लिए दिल्ली भेज दिया कि वह वहां पर सम्राट और उसके वज़ीरों के साथ गुप्त साज़िशें जारी रखे × × × दूसरी ओर इस तमाम समय में वह सम्राट और उसके वज़ीरों के खिलाफ़ बराबर मराठों से मिला रहा; मराठों के साथ भी उसने दग़ा की और उनसे बहाना यह करता रहा कि मैं सम्राट् से तुम्हारे अधिकारों की रक्षा कर रहा हूं। इस तरह उसने उन सब के नाश की तदबीर की, और सब का नाश कर भी डाला।"***

* "......Warren Hastings did unite with the Captain-General of the Marhatta State, called Madhoji Scindhia, in designs against the few remaining territories of the Moghul Emperor; and that whilst he sent an agent to Delhi and carried on intrigues with the King and his ministers, ...he did all along concur with the Marhattas in their designs against the said King and his ministers, under the treacherous pretext of supporting the authority of the former against the latter and did contrive and effect the ruin of them all, ..."—One of the charges against Warren Hastings in his impeachment in England.

दिल्ली सम्राट् के साथ दग़ा

वारेन हेस्टिंग्स ही की सलाह से माधोजी सिंधिया ने एक ज़बरदस्त फ़ौज रखी, उस फ़ौज में यूरोपियन अफ़सर रखे और वारेन हेस्टिंग्स की ख़ास सिफारिश पर एक यूरोपियन, दी बौयन को उस फ़ौज का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। यही फ़ौज लेकर माधोजी ने दिल्ली के आस-पास के इलाकों पर हमला किया और सम्राट को कुछ समय के लिए एक तरह अपना क़ैदी बना लिया। अंगरेज़ उस समय तक सम्राट की प्रजा थे और बराबर अपने इलाकों के लिए सम्राट को ख़िराज़ दिया करते थे। वारेन हेस्टिंग्स ने बजाय सम्राट की सहायता करने के, माधोजी को हर तरह उकसाया और बाद में अंगरेज़ों ने सम्राट की असहाय अवस्था से लाभ उठा कर ख़िराज भेजना बन्द कर दिया।

माधोजी सिंधिया के नाश की तदबीरें

माधोजी के बढ़ते हुए बल को देख कर महाराष्ट्र मण्डल के दूसरे सरदारों को उन दिनों ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। अन्त में यह ईर्ष्या ही मराठों के नाश की सबसे बड़ी वजह हुई। कलकत्ते की कौन्सिल की कार्रवाई में दर्ज है कि एक बार कौन्सिल के कुछ सदस्यों ने यह शक ज़ाहिर किया कि माधोजी के बल का बढ़ते जाना कम्पनी के लिए ख़तरनाक है। इस पर वारेन हेस्टिंग्स ने उन्हें विश्वास दिलाया कि माधोजी की नई सेना ही अन्त में उसके विनाश का सबब होगी। वारेन हेस्टिंग्स को अपनी चाल पर पूरा क़ाबू था और उसके जीवन ही में उसकी यह भविष्यवाणी सच्ची साबित हो गई।

माधोजी सिंधिया का बल बढ़ता जा रहा था। अंगरेज़ों के लिए उसे रोकना ज़रूरी था। माधोजी सिंधिया और नाना फड़नवीस, दोनों का बल महाराष्ट्र मण्डल में सब से अधिक बढ़ा हुआ था। उस मण्डल का नाश करने के लिए अंगरज़ों का इनके बल को तोड़ना आवश्यक था। पेशवा माधोराव नारायण पूरी तरह नाना के कहने में था। पूना में माधोराव नारायण को गद्दी से उतार कर उसकी जगह राघोबा के बालक पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाने के लिए एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। माधोजी सिंधिया को भी इस षड्यन्त्र में शामिल कर लिया गया। किन्तु नाना फड़नवीस को इसका पता चल गया। उसने पेशवा के हुकुम से बाजीराव को गिरफ्तार करके पूना में क़ैद कर दिया।

माधोजी के खिलाफ़ साजिशें

माधोजी सिंधिया उस समय दिल्ली सम्राट का ख़ास संरक्षक बना हुआ था। वारेन हेस्टिंग्स ने माधोजी से वादा कर लिया था कि कम्पनी की ओर से सम्राट का सालाना ख़िराज आइन्दा आप को दिया जाया करेगा। मालूम होता है, हेस्टिंग्स के समय में यह मामला यूं ही टलता रहा। हेस्टिंग्स के बाद माधोजी ने गवर्नर-जनरल मैक्फरसन से सम्राट के नाम पर ख़िराज तलब किया। मैक्फरसन ने टाल दिया। अन्त में कार्नवालिस ने ख़िराज देने से सदा के लिए साफ़ इनकार कर दिया। इस पर दिल्ली सम्राट ने स्वयं माधोजी को पत्र लिखा कि तुम कलकत्ते पहुंच कर कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करो। सम्राट ने एक दूसरा पत्र नाना फड़नवीस को लिखा और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने की पेशवा दरबार की मदद चाही। माधोजी का उस समय फ़र्ज़ था कि कलकत्ते पर चढ़ाई

करके जिस तरह हो, कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करे, किन्तु माधोजी अपनी कमज़ोरियों को खूब जानता था। अंगरेज माधोजी के बल को तोड़ने की पहले ही से कोशिशें कर रहे थे। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है:

"मिस्टर मैक्फरसन ने, यह सोच कर कि सिंधिया की महत्वाकांक्षा खतरनाक हो चली है, दूसरे मराठा नरेशों को सिंधिया से जो ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा हो गई थी, उसे अधिक भड़का कर, सिंधिया के बढ़ने को रोकने के लिए उसके मुक़ाबले में दूसरी ताक़तें खड़ी कर देने की कोशिश की।"*

मास्टिन के बाद से अब तक कोई अंगरेज़ एलची पेशवा के दरबार में न भेजा गया था। अब चार्ल्स मैलेट कम्पनी का एलची नियुक्त होकर पूना पहुंचा। चार्ल्स मैलेट का ख़ास काम था माधोजी सिंधिया के ख़िलाफ़ दूसरे मराठा नरेशों को भड़काना और नाना के विरुद्ध गुप्त साजिशें करना। माधोजी के चित्त में भी अंगरेज़ों की ओर से काफ़ी शंकाएं थीं। स्वयं कार्नवालिस का व्यवहार उसकी ओर ख़ासा रूखा रहा। मूदाजी भोंसले के साँथ अंगरेज़ों ने अब इस तरह का सलूक शुरू किया, जिससे माधोजी सिंधिया को सन्देह हो गया कि अंगरेज़ मेरे खिलाफ मूदाजी को तैयार कर रहे है। माधोजी इस कठिन समस्या के विषय में नाना फड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया। इस दरमियान चार्ल्स मैलेट ने पूना में रह कर माधोजी के विरुद्ध काफ़ी सामान पैदा कर दिया था।

अहिल्याबाई होलकर के आदर्श चरित्र और आदर्श शासन का जिक्र एक पिछले अध्याय में आ चुका है। अहिल्याबाई के तीस वर्ष के शासन में उसकी प्रजा संसार में सब से सुखी और सब से खुशहाल गिनी जाती थी। विदेशियों के साथ अधिक मेल-जोल रखने के अहिल्याबाई सदा ख़िलाफ रही। अपने देशवासियों के ख़िलाफ विदेशियों के साथ 'गुप्त सन्धियां' करना उसके लिए नामुमकिन था। किन्तु अहिल्याबाई की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी तुकाजी होलकर में न वह योग्यता रह गई थी और न वह चरित्र। अंगरेज़ों ने तुकाजी को माधोजी सिंधिया के ख़िलाफ भड़काना शुरू किया, और ठीक उस समय, जब कि माधोजी नाना फड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया, तुकाजी होलकर ने माधोजी के राज पर हमला कर दिया।

मराठा मण्डल की अव्यवस्था

ग्राण्ट डफ़ के इतिहास से मालूम होता है कि होलकर और सिंधिया में उस समय कोई ख़ास झगड़ा न था, बल्कि माधोजी सिंधिया तुकाजी होलकर के साथ प्रेम से रहने के लिए उत्सुक था। तुकाजी होलकर का माधोजी सिंधिया के राज पर हमला करना सारे मराठा इतिहास में एक मराठा नरेश के दूसरे मराठा नरेश पर हमला करने की पहली मिसाल थी। महाराष्ट्र मण्डल का अब क़रीब-क़रीब ख़ात्मा हो चुका था। गायकवाड़ और भोंसले पहले ही मंडल से टूट चुके थे। सिंधिया और होलकर की यह दशा हो रही

* "Mr. Macpherson conceived that the ambitious nature of Scindhia's policy was very dangerous and endeavoured to raise some counterpoise to his progress by exciting the jealousy and rivalry already entertained towards him among the other Marhatta chiefs."—Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 463.

थी। इन चारों की इस शोचनीय हालत में अकेला पेशवा दरबार मण्डल की उस इमारत को, जिसकी बुनियादें हिल चुकी थीं, कब तक संभाल सकता था।

सिंधिया की सेना, जिसका प्रधान सेनापति दी बौयन था, अनेक लड़ाइयां देख चुकी थी। उसने होलकर की सेना को हरा दिया। किन्तु होलकर ने पीछे लौटते हुए सिंधिया के राज को खूब रौंदा और सिंधिया के मुख्य नगर उज्जैन को अच्छी तरह लूटा। इस समय से ही सिंधिया और होलकर के कुलों में परस्पर वैमनस्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलने लगा। इसके बाद होलकर ने भी अंगरेज़ों की सलाह से अपनी सेना में यूरोपियन अफ़सर नियुक्त करना शुरू कर दिया। वह दोबारा सिंधिया राज पर हमला करने का इरादा कर रहा था।

एक ओर तुकाजी होलकर की शत्रुता, और दूसरी ओर खुद अपनी सेना में दी बौयन और अनेक दूसरे यूरोपियनों का ऊंचे पदों पर होना, इन दोनों बातों ने माधोजी सिंधिया को इस समय ख़ासा जकड़ रखा था। वह खूब समझ चुका था कि ये यूरोपियन मुलाज़िम अंगरेज़ों के विरुद्ध मेरा साथ कभी न देंगे। इसके बहुत दिन पहले नाना फड़नवीस ने एक बार माधोजी से कहा था :

"अंगरेज़ों को इस साम्राज्य में पैर रखने की जगह नहीं मिलनी चाहिए, यदि उन्हें पैर रखने की जगह मिल गई, तो सारा देश खतरे में पड़ जाएगा।"

माधोजी को अब नाना के ये शब्द बार-बार याद आते थे। वह अपने पिछले कृत्यों पर पछता रहा था और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने के सम्बन्ध में सम्राट के पत्रों पर और इस सारी स्थिति पर नाना से सलाह करने के लिए पूना आया हुआ था। दिल्ली सम्राट्, माधोजी सिंधिया और पेशवा, तीनों में इस तरह मेल हो जाना और माधोजी का तीनों की ओर से सेना लेकर शाही ख़िराज वसूल करने के लिए कलकत्ते पर चढ़ाई करना उस समय कम्पनी के लिए अत्यन्त आपत्तिजनक हो सकता था।

माधोजी सिंधिया की हत्या

जबकि माधोजी सिंधिया पूना में पेशवा और नाना फड़नवीस के साथ सलाहें कर ही रहा था, फरवरी सन् 1794 में पूना के निकट वनौरी नामक स्थान पर अचानक माधोजी सिंधिया की मृत्यु हो गई।

इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ इस मृत्यु का सबब यह लिखता है कि माधोजी को अचानक 'जोर का बुखार' आ गया। किन्तु माधोजी के जीवन-चरित्र का अंगरेज़ रचयिता कीन कुछ और भेद खोलता है। वह 'तारीखे मुज़फ्फरी' के आधार पर लिखता है :

"मृत्यु से पहली शाम को एक हथियारबन्द गिरोह ने माधोजी को रास्ते में घेर कर मारा।"*कीन लिखता है—"नाना ने इस गिरोह को इस काम के लिए नियुक्त किया था।" और कीन की राय है—"निस्सन्देह, माधोजी की मौत चाहने के लिए नाना के पास काफ़ी वजह थी।"

---

* "Madhoji had been way-laid the evening before by an armed gang……" Keene's *Madhoji Scindhia.*

इसमें सन्देह नहीं कि माधोजी सिंधिया को मरवा डाला गया। किन्तु नाना पर उसका दोष मढ़ना साफ़ झूठ और अन्याय है। न नाना के पास उस समय "माधोजी की मौत चाहने के लिए कोई वजह थी" और न नाना का चरित्र इस ढंग का था। इसके खिलाफ़ अंगरेज़ों के पास "माधोजी की मौत चाहने के लिए निस्सन्देह काफ़ी वजह थी।" और मैलेट और मास्टिन, दोनों की राशि भी एक थी। ग्राण्ट डफ़ साफ़ लिखता है :

> **"सिंधिया की शक्ति और उसकी महत्वाकांक्षा, उसका पूना जाना और सबसे बढ़ कर देशवासियों में आम तौर पर उसकी इज्ज़त, इन सब बातों से अंग्रेज़ माधोजी पर शक करने लगे थे ; इसलिए अंगरेज़ों के कागज़ों में हमें इस बात के बार-बार सबूत मिलते हैं कि वे माधोजी की हरकतों को बड़े शक और जलन के साथ देख रहे थे।"***

माधोजी की हत्या से अंगरेज़ों को लाभ

ग्राण्ट डफ़ से ही यह भी पता चलता है कि माधोजी के पूना पहुंचने के बाद ही दिल्ली के एक हिन्दोस्तानी अख़बार में एक लेख निकला था कि दिल्ली के सम्राट् ने पेशवा और माधोजी, दोनों के नाम अपने बंगाल के ख़िराज के सम्बन्ध में पत्र लिखे हैं और उन से मदद चाही है। माधोजी सिंधिया की हत्या से कम्पनी के रास्ते का एक ज़बरदस्त कांटा दूर हो गया।

उस समय के सरकारी पत्र-व्यवहार में दोनों बातें बिल्कुल साफ़ है। एक यह कि अंगरेज़ों ने होलकर को सिंधिया पर हमला करने के लिए उकसाया, और दूसरे यह कि अंगरेज़ माधोजी सिंधिया के विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे। जिस समय माधोजी अपने राज से पूना की ओर रवाना हुआ, उसी समय गवर्नर-जनरल ने सिंधिया दरबार के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट को वहां से वापस बुला लिया।

माधोजी की मृत्यु के समय कार्नवालिस इंगलिस्तान में था और सर जान शोर भारत में गवर्नर-जनरल था। कार्नवालिस को जब माधोजी की मृत्यु का समाचार मिला, उसने 7 सितम्बर, सन् 1794 को प्रसन्न होकर सर जान शोर को लिखा : "सिंधिया की मृत्यु से आपकी गवर्नमेण्ट की क़रीब-क़रीब हर राजनैतिक कठिनाई दूर हो जाएगी।"†

इससे अधिक सबूत इस बात का और क्या हो सकता है कि माधोजी की मृत्यु वास्तव में कौन चाहता था और उसकी हत्या करनेवालों को किसने नियुक्त किया था।

पेशवा माधोराव नारायण की मृत्यु

कम्पनी के रास्ते का दूसरा ज़बरदस्त कांटा नाना फड़नवीस अभी मौजूद था। माधोजी सिंधिया की हत्या के बाद महाराष्ट्र के अन्दर नाना और उसकी नीति की क़द्र और अधिक बढ़ गई। चार्ल्स मैलेट ने पूना से एक पत्र में लिखा कि—"जब तक पूना

* "......his power and ambition, his march to Poona, and above all, the general opinion of the country, led the English to suspect him; and we accordingly find in their records various proofs of watchful jealousy; ......"—Grant Duff.

† "The death of Scindhia......will nearly remove every political difficulty of your Government."—Cornwallis' letter to Sir John Shore, September 7, 1794.

21—220 M. of I&B/ND/80

दरबार में नाना का ज़ोर है, तब तक मराठा राज के अन्दर मज़बूती से अपने पैर जमा सकने की हमें (अंगरेज़ों को) सपने में भी आशा नहीं करनी चाहिए।"*

नाना फड़नवीस के खिलाफ़ अंगरेज़ों ने कई बार साज़िशें कीं, किन्तु सफलता न मिल सकी। पेशवा माधोराव नारायण पूरी तरह नाना के कहने में था। बिना उसे गद्दी से हटाए कम्पनी को अपनी इच्छा पूरी करने के लिए अनुकूल अवसर न मिल सकता था। 27 अक्तूबर, सन् 1795 को कम्पनी के सौभाग्य से पेशवा माधोराव द्वितीय (माधोराव नारायण) अपने महल के छज्जे से गिर कर मर गया। इस पेशवा की मृत्यु के सम्बन्ध में ग्राण्ट डफ़ लिखता है—"25 अक्तूबर को सवेरे पेशवा जान-बूझ कर अपने महल के एक छज्जे से कूद पड़ा, उसके दो अंगों की हड्डियां टूट गईं और एक फ़व्वारे की नली से, जिसके ऊपर वह आकर पड़ा, बहुत ज़ख्मी हो गया। इसके बाद वह केवल दो दिन जिया।"†

कोई-कोई अंगरेज़ यह भी लिखते हैं कि नाना फड़नबीस से कुछ अनबन होने की वजह से पेशवा ने आत्महत्या कर ली।

किन्तु उस समय की तमाम परिस्थिति को देखने से यह साफ मालूम होता है कि नाना और पेशवा के परस्पर वैमनस्य और आत्महत्या की यह कहानी केवल नाना के खिलाफ़ लोगों के कान भरने के लिए गढ़ी गई थी। मुमकिन है कि पेशवा का छज्जे से गिर पड़ना अकस्मात् हुआ हो, किन्तु इससे कहीं ज्यादा मुमकिन यह है कि पेशवा के किसी दुश्मन या नमक़हराम सेवक ने उसे मौका पाकर ढकेल दिया। मास्टिन के समय में राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने के लिए पेशवा नारायण राव की हत्या की जा चुकी थी, कौन आश्चर्य है, यदि मैलेट के समय में राघोबा के पुत्र बाजीराव को गद्दी पर बैठाने के लिए नारायणराव के पुत्र पेशवा माधोराव द्वितीय की हत्या कराई गई हो और मैलेट तथा बाजीराव के किसी गुप्तचर ने मौका पाकर उसे छज्जे से ढकेल दिया हो! माधोराव की पैदाइश के समय से अंगरेज़ बराबर उसके खिलाफ़ थे और उसकी अकाल मृत्यु से उन्हें बेहद खुशी हुई।

अन्तिम पेशवा बाजीराव

पेशवा माधोराव नारायण की आयु मृत्यु के समय केवल 21 साल की थी। उसके कोई लड़का न था, किन्तु हिन्दू रिवाज़ के अनुसार उसकी विधवा को गोद लेने को अधिकार था। अंगरेज़ों ने इस समय राघोबा के पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाने का यत्न किया। तुकाजी होलकर अंगरेज़ों के कहने में था। पूना पहुंच कर उसने बाजीराव का पक्ष लिया। ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि इस अवसर पर नाना ने तुकाजी को पूरी तरह समझाया कि—"बाजीराव की मां ने शुरू से उसके दिल में तमाम पुराने अनुभवी मराठा नीतिज्ञों के खिलाफ़ द्वेष भर दिया है, बाजीराव के खानदान का अंगरेज़ों के साथ जो सम्बन्ध है, वह मराठी साम्राज्य के लिए ख़तरनाक है। इस समय मराठा

* "As long as Nana remained supreme at the Poona Court, they (the British) should never dream of obtaining a firm footing in the Marhatta Kingdom".—Charles Malet.

†Grants Duff's *History of the Marhatta*, p. 521.

साम्राज्य के अन्दर ख़ासा ऐक्य है, चारों ओर प्रजा खुशहाल है, और यदि इसी नीति का सावधानी के साथ पालन होता रहा, तो भविष्य में बहुत अधिक लाभ की आशा की जा सकती है" इत्यादि। ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि इस तरह समझाने से तुकाजी होलकर और दूसरे सरदार भी नाना के साथ सहमत हो गए। नाना की तजवीज़ थी कि पेशवा माधोराव नारायण की विधवा यशोदाबाई एक पुत्र गोद ले, जिसे सब लोग मिल कर तय करें और वह पुत्र ही पेशवा की गद्दी पर बैठे। निस्सन्देह यह तजवीज़ हिन्दोस्तान के अनुकूल और मराठा मण्डल के लिए हितकर थी। किन्तु दुर्भाग्यवश नाना को सफलता न मिल सकी।

नवम्बर सन् 1795 में रेज़िडेण्ट मैलेट ने नाना से दरयाफ्त किया कि गद्दी का उत्तराधिकारी कौन होगा। नाना ने उत्तर दिया कि जब तक राष्ट्र के बड़े-बड़े लोग मिल कर फैसला न करें, तब तक विधवा यशोदाबाई गद्दी की मालिक समझी जाएगी और फ़ैसला हो जाने पर आपको सूचना दी जाएगी। अपने वादे के अनुसार, जनवरी, सन् 1796 में नाना ने मैलेट को सूचना दी कि यह फैसला हो गया है कि यशोदाबाई एक लड़के को गोद ले, केवल लड़के का पसन्द किया जाना बाकी है। मैलेट को इस पर एतराज़ करने का कोई हक न था, परन्तु नाना का मैलेट को समय से पहले अपनी तजवीज़ बता देना ही एक भयंकर भूल साबित हुई।

बाजीराव उस समय क़ैद में था। मैलेट को सूचना मिलते ही बाजीराव को ख़बर हो गई। मैलेट, बाजीराव और उसके अन्य साथियों की साज़िशों का नतीजा यह हुआ कि नाना की तजवीज़ पूरी होने से पहले ही बाजीराव क़ैद से निकल आया और नाना की इच्छा के ख़िलाफ़ बाजीराव के पक्षवालों ने उसके पेशवा होने का एलान कर दिया। बाजीराव गद्दी पर बैठ गया, और बैठते ही उसने महाराष्ट्र के सच्चे हितचिन्तक नाना फड़नवीस के साथ वह शत्रुता निकाली, जिसके सबब से नाना को पहले जान बचा कर भागना पड़ा और फिर कई साल क़ैद में काटने पड़े।

बाजीराव कायर और निर्बल साबित हुआ। नाना फड़नवीस की भविष्यवाणी उसके विषय में बिल्कुल सच्ची निकली। बाजीराव आख़िरी पेशवा था और उसके गद्दी पर बैठने के साथ-ही-साथ मराठा साम्राज्य के गौरव का अन्त हो गया। बाजीराव की अयोग्यता से अंगरेज़ों ने जिस तरह लाभ उठा कर भारत से पेशवा सत्ता का सदा के लिए अन्त कर दिया, उसका बयान एक दूसरे अध्याय में दिया जाएगा।

सर जान शोर और निज़ाम

निज़ाम के साथ भी सर जान शोर का व्यवहार न्याय या ईमानदारी का न था। इसका पहला परिचय निज़ाम और मराठों की लड़ाई के समय मिला। निज़ाम और मराठों का चौथ के बारे में कुछ झगड़ा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम मराठों को सालाना चौथ दिया करता था। मराठे कहते थे कि निज़ाम की ओर हमारी रक़म निकलती है। निज़ाम उन दिनों अंगरेज़ों और उनकी सबसीडियरी सेना के बल भूला हुआ था। निज़ाम दरबार यह कहता था कि उलटा पेशवा दरबार के पास हमारे दो करोड़ साठ लाख रुपए ज़्यादा चले गए हैं। पेशवा माधोराव नारायण का एक दूत, गोविन्दराव काले, हिसाब साफ़ करने के लिए निज़ाम के दरबार में पहुंचा। निज़ाम ने मराठा दूत के साथ बड़े निरादर का बर्ताव किया।

मराठों और निज़ाम में युद्ध अनिवार्य हो गया। माधोजी सिंधिया की गद्दी पर इस समय उसका पौत्र दौलतराव सिंधिया बैठा हुआ था। दौलतराव वीर और समझदार था। उसने मराठा सेना सहित निज़ाम पर चढ़ाई की। टीपू भी उस समय निज़ाम के ख़िलाफ़ था। निज़ाम के एकमात्र साथी सर जान शोर ने ऐन मौके पर निज़ाम को मदद देने से इनकार कर दिया। यहां तक कि कम्पनी की जो सबसीडियरी सेना निज़ाम के इलाके में निज़ाम के खर्च पर और निज़ाम की मदद के लिए कह कर रखी गई थी, उसने भी उस समय निज़ाम की मदद करने से इनकार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि 15 मार्च, 1795 को निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई में मराठों से हार खाई और मराठों की सब शर्तें स्वीकार कर लीं। इसके सात महीने बाद पेशवा माधोराव नारायण की मृत्यु हुई।

मजबूर होकर निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई के बाद सर जान शोर को लिखा कि कम्पनी की सेना मेरे यहां से हटा ली जाए। साथ ही उसने एक फ्रान्सीसी अफ़सर, मो० रेमौं (Raymond) को अपने यहां दूसरी सेना तैयार करने के लिए नौकर रखा और अपनी हिफ़ाज़त के लिए रेमौं के अधीन कुछ सेना अपने सरहदी इलाक़ों में नियुक्त कर दी।

सर जान शोर ने तुरन्त निज़ाम की इन कार्रवाईयों पर एतराज़ किया और हैदराबाद के रेज़िडेण्ट की मारफ़त निज़ाम को धमकी दी कि यदि आपने अपने सरहदी इलाकों से नई फ़ौज न हटा ली, तो कम्पनी उसके मुक़ाबले के लिए अपनी सेना रवाना करेगी। किन्तु निज़ाम ने इन धमकियों की कुछ परवाह न की। अंगरेज़ों को डर हो गया कि कहीं निज़ाम मराठों या टीपू के साथ मिल कर अंगरेज़ों के विरुद्ध खड़ा न हो जाए।

हैदराबाद के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने तुरन्त निज़ाम के एक पुत्र आलीजाह को भड़काया। आलीजाह ने अपने पिता के ख़िलाफ़ बग़ावत खड़ी कर दी। बेटे को वश में करने के लिए निज़ाम को सरहदी इलाके से अपनी फौज वापस बुलानी पड़ी। आलीजाह क़ैद कर लिया गया और बग़ावत शान्त हो गई। किन्तु निज़ाम इस छोटी-सी घटना से इतना डर गया कि उसने कम्पनी की फ़ौज को फिर अपने यहां रखना स्वीकार कर लिया और उसकी अपनी सेना के विषय में जो-जो शर्तें अंगरेज़ों ने पेश कीं, सब मान लीं।

सर जान शोर ने अब रेमौं को निज़ाम की सेना से निकलवा दिया और उसकी जगह दो अंगरेज़ अफ़सर उस सेना को तालीम देने के लिए हैदराबाद भेजे। रेमौं होशियार और वफ़ादार था, ये दोनों अंगरेज़ अयोग्य निकले, फिर भी निज़ाम को सर जान शोर की इच्छा पूरी करनी पड़ी। इसके बाद ज़िन्दगी भर निज़ाम अंगरेज़ों का विनीत और आज्ञाकारी सेवक बना रहा और कम्पनी को अपने राज के क़ायम करने में निज़ाम के कुल से हमेशा खूब मदद मिलती रही।

नवाब कर्नाटक के नाम जबरदस्ती के कर्ज़े

दक्षिण की एक दूसरी मुस्लिम रियासत, जिससे सर जान शोर को वास्ता पड़ा, कर्नाटक की रियासत थी। कर्नाटक के नवाब को ही अरकाट का नवाब भी कहते थे। एक पिछले अध्याय में आ चुका है कि कर्नाटक के नवाब मोहम्मदअली से अंगरेज़ों को कितना फ़ायदा पहुंचता था, उससे किस प्रकार तरह-तरह से धन वसूल किया जाता था और किस प्रकार कम्पनी के नौकरों की मांगों को पूरा करने के लिए वह कुछ अंगरेज़ व्यापारियों ही के कर्ज़े में बेतहाशा दबा हुआ था।

अरकाट के नवाब के क़र्ज़ों का हाल इंगलिस्तान के मन्त्रियों और वहां की पार्लियामेण्ट के कानों तक भी पहुंच चुका था। इन क़र्ज़ों में कितने ही क़र्ज़े साफ़ जबरदस्ती और बेईमानी के थे और, सूद, दर सूद, बट्टे इत्यादि के हिसाब से बराबर बढ़ते चले जाते थे। अनेक बार इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में इन क़र्ज़ों के विषय में पूछताछ की गई। किन्तु इंगलिस्तान के मन्त्री बराबर टालमटोल और तरह-तरह की चालबाज़ियों से काम लेते रहे। मिसाल के लिए नवाब को क़र्ज़ देनेवालों में एक अंगरेज़ पाल बेन्फील्ड भी था। किन्तु क़र्जख़ाहों की जो सूचियां समय-समय पर पार्लियामेण्ट के सामने पेश की जाती थीं, उनमें बेन्फील्ड का नाम कभी उड़ा दिया जाता था और कभी फिर जोड़ दिया जाता था। बात यह थी कि बेन्फ़ील्ड और उसके अनेक साथियों ने पार्लियामेण्ट के चुनाव के समय मन्त्रि-मण्डल का पक्ष लेनेवाले सदस्यों को चुनवा कर भेजने में खूब धन खर्च किया था और मन्त्रियों के मुंह बन्द कर दिए थे। *पार्लियामेण्ट के अन्दर भी क़ुदरती तौर पर उस समय के मन्त्रियों ही का प्रभाव था।

इसी सम्बन्ध में इतिहास-लेखक विलियम हाविट लिखता है:

> **"जिस ढंग से यातनाएं दे-देकर भारतीय नरेशों की रियासतें उनसे जबरदस्ती छीनी गई हैं, वह यह है कि चालबाज़ लोगों ने पहले तो बड़ी होशियारी के साथ उन नरेशों को अपना क़र्जदार बनाया और फिर उन्हें अपनी अत्यन्त बेजा मांगों के सामने तुरन्त सर झुकाने के लिए विवश कर दिया।"†**

13 अक्तूबर, सन् 1795 को 79 साल की आयु में नवाब मोहम्मदअली की मृत्यु हुई। उसका बेटा नवाब उमदतुलउमरा कर्नाटक की गद्दी पर बैठा और बाप के झूठे और अनसुने क़र्ज़े उसे उत्तराधिकार में मिले।

लार्ड कार्नवालिस के समय में कम्पनी और मोहम्मदअली के दरमियान एक सन्धि हो चुकी थी, जिससे कर्नाटक की सेना का सारा प्रबन्ध अंगरेज़ों के हाथों में आ गया था और कर्नाटक के कुछ ज़िले इन कर्ज़ों के बदले में नवाब से रेहन रखा लिए गए थे। उमदतुलउमरा के गद्दी पर बैठते ही मद्रास के गवर्नर ने उस पर जोर दिया कि वह रेहन रखे हुए जिले और कुछ क़िले सदा के लिए कम्पनी को दे दे। 28 अक्तूबर, सन् 1795 को सर जान शोर ने मद्रास के गवर्नर को लिखा: "आप नए नवाब को इस बात पर राज़ी कीजिए कि वह अपनी तमाम रियासत कम्पनी के सुपुर्द कर दे।" नवाब उमदतुलउमरा ने मद्रास के गवर्नर की कोई बात मंज़ूर न की और कम-से-कम उस समय इस चाल से कर्नाटक का कोई हिस्सा कम्पनी की अमलदारी में न आ सका। किन्तु कर्नाटक की ओर अंगरेज़ों की नीयत बिल्कुल ज़ाहिर हो गई।

---

*Thornton in his *History of British India,* 2nd Edition, 1859, pp. 181, 182.

† "What then is this system of torture by which the possessions of the Indian Princes have been wrung from them? It is this—the skilful application of the process by which cunning men create debtors, and then force them at once to submit to their most exorbitant demands."—William Howitt as quoted in the introduction to Thornton's *History of British India.*

रुहेलखण्ड

सन् 1794 में रुहेलखण्ड के नवाब फ़ैज़ुल्ला खां की मृत्यु हुई। उसका छोटा बेटा गुलाम मोहम्मद अपने बड़े भाई आली खां को मार कर बाप की गद्दी पर बैठा। समाचार पाते ही सर जान शोर ने इरादा किया कि—"फ़ैज़ुल्ला खां के खानदान से रियासत बिल्कुल छीन ली जाए।"* पर राबर्ट एवरक्रौम्बी अवध की सेना सहित आगे बढ़ा। बिटोवरा में लड़ाई हुई। मिल लिखता है कि पहले रुहेलों का पल्ला कुछ भारी रहा, किन्तु बाद में अंगरेज़ों की जीत हुई। अन्त में फ़ैज़ुल्ला खां के खानदान से रियासत छीन ली गई। उसका तमाम खज़ाना अवध के नवाब वजीर को दे दिया गया और रियासत ज़ब्त कर ली गई। 10 लाख रुपये सालाना की जागीर रुहेलखण्ड के एक पिछले नवाब, मोहम्मदअली के बेटे अहमदअली को दे दी गई। रुहेलखन्ड के राज में अंगरेज़ों की खड़ी की हुई यह दूसरी बग़ावत थी।

सर जान शोर और अवध

अब केवल अवध के साथ सर जान शोर के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है। सर जान शोर ने अपने एक पत्र में साफ़ लिखा है—"अवध के साथ हमारी जो सन्धियां हुई हैं, उनकी हमें ख़ाक परवाह नहीं करनी चाहिए।" लार्ड कार्नवालिस ने सन् 1788 में अवध के नवाब के साथ यह सन्धि की थी कि कम्पनी की सबसीडियरी सेना का खर्च, जो नवाब को देना पड़ता था, पचास लाख सालाना से कभी बढ़ाया न जाएगा। सर जान शोर ने आकर बेखटके और बेवजह इस संधि को तोड़ डाला, गोकि लिखा है कि नवाब हर साल ठीक समय पर रक़म अदा कर देता था और अवध की प्रजा की हालत फिर कुछ सुधरती जा रही थी। सर जान शोर ने नवाब पर ज़ोर दिया कि आप साढ़े-पांच लाख सालाना के खर्च पर एक पलटन अंगरेज़ सवारों की और एक हिन्दोस्तानी सवारों की अपने यहां और रखें। इस सेना का असली मतलब यह था कि कम्पनी को उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य बढ़ाने और स्वयं अवध को धीरे-धीरे अपने अधीन करने के लिए दूसरे के खर्च पर एक ज़बरदस्त सेना सदा तैयार मिल सके।

नवाब आसफ़ुद्दौला ने इस बार हिम्मत करके इनकार कर दिया और गवर्नर-जनरल को लार्ड कार्नवालिस के वादे की याद दिलाई। सर जान शोर ने ज़बरदस्ती आसफ़ुद्दौला के वज़ीर महाराजा झाऊलाल को पकड़ कर अपने यहां क़ैद कर लिया। आसफ़ुद्दौला के इस अत्याचार पर बहुतेरे एतराज़ किए किन्तु कम्पनी के अफ़सरों ने एक न सुनी। इसके बाद मार्च सन् 1797 में सर जान शोर स्वयं लखनऊ पहुंचा और जिस तरह हो सका, उसने आसफ़ुद्दौला को कम्पनी की मांग पूरी करने पर मजबूर किया। साढ़े पांच लाख सालाना की नई फ़ौज आसफ़ुद्दौला के सर मढ़ दी गई। असहाय आसफ़ुद्दौला को इस व्यवहार का इतना सदमा हुआ कि वह उसी समय से बीमार पड़ गया, उसने दवा खाने तक से इनकार कर दिया और चन्द महीने के अन्दर मर गया। आसफ़ुद्दौला की मृत्यु ने अंगरेज़ों को एक सुन्दर अवसर प्रदान कर दिया।

आसफ़ुद्दौला का बेटा वज़ीरअली अवध की गद्दी पर बैठा। सर जान शोर ने बाज़ाब्ता उसे नवाब स्वीकार कर लिया।

*Mill, vol. vi, pp. 33, 34.

अवध की गद्दी का नीलाम

थोड़े ही दिनों के बाद सर जान शोर को पता चला (?) कि आसफ़ुद्दौला का एक भाई सआदतअली, जो उस समय बनारस में रहता था, उस के बेटे वजीरअली की निस्बत अवध की गद्दी का ज्यादा हकदार है। मेजर बर्ड, जो कुछ दिनों बाद लखनऊ में असिस्टेण्ट रेजिडेण्ट था, लिखता है:

"सर जान शोर यह देख कर कि पिछले वज़ीर के एक भाई के साथ ज्यादा अच्छा सौदा किया जा सकता है, बनारस पहुंचा। वहां पहुंच कर उसने उस भाई सआदतअली के सामने यह तजवीज़ पेश की कि कम्पनी की मदद से आप वज़ीरअली को गद्दी से उतार दीजिए, इस साफ़ शर्त पर कि आप साढ़े पचपन लाख सालाना की रक़म को खूब बढ़ा देंगे और उसके अलावा कम्पनी की सहायता के बदले में हमें और धन व सम्पत्ति देंगे। इस खुली और निर्लज्ज शर्त पर नवाबी का इच्छुक खुशी से राज़ी हो गया। लखनऊ पहुंच कर वज़ीरअली को उतार दिया गया और 21 जनवरी, सन् 1798 को उसकी जगह सआदतअली के नवाब बनाए जाने का एलान कर दिया गया।"*

इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सरकारी कागज़ों में लिखा है कि लखनऊ पहुंच कर बाज़ाब्ता तहक़ीक़ात (?) करके वजह यह बताई गई कि वजीरअली की पैदाइश नाजायज़ है (!) यानी वह अपने बाप का बेटा नहीं है (!)।

21 फ़रवरी, 1798 को 17 शर्तों की एक सन्धि सआदतअली और सर जान शोर के बीच लिखी गई। उनमें मुख्य शर्तें ये थीं:

"सआदतअली कम्पनी का बक़ाया अदा करे, इलाहाबाद का क़िला कम्पनी को दे दे और उसकी मरम्मत के लिए आठ लाख रुपये दे, फ़तहगढ़ के क़िले की मरम्मत के लिए तीन लाख रुपये दे, फ़ौजों के इधर से उधर आने-जाने का खर्च दे—कितने लाख, यह बाद में तय किया जाएगा। सआदतअली को नवाब वज़ीर बनाने में कम्पनी का जो खर्च हुआ है, उसके लिए वह कम्पनी को बारह लाख रुपये दे, पदच्युत वज़ीर को डेढ़ लाख रुपये की पेन्शन दे और सबसीडियरी सेना के खर्च के लिए 56 लाख सालाना की रक़म को बढ़ा कर 76 लाख कर दिया जाए।"†

---

* "Seeing that a better bargain could be made with a brother of the deceased Wazir, Sir John Shore proceeded to Benaras, and proposed to the latter, who was named Saadat Ali, to dethrone Wazir Ali, offering the support of the Company on the intelligible condition that the subsidy should be largely increased, and that their support should be paid for otherwise in money and kind. To this stipulation, bold and barefaced, the aspirant to the Princedom "cheerfully consented", and after a preliminary process at Lucknow, termed in the 'Parliamentary Return of Treaties' 'a full investigation' and purporting to be an enquiry into the spuriousness of Wazir Ali's birth that prince was deposed and Saadat Ali was proclaimed, in his stead, at Lucknow, on the 21st January, 1798"—*Dacoitee in Excelsis; or the Spoliation of Oudh by the East India Company by* Major Bird, Assistant Resident at Lucknow.

†*Dacoitee in Excelsis*, pp. 35-38.

मेजर बर्ड लिखता है कि इस तरह "कुल मिला कर दस लाख पाउण्ड (1 करोड़ रुपये से ऊपर) और इलाहाबाद का क़िला एक साल के अन्दर कम्पनी को मिल गया।"

एक शर्त यह भी थी कि सिवाय कम्पनी के आदमियों के और कोई युरोपियन आइन्दा अवध के राज्य में रहने न पाए।

इस समस्त सन्धि में शुरू से आखिर तक केवल 'रुपयों' और 'लाखों' ही का ज़िक्र है। सर हेनरी लारेन्स ने जनवरी, सन् 1845 के 'कलकत्ता रिव्यू' में इस सन्धि के विषय में लिखा है:

> **"शायद सर जान शोर की सन्धि के अंगरेज पाठकों को सब से अधिक यह बात खटकेगी कि अवध के सुशासन का इसमें कहीं जरा भी जिक्र नहीं है। मालूम होता है कि अवध की प्रजा सब से बढ़ कर बोली बोलनेवाले के हाथ नीलाम कर दी गई। भतीजे के मुक़ाबले में सआदतअली को अधिक निचोड़ा जा सकता था सर जान शोर ने अवध की गद्दी को अंगरेज गवर्नर के हाथों की केवल एक बिक्री की चीज बना दिया। हमें मजबूर होकर अवध के सम्बन्ध के इस तमाम पत्र-व्यवहार को सर्वथा निन्दनीय मानना पड़ता है।"†**

भारत के खर्च पर अन्य देशों की विजय

सन् 1795 में सर जान शोर ने डच लोगों के तमाम भारतीय इलाके उनसे लेकर अंगरेज कम्पनी के अधीन कर लिए। धीरे-धीरे लंका, मलाका, बन्दा, ऐम्बौयना आदि दूसरे एशियाई देशों से भी डच लोग निकाल दिए गए। मारीशस का फ्रान्सीसी इलाका और मनीला के उपजाऊ स्पेनिश इलाक़े अधिकतर भारत ही के धन से ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल किए गए।

इंगलिस्तान की इन सेवाओं के बदले में सर जान शोर को अक्तूबर सन् 1797 में 'लार्ड टेनमाउथ' की उपाधि मिली। मार्च सन् 1798 में वह इंगलिस्तान लौट गया। अपने समय में वह 'पक्का ईसाई' मशहूर था, और राजनीति में वारेन हेस्टिंग्स उसका आदर्श था। निस्सन्देह, इंगलिस्तान के लिए उसकी सेवाएं क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की सेवाओं के मुकाबले की थीं।

---

† "What will perhaps most strike the English reader of Sir John Shore's treaty is the entire omission of the slightest provision for the good Government of Oudh. The people seemed as it were sold to the highest bidder......Saadat Ali was......a more promising sponge to squeeze, than his nephew......He (Sir John Shore) made the *Musnud* of Oudh a mere transferable property in the hands of the British Governor......We are obliged entirely to condemn the whole tenor of Oudh negotiations."—Sir Henry Lawrence in the *Calcutta Review* for January, 1845.

तेरहवां अध्याय

अंगरेजों की साम्राज्य-पिपासा

मार्क्विस वेल्सली

सर जान शोर के बाद मार्क्विस वेल्सली ब्रिटिश भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ । मार्क्विस वेल्सली का शासनकाल इतने अधिक महत्व का था और उसके समय में इस देश के अन्दर इतने गहरे उलटफेर हुए कि उस समय की राजनैतिक घटनाओं को बयान करने के पहले वेल्सली के चरित्र, उस समय के यूरोप की राजनैतिक अवस्था, अंगरेज़ कौम की आकांक्षाओं और वेल्सली के शासन के उद्देश्य को संक्षेप में दिखा देना आवश्यक है। वेल्सली का नाम पहले लार्ड मार्निगटन था। उसका जन्म सन् 1760 ई० में आयरलैण्ड में हुआ। सन् 1793 ई० में वह इंगलिस्तान के उस "बोर्ड आफ कण्ट्रोल" का एक मेम्बर नियुक्त हुआ, जो कम्पनी के भारतीय शासन की देखरेख के लिए पार्लियामेण्ट की ओर से बनाया गया था। इससे पहले के एक गवर्नर-जनरल, लार्ड कार्नवालिस, और इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री पिट से वेल्सली की गहरी मित्रता थी। इन दोनों की मदद से सन् 1793 से 1798 तक वेल्सली इंगलिस्तान में बैठा हुआ भारतीय इतिहास और भारत की उस समय की राजनैतिक हालत का ग़ौर से अध्ययन करता रहा । वेल्सली को भारत भेजने से पहले प्रधान मन्त्री पिट ने उसे एक सप्ताह अपने पास रख कर हिन्दोस्तान के अन्दर एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्य क़ायम करने की सम्भावना और उसके उपायों पर उसके साथ खूब बातचीत की । इस तरह शिक्षा पाकर वेल्सली 7 नवम्बर, सन् 1797 को अपने देश से रवाना हुआ और मार्ग में दो महीने अफ्रीका के आशा अन्तरीप में ठहर कर मई सन्, 1798 में कलकत्ते पहुंचा।

यूरोप में क़ौमी आज़ादी की लहर

अठारहवीं सदी के अन्त में पश्चिम के देशों में क़ौमी आज़ादी की एक ज़बरदस्त लहर चल रही थी। "स्वतन्त्रता", "समता" और "मनुष्य मात्र के बन्धुत्व" की आवाज़ें चारों ओर गूंज रही थीं । 4 जुलाई, सन 1776 को अमरीका ने अपने-आपको इंगलिस्तान की दासता से स्वतन्त्र कर देश में प्रजातन्त्र राज (रिपब्लिक) की स्थापना की। 7 वर्ष के भयंकर रक्तपात के बाद 30 नवम्बर, सन 1782 को इंगलिस्तान ने लाचार होकर अमरीका की "स्वाधीनता" को स्वीकार किया । सन् 1789 में फ्रान्स की जगत्प्रसिद्ध राजक्रान्ति का प्रारम्भ हुआ । सन् 1792 में फ्रांस ने अपने स्वेच्छाचारी और अन्यायी राजा सोलहवें लुई को गद्दी से उतार कर अपने यहां प्रजातन्त्र राज (रिपब्लिक) क़ायम किया । 21 जनवरी, सन् 1793 को सोलहवें लुई को फांसी पर लटका दिया गया। फ्रान्स ही से "स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व" (Liberty, Equality and Fraternity), इन तीन शब्दों की पुकार उठी और चन्द

साल के अन्दर ही ये शब्द सारे यूरोप में इस सिरे से उस सिरे तक गूंजने लगे। फ्रान्स की इस महान क्रान्ति के विषय में इटली के आदर्श देशभक्त जोज़ेफ़ मैज़िनी ने लिखा है :

मैज़िनी के विचार

"ढाई करोड़ मनुष्य केवल किसी शब्द, किसी थोथे वाक्य या छाया के पीछे इस तरह एक-दिल होकर खड़े नहीं हो सकते, और न आधे यूरोप को अपनी आवाज़ से जगा सकते हैं। फ्रान्स की राजक्रान्ति ख़तम हो गई, यानी उसका ऊपरी जोश-ख़रोश जाता रहा, उसका बाहरी रूप नष्ट हो गया, जिस तरह कि हर चीज़ का बाहरी रूप अपना काम पूरा करके नष्ट हो जाता है, किन्तु क्रान्ति का असूल, उसके भीतर का सिद्धान्त जीवित है। वह सिद्धान्त अपने उस समय के समस्त अस्थायी आच्छादनों यानी बाहरी रूपों से अलग होकर अब सदा के लिए हमारे मानसिक आकाश में ध्रुव तारे की तरह चमक रहा है ; उसकी शुमार मानव जाति की विजयों में की जाती है।

"हर महान विचार अमर है। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति ने मनुष्यमात्र के अधिकार स्वतन्त्रता और समता के भावों को फिर से मनुष्य की आत्मा के अन्दर प्रज्वलित कर दिया, अब यह ज्वाला कभी किसी के बुझाए नहीं बुझ सकती। उस क्रान्ति ने फ्रान्स निवासियों के अन्दर इस बात की चेतावनी जगा दी कि आइन्दा कभी कोई हमारी क़ौमी ज़िन्दगी पर वार नहीं कर सकता ; और सब क़ौमों के लोगों में यह ज्ञान पैदा कर दिया कि जनता के एकमत हो जाने पर क़ौम की शक्ति कितनी ज़बरदस्त होती है, उनमें यह दृढ़ विश्वास पैदा कर दिया कि विजय अन्त में जनता ही की होगी और कोई शक्ति उसे इस विजय से वंचित नहीं रख सकती। राजनैतिक क्षेत्र में इस क्रान्ति ने मानव उन्नति के एक युग को पूरा करके और उसका सार लेकर हमें दूसरे युग की सीमा तक पहुंचा दिया।

"ये ऐसे नतीजे हैं, जो कभी नष्ट न होंगे ; कोई सरकारी उल्लेख, कोई राजनैतिक सिद्धान्त या किसी स्वेच्छाचारी सरकार के अन्य अधिकार इन नतीजों को नहीं मिटा सकते।"*

---

* "Five and twenty millions of men do not rise up as one man, nor rouse one half of Europe at their call, for a mere word, an empty formula, a shadow. The Revolution, that is to say the tumult and fury of the Revolution—perished; the form perished, as all forms perish when their task is accomplished, but the idea of the Revolution survived. That idea freed from every temporary envelope or disguise, now reigns for ever, a fixed star in the intellectual firmament; it is numbered among the conquests of Humanity.

"Every great idea is immortal; the French Revolution rekindled the sense of *Right* of liberty, and of equality in the human soul, never henceforth to be extinguished; it awakened France to the consciousness of the inviolability of her national life, awakened in every people a perception of the powers of collective will, and a conviction of ultimate victory, of which none can deprive them. It summed up and concluded (in the political sphere) one epoch of Humanity, and led us to the confines of the next.

अंगरेजों और फ़्रान्सीसियों के चरित्र में अन्तर

फ्रान्सीसी क़ौम प्राय: शुरू से उच्च आदर्शों की उपासक रही है। किन्तु अंगरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के चरित्र में आरम्भ से ही बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता रहा है। जब कि फ्रान्सीसी समस्त संसार को स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व का उपदेश दे रहे थे, ठीक उस समय उनके पड़ोसी अंगरेज़ इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। वजह यह थी कि इंगलिस्तान के शासकों को साम्राज्य का और वहां के पूंजीपतियों को दूसरे देशों से धन बटोरने का काफ़ी चसका पड़ चुका था। इंगलिस्तान के साम्राज्य-पिपासु शासकों और धन-लोलुप पूंजीपतियों को इस बात का डर था कि यदि इस तरह के विचार संसार में फैल गए, तो हमारी अपनी इष्ट-सिद्धि में बहुत बड़ी बाधा पड़ेगी। जिस अंगरेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लियामेंण्ट के सामने इस योग्यता के साथ वारेन हेस्टिंग्स के पाप-कृत्यों को खोला था, उसी बर्क की अब वहां के शासकों ने 1,500 पाउण्ड सालाना की पेन्शन देकर उससे फ्रान्स की राजक्रान्ति के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त पुस्तक लिखवा दी, ताकि फ्रान्स की आज़ादी का रोग इंगलिस्तान में फैलने न पाए।

इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री पिट हद दरजे का साम्राज्य-लोलुप था। फ्रान्स और फ्रान्सीसी विचारों का वह कट्टर शत्रु था। उसी की इच्छानुसार भारत का प्रत्येक अंगरेज़ अफ़सर यहां के देशी दरबारों में फ्रान्सीसियों, उनके देश और उनके विचारों को बदनाम करने की हर तरह कोशिश करता रहता था। वेलसली को भी फ्रान्सीसी क़ौम और फ्रान्सीसी विचारों से हद दरजे का द्वेष था। इसकी एक वजह यह भी बताई जाती है कि इंगलिस्तान में वेलसली ने एक फ्रान्सीसी स्त्री अपने घर में रख रखी थी, जिससे वेलसली के कई बच्चे हुए। बच्चे होने के बाद वेलसली ने उसके साथ बाज़ाब्ता विवाह किया, किन्तु बाद में दोनों में कुछ अनबन हो गई और उस स्त्री ने वेलसली के साथ भारत आने से इनकार कर दिया। जो हो, वेलसली फ्रान्सीसियों से इतना डरता था कि भारत आते ही उसने 4 मई, सन् 1799 को यहां के जंगी लाट, सर अल्फ्रड क्लार्क, को एक "प्राइवेट और गुप्त" पत्र द्वारा यह साफ़-साफ़ आदेश दिया कि—कलकत्ता, चट्टग्राम, चन्द्रनगर, चुंचड़ा इत्यादि और बाक़ी तमाम ब्रिटिश भारतीय इलाके से एक-एक फ्रान्सीसी को और फ्रान्सीसियों से सम्बन्ध रखनेवाले और सब यूरोप-निवासियों तक को चुन-चुन कर ज़बरदस्ती यूरोप भेज दिया जाए। मार्क्विस वेलसली प्रजा के अधिकारों का इतना पक्का विरोधी था और उसके राजनैतिक विचार इतने अनुदार थे कि स्वयं अपने देश इंगलिस्तान के अन्दर वह मामूली पार्लियामेण्ट के सुधारों तक के खिलाफ़ था।

आयरलैण्ड की स्वाधीनता का अपहरण

पिट के समय तक आयरलैण्ड की एक अलग पार्लियामेण्ट थी। पिट ने इस उद्देश्य से कि आयरलैण्ड को इंगलिस्तान के राज्य में मिला लिया जाए और इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के मातहत कर दिया जाए, जान-बूझ कर आयरलैण्ड में सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान् डब्ल्यू०टी० स्टेड ने उस समय के ऐतिहासिक

"These are results which will not pass away: they defy very protocol, constitutional theory, or *veto* of despotic power."—Joseph Mazzini.

लेखोंसे साबित किया है कि आयरलैण्ड का सन् 1798 का विद्रोह ब्रिटिश सरकार का उकसाया हुआ था और आयरलैण्ड की स्वाधीनता छीनने के उद्देश्य से किया गया था। स्टेड यह भी लिखता है कि जिन उपायों से इंगलिस्तान के शासकों ने आयरलैण्ड की स्वाधीनता छीन कर उसे इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के मातहत किया, उनमें एक उपाय आयरलैण्ड की स्त्रियों के साथ "बेरोक-टोक बलात्कार" ('Free-rape') भी था। ये उपाय थे, जिनके ज़रिए "ब्रिटेन" का नाम "ग्रेट ब्रिटेन" रखा गया।

भारत में मार्क्विस वेल्सली का उद्देश्य

मार्क्विस वेल्सली ने 2 अक्तूबर, सन् 1800 ई० को० कलकत्ते से अपने एक मित्र के नाम इंगलैण्ड पत्र लिखा, जिसके नीचे लिखे वाक्य से उसके और कम्पनी के, दोनों के भारतीय शासन के उद्देश्य का साफ़ पता चलता है। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा :

> **"× × × मैं बादशाहतों के ढेर लगा दूंगा और फतह-पर-फ़तह तथा मालगुज़ारी-पर-मालगुज़ारी लाद दूंगा। मैं इतनी शान, इतना धन और इतनी सत्ता इकट्ठी कर दूंगा कि एक बार मेरे महत्वाकांक्षी और धन-लोलुप मालिक भी 'त्राहि त्राहि' चिल्लाने लगेंगे × × ×।"***

भारत आने से पहले दो महीने आशा अन्तरीप में रह कर वेल्सली ने भारत की अनेक देशी रियासतों की स्वाधीनता का नाश करने की तरकीब सोची। इस काम में उसे दो अंगरेज़ अफ़सरों से बहुत बड़ी मदद मिली। एक सर डेविड बेयर्ड और दूसरा मेजर कर्कपैट्रिक। सर डेविड बेयर्ड टीपू सुलतान के यहां कैद रह चुका था। डेविड बेयर्ड का बयान है कि टीपू प्रायः अपने मनोरंजन के लिए बेयर्ड को बन्दर की तरह कपड़े पहनवा कर, एक ऊंचा बांस गड़वा कर, उसे उस बांस पर चढ़वाया-उतरवाया करता था और बन्दर की तरह नचवाया करता था। हम भी इस बयान को केवल मनोरंजन के तौर पर दे रहे हैं। नहीं तो टीपू की इस तरह की हरकतों का सबूत सिवा अंगरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कहीं नहीं मिलता। और इन बयानों पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। मेजर कर्कपैट्रिक, वारेन हेस्टिंग्स और कार्नवालिस के समय का खुर्राट नीतिज्ञ था। माधोजी सिंधिया के यहां, नेपाल में और हैदराबाद में, तीन जगह वह कम्पनी के दूत का काम कर चुका था। माधोजी सिंधिया को नाना फड़नवीस से लड़ा कर मराठों की सत्ता का नाश करने में, नेपाल के मार्गों और सैन्यबल इत्यादि का गुप्त पता लगाने में और हैदराबाद की सेना से फ्रांसीसियों को निकलवा कर उनकी जगह अंगरेज़ भरती कराने में मेजर कर्कपैट्रिक का ख़ास हाथ था।

इन दोनों अंगरेज़ों से वेल्सली को देशी रियासतों की हालत का ठीक-ठीक पता चल गया और अपनी तजवीज़ों को पक्का करने में बहुत बड़ी मदद मिली। आशा अन्तरीप से वेल्सली ने प्रधान मन्त्री पिट और भारत मन्त्री डण्डास के नाम

---

* "I will heap Kingdoms upon Kingdoms, victory upon victory, revenue upon revenue; I will accumulate glory and wealth and power, until the ambition and avarice even of my masters shall cry mercy.,...."—Marquess of Wellesley's letter to Lady Anne Barnard, dated October 2nd, 1800.

जो पत्र इंगलिस्तान भेजे, उनसे ज़ाहिर हो जाता है कि इंगलिस्तान के शासकों ने वेल्सली को क्या-क्या हिदायतें दी थीं और भारत पहुंच कर उसकी क्या तजवीज़ें थीं।

सबसीडियरी एलाएन्स

एक ख़ास तजवीज़ इस समय यह की गई कि भारतीय नरेशों के पास उस समय तक जहां-जहां अपनी स्वतन्त्र सेनाएं मौजूद थीं, उन सेनाओं को एक-एक कर किसी तरह बरख़ास्त करा दिया जाए; उन नरेशों और उनकी रियासतों की रक्षा का भार कम्पनी अपने ऊपर ले ले; और पुरानी रियासती सेनाओं की जगह कम्पनी की सेनाएं, अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन रियासतों के ख़र्च पर उन रियासतों में क़ायम कर दी जाएं। इस नई तजवीज़ का नाम "सबसीडियरी एलाएन्स" रखा गया। "सबसीडियरी" का अर्थ "आर्थिक सहायता" और "एलाएन्स" का अर्थ "मित्रता" है। मतलब यह था कि हर देशी नरेश कम्पनी को निश्चित "आर्थिक सहायता" दे कर कम्पनी की "सैनिक मित्रता" लाभ कर सके। निस्सन्देह, देशी नरेशों को उनकी रियासतों के अन्दर उन्हीं के ख़र्च पर क़ैद करके रखने का इससे सुन्दर उपाय न सोचा जा सकता था। इस सबसीडियरी एलाएन्स के विषय में एक यूरोपियन विद्वान लिखता है:

> **"सबसीडियरी एलाएन्स × × × सिवाय एक धोखे के और कुछ न था। उसका उद्देश्य इंगलिस्तान की जनता की आंखों में धूल झोंकना था × × ×।**
>
> **"× × × ये देश ज़ाहिरा विजय नहीं किए जाते थे, वहां के नरेशों को छत्र, चंवर आदि राजस्व के समस्त चिह्नों सहित तख़्त पर रहने दिया जाता था, किन्तु असली ताक़त उनके हाथों से लेकर एक पोलिटिकल एजेण्ट के हाथों में दे दी जाती थी × × ×।"***

इस तजवीज़ का उद्देश्य इंगलिस्तान की जनता की आंखों में धूल झोंकना रहा हो या न रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस समय के बेशुमार भोले एशिया-निवासियों की आंखों में धूल झोंकने के लिए यह काफ़ी कारगर साबित हुई।

जिन छलों द्वारा वेल्सली ने भारत में अपनी सबसीडियरी एलाएन्स का जाल बिछाया, जिस तरह उसने भारत के मुसलमानों और मराठों को वश में किया, निज़ाम और पेशवा को फांस कर उन्हें कम्पनी का क़ैदी बनाया, कर्नाटक के नवाब, तंजौर के राजा, अवध के नवाब वज़ीर और सूरत और फर्रुख़ाबाद के नवाबों के इलाके छीने और टीपू, सिंधिया, होलकर और भोंसले को बरबाद किया, इन सब बातों का विस्तृत बयान अलग-अलग अध्यायों में किया जाएगा।

ईसाई धर्म प्रचार

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले केवल एक बात हम और बता देना चाहते

---

* "The Subsidiary system......was nothing more than a delusion; it was for the purpose of throwing dust into the eyes of the British public......

"......these countries were not ostensibly conquered; the sovereign was allowed to remain on his throne, with all the trappings of royalty, but substantial power was transferred from him to the person of a political agent."—*Asiatic Quarterly Review* for January 1887.

हैं, वह यह कि मार्क्विस वेल्सली के शुद्ध राजनैतिक उद्देश्य के अलावा उसका एक उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना भी था।

वेल्सली ने भारत आते ही सबसे पहले ईसाई धर्म के अनुसार अंगरेज़ी इलाके के अन्दर रविवार की छुट्टी का मनाया जाना जारी किया। उस दिन समाचारपत्रों का छपना तक कानूनन बन्द कर दिया गया। कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम में उसने एक कालिज की स्थापना की। इस कालिज का एक उद्देश्य विदेशी सरकार के लिए सरकारी नौकर तैयार करना था। वेल्सली के जीवन-चरित्र का रचयिता, आर० आर० पियर्स, साफ़ लिखता है कि यह कालिज भारतवासियों में ईसाई धर्म को फैलाने का भी एक मुख्य साधन था। इस कालिज के ज़रिए भारत की सात अलग-अलग भाषाओं में इंजील का अनुवाद करा कर उसका भारतवासियों में प्रचार कराया गया। मार्क्विस वेल्सली न अपने व्यक्तिगत जीवन में चरित्रवान था और न सार्वजनिक जीवन में अपने से पहले के किसी गवर्नर-जनरल से अधिक ईमानदार था, फिर भी उसकी इस ईसाई धर्मनिष्ठा के लिए अंगरेज़ इतिहास-लेखक प्रायः उसकी प्रशंसा करते हैं। सच यह है कि उसका ईसाई धर्म प्रचार भी राजनैतिक इष्ट-सिद्धि का एक साधनमात्र था।

चौदहवां अध्याय

वेल्सली और निज़ाम

इंगलिस्तान के मन्त्री के नाम वेल्सली के पत्र

आशा अन्तरीप से वेल्सली ने इंगलिस्तान के एक मन्त्री, डण्डास के नाम दो ख़ास पत्र लिखे, एक 23 फ़रवरी, सन् 1798 को और दूसरा 28 फ़रवरी को। इनमें से पहले पत्र में वेल्सली ने लिखा :

> " × × × **हमें सबसे बड़ा लाभ इस समय इस बात में है कि देशी नरेश एक दूसरे के साथ अपनी दोस्ती या दुश्मनी का फ़ैसला तक नहीं कर सकते।"***

इस वाक्य में तीन ख़ास देशी शक्तियों की ओर इशारा था—निज़ाम, मराठे और टीपू सुलतान। इनमें निज़ाम को कभी भी अंगरेज़ों से लड़ने का साहस न हुआ था। मराठों के विषय में वेल्सली ने अपने 28 फ़रवरी के पत्र में डण्डास को लिखा :

"पेशवा का बल और प्रभाव इतनी तेज़ी के साथ घटता जा रहा है कि मराठों पर हमला करने की न अभी ज़रूरत है और न ऐसा करना उचित है।" टीपू के विषय में वेल्सली के 23 फ़रवरी के पत्र से स्पष्ट है कि वह अफ्रीका ही में टीपू पर हमला करने का संकल्प कर चुका था। इस पत्र में वेल्सली ने यह भी लिखा कि "टीपू के विरुद्ध लड़ने के लिए हमें दूसरे भारतीय नरेशों की मदद की ज़रूरत होगी, किन्तु निज़ाम की सेना पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह ऐसे मौके पर टीपू के विरुद्ध हमारा साथ देगी।" बात यह थी कि निज़ाम के पास कम्पनी की सेना के अलावा अभी तक एक अपनी स्वतन्त्र सेना भी मौजूद थी। फ्रान्सीसी सेनापति मो० रेमौं को सर जान शोर ने ज़बरदस्ती निज़ाम की इस सेना से निकलवा दिया था, फिर भी अनेक योग्य फ्रान्सीसी अफ़सर अभी तक उस सेना में मौजूद थे। अंगरेज़ इतिहास-लेखक स्वीकार करते हैं कि इस पुरानी सेना और उसके फ्रान्सीसी अफ़सरों ने सदा वफ़ादारी के साथ निज़ाम और उसके दरबार की सेवा की। केवल छः वर्ष पहले यही सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का भी साथ दे चुकी थी। किन्तु इस सेना की बाग अंगरेज़ों के हाथों में न थी, इसलिए सबसे पहला काम वेल्सली के लिए यह था कि निज़ाम की इस सेना को तोड़ कर उसकी जगह कम्पनी की एक नई सबसीडियरी सेना निज़ाम के राज में क़ायम कर दे। दूसरे शब्दों में, वेल्सली ने सबसे पहले निज़ाम को सबसीडियरी सन्धि के जाल में फांसने की तजवीज़ की।

निज़ाम को सबसीडियरी सन्धि के जाल में फांसने की तजवीज़

निज़ाम की हालत पहले ही काफ़ी गिरी हुई थी। कुर्दला की पराजय ने उसे और भी कमज़ोर कर दिया था। मालूम होता है, कुर्दला में अंगरेज़ों के निज़ाम को मदद न देने

---

* "Bear in mind the state of the native powers in India at this moment; and recollect that the greatest advantage which we now possess is the present deranged condition of those interests."—Marquess of Wellesley to Mr. Dundas, 23rd February, 1798.

और उसकी सबसीडियरी सेना तक को उससे दूर रखने का असली मतलब यह था कि अंगरेज़ निज़ाम को जहां तक हो सके, कमज़ोर कर देना चाहते थे। वेल्सली ने डण्डास को लिखा :

"मैं अभी लिख चुका हूं कि × × × कुर्दला की सन्धि से, और जिस ढंग से उस सन्धि का पालन कराया गया है उससे, निज़ाम की हालत कितनी गिर गई है और कितनी कमज़ोर हो गई है।

"इस समय मालूम होता है कि हैदराबाद का दरबार हमारे साथ अधिक गहरा सम्बन्ध क़ायम करने के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानियां करने को तैयार है और यदि किसी दूसरे सबब से इस सम्बन्ध को अनुचित न समझा जाए, तो बजाय इसके कि हम अपनी ओर से पत्र-व्यवहार शुरू करें और निज़ाम से कहें कि तुम अपनी सेना के किसी हिस्से को बरखास्त कर दो, यदि निज़ाम हम से प्रार्थना करे और हम उस पर बतौर एक अहसान के उसके साथ इस तरह के सम्बन्ध को मंजूर करें, तो शायद हमें बहुत अधिक लाभ हो सकता है।"

इस 'अधिक गहरे सम्बन्ध' से वेल्सली का मतलब सबसीडियरी सन्धि से है।

हैदराबाद के दरबार में दो अंगरेज दूत

निज़ाम को सबसिडियरी सन्धि के जाल में फ़ांसने के लिए हैदराबाद के दरबार में एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। निज़ाम के कुछ दरबारियों को, जिनमें निज़ाम का वज़ीर अज़ीमुलउमरा भी था, रिश्वतें देकर अपनी ओर फोड़ा गया, निज़ाम से यह सारा मामला अन्त समय तक छिपा कर रखा गया। इस षड्यन्त्र में वेल्सली के दो मुख्य मददगार थे—एक मेजर कर्कपैट्रिक का छोटा भाई कप्तान कर्कपैट्रिक, जो अपने बड़े भाई की जगह हैदराबाद में रेज़िडेण्ट था, और दूसरा कप्तान कर्कपैट्रिक का असिस्टेण्ट कप्तान मैलकम।

कप्तान कर्कपैट्रिक बहुत ही चलता पुरज़ा था। उसने अपना रहन-सहन, पहनावा सब हिन्दुस्तानी ढंग का कर रखा था। हैदराबाद में उसका नाम 'दशमतजंग' पड़ा हुआ था। एक मुसलमान दरबारी की लड़की के साथ उसने बाज़ाब्ता निकाह कर लिया था। हैदराबाद ही में अनेक बार उस पर रिश्वतसितानी, बदचलनी और हत्या तक के जुर्म लगाए गए। हिन्दुस्तानी दरबारियों के साथ साज़िशें करने में वह सिद्धहस्त था और इस अवसर पर वेल्सली को उसने बड़ा काम दिया।

दूसरा, कप्तान मैलकम, स्काटलैण्ड के निहायत ग़रीब मां-बाप का लड़का था। 12 साल की आयु में भारत भेजे जाने के लिए वह कम्पनी के डायरेक्टरों के सामने पेश हुआ। परीक्षा के तौर पर एक डाइरेक्टर ने उससे पूछा—"क्यों बच्चे यदि हैदरअली तुम्हें मिल जाए, तो तुम क्या करोगे?" लड़के ने फ़ौरन उत्तर दिया—"क्या करूंगा? मैं फ़ौरन अपनी तलवार खींच कर उसका सर काट डालूंगा। "डाइरेक्टर ने कहा—बहुत ठीक।" और फिर आज्ञा दी—"इसे पास किया गया।"

इस तरह पास होकर और सेना में भर्ती होकर अप्रैल सन् 1783 में 13 साल की उम्र में मैलकम मद्रास पहुंचा। टीपू के साथ अंगरेज़ों की पहली लड़ाई में वह शामिल था।

धीरे-धीरे उसने फ़ारसी भाषा और देशी रियासतों की हालत का खूब अध्ययन किया। मार्क्विस वेल्सली मद्रास में मैलकम से मिल कर बड़ा प्रसन्न हुआ। 20 सितम्बर, सन् 1798 को उसने कप्तान मैलकम को सेना से निकाल कर हैदराबाद के दरबार में कर्कपैट्रिक का असिस्टेंट नियुक्त कर दिया। कर्कपैट्रिक और वेल्सली दोनों के लिए मैलकम अत्यन्त उपयोगी साबित हुआ।

अज़ीमुलउमरा के साथ गुप्त साज़िश

तजवीज़ यह थी कि अज़ीमुलउमरा बिना निज़ाम को ख़बर किए रियासत की सेना को चुपचाप टुकड़े-टुकड़े करके बरखास्त कर दे और पेश्तर इसके कि निज़ाम को खबर हो, कम्पनी की नई सबसीडियरी सेना हैदराबाद पहुंच कर उसकी जगह ले ले। 8 जुलाई, सन् 1798 को वेल्सली ने कलकत्ते से कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम एक पत्र लिखा, जिसके ऊपर 'गुप्त' लिखा हुआ था। केवल छै साल पहले निज़ाम और अंगरेज़ों के बीच मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। उस सन्धि को मिट्टी में मिला कर अब गवर्नर-जनरल ने रेज़िडेण्ट को आज्ञा दी कि जिस तरह हो सके, किसी गुप्त ढंग से निज़ाम की रियासती सेना को, जिसमें फ़ान्सीसी अफ़सर हैं, बरख़ास्त करवा कर उसकी जगह कम्पनी की नई सबसीडियरी सेना एक बार क़ायम कर दो। इस पत्र में कप्तान कर्कपैट्रिक को आदेश दिया गया कि यह सारा काम चुप-चाप ऊपर-ही-ऊपर वज़ीर अज़ीमुलउमरा की मारफ़त पूरा करा लिया जाए और निज़ाम को इसका बिल्कुल पता न चलने पाए। वेल्सली ने लिखा :

> **"××× अज़ीमुलउमरा पर खूब ज़ोर देना कि इसकी पूरी-पूरी अह-तियात रखना ज़रूरी है कि ××× तजवीज़ें खुलने न पाएं ; उसे यह सुझा-देना कि सेना को छोटे-छोटे टुकड़ों में करके एक-एक टुकड़े को अलग-अलग बर-ख़ास्त करना अधिक उचित होगा, ताकि अन्त में आसानी से सारी सेना को ख़तम किया जा सके और सेना के अफ़सर या सिपाही वहां से जाकर टीपू या सिंधिया के यहां नौकरी न कर लें।**
>
> **"जब अज़ीमुलउमरा निज़ाम के नाम पर इन सब बातों को करने के लिए राज़ी हो जाए, तब तुम मद्रास से कम्पनी की सेना बुलवा भेजना"।***

जिस तरह हैदराबाद के पहले निज़ामुलमुल्क ने अपने स्वामी दिल्ली सम्राट के साथ विश्वासघात करके मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन में सहायता दी थी, उसी तरह अब अज़ीमुल-उमरा ने अपने स्वामी निज़ाम के साथ विश्वासघात करके हैदराबाद की स्वाधीनता का खात्मा कराया।

---

*"......you will urge to Azimul Omra in the strongest terms, the necessity of his taking every precaution to prevent the propositions......from transpiring; and you will suggest to him the propriety of dispersing the corps in small parties for the purpose of facilitating its final reduction, and of preventing the officers and privates from passing into the service of Tipoo or of Scindhia.

"Should Azimul Omra consent, in the name of the Nizam, to the proposed conditions, you will then require the march of the troops from Fort St. George."—Governor-General's letter to Captain Kirk Patrick, dated 8th July, 1798.

हिन्दोस्तानी नरेशों के मन्त्रियों को रिश्वतें देकर अपनी ओर करने की कोशिश करना अंगरेज अफ़सरों के लिए उन दिनों एक आम बात थी। मार्क्विस वेल्सली के सगे भाई, आर्थर वेल्सली ने, जो बाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, 24 अगस्त, सन् 1803 को मेजर शा के नाम एक पत्र में लिखा था : "कर्नल क्लोज के नाम मेरे पत्रों से आपने देखा होगा कि हर बात की ठीक-ठीक ख़बर रखने के लिए मैंने इस बात पर जोर दिया है कि कर्नल क्लोज पेशवा के मन्त्री को धन दे।"

वेल्सली की अधिक व्यापक तजवीज

कप्तान कर्कपैट्रिक को पत्र लिखने के एक सप्ताह बाद 15 जुलाई, सन् 1798 को वेल्सली ने मद्रास के गवर्नर को लिखा कि आप हैदराबाद के लिए सेना तैयार रखिए। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा : "मैं चाहता हूं, निज़ाम में कुछ योग्यता और बल फिर से आ जाए।" निस्सन्देह वेल्सली अपने चिर मित्र निज़ाम से छिपा कर और उसके साथ दग़ा करके उसका बल बढ़ाना चाहता था। सीधे शब्दों में इस वाक्य का मतलब था "निज़ाम की हकूमत का अन्त हो जाए।" और आगे चल कर वेल्सली लिखता है :

> **"मैं एक कहीं अधिक बड़ी तजवीज तमाम रियासतों के साथ इसी तरह की सन्धियां करने की तैयारी कर रहा हूं, और इस समय की तजवीज केवल उस बड़ी तजवीज का एक हिस्सा है। ××× मेरा खयाल है कि जो फौज हैदराबाद भेजनी है, उसे जमा करने के लिए सबसे अच्छी जगह गुण्टूर होगी ××× इस बात को गुप्त रखने की अत्यन्त कड़ी से कड़ी अहतियात की जाए। ××× जो जगह आप तय करें, उसकी सूचना हैदराबाद के क़ायम मुक़ाम रेजिडेण्ट को दे देना आवश्यक होगा, ताकि वह कमाण्डिंग अफ़सर के साथ पत्र व्यवहार कर सके। ××× अपनी तमाम कार्रवाई आप पूना और हैदराबाद के रेजिडेण्टों को लिखते रहें, किन्तु केवल उनकी अपनी सूचना के लिए उन्हें लिख भेजें कि वे अपने यहां के दरबारियों को इसकी खबर न होने दें।"***

जनरल हैरिस के नाम 19 अगस्त के पत्र में वेल्सली ने लिखा :

> **" ××× मेरे 16 जुलाई के पत्र से आपको पता चल गया होगा कि यह तजवीज भारत में अंगरेज़ी राज का अस्तित्व क़ायम रखने के लिए कितनी ज़रूरी है।"**

इस पत्र में भी तजवीज को गुप्त रखने पर फिर खूब जोर दिया गया।

अज़ीमुलउमरा की घबराहट

मार्क्विस वेल्सली के एक पत्र से मालूम होता है कि इतने पर भी अज़ीमुलउमरा अन्त तक कुछ झिझकता रहा। सम्भव है, उसकी आत्मा भीतर से उसे दिक़ करती हो, या

* "My object is to restore the Nizam to some degree of efficiency and power. The measure forms part of a much more extensive plan for the establishment of our alliances, ...the best position for assembling the troops destined for Hyderabad would be in the Guntur Circar......the most strict attention to secrecy in the whole of this proceeding; ......you will communicate the whole proceeding to the Residents at Poona and Hyderabad for *their* information *only*, and not to be imparted to their respective Courts."—Marquess of Wellesley to General Harris, 15th July, 1798.

सम्भव है, कोई और सबब रहा हो । जो हो, उसने निज़ाम की सेना को बरख़ास्त करने में देर की । अंगरेज़ों के लिए इस तरह के मामले में देर ख़तरनाक हो सकती थी, इसलिए मलकम और कर्कपैट्रिक ने दूसरी ओर से भी अपना इन्तज़ाम कर लिया था । उन्होंने निज़ाम की सेना के अन्दर भी अपने षड्यन्त्र का जाल पूरा रखा था । कम्पनी की सेना बिना निज़ाम की सेना के बरख़ास्त होने का इन्तजार किए मद्रास से हैदराबाद के लिए चल पड़ी । कप्तान मैलकम की जीवनी का रचयिता सर जान के लिखता है कि—"हमारे सौभाग्य से ऐन मौक़े पर निज़ाम की पलटनें अपने अफ़सरों के विरुद्ध बलवा कर बैठीं, क्योंकि उनकी तनख़ाहें चढ़ गई थीं । उन्होंने अपने फ़्रान्सीसी सेनापति को क़ैद कर लिया ।"* इत्यादि । जान के यह नहीं बतलाता कि किन तरीकों से रेज़िडेण्ट और उसके असिस्टेण्ट ने निज़ाम की फौजों को 'ऐन मौक़े पर' बलवा करने के लिए तैयार किया । इसी मौक़े पर कम्पनी की पलटनों ने भी अचानक हैदराबाद को जा घेरा । वज़ीर अज़ीमुलउमरा से कहा गया कि आप फ़ौरन निज़ाम की पलटनों को बरख़ास्त करके कम्पनी की पलटनों को उनकी जगह दे दें । लिखा है कि कम्पनी की सेना को इतनी जल्दी हैदराबाद में देख कर अज़ीमुलउमरा चकित रह गया और एक बार उसने रियासत की सेना को बरख़ास्त करने से इनकार कर दिया । जिस सेना और उसके अफ़सरों ने सदा इतनी वफ़ादारी के साथ राज की सेवा की थी, उसे बेक़सूर बरख़ास्त कर देना अज़ीमुलउमरा के लिए भी इतना आसान न था । असहाय निज़ाम को चन्द घंटे पहले तक इस तमाम कार्रवाई का गुमान भी न था । किन्तु न निज़ाम में इतनी हिम्मत थी और न उस के आदमियों में इतनी वफ़ादारी । अन्त में चारों ओर से कम्पनी की पलटनों से घिर कर, स्वयं अपने दरबार को विश्वासघातकों से छलनी-छलनी देख कर और अपनी ही सेना को अपने ख़िलाफ़ विद्रोही देख कर निज़ाम को अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की इच्छा पूरी करनी पड़ी ।

कम्पनी और निज़ाम में सबसीडियरी सन्धि

1 सितम्बर सन् 1798 को निज़ाम ने कम्पनी के साथ उस नए सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए, जिससे हैदराबाद दरबार की स्वाधीनता का सदा के लिए ख़ात्मा हो गया । इस सन्धिपत्र का पहला ही वाक्य इधर से उधर तक सरासर झूठ है । उसमें लिखा है :

> **"चूंकि नवाब निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह बहादुर ने मौजूदा दोस्ती के महत्व को देखते हुए यह इच्छा प्रकट की है कि माननीय कम्पनी की जो सेना इस समय निज़ाम की नौकरी में है, उसकी तादाद बढ़ा दी जाए, इत्यादि, इसलिए × × × ।"**

निज़ाम का इस तरह की कभी कोई इच्छा प्रकट करना तो दूर रहा, उसे इस तमाम साज़िश का पहले से गुमान तक न था । केवल दग़ा और लाचारी ने उसे सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया ।

इस सबसीडियरी सन्धि के अनुसार छः हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक नई सेना मय तोपख़ाने के अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन निज़ाम के ख़र्च पर निज़ाम के राज के अन्दर सदा

---

*Kaye's *Life of Malcolm.*

के लिए क़ायम कर दी गई, और यह तय हुआ कि आइन्दा बिना कम्पनी की इज़ाजत के निज़ाम किसी यूरोपियन को अपने यहां नौकर न रखे। इस प्रकार निज़ाम पहला भारतीय नरेश था, जिसे मार्क्विस वेल्सली ने सबसीडियरी एलाएन्स के जाल में फंसा कर उसे उसके अपने राज के अन्दर एक तरह का क़ैदी बना दिया, और जिसे अपने ख़ज़ाने से उस सेना का खर्च बरदाश्त करना पड़ा, जिस सेना ने उसे क़ैद करके रखा।

वेल्सली और उसके साथियों को कम्पनी की ओर से इनाम

इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल ने हैदराबाद की इस सन्धि पर विशेष पत्र द्वारा हार्दिक सन्तोष प्रकट किया, और कम्पनी के डायरेक्टरों ने इनाम के तौर पर वेल्सली को बीस साल तक के लिए 5,000 पाउण्ड सालाना की पेन्शन प्रदान की। यह पेन्शन सन्धि की तारीख 1 सितम्बर, सन् 1798 से शुरू की गई। कर्कपैट्रिक और मैलकम को भी उनकी सेवाओं के लिए इनाम और तरक्कियां दी गई।

इसके बाद निज़ाम की हालत इतनी असहाय हो गई कि अज़ीमुलउमरा की मृत्यु के बाद निज़ाम की इच्छा के विरुद्ध अंगरेज़ों ने अपने एक आदमी मीर आलम को उसकी जगह निज़ाम का प्रधान मन्त्री नियुक्त करवा दिया।

इस समस्त दशा के लिए एक बहाना यह लिया गया कि अंगरेज़ों को उस समय फ़ान्सीसियों से और टीपू सुलतान से हमले का डर था, और इसलिए उन तमाम शक्तियों को पंगु कर देना अंगरेज़ों के लिए आवश्यक था, जिनके फ़ान्सीसियों या टीपू से मिल जाने की सम्भावना हो। किन्तु एक तो उस समय की समस्त स्थिति को देखने से मालूम होता है कि ये दोनों डर बिल्कुल झूठे थे, दूसरे यदि इस तरह की कोई आशंकाएं रही भी हों, तो भी गम्भीर सन्धियों को तोड़ कर और गुप्त षड्यन्त्र रच कर दूसरे राज्यों की स्वाधीनता को हरने का यह कोई न्यायोचित बहाना नहीं हो सकता। इस सब का असली कारण था अंगरेज़ों की वह साम्राज्य-पिपासा, जिसका पिछले अध्याय में ज़िक्र किया जा चुका है।

हैदराबाद और पूना में अन्तर

ठीक जिस तरह के प्रयत्न हैदराबाद में किए जा रहे थे, उसी तरह के प्रयत्न उसी समय पूना दरबार में भी चल रहे थे। 8 जुलाई को वेल्सली ने कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम पत्र लिखा और ठीक उसी विषय का एक पत्र पूना के रेज़िडेण्ट को लिखा। किन्तु पूना में वेल्सली को सफलता न मिल सकी। क्योंकि नाना फड़नवीस उस समय क़ैद में था, फिर भी पूना दरबार अभी तक हैदराबाद दरबार की तरह राजनीति शून्य या चरित्र-शून्य नहीं हो गया था। पूना दरबार के अभी तक ऐसे जागरूक और दूरदर्शी नीतिज्ञ मौजूद थे, जो अंगरेज़ों की चालों में इतनी आसानी से न आ सकते थे।

पन्द्रहवां अध्याय

टीपू सुलतान

सन् 1792 की सन्धि के बाद

पिछले अध्याय में टीपू सुलतान के जन्म, बाप की मृत्यु के बाद उसकी गद्दीनशीनी और मैसूर के पहले दोनों युद्धों में अंगरेज़ों के साथ उसकी लड़ाइयों का जिक्र आ चुका है। सन् 1792 में अंगरेज़ों, निज़ाम और मराठों ने मिल कर टीपू पर हमला किया और उसका आधा राज छीन कर आपस में बांट लिया। इन चारों शक्तियों के बीच उससे पहले मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। लड़ाई के बाद टीपू पर तीन करोड़ से ऊपर युद्ध का दण्ड लगाया गया, जिसमें से एक करोड़ उसी समय वसूल कर लिया गया, बाकी की अदायगी के लिए दो साल की मियाद नियत की गई। कार्नवालिस के पत्रों से जाहिर है कि उसे यह आशा थी कि टीपू, जिसका आधा राज छिन चुका था और बाक़ी रौंदा और बरबाद किया जा चुका था, दो साल के अन्दर इतनी भारी रक़म अदा न कर सकेगा और कम्पनी को इस बहाने उसका रहा-सहा राज भी हड़पने का मौक़ा मिल जाएगा। किन्तु कार्नवालिस को इस विषय में निराशा हुई। टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अपनी ज़बान का भी सच्चा था। उसने अपनी ओर से सन्धि की शर्तों का सच्चाई के साथ पालन किया। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि—"नृपोचित अथक परिश्रम और अदम्य उत्साह के साथ वह हर उचित उपाय से अपनी खोई हुई सत्ता को फिर से प्राप्त करने की कोशिश में अपनी पूरी शक्ति लगा देने का गम्भीर संकल्प कर चुका था।" इसलिए, सन् 1792 के बाद—

> **"टीपू ने सबसे पहले अपनी आन क़ायम रखते हुए ठीक समय पर उस भारी रक़म को अदा कर दिया, जो सन्धि के समय उसके शत्रुओं की ओर से तय कर दी गई थी। इस तरह ठीक मियाद के अन्दर इतनी बड़ी रक़म का अदा हो जाना एक असाधारण बात है। फिर, अपनी मुसीबतों से घबरा कर बैठ जाने के बजाय, युद्ध में मुल्क की जो बरबादी हुई थी, टीपू सुलतान ने उसे फिर से दुरुस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए क़िलेबन्दी को बढ़ाया, सवारों की सेना को फिर से पूरा किया, पैदल सेना में नए रंगरूट भर कर उन्हें शिक्षा देनी शुरू की, अपने उन सामन्त सरदारों को, जो शत्रु से मिल गए थे, दण्ड दिया, और अपने राज में खेती-बाड़ी की उन्नति करना शुरू किया; जिससे थोड़े ही दिनों में उसका देश फिर पहले की तरह खुशहाल दिखाई देने लगा।"***

---

* "......with that unremitting activity and zealous warmth which we could look for in a prince, who had come to a serious determination by every reasonable means in his power to regain what he had lost.

"......I shall take a short retrospect of the leading features of his conduct since 1792.

टीपू को मिटाने का संकल्प

ऊपर लिखा जा चुका है कि टीपू ने सच्चाई के साथ सन्धि की शर्तों का पालन किया। किन्तु टीपू की वीरता और उसकी योग्यता और उसके राज का फिर से पनपना ही अंगरेज़ों के लिए सबसे अधिक ख़तरनाक था। कार्नवालिस के पत्रों से साबित है कि वह टीपू के अस्तित्व ही को भारत में अंगरेज़ी राज के लिए ख़तरनाक मानता था। वेल्सली के पत्रों से साबित है कि वह भारत में क़दम रखने से पहले आशा अन्तरीप ही में टीपू पर हमला करने और जिस तरह हो सके, उसे कुचलने का संकल्प कर चुका था। निज़ाम और पेशवा को पंगु कर देने की उसकी कोशिशें एक तरह से टीपू को कुचलने की अधिक गहरी योजना के ही अंग थीं।

टीपू पर झूठे इलज़ाम

टीपू पर हमला करने से पहले उस पर कोई-न-कोई इलजाम लगाना ज़रूरी था। कहा गया कि टीपू अंगरेज़ों पर हमला करने वाला है और उसके लिए फ़्रान्सीसियों के साथ गुप्त साज़िश कर रहा है। बयान किया गया कि मारीशस के टापू में फ़्रान्सीसियों ने एक एलान प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है कि टीपू ने अपने कुछ विशेष दूत एक जहाज में मारीशस भेजे हैं और उन दूतों के जरिए अंगरेज़ों के विरुद्ध फ़्रान्सीसियों के साथ मेल करने का विचार प्रकट किया है, इत्यादि। इसी इलजाम की बिना पर टीपू से कोई पूछ-ताछ किए बिना कार्रवाई शुरू कर दी गई। 9 जून, सन् 1798 को मार्क्विस वेल्सली ने इस फ़्रान्सीसी एलान की एक कापी मद्रास के गवर्नर हैरिस के पास भेजी और उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना जमा करो। इसके बाद, 20 जून, सन् 1789 को वेल्सली ने हैरिस को एक दूसरे पत्र द्वारा अपने 'अन्तिम निश्चय' की सूचना दी और लिखा कि––"मैं समुद्र तट पर सेना जमा करने का पक्का निश्चय कर चुका हूं।" इस पत्र में 'टीपू पर अचानक हमला करना' वेल्सली ने अपना 'उद्देश्य' बताया, और अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस सारे मामले को 'गुप्त' रखना 'अत्यन्त आवश्यक' है।*

सन् 1792 में निज़ाम और पेशवा, दोनों ने टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया था। उस समय की सन्धि में यह तय हो गया था कि यदि टीपू की ओर से सन्धि की शर्तों का उल्लंघन होगा, तो अंगरेज़, निज़ाम और पेशवा, तीनों मिल कर उसका मुक़ाबला करेंगे। टीपू ने ईमानदारी के साथ सब शर्तों का पालन किया। इसलिए अब वेल्सली ने टीपू पर हमला करने से पहले, निज़ाम और पेशवा से सलाह करने की बजाय, निज़ाम को

"This was first marked by an honourable and unusually punctual discharge of the large sum which remained due at the conclusion of the peace to the allies. Instead of sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry to recruit and discipline his infantry, to punish his refractory tributaries, and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity."—*Wellesley's Dispatches,* vol. I, Appendix pp. 668, 669.

* "......my final determination......to assemble the army upon the coast...... with the object of striking a sudden blow against Tippoo, ...you will of course feel the absolute necessity of keeping the contents of this letter secret."—Marquess of Wellesley to General Harris, 20th June, 1798.

अपने सबसीडियरी एलाएन्स के जाल में क़ैद कर लिया, और जब पेशवा के दरबार में 'सबसीडियरी एलाएन्स' की चाल न चल सकी, तो पेशवा को फंसाए रखने के लिए सिंधिया को उकसा कर उसे एक विशाल सेना सहित पेशवा के पीछे लगा दिया और उस सेना द्वारा पेशवा के इलाके को लुटवाना शुरू कर दिया ।

जेम्स मिल ने अपने इतिहास में यह साबित किया है कि उस समय फ़ान्सीसियों के टीपू के साथ मिल कर ब्रिटिश भारत पर हमला करने की कोई किसी तरह की सम्भावना तक न थी । उसने यह भी दिखलाया कि जिन काग़ज़ों के आधार पर टीपू पर फ़ान्सीसियों के साथ साज़िश करने का इलज़ाम लगाया गया, उनमें से कुछ ऐसे थे, जिन से टीपू का कोई दोष साबित नहीं होता, और बाक़ी साफ़ जाली थे ।*

इससे अधिक इन झूठे इलज़ामों की छान-बीन की आवश्यकता नहीं है । मद्रास के गवर्नर हैरिस ने 23 जून, सन् 1798 को एक पत्र में मार्क्विस वेलसली को दरशाया कि आपकी आशंकाएं बिल्कुल बेबुनियाद हैं और टीपू से इस समय युद्ध छेड़ना अनुचित है । मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोशिया वेब ने 6 जुलाई, सन् 1798 को वेलसली को लिखा कि—"फ़ान्स की जो सेना मारीशस टीपू में थी भी, वह सब वहां से यूरोप को भेज दी गई है और फ़ान्सीसी जहाज़ तक वहां से हटा लिए गए हैं, इसलिए फ़ान्सीसियों और टीपू के बीच साज़िश होना असम्भव है।" किन्तु वेलसली के लिए फ़ान्सीसियों और टीपू की साज़िश केवल एक बहाना थी, उसका असली उद्देश्य टीपू सुलतान को मिटा कर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को बढ़ा लेना और भविष्य के लिए अपने मार्ग से एक ज़बरदस्त रुकावट को दूर कर देना था ।

टीपू के साथ धोखा

9 जून, सन् 1798 को वेलसली ने जनरल हैरिस को लिखा कि टीपू के विरुद्ध सेना जमा की जाए, और उसके पांच दिन बाद, 14 जून को उसने टीपू को एक अत्यंत प्रेमभरा पत्र लिखा । इसके अलावा टीपू को और भी पूरी तरह धोखे में रखने के लिए उसने एक नई चाल चली । सर जान शोर के समय से बाईनाद के इलाके के सम्बन्ध में कम्पनी और टीपू के बीच कुछ झगड़ा चला आता था । वेलसली ने अपना प्रेम दरशाने के लिए अब वह इलाक़ा टीपू को लौटा दिया । वेलसली के प्रेमभरे पत्र के उत्तर में भोले टीपू ने अंगरेज़ गवर्नर-जनरल को लिखा :

> **"आपका मित्रतासूचक पत्र ××× मिला ××× उससे मुझे इस क़दर ख़ुशी और तसल्ली हुई कि जिसे पुरी तरह काग़ज़ पर बयान नहीं किया जा सकता । ××× ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम का सच्चा सम्बन्ध और दोस्ती और मेल की बुनियादें पूरी मजबूती से क़ायम हैं । मुझे हमेशा इसका ख्याल रहता है कि मौजूदा सुलहनामों की शर्तों पर क़ायम रहूं । आप दिल से मेरे दोस्त और खैरख्वाह हैं, और मुझे विश्वास है कि आप ध्यान से एकता और प्रेम को क़ायम रखेंगे ।†**

---

*_History of India,_ by Mill, vol. vi.

†Tippo's letter to Governor-General received in Calcutta, 10th July, 1798.

निस्सन्देह, टीपू के वेलसली की वास्तविक इच्छा और उसकी दुरंगी नीति का पता न था । वेलसली एक ओर टीपू को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाता रहा और दूसरी ओर उस पर हमला करने की गुप्त तैयारियां करता रहा । धीरे-धीरे कुछ भनक टीपू के कानों तक भी पहुंच गई । 28 सितम्बर, सन् 1798 को वेलसली के पास टीपू का एक और पत्र पहुंचा, जिसमें टीपू ने लिखा :

"दुष्ट लोग थोथे झगड़े और तनाज़े खड़े करके अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं, किन्तु ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम के चश्मे इतने पाक और साफ़ बह रहे हैं कि स्वार्थी लोगों की चालों से वे गन्दे नहीं हो सकते ।"

वेलसली ने एक महीने के ऊपर तक इस पत्र का कोई जवाब न दिया । इस बीच मिस्र देश के उत्तर में अंगरेज़ सेनापति नेलसन ने फ्रान्स के जहाज़ी बेड़े का ख़ात्मा कर डाला । फ़ान्सीसियों का डर शुरू से झूठा था । यह डर किसी स्वतन्त्र भारतीय नरेश पर हमला करने के लिए कोई बहाना भी नहीं हो सकता था । फिर भी, यदि इससे पहले फ़ान्सीसियों के भारत पर हमला करने की कोई सम्भावना हो सकती थी, तो अब वह भी बिल्कुल जाती रही । किन्तु जैसा हम लिख चुके हैं, ये सब बातें वेल्सली के लिए केवल बहाना थी । उसका असली उद्देश्य दूसरा और स्पष्ट था । 4 नवम्बर को वेलसली ने फिर टीपू को एक अत्यन्त मित्रतासूचक पत्र लिखा । 9 नवम्बर को अपनी तैयारी देख कर वेलसली ने रंग बदला और एक अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण पत्र में मारीशस के एलान का जिक्र करते हुए टीपू को लिखा कि—"आप यह गुमान न करें कि मेरे देश के शत्रुओं के और आप के बीच जो बातें हुई हैं, उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूं" इत्यादि । केवल चार दिन के अन्दर टीपू की ओर वेलसली के रुख में यह अचानक परिवर्तन हो गया ।

छेड़छाड़

इसी पत्र में वेलसली ने टीपू को यह धमकी दी कि एक अंगरेज़ अफ़सर, मेजर डवटन, को इस उद्देश्य से आपके दरबार में भेजा जाएगा, ताकि शान्ति क़ायम रखने के लिए जिन-जिन ज़िलों की अंगरेज़ों को ज़रूरत है, उन्हें वह आप से मांग ले । अंगरेज़ों की तैयारी अब पूरी हो चुकी थी । इसीलिए टीपू से अब साफ़ छेड़छाड़ शुरू कर दी गई ।

पांच दिन बाद वेल्सली ने अपने जल-सेना के सेनापति रेनियर को लिखा कि—"हैदराबाद को ठीक कर लिया गया है, और समुद्र तट पर दोनों ओर हमारी युद्ध की तैयारियां खूब हो चुकी हैं"—इसलिए "यह अवसर हमारे लिए अच्छा है और मैं इस अवसर से लाभ उठा कर, केवल डर दिखा कर या लड़ कर, टीपू को शक्तिहीन कर देने का पक्का निश्चय कर चुका हूं ।"

टीपू और वेलसली में पत्र-व्यवहार

इसके बाद बिना टीपू के उत्तर का इन्तज़ार किए वेलसली कलकत्ते से चल दिया और 31 दिसम्बर, सन् 1798 को स्वयं युद्ध के मैदान के समीप रहने के उद्देश्य से मद्रास पहुंच गया । मद्रास पहुंचते ही उसे अपने 8 नवम्बर के पत्र के उत्तर में टीपू का साफ़-साफ पत्र मिला ।

मारीशस वाले मामले के जवाब में टीपू ने लिखा :

"इस ख़ुदादाद सरकार में एक क़ौम ऐसे व्यापारियों की है, जो खुश्की पर और समुद्र पर, दोनों जगह तिजारत करते हैं । इनके गुमाश्तों ने दो मस्तूलवाला एक जहाज खरीदा और उसमें चावल भर कर तिजारत के लिए निकले । अकस्मात् यह जहाज मारीशस टापू जा पहुंचा । वहां के चालीस आदमी फ्रान्सीसी और काले रंग के, जिनमें से 10 या 12 दस्तकार थे और बाकी नौकर थे, जहाज का किराया देकर रोजी की तलाश में यहां आ गए । उनमें से जिन्होंने नौकरी करना पसन्द किया, वे रख लिए गए, बाक़ी इस ख़ुदादाद सरकार की सीमा से बाहर चले गए । शायद फ़्रान्सीसियों ने, जिनमें बुराई और छल भरा हुआ है, इस जहाज के जाने से फ़ायदा उठा कर इन दोनों सरकारों के दिलों में मैल पैदा कर देने के उद्देश्य से ये अफ़वाहें उड़ा दी हैं ।

"मेरी यह दिली ख्वाहिश है और मैं सदा इसी कोशिश में लगा रहता हूं कि सुलहनामे की शर्तें पूरी हों और कम्पनी बहादुर की सरकार के साथ दोस्ती और मेल की बुनियाद स्थायी और मजबूत रहे । ××× इस परिस्थिति में आपके मित्रतासूचक पत्र में युद्ध का संकेत ××× पढ़ कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।"

वेल्सली की धमकी के जवाब में टीपू ने लिखा :

"यह समझा गया है कि खुदा के फ़ज़ल से सुलह के वक्त चारों सरकारों के बीच क़समें खाकर जो प्रतिज्ञाएं की गई हैं, वे इतनी पक्की और सर्वस्वीकृत हैं कि हमेशा क़ायम रहेंगी ××× मैं नहीं समझ सकता कि दोस्ती और मेल की बुनियादों को स्थायी बनाने के लिए, सलतनतों को सुरक्षित रखने के लिए और सब के लाभ और भले के लिए इससे ज्यादा कारगर और कौन-से उपाय किए जा सकते हैं ।"*

31 दिसम्बर, सन् 1798 को वेल्सली को टीपू का यह पत्र मिला । 9 जनवरी, सन् 1799 को वेल्सली ने टीपू को एक और लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने टीपू को साफ़ लिख दिया कि आप अपने समुद्र के किनारे के सब नगर और बन्दरगाह अंगरेज़ों के हवाले कर दें । पत्र मिलने के 24 घंटे के अन्दर टीपू से जवाब मांगा गया । वास्तव में, यह पत्र टीपू को केवल युद्ध की सूचना थी ।

टीपू अब अच्छी तरह समझ गया कि जिन विदेशियों को हैदर ने पूरी तरह परास्त करके भी उनके साथ दया और उदारता का व्यवहार किया, जिन्हें स्वयं टीपू ने एक बार अपनी मुट्ठी में लाकर उनके वादों पर विश्वास करके छोड़ दिया, जिन्होंने अभी छः साल पहले उसके साथ मित्रता की सन्धि की थी, वे अब भी उस पर झूठे दोष मढ़ कर उसे मिटा देने पर कमर कसे हुए थे । पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखलाना एशियाई नरेशों का सदा से एक ख़ास गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है ।

**Wellesley's Dispatches*, vol. i, pp. 382, 383.

युद्ध का एलान

3 फ़रवरी, सन् 1799 को कम्पनी की सेना टीपू के राज की ओर बढ़ी। टीपू इस युद्ध के लिए तैयार न था। 13 फ़रवरी को उसने वेलसली को पत्र लिखा कि मामले को शान्ति से तय करने के लिए मेजर डवटन को मेरे दरबार में भेज दिया जाए। इसके बाद भी कई बार टीपू ने प्रार्थना की कि पहले बातचीत से मामले को तय करने की कोशिश कर ली जाए। किन्तु वेलसली ने इन प्रार्थनाओं की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। 22 फ़रवरी को टीपू के साथ युद्ध का एलान कर दिया गया। कम्पनी की सेनाएं जनरल हैरिस के अधीन थीं। जल और स्थल, दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया। विवश होकर टीपू ने भी वीरता के साथ मुक़ाबला करने का निश्चय किया।

विश्वासघात का जाल

वेलसली जानता था कि बावजूद इतनी तैयारी के, कम्पनी की सेना का टीपू को परास्त कर सकना इतना सरल न था। इसलिए उसने कम्पनी की प्राचीन प्रथा के अनुसार टीपू के अफ़सरों और उसकी प्रजा के साथ पहले ही से गुप्त साज़िशें शुरू कर दी थीं। वेलसली ने मद्रास के गवर्नर हैरिस को लिखा :

> **"मेरे पास यह मानने के लिए काफी वजह है कि टीपू सुलतान के बहुत से सामन्त सरदार, मुख्य मुख्य अफ़सर और प्रजा के दूसरे लोग अपने नरेश के खिलाफ़ बग़ावत करके कम्पनी और उसके साथियों की पनाह में आने के लिए तैयार हैं। सुलतान की दग़ाबाज़ी और ज्यादती की वजह से जिस युद्ध में हमें फिर से पड़ना पड़ा है, उसमें सुलतान के आदमियों के असन्तोष और उनकी बग़ावत से, जहां तक हो सके, लाभ उठाना हमारे लिए जायज और मुनासिब है।"***

एक बाज़ाब्ता कमीशन

'दग़ाबाज़ी और ज्यादती' वास्तव में किस ओर थी, यह इतिहास के पन्ने-पन्ने से ज़ाहिर है। दूसरी ओर, विपक्षी के 'आदमियों के असन्तोष और उनकी बग़ावत से जहां तक हो सके, लाभ उठाना' नहीं, बल्कि उनमें असन्तोष और बग़ावत पैदा करके उन्हें अपनी ओर फोड़ना—सदा ही कम्पनी के लिए 'जायज़ और मुनासिब' समझा गया। इस काम के लिए यानी पहले से जा-जाकर टीपू के आदमियों से मिलने और उन्हें फोड़ने के लिए वेलसली ने अपने भाई कर्नल वेलसली, कर्नल क्लोज, कर्नल एगन्यु, कप्तान मैलकम और कप्तान मैकाले, पांच आदमियों का एक बाज़ाब्ता कमीशन नियुक्त किया। इस समय के पत्रों से ज़ाहिर है कि टीपू के विरुद्ध इससे पहले के युद्ध में भी कार्नवालिस इस तरह के उपायों को काम में ला चुका था।

---

* "I have reason to believe that many of the tributaries, principal officers, and other subjects of Tippo Sultan, are inclined to throw off the authority of that prince and to place themselves under the protection of the Company and of our allies. The war in which we are again involved by the treachery and violence of the Sultan, renders it both just and expedient that we should avail ourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his people."—Marquess Wellesley's letter to General Harris, *Wellesley's Dispatches*, p. 442.

मीर हुसनअली खां किरमानी ने अपनी फ़ारसी पुस्तक 'निशाने हैदरी' में विस्तार के साथ बयान किया है कि किस तरह कम्पनी की सेनाओं ने एकाएक चारों ओर से टीपू को जा घेरा, किस तरह वीरता और आन के साथ टीपू ने मरते दम तक शत्रुओं का मुक़ाबला किया और किस तरह टीपू के दरबार और उसकी सारी सेना को विश्वासघातकों से छलनी-छलनी करके अन्त में अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की ।

टीपू पर चारों ओर से हमला

उस पुस्तक से पता चलता है कि इस युद्ध में निज़ाम और उसके वज़ीर, मीर आलम ने अंगरेज़ों को फिर ख़ूब सहायता दी । चार हज़ार सेना मद्रास से जनरल हैरिस के अधीन थी । चार हज़ार सबसीडियरी सेना हैदराबाद से आकर मिली । दो हज़ार सेना बंगाल की थी । आठ हज़ार सवार मीर आलम के अधीन थे और हैदराबाद के छः हज़ार सवार रोशनराव के अधीन थे । कुछ सेना बम्बई से आई । इस तरह कुल मिलाकर करीब 30 हज़ार सेना ने चारों ओर से टीपू पर एक साथ चढ़ाई की ।

इस युद्ध के विविध संग्रामों को बयान करने की बजाय हम केवल युद्ध के उस पहलू को संक्षेप में बयान करेंगे, जो वास्तव में टीपू के नाश और अंगरेज़ों की सफलता का कारण हुआ । सबसे पहला धोखा, जो टीपू के कुछ नमकहराम सलाहकारों और जासूसों ने उसे दिया, वह यह था कि उन्होंने टीपू को विश्वास दिलाया कि कम्पनी की सारी सेना चार या पांच हज़ार से अधिक नहीं है ।

विश्वासघातक पूर्निया

टीपू ने ख़बर पाते ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री और सेनापति पूर्निया के अधीन कुछ सवार शत्रु के मुक़ाबले के लिए भेजे । रायकोट नामक स्थान से क़रीब दो कोस पर इस सेना की कम्पनी की सेना से मुठभेड़ हुई । किन्तु पूर्निया भीतर से अंगरेज़ों से मिला हुआ था । उसने बजाय मुक़ाबला करने के कम्पनी की सेना के दाएं-बाएं चक्कर लगाने शुरू किए । कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही । पूर्निया की सेना के एक दल ने आगे बढ़ कर वीरता के साथ शत्रु को रोका और एक बहुत बड़ी संख्या को तलवार के घाट उतारा । पूर्निया ने यह देख कर अपने वीर सवारों को शाबाशी देने की जगह उन्हें अत्यन्त कड़े शब्दों में लानत-मलामत की । सवार समझ गए कि पूर्निया लड़ना नहीं चाहता । इसके बाद कम्पनी की बढ़ती हुई सेना को रोकने या उनसे लड़ने की बजाय विश्वासघातक पूर्निया की सेना शत्रु के आगे-पीछे बतौर उनके संरक्षकों के चलती रही ।

नमकहराम कमरुद्दीन

यह सुन कर कि कम्पनी की सेना आगे बढ़ी चली आ रही है, सुलतान टीपू ने स्वयं सेना सहित आगे बढ़ने का विचार किया । उसके सलाहकारों ने फिर उसे धोखा दिया । जनरल हैरिस की सेना एक ख़ास रास्ते से श्रीरंगपट्टन की ओर बढ़ रही थी । टीपू के सलाहकारों ने उसे दूसरा रास्ता बतला दिया और टीपू ने एक ग़लत सड़क पर जाकर डेरे डाल दिए । ज्यों ही टीपू को इस विश्वासघात का पता चला, उसने फ़ौरन तेजी के साथ आगे बढ़ कर गुलशनाबाद के पास सामने से हैरिस की सेना को रोका । कुछ देर तक ख़ूब

घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान के अनेक सिपाहियों और सेनापतियों ने वीरता के हाथ दिखाए। कम्पनी की सेना और ख़ास कर तोपख़ाने को जबरदस्त हानि सहनी पड़ी। ठीक मौक़े पर सुलतान ने अपने एक सेनापति, कमरुद्दीन ख़ां को सवारों सहित आगे बढ़ कर शत्रु को समाप्त कर देने की आज्ञा दी। किन्तु कमरुद्दीन खां भी अपने आपको अंगरेज़ों के हाथ बेच चुका था। मौक़ा मिलते ही शत्रु पर हमला करने के बजाय वह थोड़ा आगे बढ़ कर उलटा लौटा और एकाएक अपने सवारों सहित सुलतान की सेना के एक भाग पर टूट पड़ा। टीपू के अनेक जांबाज़ सिपाही इस समय काम आए, अनेक हैरान होकर पीछे हट गए और कमरुद्दीन ख़ां के विश्वासघात के प्रताप से मैदान अंगरेजों के हाथ रहा।

बम्बई की सेना

इतने में टीपू को पता चला कि एक दूसरी सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन बम्बई से श्रीरंगपट्टन की ओर बढ़ी आ रही है। फ़ौरन कुछ सरदारों को जनरल हैरिस के मुकाबले के लिए छोड़ कर टीपू अपनी समस्त सेना और तोपख़ाने सहित जनरल स्टुअर्ट का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा।

दो रात और एक दिन के लगातार कूच के बाद टीपू ने बम्बई की सेना को जा पकड़ा और पहुंचते ही हमले की आज्ञा दे दी। टीपू की सेना ने इस समय भी पूरी वीरता दिखलाई। कम्पनी की सेना को भारी शिक़स्त खानी पड़ी। अनेक वीर मैदान में काम आए और अनेक माल-असबाब छोड़ कर ज़ान बचा कर आसपास के जंगल में जा छिपे। टीपू के जासूसों ने आकर उसे ख़बर दी कि बम्बई की सेना युद्ध का इरादा छोड़ कर जंगल के रास्ते पीछे लौट गई। टीपू अपनी विजयी सेना सहित श्रीरंगपट्टन की ओर मुड़ आया।

मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दील-जैसे विश्वासघातकों ने टीपू के चारों ओर नमकहराम मुख़बीर और सलाहकार पैदा कर रखे थे।

श्रीरंगपट्टन की लड़ाई

टीपू के श्रीरंगपट्टन पहुंचते ही जनरल हैरिस की सेना नगर के सामने आ पहुंची। सामने की ओर श्रीरंगपट्टन का क़िला था और पीछे नगर। अंगरेज़ी सेना ने क़िले और नगर के अन्दर आग बरसना शुरू किया। टीपू के कुछ सलाहकारों ने उसे यह राय दी कि आप नगर छोड़ कर भाग जाइए या सुलह की बातचीत शुरू कीजिए। वीर टीपू ने उस स्थिति में दोनों बातों से इनकार कर दिया। उसने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन ख़ां के विश्वासघात का उसे अभी तक पता न था। उसने फिर इन्हीं दोनों सेनापतियों के अधीन सेना नियुक्त करके क़िले से बाहर भेजी। मीर हुसैनअली ख़ां लिखता है कि दोनों सेनापति इस सेना को लेकर बार-बार अंगरेज़ी सेना के दाए-बाएं चक्कर लगाते रहे, बार-बार सेना के बहादुर सवार, जो टीपू के वफ़ादार थे, शत्रु पर हमला करने की इज़ाजत मांगते थे और बार-बार उनके सेनापति उन्हें इजाज़त देने से इनकार करते थे; सिपाही दुख और निराश से हाथ मलते रह जाते थे; यहां तक कि बम्बई की अंगरेज़ी सेना भी हैरिस की मदद के लिए आ पहुंची।

सय्यद ग़फ्फ़ार की वफ़ादारी

अन्त में घमासान संग्राम हुआ । इस संग्राम में महताब बाग़ का मोरचा श्रीरंगपट्टन के क़िले की कुंजी था । टीपू का एक विश्वस्त अनुचर, सय्यद ग़फ्फ़ार, जिसका ज़िक्र दूसरे मैसूर युद्ध के बयान में आ चुका है, महताब बाग़ का संरक्षक था । सय्यद ग़फ्फ़ार देर तक वीरता के साथ शत्रु के हमलों से महताब बाग़ की रक्षा करता रहा । दुश्मन ने देख लिया कि सय्यद ग़फ्फ़ार के रहते महताब बाग़ को जीत सकना असम्भव है । सय्यद ग़फ्फ़ार को धन का लोभ दिया गया । उस पर उसका कोई असर न हुआ । अन्त में गुप्त सलाह कर टीपू के आसपास के नमकहरामों ने टीपू को कुछ समझा बुझा कर सय्यद ग़फ्फ़ार को महताब बाग़ से हटवा कर क़िले के अन्दर बुलवा लिया । जिस मनुष्य ने सय्यद ग़फ्फ़ार की जगह ली, वह अंगरेज़ों का धनक्रीत था । सय्यद ग़फ्फ़ार के जाते ही उसने महताब बाग़ अंगरेज़ सेना के हाथों में दे दिया और इस तरह श्रीरंगपट्टन क़िले का दरवाजा शत्रु के लिए खोल दिया ।

विश्वासघातकों की सूची

टीपू का मुख्य सलाहकार उस समय उसका एक दीवान मीर सादिक़ था । भोले टीपू को बहुत देर तक इसका पता न चल सका कि यह मीर सादिक़ भी उसके दुश्मन से मिला हुआ था । यहां तक कि मीर सादिक़ ने टीपू के एक विश्वस्त अफ़सर, ग़ाज़ी खां, को क़त्ल करवा दिया और क़िले की दीवारों के टूट जाने पर भी टीपू से इस ख़बर को छिपाए रखा । अन्त में, जब टीपू को अपने कुछ विश्वस्त आदमियों द्वारा इन बातों का और मीर सादिक़ और उसके दूसरे साथियों के विश्वासघात का पता चला, तो टीपू ने एक दिन सुबह को अपने हाथ से विश्वासघातकों की एक लम्बी सूची तैयार करके मीर मुईनुद्दीन के हाथ में दी और उसे आज्ञा दी कि आज ही रात को इन सब नमकहरामों का, जिस तरह हो, काम तमाम कर दिया जाए ।

अकस्मात् जिस समय मीर मुईनुद्दीन ने इस सूची को खोल कर पढ़ना चाहा, महल का एक फ़र्राश, जो पढ़ना जानता था और मीर सादिक़ से मिला हुआ था, मीर मुईनुद्दीन के पीछे खड़ा हुआ था । इस फर्राश ने मीर सादिक़ का नाम सूची में सबसे ऊपर पढ़ कर फ़ौरन जाकर मीर सादिक़ को इसकी ख़बर दे दी । मीर सादिक़ सावधान हो गया ।

ज्योतिषियों की भविष्यवाणी

उसी दिन सुलतान टीपू ने घोड़े पर चढ़ कर क़िले की चहारदीवारी का निरीक्षण किया, टूटी हुई दीवारों की मरम्मत का हुक्म दिया और ऐन एक दीवार के ऊपर अपना ख़ेमा लगवाया । कहते हैं कि कुछ ज्योतिषियों ने टीपू से आकर अर्ज़ की कि आज का दिन दोपहर से सात घड़ी बाद तक आप के लिए शुभ नहीं है । इन हिन्दू ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार टीपू ने अपने महल में जाकर स्नान किया, हिन्दू क़ायदे से हवन, पूजा और जाप करवाया और दो हाथी, जिन पर काली झूलें पड़ी थीं और जिनकी झूलों के चारों कोनों में सोना, चांदी, मोती और जवाहरात बंधे थे, एक ब्राह्मण को दान दिए । इसके बाद उसने अनेक गरीबों और मोहताजों में भोजन, वस्त्र और धन बंटवाया ।

सय्यद ग़फ़्फ़ार की हत्या

दोपहर के समय टीपू अभी भोजन करने के लिए बैठा ही था और अभी पहला ही कौर उसके मुंह में जा पाया था कि किसी ने बाहर आकर सूचना दी कि विश्वासघातकों ने सुलतान के विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार को, जो उस समय क़िले का प्रधान संरक्षक था, क़त्ल कर डाला। टीपू के लिए दूसरा कौर हराम हो गया। ख़बर सुनते ही वह फ़ौरन दस्तरख़ान छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर स्वयं सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह लेने के लिए अपने कुछ ख़ास-ख़ास सरदारों सहित पीछे की ओर से क़िले के अन्दर घुस गया।

उधर विश्वासघातकों ने सय्यद ग़फ़्फ़ार को ख़तम करते ही फ़ौरन दीवार पर चढ़ कर सफेद रूमाल दिखा कर बाहर की अंगरेज़ी सेना को इशारा किया और पेश्तर इसके कि टीपू मौके पर पहुंच कर फिर से अपने आदमियों को जमा कर सके, शत्रु के सिपाही दीवार के टूटे हुए हिस्से से श्रीरंगपट्टन के क़िले के अन्दर घुस आए।

नमकहराम मीर सादिक़ का क़त्ल

जब दीवान मीर सादिक़ को पता चला कि सुलतान खुद सेना जमा करके क़िले के अन्दर घुस गया है, उसने घोड़े पर चढ़ कर सुलतान का पीछा किया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले के अन्दर गया था, उसे मजबूती से बन्द करवा कर, ताकि टीपू किसी तरह बच कर न निकल सके, बाहर से सहायता पहुंचाने के बहाने एक दूसरे दरवाज़े से खुद बाहर निकलना चाहा। इस दूसरे दरवाजे पर पहुंचते ही उसने वहां के पहरदारों को आज्ञा दी कि जब मैं बाहर चला जाऊं, तब तुम दरवाज़े को मज़बूती से बन्द कर लेना और फिर किसी के कहने पर भी न खोलना। किन्तु अभी वह इन पहरेदारों से बात कर ही रहा था कि टीपू के एक वीर सीपाही ने सामने आकर ललकार कर कहा—"ऐ कमबख्त मलऊन! अपने ख़ुदातर्स सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके अब तू जान बचा कर भागना चाहता है? ले यह तेरे गुनाह की सज़ा है!" यह कहकर उसने अपनी तलवार के एक वार से नमक हराम मीर सादिक़ के दो टुकड़े कर डाले। मीर सादिक़ की लोथ घोड़े से ज़मीन पर जा गिरी।

किन्तु टीपू और उसके देश को अब इससे क्या लाभ हो सकता था! टीपू ने जब अच्छी तरह देख लिया कि मेरे आदमियों ने मेरे साथ दग़ा की और क़िला शत्रु के हाथों में चला गया, तो उसने एक बार उसी दरवाज़े से फिर बाहर जाना चाहा। किन्तु एक मामूली क़िलेदार ने, जिसे मीर सादिक़ ने पहले से समझा रखा था, इस समय अपने स्वामी और नरेश टीपू सुलतान की आज्ञा पर क़िले का दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया।

टीपू का वीरोचित अन्त

अंगरेज़ी सेना दीवार के टूटे हुए हिस्से पर से क़िले के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। टीपू अब फिर लौट कर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढ़ते हुए शत्रु की ओर लपका। उसने अपनी शक्ति पर अपने इन रहे-सहे सिपाहियों को जोश दिलाया। उसने चिल्ला कर कहा—"आख़िरी वक्त तक क़िले की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है"—"इनसान को मौत सिर्फ़ एक मरतबा आ सकती है, फिर क्या परवाह है कि जिन्दगी कब ख़तम हो।"* यह कह कर उसने अपनी बन्दूक़ से शत्रु की ओर गोलियां चलाना शुरू किया। कई यूरोपियन

**History of Hyder Shah and Tipoo Sultan,* by Prince Gholam Mohammad.

अफ़सर उसकी गोलियों का शिकार होकर गिर पड़े। किन्तु शत्रु की तादाद बहुत अधिक थी । अन्त में एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी । टीपू जख्मी हो गया, फिर भी उसने बन्दूक़ हाथ से न छोड़ी और न वह पीछे मुड़ा । इस ज़ख्मी हालत में भी वह बराबर अपनी बन्दूक से शत्रु पर गोलियां बरसाता रहा । थोड़ी देर बाद एक दूसरी गोली टीपू की छाती में दाहिनी ओर आकर लगी । टीपू का घोड़ा अब ज़ख्मों से छलनी-छलनी होकर गिर पड़ा । टीपू की पगड़ी ज़मीन पर जा गिरी । शत्रु अधिक निकट आ पहुंचे। प्यादा पा और नंगे सर टीपू ने अब बन्दूक़ फेंक कर दाहिने हाथ में अपनी तलवार संभाली । टीपू की छाती से अब दो-दो धारें खून की बह रही थीं । उसके कुछ वफ़ादार साथियों ने उसकी यह हालत देख कर सहारा देकर उसे एक पालकी में बैठा दिया । पालकी एक मेहराब के नीचे रख दी गई । इस हालत में टीपू के एक मुलाज़िम ने उसे सलाह दी कि अब आप अपने-आपको अंगरेज़ों के हवाले कर दीजिए और उनकी उदारता पर छोड़ दीजिए, किन्तु वीर टीपू ने बड़े तिरस्कार के साथ इस सलाह को अस्वीकार किया । इतने में कुछ अंगरेज़ सिपाही पालकी के पास तक आ पहुंचे। इनमें से एक ने टीपू को जख्मी देख कर उसकी कमर से जड़ाऊ पेटी उतारनी चाही । टीपू ने अभी तक तलवार हाथ से न छोड़ी थी । उसने इस तलवार से गोरे सिपाही पर वार किया और एक वार में उसका घुटना उड़ा दिया । फ़ौरन एक तीसरी गोली टीपू की दाहिनी कनपटी में आ लगी, जिसने एक क्षण के अन्दर उसके ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया । उस दिन रात को जिस समय टीपू का मृत शरीर लाशों के ढेर में से ढूंढ कर निकाला गया, उस समय तक तलवार उसके हाथ से न छूटी थी । दाहिने हाथ का पूरा पंजा तलवार के कब्ज़े पर कसा हुआ था । टीपू प्रायः कहा करता था—"दो दिन शेर की तरह जीना ज्यादा अच्छा है, बजाय दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने के ।"

निस्सन्देह, टीपू का जीवन और उसकी मृत्यु, दोनों इस कथन के अनुरूप थी ।

लालबाग़, श्रीरंगपट्टन में टीपू, हैदर और हैदर की मां फ़ातिमा तीनों की क़ब्रें एक ही जगह एक ही छत के नीचे बनी हुई हैं । जो अनेक सुन्दर कविताएं वहां टीपू की मृत्यु के सम्बन्ध में लिखी हुई हैं, उनमें टीपू को 'शाहे शुहदा' यानी 'शहीदों का सम्राट' और 'नूरे इसलामो दीन' यानी 'इसलाम और दीन का नूर' कहा गया है ।

टीपू के बड़े बेटे के साथ झूठा वादा

टीपू की आयु उस समय 50 वर्ष की थी । 17 साल वह अपने पिता के तख्त पर बैठ चुका था । उसका सबसे बड़ा बेटा फ़तह हैदर सुलतान इस समय क़िले से बाहर कारी घाट पहाड़ी के निकट शत्रु से लड़ रहा था । पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही वह क़िले की ओर लपका । सलाह के लिए उसने तुरन्त अपने वज़ीरों और अमीरों को जमा किया । इनमें एक ओर मलिक जहान खां और उसके साथी लड़ाई जारी रखने के पक्ष में थे और दूसरी ओर पूर्निया और उसके साथी फ़ौरन सुलह कर लेने पर ज़ोर दे रहे थे । इतने में जनरल हैरिस ने सुलह की बातचीत करने के बहाने अपने कुछ अफ़सरों सहित आकर फ़तह हैदर सुलतान से भेंट की और अत्यन्त आदर और प्रेम के साथ सब के सामने उससे वादा किया कि यदि आप लड़ाई बन्द कर दें, तो अंगरेज़ सरकार आपको फिर से आपके पिता के तख्त पर बैठा देगी । इस साफ़ वादे पर और पूर्निया-जैसों के ज़ोर देने पर फ़तह

हैदर सुलतान ने शस्त्र रख दिए । जनरल हैरिस ने वहां से लौटते ही अपने इस वादे को साफ़ तोड़ डाला । निसन्देह यह वादा केवल एक चाल था । श्रीरंगपट्टन के क़िले पर अंगरेज़ी सेना का पूरी तरह क़ब्ज़ा हो गया ।

श्रीरंगपट्टन में अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

श्रीरंगपट्टन के क़िले के बाद अंगरेज़ी सेना के लिए नगर में प्रवेश करना बाकी था । मार्क्विस वेल्सली के नाम से एक एलान प्रकाशित किया गया कि अंगरेज़ी सेना नगर-निवासियों की जान और माल, दोनों की रक्षा करेगी और किसी पर किसी तरह का अन्याय न होगा । किन्तु विजयी अंगरेज़ी सेना के नगर में घुसते ही "श्रीरंगपट्टन की गलियों में एक-एक दीवार और एक-एक दरवाज़े से खून बहने लगा ।" इतना ही नहीं, श्रीरंगपट्टन के पतन के बाद कई दिन तक कम्पनी के सिपाहियों और ख़ास कर गोरे सिपाहियों ने जो अकथनीय अत्याचार नगर-निवासियों पर जारी रखे और जिन्हें स्वयं अंगरेज़ अफ़सरों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है, उनके सामने किसी भी भारतीय नरेश के काले-से-काले पाप फीके मालूम होते हैं । मीर हुसनअली ख़ां लिखता है कि क़त्ल, लूट और स्त्रियों के साथ बलात्कार इस तेज़ी से बढ़ा कि बयान करना नामुमकीन है ।

टीपू के महल की लूट

इसके बाद अंगरेज़ी सेना शाही महल के अन्दर घुसी । टीपू को अपने बाप के समान शेर पालने का शौक था । उसके महल के बाहरी सहन में बेशुमार शेर खुले फिरते रहते थे । अंगरेज़ों को भीतर घुसने से पहले इन शेरों को गोली से उड़ा देना पड़ा । महल के भीतर टीपू का ख़ज़ाना धन और जवाहरात से लबालब था । यह माल, हाथी, ऊंट और तरह-तरह का असबाब कम्पनी और उसके अंगरेज़ सिपाहियों के हाथ में आया । टीपू के सुन्दर तख़्त को, जो सोने का बना हुआ था, तोड़ डाला गया और हीरे, जवाहरात, मोतियों की मालाएं और जेवरों के पिटारे नीलाम किए गए । यहां तक कि केवल महल के जवाहरात की लूट का अन्दाज़ा उस समय 1,11,43,216 पौण्ड, यानी क़रीब 12 करोड़ रुपये का किया गया । टीपू का विशाल पुस्तकालय और बहुत-सा क़ीमती सामान श्रीरंगपट्टन से उठा कर विलायत भेज दिया गया ।

टीपू के राज का अन्त

4 मई, सन 1799 को टीपू की मृत्यु हुई । उसी दिन अंगरेज़ी सेना ने श्रीरंगपट्टन में प्रवेश किया । 5 मई को टीपू की लाश हैदरअली के मक़बरे के पास लालबाग़ में दफ़न कर दी गई । इसके बाद फ़तह हैदर सुलतान के साथ जनरल हैरिस के वादे को मिट्टी में मिला कर अंगरेज़ों ने टीपू के भाई करीमसाहब, टीपू के 12 बेटों और उसकी बेगमों, सबको क़ैद करके रायवेलोर के क़िले में भेज दिया ।

टीपू की सलतनत के कई टुकड़े कर दिए गए । अधिकांश भाग कम्पनी को मिला । एक फांक निज़ाम के हिस्से में आई । बाक़ी हिस्से पर मैसूर के पुराने हिन्दू राजकुल का शासन रहने दिया गया, और उस कुल का एक पांच साल का बालक राजा बना कर बैठा दिया गया, क्योंकि इस कुल के कुछ लोगों ने भी टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों की मदद की थी ।

मैसूर के 'दैव' का पद भविष्य के लिए तोड़ दिया गया; और विश्वासघातक पूर्निया बालक राजा का वज़ीर और रक्षक नियुक्त हुआ ।

मैसूर के नए बालक महाराजा के साथ सन्धि

8 जुलाई, सन् 1799 को मैसूर के नए महाराजा और अंगरेज़ कम्पनी के बीच सोलह शर्तों का एक नया सन्धिपत्र लिखा गया। इन शर्तों का सार यह था कि कम्पनी की सबसीडियरी सेना मैसूर में रहा करेगी, मैसूर के राजा को इस सेना के खर्च के लिए सात लाख पैगोदा, यानी क़रीब पच्चीस लाख रुपये, सालाना देने होंगे, रियासत के तमाम क़िले और फ़ौजी शासन अंगरेज़ों के हाथों में रहेगा, राजा के हर महकमे में दखल देने का गवर्नर-जनरल को पूरा अधिकार रहेगा, गवर्नर-जनरल की आज्ञा हर समय और हर हालत में राजा को माननी होगी, और राजा का एकमात्र अधिकार यह होगा कि रियासत की आमदनी में से फ़ौजी और दूसरे सब खर्च निकाल कर कम-से-कम एक लाख पैगोदा सालाना उसे अपने खर्च के लिए मिलता रहे।

टीपू के जिन सरदारों और अन्य नौकरों ने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया था, उनमें से कुछ को इनाम में जागीरें और पेनशनें दी गईं। इंगलिस्तान की सरकार ने उन सब अंगरेज़ों को इनाम दिए, जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया था। गवर्नर-जनरल का नाम पहले 'अर्ल' मार्निगटन था, अब रुतबा बढ़ा कर उसका नाम 'मार्क्विस' वेलसली हो गया। जनरल हैरिस आइन्दा के लिए 'जनरल लार्ड हैरिस आफ़ श्रीरंगपट्टन' हो गया।

आज़ादी का सच्चा प्रेमी मलिक जहान खां

टीपू के सरदारों में से एक वीर, मलिक जहान खां, जिसे धूंड़िया वाघ भी कहा जाता है, ने अन्त तक विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की। केवल एक घोड़ा साथ लेकर श्रीरंगपट्टन के पतन के समय वह नगर से निकल गया और थोड़े ही दिनों में उसने क़रीब तीस हज़ार सवार और पैदल अपने साथ जमा कर लिए। दो साल तक कृष्ण और तुंगभद्रा नदियों के बीच के इलाक़े में वह अंगरेज़ों और उनके साथियों को दिक़ करता रहा। अनेक लड़ाइयों में उसने विजय प्राप्त की। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। पर इस अरसे में वह कोई बाज़ाब्ता क़िला या केन्द्र अपने लिए न बना सका। दो साल तक इस तरह मुक़ाबला करने के बाद एक जगह कर्नल आर्थर वेलसली की सेना से उसका संग्राम हुआ, जिसमें कड़प्पा और करनूल के अफ़गानों ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे कर्नल वेलसली के हवाले कर दिया। अनेक अंगरेज़ इतिहास-लेखक आज़ादी के इस सच्चे प्रेमी को, जिसने लगातार दो साल तक अनन्त कष्ट सहन करते हुए भी विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की, उसी तरह 'डाकू' बतलाते हैं, जिस तरह छत्रपति शिवाजी को।

इस तरह, वीर हैदरअली की नसल में राजसत्ता का अन्त कर दिया गया और भारत में अंगरेज़ी राज के मार्ग की सबसे ज़बरदस्त बाधा दूर हो गई।

टीपू की मौत पर खुशियां

टीपू की मृत्यु का समाचार जब कलकत्ते पहुंचा, तब वहां के अंगरेज़ों ने बड़-बड़े जलसे किए और खुशियां मनाईं, बाक़ायदा जलूस निकाले गए, गवर्नर-जनरल और बाक़ी सब अफ़सरों ने एक दिन नियत करके बड़े ठाट-बाट के साथ कलकत्ते के नए गिरजे में जाकर

ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया; क्योंकि उस समय के बंगाल के अंगरेज चीफ़ जस्टिस सर जान एन्सट्रथर के शब्दों में टीपू की ताक़त ही—"उस समय एकमात्र ताक़त थी, जो हमारी सेनाओं का मुंह मोड़ने का अपने में बल रखती थी।" और "भारत में हमारा (अंगरेज़ी) साम्राज्य अब से पक्का और महफ़ूज हो गया।"*

टीपू के चरित्र को कलंकित करने की कोशिशें

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जेम्स मिल को छोड़ कर बहुत कम अंगरेज़ लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने टीपू के चरित्र के साथ न्याय करने की कोशिश की हो। इनमें से अधिकांश लेखकों ने टीपू को बदनाम करने के भरसक प्रयत्न किए है, यहां तक कि मुसलमान लेखकों को धन देकर उनसे फ़ारसी में सुलतान टीपू की कल्पित जीवनियां लिखवा डाली गईं। इन अंगरेज़ों या अंगरेज़ों के ज़रख़रीद भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू के अत्याचारों के अनेक कल्पित क़िस्से भरे हुए हैं। संसार के इतिहास में शायद बहुत कम लोगों के चरित्र पर इतने अधिक झूठे कलंक लगाए होंगे, जितने उन भारतीय वीरों के चरित्र पर, जिन्होंने समय-समय पर इस देश के अन्दर अंगरेज़ी राज के जमने को रोकने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास-लेखक सर जान के, जो सन् 57 के स्वाधीनता युद्ध के बाद इंगलिस्तान के भारत मन्त्री के दफ्तर में 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रहा, साफ़ लिखता है :

> **"हम लोगों में यह एक प्रथा है कि पहले किसी देशी नरेश का राज्य छीनते हैं और फिर उस पर और उसका उत्तराधिकारी बननेवाले पर झूठे कलंक लगा कर उन्हें बदनाम करते हैं।"†**

दो मुख्य इलज़ाम

दो तरह के इलज़ाम टीपू सुलतान पर लगाए जाते हैं। एक यह कि अपने अंगरेज़ क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त क्रूर था, और दूसरा यह कि टीपू एक धर्मान्ध मुसलमान था।

पहले इलज़ाम के विषय में हम केवल इतना कहेंगे कि सिवाय कप्तान बेयर्ड-जैसे अंगरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कोई गवाही इस 'क्रूर व्यवहार' की नहीं मिलती, और ये अंगरेज़ क़ैदी न निष्पक्ष माने जा सकते हैं और न सर्वथा सत्यवादी। इसके अलावा, यदि बेयर्ड और उसके साथियों के सारे बयान सच भी मान लिए जाएं, तो वे सब अत्याचार, जो टीपू ने बेयर्ड और उसके साथी अंगरेज़ों पर किए, उन अत्याचारों के मुक़ाबले में बिल्कुल फीके मालूम होते हैं, जो अंगरेज़ों ने मैसूर के इन्हीं युद्धों में अपने हिन्दोस्तानी क़ैदियों और मैसूर की प्रजा के साथ किए।

टीपू की धार्मिकता

दूसरा इलज़ाम, इस देश में हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य को बढ़ाने का अंगरेज़ लेखकों के हाथों में सदा से एक ख़ास साधन रहा है। टीपू पर इस इलज़ाम के सम्बन्ध में हम

---

*Sir John Anstruther to the Governor-General, 17th May, 1799.

† "......It is a custom among us *odisse quern ceseres*—to take a Native Ruler's Kingdom and then to revile the deposed ruler or his would-be successor."—*History of the Sepoy War,* by Sir John Kaye, Vol. III, pp. 361, 362.

सबसे पहले इतिहास-लेखक जेम्स मिल की राय नक़ल करते हैं। जेम्स मिल लिखता है :

"टीपू के चरित्र की एक और विशेषता उसकी धार्मिकता थी। उसके मन पर इस धार्मिक भाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हुआ था। दिन का अधिकांश समय वह ईश्वर-प्रार्थना में खर्च किया करता था। अपनी सलतनत को वह 'खुदादाद' यानी 'ईश्वरप्रदत्त' कहा करता था। ईश्वर के अस्तित्व और उसकी पालकता में उसे इतना गहरा विश्वास था कि इस विश्वास का प्रभाव उसके जीवन समस्त के कार्यों पर पड़ता था। वास्तव में, जिन चीजों ने उसे फंसाने के लिए जाल का काम दिया, उनमें से एक उसका ईश्वर की सहायता पर विश्वास था ; क्योंकि वह ईश्वरीय सहायता पर इतना अधिक भरोसा करता था कि कभी-कभी अपनी रक्षा के दूसरे उपायों की अवहेलना कर जाता था।"*

यह बयान एक विद्वान और प्रामाणिक अंगरेज़ इतिहास-लेखक का है। निस्सन्देह, इस विषय में हैदरअली और टीपू सुलतान में अन्तर था। हैदरअली सम्राट अकबर के समान बिल्कुल आज़ाद ख़याल का था। टीपू ईश्वर में अधिक विश्वासी और धार्मिक विचार का था। हैदरअली किसी धर्म को भी पूर्ण या निभ्रान्त न समझता था। टीपू धार्मिक प्रवृत्ति का मनुष्य था और ख़ास कर इस्लाम धर्म को मानता था। किन्तु जिस तरह का ईश्वरभक्त और विश्वासी मनुष्य टीपू था, उस तरह की धार्मिकता एक चीज है और धर्मान्धता बिल्कुल दूसरी चीज़ है।

अंगरेज़ों और अंगरेज़ों के धनक्रीत भारतीय लेखकों की पुस्तकों में टीपू की धर्मान्धता और गैर-मुसलमानों के साथ उसके अनुचित व्यवहार की इतनी कहानियां दर्ज हैं कि इस विषय में अपनी अन्तिम राय क़ायम करने से पहले हमने और अधिक खोज़ की आवश्यकता अनुभव की। हम वर्तमान मैसूर राज के पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर डाक्टर शामशास्त्री, मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत श्रीकान्तिया और वहां के उन अन्य सज्जनों के अहसानमन्द हैं, जिन्होंके इस खोज में हमें हर तरह मदद दी।

टीपू के दो एलान

इस तमाम छानबीन में हमें केवल दो लेख इस तरह के मिल सकें, जिन्हें किसी तरह भी प्रामाणिक कहा जा सके और जिनसे टीपू में धार्मिक संकीर्णता का आभास हो सके। पहला लेख टीपू का उस समय का एक एलान है, जब कि अंगरेज़ और नवाब कर्नाटक के साथ टीपू का युद्ध जारी था। इस ऐलान में टीपू ने क़ुरान की आयतें और महाकवि हाफ़िज की कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हुए शत्रु के इलाक़े में रहनेवाले मुसलमानों से प्रार्थना की है कि आप लोग विदेशियों को मदद न दें और शत्रु के इलाक़े को छोड़ कर मैसूर राज्य में आ बसे। एलान में दरशाया गया है कि किसी मुसलमान के लिए हिन्दोस्तान के हित

---

* "Another feature in the character of Tipu was his religion, with sense of which his mind was most deeply impressed. He spent a considerable part of every day in prayer. He gave to his Kingdom, or state, a particular religious title, *Khudadad* or God-given; and he lived under a peculiarly strong and operative conviction of the Superintendence of a Divine Providence. His confidence in the protection of God was, indeed, one of his snares, for he relied upon it to the neglect of other means of safety"—*History of India,* by James Mill.

के विरुद्ध विदेशियों की सहायता करना पाप है। टीपू ने इस एलान में कर्नाटक और बंगाल के अन्दर अंगरेज़ों के अत्याचारों की ओर इशारा करते हुए लिखा है—"हिन्द के नरेशों की निर्बलता के कारण वह मदोद्धत जाति (यानी अंगरेज़) व्यर्थ यह समझ बैठी है कि सच्चे दीनदार लोग निर्बल, तुच्छ और निकृष्ट हो गए हैं।" एलान में यह भी लिखा है कि हमने अपनी सल्तनत भर में प्रजा और राजकर्मचारियों को यह आज्ञा भेज दी है कि जो लोग शत्रु के इलाक़े से आकर मैसूर राज में बसना चाहें, उनके जान-माल की पूरी हिफ़ाजत की जाए और उनकी जीविका इत्यादि का मुनासिब प्रबन्ध कर दिया जाए, इत्यादि। *

दूसरा लेख मैसूर राज्य में रहनेवाले हिन्दोस्तानी ईसाइयों से सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर बयान किया जा चुका है कि हैदरअली ने उदारतावश अपने राज में यूरोप के ईसाई पादरियों को अपने मत-प्रचार की इजाज़त दे दी थी और उनकी इच्छानुसार कई तरह की सुविधाएं कर दी थीं, जिसके सबब ख़ास कर समुद्र-तट के कुछ लोगों ने ईसाई मत स्वीकार कर लिया था। किन्तु कम्पनी और हैदरअली के संग्रामों में इन्हीं यूरोपियन और भारतीय ईसाईयों ने हैदरअली के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया। अपनी ईसाई प्रजा की ओर से इसी तरह का कटु अनुभव कई बार टीपू सुलतान को भी हुआ। ये हिन्दोस्तानी ईसाई वास्तव में यूरोपियन पादरियों के हाथों में खेल रहे थे। मजबूर होकर टीपू को उनके विरुद्ध उपाय करना पड़ा। जिस लेख की ओर हम संकेत कर रहे हैं, उसमें लिखा है कि एक बार समुद्र-तट के कुछ ईसाइयों की 'ज्यादती को सुन कर टीपू ने आज्ञा दी कि तुम लोग अब या तो मसूर राज्य छोड़ कर चले जाओ और या मुसलमान हो जाओ।' एक इतिहास-लेखक लिखता है कि साठ हज़ार ईसाई मर्द, औरत और बच्चे गिरफ्तार करके सुलतान के सामने पेश किए गए, उन्हें इसलाम धर्म में ले लिया गया और जीविका के लिए उन्हें राज्य की सेना में भरती कर लिया गया। एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है कि इन लोगों की तादाद क़रीब तीस हज़ार थी। †सम्भव है, इस दूसरे अन्दाज़े में भी अत्युक्ति की काफ़ी मात्रा हो।

जो हो, टीपू की इन दोनों आज्ञाओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें ध्यान देने योग्य हैं।

पहला एलान साफ़ युद्ध से सम्बन्ध रखता था, उससे धार्मिक संकीर्णता का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरे के विषय में, अपने और अपने राज्य के साथ ईसाइयों के विश्वासघात का हैदरअली और टीपू, दोनों को काफ़ी कटु अनुभव हो चुका था। यही ईसाई बरसों तक टीपू के राज्य में सुख और स्वतन्त्रता से रह चुके थे, और जब तक उनके दुष्कृत्य और अपने देश की ओर उनकी विश्वासघातकता अधिक नहीं बढ़ी, उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। टीपू की इस दूसरी आज्ञा के सम्बन्ध में ठीक-ठीक तादाद का या उसमें 'ज़बरदस्ती' की मात्रा का अनुमान कर सकना भी कठिन है।

**Selected Letters of Tipu Sultan to various public functionaries,* arranged and translated by William Kirkpatrick, pp. 293-97.

†*Historical Sketches of the South India, etc.,* by Colonel Mark Wilks, Vol. ii, pp. 529, 530.

इसके अलावा ईसाइयों को छोड़ कर मैसूर की बाक़ी सब हिन्दू और दूसरी ग़ैर-मुसलिम प्रजा के साथ टीपू के अनुचित व्यवहार का इसमें कहीं ज़िक्र नहीं ।

हिन्दुओं के साथ टीपू का व्यवहार

मैसूर की अधिकांश आबादी हिन्दू थी और हिन्दुओं के साथ टीपू के किसी तरह के अनुचित व्यवहार का हमें एक भी प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत, अपनी हिन्दू प्रजा के साथ टीपू के उदार और प्रेमभरे व्यवहार की बेशुमार मिसालें उस समय के इतिहास में भरी पड़ी हैं ।

अन्त समय तक टीपू के दरबार में ऊंची-से-ऊंची पदवियां हिन्दुओं को मिली हुई थीं। उसके दो मुख्य मन्त्री पूर्निया और कृष्णराव ब्राह्मण थे, जिनमें पूर्निया उसका प्रधान मन्त्री था। इन दोनों मन्त्रियों का प्रभाव उस समय अत्यन्त बढ़ा हुआ था। इनके अलावा बेशुमार ब्राह्मण टीपू के दरबार में खास कर राजदूतों का काम करने और दरबार में लोगों का परिचय कराने पर नियुक्त थे ।

एक बार मलाबार तट की हिन्दू नय्यर जाति के कुछ लोगों ने अपने ईसाई मत स्वीकार करने या न करने के विषय में टीपू सुलतान से सलाह मांगी। टीपू ने उत्तर दिया :

> **"राजा प्रजा का पिता होता है । इस हैसियत से मेरी आपको यह सलाह है कि आप लोग अपने पूर्वपुरुषों के मज़हब (यानी हिन्दू मज़हब) पर कायम रहें; और यदि आपको अपना मज़हब बदलने की इच्छा है ही, तो आप (ईसाई होने की जगह) अपने पितातुल्य राजा का मज़हब स्वीकार करें ।"**

जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम टीपू के पत्र

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का शृंगेरी मठ मैसूर के राज्य में था । टीपू उस समय के शृंगेरी स्वामी जगदगुरु शंकराचार्य श्री सच्चिदानन्द भारती का बहुत अधिक आदर करता था। जगद्गुरु के नाम टीपू सुलतान के समय-समय पर भेजे हुए तीस से ऊपर पत्र इस समय मौजूद हैं, जो अत्यन्त मानसूचक शब्दों में लिखे हुए हैं ।

मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर ने दो मूल पत्रों के फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं, जिनमें से एक नमूने के तौर पर हम इस पुस्तक में प्रकाशित कर रहे हैं । पत्र कन्नड़ भाषा में हैं ।

पत्र का हिन्दी भाषान्तर इस प्रकार है :

(मोहर टीपू सुलतान)

> **श्रीमत् परमहंसादि यथोक्त विरुदांकित शृंगेरी श्री स्वामी सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की सेवा में टीपू सुलतान बादशाह का सलाम ।**
>
> **श्री महाराज के लिख कर भेजे हुए पत्र से सकल अभिप्राय विदित हुआ। आप जगद्गुरु हैं, सर्वलोक के क्षेम और सबकी स्वस्थता के हित आप तपस्या करते रहते हैं। ऐसे ही दया कर इस सरकार के क्षेम और उसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि के लिए तीनों काल में तपस्या करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करने की कृपा कीजिए।**

आप जैसे महापुरुष जिस देश में निवास करते हैं, उस देश में वर्षा अच्छी होती है, कृषि फूलती–फलती है और सदा सुभिक्ष रहता है। आप इतने अधिक दिनों तक परदेश में क्यों रह रहे हैं ? जिस उद्देश्य से श्री महाराज वहां गए हैं, उसे शीघ्र अपने अनुकूल सिद्ध करके अपने स्थान को वापस आने की कृपा कीजिए।

ता० 29, महीना राजी साल सहर सन् 1220 महम्मदी, तदनुसार परीधावी संवत्सर माघ कृष्णा चतुर्दशी, लिखा हुआ सुब्राऊ मुन्सी हुजर।

(हस्ताक्षर टीपू सुलतान)

यह पत्न सन् 1793 ई० का उस समय का लिखा हुआ है, जब कि जगद्गुरु किसी कार्यवश कुछ समय के लिए श्रृंगेरी मठ से बाहर पूना की ओर गए हुए थे। पत्न जगद्गुरु के एक पत्न के उत्तर में है। इस पत्न-व्यवहार से स्पष्ट है कि उस समय के जगद्गुरु शंकराचार्य में और टीपू सुलतान में किस प्रकार का सम्बन्ध था।

हिन्दू पुरोहित और ज्योतिषी

टीपू के महल के अन्दर अनेक हिन्दू पुरोहित और ज्योतिषी रहा करते थे, और टीपू की ओर से यज्ञ, हवन, जप इत्यादि करते रहते थे। मरते दम तक टीपू ने ब्राह्मणों को दान दिए और हिन्दू ज्योतिषियों के आदेशानुसार यज्ञ-हवन करवाए। भाद्रपद शुक्ला द्वितीया विरोधीकृत संवत्सर, अर्थात् सन् 1791 का लिखा हुआ जगद्गुरु के नाम टीपू का एक और पत्न हमारे पास मौजूद है, जिसमें टीपू ने अपने खर्च पर जगद्गुरु से 'शतचण्डी सहस्त्र पाठ' की व्यवस्था कर देने की प्रार्थना की है।

मन्दिरों को जागीरें

नंजूनगुड, श्रीरंगपट्टन और मेलकोट इत्यादि के अनेक हिन्दू मन्दिरों को टीपू ने अनेक बार नजरें और जागीरें दीं। इनमें से बंगलोर में टीपू के जनाने महल के ठीक सामने श्रीवेंकटारामन्न स्वामी का मन्दिर, महल से मिला हुआ श्रीनिवास का मन्दिर, श्रीरंगपट्टन के महल के पास श्रीरंगनाथ स्वामी का मन्दिर और श्रीरंगपट्टन के और अनेक मन्दिर आज तक टीपू की धार्मिक उदारता के साक्षी हैं।

टीपू की धार्मिक उदारता के विषय में इससे अधिक सबूत देने की आवश्यकता नहीं है। उस तरह के नरेश पर अपनी तुच्छ स्वार्थ-दृष्टि से झूठे कलंक लगाना उसके, उसके देश और उसकी जाति, तीनों के साथ अन्याय करना है।

टीपू की प्रजापालकता

टीपू के शेष चरित्न के विषय में उस समय के समस्त ऐतिहासिक उल्लेखों से साबित है कि टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक और अपनी प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था। उसकी सारी प्रजा उससे प्रसन्न और सन्तुष्ट थी। किसानों का वह विशेष मित्न था। उसने अपने राज्य भर में इस बात की कड़ी आज्ञा दे रखी थी कि कोई पटेल, आमिलदार या अन्य सरकारी कर्मचारी प्रजा के किसी मनुष्य से किसी तरह की 'बेगार' न ले, यानी उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न कराए। लगान की वसूली में किसी तरह की भी सख्ती की इजाजत न थी।

टीपू सुलतान

लार्ड कार्नवालिस टीपु सुलतान के बेटों को बतौर बन्धक ले रहा है

टीपु सुलतान की मृत्यु के बाद उसके दो बेटों का आत्मसमर्पण
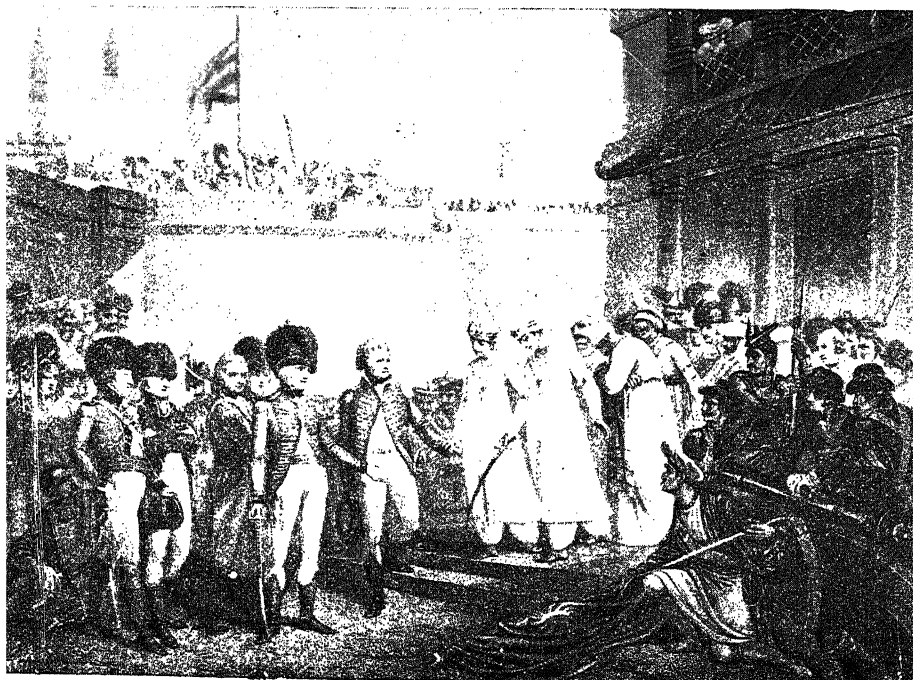
काशी नरेश राजा चेत सिंह

पेशवा नारायणराव की हत्या

टीपू सुलतान की सैन्य यात्रा
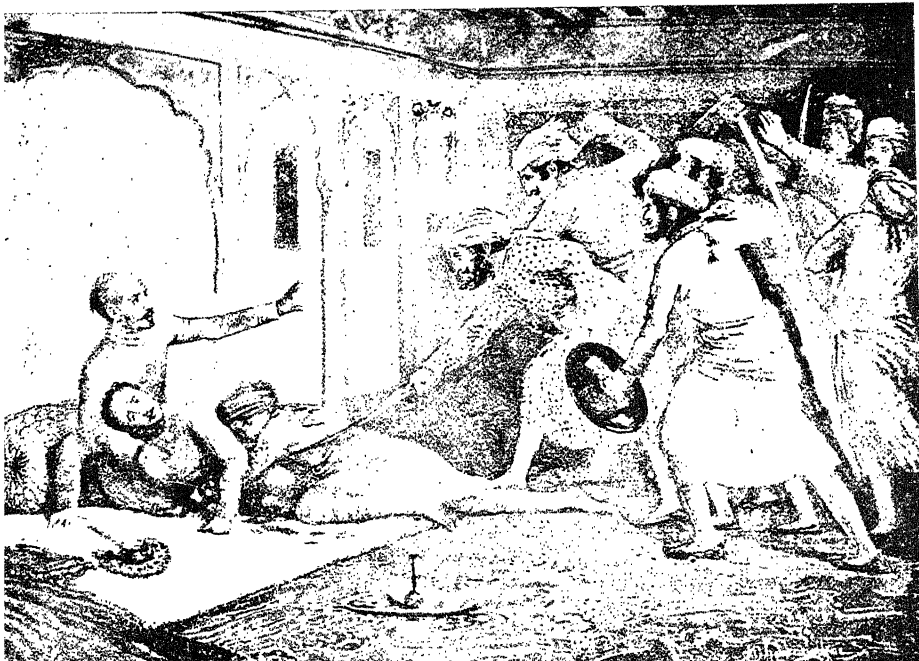
पेशवा माधोराव नारायण

टीपू का कोई बड़े-से-बड़ा कर्मचारी भी यदि प्रजा पर किसी तरह का अत्याचार करता, तो टीपू उसे सख्त-से-सख्त सजा देता था।

हर गांव के लोगों को अपने यहां के रीति-रिवाज सम्बन्धी या दूसरे आपसी झगड़े स्वयं पंचायत द्वारा तय करने का अधिकार था और किसी राजकर्मचारी को उनमें दखल देने की इजाजत न थी।*

टीपू का एक शिलालेख

किसानों की बहबूदी के दूसरे तरीकों की ओर से भी टीपू बेखबर न था। हाल में सन् (1929 से पहले) मैसूर राज्य के अन्दर खेतों की आबपाशी और दूसरे कामों के लिए कावेरी नदी के ऊपर एक बहुत बड़ा जलाशय तैयार हुआ है, जो भारत में अपनी क़िस्म का सबसे बड़ा जलाशय बताया जाता है। इस जलाशय की बुनियाद टीपू सुलतान ने रखी थी। इस बार जलाशय के लिए खुदाई होते समय एक पुराना पक्का बांध दिखाई दिया, जिसकी नींव में से टीपू सुलतान के समय का फ़ारसी अक्षरों में खुदा हुआ एक शिलालेख मिला, जो मैसूर में जलाशय की इमारत के फाटक पर सुरक्षित रखा हुआ है। इस शिलालेख का फ़ोटो हम इस पुस्तक के साथ दे रहे हैं। शिलालेख से मालूम होता है कि सबसे पहले सन् 1797 ई० में टीपू सुलतान ने अपने हाथ से इस विशाल जलाशय की नींव रखी थी। यह शिलालेख टीपू सुलतान ही के हाथ का रखा हुआ बांध का बुनियादी पत्थर है। सबसे विचित्र बात इस शिलालेख से यह मालूम होती है कि जबकि आजकल आबपाशी के हर नए प्रबन्ध के साथ-साथ भूमि का लगान बढ़ा दिया जाता है, टीपू सुलतान ने जो 'लखूखा' रुपये इस शुभ कार्य में खर्च किए, वे केवल 'अल्लाह की राह पर' खर्च किए गए; यह आज्ञा दे दी गई कि जो किसान इस जलाशय की सहायता से नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेंगे, उन्हें औरों की अपेक्षा अधिक लगान देने के स्थान पर अन्य किसानों से एक-चौथाई कम लगान देना होगा, और ये ज़मीनें उन किसानों के कुलों में सदा के लिए पैतृक रहेंगी। इसी लेख में टीपू ने अपने वारिसों और भविष्य के शासकों को कड़ी-से-कड़ी क़समें दी हैं कि कोई इस 'अनन्त धर्मकार्य' में बाधा न डाले, यानी न उन किसानों की सन्तति से कभी ज़मीनें छीनी जाएं और न कभी उनका लगान बढ़ाया जाए। किन्तु दुर्भाग्यवश बांध की बुनियाद रखे जाने के दो साल के अन्दर ही टीपू की इस आज्ञा का मूल्य केवल एक ऐतिहासिक लेख से अधिक न रह गया।

फ़ारसी शिलालेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :

> **या फ़त्ताह (ऐ खोलनेवाले, यानी सब कठिनाइयों को दूर करनेवाले ईश्वर)! उस अल्लाह के नाम से जो रहमान और रहीम है!**
>
> **सन्, 1221 शादाब (सौर), जो मोहम्मद साहब—ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे—के जन्म से शुरू हुआ, उसके तक़ी (ज्येष्ठ) महीने की 29 तारीख को, तदनुसार शब 27 जिलहिज्ज सन् 1212 हिजरी (चान्द्र), सोमवार के दिन, बहुत सवेरे, सूर्योदय से पहले, वृषभ लग्न और शुक्र घड़ी के प्रारम्भ में, ईश्वर की कृपा और रसूल की सहायता से, जमीन और जमाने के खलीफ़ा**

*Tipu Sultan 1749—1799, A.D., by Raghevendra Rao, M.A. *The Mysors Scout* for July 1927.

चक्रवर्ती शहनशाह, जनाब हज़रत टीपू सुलतान ने--जो साया है उस अल्लाह का, जो सबका मालिक है और सबका दाता है, ईश्वर सदा उनके राज्य और उनकी खिलाफ़त को बनाए रखे--कावेरी नदी के ऊपर राजधानी के पश्चिम में 'मुही' (अर्थात् जान डालनेवाला) नामक बांध की नींव रखी। शुरू करना हमारा काम है, पूरा करना अल्लाह के हाथ में है।

जिस शुभ दिन नींव रखी गई, उस दिन सूर्य, चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पति चारों का मेष राशि में एक घर के अन्दर शुभ योग था। अल्लाह ताला की मदद से यह बांध क़यामत के दिन तक क़ायम और ध्रुव तारों के समान अटल रहे।

इस बांध की तैयारी में जो लखूखा रुपये सरकार खुदादाद ने खर्च किए, वे केवल अल्लाह की राह में खर्च किए गए हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती-बाड़ी के, जो कोई मनुष्य परती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती-बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आम तौर पर नियम के अनुसार दूसरी प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन-चौथाई खुदादाद सरकार को दे और बाक़ी एक-चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है और जो कोई मनुष्य नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेगा, उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक क़ायम व बहाल रहेगी, जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम हैं। अगर कोई शख्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त खैरात में बाधक हो, तो वह कमीना, शैतान-ए-मलऊन के समान, मनुष्य जाति का दुश्मन और किसानों की नसल का, बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुश्मन समझा जाएगा।

लिखा सय्यद जाफ़र

निस्सन्देह, इस राजकीय लेख के भावों का आजकल के राजकीय लेखों में मिल सकना नामुमकिन है।

उद्योग-धन्धों की तरक्क़ी

राज्य के उद्योग-धन्धों और व्यापार की टीपू ने अपूर्व उन्नति की। खास कर मैसूर के अन्दर सूती, ऊनी और रेशमी कपड़ों के उद्योग ने जितनी तरक्की टीपू के समय में की, उतनी उससे पहले या उसके बाद आज (1929) तक कभी नहीं की। उसके लोहे इत्यादि के कारखानों में अन्य चीजों के अलावा बढ़िया-से-बढ़िया तोपें और दो-नली तथा तीन-नली बन्दूकें ढलती थीं।

टीपू का विद्या-प्रेम

टीपू स्वयं विद्वान था और विद्या और विद्वानों से उसे बड़ा प्रेम था। विद्वान पण्डितों और मौलवियों, दोनों का उसके दरबार में जमघट रहा करता था। उसका विशाल पुस्तकालय असंख्य, अमूल्य और अलभ्य पुस्तकों से भरा हुआ था। उसकी समस्त प्रजा सशस्त्र और सन्नद्ध थी और उसके राज में चारों ओर यह खुशहाली नज़र आती थी, जो आसपास के अंगरेज़ी इलाक़े में कहीं देखने को न मिलती थी।

व्यक्तिगत चरित्र

टीपू का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल, शुद्ध और संयमी था। उसका आहार अधिकतर दूध, बादाम और फल थे। शराब और अन्य मादक द्रव्यों से उसे सख्त परहेज़ था। यहां तक कि उसने अपने राज्य भर में हर तरह की मदिरा और मादक द्रव्यों का बनना-बिकना क़तई बन्द कर रखा था। स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा का उसे ज़बरदस्त खयाल रहता था। अपनी लड़ाइयों में वह इसका खास ख़याल रखता था कि उसके सिपाही इस विषय में कोई ग़लती न कर बैठें। यदि कभी किसी से इसके विपरीत आचरण हो जाता था, तो टीपू अपराधी को कड़े-से-कड़ा दण्ड देता था। मराठों के साथ उसके संग्रामों में कम-से-कम दो बार अनेक मराठा स्त्रियां, जिनमें कुछ सरदारों की पत्नियां भी थीं, उसकी सेना के हाथों में आ गईं। दोनों बार टीपू ने उन स्त्रियों को बड़े आदर के साथ अलग खेमों में रखा और फिर, जब कि अभी युद्ध जारी ही था, उन्हें पालकियों में बैठा कर अपनी सेना की हिफ़ाजत में मराठों के खेमों तक पहुंचवा दिया।*

अंगरेज़ों का पक्का दुश्मन

इस सबके अलावा टीपू अपने बाप के समान वीर योद्धा और ऊंचे दरजे का सेनापति था। 17 साल की अवस्था से ही उसने संग्राम विजय करने शुरू कर दिए थे। पिता ही के समान वह आज़ादी का सच्चा प्रेमी और देश के अन्दर विदेशियों की साम्राज्य-पिपासा का पक्का दुश्मन था। अपने समय का वही एकमात्र भारतीय नरेश था, जिसके पास विदेशियों के मुक़ाबले के लिए सुसम्बद्ध और प्रबल जल-सेना थी, क्योंकि मराठों की जल-सेना उस समय तक काफ़ी घट चुकी थी। वास्तव में हैदर और टीपू से बढ़ कर शत्रु अंगरेज़ों को भारत में कोई नहीं मिला। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ इतिहास-लेखकों के विष उगलने की यही सबसे बड़ी वजह है।

टीपू की असफलता के कारण

किन्तु टीपू अपने समस्त सामन्तों और अनुयायियों को उस तरह वफ़ादारी और खैरख्वाही के पाश में बांध कर न रख सका, जिस तरह के पाश में हैदरअली ने उन्हें बांध रखा था। इसके कई सबब हो सकते हैं। एक इतिहास-लेखक लिखता है कि हैदर अपने जिन बाग़ी मुलाज़िमों को एक बार बरखास्त कर देता था, उन्हें दोबारा अपने यहां न रखता था। किन्तु टीपू का व्यवहार इसके विपरीत था। वह इस तरह के आदमियों को एक बार सज़ा देकर उन्हें फिर बहाल कर देता था। इस इतिहास-लेखक की राय है कि यह एक त्रुटि ही टीपू के नाश का कारण हुई।

असलियत यह है कि विश्वासघात का जो पौधा हैदरअली के रहते हुए मैसूर की भूमि में न फल सका, वह धीरे-धीरे टीपू के शत्रुओं के लगातार परिश्रम और सिंचन द्वारा टीपू के समय में आकर फल देने लगा। सम्भव है कि देशघातकता के उस महान पाप से भारतीय आत्मा को मुक्त करने के लिए, जिसने कि वास्तव में वीर टीपू की शक्ति को चारों ओर से घेर कर चकनाचूर कर दिया, भारत का एक बार विदेशी शासन के कटु अनुभवों में से निकलना आवश्यक था। जो कुछ हो, टीपू वीर, योग्य और अपनी प्रजा का

**Tipu Sultan* by Colonel Miles, pp. 75, 81, 95, 96, 201 and 202.

सच्चा हितैषी था। उसके शत्रु भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि उसने अपने रुधिर के अन्तिम बिन्दु से अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा का प्रयत्न किया। उसने कभी किसी के साथ दग़ा नहीं की। उसकी मृत्यु एक आदर्श वीर की मृत्यु थी। भारत की स्वाधीनता के रक्षकों में उसका पद अत्यन्त ऊंचा था और संसार के स्वतन्त्रता के 'शहीदों' में उसका नाम सदा के लिए याद रहेगा।

उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता

हमें दुख और लज्जा के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि औरंगज़ेब की मृत्यु के समय से सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम तक अंगरेज़ों और भारत के सम्बन्ध के डेढ़ सौ वर्ष के राजनैतिक इतिहास में हमें हैदर और टीपू, दो और केवल दो व्यक्ति ही ऐसे नज़र आते हैं, जिन्होंने कभी किसी अवसर पर भी अपने किसी देशवासी के विरुद्ध विदेशियों के साथ 'समझौता' करना अंगीकार नहीं किया। विशेष कर टीपू यदि चाहता, तो इस उपाय द्वारा आसानी से अपनी सत्ता के कुछ-न-कुछ अवशेष और सौ-दो-सौ साल के लिए छोड़ सकता था। वह मर मिटा, किन्तु मरते-मरते उसने अपने दामन पर यह दाग़ लगने नहीं दिया। ध्यानपूर्वक खोज करने पर भी इन डेढ़ सौ सालों के अन्दर हमें कोई और हिन्दू या मुसलमान नरेश या नीतिज्ञ ऐसा नहीं मिलता, जिसका चरित्र इस सम्बन्ध में सर्वथा निष्कलंक रहा हो।

टीपू की मृत्यु के बाद उसकी समाधि के ऊपर एक कवि ने मृत्यु की तारीख लिखते हुए कहा है :

चुं आं मर्द मैदां निहां शुद ज़ दुनिया,
यके गुफ्त तारीख शमशीर गुम शुद।

अर्थात्, जिस समय वह वीर संसार की दृष्टि से अतीत हुआ, किसी ने तारीख के लिए ये शब्द कहे—"शमशीर गुम शुद"* अर्थात्, तलवार गुम हो गई।

मृत्यु के 24 साल बाद उसकी याद में उसके किसी देशवासी ने एक मरसिया लिखा। इस मर्मस्पर्शी मरसिये के प्रत्येक खण्ड के अन्त में एक अनुपद आता है, जिसका अक्षरशः अनुवाद यह है :

"अल्लाह ! इस तरह मर जाना अच्छा है,"
"जब कि युद्ध के बादल हमारे सरों पर खून बरसा रहे हों,
"बजाय इसके कि कलंक की ज़िन्दगी बसर की जाए,
"और सन्ताप और लज्जा के साथ उम्र काटी जाए।

***इन फ़ारसी शब्दों से टीपू की मृत्यु का सन् निकलता है।**

सोलहवां अध्याय

अवध और फ़र्रुखाबाद

हिन्दोस्तान का बाग़

अवध की धनसम्पन्न भूमि उन दिनों 'हिन्दोस्तान का बाग़' कहलाती थी। अवध का लोभ विदेशी कम्पनी के प्रतिनिधियों के लिए कोई मामूली लोभ न था। अवध के नवाब के साथ कम्पनी की सबसे पहली सन्धि बक्सर की लड़ाई के बाद सन् 1765 में हो चुकी थी। उस समय से ही कम्पनी का एक अंगरेज़ रेजिडेण्ट अवध के नवाब के दरबार में रहा करता था।

उन दिनों में अंगरेज़ रेज़िडेण्ट

भारत के समस्त राजदरबारों में उस समय अंगरेज़ रेजिडेण्ट हिन्दोस्तानी ढंग से रहते थे, हिन्दोस्तानी पोशाक पहनते थे और अपने यहां हिन्दोस्तानी मुंशी नौकर रख कर उनसे हिन्दोस्तानी भाषाएं और हिन्दोस्तानी रहन-सहन के तरीक़े सीखते थे।

इन रेज़िडेण्टों का खास काम हर भारतीय दरबार के अन्दर वहां के नरेश के विरुद्ध साजिश करना और दरबार में आपसी फूट डलवाना होता था। धीरे-धीरे अवध के अन्दर भी रेज़िडेण्ट की साज़िश और उसका असर बढ़ता चला गया। इसके बाद अवध के नवाब के साथ लार्ड कार्नवालिस और सर जान शोर की ज्यादतियों का बयान ऊपर किया जा चुका है। टीपू और उसकी सल्तनत का अन्त कर देने के बाद मार्क्विस वेल्सली की निगाह अवध की ओर गई।

अवध के साथ सन् 1798 की सन्धि

सन् 1798 में सर जान शोर ने नवाब वज़ीरअली को क़ैद करके बनारस भेज दिया था और सआदतअली को उसकी जगह नवाब बना कर उसके साथ एक नई सन्धि की थी, जिसे 'चिरस्थायी मित्रता' (perpetual friendship) की सन्धि लिखा गया है। इस सन्धि की 17-वीं धारा में दर्ज है—"कम्पनी की सरकार और नवाब की सरकार, दोनों के बीच समस्त [illegible] अत्यन्त प्रेम और मित्रता के साथ हुआ करेगा; और अपने घरेलू मामलों, अपनी पैतृक सलतनत, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने सन्धि की शर्तों का पूरी ईमानदारी के साथ पालन किया। किन्तु इस सन्धि को अभी दो साल भी न हुए थे कि वेल्सली ने उसे तोड़ने के लिए बहाने ढूंढ़ना शुरू किया।

वज़ीरअली से झगड़ा

वज़ीरअली इस समय बनारस में क़ैद था। चेरी नामक एक अंगरेज़ उसकी देख-रेख करता था। कहा गया कि वज़ीरअली अवध के कुछ सरदारों के साथ गुप्त साजिश

कर रहा है। इस पर वज़ीर अली को बनारस से कलकत्ते भेजने का हुकुम हुआ। इसी पर वज़ीरअली और चेरी में कुछ कहा-सुनी हो गई। यहां तक कि किसी बात पर वज़ीरअली ने अपनी तलवार खींच ली और चेरी और उसके साथ के दो और अंगरेज़ों को वहां ख़तम कर दिया। वज़ीरअली बनारस से भाग कर अवध पहुंचा। कुछ और अवध-निवासी, जो ज़ाहिर है, इस बात को महसूस कर रहे थे कि अंगरेज़ों ने वज़ीरअली के साथ अन्याय किया है, अब उसके साथ मिल गए। इन लोगों ने अवध के कुछ इलाक़ों को अपने अधीन कर लिया।

नवाब सआदतअली ने कम्पनी की उस सबसीडियरी सेना की सहायता से, जिसके खर्च के लिए सन् 1798 की सन्धि के अनुसार सआदतअली को 76 लाख रु० सालाना देन पड़ते थे, इस बग़ावत को शान्त कर दिया। किन्तु वेलसली को अपनी इच्छा पूरी करने के लिए यह ख़ासा अच्छा अवसर मिल गया।

नवाब सआदतअली से नई मांगें

इस घटना के आधार पर 5 नवम्बर, सन् 1799 को वेलसली ने नवाब सआदतअली को एक पत्र लिखा, जिसमें सआदतअली को यह सलाह दी कि आप अपने यहां की सेना में अमुक-अमुक 'सुधार' कीजिए। इन सुधारों का मतलब केवल यह था कि नवाब के पास अभी तक जो कुछ अपनी सेना रहा करती थी, उसमें से केवल थोड़ी-सी रख कर, जितनी कि मालगुज़ारी वसूल करने या शाही जलसों आदि के लिए आवश्यक हो, बाक़ी तमाम तोड़ दी जाए और उसकी जगह कम्पनी की कुछ पैदल और कुछ सवार पलटनें और बढ़ा दी जाएं, जिनका ख़र्च, 76 लाख की रक़म के अलावा, नवाब अदा किया करे।*

नवाब सआदतअली इस नई तजवीज़ को सुन कर चकित रह गया। उसने अपना एतराज़ लिख कर भेजना चाहा। किन्तु वेलसली ने बिना नवाब को जवाब का समय दिए एक नई पलटन नवाब के इलाक़े में रवाना कर दी और नवाब को उसके खर्च के लिए ज़िम्मेदार करार दिया। इसके बाद एक दूसरी पलटन तैयार कर ली गई और यह आज्ञा दी गई कि पहली के अवध पहुंचते ही यह दूसरी पलटन भी अवध के लिए रवाना हो जाए।

नवाब सआदतअली का पत्र और वेल्सली का जवाब

इस पर नवाब सआदतअली ने 11 जनवरी, सन् 1800 को एक विस्तृत, स्पष्ट, तर्कयुक्त और नम्रतापूर्ण पत्र उस समय के रेज़िडेण्ट स्टाक की मारफ़त वेलसली के पास भेजा। इस पत्र में नवाब सआदतअली ने अंगरेज़ों और अवध के नवाबों के पुराने सम्बन्ध का ज़िक्र करते हुए यह दिखलाया कि अवध की सेना को तोड़ देने का नतीजा सलतनत के हज़ारों पुराने वफ़ादार नौकरों को बेरोज़गार कर देना होगा, जिसका असर प्रजा के ऊपर बड़ा अहितकर होगा। सआदतअली ने लिखा कि—"सबसे ज्यादा मुझे इस बात का ख़याल है कि इस काम से कम्पनी के एतबार और उसकी इज्ज़त में फ़रक़ आ जाएगा और स्वयं मेरी न फिर अपने मुल्क में कोई इज्ज़त रह जाएगी और न बाहर। × × × यदि ऐसा हुआ, तो इन प्रान्तों में मेरी हकूमत का अन्त हो जाएगा।" नवाब ने वेलसली को

Dacoitee in Excelsis, by Major Bird.

विश्वास दिलाया कि—"अपने गद्दी पर बैठने के समय मैंने कम्पनी के साथ जो सन्धि की है, उससे मैं कभी बाल भर भी इधर-उधर न हूंगा और × × × मुझे विश्वास है कि कम्पनी का इरादा भी उस सन्धि से फिरने का नहीं है।" सन् 1798 की सन्धि का हवाला देते हुए नवाब सआदतअली ने दिखाया कि कम्पनी की मौजूदा मांग अनावश्यक, अनुचित और सन् 1798 की सन्धि के साफ़ विरुद्ध है। उस सन्धि की 17-वीं धारा में लिखा था कि—"अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज्य, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर नवाब का अनन्य अधिकार रहेगा।" सआदतअली ने पूछा कि—"यदि अपनी सेना का इन्तज़ाम तक मेरे हाथों से छीन लिया गया, तो मैं पूछता हूं कि अपने घरेलू मामलों, अपने पैतृक राज्य, अपनी सेना और अपनी प्रजा पर मेरा अधिकार कहां रहा ?"

अन्त में नवाब सआदतअली ने लिखा कि—"ऊपर लिखे कारणों से और कम्पनी सरकार की उदारता और आपकी इनायत से मुझे आशा है कि आप मेरी मित्रता और वफ़ादारी पर हर मौक़े के लिए पूरा एतबार करते हुए, उस सन्धि के अनुसार, मेरे राज्य, मेरी सेना और मेरी प्रजा के ऊपर मेरा पूरा अधिकार क़ायम रहने देंगे।"

इस लम्बे पत्र के और अधिक वाक्य नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है। लखनऊ ही के असिस्टेण्ट रेज़िडेण्ट मेजर बर्ड का बयान है कि नवाब सआदतअली के एतराज़ "जैसे न्यायसंगत थे, वैसे ही तर्कयुक्त भी थे" और मेजर बर्ड ही के शब्दों में वेलसली का उत्तर "घमण्डभरा" था।*

वेलसली के उत्तर का सारांश यह था कि सआदतअली का पत्र इतने गुस्ताख़ी के शब्दों में लिखा हुआ है कि गवर्नर-जनरल को उसे लेने से इन्कार है, पत्र नवाब को वापस कर दिया जाए और यदि नवाब ने फिर इसी तरह अंगरेज़ सरकार की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक ज़ाहिर किया, तो उसे उचित दण्ड दिया जाएगा।

इतिहास-लेखक मिल की राय

नवाब सआदतअली और वेलसली के इस पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में इतिहास-लेखक जेम्स मिल लिखता है :

> **"दो पक्षों में एक सन्धि होती है। एक पक्ष अपनी ओर से सन्धि की सब शर्तों को इतने ठीक समय पर पूरा कर देता है कि जो उसकी स्थिति के मनुष्य के लिए बिल्कुल बेमिसाल है। दूसरा पक्ष सन्धि का घोर उल्लंघन करना चाहता है, या कम-से-कम पहले पक्ष को उसका काम सन्धि का घोर उल्लंघन मालूम होता है। पहले पक्ष को दूसरे पक्ष के व्यवहार में और सन्धि में साफ़ विरोध दिखाई देता है। उस विरोध को वह स्पष्ट किन्तु अत्यन्त विनीत शब्दों में दरशाता है। उन शब्दों से दूसरे की ओर अनादर के स्थान पर पहले पक्ष ही के गिड़गिड़ाने की कहीं अधिक बू आती है। इस पर दूसरा पक्ष कहता है कि यह मेरी न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक करना है। पहला पक्ष जब दूसरे पक्ष की इच्छा पूरी करने से इन्कार करता है, तब उसे दण्ड देने का इरादा किया जाता है और इस दण्ड के लिए**

---

*To this remonstrance, as reasonably stated as it was justly founded, the following haughty reply was made by the Governor-General......".—*Dacoitee in Excelsis,* by Major Bird.

यदि पहले कोई दोष उस पक्ष का न भी दिखाया जा सकता था, तो अब यह शक करना एक ऐसा अपराध उससे हो गया, जो शायद किसी भी सजा से नहीं धुल सकता । जाहिर है कि इस ढंग से कभी भी और किसी भी सन्धि को तोड़ने के लिए बहाना निकाला जा सकता है । जिस पक्ष को हानि सहनी पड़ती है, यदि वह बिना एतराज किए सर झुका दे, तो कहा जाता है कि उसकी रजामन्दी है, और यदि वह शिकायत करे, तो उस पर यह इलजाम लगाया जाता है कि तुम सबल पक्ष की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर शक जाहिर करते हो और यह एक इतना जबरदस्त अपराध गिना जाता है कि इसके बाद ऐसे निकम्मे मनुष्य की ओर सबल पक्ष की कोई जिम्मेदारी रह ही नहीं जाती!"*

नवाब के साथ खुली जबरदस्ती

इसके बाद 22 जनवरी, सन् 1801 को लार्ड वेल्सली ने नवाब सआदतअली को एक दूसरा पत्र लिखा कि—"या तो कुछ सालाना पेनशन लेकर सलतनत से अलग हो जाओ और या जो दो नई अंगरेज़ी पलटनें अवध भेजी जा चुकी हैं, उनके बदले में अपना आधा राज्य कम्पनी के हवाले कर दो ।" इस दूसरे मज़मून की सन्धि का एक मसौदा तक तैयार करके गवर्नर-जनरल ने पहले से रेज़िडेण्ट के पास भेज दिया ।

नवाब ने बार-बार एतराज़ किया, किन्तु वेल्सली ने 28 अप्रैल, सन् 1801 को रेज़िडेण्ट को लिख दिया कि यदि नवाब रज़ामन्दी से अपना आधा राज्य हवाले न कर दे, तो "सेना द्वारा उस पर क़ब्ज़ा कर लिया जाए ।" इन पत्रों में वेल्सली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि मेरी आन्तरिक इच्छा यह है कि—"नवाब की सैनिक शक्ति को ख़तम कर दिया जाए" और "अवध की सारी सलतनत पर दीवानी और फ़ौजदारी शासन का अनन्य अधिकार कम्पनी के हाथों में ले लिया जाए ।"

अंगरेज़ कम्पनी के ऊपर अवध के नवाबों के बेशुमार अहसान थे । किन्तु इस समय सआदतअली चारों ओर कम्पनी की सेनाओं से घिरा हुआ था । अपने और अपने कुल के चिर मित्रों की ओर से इस अचानक व्यवहार को देख कर नवाब सआदतअली एक दिन चिल्ला पड़ा—"हक़ीक़त में यही हाल रहा, तो बाक़ी का मुल्क मुझसे छिन जाने में भी ज्यादा देर न लगेगी ।" रेज़िडेण्ट स्काट ने और गवर्नर-जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी

---

* "A party to a treaty fulfils all its conditions with a punctuality, which, in his was altogether unexampled; a gross infringement of that treaty, or at least what appears to him a gross infringement, is about to be committed on the other side; he points out clearly, but in the most humble language, savouring of objectness much more than disrespect, the inconsistency which appears to him to exist between the treaty and the conduct; this is represented by the other party as an impeachment of their honour and justice; and if no guilt existed before to form a ground for punishing the party who declines compliance with their will, a guilt is now contracted which hardly any punishment can expiate. This, it is evident, is a course by which no infringement of a treaty can ever be destitute of a justification. If the party injured submits without a word, his consent is alleged. If he complains, he is treated as impeaching the honour and justice of his superior; a crime of so prodigious a magnitude, as to set the superior above all obligation to such a worthless connection."—*History of British India*, by James Mill, vol. vi, p. 191.

और सगे भाई हेनरी वेल्सली ने बड़े ज़ोरों के साथ नवाब को विश्वास दिलाया कि बाक़ी राज्य पर आपके अनन्य अधिकार में कभी कोई हस्तक्षेप न किया जाएगा। सआदतअली ने बेज़ार होकर गद्दी से बिल्कुल दस्तबरदार होने की इच्छा प्रकट की और कहा कि—"मुझे फ़ौरन इजाज़त दी जाए कि मैं सफ़र और हज के लिए परदेस को निकल जाऊं, क्योंकि अब यहां की रिआया को मुंह दिखाना मेरे लिए ज़िल्लत है।"

अवध की आधी रियासत का नवाब से छीन लिया जाना

किन्तु नवाब सआदतअली का यह निश्चय केवल क्षणिक नैराश्य का नतीजा था। अन्त में, कोई चारा न देख 14 नवम्बर, सन् 1801 को नवाब सआदतअली ने गवर्नर-जनरल वेल्सली के भेजे हुए सन्धिपत्र पर दस्तखत कर दिए। इस नई सन्धि द्वारा नवाब सआदतअली ने अपनी सलतनत का आधा, किन्तु अधिक उपजाऊ हिस्सा, जिसकी सालाना आमदनी उस समय एक करोड़ पैंतीस लाख रुपये थी और जिससे आजकल (1929) के 'संयुक्त प्रान्त' (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की बुनियादी पड़ी, सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दिया। मार्क्विस वेल्सली ने अपने भाई हेनरी वेल्सली को इस नए ब्रिटिश प्रान्त का पहला लेफ्टिनेण्ट गवर्नर नियुक्त किया।

9 मार्च, सन् 1808 को इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के अन्दर बोलते हुए लार्ड फ़ाकस्टोन ने इस घटना के सम्बन्ध में नवाब सआदतअली की ईमानदारी, उसके धीरज और उसकी परवशता और मार्क्विस वेल्सली की बेईमानी और उसके खुले अन्याय को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया और विस्तार के साथ हवाले देकर साबित किया।

'सन्धि' अथवा 'डाका'

एक दूसरे मेम्बर, आर० थार्नटन ने पार्लियामेण्ट के अन्दर इस सन्धि के विषय में कहा :

> **"यदि यह 'सन्धि' थी, तो फिर खुले मैदान से जाते हुए किसी मुसाफ़िर के ऊपर किसी डाकू के टूट पड़ने और उसे लूट लेने को भी 'सन्धि' का नाम दिया जा सकता है।"***

जिस तरह वारेन हेस्टिंग्स के अत्याचारों के लिए पार्लियामेण्ट में मुक़दमा चलाया गया था, उसी तरह इस बार वेल्सली के इस अन्याय के लिए वेल्सली पर मुक़दमा चलाया गया। कुछ उदार अंगरेज़ों ने पूरी तरह सारे मामले की पोल खोली और बड़ी-बड़ी धुआंधार वक्तृताएं हुईं। तीन साल तक मुक़दमा चला और अन्त में पार्लियामेण्ट ने वेल्सली को दण्ड देने के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य की इस सच्ची सेवा के बदले में उसे 'धन्यवाद' देने का एक प्रस्ताव पास किया।

फ़र्रुखाबाद की रियासत का अन्त

इसके छः महीने के अन्दर वेल्सली ने एक दूसरी छोटी-सी रियासत, फ़र्रुखाबाद पर क़ब्ज़ा किया।

---

* "......one might as well call a robbery committed by a footpad on a traveller on Hanslow Heath, a treaty!"—R. Thortonn before the British Parliament.

फ़र्रुख़ाबाद अवध की एक सामन्त रियासत थी। वहां के नवाब चार लाख रुपये सालाना बतौर खिराज अवध के नवाब को दिया करते थे। एक अंगरेज़ रेज़िडेण्ट भी फ़र्रुखाबाद के दरबार में रहा करता था। इस अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने रियासत के प्रबन्ध में इस तरह दखल देना शुरू किया और इस तरह की ज्यादतियां कीं कि फ़र्रुख़ाबाद के नवाब और अवध के नवाब, दोनों को सख्त एतराज़ हुआ। मजबूर होकर सन् 1787 में लार्ड कार्नवालिस ने रेज़िडेण्ट को वापस बुला लिया और यह वादा किया कि आइन्दा न कोई रेज़िडेण्ट फ़र्रुख़ाबाद भेजा जाएगा और न रियासत के मामलों में किसी तरह का दखल दिया जाएगा।

नवम्बर सन् 1801 में लार्ड वेल्सली ने इस वादे के विरुद्ध अपने भाई हेनरी वेल्सली को फ़र्रुख़ाबाद भेजा और उसे हिदायत दी कि तुम किसी तरह वहां के नवाब इमदादहुसैन खां को इस बात पर राज़ी कर लो कि वह एक लाख रुपये सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दे और उससे लिखवा कर दस्तख़त करा लो। नवाब इमदादहुसैन खां अभी हाल ही में बालिग़ हुआ था। गवर्नर-जनरल ने हेनरी वेल्सली को आदेश दिया कि इमदादहुसैन खां के रिश्तेदारों, सलाहकारों और दोस्तों में से जो इस काम में अंगरेज़ों की मदद करने को तैयार हों, उन्हें काफ़ी इनाम देने के वादे कर लेना और जो राज़ी न हों, उन्हें खूब डर दिखलाना।

इस पर भी नवाब इमदादहुसैन खां का इस तरह के पत्र पर दस्तख़त कर देना इतना आसान न था। गवर्नर-जनरल के हुकुम से इमदादहुसैन खां को लखनऊ बुलाया गया। इसके बाद साजिश, चोरी और जालसाज़ी से मिल कर काम लिया गया। यहां तक कि लखनऊ पहुंचते ही इमदादहुसैन खां ने देखा कि उसके दस्तखत की मोहर किसी तरह उसके बक्से से उड़ कर ख़ुद-ब-ख़ुद लखनऊ के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट के मकान में पहुंच गई। जो कुछ हो, कहा जाता है कि 4 जून, सन् 1802 को बरेली पहुंच कर नवाब इमदादहुसैन खां ने अपने और अपनी औलाद के लिए 1 लाख 8 हजार रुपये सालाना पेनशन लेकर अपनी तमाम रियासत अपने दस्तख़त से सदा के लिए अंगरेज़ कम्पनी के हवाले कर दी।

हेनरी वेल्सली फ़र्रुखाबाद रियासत का पहला अंगरेज़ शासक नियुक्त हुआ।

सतरहवां अध्याय

तंजौर राज का अन्त

अंगरेज़ों के ऊपर तंजौर के राजा के अहसान

भारत के दक्षिण में तंजौर एक छोटी-सी मराठा रियासत थी, जिसे 17-वीं सदी के मध्य में छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी ने क़ायम किया था। शाहजी के बाद तंजौर का राज शिवाजी के एक सौतेले भाई, वेंकोजी को मिला।

इतिहास-लेखक विलियम हिके लिखता है :

> **"अपने सब व्यवहार और हर तरह के कारबार में तंजौर के राजा ऐसी ईमानदारी बरतते थे, जो केवल सचाई के असूल से ही उत्पन्न हो सकती थी। ज़ाहिर है कि उन्होंने सचाई ही को अपना असूल बना रखा था। जब अंगरेज़ दक्षिण भारत में पहुंचे और उन्होंने देश में बसना चाहा, तब उनके सबसे पक्के और सबसे सच्चे दोस्त तंजौर के राजा ही थे।"***

इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है :

> **"करमण्डल तट पर अंगरेज़ों के सबसे पहले मददगारों में तंजौर का राजा था।"**†

प्रसिद्ध भारतीय विद्वान महादेव गोविन्द रानडे ने अपनी पुस्तक में लिखा है :

> **"कर्नाटक की समस्त लड़ाइयों में तंजौर की सेना ने फ्रान्सीसियों के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में बड़े महत्त्व का भाग लिया।"**‡

टारेन्स लिखता है कि सन् 1742 में तंजौर का राजा साहूजी किसी आपसी झगड़े के कारण गद्दी से उतार दिया गया और राजा प्रताप सिंह उसकी जगह बैठा। अंगरेज़ों ने राजा प्रताप सिंह को राजा स्वीकार कर लिया। सात साल से ऊपर तक अंगरेज़ों और प्रताप सिंह में मित्रता रही, यहां तक कि इस बीच प्रताप सिंह ने फ़्रान्सीसियों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी।

राजा प्रताप सिंह के साथ दग़ा

इसके बाद अंगरेज़ों ने बिना किसी वजह के प्रताप सिंह के विरुद्ध पिछले राजा साहूजी के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया। दोनों में सौदा हो गया। अंगरेज़ों ने प्रताप सिंह को गद्दी से उतार कर साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठा देने का वादा किया और इसके बदले में साहूजी ने अंगरेज़ों का सारा खर्च और उसके अलावा देवीकोट का क़िला और उसके आसपास की कुछ जागीर कम्पनी को देने का वादा किया।

**The Tanjore Marhatta Principality in Southern India,* by William Hickey, p. 2.

†*Empire in Asia, etc.,* by Torrens.

‡*The Rise of the Marhatta Power,* by Ranade, p. 250.

24—220 M of I&B/80

प्रताप सिंह कम्पनी का मित्र था। टारेन्स लिखता है कि प्रताप सिंह के खिलाफ़ कोई बहाना अंगरेज़ों के पास न था, फिर भी थोड़ें-से धन और जागीर के लालच में प्रताप सिंह को गद्दी से उतारने के लिए कम्पनी की सेना भेज दी गई। इस सेना को प्रताप सिंह से हार खाकर लौट आना पड़ा। फिर एक दूसरी सेना भेजी गई। इस दूसरी सेना ने साहूजी का भी साथ छोड़ कर सबसे पहले देवीकोट के क़िले को घेरा और उस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

साहूजी के साथ विश्वासघात

किन्तु प्रताप सिंह का बल बढ़ा हुआ था। देवीकोट पर कब्ज़ा करते ही अंगरेज़ों ने अब प्रताप सिंह के साथ समझौते की बातचीत शुरू की। समझौता हो गया। अंगरेज़ों ने साहूजी का पक्ष छोड़ दिया और वादा किया कि हम अब कभी राजा प्रताप सिंह का विरोध न करेंगे। प्रताप सिंह ने इसके बदले में देवीकोट और उसके पास के कुछ इलाके पर बतौर जागीर कम्पनी का क़ब्जा रहने दिया। जिस साहूजी का पक्ष लेकर अंगरेज़ों ने यह लड़ाई छेड़ी थी, उसे अब उन्होंने स्वयं कैद कर लिया और राजा प्रताप सिंह के खर्च पर उसे अपने यहां नजरबन्द रखने का वादा किया। टारेन्स लिखता है कि "अंगरेज़ों की हिन्दोस्तान विजय का इस तरह प्रारम्भ हुआ।"*

तंजौर पर हमला

प्रताप सिंह से अब फिर अंगरेज़ों की मित्रता क़ायम हो गई। किन्तु तंजौर का राज कर्नाटक से मिला हुआ था और अपने धन-वैभव के लिए दूर-दूर तक मशहूर था। कर्नाटक और अवध के नवाब कई पीढ़ियों तक अंगरेज़ों के लिए कामधेनु का काम करते रहे थे। इन दोनों नवाबों से धन चूसने के लिए आवश्यक था कि अंगरेज़ उनके पास के इलाक़ों को लूटने में उन्हें मदद दें। इसीलिए रुहेलखंड, फ़र्रुखाबाद इत्यादि के लूटने में कम्पनी ने अवध के नवाबों को समय-समय पर मदद दी। इसी नीति के अनुसार सन् 1762 में अंगरेज़ों ने कर्नाटक के नवाब मोहम्मदअली को तंजौर के राजा पर हमला करने में सहायता दी। हमले के बाद अंगरेज़ ही मध्यस्थ बने। तय हुआ कि भविष्य में तंजौर कर्नाटक की एक सामन्त रियासत समझी जाए, तंजौर के राजा कर्नाटक के नवाब को चार लाख रुपये सालाना खिराज दिया करें और अंगरेज़ कम्पनी इस बात के लिए ज़ामिन रहे कि भविष्य में कर्नाटक का नवाब कभी तंजौर पर हमला न करेगा।

तंजौर पर फिर हमला और लूट

प्रताप सिंह के बाद उसका बेटा तुलजाजी तंजौर का राजा हुआ। सन् 1771 में तुलजाजी के समय में कर्नाटक के नवाब ने फिर तंजौर पर चढ़ाई की और मद्रास के गवर्नर से सन् 1762 के वादों को तोड़ कर कम्पनी की सेना नवाब की मदद के लिए भेजी। राजा तुलजाजी ने एक बहुत बड़ी रक़म अंगरेज़ों और कर्नाटक के नवाब को देकर अपनी

*"This was the beginning of the conquest of Hindostan."—*Empire in Asia*, Torrens, pp. 20, 21.

जान बचाई। इसके बाद सन् 1773 में नवाब ने तीसरी बार फिर अंगरेज़ों की ही मदद से तंजौर पर चढ़ाई की और खूब लूट-मार मचाई। तंजौर के राजा इस सारे समय में अपना नियत ख़िराज बराबर कर्नाटक के नवाब को देते रहते थे, किन्तु हर बार के हमले में इस ख़िराज की रक़म को और अधिक बढ़ा दिया जाता था। वास्तव में, नवाब कर्नाटक के पास अपने अंगरेज़ ऋणदाताओं और कम्पनी के अफ़सरों की आए दिन की नाजायज मांगों को पूरा करने का कोई उपाय ही न था।

संधि और उसका उल्लंघन

होते-होते सन् 1787 में अंगरेज़ कम्पनी और तंजौर के राजा तुलजाजी के बीच पहली बाज़ाब्ता सन्धि हुई, जिसमें कम्पनी और राजा के बीच अब सदा के लिए 'स्थायी मित्रता' (Perpetual friendship) कायम हो गई। छ: साल के अन्दर राजा तुलजाजी की मृत्यु हो गई। तुलजाजी के कोई पुत्र न था, किन्तु मरने से कुछ दिन पहले वह सार्बोजी को गोद ले चुका था। अंगरेज़ों को फिर एक बहुत अच्छा मौका हाथ आया। कुछ पण्डितों से व्यवस्था दिला दी गई कि सार्बोजी का गोद लिया जाना शास्त्रानुकूल नहीं है। हर भारतवासी जानता है कि काशी और नदिया तक के धुरन्धर पण्डितों से इस तरह की व्यवस्थाएं दिला देना कितना आसान है। सार्बोजी को हटा कर तुलजाजी के एक सौतेले भाई, अमरसिंह, को कम्पनी की सेना की सहायता से अब ज़बरदस्ती तंजौर की गद्दी पर बैठा दिया गया।

सबसीडियरी सन्धि का जाल

इसी समय यह भी महसूस किया गया कि सन् 1787 की 'स्थायी मित्रता' की सन्धि में कुछ दोष रह गए हैं। इसलिए सन् 1793 में फिर एक नई सन्धि राजा अमर सिंह के साथ की गई। इस बार की सन्धि में अब कम्पनी ने सदा के लिए तंजौर राजा की रक्षा करने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और उसके बदले में राजा अमर सिंह ने एक बहुत बड़ी सालाना रक़म सेना के खर्च के लिए कम्पनी को अदा करते रहने का वादा किया। इस तरह तंजौर की रियासत भी सबसीडियरी सन्धि के जाल में फंस गई।

राजा अमर सिंह के विरुद्ध साज़िश

राजा अमर सिंह के चरित्र के विषय में एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि—"तंजौर का राजा अमर सिंह एक निहायत ही अच्छे चरित्र और उच्च सिद्धान्तों का आदमी था, और ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का निहायत ही सच्चा शुभचिन्तक था।"*

किन्तु अंगरेज़ों की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। वे जितनी जल्दी हो सके, तंजौर राज को ख़तम कर देने का इरादा कर चुके थे। सबसीडियरी सन्धि उनके लिए केवल एक बीच का साधन थी। उनकी दुरंगी चालें बराबर जारी रहीं। एक ओर उन्होंने अमर सिंह को गद्दी पर बैठा दिया और दूसरी ओर एक मशहूर ईसाई पादरी रेवरेण्ड पूर्वार्ट्ज़ को सार्बोजी का शिक्षक नियुक्त करके भेज दिया। एक दूसरा अंगरेज़ मैक्लाइड तंजौर के

---

* "The Raja of Tanjore (Amar Singh) was a man of extremely great character and high principle and exceedingly well disposed towards the British Government."—*Life of General, the Right Honourable, Sir David Baird*, Bart, vol. I, p. 119.

दरबार में रेज़िडेण्ट नियुक्त करके भेजा गया। पादरी पूर्वार्ट्ज़ और रेज़िडेण्ट मैक्लाउड ने मिल कर अब राजा अमर सिंह और तंजौर राज के ख़िलाफ़ नए सिरे से साज़िशें शुरू कीं।

भेदों का खुलना

थोड़े दिनों में राजा अमर सिंह के साथ रेज़िडेण्ट मैक्लाउड का व्यवहार इतना उद्दण्ड हो गया कि राजा अमरसिंह ने इसकी शिकायत की। जिस अंगरेज़ को हम ऊपर उध्दृत कर चुके हैं, वह लिखता है कि—

> **"धीरे-धीरे इस तरह के भेद खुले, जिनसे राजा अमर सिंह को × × × विश्वास हो गया कि कम्पनी ने अपने इस मुलाज़िम मैक्लाउड को तंजौर के दरबार में केवल इसलिए नियुक्त करके भेजा था, ताकि मैक्लाउड द्वारा अभागे राजा को समझा कर, या यदि ज़रूरत हो, तो किसी तरह मजबूर करके, उससे राज्य छीन लिया जाए और उसे अपने बाक़ी सांसारिक जीवन के लिए कम्पनी का एक पेनशनर बना कर रखा जाए।"**
>
> **"× × × × माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी जिन उपायों से दूसरों के राज्य प्राप्त करती थी, उनमें ईमानदारी और बेईमानी का बहुत अधिक विचार न किया जाता था।"***

खुली जबरदस्ती

राजा अमर सिंह के दिल में केवल डर बैठाने के लिए रेज़िडेण्ट ने कई बार बिना किसी वजह के कम्पनी की सेना को राजमहल के फाटक तक बुलवाया और उसका प्रदर्शन करवा कर वापस कर दिया। यह वही अंगरेज़ी सेना थी, जो पिछली सन्धि के अनुसार राजा की 'रक्षा' के लिए और राज के ख़र्च पर तंजौर में रखी गई थी। 23 जनवरी, सन् 1796 को रेज़िडेण्ट ने इस सेना के अंगरेज़ अफ़सर कर्नल बेयर्ड को हुकुम दिया कि—"राजा अमर सिंह का सरकील शिवराव और राजा के दो भाई, त्रिम्बाजी और शंकरराव, तीनों में से कोई क़िले से बाहर न निकलने पाए"।

अगले दिन 24 जनवरी को रेज़िडेण्ट ने सेना लेकर अचानक राजा अमर सिंह को घेर लिया और उसे डर दिखा कर उससे एक कागज़ पर दस्तख़त करा लिए, जिसमें राजा अमर सिंह ने अपना सारा राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया।

इसके अगले दिन राजा अमर सिंह ने गवर्नर-जनरल सर जान शोर को लिखा कि—"मुझे घेर कर, डर दिखा कर और तरह-तरह के झूठ बोल कर रेज़िडेण्ट ने मुझसे उस कागज़ पर दस्तख़त करा लिए हैं, इसलिए मेरा राज्य मेरे पास रहने दिया जाए"।

---

* "......circumstances gradually transpired which convinced......the Rajah: that this civil servant of the Honourable East India Company had been placed at the Court of Tanjore for no other purpose than that of inducing, or even (if necessary), compelling the unfortunate Rajah to give up his territory and become a pensioner of the said Honourable East India Company for the remaining term of the natural life.

"......The Honourable East India Company was not exceedingly scrupulous as to the means by which territory was to be acquired; ......"—*Life of General, the Right Honourable Sir David Baird,* pp. 119; etc. seq.

राजा अमर सिंह ठीक समय पर पिछली सन्धि की सब शर्तें पूरी करता रहा था। कोई बहाना उससे राज्य छीनने का कम्पनी के पास न था। अंगरेज़ संसार को यह दिखाना चाहते थे कि अमर सिंह खुशी से अपना राज कम्पनी को दे रहा है, किन्तु यह चाल न चल सकी। रेज़िडेण्ट का जुल्म साबित था। राज्य के अन्दर साज़िश अभी पूरी तरह पकी न थी। लाचार होकर गवर्नर-जनरल ने रेज़िडेण्ट को हुकुम दिया कि राजा अमर सिंह का सारा राज्य उसके हाथों में रहने दिया जाए। दूसरी ओर, साज़िश को पक्का करने की कोशिशें जारी रहीं।

तंजौर पर क़ब्ज़ा

दो साल बाद मार्क्विस वेल्सली का समय आया। वेल्सली को इंगलिस्तान ही में आदेश मिल चुका था कि जिस तरह हो सके, तंजौर के राज पर कम्पनी का क़ब्ज़ा जमाया जाए। इंगलिस्तान के शासकों से वह 'बादशाहतों पर बादशाहतें लाद देने' का वादा कर चुका था। जिस लेखक के कई वाक्य हम ऊपर नक़ल कर चुके हैं, वह लिखता है :

> **"जब कभी माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति या उसके स्वार्थ के लिए इस बात की जरूरत मालूम होती थी कि किसी भारतीय नरेश को गद्दी से अलग किया जाए, तो बहाने की कभी कमी न होती थी।"***

अब सार्बोजी को राजा अमर सिंह के विरुद्ध साज़िशों का केन्द्र बनाया गया : पादरी पूर्वाट्ज इस काम के लिए अरसे से सार्बोजी के पास मौजूद था ही। उसने इस बार रेजि-डेण्ट मैक्लाउड का खूब साथ दिया। सबसे पहले राजा अमर सिंह पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम तुलजाजी की विधवा रानियों के साथ और उसके दत्तक पुत्र सार्बोजी के साथ अच्छा सलूक नहीं करते, जिससे उन्हें बहुत कष्ट है। इन इलज़ामों का मात्र आधार पादरी पूर्वाट्ज़ की शिकायतों पर था, जो किसी तरह भी विश्वास के योग्य नहीं समझी जा सकती। इस बदसलूकी के बहाने से ज़बरदस्ती सार्बोजी को और तुलजाजी की विधवाओं को मद्रास बुला लिया गया। सार्बोजी को बहका कर तैयार करने का काम पादरी पूर्वाट्ज़ के सुपर्द था।

सन् 1798 में एकाएक अंगरेज़ों पर यह रहस्य खुला कि वह अमर सिंह, जिसे स्वयं अंगरेज़ों ने गद्दी पर बैठाया था और जिसे वे लगभग दस साल तक तंजौर का राजा स्वीकार कर चुके थे, गद्दी का अधिकारी नहीं है, बल्कि वास्तविक अधिकारी तुलजाजी का दत्तक पुत्र सार्बोजी है, जिसके गोद लिए जाने को दस साल पहले इन्हीं अंगरेज़ों ने पण्डितों से 'शास्त्रविरुद्ध' कहला दिया था। इस समय कुछ विद्वान पण्डितों ने पिछली व्यवस्था के विरुद्ध फिर सार्बोजी के पक्ष में व्यवस्था दे दी। राजा अमर सिंह से किसी तरह की पूछ-ताछ तक नहीं की गई, और कम्पनी की उस सेना ने जिसे 10 साल तक राजा अमर सिंह अपने खर्च से पाल चुका था, उसे तंजौर की गद्दी से उतार कर सार्बोजी को उसकी जगह बैठा दिया।

इतिहास-लेखक मिल अंगरेज़ों के इस फ़ैसले की खुदग़रज़ी और बेइन्साफी को स्वीकार करता है। जिस अंगरेज को हम ऊपर नकल करते चले आए हैं, वह लिखता है

* "......whenever policy of aggrandisement seemed to warrant the measure, a pretext was never wanting to the Honourable East India Company, to remove a native prince."...*Life of General, the Right Honourable Sir David Baird*, p. 138.

कि : "इन्साफ राजा अमर सिंह की ओर था। वही गद्दी का असली हक़दार न्यायसंगत और सर्वस्वीकृत नरेश और राज्य का उस समय मालिक था? किन्तु अंगरेज़ों का स्वार्थ तंजौर पर क़ब्ज़ा करने में था।"*

वास्तव में, कम्पनी के लिए अमर सिंह और सार्बोजी में कोई अन्तर न था, उसका असली उद्देश्य कुछ और ही था, जो सार्बोजी को गद्दी मिलते ही प्रकट हो गया। तुरन्त सार्बोजी ने एक नए सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए, जिसमें उसने अपना सारा राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया और स्वयं जीवन भर कम्पनी का एक पेन्शनर होकर तंजौर के क़िले के अन्दर रहना स्वीकार कर लिया।

---

* "Interest declared for the possession of Tanjore—justice upheld the claims of the Rajah, the undoubted heir, the legally acknowledged prince the actual possessor of the territories."—*Life of General, the Right Honourable Sir David Baird*, pp. 161, 162.

अठारहवां अध्याय

कर्नाटक की नवाबी का अन्त

कर्नाटक की नवाबी और अंगरेज़

पिछले अध्यायों में कर्नाटक के नबाब के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यवहार का ज़िक्र आ चुका है और यह दिखलाया जा चुका है कि किस तरह छोटें से बड़े तक कम्पनी के सब अंगरेज़ ज़बरदस्ती कर्नाटक के नवाब से आए दिन मनमानी रक़में वसूल करते रहते थे, किस तरह वे नवाब को मदद देकर उसके ज़रिए आसपास की रियासतों को लुटवाते रहते थे, और किस तरह अनेक अंगरेज़ व्यापारियों ने नवाब को अपने भयंकर कर्ज़ों के नीचे दबा रखा था, जिनमें से अधिकतर क़र्ज़ें झूठे थे। जब कर्नाटक से काफ़ी धन खींचा जा चुका और नवाब का ख़ज़ाना खाली हो गया, तब मार्क्विस वेलसली ने अपनी निश्चित नीति के अनुसार रियासत पर क़ब्ज़ा कर लेने की तजवीज़ें शुरू कीं।

कर्नाटक के नवाब मोहम्मदअली को 'वालाजाह' भी कहते थे। मोहम्मदअली अंगरेज़ों का बहुत बड़ा दोस्त था। मोहम्मदअली और कम्पनी के बीच 'चिरस्थायी मित्रता' की सन्धि हो चुकी थी, जिसमें अंगरेज़ों ने मोहम्मदअली और उसके राज की रक्षा के लिए अपनी एक सेना कर्नाटक में रखने का ज़िम्मा लिया था और उस सेना के खर्च के लिए नवाब ने 9 लाख पैगोदा यानी क़रीब 30 लाख रुपये सालाना अदा करने का वादा किया था। यह रक़म माहवारी क़िस्तों में अदा की जाती थी। नवाब मोहम्मदअली हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा, यहां तक कि उसने अपने कुछ ज़िलों की मालगुज़ारी बतौर ज़मानत इस अदायगी के लिए अलग कर दी थी। मोहम्मद-अली के बाद उसका बेटा उमदतुलउमरा कर्नाटक का नवाब हुआ। उमदतुलउमरा बाप की तरह हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहा और सन्धि की शर्तों का ठीक-ठीक पालन करता रहा। इसलिए कर्नाटक पर कब्ज़ा करने का बहाना इतनी आसानी से न मिल सकता था।

नवाब उमदतुलउमरा के नाम वेल्सली का पत्र

वेल्सली का दिमाग़ इन बातों में खूब चलता था। 24 अप्रैल, सन् 1799 को टीपू के साथ दोबारा युद्ध छेड़ते समय उसने नवाब उमदतुलउमरा को एक लम्बा पत्र लिखा। इस पत्र में उमदतुलउमरा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि आपने कर्नाटक के वे ज़िले, जिनकी आमदनी कम्पनी को देने के लिए अलग कर दी गई थी, अपने कुछ क़र्ज़दारों के पास रहन रख दिए हैं, आपकी आर्थिक हालत खराब है, और भविष्य में कम्पनी की रक़म की अदायगी में कठिनाई की सम्भावना है। इसी पत्र में वेल्सली ने स्वीकार किया कि उमदतुलउमरा हर महीने ठीक समय पर कम्पनी की रक़म अदा करता रहता था। फिर भी इस भावी 'कठिनाई की सम्भावना' की बिना पर नवाब को यह सलाह दी गई कि आप

कम-से-कम उस समय तक के लिए, जिस समय तक कि कम्पनी और टीपू में युद्ध रहे, अपनी सल्तनत और उसकी मालगुज़ारी का इन्तज़ाम कम्पनी के सुपुर्द कर दीजिए।

नवाब मोहम्मदअली ने हैदरअली और टीपू के साथ अंगरेज़ों के युद्ध में सदा अंगरेज़ों का साथ दिया था। सन् 1792 के मैसूर युद्ध के बाद की किसी सन्धि में कहीं एक वाक्य यह भी रख दिया गया कि भविष्य में यदि कर्नाटक या उसके आसपास में कोई युद्ध हो, तो कम्पनी को उस युद्ध की सफलता के लिए इस बात का अधिकार होगा कि वह कर्नाटक के जितने भाग पर आवश्यक समझे, थोड़े समय के लिए क़ब्ज़ा कर ले। नवाब मोहम्मदअली के उस सन्धि पर दस्तखत तक न थे। बल्कि वेल्सली ने अपने पत्र में साफ़ लिखा है कि मोहम्मदअली और उसका बेटा उमदतुलउमरा, दोनों इस शर्त के ख़िलाफ थे। फिर भी, अपनी इस समय की मांग को जायज़ साबित करने के लिए वेल्सली ने अपने पत्र में अब उस शर्त का हवाला दिया।

नवाब उमदतुलउमरा समझ गया कि वेल्सली इस बहाने कर्नाटक के एक बहुत बड़े भाग को अंगरेज़ी राज में मिला लेना चाहता है। वेल्सली के पत्र में धमकियां भी भरी हुई थीं। फिर भी, उमदतुलउमरा इतनी आसानी से अपने बाप-दादा से पाया हुआ राज्य छोड़ देने के लिए राज़ी न हो सका। इस बीच सुलतान टीपू की मृत्यु हो गई और श्रीरंगपट्टन अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। जिस सेना ने श्रीरंगपट्टन विजय किया, उसमें वे सब पलटनें भी शामिल थीं, जिनके खर्च के लिए उमदतुलउमरा कम्पनी को 9 लाख पैगोडा सालाना दिया करता था। श्रीरंगपट्टन की विजय के बाद 13 मई, सन् 1799 को नवाब ने वेल्सली के पत्र के उत्तर में हिम्मत के साथ एक अत्यन्त विनीत और साफ़ किन्तु हर तरह उचित और गम्भीर पत्र लिखा।

इस पत्र में नवाब उमदतुलउमरा ने वेल्सली को लिखा :

नवाब उमदतुलउमरा का जवाब

> **"मैं नहीं समझ सकता कि आपने किन बातों की बिना पर यह राय क़ायम की है कि मेरी स्थिति खराब या कमज़ोर है, न मुझे उन बातों को जानने की आवश्यकता है। मेरे लिए यह जानना काफ़ी है कि मेरा कारबार कम-से-कम इतना अच्छा ज़रूर चल रहा है कि मैं बखूबी ठीक समय पर अपने वादों को पूरा कर सकता हूं ×××।**
>
> **"मैं आपको निहायत साफ़ शब्दों में एक नरेश के वचन और ईमान पर विश्वास दिलाता हूं कि जो ज़िले सन् 1792 की सन्धि के अनुसार (आपकी रक़म की अदायगी के लिए) अलग कर दिए गए हैं, उनमें से एक फ़ुट ज़मीन भी किसी तरह पर, किसी ज़रिए से ख़ुद या दूसरों की मारफ़त किसी भी शख्स के नाम न मैंने रहन वग़ैरह की है और न मेरे इल्म में किसी दूसरे ने की है; इस तरह संजीदगी के साथ और साफ़-साफ़ शब्दों में यह एलान करने के बाद मैं उम्मीद करता हूं कि मुझे और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।"**

अपने पिता की मरते समय की आज्ञा का हवाला देते हुए नवाब उमदतुलउमरा ने वेल्सली को लिख दिया कि पिछली सन्धि को तोड़ कर अब मैं कोई नई सन्धि

हरगिज़ मंजूर नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करना "हर तरह के दीन और ईमान के ख़िलाफ़" है ।

इसके बाद अंगरेज़ों की हाल की विजय पर वेलसली को बधाई देते हुए नवाब ने लिखा कि कर्नाटक का वह इलाक़ा, जो हैदरअली ने छीन कर अपने राज्य में मिला लिया था और जिसे अब अंगरेज़ों ने टीपू से फ़तह कर लिया है, कर्नाटक को वापस मिल जाना चाहिए। यह वही इलाक़ा था, जो हैदरअली से सुलह करते समय अंगरेज़ों ही ने अपने मित्र कर्नाटक के नवाब से लेकर हैदरअली को दे दिया था। पत्र के अन्त में नवाब ने वेलसली से प्रार्थना की कि चूंकि कर्नाटक की सबसीडियरी सेना ने भी इस युद्ध में भाग लिया है, इस-लिए इन्साफ़ यह है कि टीपू से जीते हुए मुल्क में से अपनी सेना के खर्च के औसत से कर्नाटक को भी कुछ हिस्सा मिलना चहिए ।

निस्संदेह, नवाब उमदतुलउमरा का उत्तर और उसकी मांगे, सब न्यायानुकूल थीं। किन्तु उनके औचित्य को स्वीकार करना उस समय कम्पनी के लिए लाभदायक न था। वेलसली समझ गया कि इस ढंग से कर्नाटक पर कब्जा करना असम्भव है। उसने नवाब के इस पत्र का उत्तर तक न दिया ।

नवाब से राज्य छीनने का इंगलिस्तान से आदेश

उधर इंगलिस्तान के शासक भी कर्नाटक की स्वाधीनता का ख़ात्मा करने के लिए अधीर हो रहे थे। 21 मार्च, सन् 1799 को इंगलिस्तान के भारत मन्त्री डण्डास ने वेलसली के नाम एक पत्र लिखा, जो 5 अगस्त, सन् 1799 को कलकत्ते पहुंचा। इस पत्र में डण्डास ने वेलसली को लिखा कि–"कर्नाटक के नवाब के साथ हमारी जो सन्धियां हो चुकी हैं, उनसे इस समय हम मजबूर हैं, फिर भी आप मुनासिब मौके की ताक में रहिए और नवाब को खुश करने इत्यादि के ऐसे उपाय काम में लाइए, जिनसे हमारी दिली इच्छा पूरी होने की अधिक सम्भावना हो।"*

वेल्सली की तजवीज और नवाब पर झूठे इलजाम

इस पत्र के उत्तर में वेलसली ने लिख भेजा कि–"मौजूदा नवाब के जीते जी इस तरह के मौके की आशा करना बिल्कुल व्यर्थ है।" आगे चल कर इसी पत्र में वेलसली ने लिखा :

> **"मुझे पूरा विश्वास है कि उस देश की मुसीबतों का कभी कोई पक्का इलाज नहीं हो सकता, जब तक कि हम नवाब से कम-से-कम उसी तरह के विस्तृत अधि-कार प्राप्त न कर लें, जिस तरह के कम्पनी को हाल में तंजोर की सन्धि द्वारा प्राप्त हुए हैं। मौजूदा नवाब के मरने के बाद मुमकिन है कि उसके उत्तराधिकारी के साथ इस तरह की सन्धि आसानी से की जा सके, (बशर्ते कि इस नवाब के बाद भी यह मुनासिब समझा जाए कि कम्पनी के अलावा कर्नाटक का नाममात्र का नरेश कोई दूसरा बना रहे) । ××× मौजूदा नवाब के मरने पर उसका उत्तराधिकारी नियुक्त करने का सारा सवाल पूरी तरह कम्पनी के फ़ैसले के लिए**

---

*Right Honourable Henry Dundas to Earl of Mornington, 21st March, 1799.

खुला होगा। मेरी इस समय राय यही है कि सबसे मुनासिब यह होगा कि उस शख्स को, जो नवाब उमदतुलउमरा का बेटा माना जाता है, गद्दी पर बैठा दिया जाए और उसके साथ उसी तरह की सन्धि कर ली जाए, जिस तरह की हाल में तंजौर के राजा के साथ की गई है। तो भी मुनासिब है कि आप फ़ौरन यह भी सोच रखें कि क्या यह अधिक पक्का प्रबन्ध न होगा कि हम वालाजाह और उमदतुलउमरा के वंश की हर शाख़ के लिए गुज़ारे का काफ़ी प्रबन्ध कर दें और नाम तथा काम, दोनों की दृष्टि से कर्नाटक देश का राजा कम्पनी ही को बना लें।"

किन्तु संसार को दिखाने के लिए भी कोई बहाना लेना ज़रूरी था। इसलिए वेल्सली ने इस पत्र में लिखा :

"श्रीरंगपट्टन पर क़ब्ज़ा करने के बाद परलोकवासी टीपू सुलतान के जो पत्र आदि हमारे हाथ आए हैं, उनसे मुझे अत्यन्त प्रामाणिक और अकाट्य शहादत इस बात की मिल गई है कि पिछले नवाब वालाजाह ने अपने जीवन के अन्त के दिनों में मौजूदा नवाब उमदतुलउमरा की मारफ़त टीपू सुलतान के साथ इस तरह का गुप्त पत्र-व्यवहार शुरू किया था, जिससे ब्रिटिश सत्ता की ओर उनकी गहरी शत्रुता साबित होती है।"*

आगे की घटनाओं को बयान करने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि नवाब मोहम्मदअली और टीपू सुलतान के बीच का यह 'गुप्त पत्र-व्यवहार' क्या था। कहा यह गया कि यह पत्र-व्यवहार टीपू के उन नौकरों की मारफ़त हुआ था, जो उसके दोनों नाबालिग़ क़ैदी बच्चों के साथ मद्रास गए थे। अंगरेज़ों ही के एक जांच कमीशन ने इस इलज़ाम के सबूत में कुछ गवाहियां भी जमा कर लीं।

---

* "I am thoroughly convinced, that no effectual remedy can ever be applied to the evils which afflict that country, without obtaining from the Nabob powers at as extensive as those vested in the Company by the late treaty of Tanjore. At the death of the present Nabob, such a treaty might easily be obtained from his successor, (if after that event it should be thought advisable to admit any nominal sovereign of the Carnatic, excepting the Company)...... the whole question of the succession will therefore be completely open to the decision of the Company, upon the decease of the present Nabob. The inclination of my opinion, is that the most advisable settlement would be to place Omadatul Omra's supposed son on the Musnad, under a treaty similar to that which was lately concluded with the Rajah of Tanjore. It will, however, be expedient that you should immediately consider whether it might not be a more effectual arrangement to provide liberally for every branch of the descendants of Wallajah and Omadatul Omra, and to vest even the nominal sovereignty of the Carnatic in the Company.

"......the records of the late Tipu Sultan which fell into our hands after the capture of Seringapatam, have furnished me with the most authentic and indisputable evidence that the secret correspondence of a nature the most hostile to the British Power was opened with the Tipu Sultan by the late Nabob Wallajah towards the close of his life, through the agency of Omadatul Omra the present Nabob."—Lord Mornington's letter to Right Honb'e Henry Dundas, *Wellesley's Despatches*, vol. ii. pp. 244-246.

विश्वस्त अंगरेज इतिहास-लेखकों की राय

कम-से-कम दो योग्य अंगरेज इतिहास-लेखकों ने मोहम्मदअली और उमदतुल-उमरा के चरित्र, टीपू के साथ उनके 30 साल के सम्बन्ध, उस समय की तमाम स्थिति और जांच कमीशन की गवाहियों, सब की पूरी तरह जांच करके यह साफ़ राय ज़ाहिर की है कि मोहम्मदअली और टीपू के 'गुप्त पत्र-व्यवहार' का यह सारा क़िस्सा जाली और झूठा था। इनमें इतिहास लेखक मेजर ईवान्स बेल का कहना है :

"हमसे आशा की जाती है कि हम इस बात पर विश्वास कर लें कि जो नवाब वालाजाह पचास साल तक अंगरेजों का वफ़ादार दोस्त और मददगार रह चुका था, जो तीस साल तक हैदरअली और टीपू सुलतान के साथ क़रीब-क़रीब लगातार युद्ध कर चुका था, और जिसे नुक़सान पहुंचाने और नीचा दिखाने का कोई मौक़ा इन दोनों ने और खास कर टीपू ने हाथ से जाने नहीं दिया था---उस वालाजाह को एकाएक बुढ़ापे में जाकर अपने तीस साल के पुराने शत्रुओं से मिल कर अपने आधी शताब्दी के दोस्तों के विरुद्ध साजिश करने की सूझी। और हमसे इस बात पर भी विश्वास कर लेने के लिए कहा जाता है कि बूढ़े नवाब ने अपने इस तरह अचानक रुख बदलने के लिए ठीक वही समय चुना, जब कि उसके दोस्तों की ताक़त इतनी पक्की जम चुकी थी कि जाहिरा कोई उनका मुक़ाबला करने वाला न रहा था और जब कि उसके पुराने दुश्मन का बल यहां तक चूर हो चुका था कि उसके उभरने की कोई आशा न थी। वालाजाह और उमदतुलउमरा पर इलज़ाम यह है कि उन्होंने टीपू के साथ ये साजिशें लार्ड कार्नवालिस के युद्ध के बाद सन् 1792 में शुरू कीं, जब कि टीपू विवश होकर अपना आधा राज्य दे चुका था, जब कि उसे तीन करोड़ तीस लाख रुपये युद्ध दण्ड देना पड़ गया था और अपने दो बेटों को बतौर बन्धक के मद्रास भेजने की जिल्लत सहनी पड़ी थी और कहा जाता है कि अपने विजयी दोस्तों और मददगारों के विरुद्ध अपने पराजित शत्रु के साथ मिल कर नवाबों ने यह जी तोड़ साजिश टीपू के उन दो नौकरों की मारफ़त की, जो इन दोनों शहज़ादों की हमराही में मद्रास भेजे गए थे।

"इस तरह साजिश की कहानी निस्सन्देह अत्यन्त अनहोनी तो मालूम होती ही है, फिर भी यदि उसके लिए काफ़ी सबूत होता, तो हमें उस पर विश्वास करना पड़ता। किन्तु कोई भी विश्वास योग्य गवाही पेश नहीं की गई। इतना ही नहीं, बल्कि टीपू सुलतान के दोनों वक़ीलों ग़ुलामअली और अलीरज़ा ने अपनी मद्रास से लिखी हुई रिपोर्टों में, जो श्रीरंगपट्टन के कागजों में पाई गईं और जांच कमीशन के सामने अपने बयानों में जितनी बातें कहीं हैं, वे सबकी सब यदि सच मान ली जाएं, तो भी उनसे किसी तरह की साजिश साबित नहीं होती। जांच कमीशन ने वालाजाह और उसके सबसे बड़े बेटे के खिलाफ़ गुप्त साजिशों और दुश्मनी के इरादों के अनेक सबूत जमा किए। इन सब सबूतों को यदि सच भी मान लिया जाए, तो वास्तव में वे इतने तुच्छ हैं कि यदि लार्ड वेल्सली के दिल में कर्नाटक के शासन को हाथ में लेने का कोई-न-कोई बहाना ढूंढ निकालने की प्रबल इच्छा न होती---और हम लार्ड वेल्सली के पहले प्रयत्नों से जानते हैं कि उसमें

यह प्रबल इच्छा मौजूद थी—तो हमें इस बात पर आश्चर्य होता कि उसने गप्पों और अन्दाजिया बातों के इस तमाम ढेर को अपनी रद्दी की टोकरी में क्यों नहीं फेंक दिया ।"*

इतिहास-लेखक जेम्स मिल ने इससे भी अधिक योग्यता, निष्पक्षता और परिश्रम के साथ इस तमाम मामले की विवेचना की है और अन्त में साबित किया है कि कर्नाटक के नवाबों के विरुद्ध यह तमाम इलज़ाम झूठा था ।†

जब तक नवाब उमदतुलउमरा ज़िन्दा रहा, वेल्सली ने कभी उसके सामने इस 'गुप्त पत्र-व्यवहार' के क़िस्से को पेश न किया और न उसे इसकी कोई ख़बर तक होने दी । चुपचाप वह उमदतुलउमरा के मरने का इन्तजार करता रहा ।

नवाब की मृत्यु और अंगरेज़ों का सुअवसर

जुलाई, सन् 1801 के शुरू में ख़बर मिली कि नवाब कर्नाटक की मृत्यु होने वाली है । बूढ़ा नवाब उस समय चिपौक के महल में था । 5 जुलाई, सन् 1801 को करनल मैकनील कम्पनी की सेना सहित महल की ओर बढ़ा और यह कह कर कि नवाब की मृत्यु के बाद लड़ाई-झगड़े का डर है और अमन क़ायम रखने की ज़रूरत है, उसने चारों ओर से

* "We are called upon to believe that the Nawab Wallajah, in his old age, after fifty years of faithful alliance and friendship with the English, and thirty years of almost incessant warfare with Hyder Ali and Tipu Sultan—both of whom, and especially the latter, had seized every opportunity of injuring him and of loading him with insults,—suddenly took it into his head to conspire against his friends of half a century, and to league with his enemies of thirty years. And we are called upon to believe that the time chosen for this sudden change of policy was just when the power of his friends was apparently established without a competitor, and when the power of his old enemy had fallen to nothing, beneath all hope of recovery. Wallajah and Omdatul Omrah are accused of having begun their hostile intrigues with Tipu in 1792 after Lord Cornwallis' campaign, when he had been compelled to cede half his dominions, to pay three crores and thirty lacs of rupees as a war indemnity, and to submit to the humiliating condition of sending two of his sons as hostages to Madras. And it is with two of Tipu's officials who were sent to Madras in attendance on these young Princes, that the Nawabs are accused of having concerted and carried on his desperate conspiracy with their discomfited foe against their triumphant friends and allies.

"Extravagantly improbable as such a tale of conspiracy must appear, we should of course be bound to believe it if a sufficiency of evidence were produced. But not only is there no trustworthy evidence brought forward, but if every statement made by Ghulam Ali and Ali Raza, Tipu Sultan's Vakils, both in their written reports from Madras found among the records at Seringapatam, and in their depositions before the Commission of enquiry, were to be accepted as truth, it would amount to nothing. The proofs of dark designs and hostile intentions on the part of Wallajah and his eldest son, who were collected by the Commission of enquiry, are really so frivolous, even if considered as true, that but for the strong bias towards any conclusion affording a pretext for assuming the administration of the Carnatic, which we know from his previous endeavours in that direction actuated Lord Wellesley, we should be surprised that he did not throw the whole mass of gossip and guess-work into his wastepaper basket."—*The Empire of India,* by Major Evans Bell, pp. 107, 108.

†Mill's *History of British India,* vol. vi, pp. 217-244.

महल को घेर लिया । यह वही सेना थी, जो नवाब के खर्च पर नवाब की रक्षा के लिए नवाब के इलाक़े में रखी गई थी । जिस समय इस सेना ने महल के भीतर घुसना चाहा और मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए नवाब के कानों तक ख़बर पहुंची, तो नवाब चौंक पड़ा और पास के एक अंगरेज़ अफ़सर से गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"महल के अंदर घुस कर मुझे मेरी रिआया की नज़रों में न गिराइए!" 5 जुलाई से 15 जुलाई तक कम्पनी की सेना ने महल को घेरे रखा। 15 जुलाई को नवाब उमदतुलउमरा की मृत्यु हुई । अन्त तक अंगरेज़ अफ़सर बूढ़े नवाब के पास रहे और उसे अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते रहे। उमदतुलउमरा का बेटा शहज़ादा अलीहुसैन भी उसी महल में था। जिस दिन उमदतुलउमरा का शरीर छूटा, उसी दिन कर्नाटक की गद्दी के वारिस शहज़ादे अलीहुसैन को ज़बरदस्ती कमरे से बाहर लाकर अंगरेज़ों ने अचानक उसे यह सूचना दी कि तुम्हारे बाप और दादा ने अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ हैदर और टीपू के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार किया था, इसलिए गोया तुम्हें उसका कोई पता नहीं, फिर भी गवनर-जनरल का फ़ैसला है कि अपने बाप की गद्दी पर बैठने के बजाय तुम एक मामूली रिआया की हैसियत से अपनी बाक़ी ज़िन्दगी व्यतीत करो। शहज़ादे को डरा कर उससे कहा गया कि तुम तंजौर की सन्धि की तरह की एक सन्धि पर दस्तख़त कर दो। ख़ेमों के अन्दर शहज़ादे अलीहुसैन और अंगरेज़ अफ़सरों में बातचीत हो रही थी और बाहर कम्पनी के सिपाही नंगी तलवारें लिए फिर रहे थे । इतने पर भी अलीहुसैन न माना ।

कर्नाटक की नवाबी का अन्त

इसके बाद अलीहुसैन को अलग करके और बीच के कई हक़दारों को छोड़ कर अलीहुसैन के एक दूर के रिश्तेदार, आज़मुद्दौला, से अंगरेज़ों ने वहीं पर बातचीत शुरू की । आज़मुद्दौला ने अंगरेज़ों की बात मान ली। 28 जुलाई, सन् 1801 को आज़मुद्दौला कर्नाटक की गद्दी पर बैठा दिया गया। जिस तरह की संन्धि अंगरेज़ों ने चाही, उसी तरह की सन्धि पर आज़मुद्दौला ने दस्तख़त कर दिए । इस सन्धि के अनुसार कर्नाटक का सारा राज्य कम्पनी के हाथों में आ गया और आज़मुद्दौला केवल राजधानी अरकाट और चिपौक के महल का नवाब रह गया ।

शहज़ादे अलीहुसैन की हत्या

नए नवाब को चिपौक के महल में रखा गया । उसी महल में शहज़ादे अलीहुसैन और उसकी विधवा मां को क़ैद कर दिया गया । शहज़ादे ने कई बार अंगरेज़ों से प्रार्थना की कि मुझे किसी दूसरी जगह भेज दिया जाए, नहीं तो डर है कि नया नवाब किसी रोज़ मुझे खत्म कर देगा, किन्तु सुनाई न हो सकी। चन्द रोज़ के बाद ही, एक दिन, कहा जाता है कि पेचिश से शहज़ादे अलीहुसैन की मृत्यु हो गई। मालूम होता है, यह वही पेचिश थी, जिससे 36 साल पहले लार्ड क्लाइव के ज़माने में मुर्शिदाबाद के नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हुई थी। 17 मई, सन् 1808 को इंगलिस्तान की पार्लियामेंट के सामने शहज़ादे अलीहुसैन की मृत्यु के सम्बन्ध में बोलते हुए सर टामस टरटन ने कहा—"मुझे विश्वास है कि इस मामले में कुछ न कुछ दग़ा अवश्य थी।"*

---

* "......something unfair in this transaction......he believed there was."—Sir Thomas Turton before British Parliament, 17th May, 1908.

पहले की तरह इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने कर्नाटक का सारा मामला पेश किया गया। काफ़ी भेद खोले गए। वेल्सली के विरुद्ध और नवाब के पक्ष में ज़ोरदार भाषण हुए। एक मेम्बर ने टीपू और मोहम्मद अली के खिलाफ़ वेल्सली की साज़िश की ओर संकेत करते हुए कहा कि-- "सहज विश्वासी भोली जनता को धोखा देने का इससे अधिक वीभत्स प्रयत्न मैंने कभी नहीं सुना।" फिर भी, अन्त में इस खुली राजनैतिक डकैती के लिए वेल्सली की सराहना का एक प्रस्ताव पास हुआ।

भारत में कम्पनी की नीति

विण्डैम नामक एक मेम्बर ने उस अवसर पर बिल्कुल सच कहा :

"× × × भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीति को देख कर मुझे एक गीत की अन्तिम पंक्ति याद आ जाती है, जिसे डाक्टर स्विफ्ट ने एक डाकू के लिए लिखा था। उस पंक्ति का अर्थ यह है--'जिस मनुष्य का जी चाहे, वह अपने पासवाले को लूट सकता है।' × × × हमारे सामने सन्मार्ग प्रदर्शन के लिए साफ़ असूल यह है कि भारतवासियों के कोई हक़ नहीं, हमारे कोई फ़र्ज़ नहीं, हम सब उनके बादशाह हैं और जो हम फ़ैसला कर दें, सो ठीक।"*

* "......the policy of the East India Company in India, reminded him of the last line of a song, written by Dr. Swift for a high-way man, 'every man round may rob if he pleases,' ......the principle by which we were to be guided, was that the natives of India had no right, that we had no duties, and that all was to depend upon the decision of our Majesties."—Mr. Windham before the British Parliament.

उन्नीसवां अध्याय

सूरत की नवाबी का खात्मा

सूरत में अंगरेज़ों की पहली कोठी

हिन्दोस्तान में अंगरेज़ों की सबसे पहली कोठी सूरत में क़ायम हुई। पादरी ऐण्डरसन ने अपनी पुस्तक 'दि इंगलिस्तान इन वेस्टर्न इण्डिया' में विस्तार के साथ बयान किया है कि किस तरह उन आरम्भ के दिनों में अंगरेज़ व्यापारी सूरत-निवासियों को छलते और धोखा देकर लूटते थे।

सूरत के नवाब के साथ पहली सन्धि

सूरत पर उन दिनों एक मुसलमान नवाब का शासन था, जो दिल्ली सम्राट के मातहत था। अंगरेज़ों का राजनैतिक प्रभाव वहां सन् 1759 से शुरू हुआ, जब कि नवाब से कुछ झगड़ा हो जाने के कारण उन्होंने सूरत के क़िले पर हमला कर दिया। स्टैवौरिनस नामक डच यात्री लिखता है कि अंगरेज़ों ने क़िले के एक हिन्दोस्तानी अफ़सर को इस बात का प्रबन्ध करने के लिए रिशवत दी कि जब अंगरेज़ क़िले पर हमला करें, तब दूसरी ओर से उनका कोई मुक़ाबला न करे। डच कोठी के अफ़सर को भी अंगरेज़ों ने इस ग़रज से रिशवत दी कि वह अंगरेज़ों के विरुद्ध नवाब को मदद न दे।* अन्त में, नवाब और अंगरेज़ों में सन्धि हो गई। अंगरेज़ व्यापारियों को कुछ विशेष रिआयतें मिल गईं और आइन्दा के लिए उन्होंने वादा किया कि हम कभी सूरत के शासन इत्यादि में किसी तरह की दखल न देंगे। किन्तु वास्तव में उसी समय से सूरत के नवाब पर अंगरेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा और नवाब धीरे-धीरे अंगरेज़ों के हाथों की एक कठपुतली बनता चला गया। यह दो-अमली चालीस साल तक जारी रही। सन् 1777 में इस दो-अमली का बयान करते हुए पारसन्स नामक एक इतिहास-लेखक लिखता है :

दो अमली हकूमत

> **"यदि फ़ान्सीसी, पुर्तगाल–निवासी या डच लोग महसूल में कोई तबदीली कराना चाहते हैं या कोई रिआयत चाहते हैं और यदि अंगरेज मुखिया उनकी इच्छा पूरी करना नहीं चाहता, तो वह उन्हें नवाब के पास भेज देता है और साथ ही नवाब से कहला भेजता है कि उनकी प्रार्थना का अमुक उत्तर दिया जाए ××× वे सब इस तमाशे को समझते हैं।"**

स्टैवौरिन्स लिखता है :

> **"सबके लिए कानून बनानेवाले अंगरेज हैं; उनकी खास रजामन्दी के बिना न दूसरे यूरोपियन कुछ कर सकते हैं और न हिन्दोस्तानी। इस बात में शहर**

**Bombay Gazetteer, Surat* vol., p. 127 foot-note.

के नवाब में और छोटे से छोटे नगर निवासी में कोई अन्तर नहीं। जोकि अंगरेज़ ऊपर से नवाब के प्रति कुछ आदर दिखलाते हैं और खुले तौर पर कभी न मानेंगे कि नवाब उनके अधीन है, फिर भी नवाब को अंगरेज़ों की आज्ञाएं माननी पड़ती हैं।"

सन् 1759 से 1799 तक चार नवाबों के शासनकाल में यही दो-अमली जारी रही। मार्क्विस वेल्सली ने आकर इसे ख़तम करने का इरादा किया।

नवाब के साथ नई सन्धि

नवाब को लिखा गया था कि अपने यहां के 'शासन-प्रबन्ध में सुधार' करो। इस 'शासन-सुधार' का मतलब यह था कि अपनी सेना को बरखास्त कर दो, तीन पलटन कम्पनी की सेना अपने यहां रखो और उनके खर्च के लिए कम्पनी को सालाना रक़म दिया करो। नवाब ने वेल्सली की बात मानने से इन्कार कर दिया। उसका एक एतराज़ यह भी था कि कम्पनी की यह मांग सन् 1759 की सन्धि के विरुद्ध है। किन्तु जब नवाब को दबाया गया, तो उसने समझौता कर लिया और कम्पनी को एक लाख रुपये सालाना देना और उसके अलावा 30,000 रुपये सालाना से ऊपर की और रिआयतें उनके साथ कर देना स्वीकार कर लिया। अभी इस नए सन्धिपत्र पर दस्तखत न होने पाए थे कि 8 जनवरी, सन् 1799 को नवाब की मृत्यु हो गई। नवाब के एक दुधमुंहा बेटा था। अपने पिता के एक महीने बाद उसको भी मृत्यु हो गई। इस बच्चे का चाचा नसीरुद्दीन सूरत की गद्दी पर बैठा।

नसीरुद्दीन पर ज़ोर दिया गया कि तुम एक लाख रुपये सालाना की रकम जिसे, हाल में दोनों पक्ष मंजूर कर चुके थे, और बढ़ा दो। नसीरुद्दीन ने अपनी मा ी हालत बताते हुए माफ़ी चाही और एक लाख सालाना देने का वादा किया। वेल्सली ने फिर ज़ोर दिया। 18 अगस्त, सन् 1799 की सूरत को कोठी के मुखिया सिटान ने बम्बई के गवर्नर को लिखा :

"मैंने कोई कसर उठा नहीं रखी ; नवाब पर हद दर्जे का दबाव डाल चुका हूं। मुझे पूरा यक़ीन है कि अगर नवाब के पास गुंजाइश होती, तो वह ज़रूर जियादा दे देता।"

सूरत की नवाबी को खत्म करने का इरादा

वेल्सली को इसकी सूचना दे दी गई। इसके जवाब में 18 फ़रवरी, सन् 1800 को गवर्नर-जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर को एक गुप्त पत्र लिखा :

"××× मैं पक्का इरादा कर चुका हूं कि नसीरुद्दीन को उस समय तक नवाब स्वीकार नहीं करूंगा, जब तक कि वह अपने और अपने कुटुम्ब के गुज़ारे के क़ाबिल सालाना पेनशन लेकर, जो कि कम्पनी उसे सूरत की सालाना आमदनी में से दिया करेगी, सूरत की दीवानी और फ़ौजदारी के सब अधिकार और तमाम मालगुज़ारी कम्पनी के हाथों में दे देने के लिए राज़ी न हो जाए।"*

**Wellesley's Despatches*, vol. ii, pp. 222, 223.

बीस दिन बाद इसी मज़मून का एक मसौदा लिखा कर वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर के पास भेज दिया। साथ ही गवर्नर को आज्ञा दी कि तुम हिन्दोस्तानी पैदल सिपाहियों की दो रेजिमेण्ट अपने यहां बढ़ा लो, नई सन्धि पर नवाब नसीरुद्दीन के दस्तखत कराने के लिए खुद सूरत जाओ और अपने पहुंचने से पहले एक कम्पनी गोरे तोपखाने की, दो कम्पनियां गोरे पैदलों की और एक पूरी रेजिमेण्ट हिन्दोस्तानी पैदलों की सूरत भेज दो।

बेमुल्क नवाबी

अन्त में, नवाब नसीरुद्दीन को वेल्सली की ख्वाहिश पूरी करनी पड़ी। 13 मई, सन् 1800 को नवाब ने नए सन्धिपत्र पर दस्तखत कर दिए और अपनी पैतृक रियासत से सदा के लिए हाथ धो लिए। दिल्ली के दूरवर्ती मुग़ल दरबार में उस समय इतना बल न रह गया था कि अपने अधीन नवाब की रक्षा कर सके। नवाब का राजपाट छीन कर भी उसे बेमुल्क नवाब रखना जरुरी समझा गया। जिस दिन नसीरुद्दीन ने सन्धिपत्र पर दस्तखत किए, उससे अगले दिन उसे शान-शौकत के साथ नवाबी की गद्दी पर बैठाया गया। अंगरेज़ सरकार ने अब उसका नवाब होना स्वीकार कर लिया। सन्धिपत्र के शुरु में लिखा गया —"माननीय अंगरेज कम्पनी और नवाब नसीरुद्दीन खां, इत्यादि के दरमियान जो दोस्ती मौजूद थी, उसे इस सन्धिपत्र द्वारा अधिक मजबूत और पक्का किया जाता है"।

इतिहास-लेखक मिल ने सूरत के निर्बल नवाब के साथ कम्पनी के इस अन्याय को और वेल्सली के झूठ और बेइमानी को निष्पक्षता के साथ स्वीकार किया है।*

**History of British India* by Mill, vol. vi, pp. 208-211.

25—220 M of I&B/80

बीसवां अध्याय

पेशवा को फांसने का प्रयत्न

अंगरेज़ों को मराठों से खतरा

ऊपर से देखने में मराठों और कम्पनी के बीच मित्रता की सन्धि कायम थी, फिर भी कम्पनी को उस समय भारत में हैदरअली और टीपू से उतर कर अपने दूसरे प्रतिस्पर्धी मराठे ही नज़र आते थे। टीपू के बाद दूसरी भारतीय शक्ति, जिसका नाश करने की अंगरेज़ों को सबसे अधिक चिन्ता थी, मराठा मण्डल और विशेषकर पेशवा दरबार की शक्ति थी। टीपू और अंगरेज़ों के पहले युद्ध के समय ही इंगलिस्तान की पार्लियामेन्ट के अन्दर भारतीय स्थिति पर बहस करते हुए पार्लियामेंट के कई मेम्बरों ने यह विचार प्रकट किया था कि—"हिन्दोस्तान के अन्दर इंगलिस्तान के हितों को सबसे भारी खतरा मराठों से है।" चुनांचें मैक्फरसन के समय से लेकर वेल्सली के समय तक हर गवर्नर-जनरल के समय में मराठों के बल को तोड़ने के लिए बराबर साज़िशें जारी रहीं।

मराठों के साथ व्यवहार

इस संबंध में यह बता देना आवश्यक है कि इतिहास में एक ी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जिसमें कि मराठों नें अंगरेज़ों के साथ विश्वासघात किया हो, किन्तु इसके विपरीत मराठों के साथ अंगरेज़ों के व्यवहार को बयान करते हुए एक अंगरेज़ विद्वान लिखता है :

> **"अब हम मराठा राज का ज़िक्र करते हैं, जिसका अंगरेज़ों के साथ शुरू ज़माने से गहरा सम्बन्ध है। उस ज़माने की हालत को हम चाहे कितनी भी सफ़ाई के साथ क्यों न बयान करें, उसमें अनेक बातें ऐसी है, जिन पर अंगरेज़ों को शर्म आनी चाहिए।"***

हेस्टिंग्स की स्वीकृति

इसी तरह, वारेन हेस्टिंग्स ने पार्लियामेंट के सामने अपने जुर्मों की जवाब देही करते हुए और नाना फड़नवीस, हैदरअली और निजाम के उस मेल की ओर इशारा करते हुए जिसे हम एक पिछले अध्याय में बयान कर चुके हैं, बड़े अभिमान के साथ कहा था :

> **"महान भारतीय संघ के एक सदस्य (निज़ाम) को मैंने ठीक मौक़े पर उसका कुछ इलाक़ा वापस करके संघ से फोड़ा ; दूसरे (मूदाजी भोंसले) के साथ मैंने गुप्त पत्रव्यवहार जारी रखा और उसे अपना मित्र बना लिया ; तीसरे**

---

* "We now arrive at the Marhatta Raj, which is closely coupled with the earlier days of the British. However fairly told, there is much for the English to be ashamed of in this period."—Sir Frederick Lely in his *History as Taught in Indian Schools.*

(माधोजी सिंधिया) को दूसरे कामों में लगा कर और पत्र-व्यवहार करके मैंने भुलाए रखा और सुलह के लिए बतौर अपने हथियार के उसका उपयोग किया।"*

मराठों के नाश में वेल्सली का हिस्सा

मराठों की सत्ता का नाश करने में सबसे अधिक हिस्सा मार्क्विस वेल्सली और इसके भाई करनल आर्थर वेल्सली ने लिया, जो बाद में ड्यूक आफ़ वैलिंगटन के नाम से मशहूर हुआ। इन दोनों भाइयों के 'सरकारी' और 'प्राइवेट' पत्रों में मराठों के नाश के अनेक गुप्त प्रयत्नों का हाल भरा पड़ा है।

मार्क्विस वेल्सली के भारत आने के समय राघोबा का पुत्र बाजीराव पेशवा की गद्दी पर था। नाना फ़ड़नवीस क़ैद में था। करनल पामर पूना के दरबार में रेजिडेण्ट था और माधोजी सिंधिया की जगह उसका पोत्र, दौलतराव सिंधिया ग्वालियर की गद्दी पर था।

होलकर कुल के झगड़े

15 अगस्त, सन् 1797 को तुकाजी होलकर की मृत्यु हुई। तुकाजी के दो बेटे थे, काशीराव और मलहरराव और दो दासीपुत्र थे जसवन्तराव और विट्ठूजी। बड़ा बेटा काशीराव गद्दी का वास्तविक अधिकारी था। जसवन्तराव और विट्ठूजी ने मलहरराव का पक्ष लिया। दौलतराव सिंधिया ने काशीराव को मदद की। अन्त में सिंधिया की सेना की सहायता से मलहरराव मारा गया, काशीराव गद्दी पर बैठा, जसवन्तराव भाग कर नागपुर चला गया और विट्ठूजी कोल्हापूर गया। इस तरह होलकर कुल के ऊपर दौलतराव सिंधिया का प्रभाव जम गया।

मराठा सत्ता को मज़बूत करने के प्रयत्न

दौलतराव सिंधिया योग्य, वीर और समझदार था। उसके पितामह माधोजी सिंधिया के साथ अंगरेज़ों ने जो विश्वासघात किया था, उससे वह अच्छी तरह परिचित था। वह यह भी समझता था कि इस संकट के समय नाना फ़ड़नवीस की सेवाएं मराठा मण्डल के अस्तित्व के लिए कितनी मूल्यवान हो सकती हैं, और अकेले बाजीराव के हाथों में मराठा साम्राज्य की बागडोर रहने से इस साम्राज्य को कितना खतरा है। नाना फड़नवीस और दौलतराव सिंधिया में पत्र-व्यवहार हुआ। सबसे पहला काम दौलतराव ने यह किया कि पूना पहुंच कर नाना फड़नवीस को कैद से निकाल कर उसे फिर से पेशवा का प्रधानमन्त्री बनवाया। नाना और दौलतराव में अब मित्रता बढ़ने लगी। बाजीराव भी उन्हीं के कहने में था और मराठा साम्राज्य की नीति का संचालन इन्हीं दोनों योग्य व्यक्तियों के हाथों में आ गया।

---

* "I won one member (the Nizam) of the Great Indian Confederacy from it by an act of seasonable restitution; with another (Moodaji Bhonsle) I maintained a secret intercourse, and converted him into a friend; a third (Madhoji Scindhia) I drew off by diversion and negotiation, and employed him as the instrument of peace."—Warren Hastings before the British Parliament.

टीपू और अंगरेज़ों के पहले युद्ध में अंगरेज़ों की विजय का मुख्य कारण मराठों की मदद थी। मद्रास गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी जोसाया वेब ने 6 जुलाई, सन् 1798 के पत्र में साफ़ लिखा है कि ठीक समय पर मराठों की सेना मदद के लिए न पहुंचती, तो अंगरेज़ों को उस युद्ध में सफलता न मिल सकती। किन्तु टीपू के साथ दूसरे युद्ध में टीपू की निर्दोषिता और अंगरेज़ों का अन्याय, दोनों इतने साफ़ थे कि इस बार वेल्सली और उसके साथियों को मराठों से सहायता की आशा न थी।

अंगरेज़ों को दौलतराव से आशंका

इसके विपरीत, दौलतराव सिंधिया के पास एक विशाल और सन्नद्ध सेना थी। दौलतराव एक योग्य सेनापति था। वह अपनी सेना सहित इस समय पूना में था और वेल्सली को डर था कि कहीं टीपू पर अंगरेज़ों के हमला करने के समय दौलतराव अपनी सेना सहित टीपू की मदद के लिए न पहुंच जाए। इसलिए टीपू पर दूसरी बार हमला करने से पहले मराठों की ओर वेल्सली की नीति के दो मुख्य पहलू थे। एक यह कि जिस तरह हो सके, पेशवा बाजीराव को निज़ाम की तरह सबसीडियरी सन्धि के जाल में फांस कर पंगुल कर दिया जाए और दूसरा यह की दौलतराव सिंधिया और उसकी सेना को किसी-न-किसी तरह पूना से हटा कर उत्तर की ओर भेज दिया जाए। बिना पेशवा को सबसीडियरी सन्धि के जाल में फांसे मराठों की सत्ता का नाश कर सकना सर्वथा-असम्भव था और बिना दौलतराव के पूना से टले पेशवा को इस जाल में फांस सकना अथवा टीपू पर निश्शंक हो हमला कर सकना, दोनों असम्भव मालूम होते थे।

दौलतराव को पूना से हटाने की चालें

वेल्सली अच्छी तरह समझता था कि जब तक बाजीराव के ऊपर दौलतराव सिंधिया और नाना फ़ड़नवीस का प्रभाव है, तब तक बाजीराव अंगरेज़ों की किसी चाल में नहीं आ सकता। इसलिए सबसे पहले वेल्सली ने सिंधिया और उसकी सेना को पूना से हटा देने की चालें चलनी शुरू कीं। 8 जुलाई, 1798 को वेल्सली ने रेज़िडेन्ट पामर को पत्र लिखा कि --सिंधिया के पूना रहने से टीपू को पूरी तरह सहायता मिलने की सम्भावना है, इसलिए किसी प्रकार सिंधिया को वहां से हटा कर उत्तर भारत भेज देना आवश्यक है"।

इसके लिए सबसे पहले वेल्सली और उसके साथियों ने यह झूठी अफ़वाह उड़ाई कि अहमदशाह अब्दाली का पौत्र, काबुल का बादशाह, ज़मानशाह उत्तर भारत पर हमला करने वाला है। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है :

> **"अंगरेज़ों के एजेण्टों ने ज़मानशाह के हमला करने के इरादों की अफ़वाहें इसलिए खूब जोर दे-देकर उड़ानी शुरू कीं, ताकि इन बातों में आकर सिंधिया अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तर हिन्दोस्तान लौट आए।"***

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि ज़मानशाह के हमले की इन खबरों की कोई बुनियाद इन अफ़वाहों के अतिरिक्त और थी ही नहीं और सन् 1798 में ये खबरें जान-

* "The reported designs of Zaman Shah,...... were strongly set forth, by the British agents, in order to induce Scindia to return for the protection of his dominions in Hindustan."—Grant Duff, p. 540.

बूझ कर उड़ाई गईं। मिल लिखता है कि इससे पहले भी अंगरेज़ अपने मतलब के लिए काबुल के बादशाह के हमलों की झूठी खबरें उड़ा चुके थे।

किन्तु दौलतराव सिंधिया अंगरेज़ों को समझता था। वह उनकी इस चाल में न आ सका। मिल लिखता है :

> **"गोकि इस तरह के हमले से किसी दूसरे को इतनी अधिक हानि न पहुंच सकती थी, जितनी महाराजा सिंधिया को, तिस पर भी उसने पूना ही में ठहरे रहना पसन्द किया। असलियत यह मालूम होती है कि सिंधिया जानता था कि शाह का भारत पर हमला करना नामुमकिन है।"***

दौलतराव के विरुद्ध वेल्सली की असफल चालें

वेल्सली के लिए अब कोई दूसरी चाल चलना ज़रूरी हो गया। लार्ड कार्नवालिस के समय से कोई रेजिडेण्ट सिंधिया के दरबार न भेजा गया था। वेल्सली ने अब करनल कालिन्स नाम के एक अंगरेज़ को वहां रेजिडेण्ट बना कर भेजा। सिंधिया स्वयं पूना में था, तथापि करनल कालिन्स को सीधा उत्तर भारत की ओर सिंधिया की राजधानी में भेजा गया। कहा गया कि कालिन्स को भेजने का उद्देश्य सिंधिया और अंगरेज़ों की मित्रता को पक्का करना है, किन्तु वास्तविक उद्देश्य था महाराजा दौलतराव की अनुपस्थिति में सिंधिया राज के अन्दर फूट डलवाना, जगह-जगह विद्रोह खड़े करना और इस तरह की स्थिति पैदा कर देना, जिससे दौलतराव को मजबूर होकर अपनी सेना सहित पूना से उत्तर की ओर लौट आना पड़े। भारत की स्वाधीन रियासतों में कम्पनी के रेजिडेण्टों का खास काम उन रियासतों के बल और उनकी आन्तरिक कमज़ोरियों को भापना और उनमें अन्दर-ही-अन्दर फूट डलवा कर उनका नाश करना होता था। वेल्सली ने अपने खुले सरकारी पत्रों में बार-बार रेज़िडेण्टों को यह आदेश दिया कि तुम लोग देशी राज्यों के अन्दर "आपस के द्वेष और असन्तोष से लाभ उठाओ", जिसका साफ़ शब्दों में मतलब यह था कि उन रियासतों में आपस का द्वेष और असन्तोष पैदा करो। इस समय, जब कि वेल्सली की इच्छा के अनुसार कालिन्स सिंधिया के राज्य में जगह-जगह झगड़े खड़े कर रहा था, रेज़िडेण्ट पामर पूना दरबार में उसी तरह फूट के बीच बो रहा था और खास कर दौलतराव के खिलाफ़ बाजीराव और उसके सलाहकारों के कान भरा करता था।

करनल कालिन्स ने अब अपनी पूरी कोशिश से सिंधिया की स्थानीय सेना और उसकी प्रजा के अन्दर असन्तोष पैदा करना और लोगों को सिंधिया के विरुद्ध भड़का कर झगड़े और विद्रोह खड़े करना शुरू किया। किन्तु यह चाल भी दौलतराव के विरुद्ध अधिक सफल न हो सकी। वह योग्य नरेश पूना में बैठे हुए वहीं से अपने राज्य के इन सब झगड़ों को सुन्दरता के साथ तय करता रहा।

वेल्सली की कठिनाई और उसके नए प्रयत्न

मार्क्विस वेल्सली को इस समय खासी कठिनाई का सामना करना पड़ा। टीपू पर हमला करने और उसका नाश करने की उसे बेहद जल्दी थी। देर होने से टीपू के

*Mill, vol. vi, pp. 125, 128, 130.

अधिक सावधान हो जाने या उसके मददगार खड़े हो जाने का डर था। उधर वेल्सली न सिंधिया और उसकी सेना पर एतबार कर सकता था, न सिंधिया किसी तरह पूना से हटता था। बिना सिंधिया के पूना से हटे पेशवा बाजीराव को सबसीडियरी सन्धि या और किसी जाल में फंसा सकना भी असम्भव था। वेल्सली समझ गया कि जब तक दौलतराव सिंधिया को कोई वास्तविक आपत्ति अपने सिर पर खड़ी हुई दिखाई न देगी, दौलतराव पूना से न टलेगा और पूना से उसे हटाना आवश्यक था। एक नया षड्यन्त्र रचा गया। दौलतराव पर यह इलज़ाम लगाया गया कि वह अंगरेज़ों के विरुद्ध बनारस के कैदी नवाब वज़ीरअली के साथ साज़िश कर रहा है। 3 मार्च, सन् 1799 को मद्रास से बैठे हुए वेल्सली ने करनल पामर के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र लिखा। इस पत्र में पामर को सूचना दी गई :

"माधोदास के बाग़ पर हमला करते समय वज़ीरअली के जो पत्र पकड़े गए हैं, उनमें उत्तर हिन्दोस्तान में रहनेवाले सिंधिया के मुख्य सेनापति, अम्बाजी, का एक पत्र मिला है। इस पत्र से मालूम होता है कि अम्बाजी ने दौलतराव सिंधिया की ओर से वज़ीरअली के साथ एक गुप्त सन्धि की है।

"वह सन्धि गवर्नमेण्ट के पास नहीं है, किन्तु अम्बाजी के पत्र से, कामगार खां और नामदार खां के पत्रों से और वज़ीरअली के दूसरे पत्रों से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इस सन्धि के मुख्य उद्देश्य कम्पनी के लिए अत्यन्त अहितकर हैं और इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए यह तजवीज़ हो रही है कि सिंधिया की मदद से वज़ीरअली को अवध की गद्दी पर बैठाया जाए और सिंधिया और वज़ीर-अली में इस तरह का सम्बन्ध क़ायम कर लिया जाए, जिससे एक के हित में दूसरे का हित हो।"

वेल्सली ने इस पत्र में आगे चल कर करनल पामर को आज्ञा दी कि तुम इस सम्बन्ध में और बातें पता लगाने का प्रयत्न करो और मुझे उनकी सूचना दो।

दौलतराव पर चढ़ाई का बहाना

उस समय के सरकारी और गैरसरकारी पत्रों की छानबीन करने से साफ़ पता चलता है कि यह साज़िश केवल वेल्सली के दिमाग की कल्पना थी और दौलतराव पर चढ़ाई करने का कोई बहाना पैदा करने और उसे पूना से हटाने के लिए गढ़ी गई थी। पामर के नाम पत्र में 'और बातें पता लगाने' का अर्थ यह था कि पामर 'और बातें गढ़ो' और मौक़े की झूठी गवाहियां तैयार करके वेल्सली की कल्पना को सचाई का रूप दे।

इसी पत्र में वेल्सली ने परसार को लिखा :

"जो विशाल सेना इस समय पर जेम्स क्रेग के अधीन है, वह अवध की सरहद पर जमा रहेगी और मैं आशा करता हूं कि जब सिंधिया और अम्बाजी को इस बात का पता चलेगा, तो वे कम्पनी के हित के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने से रुके रहेंगे।"

इसका मतलब यह था कि जब और कोई चाल न चल सकी, तो इस गरज से कि दौलतराव सिंधिया डर कर अपने राज्य में वापस आ जाए, इस बहाने वेल्सली ने उसके राज्य की उत्तर-पूर्वी सरहद पर अवध की समस्त अंगरेज़ी सेना लाकर खड़ी कर दी।

दौलतराव के नाश की तजवीजें

इतना ही नहीं, वेल्सली ने इस समय तक पूरा इरादा कर लिया कि टीपू से निपटने के बाद दौलतराव सिंधिया के साथ युद्ध कर दिया जाए, क्योंकि दौलतराव सिंधिया ही उस समय मराठा साम्राज्य के अन्दर सबसे जबरदस्त नरेश था। इस काम के लिए वेल्सली ने भारत के दूसरे नरेशों को सिंधिया के विरुद्ध फोड़ने के प्रयत्न शुरू कर दिए थे। कर्नल पामर के नाम पूर्वोक्त पत्र लिखने से बहुत पहले, अर्थात् नवाब वज़ीरअली के पत्रों (!) में वज़ीरअली और अम्बाजी की साज़िश का पता लगने से भी पहले, वेल्सली ने कोलब्रुक नामक एक अंगरेज़ को बरार के राजा के दरबार में अपना दूत नियुक्त करके भेजा। कोलब्रुक को भेजने का उद्देश्य बरार के सैन्यबल का पता लगाना और टीपू और सिंधिया, दोनों के विरूद्ध बरार के राजा के साथ गुप्त साज़िश करना था।

3 मार्च, 1799 से पहले वेल्सली ने कोलब्रुक को एक पत्र में लिखा :

> **"बरार के राजा का इलाक़ा ऐसे मौक़े पर है कि दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध बरार के राजा की मदद हमारे लिए विशेष उपयोगी साबित होगी।"***

इसी पत्र में वेल्सली ने कोलब्रुक को लिखा कि तुम्हें जिस बात की ओर लक्ष्य रखना चाहिए, वह यह है कि बरार के राजा, निज़ाम और कम्पनी, तीनों के बीच सिंधिया और टीपू के विरुद्ध एक इस तरह की सन्धि हो जाए, जिसमें बाजीराव पेशवा भी जब चाहे, शामिल हो सके। किन्तु इसी पत्र में वेल्सली ने यह भी लिखा :

> **"××× बरार के राजा अथवा पेशवा या निज़ाम से सिंधिया के विरुद्ध एक ऐसी सन्धि का प्रबन्ध करना, जिसमें सिंधिया का नाम आता हो, बुद्धिमत्ता नहीं है। इस बार में पहले बरार के राजा के भाव जानने के लिए जो कुछ आप शुरू में कार्रवाई करें, वह भी बहुत सावधानी से करनी चाहिए। हमें दिखलाना केवल यही चाहिए कि हमें डर टीपू सुलतान से है ; और यद्यपि सन्धि में आम तौर पर 'सन्धि करनेवाली शक्तियों का कोई और शत्रु' ये शब्द भी ले आने चाहिए, फिर भी अभी कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए, जिससे सिंधिया का नाम सामने आ सके ×××।**
>
> **"इसलिए राजा के सामने आपको एक ऐसी सन्धि पेश करनी चाहिए, जिसका वर्तमान और खुला उद्देश्य केवल, टीपू सुलतान के हमला करने की सूरत में, कम्पनी और राजा के एक दूसरे की सहायता करने के वादे को साफ और मजबूत कर लेना हो, किन्तु सन्धि के शब्द ऐसे रखे जाएं कि यदि हस्ताक्षर होने से पहले आवश्यकता पड़ जाए तो सिंधिया का नाम बीच में जोड़ा जा सके।"†**

---

* "The local position of the Raja's territories appears to render him a peculiarly serviceable ally against Daulat Rao Scindhia."—Governor-General's letter to Colebrooke.

† "......it is not prudent to propose to the Raja of Berar, or even to the Peshwa or to Nizam, a treaty of defence nominally against Scindhia. Even the preliminary measures for ascertaining the disposition of the Raja of Berar on this subject, must be taken with the greatest caution. The object of our apprehension should appear to be Tipu Sultan; and although 'any other enemy of

दौलतराव के विरुद्ध भोंसले को फोड़ने के प्रयत्न

वास्तव में, टीपू बरार के राजा या अंगरेज़ों, दोनों में से किसी पर भी हमला करने वाला न था, और न दौलतराव सिंधिया उस समय तक किसी तरह का इरादा अंगरेज़ों के विरुद्ध कर रहा था। स्मरण रखना चाहिए कि 'वज़ीरअली के पत्रों की गप्प' भी इसके बाद की गढ़ी हुई थी। किन्तु अंगरेज़ टीपू और दौलतराव, दोनों के नाश का इरादा कर चुके थे। वेल्सली यह भी जानता था कि नागपुर के राजा भोंसले को निर्दोष दौलतराव के विरुद्ध खुले तौर पर फोड़ सकना इतना आसान नहीं है। ऊपर से अभी तक दौलतराव के साथ भी वेल्सली मित्रता दरशा रहा था। इसलिए वह इस धोखे से दौलतराव के विरुद्ध दूसरों की सहायता को पक्का कर लेना चाहता था।

3 मार्च, सन् 1799 को वेल्सली ने एक 'प्राइवेट' पत्र हैदराबाद के रेज़िडेण्ट कप्तान कर्कपैट्रिक को लिखा, जिसके साथ उसने पमार और कोलब्रुक, दोनों के अपने पत्रों की नक़लें नत्थी कर दी।

कोलब्रुक को नागपुर भेजने का ज़िक्र करते हुए वेल्सली ने कर्कपैट्रिक को लिखा:

"अच्छा यह होगा कि बरार के राजा और कम्पनी के बीच यह सम्बन्ध हैदराबाद दरबार को बीच में लेकर पक्का किया जाए, और अन्त में शायद सिंधिया और टीपू, दोनों के विरुद्ध एक परस्पर सहायता की सन्धि कर ली जाए × × × जब तक मैसूर युद्ध समाप्त न हो, तब तक सिंधिया के साथ लड़ाई छेड़ना ठीक नहीं।"

दौलतराव की सरहद पर अंगरेज़ी सेना का जमाव

वास्तव में, निज़ाम पूरी तरह कम्पनी के हाथों में था। कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति सर एल्यूरेड क्लार्क इस समय कलकत्ते में था। 8 मार्च, सन् 1799 को वेल्सली ने मद्रास से सर एल्यूरेड क्लार्क के नाम एक 'प्राइवेट और गुप्त' पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य ये हैं:

"मैंने जितने प्राइवेट पत्र आपको लिखे हैं, उन सब में × × × मैंने बराबर यह इच्छा प्रकट की है कि (सिंधिया की) उस ओर की सरहद पर खासी सेना रखी जाए, ताकि यदि दौलतराव कभी कोइ चाल चले, तो उसे रोका जा सके।"

\+ ± + ±

"मेरी इच्छा यह है कि आप फ़ौरन फिर से अवध में इतनी सेना जमा कर लें, जितनी × × × यदि सिंधिया हिन्दोस्तान लौट आए, तो उसकी सारी सेना

---

the contracting powers' may be named in general terms, no suggestion should yet be given by which the name of Scindhia could be brought into question......

"A treaty might, therefore, be proposed to the Raja, the immediate and ostensible object of which should be to strengthen and define his defensive engagements against Tipu Sultan, but the terms of which should be such as to admit the insertion of Scindhia's name, if such a measure should become necessary previously to the conclusion of the treaty."—Governor-General's letter to Colebrooke enclosed in the Governor-General's letter to Captain Kirkpatrick, dated 3rd March, 1799.

के मुकाबले के लिए काफ़ी हो। आप इसका भी ध्यान रखें कि बहुत सम्भव है, हमें स्वयं जल्दी ही सिंधिया के राज्य पर हमला करना पड़े।

"बहुत मुमकिन है कि इस सेना के जमा होने से अम्बाजी और सिंधिया को सन्देह हो जाए और वे आपसे इस कारवाई का कारण पूछें। यदि ऐसा हो, तो आप उनसे कह दीजिएगा कि वजीरअली बनारस से भाग गया है और डर है कि वह जमानशाह से मिल जाने का प्रयत्न कर रहा हो, इसलिए उस आपत्ति का मुक़ाबला करने के लिए यह सब किया जा रहा है।"

और आगे चल कर—

सिंधिया के सामन्तों को फोड़ने के प्रयत्न

"यदि लड़ाई शुरू होने लगे × × × तो आप राजपूतों को और सिंधिया के दूसरे सामन्तों को उसके विरुद्ध भड़काने की हर तरह कोशिश कीजिएगा और जयनगर और जोधपुर के राजाओं को इस बात के लिए राजी कर लीजिएगा कि वे पूरे दिल के साथ इस युद्ध में भाग लें; साथ ही बाइयों (माधोजी सिंधिया की विधवा रानियों) और लकवाजी दादा के पक्षवालों को और सिंधिया कुल के उन लोगों और नौकरों को, जो दौलतराव के शासन से बैर रखते हों—इन सब को भड़काने और उनके प्रयत्नों में स्वयं मदद देने के उचित उपाय कीजिएगा।"

अन्त में—

"मुझे यह नीति बिल्कुल ठीक मालूम होती है कि ज्यों ही हमें अपने मतलब का मौक़ा दिखाई दे, हम तुरन्त सिंधिया के बल को नष्ट कर डालें, किन्तु जब तक सिंधिया दक्षिण में है, और हमारी सेनाएं टीपू सुलतान से लड़ रही हैं, तब तक दक्षिण में हमें दिक़ करने का सिंधिया के पास काफ़ी सामान रहेगा; इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जब तक या तो सिंधिया हिन्दोस्तान लौट न जाए और या टीपू सुलतान के साथ सन्धि होकर हमारी हालत ऐसी न हो जाए कि हम अधिक सफलता के साथ सिंधिया की दग़ा के लिए उसे दण्ड दे सकें, तब तक सिंधिया से लड़ाई न छेड़ी जाए।

दौलतराव के नाश की जबरदस्त तैयारी

'दग़ा' सिंधिया की ओर थी अथवा वेल्सली की ओर, यह बात इतिहास के एक-एक पन्ने से साफ़ ज़ाहिर है। किन्तु अब यह भी स्पष्ट था कि वेल्सली सिंधिया के नाश पर कटिबद्ध था, उसके उपाय सोच रहा था, अन्य भारतीय नरेशों को सिंधिया के विरुद्ध भड़का रहा था, सिंधिया राज्य के अन्दर जगह-जगह विद्रोह खड़े करवा रहा था, स्वयं सिंधिया कुल के अन्दर दौलतराव के विरुद्ध गुप्त साज़िशें कर रहा था और ऊपर से साफ़ झूठ बोल कर ऐन मौके तक निर्दोष सिंधिया को धोखे में रखना चाहता था।

सिंधिया का पूना से रवाना होना

दौलतराव ने जब ये सब समाचार सुने और उसे मालूम हुआ कि कम्पनी की सेना मेरी सरहद पर जमा हो रही है, तब उसे विश्वास हो गया कि अंगरेज़ मेरे राज्य पर

हमला करनेवाले हैं। मजबूर होकर अब वह पूना छोड़कर अपने राज्य की रक्षा के लिए उत्तर की ओर चला आया। वेल्सली की एक बहुत बड़ी इच्छा पूरी हो गई। अब उसके लिए टीपू को कुचल डालना और बाजीराव को जाल में फांस सकना, दोनों काम पहले से कहीं आसान हो गए।

मराठों पर झूठे दोष

8 अप्रैल, सन् 1799 को रेज़िडेण्ट पामर ने पूना से वेल्सली को लिखा :

"(सिंधिया के) वकील रूबाह गांवर ने मंशी फ़क़ीरुद्दीन से कहा है × × × कि अब मैंने जाधो नौशार से सिंधिया के दरबार के हालात पूछे, तब नौशार ने मुझसे कहा कि पेशवा और सिंधिया मिल कर निज़ाम पर हमला करने और अन्त में टीपू सुल्तान के साथ सन्धि करने की तजवीज कर रहे हैं।

अब यह देखना होगा कि निज़ाम और अंगरेज़ों के विरुद्ध मराठों की जिस साज़िश की ओर ऊपर के पत्र में संकेत किया गया है, वह कहां तक सच हो सकती थी और दौलतराव सिंधिया या पेशवा दरबार का उसमें कहां तक दोष हो सकता था। इतिहास से साफ़ पता चलता है कि नाना फड़नवीस और दौलतराव सिंधिया उन दिनों टीपू की खासी कद्र करते थे और अंगरेज़ों द्वारा टीपू के सर्वनाश को देश के लिए हितकर न समझते थे। यही कारण है कि अंगरेज़ भी पूना में दौलतराव की उपस्थिति से डरते थे। नाना और दौलतराव जैसे नीतिज्ञ इस बात को भी अच्छी तरह समझ रहे थे कि देशघातक निज़ाम से अंगरेज़ों को कितना लाभ और देश को कितनी हानि पहुंच रही थी। कुर्दला में निज़ाम और मराठों के बीच सन्धि हो चुकी थी। कुर्दला के संग्राम में कम्पनी की सबसीडियरी सेना तक ने निज़ाम को सहायता देने से इनकार कर दिया था। इस पर भी अदूरदर्शी निज़ाम अब फिर अंगरेज़ों के बहकावे में आकर कुर्दला की शर्तों को पूरा करने से इनकार कर रहा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम के यहां से मराठों को चौथ मिला करती थी। कुर्दला में निज़ाम ने नए सिरे से इस चौथ को अदा करते रहने का वादा किया था। किन्तु अब वह फिर मराठों को चौथ देने से इनकार कर रहा था। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों के दोनों युद्धों में अंगरेज़ों को सबसे अधिक सहायता निज़ाम ही से मिली। इस परिस्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि नाना और दौलतराव सिंधिया निज़ाम पर हमला करके अपनी चौथ वसूल करने और कुर्दला की शर्तों पर अमल कराने का विचार कर रहे हों। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं, यदि पेशवा दरबार उस समय टीपू सुलतान के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध तो पैदा करने की फ़िक्र में हों। बहुत सम्भव है कि दौलतराव सिंधिया के सेना सहित पूना में पड़े रहने का एक उद्देश्य यह भी रहा हो कि यदि अंगरेज़ निरपराध टीपू पर हमला करें, तो दौलतराव टीपू की मदद के लिए पहुंच जाए। वेल्सली का बयान है कि टीपू के वकील हट अरसे में बराबर पूना में ठहरे हुए थे और टीपू ने इस काम के लिए 13 लाख रुपये पेशवा दरबार के पास भेजे थे, ताकि पेशवा दरबार टीपू की मदद के लिए सेना तैयार कर सके। यदि ये सब बातें सच भी हों, तो मराठों का अधिक-से-अधिक अपराध यह था कि वे निज़ाम से अपना हक वसूल करने और कम्पनी के अन्याय से टीपू की रक्षा करने का विचार कर रहे थे।

दूसरी ओर, यह भी सम्भव है कि अंगरेज़ रेजिडेण्टों की प्रथा के अनुसार पामर ने केवल दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध वेल्सली के हाथ मज़बूत कर देने के लिए यह तमाम गप्प गढ़ी हो और झूठी गवाहियों से उसे पुष्ट करने का प्रयत्न किया हो। कर्नल पामर ने स्वयं पूर्वोक्त पत्र में वेल्सली को यह भी लिखा कि—"इस खबर की सचाई अथवा विश्वसनीयता के बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।" कर्नल पामर की दी हुई ख़बर सच्ची हो या न हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वेल्सली और पामर की नीयत बुरी थी, नाना और सिंधिया के इरादों में कोई बात न्याय-विरुद्ध न थी और ये दोनों जागरूक मराठा नीतिज्ञ भी कूटनीति में अपने अंगरेज़ विपक्षियों के न पा सके।

पेशवा दरबार के साथ चाल

दौलतराव सिंधिया के पूना से हटते ही अंगरेज़ों ने पेशवा बाजीराव पर इस बात के लिए ज़ोर देना शुरू किया कि तुम कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि कर लो। इस सन्धि की आवश्यकता दर्शाते हुए वेल्सली ने लिखा कि कम्पनी को टीपू के साथ युद्ध छिड़ने की आशंका है, इसलिए अंगरेज़ अपने सब मित्रों की सहायता को पक्का कर लेना चाहते हैं। नाना अभी पूना में मौजूद था। उसकी सलाह से पेशवा बाजीराव ने सबसीडियरी सन्धि स्वीकार करने से इनकार कर दिया। किन्तु वेल्सली ने फिर ज़ोर दिया। इस पर पेशवा दरबार ने बजाय कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि करने के कम्पनी को टीपू के विरुद्ध सैनिक सहायता देने का वादा कर दिया। फ़ौरन परशुराम भाऊ के अधीन एक सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों की मदद के लिए तयार कर दी गई।

इस सेना की तैयारी में पेशवा दरबार ने काफ़ी खर्च किया, पर वेल्सली जानता था कि टीपू पर अंगरेज़ों का हमला न्याय-विरुद्ध है। वेल्सली के दिल में चोर था, वह उस समय के हालात को भी देख रहा था। उसे भीतर से पेशवा दरबार पर विश्वास भी न हो सका। उसने पहले पेशवा को यह लिख दिया कि परशुराम भाऊ की सेना पूना के पास हरदम कूच के लिए तैयार रहे और मौके पर उसे मदद के लिए बुला लिया जाएगा। उधर टीपू और अंगरेज़ों में लड़ाई छिड़ चुकी थी। पेशवा की सेना तैयार थी और बुलाने के इन्तज़ार में रही।

3 अप्रैल, सन् 1799 को वेल्सली ने पामर को लिखा कि कम्पनी और उसके बाकी मददगारों, यानी निज़ाम, कर्नाटक आदि, की सेनाएं टीपू सुलतान को परास्त करने के लिए काफ़ी हैं और पेशवा की सेना अब न बुलाई जाएगी। पेशवा दरबार का सारा खर्च और परिश्रम व्यर्थ गया। वेल्सली के इस इन्कार का कारण ग्राण्ट डफ़ ने इस प्रकार बयान किया है:

> **"टीपू के साथ अंगरेज़ों की लड़ाई छिड़ जाने के बाद, बावजूद ब्रिटिश रेजिडेण्ट के बार बार एतराज़ करने के, टीपू के वकीलों को खुले पूना दरबार में आने दिया गया। 19 मार्च को कर्नल पामर को बाज़ाब्ता सूचना दी गई कि उन वकीलों को दरबार से अलग कर दिया गया है; किन्तु उसके बाद भी ये वकील पूना से केवल 25 मील नीचे एक गांव, कड़वी, में ठहरे रहे थे। X X X ब्रिटिश रेजिडेण्ट को यह भी मालूम हुआ कि बाजीराव को टीपू से 13 लाख रुपये मिले हैं**

सिंधिया की भी इसमें सलाह थी, किन्तू नाना फड़नवीस को उस समय इसका हाल मालूम न था×××।"

ग्राण्ट डफ़ के कहने का मतलब यह है कि पेशवा दरबार ने ऊपर से अंगरेजों की मदद करने का वादा कर लिया था और भीतर से वह टीपू से मिला हुआ था। सम्भव है कि नाना फड़नवीस और दौलतराव सिंधिया की नीति इस तरह की रही थी। कोई आश्चर्य नहीं कि मराठे अपने कूटनीति के गुरू अंगरेज़ों से इस समय तक सब चालें सीख गए हों। निस्सन्देह, वेलसली और पामर-जैसों के साथ इस तरह की चाल चलना उस समय मराठों के लिए इतना अधिक लज्जाजनक न था, जितना निरपराध टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद देना। तिस पर भी हम ऊपर लिख चुके हैं कि मराठों के समस्त इतिहास में एक भी घटना एसी नहीं मिलती, जब कि उन्होंने अंगरेज़ों के साथ अपना वचन भंग किया हो। 3 अप्रैल, सन् 1799 के जिस पत्र में वेल्सली ने पामर को लिखा कि पेशवा की सेना अब न बुलाई जाएगी, उसमें इन 13 लाख रुपयों का कहीं ज़िक्र नहीं और न टीपू के साथ पेशवा की साज़िश का कहीं जिक्र है। इस के अतिरिक्त, वेलसली को मराठों और टीपू की साज़िश का पता सबसे पहले रेज़िडेण्ट पामर के उस पत्र से लगा, जो 8 अप्रैल, सन् 1799 को पूना से रवाना हुआ और वेल्सली का वह पत्र, जिसमें उसने पेशवा की मदद लेने से इनकार किया, इससे पांच दिन पहले यानी 3 अप्रैल, सन् 1799 को मद्रास से चल चुका था।

वेलसली ने अपने लम्बे पत्र में पेशवा की सहायता से इनकार करने के दो कारण बताए हैं। एक यह कि पेशवा ने अपनी सेना के लिए आवश्यक खर्च और सामान देने में कुछ देर की। यह एक गलत और व्यर्थ की बात थी। दूसरे यह कि पेशवा ने टीपू सुलतान के वकीलों को पूना में रहने दिया। इस दूसरे एतराज़ के जवाब में नाना ने पामर को याद दिलाया कि पहले मैसूर युद्ध के समय भी, जिसमें मराठा सेना ने अंगरेज़ों को ज़बरदस्त और कारगर मदद दी थी, टीपू के वकील बरार-पूना में रहते रहे थे, और हिन्दोस्तान के नरेशों में यह एक साधारण रिवाज था। बल्कि इस बार वेलसली के कहने पर पेशवा ने टीपू के वक़ीलों को पूना से अलग भी कर दिया था। फिर भी, वेलसली को विश्वास न हो रहा था, और न हो सकता था। ग्राण्ट डफ़ का यह कहना भी कि सिंधिया और पेशवा ने मिल कर कोई ऐसी बात की हो, जिसका नाना को पता न हो, बुद्धिसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त, वेलसली यह भी जानता था कि यदि वह मराठा सेना को बुला लेता और वह सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दे जाती, तो टीपू से जो इलाक़ा लिया जाता, उसका एक भाग मराठों को देना पड़ता, जिससे मराठों का बल बढ़ जाता। वेलसली इसे किसी तरह सहन न कर सकता था। इसके विपरीत, वह मराठों के सर्वनाश की तदबीरें सोच रहा था। सिंधिया की सेना पूना से हट चुकी थी, टीपू को कुचलने के लिए निज़ाम, कर्नाटक इत्यादि की सेनाएं काफ़ी थीं; इसीलिए वेलसली ने पेशवा दरबार को अन्त समय तक झूठी आशा में लटकाए रखा और अंत में, अपनी स्थिति को काफ़ी मजबूत देख कर, पेशवा की सहायता लेने से इनकार कर दिया।

दूसरी ओर, यदि नाना और पेशवा दरबार की नीयत कुछ और भी रही हो, तो दो बातें स्पष्ट हैं। एक यह कि सत्य और न्याय की दृष्टि से वेल्सली की अपेक्षा टीपू और मराठों का पल्ला कहीं भारी था। दूसरे यह कि पेशवा दरबार अपनी नीति के अनुसार काम करने में अत्यन्त ढीला रहा। यदि उनका इरादा टीपू की मदद करना था, तो केवल वेल्सली के बुलाने के इन्तजार में परशुराम भाऊ की सेना को पूना में रोके रखना एक घातक भूल थी।

पेशवा दरबार को झूठा लोभ देना

किन्तु अभी तक न श्रीरंगपट्टन का पतन हुआ था और न टीपू अंगरेज़ों के काबू में आया था। अभी तक परशुराम भाऊ की सेना से अंगरेज़ों को नुकसान पहुंच जाने की सम्भावना थी। इसलिए 3 अप्रैल ही के पत्र में वेल्सली ने एक और चाल चली। उसने पामर को लिखा :

> **"××× मैं इसमें न चूकूंगा कि टीपू सुलतान से जो कुछ इलाक़े ले लिए जाएंगे, उनमें कम्पनी के अन्य मददगारों के साथ-साथ पेशवा को भी बराबर का हिस्सा दिया जाएगा। मैं आपको अधिकार देता हूं कि आप अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में पेशवा और नाना, दोनों को इस बात की सूचना दे दें ××× मुझे विश्वास है कि इससे कम-से-कम अपने दोनों मित्रों (निज़ाम और पेशवा) की ओर ब्रिटिश सरकार का निस्स्वार्थ प्रेम साबित हो जाएगा।"**

यह "निस्स्वार्थ प्रेम" का प्रदर्शन और उसके साथ यह वादा अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया गया। उसके साथ कोई किसी तरह की शर्त न थी। किन्तु इस वादे का उद्देश्य भी पेशवा दरबार को केवल झूठी आशाओं में फंसाए रखना ही था।

श्रीरंगपट्टन के पतन का समाचार पाने से पहले पेशवा ने फिर एक बार वेल्सली को लिखा कि पेशवा दरबार की सेना को मदद के लिए बुला लिया जाए, किन्तु व्यर्थ।

श्रीरंगपट्टन विजय के बाद मराठों की ओर वेल्सली का रुख

4 मई को श्रीरंगपट्टन का पतन हुआ। उसी दिन टीपू की मृत्यु हुई। मैसूर राज्य अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। 23 मई, सन् 1799 को वेल्सली ने पूना के रेज़िडेण्ट के नाम एक और पत्र भेजा, जिसमें उसने एकदम अपना रुख बदल दिया और लिखा :

> **"जो इलाका हमने जीता है, उसका कोई हिस्सा पेशवा को देने से पहले मैं उस प्रबन्ध (अर्थात् सबसीडियरी सन्धि) को पूरा करने का प्रयत्न करना चाहता हूं, जो कि मैंने 8 जुलाई, सन् 1798 की हिदायतों में आपको लिख भेजा है। और मैं आपसे बहुत जल्दी यह जानना चाहता हूं कि यदि इस समय की स्थिति में वे सब प्रस्ताव फिर से पूना दरबार के सामने पेश किए जाएं, तो पूना दरबार को मंजूर होंगे या नहीं।"**

इसका सीधा मतलब यह कि अब काम निकल चुका था। पेशवा के साथ वादा पूरा करने के लिए अब यह शर्त रखी गई कि पहले पेशवा निज़ाम की तरह अपनी सारी सेना बरखास्त कर दे और उसकी जगह कम्पनी की सेना अपने खर्च पर अपनी राजधानी के अन्दर रखना स्वीकार कर ले।

अंगरेज़ों को निकालने के नाना के अन्तिम प्रयत्न

नाना फड़नवीस अंगरेज़ों को खूब पहचानता था। बीस साल पहले दिल्ली सम्राट के नाम अपने पत्र में वह कह चुका था कि—"इन टोपीवालों का व्यवहार बेईमानी और चालबाज़ी का है"। इन बीस सालों के अन्दर उसका यह विश्वास और भी पक्का हो चुका था। किन्तु शायद नाना को भी यह आशा न थी कि वेल्सली इस तरह अपने वादे से फिर जाएगा।

बीस साल पहले नाना ने दिल्ली के मुगल सम्राट की छत्र-छाया में भारत के समस्त स्वाधीन नरेशों को इन विदेशियों के विरुद्ध मिला लेने का प्रयत्न किया था, और उस समय के अंगरेज़ गवर्नर-जनरल को मराठों के साथ नाना की बताई हुई शर्तों पर सन्धि करनी पड़ी थी। किन्तु इन बीस सालों के अन्दर हिन्दोस्तान की हालत और गिर चुकी थी। निज़ाम इस समय पूरी तरह अंगरेज़ों के हाथों में था। नाना के उस समय के सब से जबरदस्त साथी और अंगरेज़ों के कट्टर शत्रु हैदरअली और उसके वीर पुत्र टीपू सुलतान, दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। जो विशाल राज्य हैदरअली ने अपने बाहुबल से विजय किया था, वह अब विदेशियों के हाथों में था। फिर भी, नाना ने हिम्मत न हारी। उसने कम्पनी के साथ सब-सीडियरी सन्धि करने से फिर साफ़ इनकार कर दिया और वेल्सली पर ज़ोर दिया कि जो इलाका अंगरेज़ों ने टीपू से विजय किया है, उसका एक भाग वेल्सली के वादे के अनुसार पेशवा दरबार को दिया जाए। इसके अलावा, मुगल सम्राट की आज्ञा के अनुसार पेशवा दरबार को सूरत के नवाब, हैदराबाद के निज़ाम और मैसूर दरबार, तीनों से सालाना चौथ मिला करती थी। जब तक ये इलाके अंगरेज़ों के असर में न आए थे, तब तक मराठों को यह चौथ बराबर मिलती रही। अब सूरत और मैसूर, दोनों कम्पनी के हाथों में थे और निज़ाम कम्पनी का एक क़ैदी था। इसलिए नाना ने पेशवा दरबार की ओर से इन तीनों राज्यों की चौथ वेल्सली से तलब की और आइन्दा के लिए इसका फ़ैसला कराना चाहा। किन्तु नाना ने देख लिया कि वेल्सली इनमें से कोई भी बात पूरी करने को तैयार न था। इसके विपरित, वह अब और ज़ोरों के साथ समस्त मराठा सत्ता को नष्ट करने के उपायों में लगा हुआ था। मजबूर होकर नाना ने फिर एक बार परशुराम भाऊ की नई सेना को केन्द्र बना कर उसके साथ समस्त मराठा नरेशों और सरदारों को निज़ाम और अंगरेज़ों, दोनों के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार किया।

मराठा जागीरदारों में फूट

किन्तु दुर्भाग्य से इस बार भी नाना को सफलता न मिल सकी। ठीक उस मोके पर, जब कि परशुराम भाऊ की सेना निज़ाम और अंगरेज़ों, दोनों से फ़ैसला कर लेने के लिए तैयार हुई, अचानक पेशवा के अनेक दक्षिणी जागीरदारों ने पेशवा के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया।

टीपू से युद्ध छेड़ते समय वेल्सली ने टीपू के सामन्तों और सरदारों को अपनी ओर मिलाने के लिए पांच अंगरेज़ों का एक कमीशन नियुक्त किया था। श्रीरंगपट्टन के पतन के बाद इन पांच में से तीन, यानी कर्नल आर्थर वेल्सली, कर्नल बेरी क्लोज और कप्तान मैलकम का एक नया कमीशन नियुक्त हुआ, जिसका ज़ाहिरा

उद्देश्य था, मैसूर राज्य का नया बन्दोबस्त करना, किन्तु जिसका असली काम था, टीपू के रहे-सहे अनुयायियों को डरा कर अथवा लोभ देकर वश में करना । मैसूर की सरहद पेशवा राज्य की दक्षिणी सरहद से मिली हुई थी। मराठों की ओर वेल्सली के खुले इरादों को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं, यदि पेशवा के दक्षिणी जागीरदारों के अचानक विद्रोह में, जो ठीक उस समय हुआ, जिस समय कि यह कमीशन सरहद पर अपना काम कर रहा था, इस कमीशन का हाथ रहा हो।

नाना की मृत्यु

नाना फड़नवीस को अंगरेज़ों पर अथवा निज़ाम पर हमला करने से पहले अपने दक्षिणी इलाक़े की ओर ध्यान देना पड़ा । परशुराम भाऊ की सेना इन विद्रोही जागीर-दारों को काबू में करने के लिए भेजी गई। किन्तु अभी दक्षिण के ये विद्रोही पूरी तरह शान्त भी न हो पाए थे कि 13 फरवरी, सन् 1800 ई० को नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई।

पूना दरबार में नाना फड़नवीस ही एक जागरूक और दूरदर्शी नीतिज्ञ था, जो अंगरेज़ों की चालों को थोड़ा-बहुत समझता था। निस्सन्देह, उसने अपने जीवन भर मराठा मण्डल के बल को बनाए रखने और भारत की स्वाधीनता की रक्षा करने के अनेक प्रयत्न किए । किन्तु उसके रास्ते में कई रुकावटें थीं। एक तो वह स्वयं न पेशवा था और न सेनापति। दूसरे, मराठा मण्डल के अन्दर आए दिन के परस्पर झगड़ों और अंगरेज़ रेज़िडण्टों की साज़िशों ने उसे कामयाब न होने दिया। नाना की मृत्यु के साथ-साथ मराठा मण्डल के पुनरुज्जीवन की रही-सही आशा समाप्त हो गई और अंगरेज़ों का मार्ग भारत के अन्दर कहीं अधिक सरल हो गया ।

बाजीराव को फांसने की चेष्टा

ऊपर आ चुका है कि पेशवा बाजीराव स्वयं निर्बल और अदूरदर्शी था। जब तक दौलतराव सिंधिया और नाना फड़नवीस-जैसे प्रौढ़ नीतिज्ञों का पूना के दरबार में प्रभाव रहा, तब तक अंगरेज़ बाजीराव को अपने जाल में न फंसा सके । बाजीराव को नाना और दौलतराव सिंधिया से लड़ाने के भी अंगरेज़ों ने अनेक प्रयत्न किए । अब, जब कि नाना मर चुका था और सिंधिया उत्तर में था, बाजीराव को फांसने की वेल्सली ने फिर चेष्टा की। किन्तु दौलतराव सिंधिया की अनुपस्थिति में भी दौलतराव का प्रभाव पूना के अन्दर बहुत काफ़ी था। 20 अगस्त, सन् 1800 को कर्नल वेल्सली ने मेजर मनरो (सर टामस मनरो) के नाम एक पत्र में लिखा कि—"पूना में सिंधिया का प्रभाव इतना ज़बरदस्त है कि हमारी चाल नहीं चल सकती"। इसलिए वेल्सली की मुख्यतम चाल इस समय यह थी कि दौलतराव के विरुद्ध बाजीराव के खूब कान भरे जाएं और किसी तरह बाजीराव को पूना से भगाकर एक बार अंगरेज़ी इलाके में लाया जाए और वहां उससे सबसीडियरी सन्धि पर दस्तखत करा लिए जाएं ।

श्रीरंगपट्टन के पतन के बाद टीपू के एक सरदार मलिक जहान खां ने, जिसका दूसरा नाम धूंडाजी बाघ या धूंडिया बाघ भी था, कुछ सेना जमा करके मैसूर के इलाके में इधर-उधर घूम कर अंगरेज़ों को दिक़ करना शुरू कर दिया था। कर्नल वेल्सली के अधीन एक काफ़ी बड़ी सेना मलिक जहान खां का दमन करने के लिए भेजी गई । किन्तु बाद में मालूम हुआ कि इस सेना को भेजने का गुप्त उद्देश्य कुछ और भी था।

पेशवा के साथ छल

मैसूर की सरहद मराठों की सरहद से मिली हुई थी। गवर्नर-जनरल वेल्सली ने मित्रता के नाते पेशवा बाजीराव से प्रार्थना की कि इस सेना को, जो धूंडिया के नाश के लिए निकली थी जहां-जहां जरूरत हो, पेशवा राज्य से होकर आने-जाने की इजाजत दे दी जाए। बाजीराव ने सबसे पहली गलती यह की कि इतने महत्वपूर्ण मामले में बिना दौलतराव सिंधियां से सलाह किए वेल्सली की प्रार्थना स्वीकार कर ली । कर्नल वेल्सली ने अब सैनिक आवश्यकता के बहाने नीचे से पेशवा के राज्य में घुस कर अनेक मौके के स्थानों पर चुपके से कब्जा कर लिया। धीरे-धीरे साबित हो गया कि इस सेना का गुप्त उद्देश्य पूना पर अचानक चढ़ाई करके ठीक उसी तरह पेशवा को फंसाना था, जिस तरह कुछ वर्ष पहले मद्रास से एक सेना हैदराबाद भेज कर निजाम को फांसा गया था । वेल्सली इस समय तक कलकत्ते लौट आया था । वहां से 23 अगस्त, सन् 1800 को उसने मद्रास के गवर्नर लार्ड क्लाइव, जो प्रसिद्ध क्लाइव का बेटा था, के नाम एक पत्र में लिखा :

"××× सम्भव है कि कर्नल वेल्सली की अधिकांश सेना, निज़ाम की सेना और बम्बई से एक सेना, तीनों को मिलकर हाल में पूना पर चढ़ाई करनी पड़े । इसलिए कर्नल वेल्सली इस बीच जहाँ कहीं आए-जाए, सदा इस सम्भावना को अपनी नज़र के सामने रखे ।

"××× उचित यह है कि कर्नल वेल्सली मराठा इलाक़े पर अपना कब्जा बनाए रखे, ××× नीचे लिखी दोनों बातों में से कोई-सी एक हो सकती है---पहली यह कि बाजीराव पूना छोड़कर भाग आए, और दूसरी यह कि दौलतराव सिंधिया बाजीराव को रोके रख । इन दोनों सूरतों में, यदि कर्नल वेल्सली ने अभी से मराठा सरहद के अन्दर अपने आपको पक्की तरह जमाए रखा, तो उसे पूना पर चढ़ाई करने में आसानी होगी ।

"इसलिए आप फ़ौरन कर्नल वेल्सली को सूचना दे दें कि अंगरेज़ी सेना को आज्ञा दी जाती है और अधिकार दिया जाता है कि ज्यों ही उसे बाजीराव के भाग जाने या क़ैद कर लिए जाने की पक्की खबर मिल जाए, फ़ौरन ××× अंगरेज़ी सेना पेशवा का नाम लेकर और पेशवा की ओर से कृष्णा नदी के किनारे तक सारे देश पर क़ब्जा कर ले । उस सीमा के अन्दर जिन-जिन क़िलों या मज़बूत स्थानों को कर्नल वेल्सली अंगरेज़ी सेना के हाथों में रखना उचित समझे, उन पर भी पेशवा के नाम से क़ब्जा जमा लिया जाए ।

" ××× कर्नल वेल्सली को सावधानी रखनी होगी कि देश के रहने वालों को यह तसल्ली देता रहे कि इन कार्रवाइयों से ब्रिटिश सरकार का एकमात्र उद्देश्य यह है कि पेशवा को फिर से उसके न्यायोचित अधिकार दिलवा दिए जाएं।"*

* "......it may become necessary for a large proportion of the troops under the command of Colonel Wellesley to proceed (in concert with those of the Nizam and with a detachment from Bombay) towards Poona. The intermediate motions of Colonel Wellesley must be guided with a view to this probable contigency.

इस पत्र-व्यवहार से जाहिर है कि वेलसली का इस समय मुख्य उद्देश्य यह था कि बाजीराव को किसी तरह दौलतराव सिंधिया से फोड़ कर और उसे पूना से भगा कर उससे सबसीडियरी सन्धि पर दस्तखत करा लिए जाएं। इसी पत्र से यह भी जाहिर है कि जो सेना कर्नल वेलसली के अधीन धूंडिया बाघ को वश में करने के बहाने भेजी गई थी, उसका मुख्य उद्देश्य पूना पर चढ़ाई करना था।

कर्नल पामर ने पूना में बहुतेरी कोशिश की कि बाजीराव या तो पूना छोड़ कर भाग जाए या अंगरेज़ी सेना को स्वयं पूना बुला ले। दौलतराव सिंधिया से उसे लड़ाने की भी तरह-तरह से कोशिश की गई। किन्तु अभी तक सिंधिया का प्रभाव काफ़ी था। पामर की न चल सकी और दोनों वेलसली भाइयों को फिर निराश होना पड़ा। जाहिर हो गया कि बिना युद्ध के मराठों से निपटारा न हो सकता था।

फिर भी, बाजीराव की ग़लती के कारण दो ज़बरदस्त लाभ अंगरेज़ों को पहुंचे। एक यह कि उन्हें धूंडिया को पकड़ कर मार डालने का मौका मिल गया, और दूसरे यह कि इस बहाने भावी मराठा युद्ध के लिए उन्हें पूना से नीचे के मार्गों, नदियों क़िलों और रास्तों का पूरा-पूरा पता चल गया। कर्नल वेलसली ने इसी समय के अनुभवों से अपने देशबन्धुओं की जानकारी के लिए एक पुस्तिका लिखी, जिसमें सैनिक दृष्टि से उस इलाके का पूरा वर्णन दिया। इस पुस्तिका का पहला वाक्य यह है : "आशा है कि हमें जल्दी ही मराठों से युद्ध करना पड़े, इसलिए उसके उपाय जान लेना उचित है ××× ।"

मराठों को तजुरबा था कि लगभग 25 साल पहले राघोबा के पूना से भागने का नतीजा कितना बुरा हुआ था, इसलिए इस बार दौलतराव सिंधिया ने इस बात की पूरी सावधानी की कि बाजीराव अपने पिता की ग़लती करने न पाए।

सबसीडियरी सन्धि के लिए पेशवा पर जोर

वेलसली कर्नल पामर की मारफत बाजीराव पर सबसीडियरी सन्धि के लिए बराबर ज़ोर देता रहा। होते-होते बाजीराव किसी तरह राज़ी भी हो गया। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि बाजीराव ने स्थायी तौर पर कम्पनी की छः पैदल पलटन सेनाओं का और, उसी के अनुसार तोपखाने का खर्च देना स्वीकार कर लिया। इतना

"......it is advisable that Colonel Wellesley should continue to occupy the Maratha territory......In either of two possible events,......first the flight of Baji Rao from Poona, second, the seizure of His Highness' person by Daulat Rao Scindhia, in either of these cases Colonel Wellesley's secure establishment within the Maratha frontier, would facilitate his advance towards Poona......

"I, therefore, request your Lordship to inform Colonel Wellesley, without delay that on his receiving authentic and unquestionable intelligence either of the flight or imprisonment of Baji Rao......the British army is directed and authorized to take immediate possession, in the name, and on behalf, of the Peshwa, of all the country as far as the bank of the Krishna. Colonel Wellesley will also summon, in the name of the Peshwa, such forts and strong palaces within the limits described as it shall be judged expedient for the British troops to occupy......

"......Colonel Wellesley......will take care to satisfy the inhabitants of the country that the British Government entertain no other view in them than the restoration of the Peshwa's lawful authority."—Marques Wellesley's letter to Lord Clive, dated 23rd August, 1800.

26—220 M. of I&B/ND/80

ही वेल्सली चाहता था । इस खर्च के लिए बाजीराव ने उत्तर में हिन्दोस्तान में 25 लाख रुपये सालाना का इलाका भी अलग कर देने का वादा किया। अब वेल्सली की मांग और बाजीराव के कहने में केवल अन्तर इतना रह गया कि वेल्सली चाहता था कि यह सेना पेशवा के इलाक़े में रहा करे और बाजीराव कहता था कि सेना सदा कम्पनी के इलाक़े में रखी जाए और केवल उस समय पेशवा के इलाक़े में आए, जब पेशवा को उसकी ज़रूरत हो । बाजीराव इस पर डट गया। जिस पत्र में पामर ने गवर्नर-जनरल को बाजीराव के इस प्रस्ताव की सूचना दी, उसी में पामर ने लिखा—"मुझे डर है कि जब तक असन्दिग्ध नाश सामने खड़ा दिखाई न देगा, तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राजी न होगा।"* इतिहास-लेखक मिल ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में दिखाया है कि किस तरह अंगरेज़ पेशवा की इसमें भलाई दिखा कर इस समय उसकी स्वाधीनता पूरी तरह हर लेने के प्रयत्न कर रहे थे और यही प्रयत्न दूसरे मराठा राज्यों में भी जारी थे, यानी दूसरे मराठा नरेशों को भी इसी तरह की सबसीडियरी सन्धियों में फंसाने के प्रयत्न किए जा रहे थे।

बाजीराव के वेल्सली की पूरी बात न मानने का कारण स्पष्ट था। निज़ाम की मिसाल उसकी आंखों के सामने थी। वह जानता था कि निज़ाम को अंगरेज़ों की दोस्ती के मूल्य में सन् 1798 में अपने राज का एक भाग कम्पनी को दे देना पड़ा था। सन् 1800 में, सन् 1798 की सन्धि को तोड़ कर निज़ाम का और अधिक, और पहले से कहीं बड़ा, इलाक़ा उससे ले लिया गया। टीपू के साथ दोनों युद्धों में, अर्थात् सन् 1792 में और सन् 1799 में, निज़ाम ने धन और सेना, दोनों से अंगरेज़ों को मदद दी। विजित इलाक़े में से निज़ाम को एक हिस्सा दिया गया। किन्तु दोस्ती के बदले में फिर वह तमाम इलाका निज़ाम से छीन लिया गया। नतीजा यह हुआ कि सन् 1790 में निज़ाम के पास जितना इलाक़ा था, सन् 1800 में उससे कहीं कम रह गया। इसके अतिरिक्त, निजाम की स्वाधीनता का इस अरसे में अन्त हो गया और क्रियात्मक दृष्टि से वह कम्पनी के हाथों का केवल एक कैदी बन कर रह गया। ये सब बातें बाजीराव को मालूम थीं और यही कारण था कि वह कम्पनी की दोस्ती आधे दिल से स्वीकार कर रहा था और कम्पनी की सबसीडियरी सेना को अपने राज से बाहर रखना चाहता था।

रेज़िडेण्ट के नाम वेल्सली का 'गुप्त' पत्र

मालूम होता है, वेल्सली भी बाजीराव की बात मान लेने के लिए कुछ-कुछ राज़ी था और अधिक के लिए प्रयत्न भी कर रहा था। इस बीच पामर को पूना दरबार से हटा कर कर्नल क्लोज़ को उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त किया गया । यह वही कर्नल क्लोज़ था, जो कमीशन के एक मेम्बर की हैसियत से टीपू के आदमियों को अपनी ओर फ़ोड़ने में काफ़ी तजरबा हासिल कर चुका था और उसके बाद कुछ दिन नए मैसूर राज्य में रेज़िडेण्ट का काम भी कर चुका था। 23 जून, सन् 1802 को वेल्सली के सेक्रेटरी एडमंस्टन ने कर्नल क्लोज़ के नाम एक 'गुप्त' पत्र में लिखा :

* "I apprehend, that nothing short of imminent and certain destruction will induce him (the Peshwa) to make concession......etc."—Colonel Palmer's letter to Governor-General.

"एक ब्रिटिश सेना का खर्च बरदाश्त करने की तजवीज के साथ पेशवा ने जो शर्तें लगा दी हैं, उन्हें यदि हम मान लें, तो भी इस तजवीज द्वारा तुरन्त एक दरजे तक पेशवा अवश्य अंगरेजों की ताक़त के अधीन हो जाएगा।××× जब कोई राज किसी अंश में एक बार दूसरे की शक्ति के अधीन हो जाता है, तो फिर स्वभावतः उसकी पराधीनता बढ़ती जाती है। जब वह एक बार किसी विदेशी ताक़त की मदद के सहारे अपने तईं सुरक्षित समझने लगता है, तब फिर उसकी सावधानी और जागरूकता में ढीलापन आने लगता है। जिस तरह की सन्धि का प्रस्ताव किया जा रहा है, उसका एक परिणाम यह भी होगा कि पूना का दरबार मराठा साम्राज्य के दूसरे सदस्यों से फूट जाएगा, जिससे ब्रिटिश सत्ता के ऊपर पेशवा की पराधीनता और भी अधिक वेग के साथ बढ़ती जाएगी।"

और आगे चलकर इस पत्र में लिखा है :

"यदि हमने पेशवा के साथ इस तरह की सन्धि कर ली, तो फिर समस्त मराठा राज्यों के आपस में मिल जाने की सम्भावना जाती रहेगी, ××× मराठा साम्राज्य की किसी एक शाखा के साथ इस तरह का पृथक् सम्बन्ध क़ायम कर लेने से न केवल हमारी स्थिति ही अधिक मजबूत हो जाएगी, बल्कि इससे धीरे-धीरे एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो जाएगी, जिससे मजबूर होकर उस साम्राज्य के अन्तर्गत दूसरे राज्यों को भी हमारे साथ इसी तरह की सन्धि स्वीकार करनी पड़ेगी।"*

वेल्सली का दूसरा 'गुप्त' पत्र

एक दूसरे पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने लिखा है कि यदि एक भी मराठा नरेश ने कम्पनी के साथ इस तरह की संधि स्वीकार कर ली, तो परिणाम यह होगा कि— "तमाम मराठा रियासतें अंगरेज़ सरकार के अधीन हो जाएंगी ; जो इस संधि को स्वीकार

---

* "The measure of subsidizing a British force, even under the limitations which the Peshwa has annexed to that proposal, must immediately place him in some degree in a state of dependence upon the British power......*The dependence of a state of any degree upon the power of another naturally tends to increase.* A sense of security, derived from the support of a foreign power, produces a relaxation of vigilanee and caution. Augmenting the dependence of the Peshwa on the British Power under operation of the proposed engagements, would be accelerated by the effect which those engagements would produce of detaching the state of Poona from the other members of the Maratha Empire."

"The conclusion of such engagements with the Peshwa would preclude the practicability of general confederacy among the Maratha states......This separate connection with one of the Branches of the Maratha Empire would not only contribute to our security, but would tend to produce a crisis of affairs which may compel the remaining states of the Empire to accede to the alliance."—Secret letter, dated 23rd June, 1802, from N. B. Edmonstone, Secretary to Government, to Lt. Colonel Close, Resident at Poona.

कर लेंगी, वे संधि द्वारा हमारे अधीन हो जाएंगी और जो स्वीकार न करेंगी, वे संधि से वंचित रहने के कारण हमारे अधीन हो जाएंगी ।"*

ऊपर के 'गुप्त' पत्रों की भाषा निष्कपट है और उनसे देशी रियासतों की ओर अंगरेज़ों की नीयत साफ़ ज़ाहिर है । सबसीडियरी संधियों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि हिंदोस्तान के राज्यों की स्वाधीनता छीन कर उन्हें एक-दूसरे से फोड़ कर विदेशी सत्ता का आश्रित बना लिया जाए । फिर भी, जिन नरेशों के साथ ये संधियां की जाती थीं, उन्हें बड़े विस्तार के साथ बताया जाता था कि ये सब निस्स्वार्थ प्रयत्न केवल तुम्हारे कल्याण के लिए किए जा रहे हैं ।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि वेल्सली का लक्ष्य इस समय मराठों के समस्त बल को तोड़ना था । इसीलिए वह इस कोशिश में था कि पहले किसी भी एक मराठा नरेश के साथ सबसीडियरी संधि कर ली जाए । इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी अच्छी तरह दिखलाया है कि किस तरह वेल्सली "एक-एक कर तमाम मराठा रियासतों की स्वाधीनता हर लेने की आशा करता था ।"

दक्षिण में कर्नल क्लोज़ बाजीराव को समझा-बुझा रहा था और उत्तर में कर्नल कालिंस दौलतराव सिंधिया को सबसीडियरी संधि के जाल में फांसने की कोशिश कर रहा था ।

दौलतराव की दूरदर्शिता

किंतु दौलतराव काफ़ी समझदार और दूरदर्शी था । कालिन्स के अनेक तरह समझाने-बुझाने पर भी उसने न केवल स्वयं वेल्सली और कालिन्स की चालों में आने से इनकार किया, वरन् इस बात पर भी ज़ोर दिया कि मराठा मंडल के सदस्य की हैसियत से पेशवा के मामलों में दखल देने का भी मुझे अधिकार है । उसने इस बात की पूरी कोशिश की कि पेशवा भी इस नई संधि की चाल में न आने पाए । वेल्सली की अपनी असफलता की सूचना देते हुए कालिन्स ने लिखा :

> **"सिंधिया और अंगरेज़ सरकार के बीच इस समय जो मित्रता क़ायम है, उसे बनाए रखने के लिए सिंधिया उत्सुक है । साथ ही, आपको यह सूचित कर देना मैं अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूं कि मुझे पक्का विश्वास है कि इस सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए वह कतई राज़ी नहीं हो सकता ।"†**

---

* "Every one of the Maratha states would become dependent upon the English Government; those who accepted the alliance, by the alliance; those who did not accept it, by being deprived of it."—Marques Wellesley as quoted by Mill, vol. vi, p. 271.

† "Scindhia was anxiously desirous to preserve the relations of friendship at that time subsisting between him and the English Government. At the same time, I consider it my indispensable duty to apprise your Excellency that I am firmly persuaded he feels no inclination whatever to improve these relations."—Resident Collins' letter to the Governor-General, Mill, vol. vi, p. 272.

इतिहास लेखक मिल ने कर्नल कालिन्स के इन वाक्यों का भाषान्तर इस प्रकार किया है—

> **"दूसरे शब्दों में सिंधिया अभी तक इतना न गिर पाया था कि स्वयं जान-बूझ कर उस स्थिति में चला आता, जिसमें वेल्सली की 'सैनिक सहायता सन्धि और परस्पर अहम पैमान' की प्रणाली में एक बार शामिल होकर वह अवश्य पहुंच जाता ।"***

कालिन्स ने अब वेल्सली पर ज़ोर दिया कि पहले पेशवा ही को वश में करने का प्रयत्न किया जाए। उधर कर्नल क्लोज़ वेल्सली को लिख चुका था कि—"जब तक असंदिग्ध नाश सामने खड़ा हुआ दिखाई न देगा, तब तक बाजीराव इससे अधिक के लिए राज़ी न होगा।" इसलिए अब किसी-न-किसी प्रकार 'असंदिग्ध नाश' बाजीराव के सामने खड़ा कर देना आवश्यक था ।

उधर दौलतराव सिंधिया को भी इस बात की चिंता थी कि बाजीराव कहीं अंगरेज़ों की चालों में न आ जाए। वह इतना समझता था कि पेशवा के सबसीडियरी संधि स्वीकार करने का परिणाम मराठा मंडल के लिए घातक होगा। इस बीच वह फिर एक बार मौक़ा पाकर पूना लौट आया। वेल्सली और उसके साथियों को अब एक और नया तथा अधिक प्रबल कुचक्र रचना पड़ा ।

जसवन्तराव का अंगरेज़ों से मिल कर दौलतराव पर हमला

ऊपर आ चुका है कि जसवंतराव होलकर इस समय नागपुर के और विट्ठोजी होलकर कोल्हापुर में था। वेल्सली ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ा। अंगरेज़ दूत कोलब्रुक बरार के राजा को सिंधिया के विरुद्ध फोड़ने के लिए नागपुर पहुंच चुका था। कोलब्रुक को अबतक काफ़ी सफलता प्राप्त हो चुकी थी। इधर दौलतराव सिंधिया के राजदूत सामंतों और माधोजी सिंधिया की विधवाओं को अपनी ओर करने में भी वेल्सली को चुप-चाप बहुत अंशों में सफलता मिल चुकी थी। अंगरेज़ों ने अब जसवंतराव होलकर को दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध तैयार किया। अंगरेज़ों की मदद से जसवंतराव ने नागपुर से भाग कर, सेना जमा करके सिंधिया के राज पर हमला कर दिया और सिंधिया के इलाके को लूटना और बरबाद करना शुरु किया ।

होलकर और सिंधिया की आपसी लड़ाई

दौलतराव को इस अचानक हमले का समाचार सुनते ही फिर पूना छोड़ कर मालवा की ओर लौट आना पड़ा। किन्तु इस बार वह अपनी विशाल सेना में से पांच पलटन पैदल और दस हज़ार सवार पूना छोड़ आया; शेष सेना लेकर वह मालवा पहुंचा, कई स्थानों पर होलकर और सिंधिया की सेनाओं में संग्राम हुए, जिनमें विजय कभी एक ओर रही और कभी दूसरी ओर। दौलतराव ने जसवंतराव के साथ सुलह करनी चाही। जसवंतराव एक बार राज़ी भी हो गया। किन्तु जसवंतराव इस समय विदेशियों के हाथों का केवल एक शस्त्र था। एक बार राज़ी होकर उसने फिर सिंधिया के साथ विश्वासघात किया ।

---

* "In other words, he (Scindhia) was not yet brought so low, as willingly to descend into that situation in which a participation in the 'system of defensive alliance and mutual guarantee' would of necessity place him."—Mill, vol. vi, p. 272.

दौलतराव की अनुपस्थिति में पूना में उपद्रव

उधर सिंधिया के दक्षिण से चलते ही पूना में फिर उपद्रव खड़े हो गए। विट्ठोजी होलकर ने कोल्हापुर में पेशवा के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। पेशवा की सेना ने विद्रोही विट्ठोजी को गिरफ्तार करके खत्म कर दिया। जसवंतराय होलकर विट्ठोजी की मृत्यु का बदला लेने के बहाने अपनी सेना सहित मालवा से पूना की ओर बढ़ा। पेशवा और सिंधिया दोनों अंगरेज़ कंपनी के दोस्त थे। फिर भी मार्क्विस वेल्सली के पत्रों से साफ़ ज़ाहिर है कि अंग्रेज़ इस समय इन दोनों के ख़िलाफ जसवंतराव को मदद दे रहे थे। कर्नल वेल्सली के अधीन अंगरेज़ी सेना भी पूना के पास तक आ पहुंची थी। इस हालत में जसवंतराव को बढ़ते देख कर 11 अक्तूबर, सन् 1802 को पेशवा बाजीराव ने घबराकर वेल्सली की सारी शर्तें स्वीकार कर लीं। उसने रेज़िडेंट को लिख भेजा कि कम्पनी की जिस सबसीडियरी सेना का खर्च देना मैंने स्वीकार कर लिया है, उसके स्थायी तौर पर रहने के लिए मैं अपने राज के अंदर तुंगभद्रा नदी के पास एक क़िला दे दूंगा और उसके खर्च के लिए भी गुजरात अथवा करनाटक में 25 लाख रु० सालाना आमदनी का इलाक़ा अलग कर दूंगा। वेल्सली की इच्छा अब सोलहों आने पूरी हो गई। बाजीराव का पत्र पाते ही उसने उस तजवीज़ पर अपने दस्तखत कर दिए। इतने ही में होलकर की सेना पूना तक पहुंच गई।

पूना का संग्राम

25 अक्तूबर, सन् 1802 को पूना में ज़बरदस्त संग्राम हुआ। मालूम होता है कि दौलतराव स्वयं इस संग्राम में न पहुंच सका। किंतु पूना से चलते समय वह अपनी सेना के पांच पलटन पैदल और दस हज़ार सवार पूना में छोड़ गया था। होलकर की सेना एक ओर, और पेशवा और सिंधिया की सेना दूसरी ओर। सिंधिया की सेनाएं अभ्यस्त और शिक्षित थीं। उनके मुकाबले में होलकर की सेनाएं अनभ्यस्त थीं। एक बार मालूम होता था कि विजय पेशवा की ओर रहेगी। किन्तु ऐन मौके पर सिंधिया की सेना का यूरोपियन सेनापति कप्तान फाइलास, निस्सन्देह वेल्सली के इशारे पर, अपने मालिक के साथ दगा करके होलकर से जा मिला और सिंधिया और पेशवा की संयुक्त सेनाओं को हार खानी पड़ी।

होलकर और पेशवा में मेल की आशा

अदूरदर्शी बाजीराव को अंत समय तक आशा थी कि अंगरेज़ी सेना, जिसे अपने खर्च पर अपने राज में रखना तक वह स्वीकार कर चुका था और जो इस समय पूना पहुंच चुकी थी, विद्रोही होलकर के विरुद्ध मेरी मदद करेगी। किन्तु अंगरेज होलकर ही की मदद करते रहे और होलकर और बाजीराव, दोनों को अपने हाथों में खिला कर और दोनों को एक-दूसरे से लड़ा कर अपना काम निकालते रहे। गवर्नर-जनरल वेल्सली और रेज़िडेंट क्लोज़ की इच्छा अब पूरी हो गई। 'असन्दिग्ध नाश' अब पराजित पेशवा की आंखों के सामने दिखाई देने लगा।

इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि इस समय एक बार बाजीराव ने इस बात की भी इच्छा प्रकट की कि बाजीराव और जसवंतराव में सुलह हो जाए। मिल यह भी

स्पष्ट लिखता है कि जसवंतराव होलकर भी इस के लिए तैयार था। वह बाजीराव से मिलना चाहता था, और चाहता था कि बाजीराव पेशवा बना रहे और पेशवा के साथ मेरा संबंध वैसा ही रहे, जैसा सिंधिया और मराठा मंडल के अन्य सदस्यों का।* ग्रांट डफ़ लिखता है कि बाजीराव के पूना से चले जाने के बाद भी जसवंतराव ने फिर एक बार उसे पूना बुला लेने का प्रयत्न किया।

बाजीराव का पूना छोड़ना

किन्तु बाजीराव और जसवंतराव में मेल कम्पनी के लिए हितकर न था। गवर्नर-जनरल वेल्सली के पत्रों में साफ़ लिखा है कि वेल्सली को उस समय मुख्य चिंता किसी तरह बाजीराव को पूना से भगा कर अपने चंगुल में कर लेने की थी। असहाय बाजीराव जसवंतराव से हार खाते ही अंगरेज़ रेज़िडेंट की सलाह से पूना से भाग कर सिंहगढ़, सिंहगढ़ से रायगढ़, रायगढ़ से म्हाड़ और फिर स्वर्णदुर्ग इत्यादि होता हुआ, कम्पनी के एक जहाज़ में बैठकर, जो ख़ास तौर पर इस काम के लिए भेजा गया था, 16 दिसंबर, सन् 1802 को बसई पहुंच गया।

24 दिसंबर, सन् 1802 को वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र में लिखा :

> **"मराठा साम्राज्य के अन्दर हाल में जो झगड़े खड़े हो गए हैं, उनसे एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है, जो ब्रिटिश सत्ता के स्थायित्व के लिए अत्यन्त महत्व की है।——मालूम होता है कि देश के इस भाग में अंगरेज़ क़ौम के हितों को ठोस और चिरस्थायी नीवों पर उन्नति देने का इस संयोग से बढ़कर लाभदायक अवसर पहले कभी न आया था।"**

और आगे चलकर——

> **"ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को पूरी तरह पक्का कर लेने का इससे बढ़कर मौक़ा मुझे कोई नज़र न आ सकता था × × ×।"†**

होलकर का अमृतराव को पेशवा बनाना

अंगरेज़ अब इस सफ़ाई के साथ जसवंतराव होलकर और पेशवा बाजीराव, दोनों को एक साथ खिला रहे थे कि एक ओर से बाजीराव को अपने साथ भगा कर बसई ले गए और दूसरी ओर रेज़िडेंट क्लोज़ विजयी होलकर के साथ पूना में रहा।

---

*Mill, vol. vi, Chapter ii.

† "The recent distractions in the Marhatta Empire have occasioned a combination of the utmost importance to the stability of the British Power......a conjuncture of affairs which appeared to present the utmost advantageous opportunity that has ever occurred, of improving the British interests in that quarter on solid and durable foundations......

"This crisis of affairs appeared to me to afford the most favourable opportunity for the complete establishment of the interests of the British Empire, ..."—Lord Wellesley to the Court of Directors, dated 24th December, 1802.

राघोबा के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा बाजीराव था। इन दोनों के अतिरिक्त राघोबा ने एक तीसरे बालक अमृतराव को गोद ले रखा था। जसवंतराव होलकर को जब बाजीराव के साथ सुलह करने में सफलता न मिल सकी, तब मजबूर होकर उसने और उसके सलाहकारों ने बाजीराव के पूना से भाग जाने का अर्थ पदत्याग लिया और उसकी जगह अमृतराव को पेशवा की गद्दी पर बैठा दिया। यह काम रेज़िडेण्ट क्लोज़ की मौजदगी में और उसकी राय से किया गया।

बसई में पेशवा का सबसीडियरी सन्धि स्वीकार करना

दूसरी ओर बंबई में अंगरेज़ों ने बाजीराव से यह वादा किया कि तुम्हें फिर से पूना ले जाकर पेशवा की गद्दी पर बैठा दिया जाएगा। 31 दिसंबर, सन् 1802 को बाजीराव से एक नए संधिपत्र पर दस्तखत करा लिए गए। इस संधि द्वारा बाजीराव ने सबसीडियरी सेना का जुआ अपने कंधे पर रख लिया, सबसीडियरी सेना को राज में रहने की ईजाज़त दे दी, उसके खर्च के लिए अपना एक इलाका कम्पनी के नाम कर दिया, आइंदा के लिए वादा किया कि बिना अंगरेज़ों की सलाह के पेशवा दरबार किसी दूसरे भारतीय नरेश के साथ किसी तरह का संबंध स्थापित न करेगा, और अन्य अनेक ऐसी शर्तें स्वीकार कर लीं, जिन्हें पूना में रहते हुए वह कभी स्वीकार न करता। पेशवा बाजीराव अब सर्वथा अंगरेज़ों की इच्छा के अधीन हो गया। लगभग पचास वर्ष से अंगरेज़ नीतिज्ञ मराठा मंडल को फोड़ने के लिए अनेक जोड़-तोड़ लगा रहे थे। लगातार चार वर्ष से गवर्नर जनरल वेल्सली इन्हीं प्रयत्नों में लगा हुआ था। अब वेल्सली के प्रयत्न सफल हुए और जिस बात को रोकने का दौलतराव सिंधिया अपनी शक्ति भर प्रयत्न करता रहा था वह अंत में हो गई।

बसई की सन्धि में बाजीराव की विवशता

जिस तरह विवश होकर पेशवा बाजीराव ने बसई की संधि पर दस्तखत किए, उसके विषय में एक अंगरेज़ लेखक लिखता है :

> **"××× बाजीराव जानता था कि विदेशियों के साथ इस सन्धि को स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि मेरी राजनैतिक स्वाधीनता का सर्वथा अन्त हो जाएगा। यह बात सदा उसकी आंखों के सामने रहती थी, या उसके आसपास के लोग उसे सुनाते रहते थे कि टीपू का अन्त क्या हुआ, और कम्पनी की सबसीडियरी सेना को अपने राज में रखने के कारण निज़ाम की दशा कितनी दीन और पराधीन हो गई ; इससे हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि बाजीराव ने अपनी इच्छा के विरुद्ध, विवश होकर बसई की सन्धि को स्वीकार किया।"***

---

* "......accepting the terms of a foreign alliance, which he was aware would lead to a total annihilation of his political independence. The fate of Tipu and the state of humiliating dependence to which the Nizam had been reduced by the acceptance of our subsidiary force were always present to his imagination or sounded in his ears by those who were near him, and we may conclude that it was not without great reluctance that he consented to the treaty of Bassein."—*Origin of the Pindaries, etc.*, by an Officer in the service of the Honourable East India Company, 1818.

बसई की संधि से पूरे मराठा मंडल की सत्ता और स्वाधीनता, दोनों समाप्त हो गईं, और 'अंगरेजों तथा राघोबा के परस्पर संबंध के कारण' राघोबा के अदूरदर्शी और निर्बल पुत्र के पेशवा की गद्दी पर बैठाए जाने से नाना फड़नवीस ने जो आशंकाएं बरसों पहले प्रकट की थीं, वे सच्ची साबित हुईं ।

इक्कीसवां अध्याय

बाजीराव का पुनराभिषेक

बसई की सन्धि से मराठा मण्डल में क्षोभ

बसई की संधि भारत के अंदर अंगरेज़ी साम्राज्य के संस्थापन में एक विशेष सीमा-चिह्न थी। इस संधि की खबर पाते ही सिंधिया और दूसरे स्वाधीन मराठा नरेशों का परेशान होना स्वाभाविक था। पूना में अब कोई समझदार नीतिज्ञ इस बात के पक्ष में न था कि निर्बल बाजीराव बसई की संधि अपने ऊपर लादे हुए पूना वापस आए और विदेशी संगीनों के बल पर फिर पेशवा की गद्दी पर बैठे।

किन्तु कम्पनी का काम जसवंतराव होलकर और अमृतराव, दोनों से निकल चुका था। मिल लिखता है :

> **"इस समय ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का ध्यान दो महान उद्देश्यों की ओर था। पहला यह कि बाजीराव को फिर से पेशवा बनाया जाए, और उसे सत्ता के उस शिखर तक पहुंचा दिया जाए, जो नाम मात्र को उसके, किन्तु वास्तव में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के हाथों में रहे, और जिस पर से अंगरेज बाक़ी सब मराठा राज्यों को भी अपने वश में रख सके। दूसरा यह कि इस घटना से लाभ उठा कर दूसरे अधिक शक्तिशाली मराठा नरेशों पर भी इसी तरह की सन्धियां लाद दी जाएं।"***

बहुत संभव है कि यदि होलकर ने पूना की विजय के बाद फ़ौरन बाजीराव का पीछा करके उसे गिरफ़्तार कर लिया होता, या यदि बाजीराव ही बजाय बम्बई की ओर भागने के सिंधिया के पास चला गया होता, तो कम-से-कम कुछ समय के लिए मराठों का साम्राज्य इस देश में और जीवित रह गया होता। किन्तु बाजीराव और होलकर, दोनों अंगरेज़ों के हाथों में खेल रहे थे।

बाजीराव को पूना लाने में गवर्नर-जनरल ने जान-बूझ कर कुछ देर की। इसके दो कारण थे। पहला कारण, मिल के अनुसार, यह था कि बावजूद 31 दिसंबर की संधि के वेल्सली बराबर इस बात के लिए प्रयत्न कर रहा था कि बाजीराव को दबा कर, जहां तक हो सके, कम्पनी के लिए और अधिक रियायतें उससे प्राप्त कर ली जाएं और दूसरे वेल्सली समझता था कि बाजीराव को फिर से पेशवा बनाने के बाद ही सिंधिया और मराठा मंडल के दूसरे सदस्यों के साथ अंगरेज़ों को युद्ध करना पड़ेगा, और बाजीराव को पूना लाने से पहले वह इस युद्ध की पूरी तैयारी कर लेना चाहता था।

---

* Two grand objects now solicited the attention of the British Government. The first was the restoration of the Peshwa, and his elevation to that height of power, which, nominally his, actually that of the British Government, might suffice to control the rest of the Marhatta states. The next was, to improve this event for imposing a similar treaty upon others of the more powerful Marhatta princes; ......"—Mill, vol. vi, Chap. 2, p. 278.

इसी बीच, जसवन्तराव और पेशवा अमृतराव में कुछ अनबन पैदा करवा दी गई ताकि जसवन्तराव के पैर पूना में मजबूती से जमने न पाएं। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ लिखता है कि शुरु में जसवन्तराव का व्यवहार अत्यन्त विनम्र था, किन्तु बाद में उसे पूना-निवासियों से जैसे-तैसे धन वसूल करना पड़ा। पूना-निवासियों की इस लूट के समय कर्नल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ मौजुद था।

इस सबके बाद, केवल बाजीराव को पूना लाने और उसके साथ-साथ कम्पनी की सबसीडियरी सेना को पूना में क़ायम करने का काम बाक़ी था। कर्नल क्लोज़ अब चुपके से पूना छोड़ कर बाजीराव से जा मिला।

पूना पर चढ़ाई की योजना

दक्षिण में एक विशाल सेना पूना पर चढ़ाई करने और वहां की स्थिति ठीक करने के लिए जमा की गई। इस काम के लिए कम्पनी को अपनी किसी पृथक सेना की आवश्यकता न थी। मैसूर और हैदराबाद, दोनों राज्यों के खर्च पर कम्पनी की बड़ी-बड़ी सबसीडियरी सेनाएं मौजुद थीं। इनके अलावा, तिरुवांकुर, कर्नाटक इत्यादि की सेनाएं भी थीं।

मैसूर इत्यादि की सेनाओं ने कर्नल वेलसली के अधीन, और निज़ाम की सेनाओं ने कर्नल स्टीवेन्सन के अधीन पूना की ओर कूच किया। कर्नल आर्थर वेल्सली के अधीन 11 हज़ार और कर्नल स्टीवेंसन के अधीन 7 हज़ार सैनिक थे। कर्नल आर्थर वेल्सली इन दोनों सेनाओं का प्रधान सेनापति था। इस सेना का मुख्य कार्य दक्षिण के जागीरदारों और सरदारों को डरा कर अथवा लोभ देकर उन्हें बाजीराव के पक्ष में करना और पहले से पूना पहुंच कर वहां इस तरह के हालात पैदा कर देना था, जिनसे बाद में बाजीराव को जाकर आसानी से गद्दी पर बैठाया जा सके। ये दक्षिण के वही जागीरदार थे, जिन्हें कुछ ही दिन पहले अंगरेज़ों ने बाज़ीराव के विरुद्ध भड़का कर उनसे विद्रोह करवाया था। मैसूर की सेनाओं के साथ कम्पनी की वह नई सेना भी थी, जो बसई की संधि के अनुसार पेशवा के राज्य के अंदर बतौर सबसीडियरी सेना के रखी जानेवाली थी।

अंगरेज़ी सेना का पूना के लिए प्रस्थान

शुरु मार्च, 1803 में यह सेना हरिहर नामक स्थान पर आकर जमा हो गई। मार्क्विस वेल्सली स्वयं पूना के पास आ पहुंचा। वेल्सली के पत्रों में लिखा है कि यहां तक मामला बढ़ जाने के बाद भी वेल्सली इस बात के लिए तैयार था कि यदि पूना में कोई मनुष्य बसई की संधि से अधिक लाभदायक संधि कम्पनी के साथ कर लेने को राजी हो, तो वेल्सली उस समय भी बाजीराव को फिर अलग कर दे। किन्तु उस समय की परिस्थिति में उसे बाजीराव से बढ़कर उपयोगी यंत्र मराठा साम्राज्य के अंदर मिल सकना कठिन था। बाजीराव के एक पुराने सेनापति बापूजी गणेश गोखले ने, जो दक्षिणी सरहद पर नियुक्त था, वेल्सली से मिल कर, दक्षिण के जागीरदारों को वश में करने में अंगरेज़ों को काफ़ी मदद दी। कर्नल वेल्सली के पत्रों में गोखले और अंगरेज़ों की साजिश का ज़िक्र आता है। उधर बाजीराव अंगरेज़ों की एक-एक बात मान चुका था और बसई में बैठा अधीर हो रहा था।

9 मार्च, 1803 को कर्नल वेल्सली की विशाल सेना ने हरिहर से प्रस्थान किया और 12 मार्च को तुंगभद्रा नदी पार की। धूंडिया बाघ का पीछा करने के बहाने कर्नल वेल्सली ने इस सारे प्रदेश का जो अनुभव प्राप्त कर लिया था, वह इस अवसर पर उसके बहुत काम आया। भयभीत अथवा धनक्रीत जागीरदारों ने उसका किसी तरह का मुक़ाबला नहीं किया।

जसवन्तराव का पूना-त्याग

पूना के अंदर जसवंतराव और अमृतराव में झगड़ा हो ही चुका था। जसवंतराव बराबर अभी तक अंगरेज़ों के हाथों में था और अब ठीक मौक़े पर असहाय अमृतराव को पूना में छोड़कर वह स्वयं अपनी सेना सहित इंदौर की ओर चल दिया। अमृतराव के पास उस समय केवल 1,500 सिपाही थे। मार्ग में जसवंतराव ने न केवल पेशवा के इलाक़े में लूट-खसोट ही की, वरन् कम्पनी के परम मित्र निज़ाम के राज्य में घुस कर निज़ाम के कुछ इलाके और खास कर औरंगाबाद के नगर को भी लूटा। निज़ाम ने अंगरेज़ों से इसकी शिकायत की, किन्तु कर्नल वेल्सली के एक पत्र से प्रकट है कि औरंगाबाद की लूट में स्वयं वेल्सली का साफ़ इशारा था। कर्नल वेल्सली की विशाल सेना के पूना पहुंचने से पहले रेज़िडेंट क्लोज़ ने यह अफ़वाह उड़ा दी थी कि अमृतराव पूना के नगर को आग लगा देना चाहता है। उस समय के इतिहास से पूरी तरह साबित है कि यह अफ़वाह बिलकुल झूठी थी और केवल अमृतराव को बदनाम करने के लिए गढ़ी गई थी। 20 अप्रैल, सन् 1803 को कर्नल वेल्सली ने अपनी सेना सहित पूना में प्रवेश किया। अमृतराव नगर छोड़ कर भाग गया। कहा गया कि कर्नल वेल्सली की सेना के ऐन मौक़े पर पहुंच जाने के कारण पूना का नगर जलने से बच गया (!)।

युद्ध की स्थिति पर वेल्सली का पत्र

21 अप्रैल को कर्नल वेल्सली ने अपने भाई गवर्नर-जनरल वेल्सली को पूना से पत्र लिखा कि—"आम तौर पर स्थिति अच्छी दिखाई देती है। मैं समझता हूं, अन्त में, जो आप चाहते हैं, वही होगा। जिन सरदारों के हमारे विरूद्ध मिल जाने की बाबत हम इतना कुछ सुन चुके हैं × × × उन्होंने हमें रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया × × × मिल कर हम पर हमला करना तो दूर रहा, अभी तक वे अपने आपस के झगड़े भी तय नहीं कर पाए × × ×।" *

निस्सन्देह, वेल्सली इन 'आपस के झगड़ों' को पैदा करा देने में चिर अभ्यस्त था।

बाजीराव का पुनराभिषेक

बाजीराव को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए अब पूना में सारी तैयारी हो चुकी थी। 27 अप्रैल, 1803 को गवर्नर-जनरल की आज्ञा पाकर, कर्नल मरे के अधीन

* "Matters in general have a good appearance. I think they will end as you wish. The combined chiefs of whom we have heard so much......have taken no one step to impede our march......they have not yet made peace among themselves, much less they have agreed to attack, or in any particular plan of attack."—Colonel Wellesley's letter to the Governor-General, dated 25th April, 1803.

कम्पनी के लगभग 2,300 सैनिक, जिनमें आधे हिन्दोस्तानी और आधे अंगरेज़ थे, और कर्नल क्लोज़, सबको साथ लेकर बाजीराव ने बसई से कूच किया, और 13 मई को पूना में प्रवेश कर उसी दिन अपने विदेशी मित्रों की सहायता से फिर एक बार पेशवा की गद्दी पर बैठ कर अपने मुख्य-मुख्य नौकरों और सरदारों से नजरें लीं। अंगरेज़ कम्पनी ने जो कुछ खर्च बाजीराव के लिए किया था, उसके ऐवज़ में पेशवा के राज्य का कुछ और इलाक़ा इस समय कम्पनी को मिल गया और कम्पनी की सबसीडियरी सेना मराठा साम्राज्य की राजधानी पूना में क़ायम हो गई।

गवर्नर-जनरल और उसके साथियों की इच्छा पूरी हुई। किंतु महाराष्ट्र भर में अथवा पूना में बहुत कम लोग ऐसे थे, जिन्होंने इस कार्रवाई में वास्तविक उत्साह अनुभव किया हो, अथवा उसे मराठा साम्राज्य के लिए अपमानजनक और भविष्य के लिए अशुभ सूचक न समझा हो।

पेशवा बाजीराव के पुनराभिषेक के संबंध में इतिहास-लेखक मिल लिखता है :

"× × × शायद मानव प्रकृति के साथ इससे घोर पाप दूसरा कोई नहीं किया जा सकता कि विदेशी सेनाओं के बल, और विदेशी शासकों की खुशी या उनके फ़ायदे के लिए, किसी क़ौम के ऊपर जबरदस्ती एक ऐसी गवरनमेण्ट लाद दी जाए, जिसमें इस तरह के आदमी हों, या जो इस तरह के सिद्धान्तों पर क़ायम हो, जिन्हें वह जाति अपने अनुभव से बुरा समझ कर त्याग चुकी है, या जिन्हें वह इसलिए पसन्द नहीं करती कि उसे उनसे अच्छे मनुष्यों या उनसे अच्छे सिद्धान्तों का अनुभव हो चुका है या उनकी आशा है।"*

24 दिसंबर, सन् 1802 को वेलसली इंगलिस्तान के शासकों को लिख चुका था :

"जिस तरह की सैनिक संधियां मैं मराठा नरेशों के साथ करना चाहता हूं, वे भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह मजबूत कर लेने के लिए और भारत की भावी शान्ति के लिए आवश्यक हैं।"†

इस पर मिल लिखता है :

"किन्तु भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य को पूरी तरह मजबूत कर सकना और भावी शान्ति की स्थापना कर सकना—दोनों उस समय तक असम्भव थे, जब तक कि मराठा ताक़त के मुंह में काफ़ी लगाम न दे दी जाए।"‡

---

* "......the most flagitious perhaps of all the crimes which can be committed against human nature, the imposing upon a nation, by force of foreign armies and for the pleasure or interest of foreign rulers, a Government, composed of men, and involving principle, which the people for whom it is destined have either rejected from experience of their *badness*, or repel from their experience or expectation of better."—Mill, vol. vi, Chapter 2, pp. 286, 287.

† "In his address to the home authorities, dated the 24th of December, 1802, he declared his conviction, that 'those defensive engagements which he was desirous of concluding with the Marhatta states, were essential to the complete consolidation of the British Empire in India and to the future tranquillity of Hindostan.'"—Mill, vol. vi, Chapter 2, pp. 286, 287.

‡ "Yet the complete consolidation of the British Empire in India, and the future tranquillity of Hindostan,......could never exist till a sufficient bridle was put in the mouth of the Marhatta Power."—*Ibid.*

क्लाइव के समय से लेकर अनेक मिसालें इस बात की मिलती हैं, जिनमें कम्पनी ने केवल अपने स्वार्थ के लिए, न्याय-अन्याय अथवा प्रजा के नफ़े नुक़सान या उसकी इच्छाओं की खाक परवाह न करते हुए, एक अयोग्य, अनधिकारी या दुराचारी आदमी को अपनी चालों या संगीनों के बल पर किसी रियासत की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया।

बाइसवां अध्याय

दूसरे मराठा युद्ध का प्रारम्भ

बाजीराव की असहाय स्थिति

पेशवा बाजीराव अब अपनी राजधानी के अन्दर अंगरेज़ी सेना के हाथों में उसी तरह क़ैदी था, जिस तरह हैदराबाद का निज़ाम या लखनऊ का नवाब वज़ीर ।*

किन्तु बाजीराव भी अपनी और मराठा साम्राज्य की स्थिति पर बसई की संधि के प्रभाव को थोड़ा-बहुत समझता था । इससे पहले यदि समय-समय पर उसने सबसीडियरी संधि के लिए अपनी रज़ामंदी प्रकट की थी या यदि बसई की संधी पर दस्तखत किए थे, तो केवल घिर कर । बसई पहुंचते ही वह अपनी असहाय स्थिति को अनुभव करने लगा था । पेशवा के अतिरिक्त मराठा मंडल के चार मुख्य स्तंभों में से गायकवाड़ पहले मराठा युद्ध के समय से ही मंडल से टूट चुका था । होलकर कुल में फूट पड़ी हुई थी । अंगरेज़ कभी काशीराव को जसवंतराव से और कभी जसवंतराव को काशीराव से लड़ा रहे थे । केवल दो बलवान मराठा नरेश और बाक़ी थे––सिंधिया और भोंसले । बाजीराव ने अपनी असहाय स्थिति को अनुभव कर, बसई से बरार के राजा और दौलतराव सिंधिया, दोनों के पास अपने गुप्त दूत भेजे । उनसे यह प्रार्थना की कि आप मुझे फिर से पूना की गद्दी पर बैठने में मदद दीजिए और साथ ही यह इच्छा प्रकट की कि किसी तरह इन दोनों की मदद से दौलतराव सिंधिया, जसवंतराव होलकर और बाजीराव, तीनों के आपसी झगड़े तय हो जाएं और इन तीनों के प्रयत्नों से मराठा साम्राज्य में फिर से ऐक्य, बल और जीवन नज़र आने लगे ।

मराठा मण्डल की स्थिति

मराठा मंडल के पांचों मुख्य सदस्यों में आरंभ से यह परस्पर प्रतिज्ञाएं हो चुकी थीं कि आपत्ति के समय वे सदा एक-दूसरे की मदद करेंगे और बिना पांचों में सलाह हुए किसी दूसरी शक्ति के साथ किसी तरह की संधि या समझौता न करेंगे । विशेष कर दौलतराव सिंधिया और पेशवा बाजीराव, इन दो में अत्यंत घनिष्ठ संबंध रह चुका था । बाजीराव के लिए यह आवश्यक था कि वह सिंधिया और भोंसले, दोनों से सलाह किए बिना बसई की संधि पर हस्ताक्षर न करता । पहले मराठा युद्ध के बाद सालबाई में अंगरेज़ों और पेशवा दरबार के बीच जो संधि हुई थी, वह दौलतराव सिंधिया के पूर्वाधिकारी माधोजी सिंधिया की ही मध्यस्थता में हुई थी । उस संधि के अनुसार, आवश्यक था कि बसई में पेशवा के साथ एक नई और इतनी विकट संधि करने से पहले अंगरेज़ और

* "The present Peshwa......is himself so completely under our dominion that he pays a subsidy to maintain the three thousand troops which surround his capital and keep him a prisoner."—*Journal of a Residence in India,* by Maria Graham, 1813, pp. 84, 85.

पेशवा, दोनों दौलतराव से सलाह कर लेते। इतना ही नहीं, बसई की संधि के पक्का होने के लिए उस पर सिंधिया और भोंसले, दोनों के हस्ताक्षर कतई ज़रुरी थे। बाजीराव सब समझता था, किन्तु अपनी अदूरदर्शिता के कारण पूना छोड़ने के समय से ही वह पूरी तरह दूसरों के वश में था।

बसई की सन्धि से मराठा मण्डल को आशंका

उधर दौलतराव सिंधिया और बरार का राजा, दोनों इस बात को समझते थे कि पेशवा का इस तरह विदेशियों के फंदे में फंस जाना भविष्य में दूसरे मराठा नरेशों की स्वाधीनता के लिए शुभसूचक नहीं हो सकता, और न इसके बाद मराठा साम्राज्य ही अधिक देर तक क़ायम रह सकता है।

गवर्नर-जनरल और दूसरे अंगरेज़ों के पत्रों से साबित है कि मराठा नरेशों की ये आशंकाएं बिलकुल सच्ची थीं। वेल्सली की कौंसिल के प्रमुख सदस्य बारलो ने, जिसके विषय में इंगलिस्तान के डाइरेक्टर यह आज्ञा दे चुके थे यदि वेल्सली की मृत्यु इत्यादि के कारण अकस्मात् गवर्नर-जनरल का पद खाली हो, तो बारलो को तुरन्त गवर्नर-जनरल बना दिया जाए, 12 जुलाई, 1803 को एक लंबा पत्र लिख कर गवर्नर-जनरल के सामने पेश किया, जिसमें ये स्पष्ट वाक्य आते हैं :

> **"××× हिन्दोस्तान के अन्दर कोई भी देशी राज ऐसा बाक़ी नहीं रहने देना चाहिए, जो या तो अंगरेज़ों की ताक़त के सहारे क़ायम न हो, और या जिसका समस्त राजनैतिक कारोबार पूरी तरह अंगरेज़ों के हाथों में न हो। वास्तव में, मराठा साम्राज्य के प्रधान यानी पेशवा को अंगरेज़ी सत्ता के बल फिर से गद्दी पर बैठाने के कारण हिन्दोस्तान की बाक़ी सब रियासतें भी अंगरेज़ सरकार के अधीन हो गई हैं। यदि पेशवा के साथ हमारी सन्धि क़ायम रही, तो उसका स्वाभाविक और आवश्यक नतीजा यह होगा कि धीरे धीरे सिंधिया ××× और बरार का राजा, दोनों पहले पेशवा के आश्रित हो जाएंगे, और फिर नई सन्धि के कारण (पेशवा द्वारा) अंगरेज़ों की सत्ता के अधीन हो जाएंगे। यदि वे लोग बसई की सन्धि में सहमत हो जाते, तब भी नतीजा उनके लिए यही होता ×××।***

सिंधिया और भोंसले के विरुद्ध युद्ध की तैयारी

वेल्सली जानता था कि बसई की संधि को पक्का करने के लिए उस पर सिंधिया और भोंसले, दोनों की रज़ामंदी ज़रुरी है। वह यह भी जानता था कि यदि बसई की

---

* "......No native state should be left to exist in India which is not upheld by the British Power, or the political conduct of which is not under its absolute control. The restoration of the head of the Maratha Empire to his Government through the influence of the British Power, in fact, has placed all the remaining states of India in this dependent relation to the British Government. If the alliance with the Peshwa is maintained, its natural and necessary operations would in the course of time reduce Scindhia......and the Raja of Berar, to a state of dependence upon the Peshwa, and consequently upon the British Power, even if they had acquiesced in the treaty of Bassein."—Sir George Barlow's Memorandum to the Governor-General, dated 12th July, 1803.

सन्धि की सब शर्तें मराठा नरेशों को ठीक-ठीक मालूम हो गईं, तो कम-से-कम सिंधिया की उन पर स्वीकृति मिलना असंभव है । बसई की संधि की कुल 19 धाराएं थीं, जिनमें विशेष कर तीसरी और सतरहवीं धाराओं पर सिंधिया-जैसे समझदार नरेशों को एतराज़ होना ज़रूरी था । तीसरी धारा वह थी, जिसके अनुसार पेशवा ने अपने राज में कम्पनी की सबसीडियरी सेना रखना स्वीकार कर लिया । सतरहवीं धारा यह थी कि भविष्य में पेशवा बिना कम्पनी सरकार से सलाह किए न किसी दूसरे नरेश के साथ किसी तरह का पत्र-व्यवहार कर सकता है, और न किसी से कोई संबंध रख सकता है । निस्संदेह इस धारा का स्पष्ट अभिप्राय मराठा मंडल को तोड़ देना था, और सिंधिया तथा भोंसले इसके लिए किसी तरह राज़ी न हो सकते थे । वेल्सली इन सब बातों को अच्छी तरह समझता था । उसने इसके दो उपाय किए । एक तो उसने सिंधिया और भोंसले, दोनों को धोखा देकर, बिना उन्हें बसई की संधि की नक़ल दिए, उन्हें ज़बानी यह बहका कर कि बसई की संधि का प्रभाव पेशवा के साथ सिंधिया और भोंसले के संबंध पर बिल्कुल न पड़ेगा, उस संधि पर उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाही, और दूसरे उसने मराठा सत्ता का सर्वनाश करने के लिए तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद के बराबर-बराबर फ़ौजें जमा करना और युद्ध की तैयारी करना शुरू कर दिया। निस्संदेह, सिंधिया और भोसलें, दोनों के ज़रखेज इलाक़ों पर वेल्सली के बहुत दिनों से दांत थे और अब वह अपनी इच्छा को पूरा कर लेना चाहता था ।

19 अप्रैल को गवर्नर-जनरल वेल्सली ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम पर एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा है—"सिंधिया ने बाजीराव के फिर से पेशवा बनाए जाने को स्वीकार कर लिया है, किन्तु बसई की संधि के बारे में उसने कर्नल कालिन्स से स्पष्ट कह दिया है कि जब तक संधि की सब शर्तें और स्वयं बाजीराव के विचार मुझे ठीक-ठीक मालूम न होंगे, मैं उस संधि के लिए अपनी अनुमति न दूंगा । बरार के राजा राघोजी भोंसले ने भी बसई संधि पर अपनी अनुमति देना स्वीकार नहीं किया ।"

अंगरेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ लार्ड लेक का परिचय

इंगलिस्तान के शासक भी इस समय भारत में अपना राज बढ़ाने के लिए बेचैन थे। इस काम में गवर्नर-जनरल वेल्सली की सहायता के लिए जनरल लेक को कम्पनी की सेनाओं का कमांडर-इन-चीफ़ नियुक्त करके भारत भेजा गया । दूसरे मराठा युद्ध के साथ जनरल लेक का इतना घनिष्ठ संबंध है कि आगे बढ़ने से पहले उसके चरित्र पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है ।

भारत की अंगरेज़ी सेनाओं का कमांडर-इन-चीफ़ नियुक्त होने से पहले जनरल लेक आयरलैंड में ब्रिटिश कमांडर-इन-चीफ़ रह चुका था । लेक ही की सहायता से उस समय के इंगलिस्तान के शासकों को आयरलैंड की स्वतंत्रता का नाश करने में सफलता प्राप्त हुई थी। जिन उपायों द्वारा जनरल लेक ने आयरलैंड को इंगलिस्तान के अधीन किया, उनमें मुख्य उपाय, लार्ड कार्नवालिस के बयान के अनुसार और उसी के शब्दों में ये थे—"आयरलैंड-निवासियों को रिश्वतें देना, उनके घरों को जला देना, नगर-निवासियों

27—220 M of I&B/80

का क़त्ल-ए-आम, लोगों को कोड़े लगा कर उनसे ज़बरदस्ती जुर्म स्वीकार करा लेना सारे देश में स्त्रियों के साथ बलात्कार और डाके × × × ।'' जनरल लेक के इन्हीं कृत्यों के आधार पर लन्दन की सुप्रसिद्ध पत्रिका ''रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' के सुयोग्य संपादक डब्ल्यू०टी०स्टेड ने जनरल लेक को 'अत्याचारी गुंडा'* लिखा है।

जनरल लेक की इन करतूतों से इंगलिस्तान के शासक इतने प्रसन्न हुए कि इसके बाद उसे भारत में कमांडर-इन-चीफ़ नियुक्त करके भेजा गया।

वेल्सली का पत्र लेक के नाम

7 जनवरी, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली ने बैरकपुर से जनरल लेक के नाम, जो उस समय उत्तर भारत में था, एक 'अत्यंत गुप्त और गूढ़' (Most Secret and Confidential) पत्र लिखा। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा :

> **"कुछ दिनों से मैं मराठा साम्राज्य की मनोरंजक हालत पर आपको पत्र लिखने की इच्छा कर रहा हूं, और यह भी लिखना चाहता हूं कि मराठों के इस अपूर्व संकट से जितना भी लाभ उठाया जा सकता है, उतना उठाने के लिए मैं किस नीति का पालन कर रहा हूं।**
>
> **"निस्सन्देह जिस नरेश की शक्ति और विचारों से हमें सबसे अधिक डर हो सकता है और जिसे रोक कर रखना हमारे लिए सबसे अधिक आवश्यक है, वह सिंधिया है, और किसी भी ओर से हमें गहरे या खतरनाक मुक़ाबले का डर नहीं है, × × × हमारे लिए सिंधिया को वश में करने का सबसे अधिक कारगर उपाय, निस्सन्देह, यह होगा कि हम अवध के उस प्रान्त से, जो हमें हाल में मिल गया है, सिंधिया के हिन्दोस्तान के इलाक़े पर एकाएक टूट पड़ें। ऐसी सूरत में मुख्य और सबसे अधिक महत्त्व का प्रयत्न हमें उस स्थान से करना होगा, जहां पर कि आप इस समय हैं।**
>
> **"× × × यदि कहीं गहरा मुक़ाबला हुआ, तो × × × हमारी सबसे अधिक महत्त्व की कार्रवाई सिंधिया राज्य के विरुद्ध होगी, ताकि हिन्दोस्तान से सिंधिया की शक्ति को ख़त्म कर दिया जाए; दक्षिण में हमारे साथ किसी गहरे मुक़ाबले की सम्भावना नहीं है।**
>
> **"× × × मेरी योजना यह है कि × × × मराठा साम्राज्य की सरहद के हर हिस्से पर सेनाएं जमा करके इस तरह के फ़ौजी प्रबन्ध किए जाएं कि जिनसे मराठा साम्राज्य के अन्तर्गत सब राज्य हमारे इस बल को देख कर ही डर जाएं।"†**

---

* "......bribe it (the Irish Parliament) with gold"—W. O'Brien, 'Contemporary Review' for January 1898. "......the burning of houses and murder of the inhabitants......the flogging for the purpose of extorting confession; ...... universal rape and robbery throughout the whole country."—Lord Cornwallis' letter as Lord Lieutenant of Ireland. "General Lake, a truculent ruffin......"—W. T. Stead in his 'Review of Reviews', July 1898.

† "I have been desirous for some time past to communicate to you the interesting state of affairs in the Maratha Empire, and the course of policy which I have adopted, with a view to derive every attainable advantage from this singular crisis.

सिंधिया के विरुद्ध प्रयत्न

अंगरेज़ों को सबसे अधिक भय, वास्तव में, दौलतराव सिंधिया से था । वेल्सली दौलतराव सिंधिया को कुचलने का अवसर बरसों पहले से ढूंढ रहा था । 8 मार्च, सन् 1799 को वह कमांडर-इन-चीफ़ को साफ़ लिख चुका था :

> **"मैं उस नीति को भी बिल्कुल ठीक समझता हूं कि जब भी हमें अपने फ़ायदे का कोई मौक़ा दिखाई दे, तुरन्त सिंधिया की ताक़त को नष्ट कर दिया जाए ।"***

उस समय से ही वेल्सली ने करनल कालिन्स द्वारा महाराज सिंधिया के आदमियों को अपनी ओर तोड़ना और सिंधिया के विरुद्ध उसके राज्य में जगह-जगह साज़िशें करना शुरू कर दिया था ।

मराठा मण्डल में एकता के प्रयत्न

समस्त मराठा नरेश, कम या अधिक, इस सामने खड़ी आपत्ति को देख रहे थे और यथाशक्ति उसे रोकने के उपाय भी कर रहे थे ।

बाजीराव पूना पहुंचने के बाद अपनी शोचनीय पराधीनता को और अधिक ज़ोरों से अनुभव करने लगा । पूना पहुंचते ही उसने फिर सिंधिया और भोंसले दोनों के पास अपने विशेष दूत और पत्र भेजे और उन्हें सलाह के लिए शीघ्र पूना बुलाया । अमृतराव पूना छोड़ चुका था । बाजीराव ही उस समय मराठा साम्राज्य का सच्चा अधिपति था । बाजीराव की आज्ञानुसार सिंधिया और भोंसले के पूना आने पर किसी को एतराज़ न हो सकता था । अंगरेज़ों को सूचना दे दी गई थी कि दौलतराव और भोंसले को पूना बुलाया गया है । सब जानते थे कि बसई की संधि पर जब तक सिंधिया और भोंसले के हस्ताक्षर न होंगे, तब तक वह पक्की नहीं समझी जा सकती । इसलिए बाजीराव ने उनके आने तक के लिए संधि की कार्रवाई को स्थगित कर रखा था ।

किंतु अंगरेज़ सिंधिया और बाजीराव के मिलने से डरते थे ।

13 मई, सन् 1803 को बाजीराव पूना पहुंचा । 4 जून को गवर्नर-जनरल वेल्सली के भाई मेजर जनरल वेल्सली ने मद्रास के सेनापति जनरल स्टुअर्ट को पूना से लिखा :

"The power, whose views might be most apprehended, and whom it is most important to hold in check, is certainly Scindhia. No serious or alarming opposition is to be feared from any other quarter, ...our most effectual mode of controlling Scindhia must be an irruption into his dominions in Hindostan, from the ceded provinces of Oudh, and in that case the main and most critical effort must be made from the quarter where you are now present.

"......if any serious contest should arise, ...the most important operations will be directed against Scindhia's possessions to the destruction of his power in Hindostan; and that no probability exists of any important contest in the Deccan.

"......And my plan is, therefore, rather to form such arrangements as may present the most powerful and menacing aspect to every branch of the Maratha Empire on every point on their frontier......"—Marques Wellesley's 'Most secret and confidential' letter to General Lake, dated Barrackpur, January 7th, 1803.

* "I am equally satisfied of the policy of reducing the power of Scindhia, whenever the opportunity shall appear advantageous."—Governor-General's letter to Sir Alured Clarke, dated 8th March, 1799.

"इस देश में हमारी स्थिति जरा नाजुक है। अभी तक पेशवा ने अपने उन सरदारों के लिए कुछ नहीं किया, जो यहां मेरे साथ आए थे, और उनमें से कोई पूना से नहीं गया। सन्धि की यह एक शर्त थी कि बाजीराव अपनी सेना मेरे सुपुर्द कर देगा। बाजीराव ने मुझसे वादा भी किया था; किन्तु इस वादे और सन्धि, दोनों के विरुद्ध उसने अभी तक अपनी सेना मेरे हवाले नहीं की। × × × मुझे डर है कि सन्धि की शर्तों पर हमारी उसकी मित्रता न चल सकेगी। × × ×।"

19 जून को जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को एक दूसरे पत्र में लिखा :

"पेशवा के नौकर वादे करने में बड़े तेज हैं, किन्तु पूरा करने में बड़े सुस्त, और यद्यपि इस देश की चीजें हमें ला-लाकर देने में देशवासियों का ही साफ़ फ़ायदा है, फिर भी यहां की चीज़ों से हम इतना कम लाभ उठा पाए हैं कि मुझे करीब-करीब सन्देह होने लगता है कि यह सरकार सन्धि से पीछे हटना चाहती है × × ×।"

दौलतराव सिंधिया वीर और समझदार था। वह इस समस्त स्थिति और उसकी गंभीरता को देख रहा था। सबसे पहले उसे मराठा मंडल में फिर से ऐक्य पैदा करने की आवश्यकता नज़र आई। इसलिए पूना जाने से पहले वह, बाजीराव की इच्छा के अनुसार, जसवंतराव होलकर और बरार के राघोजी भोंसले, दोनों के साथ मिलकर सलाह कर लेना चाहता था। उस समय के पत्रों से साबित है कि स्वयं जसवंतराव भी काशीराव होलकर, बाजीराव पेशवा और दौलतराव सिंधिया, तीनों के साथ फिर से मेल कर लेने के लिए उत्सुक था। बरहानपुर के पचास कोस पश्चिम में बदौली नामक स्थान पर दौलतराव सिंधिया, जसवंतराव होलकर और राघोजी भोंसले, तीनों नरेशों का मिलना निश्चित हो गया। दौलतराव ने अपनी राजधानी से चल कर नर्मदा को पार कर बरहानपुर की ओर प्रस्थान किया, और बहुत दिनों तक बरहानपुर में ठहर कर 4 मई, सन् 1803 को बरहानपुर से बदौली के लिए कूच किया। सिंधिया का अंतिम लक्ष्य इस समय पूना था और उसके समस्त पत्रों से साबित है कि बसई की संधि के विषय में वह केवल यह साफ़-साफ़ तय कर लेना चाहता था कि उस संधि का प्रभाव मराठा मंडल की संहृति यानी पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के परस्पर संबंध पर बिल्कुल न पड़ेगा; अंगरेज़ भी उसे ज़बानी यही विश्वास दिला रहे थे और यही बात वह पूना पहुंच कर सबकी मौजूदगी में पक्की कर लेना चाहता था।

अंगरेज़ों के अनेक पत्रों से मालूम होता है कि सिंधिया का उद्देश्य हरगिज़ अंगरेज़ों के साथ युद्ध छेड़ने या किसी पर हमला करने का न था।

19 अप्रैल, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली ने इंगलिस्तान के डाइरेक्टरों को लिखा :

"मैं समझता हूं कि × × × सिंधिया का अधिक से अधिक उद्देश्य यह हो सकता है कि × × × आत्मरक्षा के लिए सिंधिया, होलकर और बरार के राजा को आपस में मिला लिया जाए, किन्तु अंगरेज़ी सत्ता के साथ युद्ध छेड़ने का हरगिज उसका कोई इरादा नहीं हो सकता × × ×।"

15 मई, सन् 1803 को कर्नल क्लोज़ ने पूना से डाइरेक्टरों को लिखा :

"निस्सन्देह, यह असम्भव है कि सिंधिया (अंगरेज़ों के साथ) युद्ध छेड़ने के इरादे से इस संघ में शामिल हो रहा हो।"

यही बात उस समय के और अनेक पत्रों से साबित है, किंतु जो लोग बरसों के प्रयत्नों के बाद इतनी मेहनत से मराठा साम्राज्य के अंदर फूट डाल कर उसके सदस्यों को एक-दूसरे से तोड़ पाए थे और जिनका एकमात्र लक्ष्य इस समय समस्त मराठा साम्राज्य को धीरे-धीरे अंगरेज़ी साम्राज्य में मिला लेना था, वे दौलतराव सिंधिया के इन मेल के प्रयत्नों को कब गवारा कर सकते थे ? इसलिए अंगरेज़ों ने अब सबसे पहले सिंधिया को पूना आने से रोकने की हर तरह कोशिश की।

सिंधिया को पूना जाने से रोकना

कर्नल कालिन्स ने सिंधिया पर खुले ज़ोर देना शुरू किया कि आप पूना न जाइए और उधर कर्नल क्लोज़ और जनरल वेल्सली ने बाजीराव पर दबाव डालना शुरू किया कि आप दौलतराव को लिख दीजिए कि तुम पूना न आओ। 10 मई, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा :

> **"कर्नल कालिन्स का इरादा है, पेशवा पर इस बात के लिए ज़ोर दिया जाए कि वह सिंधिया को लिख भेजे कि तुम पूना न आओ; और मैं सोचता हूं, मुझे भी कालिन्स को इस आशय का एक पत्र लिख देना चाहिए कि पेशवा की इच्छा है कि सिंधिया पूना न आए और उचित यह है कि पेशवा की इस इच्छा के अनुसार काम हो।"***

10 मई तक बाजीराव पूना पहुंचा भी न था। पूना पहुंचने के बाद भी उसने दौलतराव को पूना बुलाने के लिए कई पत्र लिखे, किन्तु अपने मतलब के लिए साफ़ झूठ बोलना जनरल वेल्सली और उस समय के दूसरे अंगरेज़ों के लिए एक मामूली बात थी। दूसरी ओर नए युद्ध के लिए अंगरेज़ों की तैयारी जारी थी। कर्नल कालिन्स सिंधिया दरबार में अपनी साज़िशों का जाल इतनी अच्छी तरह फैला चुका था कि अब वह युद्ध के छिड़ने के लिए अधीर हो रहा था। किन्तु मार्क्विस वेल्सली और जनरल वेल्सली अभी तक अपनी तैयारी पूरी न कर पाए थे। जनरल वेल्सली को यह भी अनुभव हो चुका था कि मराठों के साथ लड़ाई छेड़ने का अंगरेज़ों के लिए सबसे अच्छा समय बरसात है। इसलिए उसने कालिन्स को लिखा कि अभी आप बरसात शुरू होने तक सिंधिया के साथ बने रहिए और सिंधिया को धोखे में रखने के लिए बराबर उससे मित्रता का दम भरते रहिए।

युद्ध की गुप्त तयारी

जैसे-जैसे अंगरेज़ों की तैयारी बढ़ती गई, वैसे-वसे ही उनका रुख भी बदलता चला गया। 30 मई, सन् 1803 को गवर्नर-जनरल वेल्सली ने महाराजा सिंधिया को लिखा : "आप शांति क़ायम रखने के लिए आगे बढ़ने का इरादा छोड़ कर तुरंत नर्मदा पार कर अपनी राजधानी लौट जाइए।" बरार के राजा राघोजी भोंसले को उसने लिखा कि— "आप लौट कर नागपुर चले आइए।" और उसी दिन पूना के रेज़िडेंट कर्नल क्लोज़ को

* "Colonel Collins tends to press the Peshwa to desire Scindhia not to advance to Poona; and I think that I ought to write him a letter to say that such is the Peshwa's wish, and that it is proper it should be complied with."—Major General Wellesley's letter to Lt. General Stuart, dated 10th May, 1803.

लिखा कि यदि सिंधिया नर्मदा पार कर उत्तर की ओर चला जाए, तो भी कम्पनी की सेना बराबर दक्षिण के मैदान में तैयार रहे और यदि जसवंतराव होलकर अपनी सेना सहित पूना आना चाहे, तो उसे भी रोक दिया जाए। साथ ही, वेल्सली ने भोंसले के कटक प्रांत की सरहद पर मेदिनीपुर की छावनी में कम्पनी की सेना बढ़ाए जाने की आज्ञा दे दी।

इस सबका मतलब यह है कि जब कि अंगरेज 'शान्ति और मित्रता' के नाम पर होलकर, सिंधिया और भोंसले, इन तीनों के मिलने या पेशवा की आज्ञा पर इनमें से किसी के पूना जाने तक को रोक रहे थे, वे स्वयं इन मराठा नरेशों का नाश करने के लिए कम्पनी की सन्नद्ध सेनाएं जगह-जगह चारों ओर जमा कर रहे थे और मार्क्विस वेल्सली के शब्दों में, केवल अपनी तैयारी के पूरा होने और मौसम के इन्तजार में थे।

चार दिन बाद 3 जून, सन् 1803 को वेल्सली ने कलकत्ते से कालिन्स को यह स्पष्ट आज्ञा दी :

> **"सिंधिया को यह बता देना मुनासिब है कि सिवाय उस हालत के, जब कि पेशवा ने साफ़ शब्दों में इजाजत दे दी हो और ब्रिटिश सरकार ने उसे मंजूर कर लिया हो, यदि दूसरी किसी हालत में किसी भी बहाने सिंधिया पूना जाएगा, तो उसे अवश्यमेव ब्रिटिश सत्ता के साथ लड़ना पड़ जाएगा।"**

बरार के राजा को धमकी

बरार का राजा भी पेशवा के निमन्त्रण पर पूना जा रहा था। इसलिए जिस तरह का पत्र सिंधिया को लिखा गया, उसी तरह का पत्र वेल्सली ने बरार के राजा को लिखा, और उसे यह भी साफ़ धमकी दे दी की यदि आप पूना की ओर रुख करेंगे, तो आपके राज्य पर हमला किया जाना सम्भव है। यह याद रखना चाहिए कि अंगरेज स्वयं सिंधिया, भोंसले और पेशवा, तीनों को अभी तक अपना 'मित्र' कहते थे और इन तीनों में से किसी की ओर से कोई कार्रवाई अभी तक इस 'मित्रता' के विरुद्ध न हुई थी। उन्हें पूना आने से रोकने का कोई बहाना भी होना चाहिए था। इसलिए सिंधिया पर अब एक नया और अनोखा इलज़ाम यह लगाया गया कि तुम पेशवा और निज़ाम के राज्यों पर हमला करने और उन्हें लूटने का विचार कर रहे हो। 28 मई, सन् 1803 को कर्नल कालिन्स ने महाराजा सिंधिया से मुलाकात की। तीन घंटे बातचीत होती रही, जिसका हाल कालिन्स ने 29 मई, 1803 को एक लम्बे पत्र में गवर्नर-जनरल को लिख कर भेजा।

कालिन्स का पत्र

इस पत्र में लिखा है कि—महाराजा सिंधिया ने कालिन्स के प्रश्न के उत्तर में उसे विश्वास दिलाया कि महाराजा का कोई इरादा पेशवा या निज़ाम, किसी के राज्य पर हमला करने का नहीं है। कालिन्स ने इस पर सन्तोष प्रकट किया और पूछा कि फिर महाराजा सिंधिया, बरार के राजा और होलकर के बीच जो पत्र-व्यवहार हो रहा है, उसका उद्देश्य किसी तरह से बसईं की सन्धि की कार्रवाई में कोई बाधा डालना तो नहीं है। महाराजा सिंधिया ने इस पर कालिन्स को स्पष्ट उत्तर दिया कि बिना बरार के राजा से बातचीत हुए इस विषय में कोई बात नहीं कही जा सकती। कालिन्स ने फिर बार-बार ज़ोर देकर और डर दिखा कर इस सम्बन्ध में महाराजा सिंधिया की अन्तिम

राय जाननी चाही। महाराजा सिंधियां ने फिर उत्तर दिया "कि राजा राघोजी से बिना बातचीत किए मेरा कुछ कहना उनके साथ दगा करना होगा, राजा राघोजी इस समय इस स्थान से केवल पचास कोस की दूरी पर हैं और दो-चार दिन के अन्दर ही मेरी और उनकी मुलाकात होनेवाली है। उस मुलाक़ात के बाद फ़ौरन ही तुम्हें (कर्नल कालिन्स को) बता दिया जाएगा कि इन सब बातों का निबटारा शान्ति से हो सकेगा या युद्ध से।"

इसी पत्र में कालिन्स ने गवर्नर-जनरल से फिर तक़ाज़ा किया कि जितनी जल्दी हो सके, बाजीराव पर ज़ोर देकर उसकी ओर से सिंधिया के नाम यह पत्र लिखवा दिया जाए कि आप पूना न आइए।

कालिन्स सच और झूठ की अधिक परवाह करनेवाला आदमी न था। फिर भी, यदि इस पत्र की सब बातें सच हैं, तो पत्र से ज़ाहिर है कि कालिन्स का बर्ताव महाराजा सिंधिया के साथ धृष्टता का था और महाराजा के सब जवाब उचित और न्यायानुकूल थे।

तारीफ़ यह है कि अभी तक बसईं की सन्धि की नक़ल अंगरेज़ों ने न महाराजा सिंधिया के पास भेजी थी और न राजा राघोजी भोंसले के पास।

सिंधिया और भोंसले का पूना जाना स्थगित

इसके कुछ दिन बाद ही राजा राघोजी भोंसले का ख़ेमा महाराजा सिन्धिया के निकट आ पहुंचा। दोनों नरेशों में बातचीत हुई। दोनों को कालिन्स ने समझाया कि पेशवा ही आप लोगों के पूना जाने के विरुद्ध है। दोनों को कालिन्स ने विश्वास दिलाया कि बसईं की सन्धि का प्रभाव पेशवा और दूसरे मराठा नरेशों के परस्पर संबंध पर बिल्कुल न पड़ेगा। दोनों से कालिन्स ने 'शान्ति और मित्रता' के नाम पर पूना जाना स्थगित करके अपनी अपनी राजधानी लौट जाने की प्रार्थना की। दोनों को उसने कम्पनी की 'मित्रता का विश्वास दिलाया और साथ ही यह भी धमकी दी कि यदि आप लोग पूना जाने पर ज़िद करेंगे, तो कम्पनी की सेनाएं तमाम मराठा साम्राज्य की सरहद पर पड़ी हुई है। अन्त में दोनों मराठा नरेश, अदूरदर्शिता के कारण या कायरता के कारण या सम्भव है, युद्ध से यथाशक्ति बचने की इच्छा से, फिर एक बार अंगरेजों की चालों में आ गए। दोनों ने कालिन्स की बातों पर विश्वास करके अपना पूना जाना स्थगित कर दिया, और यह तय किया कि बसईं की सन्धि के बारे में जो विश्वास हमें अंगरेज़ों ने दिलाया है, वही बाजीराव से पक्का कर लेने के लिए हमारे दोनों के विश्वस्त दूत तुरन्त पूना भेजे जाएं, और बाजीराव से इस विषय में सन्तोषप्रद उत्तर मिलने के बाद हम लोग अपनी-अपनी राजधानी लौट जाएं।

अंगरेज़ों को इस पर कोई एतराज न हो सकता था और न अब उनके पास युद्ध का किसी तरह का बहाना बाकी रह गया था। फिर भी, अंगरेज़ों की ओर से युद्ध की तैयारियां बराबर बढ़ती चली गईं।

मराठा नरेशों के साथ युद्ध का निश्चय

26 जून को गवर्नर-जनरल वेलसली ने अपने भाई जनरल वेलसली को एक 'गुप्त पत्र द्वारा इस बात का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया कि—"आप बिना मुझसे पूछे, जब 'चाहें

महाराजा सिन्धिया या बरार के राजा के साथ युद्ध शुरू कर दें और निज़ाम, पेशवा या दूसरे मराठा नरेशों के राज्यों में जब जो राजनैतिक या सैनिक कार्रवाई करना चाहें, कर डालें।"*

27 जून को गवर्नर-जनरल ने अपने भाई के नाम एक दूसरा 'अत्यन्त गुप्त' पत्र लिखा, जिसके नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करने के योग्य हैं :

"इस पत्र के पाते ही आप कर्नल कालिन्स को लिख दीजिए की सिंधिया और बरार के राजा, दोनों से उनके साफ़ साफ़ विचार दरयाफ़्त किए जाएं और उन्हें उत्तर के लिए इतनी मियाद दी जाए, जितनी कि आपको मौसम × × × और अपनी संग्राम सम्बन्धी सुविधाओं का पूरा विचार करते हुए, ठीक मालूम हो।

× × ×

"ऐसी स्थिति में या दूसरी किसी भी स्थिति में जब आपको युद्ध करने की आवश्यकता अनुभव हो, तब × × × मैं आपको आदेश देता हूं कि आप सिंधिया और बरार के राजा, इन दोनों की × × × सैनिक शक्ति का सर्वनाश कर डालने में अपनी पूरी ताक़त लगा दें। × × × विशेष आवश्यक यह है कि आप सिंधिया के तोपखाने को और साथ ही उसके यूरोपियन अस्त्र शस्त्रों और तमाम फ़ौजी सामान को नष्ट कर दें। बहुत ही अच्छा हो, यदि सिंधिया अथवा राघोजी भोंसले को किसी तरह गिरफ्तार कर लिया जाए × × × युद्ध छिड़ते ही आप सिंधिया, होलकर और × × × हर दूसरे मराठा नरेश की नोकरी से यूरोपियन अफ़सरों को अपनी ओर बुला लेने के लिए जो उपाय उचित समझें, कीजिएगा।

"आपको आज़ादी दी जाती है कि इस काम के लिए आप जो खर्च ज़रूरी समझें, करें, और जैसे दूत अधिक उपयोगी समझें, भेजें × × × मैं सोच रहा हूं कि गोहद के राणा के पास और राजपूत राजाओं के पास में स्वयं यथोचित दूत भेजूं। आप भी इन रियासतों को सिंधिया के विरुद्ध भड़काने की हर तरह से कोशिश कीजिए। × × × यह भी सोचिएगा कि काशीराव होलकर को जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध भड़काने के लिए क्या-क्या किया जा सकता है। × × ×"

किन्तु इस समस्त राजनैतिक बलात्कार के लिए इंगलिस्तान के थोड़े-से उदार लोगों और भावी इतिहास लेखकों के सामने कुछ बहाना रख देना भी आवश्यक था। इसलिए इस पत्र में पहली बार मार्क्विस वेल्सली ने अपने पुराने बहाने, "भारत पर फ्रान्स के इरादों", का ज़िक्र किया और पत्र के अन्त में लिखा :

---

* "......full powers to conclude upon the spot whatever arrangements may become necessary either for the final settlement of peace, or for the active prosecution of war, ...

"......to vest these important and arduous powers in your hands......

"I further empower and direct you to assume and exercise the general direction and control of all the political and military affairs of the British Government in the territories of the Nizam, of the Peshwa, and of the Maratha States and Chiefs."—Governor-General's 'secret' despatch to Major General Wellesley, dated 26th June, 1803.

"सिंधिया का शीघ्र नाश कर देना × × × फ्रान्स के इरादों के लिए सर्वथा घातक सिद्ध होगा ।"*

मराठों के साथ युद्ध करने में अंगरेज़ों का वास्तविक उद्देश्य

इसके बाद सिंधिया का नाश करने के इस नए बहाने को रूप मिलता चला गया । धीरे-धीरे यहां तक कहा जाने लगा कि सिंधिया के राज्य में जमना के तट पर फ्रान्सीसियों की एक बाज़ाब्ता बस्ती है, जिसमें कप्तान पैरां के अधीन चौदह हज़ार सशस्त्र फ्रान्सीसी सेना रहती है । पूर्वोक्त पत्र के एक महीना बाद गवर्नर-जनरल ने जनरल लेक को एक अत्यंन्त महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा, जिसका और अधिक ज़िक्र किसी दूसरे स्थान पर किया जाएगा । इस पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने लिखा :

"इन सब बातों पर फिर से नज़र डालते हुए आपको मालूम होगा कि हिन्दोस्तान की उत्तर पश्चिमी सरहद पर सिंधिया और बरार के राजा के साथ युद्ध करने के सबसे अधिक लाभदायक नतीजे मेरी राय में ये होंगे —

(1) जमना के किनारे जो फ्रान्सीसियों की बस्ती है, उसका और उसके तमाम फ़ौजी सामान का नाश हो जाएगा ;

(2) जमना तक कम्पनी का इलाक़ा बढ़ा लिया जाएगा और उसके साथ जमना के पश्चिमी और दक्षिणी तटों पर आगरा, देहली और दूसरी छावनियों के एक काफ़ी लम्बे सिलसिले पर क़ब्ज़ा कर लिया जाएगा ;

(3) मुग़ल सम्राट की नाममात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जाएगा ;

"In this event, or in other state of circumstances which may appear to mand an explicit declaration of the views of Scindhia and of the Raja of Berar, within such a number of days as shall appear to you to be reasonable consistently with a due attention to the period of the season, and to the facility of moving your army, and of prosecuting hostilities with the advantages which you now possess.

* * * *

* "On the receipt of this despatch you will desire Colonel Collins to de- you to require hostilities, ...I direct you to use your utmost efforts to destroy the military power of either or of both chiefs (Scindhia and Raja of Berar)...... It is particularly desirable that you should destroy Scindhia's artillery, and all arms of European construction, and all military stores which he may possess...... the actual seizure of the person of the Scindhia, or of Raghoji Bhonsla, would be highly desirable, ...In the event of hostilities, you will take proper measures for withdrawing the European Officers from the service of Scindhia, Holkar and of every other chief opposed to you.

"You are at liberty to incur any expensive requisite for this service, and to employ such emissaries as may appear most serviceable......I propose to dispatch proper emissaries to Gohud, and to the Rajput chiefs. You will also employ every endeavour to excite those powers against Scindhia......You will consider what steps may be taken to excite Kashi Rao Holkar against Jaswant Rao, ...the early reduction of Scindhia......is certain, and would prove a fatal blow to the views of France."—Governor General's letter marked 'Most secret' dated 27th June, 1803, to his brother Major General Wellesley.

(4) जमना के दक्षिण और पश्चिम में जयनगर से लेकर बुन्देलखण्ड तक तमाम छोटी–छोटी रियासतों के साथ एक समान ढंग की उपयोगी सन्धियां कर ली जाएंगी ; और

(5) बुन्देलखण्ड को कम्पनी के राज्य में मिला लिया जाएगा ।"*

इस 'जमना के किनारे की फ्रान्सीसी बस्ती' के विषय में सबसे पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस समय तक अंगरेज़ों का जो-कुछ पत्र-व्यवहार या जो-कुछ बातचीत सिंधिया के साथ हो रही थी, उसमें इस 'फ्रान्सीसी बस्ती' या 'फ्रान्सीसी खतरे' का कहीं नाम तक नहीं लिया गया । इसके अतिरिक्त, इस 'फ्रान्सीसी बस्ती' की असत्यता के विषय में सर फ़िलिप फ्रैन्सिस ने इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने कहा था :

"× × × मुझे मालूम है कि मराठों के खिलाफ़ एक बड़ी दलील यह दी जाती है कि वे हमारे प्रभुत्व को नुक़सान पहुंचाने के स्पष्ट विचार से अपने यहां फ्रान्सीसी अफ़सर रखते हैं । यहां तक कहा जाता है कि कप्तान पैरां के अधीन चौदह हज़ार फ्रान्सीसी सेना मौजूद है । इस सेना के अस्तित्व का हमारे पास अणु मात्र भी सबूत नहीं है । × × × वास्तव में, अत्यन्त बारीक़ी के साथ खोज करने के बाद पता लगा है कि पूरी मराठा सेना में बारह से ज़ियादा फ्रान्सीसी अफ़सर नहीं हैं । × × × सिंधिया की ज़रा भी इच्छा नहीं है कि अपने राज्य के अन्दर किसी फ्रान्सीसी सेना को आने तक दे । सब जानते हैं कि अपने राज्य के किसी भाग में भी सिंधिया किसी विदेशी सेना को रहने देने के विचार तक से घृणा करता है × × × ।"†

---

* "Reviewing those statements your Excellency will observe that the most prosperous issue of a war against Scindhia and the Raja of Berar on the North Western frontier of Hindostan would in my judgment comprise.

"1st. The destruction of the French State now formed on the banks of the Jumna together with all its military resources;

"2nd. The extension of the Company's frontier to the Jumna, with the possession of Agra, Delhi and a sufficient chain of posts on the Western and Southern banks of the Jumna;

"3rd. The possession of the nominal authority of the Moghul;

"4th. The establishment of an efficient system of alliance with all the petty states to the Southward and the Westward of the Jumna from Jayanagar to Bundelkhand;

"5th. The annexation of Bundelkhand to the Company's dominions'.—Governor-General's letter to the General Lake, dated 27th July, 1803.

† "He was aware that the great argument against the Marathas was their harbouring French officers among them, with views evidently hostile to our superiority. It was even asserted that there was an army of 14,000 French troops, under Captain Perron. Of the existence of such a body of troops there was not a single title of evidence before the House......Indeed, after the minutest investigation, he found that there were not in the whole Maratha army more than twelve French Officers; ......as to any wish to Scindhia to admit French troops into his dominions, he denied its existence. It was notorious that Scindhia abhorred the idea of foreign troops in any part of his states......"—Sir Philip Francis on the Maratha War, before the House of Commons on the 14th March, 1804.

फ़ान्सीसियों से डर का बहाना

इसी बीच इंगलिस्तान के भारत मन्त्री लार्ड कासल री के दो पत्न मार्क्विस वेल्सली के पास आए, जिनमें साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों को उस समय भारत में फ्रान्स से क़तई किसी तरह का भय न था और न आइन्दा किसी फ़्रान्सीसी हमले की सम्भावना थी। इतिहास -लेखक जेम्स मिल ने भी अपने इतिहास में इस 'फ़ान्सीसी खतरे' के झूठ और बनावटीपन को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दर्शाया है। ठीक इसी बहाने का मार्क्विस वेल्सली ने टीपू सुलतान को कुचलने के लिए उपयोग किया था। वास्तव में इस तरह के झूठ अधिकतर ब्रिटिश भारतीय इतिहास को भावी पढ़नेवालों की दृष्टि में कलंक रहित दिखाने के लिए गढ़े जाते थे।

किन्तु इस दूसरे मराठा युद्ध का वास्तविक उद्देश्य ऊपर के पत्न की दूसरी से लेकर पांचवीं तक चार मदों के अन्दर साफ़ नज़र आता है। उद्देश्य केवल ब्रिटिश साम्राज्य-पिपासा को शान्त करना था। वेल्सली इस समय सिंधिया और बरार के अत्यन्त उपजाऊ और मालामाल इलाक़ों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिए लालायित था और ये सब बहाने एक-दूसरे के बाद इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गढ़े जा रहे थे।

28 जून को गवर्नर-जनरल ने फिर जनरल लेक को एक 'अत्यन्त गुप्त और गूढ़' पत्न लिखा कि—"आप सिंधिया से लड़ने के उद्देश्य से उसकी सरहद पर जगह-जगह फ़ौज जमा करने का उचित प्रबन्ध कर लें, × × × किन्तु यह सब काम इस तरह किया जाए कि शत्रु सावधान होने न पाए।"†

इस पत्न के साथ ही वेल्सली ने लेक को एक दूसरा अलग पत्न भेजा जिसमें विस्तार के साथ उसने जनरल लेक को आदेश दिया कि सिन्धिया के आदमियों को किस तरह अपनी ओर फोड़ा जाए। यह पत्न वेल्सली के छपे हुए पत्नों में मौजूद है और पाश्चात्य कूटनीति का एक सुन्दर नमूना है।

कालिन्स का अशिष्ट व्यवहार

जो मांगें इस समय कर्नल कालिन्स सिंधिया के सामने पेश कर रहा था, उनके विषय में दो-तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि कालिन्स सिंधिया से अपनी राजधानी लौट जाने के लिए कह रहा था, किन्तु इस लौटने के लिए एक बार भी कोई मियाद नियत नहीं की गई थी और महाराजा सिंधिया का अपने अनुयायियों और सामान के साथ तुरन्त राजधानी लौट जाना इतना सरल न था; दूसरे यह कि कालिन्स की एक-मात्न मांग सिंधिया से लौट जाने की ही न थी, कालिन्स के पत्नों से पता चलता है कि उसकी मांगें प्रतिदिन बढ़ती और बदलती चली गईं; यहां तक की इन दोनों नरेशों से उसी समय लौटने के लिए भी कहा जा रहा था और उसी समय उन पर यह भी ज़ोर दिया जा रहा था कि आप दोनों कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि कर लें। तीसरी बात यह कि ये दोनों मराठा नरेश उस समय तक अपने ही इलाक़े के अन्दर थे। कालिन्स का व्यवहार महाराजा

---

† "To commence the measures for assembling a force, with a view to active operations against Scindhia,......

"You will be able......to collect forces at the necessary points......without occasioning any alarm for war."—Marques Wellesley's letter to General Lake marked 'Most secret and confidential', dated 28th June, 1803.

दौलतराव के साथ अधिकाधिक अशिष्ट होता चला गया, और दौलतराव बराबर उसे धैर्य और शान्ति की सलाह देता रहा। असलियत यह है कि अंगरेज़ किसी-न-किसी तरह सिंधिया को भड़का कर युद्ध छेड़ना चाहते थे और सिंधिया अभी तक शान्ति के स्वप्न देख रहा था।

सिंधिया और भोंसले की सदिच्छाएं

4 जुलाई, सन् 1803 को दौलतराव सिंधिया, राघोजी भोंसले और कर्नल कालिन्स, तीनों की भेंट हुई। इस समय जो बातचीत हुई, उससे प्रकट है कि अभी तक इन दोनों मराठा नरेशों को बसई की सन्धि की शर्तों का पूरी तरह पता न था। दोनों भोले भारतीय नरेशों ने इस भेंट के समय सच्चे मन से कम्पनी के साथ मित्रता और शान्ति क़ायम रखने की इच्छा प्रकट की। इसी बातचीत के अनुसार 6 जुलाई को गवर्नर-जनरल के नाम तीन पत्र लिख गए—एक कर्नल कालिन्स की ओर से और एक-एक महाराजा सिन्धिया और राजा राघोजी भोंसले की ओर से।

मराठों पर पहले वार करने का इरादा

सिंधिया और भोंसले ने अपने पत्रों में साफ़ लिख दिया कि हम न पूना जानेवाले हैं, न अजन्ती घाट के उस पार जाएंगे, न हमारा यह इरादा है कि अंगरेज़ों और पेशवा के बीच बसई में जो सन्धि हुई है, उसमें हम किसी तरह का दखल दें।

सिन्धिया के पत्र के उत्तर में वेल्सली ने सिन्धिया को फिर लिखा कि—"आप शीघ्र अपनी राजधानी वापस लौट जाइए, अन्यथा मित्रता नहीं रह सकती।" इस पत्र में भी वेल्सली ने जान-बूझ कर सिंधिया के लौटने के लिए कोई मियाद नियत न की। इसका कारण वेलसली ने स्वयं अपने 17 जुलाई के पत्र में कर्नल क्लोज़ को इस प्रकार लिखा :

> **"मैंने दौलतराव सिंधिया के लौटने के लिए मियाद इसलिए नियत नहीं की × × × क्योंकि लड़ाई शुरू करने का समय मैं अपने ही दिल के अन्दर रखना चाहता हूं, जिससे लाभ यह है कि मुझे पहले वार करने का मौक़ा मिलने की अधिक सम्भावना है × × ×।"***

11 जुलाई को गवर्नर-जनरल ने अपनी कौंसिल की एक विशेष बैठक की। इसी के अगले दिन बारलो ने यह खास पत्र लिख कर गवर्नर-जनरल के सामने पेश किया जिसमें लिखा है :

> **"हमें हिन्दोस्तान में एक भी देशी रियासत ऐसी बाक़ी नहीं रहने देनी चाहिए, जो कि या तो अंगरेज़ों की ताक़त के सहारे खड़ी न हो, और या जिसका, समस्त राजनैतिक कारोबार पूरी तरह अंगरेज़ों के हाथों में न हो।"†**

---

* "I have not fixed when he (Daulat Rao Scindhia) should withdraw...... because I wish to keep in my own breast the period at which hostilities will be commenced; by which advantage it becomes more probably that I shall strike the first blow......"—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 17th July, 1803.

† "......no native state should be left to exist in India, which is not upheld by the British Power, or the political conduct of which is not under its absolute control."—Memorandum of Sir George Barlow to the Governor-General, dated 12th July, 1803.

वेल्सली का लेक को पत्र

18 जुलाई को गवर्नर–जनरल ने एक 'गुप्त और गूढ़' पत्र में जनरल लेक को फिर लिखा कि आप सिंधिया और भोंसले, दोनों पर वार करने को तैयार रहिए और ––

> **"पूरे विश्वास के साथ काम कीजिएगा और आपने युद्ध की जो अत्यन्त योग्यतापूर्ण योजना तैयार की है, उस पर जल्दी से अमल करने की हर तरह कोशिश कीजिएगा ।"***

21 जुलाई की रात को जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए सिंधिया और बरार के राजा के बीच फिर बातचीत हुई। 22 जुलाई को कालिन्स ने सिंधिया को लिखा :

> **"चूंकि कर्नल कालिन्स को मालूम हुआ है कि कल रात महाराजा दौलतराव सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले के बीच महाराजा के नाम जनरल वेल्सली के पत्र का उत्तर तय करने के लिए बातचीत हुई है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि महाराजा दौलतराव सिंधिया उस बातचीत के नतीजे की मुझे इत्तला दें × × × ।"**

मराठों का कालिन्स को उत्तर

24 जुलाई, सन् 1803 को दोनों मराठा नरेशों ने कालिन्स के पत्र का जबाब भेज दिया। सिंधिया ने लिखा :

> **"ज्यों ही मेरी और सेना साहब सूबा राजा राघोजी भोंसले की मुलाक़ात होगी और हम एक जगह बैठेंगे, आप से भी आने की प्रार्थना की जाएगी और जो कुछ कहना है, उस समय आमने-सामने बातचीत की जाएगी। अभी इस मौक़े पर मेरी और राजा की मुलाकात आवश्यक है। यदि आप मिलने का इरादा करते हैं तो कल दो घड़ी दिन रहे आइएगा, मेरा घर आपका घर है।"**

इसी तरह का जवाब राजा राघोजी भोंसले ने दिया।

सिंधिया के वज़ीर का कालिन्स को उत्तर

अगले ही दिन 25 जुलाई को कर्नल कालिन्स और महाराजा सिंधिया की मुलाकात हुई। कालिन्स ने बार-बार महाराजा सिंधिया पर अपनी राजधानी लौट जाने के लिए जोर दिया। इसके उत्तर में सिंधिया के वजीर ने कालिन्स से कहा :

> **"महाराजा दौलतराव और बरार के राजा, दोनों की सेनाएं उनके अपने-अपने इलाकों के अन्दर हैं। इन नरेशों ने संजीदगी के साथ वादा किया हैं कि हम न अजन्ती घाट पर चढ़ेंगे और न पूना की ओर जाएंगे। वे लिख कर और अपनी-अपनी मोहरें लगा कर गवर्नर-जनरल को विश्वास दिला चुके हैं कि हम कभी**

---

* "......you will, therefore, act confidently and you will use every effort to prepare for the early execution of the very able plan of operations which you have formed."—Marques Wellesley's 'Secret and Confidential' letter to General Lake, dated 18th July, 1803.

बसई की सन्धि को उलटने की कोशिश न करेंगे, और ये तकरीरें उनकी मित्रता के इरादों का असन्दिग्ध प्रमाण हैं। अब हम अपने-अपने वकील पूना भेजने की तजवीज़ कर रहे हैं; ताकि जिस तरह का विश्वास हमें हाल में जनरल वेल्सली की ओर से दिलाया गया है, उसी तरह का विश्वास पेशवा की ओर से भी हमें मिल जाए (अर्थात् यह कि बसई की सन्धि का प्रभाव पेशवा और अन्य मराठा नरेशों के परस्पर सम्बन्ध पर बिल्कुल न पड़ेगा।) ××× सिंधिया और होलकर के बीच इस समय जिस सन्धि की बातचीत हो रही है, वह अभी पूरी तरह तय नहीं हुई है और जब तक वह तय न हो जाए, महाराजा सिंधिया राजधानी वापस नहीं जा सकते।"

सिंधिया का स्पष्ट पत्र

बसई की सन्धि को हुए सात महीने हो चुके थे, किन्तु अभी तक उस सन्धि की कोई प्रति अंगरेज़ों ने सिंधिया या बरार के राजा को न दी थी। इस बीच दोनों वेलसली भाई अपने पत्रों में सिंधिया और भोंसले, दोनों को बराबर यह धोखा देते रहे कि बसई की सन्धि का सिंधिया और भोंसले की स्वाधीनता पर या पेशवा के साथ उन दोनों के सम्बन्ध पर, यानी मराठा मण्डल की आन्तरिक व्यवस्था पर किसी तरह का असर न पड़ेगा। इस विश्वास पर ही इन दोनों नरेशों ने बसई की सन्धि का विरोध न करना तक स्वीकार कर लिया। किन्तु इसी बात को वे अपने वकील भेज कर बाजीराव से भी पक्का कर लेना चाहते थे। जुलाई के अन्त में अंगरेज़ों ने उन्हें बसई की सन्धि की नक़ल दी। इस पर दौलतराव सिंधिया ने तुरन्त मार्क्विस वेलसली को लिखा :

आपका मित्रतासूचक पत्र, जिसमें अपने पेशवा और अंगरेज़ कम्पनी के बीच बसई की नई सन्धि होने की मुझे सूचना दी है और साथ में उस सन्धि की एक नक़ल भेजी है, मिला और मुझे उस सन्धि की शर्तों की पूरी-पूरी इत्तला हुई×××।

पेशवा और मेरे बीच जो परस्पर प्रतिज्ञाएं हो चुकी हैं, वे इस तरह की हैं कि सभी बातों का और पेशवा की सल्तनत और उनके शासन के सब मामलों का फैसला मेरी सलाह और मशवरे से होना चाहिए।××× किन्तु इसके विरुद्ध अंगरेज़ों और पेशवा के बीच हाल में जो शर्तें हुई हैं, उनकी अब मुझे सूचना दी गई है। ××× इसलिए अब कर्नल कालिन्स की उपस्थिति में राजा राघोजी भोंसले के साथ यह तय हुआ है कि पूर्वोक्त सन्धि की सब बातो का पता लगाने के लिए मेरी और राजा की ओर से विश्वस्त दूत पेशवा के पास भेजे जाएं। साथ ही, अंगरेज़ों और पेशवा के बीच की बसई की उस 19 धाराओं वाली सन्धि की शर्तों को उलटने का मेरा बिल्कुल ही इरादा नहीं है, इस शर्त पर कि अंगरेज़ कम्पनी या पेशवा का भी कोई इरादा उस सन्धि की शर्तों को उलटने का न हो, जो कि बहुत काल से पेशवा की सरकार के, मेरे और राजा राघोजी भोंसले और दूसरे मराठा नरेशों के बीच क़ायम है।"

* "I have received your Lordship's friendly letter notifying the conclusion of new engagements between His Highness the Peshwa and the English Company at Bassein, together with a copy of the treaty; and I have been fully apprised of its contents, ...

वेल्सली का युद्ध का दृढ़ इरादा

ज़ाहिर है कि ये दोनों मराठा नरेश केवल मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए चिन्तित थे और इसलिए अपने दूत पूना भेज कर पेशवा से सब बात तय कर लेना चाहते थे। बैठे-बैठाए अंगरेज़ों से या किसी से युद्ध करने का उनका कदापि इरादा न था। किन्तु अंगरेज़ भी इसी 'मराठा साम्राज्य के स्वाधीन अस्तित्व और उसकी व्यवस्था' का अन्त करने की फ़िराक़ में थे। 31 जुलाई, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने कर्नल कालिन्स को लिखा कि —"चूंकि सिंधिया और जसवन्तराव होलकर के बीच अभी तक कोई सन्धि नहीं होने पाई, इसलिए यही मौक़ा है कि हमें जल्द-से-जल्द युद्ध शुरु कर देना चाहिए।"

अगले दिन, यानी 1 अगस्त, सन् 1803 को सिन्धिया और भोंसले, दोनों ने जनरल वेल्सली के नाम फिर एक अत्यन्त मित्रतासूचक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने वेल्सली से फिर प्रार्थना की कि बाजीराव के पास तक हमारे दूतों के पहुंचने और लौटने का इन्तज़ार किया जाए और धैर्य और शान्ति से मामले का फ़ैसला कर लिया जाए।

युद्ध का एलान

किन्तु अंगरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी। 1 अगस्त, सन् 1803 को बिना महाराजा से पूछे या बिना दरबार को बाक़ायदा सूचना दिए कर्नल कालिन्स सिंधिया के दरबार से चल दिया और 6 अगस्त, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने कम्पनी की ओर से मराठों के साथ युद्ध का बाज़ाब्ता एलान कर दिया।

लीस्टर का पत्र

मार्क्विन्स वेल्सली के तमाम सरकारी और गैरसरकारी पत्रों की पूरी छानबीन करने से मालूम होता है कि अन्त समय तक सिंधिया और भोंसले, दोनों इस बात के लिए उत्सुक थे कि शान्ति से सब बातों का निबटारा हो जाए।

"Whereas the engagements subsisting between the Peshwa and me are such, that the adjustment of all affairs and of the concerns of his state and Government should be arranged and completed with my advice and participation, ...Notwithstanding this, the engagements which have lately been concluded between that quarter (British Government) and the Peshwa have only now been communicated......Therefore, it has now been determined with Raja Raghoji Bhonsla, in presence of Colonel Collins, that confidential persons on my part and the Raja's be despatched to the Peshwa, for the purpose of ascertaining the circumstances of the (said) engagements. At the same time no intention whatever is entertained on my part to subvert the stipulations of the treaty consisting of 19 articles, which has been concluded at Bassein, between the British Government and the Peshwa, *on condition that there be no design whatever on the part of the English Company and the Peshwa to subvert the stipulations of the treaty, which, since a long period of time, has been concluded between the Peshwa's Sircar, me, and the said Raja and the Maratha chiefs.*"—Maharaja Daulat Rao Scindhia's letter to Marques Wellesley, received on the 31st July, 1803.

मार्क्विस वेल्सली के पत्रों में दौलतराव के इरादे में सन्देह उत्पन्न करनेवाला केवल एक पत्र मिलता है, जो 26 जुलाई, सन् 1803 को मुरादाबाद के कलेक्टर लीस्टर ने वेल्सली को लिखा। इस पत्र के साथ दो फ़ारसी पत्रों की नकलें थीं, जिनके विषय में कहा ज़ाता है कि सिंधिया ने सहारनपुर के पदच्युत नबाब बम्बू खां और रामपुर के पदच्युत नबाब गुलाम मोहम्मद खां के नाम भेजे थे, जिनमें सिंधिया ने उनसे अंगरेज़ों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की थी और जिनकी नक़ले लीस्टर को बम्बू खां से मिली। मूल पत्र न बम्बू खां ने लीस्टर को दिए, न लीस्टर ने वेल्सली को; और न कहीं मौजूद हैं। जो नकलें इधर से उधर तक भेजी गईं, उन पर तारीख तक नदारद। बम्बू खां अंगरेज़ों का ज़र-खरीद था, जिसका अधिक वृतान्त आगे चल कर दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त, युद्ध का एलान मार्क्विस वेल्सली ने 6 अगस्त को किया और लीस्टर का पत्र वेल्सली को 15 अगस्त को मिला। इसके अलावा, बम्बू खां का सारा चरित्र इतना नीच और अविश्वसनीय था इन पत्रों की भाषा इतनी लचर है और स्वयं लीस्टर के पत्र में लीस्टर का जालसाज होना इतना साफ़ ज़ाहिर है कि इन पत्रों की सचाई पर विश्वास करना या उन्हें युद्ध के कारणों में कोई स्थान देना सर्वथा असम्भव है।

माधोजी सिंधिया और मूदाजी भोंसले, दोनों ने ऐसे संकट के समय, जब कि अंगरेज़ कम्पनी के पैर भारत से उखड़ते हुए नज़र आते थे, इन विदेशियों की सहायता की थी। आज उन दोनों के वंशजों और उत्तराधिकारियों को अपने पूर्वजों की अदूरदर्शितता का दण्ड भोगना पड़ा।

पार्लियामेंट में दूसरे मराठा युद्ध का प्रश्न

मार्च, सन् 1804 में इस दूसरे मराठा युद्ध के औचित्य और अनौचित्य का प्रश्न इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट के सामने पेश हुआ। सर फिलिफ़ फ्रैन्सिस ने अपनी वक्तृता में मार्क्विस वेल्सली और उसके साथियों के छल-कपट, बसई की सन्धि के अन्याय, मराठा नरेशों की आद्योपान्त निर्दोषिता, फ़ान्सीसियों के भय की निर्मूलता और युद्ध के छेड़ने में कम्पनी की गर्हित स्वार्थपरता को बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ साबित किया। भारत के साथ अंगरेज़ों के सम्पर्क को दर्शाते हुए सर फ़िलिप फ्रैन्सिस ने कहा :

> **"भारत के साथ हमारा सम्बन्ध कैसे शुरू हुआ, इसकी बाबत मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि शुरू में हमारा सम्बन्ध केवल तिजारत का था। देशी नरेशों ने भी हम पर सन्देह नहीं किया, बल्कि हर तरह हमारे साथ अनुग्रह का व्यवहार किया। उन्होंने न केवल तिजारत करने और उससे खूब फ़ायदा उठाने के लिए हमें हर तरह की सुविधा प्रदान की, बल्कि ऐसी-ऐसी रिआयतें और माफ़ियां भी हमें दे दीं, जो उनकी अधिकांश प्रजा को भी प्राप्त न थीं। व्यापार की दृष्टि से विदेशी क़ौमों के साथ अपनी तिजारत को बढ़ने का मौक़ा देना देशी नरेशों के लिए बुद्धिमता थी, किन्तु जब कि उनकी तिजारती आंख खुली हुई थी, उनकी राजनैतिक आंख बन्द थी। उन्होंने उन असूलों पर काम नहीं किया, जिन असूलों पर चीनवालों ने काम किया और जिनके कारण यूरोपियन क़ौमें चीन पर अपनी सत्ता जमाने में सफल न हो सकीं।" ***

---

* "With regard to the origin of our connection with India, it was hardly necessary for me to remind the House, that it was originally purely commercial.

सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस ने यह भी दिखलाया कि किस तरह अंगरेज शासक भारतीय नरेशों के, और खास कर उस समय सिंधिया के, चरित्र पर बिल्कुल झूठे दोष लगा कर उसे बदनाम करते थे और किस तरह के छलों द्वारा उन नरेशों की स्वाधीनता हरते थे। फ़्रैन्सिस ने ज़ोर देकर कहा :

"पहले हमने तिजारत शुरू की, तिजारत से कोठियां हुईं, कोठियों से क़िले बन्दी, क़िलेबन्दी से सेनाएं, सेनाओं से देश विजय और विजयों से हमारी आजकल की हालत।"

इस वक्तृता के बाद सर फ़िलिप फ़्रैन्सिस का प्रस्ताव केवल यह था कि—"भारत में इलाक़े विजय करने और अपने राज्य बढ़ाने की योजनाएं करना अंगरेज़ क़ौम की इच्छा के विरुद्ध है।"

अंगरेज़ क़ौम के चुने हुए प्रतिनिधियों ने ज़बरदस्त बहुमत से इस प्रस्ताव को नामंज़ूर किया।

---

but it was marked on the part of the native princes with every appearance of good understanding, and even kindness. They not only afforded us every facility for carrying on an advantageous trade, but actually conferred on us immunities and exemptions which many of their own subjects did not enjoy. It was, in a mercantile point of view, wise in the native princes to encourage trade with foreign nations. But while their commercial eye was open, their political eye was closed. They did not act on those principles which had so effectually excluded European nations from the dominion of China......

* * * *

"......he said, with great emphasis, we first had commerce, commerce produced factories, factories produced garrisons, garrisons produced armies, armies produced conquests, and conquests had brought us into our present situation."—Sir Philip Francis, in the House of Commons, 14th March, 1804, *Hansard's Reports.*

28—220 M of I&B/80

तेइसवां अध्याय

साजिशों का जाल

मराठा नरेशों की परिस्थिति

जिस समय से अंगरेज़ों ने मराठों के साथ दोबारा युद्ध छेड़ने का निश्चय किया, उस समय से ही वेल्सली और उनके साथियों के सामने सबसे बड़ा काम गुप्त षड्यन्त्रों द्वारा मराठों के बल को तोड़ना था।

पेशवा अपनी राजधानी के ही अन्दर अंगरेज़ी सेना का कैदी था और जब तक सिंधिया या कोई दूसरा नरेश बाहर से सेना लेकर पूना न पहुंचता, तब तक के लिए अंगरेज़ों के विरुद्ध हाथ-पांव हिला सकना असम्भव था। महाराजा सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले, दोनों के साथ युद्ध अनिवार्य नज़र आता था। जसवन्तराव होलकर और सिंधिया के बीच उस समय मेल की कोशिशें हो रही थीं। जसवन्तराव पूना से उत्तर की ओर अपने राज्य में गया हुआ था। उसके पास एक ज़बरदस्त, सन्नद्ध और विजयी सेना थी। इसलिए अंगरेज़ों को इस समय सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं जसवन्तराव होलकर, सिंधिया और भोंसले, तीनों मिल न जाएं।

जसवन्तराव को सिंधिया से फोड़ने के प्रयत्न

इसीलिए पूना से लौटते हुए जसवन्तराव को अंगरेज़ों ने पेशवा और निज़ाम, दोनों के इलाक़ों में लूट-मार करने का मौक़ा दिया। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि पूना की लूट के समय कर्नल क्लोज़ जसवन्तराव के साथ था और औरंगाबाद की लूट में अंगरेज़ों का साफ़ हाथ था। इस बीच जब कि अंगरेज़ सिंधिया और भोंसले, दोनों को बराबर तंग करते रहे, जसवन्तराव को वे बराबर खुश रखने के प्रयत्न करते रहे। अंगरेज़ों की ही मदद और उकसाने से पूना से लौटने के बाद जसवन्तराव, तुकाजी होलकर के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी काशीराव होलकर को इन्दौर की गद्दी से उतार कर स्वयं होलकर राज्य का स्वामी बन गया। मार्क्विस वेल्सली के अनेक पत्र अत्यन्त खुशामद से भरे हुए उन दिनों महाराजा जसवन्तराव होलकर के पास पहुंचे। 16 जुलाई, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने क़ादिर नवाज़ खां नामक अपने एक गुप्त दूत को एक पत्र देकर जसवन्तराव के पास भेजा और लिखा कि क़ादिर नवाज़ खां 'मेरा पक्का विश्वस्त आदमी है और बाकी सब बातें आपसे ज़बानी कहेगा।' इस क़ादिर नवाज खां की मारफ़त अंगरेज़ों ने जसवन्तराव से बड़े-बड़े झूठे वादे किए। अदूरदर्शी जसवन्तराव फिर अंगरेज़ों की इन चालों में आ गया। जसवन्तराव और सिंधिया में मेल न हो सका। युद्ध के अन्तर में जब सिंधिया और भोंसले, दोनों के साथ अंगरेज़ों की सुलह हो गई और जसवन्तराव को पता चला कि साथ मेरे अंगरेज़ों के सब वादे झूठे थे, तब मजबूर होकर जसवन्तराव को स्वयं अंगरेज़ों से लड़ना पड़ा, किन्तु उस समय, जब कि मराठों की सत्ता को काफ़ी हानि पहुंच चुकी थी।

अमीर खां के साथ अंगरेज़ों की साज़िश

किन्तु जसवन्तराव पर भी अंगरेज़ों का विश्वास न था। केवल उसे बहकाए रखना ही उन्होंने अपने लिए काफ़ी नहीं समझा, जसवन्तराव की सेना के सरदारों को भी उन्होंने जसवन्तराव के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ कर रखना आवश्यक समझा। जसवन्तराव के साथ नागपुर से एक सरदार अमीर खां आया था, जिसके अधीन पच्चीस हज़ार सवार थे और जिस पर होलकर को सबसे अधिक भरोसा था। निज़ाम के आदमियों की मारफ़त अंगरेज़ों ने अमीर खां को अपनी ओर फोड़ा। 28 अप्रैल को, यानी बाजीराव के पूना पहुंचने से पहले, जब कि जसवन्तराव अभी पूना ही में मौजूद था, जनरल वेल्सली ने जनरल स्टुअर्ट को लिखा:

> **"होलकर के सरदार अमीर खां का, जिसके अधीन होलकर की सेना का सबसे बड़ा दल है, निज़ाम दरबार के साथ, निज़ाम की नौकरी करने के लिए पत्र व्यवहार हो रहा है। इसलिए 2 मई को पूना में हमारी शक्ति पहले से अधिक बढ़ी हुई होगी, और हमारे वहां सेना ले जाने का एक बड़ा उद्देश्य पूरा हो जाएगा। यदि अमीर खां के विद्रोह के कारण होलकर कमज़ोर न भी हो सका, तो कम-से-कम अमीर खां पर से होलकर का विश्वास कम अवश्य हो जाएगा।"***

कर्नल स्टीवेन्सन द्वारा इस सम्बन्ध में अंगरेज़ों और निज़ाम दरबार से बातचीत हो रही थी। दबाव पड़ने पर निज़ाम ने अमीर खां को 3,000 सवार सहित अपने यहां नौकर रखना स्वीकार कर लिया। किन्तु अमीर खां के सवारों की तादाद बहुत अधिक थी। 3 मई, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने हैदराबाद के रेज़िडेण्ट मेजर कर्कपैट्रिक को लिखा कि—"× × × मैं यह सिफ़ारिश किए बिना नहीं रह सकता कि अमीर खां के साथ चाहे कितने भी सवार हों, निज़ाम को उन्हें ज़रूर अपने यहां नौकर रख लेना चाहिए × × ×।"† इसी पत्र में इससे ऊपर के वाक्य में जनरल वेल्सली ने यह साफ़ धमकी भी दी कि यदि निज़ाम ने स्वीकार न किया, तो मुमकिन है कि होलकर के उत्तर भारत से लौटते समय निज़ाम का सरहदी इलाक़ा लुट जाए। औरंगाबाद और उसके आसपास के इलाके लुटने का हाल ऊपर आ चुका है। इसके बाद किसी को अणुमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि औरंगाबाद के लुटने में अंगरेज़ों का हाथ था। यहां तक कि लूट के बाद जब निज़ाम ने अंगरेज़ों से शिकायत की और चाहा कि औरंगाबाद की लूट का माल होलकर से निज़ाम को वापस दिला दिया जाए, तो वेल्सली ने साफ़-साफ़ होलकर का पक्ष लिया। किन्तु इस अवसर पर जनरल वेल्सली के पत्रों से मालूम

---

* "Meer Khan (Amir Khan?), Holkar's Sirdar, in command of his largest detachment, still keeps open his negotiation with the Nizam to enter His Highness' service; on the 2nd of May, therefore, we shall be in greater strength than ever at Poona, and have attained one great object of our expedition; and, if Holkar should not be weakened by the defection of Meer Khan, at least his confidence in that chief must be shaken."—Major General Wellesley's letter to Lieut. General Stuart, dated 28th April, 1803.

† "......when I am considering the means of defending His Highness' long line of frontier from the plunder of a light body of horse, I cannot refrain from recommending that, whatever may be Meer Khan's numbers, His Highness should take them into pay."—General Wellesley's letter to Major Kirkpatric, Resident at Hyderabad, dated 3rd May, 1803.

होता था कि कर्नल स्टीवेन्सन के निज़ाम के वज़ीर राजा महीपत राम से यह वादा तक कर लिया कि अमीर खां यदि होलकर को छोड़ कर आ जाए, तो उसकी सेना का आधा ख़र्च निज़ाम दे और आधा कम्पनी दे। बाद में काम निकल जाने पर अंगरेज़ इस वादे से साफ़ मुकर गए; और उलटा राजा महीपत राम पर झूठ का इलज़ाम लगाने लगे। ये सब पत्र वेल्सली के पत्रों में मौजूद हैं और इस स्थान पर उनसे लम्बे उद्धरण देना व्यर्थ है। अन्त में, जो-कुछ कारण रहा हो, अमीर खां निज़ाम के यहां नौकर नहीं रखा गया। फिर भी, इस पत्र-व्यवहार के कारण अमीर खां भीतर ही-भीतर से फटा रहा। इसमें भी सन्देह नहीं कि होलकर की नौकरी करते हुए भी अमीर खां को अंगरेज़ों से गुप्त धन मिलता था और यदि होलकर, सिंधिया या भोंसले का साथ दे बैठता, तो डर था कि ऐन मौके पर अमीर खां उसे दगा देता। उस समय में ही जरख़रीद अमीर खां ने अंगरेज़ों का इतना पक्का साथ दिया कि इन सेवाओं के बदले में सन् 1818 में उसे टोंक का नवाब बना दिया गया। टोंक के वर्तमान नवाब अमीर खां के ही वंशज हैं।

सिंधिया के विरुद्ध दूसरे षड्यन्त्र

जसवन्तराव होलकर को इस तरह निकम्मा कर देने के अतिरिक्त दौलतराव सिंधिया के राज्य के अंदर भी दौलतराव के विरुद्ध अंगरेज़ों की गुप्त साज़िशें लगभग पांच वर्ष से जारी थीं। 28 जून, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसके ऊपर 'अत्यन्त गुप्त और गूढ़'* ये शब्द लिखे हुए हैं और जिनमें इस तरह की साज़िशों के लिए लेक को विस्तृत हिदायतें दी गई हैं। वास्तव में, इस तरह की साज़िशों पर ही भारत के अन्दर ब्रिटिश सत्ता की बुनियादें रखी गई हैं। जनरल लेक को इस काम में मदद देने के लिए ग्रीम मरसर नामक एक अभ्यस्त कूटनीतिज्ञ उसका सहायक नियुक्त करके भेजा गया। 22 जुलाई, सन् 1803 को गवर्नर-जनरल की ओर से उसके सेक्रेटरी एडमान्सटन ने ग्रीम मरसर को एक 'अत्यन्त गुप्त' पत्र लिखा, जिसमें मरसर को महाराजा सिंधिया के मुख्य-मुख्य कर्मचारियों, सरदारों और सामन्तों के साथ साज़िशें करके उन्हें अपनी ओर फ़ोड़ने की हिदायत दी गईं। मरसर को आज्ञा दी गई कि तुम उन लोगों से यह वादा कर लो कि :

> **"यदि आप लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार, हिन्दोस्तान के उस भाग से दौलतराव सिंधिया की सेना को निकालने में, और यदि भविष्य में सिंधिया या कोई दूसरी बाहरी शक्ति उन प्रान्तों में अपनी सत्ता जमाने का प्रयत्न करे, तो उन प्रयत्नों को निष्फल कर देने में, उत्साह और तत्परता के साथ अंगरेज़ सरकार की मदद करेंगे, तो आपकी पैतृक जागीरों पर आपका बेरोक-टोक क़ब्ज़ा रहने दिया जाएगा।"†**

इस कठिन काम को पूरा करने के लिए कई योग्य अफ़सर मरसर के अधीन नियुक्त किए गए और इलाहाबाद, कानपुर और इटावा के कलेक्टरों को इस

* "Most Secret and Confidential."

† "......the undisturbed possession of their hereditary tenures on the condition of their zealous and ready co-operation with the British Government to the extent of their respective means, in expelling the troops of Daulat Rao Scindhia from that quarter of Hindostan, and preventing any future attempts

जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम टीपू सुलतान के
एक मूल कन्नड़ पत्र (सन् 1793) का फोटो

بسم الله الرحمان الرحیم
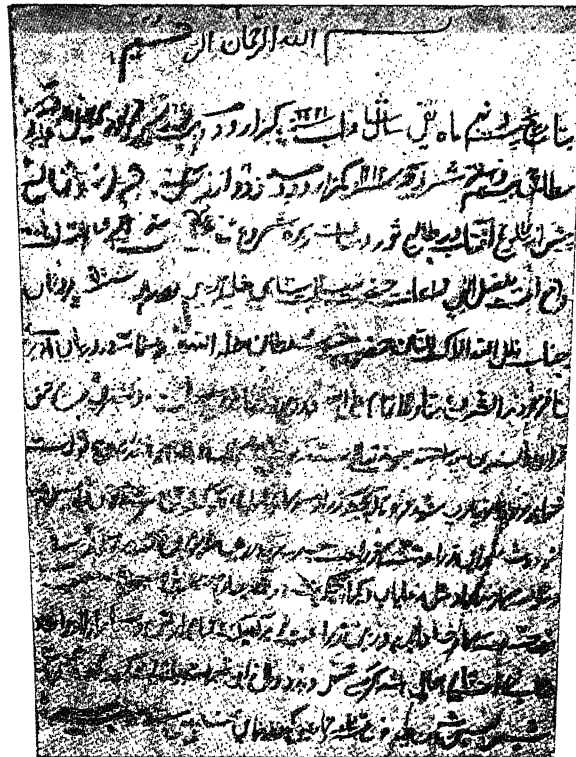
कृष्ण राजा सागर की आधारशिला पर
टीपू सुलतान के फ़ारसी शिलालेख का चित्र

जसवन्तराव होलकर

भरतपुर-नरेश राजा
रणजीत सिह
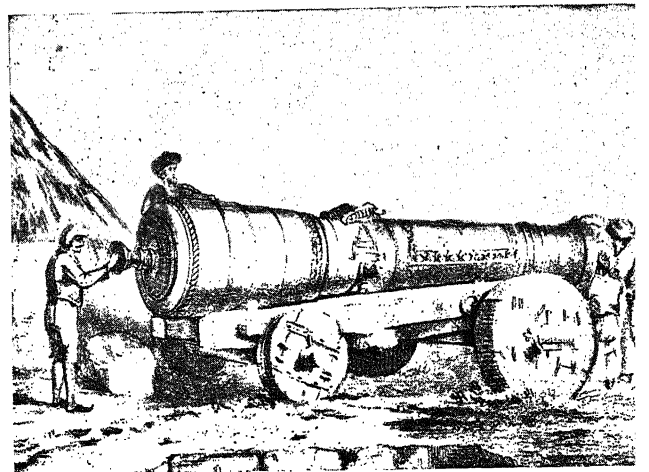
भरतपूर की एक
पीतल की तोप

बात की हिदायत दी गई की मरसर को अपने गुप्तचरों के खर्च के लिए जितने भी रुपयों की ज़रूरत हो और जितना रुपया मरसर मांगें, तुरन्त बिना पूछे भेज दें और उसे गवर्नर-जनरल के नाम लिख लें ।

27 जुलाई, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक के नाम एक अत्यन्त लम्बा और महत्वपूर्ण "गुप्त" पत्र लिखा, जिसमें, ब्योरेवार, भारत के उन नरेशों और सरदारों के नाम दिए, जिन्हें लोभ और रिश्वतें देकर सिन्धिया के विरुद्ध फ़ोड़ने की गवर्नर-जनरल ने लेक को हिदायत की। स्मरण रखना चाहिए कि उस समय तक अंगरेज़ों और सिंधिया में ज़ाहिरा सम्बन्ध "मित्रता" का था और "मित्रता" की ही बातचीत बराबर जारी थी।

सम्राट शाह आलम को सिंधिया से फोड़ना

दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध जिन भारतीय नरेशों के साथ मार्क्विस वेल्सली ने गुप्त साज़िशें शुरू कीं, उनमें सबसे ऊपर दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाह आलम का नाम था। अपने 27 जुलाई के उस पत्र में, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, मार्क्विस वेल्सली ने युद्ध के उद्देश्यों में से एक यह बताया था कि "दिल्ली सम्राट की नाममात्र की सत्ता को अपने हाथों में ले लिया जाएगा।" किन्तु इस पत्र के साथ ही गवर्नर-जनरल ने जनरल लेक के पास सम्राट शाह आलम के नाम एक दूसरा पत्र भेजा जिसमें उसने लिखा :

> **"सम्राट को पूरी तरह मालूम है कि ब्रिटिश सरकार के दिल में सम्राट और सम्राट के कुल की ओर सदैव किस तरह का मान और भक्ति रही है ।**
>
> **"जिस समय से सम्राट ने दुर्भाग्यवश अपनी रक्षा का काम मराठों की सत्ता को सौंप दिया है, तब से अब तक सम्राट और सम्राट के उच्च कुल को जो-जो हानि पहुंची है और जो-जो अपमान सहने पड़े हैं, उन सबसे माननीय कम्पनी को और भारत की ब्रिटिश सरकार को सदा दुख होता रहा है, और मुझे इस बात का गहरा रंज है कि अभी तक परिस्थिति ने इस बात का मौका नहीं दिया कि अंगरेज़ बीच में पड़ कर अन्याय, अमानुषिकता और लूट-खसोट के इस कष्टकर बन्धन से सफलतापूर्वक सम्राट की रक्षा कर सकें × × ×।"**

स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं वारेन हेस्टिंग्स ने धोखा देकर मुग़ल सम्राट को माधोजी सिंधिया के हवाले किया था और उस समय से अब तक सम्राट ने अपने साथ महाराजा सिंधिया के सलूक की किसी से कोई शिकायत न की थी। सम्राट शाह आलमे सानी की एक फ़ारसी कविता आज दिन तक प्रसिद्ध है, जिसमें सम्राट ने अनेक-अनेक दुखों का रोना रोते हुए दिल्ली के अनेक मुसलमान वज़ीरों और अमीरों के विश्वासघात की शिकायत की है । इसी कविता में सम्राट ने एक स्थान पर लिखा है :

> **"माधोजी सिंधिया फ़र्ज़न्द जिगर बन्देमन,**
> **हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगारिए मा।"**

अर्थात् "माधोजी सिंधिया, जो मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है, मेरे दुखों को दूर करने में लगा हुआ है ।"

---

on the part of that chieftain, or of any other foreign power, to establish an authority in these provinces."—Letter dated 22nd July, 1803, from Mr. Edmonstone, Secretary to Government, addressed to Mr. G. Mercer, marked 'Most Secret'.

इससे मालूम होता है कि दिल्ली सम्राट सिंधिया कुल के व्यवहार से कितना सन्तुष्ट था। किन्तु मार्क्विस वेल्सली का सारा पत्र ही छल और झूठ से भरा हुआ है।

इस पत्र के सम्बन्ध में मार्क्विस वेल्सली ने लेक को लिखा :

"मुनासिब यह होगा कि सम्राट के नाम का मेरा पत्र, जितने छिपा कर और सावधानी से हो सकता है, उतने छिपा कर और सावधानी से भेजा जाए। × × × सय्यद रज़ा खां बहुत दिनों से सम्राट के दरबार में रहता है और दौलतराव सिंधिया के यहां जो रेज़िडेण्ट रहता है, उसके एजेन्ट के तौर पर काम करता है। मैं समझता हूं, इस मौक़े पर उसका पूरा एतबार किया जा सकता है। × × ×

पत्र के साथ सय्यद खां को आप इस तरह की हिदायतें कर दें, जिस तरह की इस मौक़े के लिए आपको उचित मालूम हों। उस एजेण्ट को हिदायत कर दें कि दिल्ली में जिस कार्रवाई का भी उसे पता चले, उसकी ठीक-ठीक और ऐन समय पर वह आपको इत्तला भेजता रहे × × ×।"

सय्यद रज़ा खां की मारफ़त अनेक झूठे वादे इस समय अंगरेज़ों ने शाह आलम से कर लिए। भोले शाह आलम से वादा किया गया कि जो सत्ता मराठों ने उसके हाथों से छीनी थी, वह अंगरेज उसे फिर से दिलवा देंगे और वह फिर एक बार भारतीय साम्राज्य का क्रियात्मक अधिराज बना दिया जाएगा। जिस तरह कुछ वर्ष पहले मार्क्विस वेल्सली ने टीपू सुलतान के विरुद्ध मैसूर के प्राचीन राजकुलों के साथ साजिश की थी, उसी तरह अब उसने महाराजा सिंधिया के विरुद्ध दिल्ली सम्राट के साथ साज़िश की। थोड़े दिनों बाद गवर्नर-जनरल की आज्ञा से 2 दिसम्बर, सन् 1803 को जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से इन सब बातों का एक प्रतिज्ञापत्र—"तहरीरी इक़रारनामा"—लिख कर सम्राट शाह आलम की सेवा में पेश कर दिया।

सम्राट शाह आलम से छल

सम्राट शाह आलम इन झूठी आशाओं के सहारे दौलतराव सिंधिया और मराठों से फटा रहा। मार्क्विस वेल्सली का काम निकल गया। किन्तु मैसूर के पुराने राजकुल और सम्राट शाह आलम के भाग्य में अन्तर यह रहा कि जब कि मैसूर के राजकुल को टीपू के साथ विश्वासघात करने के बदले में अपने पैतृक राज की थोड़ी-सी फांक किसी शर्त पर मिल गई, दिल्ली सम्राट को दौलतराव सिंधिया के साथ विश्वासघात करने के बदले में अंगरेज़ों की ओर से भी केवल विश्वासघात ही प्राप्त हुआ। यह वही शाह आलम द्वितीय था, जिसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार कम्पनी को प्रदान किए थे। कुछ वर्ष बाद जब इस तहरीरी इक़रारनामे की शर्तों को पूरा कराने के लिए शाह आलम के उत्तराधिकारी सम्राट अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को वकील बना कर और इक़रारनामा देकर इंगलिस्तान भेजा, तब वहां के शासकों ने उत्तर दिया कि—"यह इक़रारनामा कम्पनी के कागज़ों में कहीं नहीं मिलता।"* उस समय तक भारत के मुग़ल सम्राट की प्रायः समस्त भूमि और उसके सदियों के अधिकार अंगरेज़

* "The Court would be surprised to hear that the document......called on *Ikrarnama* was nowhere to be found on the records of the Court, or in those of the Supreme Government of India,......"—Speech of the Chairman of Directors at the East India House, 18th December, 1848.

कम्पनी के हाथों में पहुंच चुके थे । इस विचित्र उत्तर को सुन कर पार्लियामेण्ट के सदस्य सलीवन रोज़ ने उठ कर कहा :

"××× **क्या यह शाह आलम का क़सूर है कि इक़रारनामा कम्पनी के कागजों में नहीं मिलता ।××× इस मामले में मुग़ल सम्राट के साथ गहरा विश्वासघात किया गया है ×××।**"†

सिंधिया के सामन्तों के साथ साजिशें

28 जुलाई, सन् 1803 को एक "सरकारी और गुप्त" पत्र में मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को मेरठ के निकट सरधने की प्रसिद्ध ज़ेबुन्निसा बेगम को अपनी ओर फोड़ने की हिदायत दी । ज़ेबुन्निसा बेगम, जो बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध है, सिंधिया की एक सामन्त थी। उसने सरधने के आस-पास एक खासी जागीर बना ली थी । मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को लिखा :

"××× **बेगम की जागीर ऐसे मौके पर है कि अच्छा यह होगा कि अंगरेज़ सरकार की ओर से बेगम के साथ जो कुछ वादे और प्रतिज्ञाएं की जाएं उनमें ऐसी शर्तें डाल दी जाएं, जिनसे उसकी जागीर भर के अन्दर कम्पनी के क़ायदे क़ानून आसानी से जारी किए जा सकें । मेरी प्रार्थना है कि बेगम के साथ पत्र-व्यवहार करने में आप इस लक्ष्य की ओर ध्यान रखिएगा ×××।**

××× **बेगम से कहा जाए कि दौलतराव सिंधिया की सेना में इस समय बेगम की जो चार पलटनें हैं, उन्हें वह वापस बुला लें और दोआब के जमींदारों और सरदारों पर जितना कुछ उसका प्रभाव है, उससे उन पर जोर दे कि वे सब अपने आपको अंगरेज़ सरकार के अधीन कर दें और अंगरेज़ी सेना को हर तरह मदद देने में अपनी शक्ति लगा दें ।**"‡

इस तरह, अंगरेज़ों ने बेगम समरू की मारफ़त सिंधिया के उत्तर की ओर के सामन्तों और ज़मींदारों को अपनी ओर मिलाने के लिए एक विस्तृत जाल फैलाया, जिसके सब फन्दों को सुलझा सकना अब असम्भव है ।

30 जुलाई, सन् 1803 को मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को एक और गुप्त पत्र लिखा, जिसमें यह हिदायत दी कि—"दौलतराव सिंधिया के जिन

† "Was it the fault of Shah Alam that this document was not upon record? ......In my judgment, a gross breach of faith has been committed in this case of the Moghul......"—Sullivan, at the East India House, 18th December, 1848.

‡ "......the local situation of the Begam's *Jageer* renders it desirable that in any engagement concluded with her on the part of the British Government, such conditions should be inserted as may facilitate the introduction of the British regulations into the *Jageer* and I request that Your Excellency's negotiations with the Begam may be directed to the accomplishment of this object.

"......she should be required to recall her battalions now serving in the army of Daulat Rao Scindhia, and to employ whatever influence she may possess over the *Zemindars* and Chieftains in the *Doab,* to induce them to place themselves under the authority of the British Government and to employ their resources in assisting the operations of the British arms."—Marques Wellesley's letter to Lieut. General Lake, dated 28th July, 1803, marked 'Official and Secret'.

सामन्तों, मुख्य कर्मचारियों या और प्रजा के नाम अभी तक मैंने आपको लिखे हैं, उनके अलावा और जो-जो सिंधिया के विरुद्ध भड़काए जा सकें, उन्हें भड़काया जाए। न्याय और लाभ, दोनों इसी में हैं कि हम सिंधिया की प्रजा और उसके कर्मचारियों के असन्तोष और विद्रोह से जितना लाभ उठा सकें, उठाएं।"* जनरल लेक को अधिकार दिया गया कि आप इन लोगों को अपनी ओर मिलाने के लिए जिस-जिस तरह के वादे उनसे करना उचित समझें, कर दें। गवर्नर-जनरल ने लिखा कि—"मेरा अन्तिम इरादा यह है कि जमना और गंगा और कुमायूं के पहाड़ों के बीच के देश में अंगरेज़ सरकार का कानून जारी कर दिया जाए।"† इस पत्र में ही गवर्नर-जनरल ने लेक को यह भी लिखा कि सहारनपुर के पास की गूजर क़ौम को, जो उस समय सिंधिया की प्रजा थी, "निहायत कामयाब तरीक़ों से खुश करके राज़ी किया जाए कि वे दौआब के अन्दर सिंधिया की ताक़त को उलटने में अंगरेज़ सरकार के साथ मिल जाएं"‡।

अभी तक युद्ध का एलान न हुआ था और अंगरेज़ और मराठा नरेश कहने के लिए एक-दूसरे के "मित्र" समझे जाते थे।

दौलतराव के विरुद्ध सिख सरकारों के साथ साजिशें

उत्तर-पश्चिम में पंजाब तक सिंधिया का राज था। पंजाब में उस समय सिखों की कई नई रियासतें पैदा हो रही थीं और लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह का सूर्य उदय हो रहा था। रणजीत सिंह, हैदरअली और शिवाजी के समान अशिक्षित, वीर और युद्धविद्या में अत्यन्त निपुण था, किन्तु उसमें न शिवाजी-जैसी दूरदर्शिता अथवा राजनीतिज्ञता थी और न हैदरअली-जैसा प्रचन्ड साहस और देशप्रेम। मार्क्विस वेल्सली को डर था कि कहीं सिखों की शक्ति इस युद्ध में मराठों के साथ न मिल जाए; और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वीर सिख यदि उस समय मराठों का साथ दे जाते तो 19वीं शताब्दी की ऐन शुरू में ही अंगरेज़ कम्पनी के

---

* "......the tributaries, principal officers, or other subjects of Daulat Rao Scindhia exclusively of those described in my General instructions to Your Excellency and in my instructions to Mr. Mercer, may be inclined to place themselves under the protection of the Company......it both just and expedient, that we should avail ourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his subjects or officers, and I accordingly desire, ...you will be pleased to decide on the degree and nature of the encouragement, proper to be given......

"I also authorize Your Excellency to give to all tributaries or others renouncing their allegiance to Scindhia, and acting sincerely in our favour, the most positive assurances of effectual protection in the name of the Company......

† "......it is my ultimate intention to extend the regulations of the British Government throughout the whole of the country, bounded by the rivers Ganges and Jumna, and by the mountains of Kumaon. A part of this territory is possessed by......Goojers, ...in the vicinity of Saharanpore.

‡ "Your Excellency's prudence will dictate the expediency of employing the most efficacious measures for the purpose of conciliating the Goojers, and of inducing them to unite with the British Government for the overthrow of Scindhia's power in the *Doab,* ......"—Marques Wellesley's 'Secret' letter to General Lake, dated 30th July, 1803.

पांव भारत से उखड़ गए होते । वेलसली ने कोशिश की कि सिख यदि इस समय अंगरेज़ों का साथ न दें, तो कम-से-कम तटस्थ रहें। 2 अगस्त, सन् 1803 को मार्क्विस वेलसली ने एक गुप्त और सरकारी पत्र में जनरल लेक को लिखा :

"जिन मुख्य-मुख्य सिख सरदारों के प्रभाव और प्रयत्नों से हम सबसे अधिक फ़ायदा उठा सकते हैं, वे पटियाले का राजा और वे सब छोटे-छोटे सरदार हैं, जिनके इलाक़े पटियाला और जमना के बीच में हैं । तथापि मैं समझता हूं कि लाहौर का राजा रणजीत सिंह सिखों में सबसे प्रधान गिना जाता है और सब सिख सरदारों के ऊपर उसका खासा प्रभाव है ।

× × ×

सिंधिया दरबार के रेजिडेण्ट के एजेण्ट ने जिन सिख सरदारों के साथ पहले (सन् 1800 में) पत्र-व्यवहार किया था, उनके नाम पत्र में आपके पास भेजता हूं, ताकि आप जिस समय और जिस तरह अत्यन्त उचित समझें, ये पत्र उनके पास भिजवा दें ।

× × ×

"चूंकि जिस युद्ध का हम इरादा कर रहे हैं, उसके मैदानों से लाहौर बहुत दूर है, इसलिए राजा रणजीत सिंह से केवल इस सहायता की आशा की जा सकती है कि वह दूसरे सिख सरदारों पर अपना प्रभाव डाल कर उन्हें अंगरेज सरकार के पक्ष में कर दे ।"

पंजाब का कुछ भाग उस समय दौलतराव सिंधिया के अधीन था और यहां के सिख सरदार दौलतराव को ख़िराज देते थे, इसलिए इस पत्र में आगे चल कर गवर्नर-जनरल ने लिखा :

"इनमें से जो सरदार मराठों के अधीन हैं और उन्हें ख़िराज देते है, उनसे शायद यह वादा करके कि अंगरेज सरकार आपकी रक्षा करेगी और भविष्य में आपका ख़िराज बिल्कुल माफ़ कर दिया जायगा, उन्हें मराठों से फोड़ा जा सके ।

× × ×

यदि उन सरदारों से सहायता मिलना असम्भव प्रतीत हो, तो कम-से-कम उन्हें तटस्थ रख सकना भी बड़े महत्व की बात होगी ।

"सिख सरदारों के साथ पत्र व्यवहार करने में मुनासिब होगा कि आप उन्हें यह भी सुझा दें कि यदि उन्होंने अंगरेज सरकार का किसी तरह से विरोध किया, तो आइन्दा उन्हें कितना खतरा है, और इतनी बलवान सरकार के साथ सम्बन्ध रखने में उन्हें क्या लाभ हो सकते हैं ।"

पत्र के अन्त में गवर्नर-जनरल ने लेक को हिदायत दी कि—"सिख सरदारों के साथ पत्र-व्यवहार करने में आप इस पत्र-व्यवहार को गुप्त रखने का ख़याल रखें और पूरी सावधानी से काम लें ।"*

---

* "The chiefs from whose influence or exertions the greatest benefit is to be derived, are the Raja of Patiala, and those petty chieftains who occupy the territory between Patiala and the Jumna. I understand, however, that Raja Ranjit Singh, the Raja of Lahore, is considered to be principal among the chiefs of the tribe of Sikhs, and to possess considerable influence over the whole body of the Sikh chiefs.

सतरहवीं सदी के अन्त और अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में सिखों की ताकत बिल्कुल शुरू हो रही थी। उनका राजनैतिक महत्व और साम्राज्य संगठन अभी बहुत कम सामने दिखाई देता था। सन् 1801 में एक स्वतन्त्र अंगरेज़ आततायी, जार्ज टामस, कुछ रुहेला पठान सवारों की सेना जमा करके प्राय: सिखों के इलाक़ों में लूट-मार किया करता था। जब कि मार्क्विस वेल्सली भारत के दूसरे नरेशों को सबसीडियरी सिंधियों के जाल में फंसाने की पूरी कोशिश कर रहा था, उसी समय सिखों को उसने जान-बूझ कर खासा आज़ाद छोड़ रखा था। इसी में उस समय अंगरेज़ों का हित था। मार्क्विस वेल्सली की चाल ठीक और सफल साबित हुई। मराठों के साथ एक दूसरे युद्ध के समय सिख सरदारों और राजाओं ने अंगरेज़ों का यथेष्ट साथ दिया, और बहुत दरजे तक उस संकट में मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देने के कारण ही सिखों और ख़ास कर महाराजा रणजीत सिंह की सत्ता ने बाद में इतनी अधिक उन्नति की।

रुहेला नवाब के विरुद्ध योजना

रामपुर का पदच्युत रुहेला नवाब ग़ुलाम मोहम्मद खां इस समय सिंधिया के पक्ष में था। इसलिए 22 अगस्त, सन् 1803 को गवर्नर-जनरल ने जनरल लेक को एक गुप्त पत्र लिखा कि बम्बू खां को बढ़ा कर उसकी मदद से ग़ुलाम मोहम्मद खां को गिरफ्तार करने की कोशिश की जाए, और लिखा:

"यदि आपकी यह राय हो कि × × × नक़द रुपये मिलने की आशा से बम्बू खां इस काम में अधिक जोश के साथ प्रयत्न करेगा, तो आपको अधिकार

"I transmit to Your Excellency, for the purpose of being forwarded, at such time and in such manner as may appear to Your Excellency to be most proper, letters to those among the Sikh chiefs with whom the agent of the Resident with Daulat Rao Scindhia communicated (in the year 1800).

* * * *

"Advertising to the great distance of Lahore from the scene of intended operations, the only support to be expected from Raja Ranjit Singh, is the exertion of his influence with the other Sikh chieftains, to induce them to favour the cause of the British Government.

* * * *

"Such of those chieftains as are subject to the control and exactions of the Maratha Power, may perhaps be detached from the interests of that nation by promises of protection from the British Government, and of exemption from the payment of tribute in future.

* * * *

"If it should appear impracticable to obtain the co-operation of those chieftains, it would still be an object of importance to secure their neutrality.

"In your communications to the Sikh chieftains it may be proper that Your Excellency should suggest to their consideration the danger to which they will here after be exposed by any opposition to the interests of the British Government, and the advantages which they may derive from a connection with so powerful a state.

* * * *

"......require the observance of secrecy and caution in Your Excellency's communications with those chieftrains."—'Secret and Official letter of Marques Wellesley to General Lake, dated 2nd August, 1803.

है कि जितनी बड़ी रक़म का भी आप उचित समझें, वादा कर लें और उससे कहला भेजें ।" *

मालूम नहीं कि इस बम्बू खां ने अंगरेज़ों की क्या-क्या सेवाएं कीं और अन्त में उसे क्या इनाम मिला ।

भरतपुर के राजा को लोभ

भरतपुर का राजा रणजीत सिंह भी सिंधिया के ख़ास सामन्तों में से था । मार्क्विस वेल्सली के नाम जनरल लेक के 13 अगस्त, सन् 1804 के एक पत्र के लिखा है कि अंगरेज़ों ने भरतपुर के राजा से यह वादा किया कि यदि आप सिंधिया के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद देंगे, तो हमेशा के लिए आपका ख़िराज माफ़ कर दिया जायगा और चार लाख रुपये सालाना का एक नया इलाका आपको दिया जायगा । इस नए इलाके के लिए अंगरेज़ों ने राजा रणजीत सिंह को सनद लिख कर दे दी ।

किन्तु इन सब साज़िशों के बाद भी दौलतराव सिंधिया की विशाल सेना को जीत सकना मार्क्विस वेलसली के लिए आसान काम न था । इन सबके अतिरिक्त वेल्सली ने सिंधिया की सेना के अन्दर विश्वासघाती पैदा किए ।

सिंधिया की सेना में विश्वासघातक यूरोपियन अफ़सर

माधोजी सिंधिया ने वारेन हेस्टिंग्स के कहने में आकर कुछ यूरोपियन अफ़सरों को, जिनमें अधिकतर फ़्रान्सीसी थे, अपनी सेना में उच्च पदों पर नियुक्त कर रखा था । अपने राज्य और विशेषकर अपनी सेना के अन्दर यूरोप-निवासियों को नौकर रखने से बढ़ कर घातक भूल कभी भी किसी भारतीय नरेश ने नहीं की । माधोजी सिंधिया के उत्तराधिकारी को अब अपने पितामह की ग़लती का फल भोगना पड़ा ।

सिंधिया की सेना का एक मुख्य सेनापति, कप्तान पैरां फ़्रान्सीसी था, जिसके अधीन ख़ास-ख़ास पदों पर और भी कई यूरोप-निवासी थे । ये सब लोग कवल धन के उपासक थे । मार्क्विस वेल्सली ने एक एलान प्रकाशित किया, जिसमें उसने दौलतराव सिंधिया के सब यूरोपियन मुलाज़िमों को अपने मालिक के साथ विश्वासघात करने के बदले में बड़ी-बड़ी रकमें इनाम में देने का वादा किया । मार्क्विस वेल्सली को इस काम में यथेष्ट सफलता हुई । इन यूरोपियन मुलाज़िमों के कुसमय के विश्वासघात ने दौलतराव सिंधिया को सबसे अधिक धक्का पहुंचाया ।

मराठों के विरुद्ध मार्क्विस वेल्सली की और उसके साथियों की साज़िशों की यह समस्त कहानी केवल अंगरेज़ों की तहरीरों के अनुसार है । किन्तु मराठों के पक्ष का लिखा हुआ कोई वृत्तान्त इस समय हमारे सामने नहीं है, जिसके कारण इस घृणित कपटजाल के पूरे और विस्तृत रूप पर काल ने अब सदा के लिए परदा डाल दिया है ।

---

*"........If Your Excellency should be of opinion that the offer of a pecuniary reward is calculated to stimulate the exertions of Bamboo Khan...... Your Excellency is at liberty to convey to him the offer of such a reward to any extent which Your Excellency may deem proper."—Marques Wellesley's **'Secret' letter, dated 22nd August, 1803 to General Lake.**

चौबीसवां अध्याय

साम्राज्य-विस्तार

अंगरेज़ों का सैन्य जाल

छः बड़ी-बड़ी सेनाएं छः ओर से महाराजा दौलतराव सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले के इलाक़ों पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सबसे नीचे दक्षिण में, जहां मैसूर की सरहद पेशवा और निज़ाम की सरहदों से मिलती थी, एक विशाल सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन थी, जिसमें मैसूर की सबसीडियरी सेना भी शामिल थी। उससे कुछ ऊपर पूना के पास एक दूसरी विशाल सेना गवर्नर-जनरल के छोटे भाई जनरल वेल्सली के अधीन थी, जिसमें पेशवा की नई सबसीडियरी सेना खास थी। तीसरी सेना पूना से उत्तर-पूरब के कोने में औरंगाबाद के निकट करनल स्टीवेन्सन के अधीन थी, जिसमें निज़ाम की ज़बरदस्त सबसीडियरी सेना मुख्य थी। चौथी इन सबसे बड़ी सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन थी, जिसमें अवध की सबसीडियरी सेना शामिल थी। पांचवीं सेना राजा राघोजी भोंसले के कटक प्रान्त की सरहद पर गंजम नामक स्थान में कर्नल कैम्पबेल के अधीन थी, जिसमें बंगाल की सेना शामिल थी और छठीं सेना गुजरात में कर्नल मरे के अधीन थी, जिसमें गायकवाड़ की सबसीडियरी सेना भी थी। इनमें से केवल गंजम की सेना को छोड़ कर बाकी पांचों सेनाएं महाराजा सिंधिया के विशाल राज्य की सरहद पर इधर से उधर तक फैली हुई थीं। इन विशाल सेनाओं के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। एक यह कि अफ़सरों को छोड़ कर इन सेनाओं में बहुत थोड़ा भाग विदेशी सिपाहियों का और अधिकांश भाग भारतीय सिपाहियों का था। दूसरे यह की लगभग यह सारा विशाल सैन्य दल विविध भारतीय नरेशों की नौकरी में था और इन भारतीय नरेशों ही के ख़ज़ानों से उसका सारा खर्च दिया जाता था।

चांदी की गोलियों से अहमदनगर विजय

पूना और औरंगाबाद के बीच में अहमदनगर में सिंधिया का एक अत्यन्त मज़बूत क़िला था। यह क़िला इतना मज़बूत था और इस ढंग से बना हुआ था कि मानों वह अनन्त समय तक मोहासरा बरदाश्त कर सकता था। अंगरेज़ जानते थे कि अहमदनगर और वहां के क़िले पर कब्ज़ा कर लेने का प्रभाव सिंधिया की दक्षिणी प्रजा पर बहुत ज़बरदस्त पड़ेगा। 6 अगस्त को गवर्नर-जनरल ने युद्ध का एलान किया, किन्तु उससे पहले ही जनरल वेल्सली अपनी सेना सहित अहमदनगर की ओर रवाना हो चुका था। उधर गवर्नर-जनरल इससे भी पहले से सिंधिया के उन कर्मचारियों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहा था, जो अहमदनगर के क़िले और नगर की रक्षा के लिए नियुक्त थे। 7 अगस्त को जनरल वेल्सली की सेना अहमदनगर के पास पहुंच गई। पेशवा की सबसीडियरी सेना उसके साथ ही थी। उसी दिन वेल्सली की ओर से एक एलान नगर में प्रकाशित किया गया, जिसके शुरू ही में यह साफ़ झूठ लिखा था :

"चूंकि दौलतराव सिंधिया और बरार के राजा ने अंगरेज़ सरकार और राव पण्डित प्रधान (अर्थात् पेशवा) और नवाब निज़ामअली, तीनों को युद्ध की धमकी दी है × × × इत्यादि ।"

इस एलान में आगे चल कर वेलसली ने नगर-निवासियों और आमिलदारों की ओर अपनी मित्रता दरशाते हुए कम्पनी और पेशवा, दोनों के नाम पर उन्हें आज्ञा दी कि आप लोग नगर को पेशवा की सेना (?) के सुपुर्द कर दें । दूसरी ओर से अभी तक महाराजा सिंधिया की कोई सूचना या आज्ञा अहमदनगर के आदमियों के पास न पहुंची थी । नगर-निवासियों पर वेलसली के ऐलान का यथेष्ट प्रभाव पड़ा । प्रजा ने अंगरेज़ों को अपना शत्रु नहीं, वरन् मित्र समझा । 8 अगस्त को वेलसली अहमदनगर पहुंचा, नगर तुरन्त अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । किन्तु अहमदनगर के किले पर इतनी आसानी से अंगरेज़ों का कब्ज़ा न हो सका । वेलसली ने क़िलेदार को कहला भेजा कि क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दो । क़िलेदार ने कुछ संकोच दिखलाया । क़िले पर गोलाबारी करने की आवश्यकता हुई । सर जैम्स कैम्पबेल ने 'अहमदनगर गज़ेटियर' (पृष्ठ 695) में लिखा है :—

"जब नगर पर क़ब्ज़ा करने के बाद 9 अगस्त को जनरल वेल्सली ने क़िले का चक्कर लगाया, तब मालूम हुआ कि चारों ओर के पुश्तों ने क़िले की दीवार को इतनी पूरी तरह बचा रखा था कि गोलाबारी करने के लिए कोई जगह नज़र न आती थी । तब भिंगार के देशमुख रघुराव बाबा को चार हज़ार रुपये रिश्वत दी गई, जिस पर उसने पूरब की ओर से हमला करने का एक स्थान अंगरेज़ों को बता दिया ।"*

न जाने कितने रघुराव बाबाओं को इस तरह रिश्वतें दी गई होंगी ! दो दिन तक नाममात्र को कुछ लड़ाई हुई । अन्त में 11 अगस्त को क़िलेदार ने क़िला अंगरेज़ों के लिए ख़ाली कर दिया; लिखा है : "इस शर्त पर कि क़िलेदार और उनकी सेना को सही सलामत बाहर निकल जाने दिया जाए और उसकी निजी जायदाद उसके कब्ज़े में रहने दी जाए ।" जनरल वेलसली लिखता है कि जब अंगरेज़ क़िले में घुसे "तब क़िला निहायत अच्छी हालत में था"। ज़ाहिर है कि अहमदनगर के क़िले की दीवारें चांदी या सोने की गोलियों से तोड़ी गईं, लोहे की गोलियों से नहीं ।

13 अगस्त को वेलसली ने उसी तरह का एक दूसरा एलान प्रकाशित किया, जिसमें कम्पनी और पेशवा की ओर से कप्तान ग्रैहम को अहमदनगर और उसके पास के सब इलाक़े का प्रबन्ध करने के लिए नियुक्त किया । वेलसली स्वयं ग्रैहम की सहायता के लिए कुछ दिन अहमदनगर में रह कर 18 अगस्त को अपनी सेना सहित औरंगाबाद की तरफ़ बढ़ा ।

---

* "When after capturing the town, General Wellesley reconnoitred the fort on the 9th August, the complete protection which the glacis afforded to the wall made it difficult to fix on a spot for bombardment. Raghu Rao Baba, the *Deshmukh* of Bhingar, received a bribe of four hundred pounds (Rs. 4,000) and advised an attack on the East face."—'*Ahmednagar Gazetteer,*' edited by Sir James Campbell, page 695.

पेशवा से गोल-मोल वादा

अहमदनगर के इलाक़े के ऊपर वेलसली ने 'कम्पनी और पेशवा' के नाम पर क़ब्ज़ा किया । पेशवा ही मराठा साम्राज्य का प्रधान और सिंधिया राज्य का न्यायोचित अधिराज था । क़ायदे के अनुसार यह इलाक़ा तुरन्त पेशवा के सुपुर्द हो जाना चाहिए था और पेशवा ही की इच्छा के अनुसार उसका प्रबन्ध होना चाहिए था । पेशवा भीतर से अंगरेज़ों की इस सारी कार्रवाई से असन्तुष्ट, किन्तु लाचार था । इसलिए अहमदनगर पर क़ब्ज़ा करते ही वेल्सली को एक कठिनाई का सामना करना पड़ा । एक ओर वह इस इलाक़े पर अंगरेज़ों का पूरा अधिकार चाहता था और दूसरी ओर किसी तरह झूठे-सच्चे वादों से पेशवा को भी सन्तुष्ट रखना ज़रुरी था । 13 अगस्त को वेलसली ने पूना के रेज़िडेण्ट कर्नल क्लोज़ को लिखा :

> **"मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि अहमदनगर के बारे में पेशवा के मन में कोई ईर्ष्या पैदा न होने पाए । × × × मैं समझता हूं कि आप इस बारे में पेशवा बाजीराव से बातचीत करके उसे समझाएं कि यह स्थान हमारे लिए कितना ज़रूरी है । × × × आप पेशवा को यह भी विश्वास दिला दें कि लगान का ठीक-ठीक हिसाब रखा जाएगा और पेशवा का हिस्सा पेशवा को दिया जाएगा ।"***

इसके बाद एक ही दिन के अन्दर वेलसली ने और रुख बदला और 14 अगस्त, सन् 1803 को कर्नल क्लोज़ को लिखा :

> **"कल आपको पत्र लिखने के बाद मुझे यह खयाल आया कि यह अधिक अच्छा होगा कि हम अहमदनगर का आधा लगान देने का पेशवा से वादा न करें या इसकी आशा अभी उसे न दिलाएं, बल्कि आमतौर पर उससे यह कह दें कि इस इलाक़े का लगान युद्ध का खर्च पूरा करने के काम में लाया जाएगा और हिसाब पेशवा के पास भेज दिया जाएगा । किन्तु एक बड़ा काम यह है कि जिस तरह भी हो सके, पेशवा को इस बात के लिए रज़ामन्द कर लिया जाए कि इलाक़े पर क़ब्ज़ा हमारा ही रहे, क्योंकि पूना के साथ हमारा सम्बन्ध रहने के लिए यह स्थान अत्यन्त आवश्यक है ; और यदि पेशवा इस बात के लिए रज़ामन्द हो सके, तो उसे आधा लगान देने या न देने को मैं इतने महत्व की बात नहीं समझता ।**
>
> **मेरी प्रार्थना है कि आप इस विषय पर हर पहलू से सोच लें । × × × जब तक आपका जवाब न आएगा, मैं आपको इस मामले में खुला पत्र न लिखूंगा ।"†**

---

* "I am very anxious that the Peshwa should feel no jealousy about this place (Ahemednagar)......I wish that you would speak to Raghunath Rao (*i.e.*, the Peshwa Baji Rao, son of Raghunath Rao) upon the subject, point out to him how necessary the place is for us, ...you may also assure him that a faithful account shall be kept of the revenues, and credit given to the Peshwa for his portion of them."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 13th August, 1803.

† "Since writing to you yesterday, it has occurred to me that it would be better not to hold out to the Peshwa any promise or prospect of having half the revenue of Ahmednagar, but to tell him generally that the revenue shall be applied to pay the expenses of the war, and that the accounts of them shall be communicated to him. One great object, however, is to reconcile

वास्तव में, वेल्सली पेशवा को धोखा दे रहा था। वह निश्चय कर चुका था कि पेशवा को एक कौड़ी भी अहमदनगर की मालगुजारी में से न दी जाएगी। किन्तु उसे इस बात का डर था कि कहीं पेशवा मौक़ा पाकर पूना से न निकल जाए या अंगरेज़ों के साथ युद्ध का एलान न कर दे और दक्षिण के जागीरदार अंगरेज़ों के विरुद्ध पेशवा की मदद के लिए खड़े न हो जाएं, क्योंकि इन जागीरदारों को भी अंगरेज़ अनेक बार धोखा दे चुके थे। इसलिए पेशवा को खुश रखना जरूरी था। मैसूर की सरहद पर जनरल स्टुअर्ट के अधीन जो सेना रखी गई थी, उसका भी उद्देश्य यही था कि "दक्षिण के मराठा जागीरदारों पर धाक क़ायम रखी जाए।"*

17 अगस्त को जनरल वेल्सली ने करनल क्लोज़ को लिखा :

"यदि पेशवा बाजीराव इस गोल-मोल वादे से सन्तुष्ट हो जाए कि जो इलाक़ा हमने जीता है, उसका उपयोग दोनों मित्र सरकारों के फ़ायदे के लिए किया जाएगा, तो सबसे अधिक आसानी रहेगी × × ×।

किन्तु मैं इस बात को हद दरजे महत्व की समझता हूं कि जहां तक हो सके, पेशवा के मन को सन्तुष्ट रखना जरूरी है, ताकि अंगरेज़ों के साथ जो सन्धि उसनें की है, उस पर क़ायम रहनें के इरादे में वह बिल्कुल डांवाडोल होने न पाए, नहीं तो डर है कि दक्षिण के जागीरदार कम्पनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ देंगे।"†

पेशवा के मन्त्रियों को रिश्वतें

पेशवा के इरादों की ख़बर रखने के लिए और इस काम के लिए कि पेशवा पूना से बाहर न निकलने पाए, अंगरेज़ों ने पेशवा के मन्त्रियों को खूब रिश्वतें दीं। 24 अगस्त को जनरल वेल्सली ने मेजर शा को लिखा :

" नहीं समझता कि पेशवा पूना से भागने की कोशिश करेगा। यदि पेशवा चाहे भी, तो वह बिना उसके मन्त्रियों को ख़बर हुए भाग सकता है। आपने कर्नल

---

his mind to our keeping possession of the country, which is absolutely necessary for our communications with Poona; and provided that is effected, I think it is immaterial whether he has half the revenues or not.

* * * *

"I beg you to turn this subject over in your mind, ...I will delay to write you a public letter upon it till I shall receive your answer."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 14th August, 1803.

* "Overawing the Southern Maratha Jagirdars."—G. Stuart's Despatch to the Governor-General, 8th August, 1803.

† "If the Peshwa Baji Rao should be satisfied with a general assurance that the conquered territory is to be applied to the benefit of the allies, it will be most convenient.

"But I consider it to be an object of the utmost importance that the Peshwas' mind should be satisfied as far as possible, in order that there may appear no wavering in his intention to adhere to the alliance on which the southern *Jagirdars* might found acts of hostility against the Company." —General Wellsley's letter to Colonel Close, dated 17th August, 1803.

क्लोज़ के नाम मेरे पत्रों से देखा होगा कि मैंने क्लोज़ पर ज़ोर दिया है कि सब बातों की ठीक-ठीक खबर रखने के लिए मन्त्रियों को धन दिया जाए ।

जब तक युद्ध खत्म न हो जाए, हम पूना की गवरनमेण्ट को ठीक करने की तदबीर नहीं कर सकते । वहां की गवरनमेण्ट की हालत खराब अवश्य है फिर भी उसे अभी ऐसी ही रहने देना होगा । यदि हम इस समय उसे बदलने की कोशिश करेंगे, तो हमें अपने पीछे की ओर भी लड़ाई लड़नी पड़ जाएगी, जिससे हम बरबाद हो जाएंगे ।"*

कर्नल क्लोज़ के नाम के जिन पत्रों का ऊपर ज़िक्र किया गया है, वे वेल्सली के छपे हुए पत्रों में कहीं नहीं मिलते, जिसने ज़ाहिर है कि मराठों की सत्ता का सर्वनाश करने के लिए अंगरज़ों ने जो-जो कार्रवाइयां कीं, उनमें से अनेक पर अब सदा के लिए परदा पड़ चुका है। सम्भव है कि बेछपे पत्रों से कुछ और भेद खुल सकते। यह भी ज़ाहिर है कि अंगरेज़ जिस तरह सिंधिया और भोंसले के नाश के प्रयत्न कर रहे थे, उसी तरह अपने 'मित्र' और 'साथी' पेशवा बाजीराव के नाश का भी पूरा इरादा कर चुके थे, और उसके साथ इस समय हर तरह के छल में काम ले रहे थे । पेशवा के मन्त्रियों को रिश्वतें देने के सम्बन्ध में जनरल वेल्सली ने 28 सितम्बर को कर्नल क्लोज़ के नाम एक और पत्र में लिखा :

"लार्ड वेल्सली (गवर्नर जनरल) ने पेशवा के मन्त्रियों को बड़ी-बड़ी रकम देने का मामला हाथ में ले लिया है । किन्तु × × ×

"पेशवा का कोई मन्त्री है ही नहीं । पेशवा अकेला है, और अकेला क्या चीज़ है ! इसलिए मेरी राय में हमें उन लोगों को रुपये देने चाहिएं, जो पेशवा के मन्त्री समझे जाते हैं और मन्त्री कहलाते हैं, इसलिए नहीं कि सन्धि के उद्देश्यों के अनुसार वहां के शासन का काम चलाया जाए, जिस उद्देश्य से कि हम हैदराबाद में रुपये खर्च करते हैं, बल्कि इसलिए कि पेशवा की गुप्त सलाहों की सब खबरें हमें मिलती रहें, ताकि जब जरूरत हो, हम पेशवा को समय पर रोक सकें ।"†

---

* "I have no idea that the Peshwa will attempt to fly from Poona; or that if he should be so inclined he could carry his plan into execution without the knowledge of his ministers. You will have observed from my letter to Colonel Close, that I have urged him to pay the ministers, in order to have accurate information of what passes.

"We cannot contrive to settle the Government at Poona till the conclusion of the War. Bad as the situation of the Government is, it must be allowed to continue. If we were to attempt to alter it now, we should have a contest in our rear, which would be ruinous."—General Wellesley's letter to Major Shawe, dated 24th August 1803.

† "Lord Wellesley has taken up the question of paying the Peshwa's ministers upon a great scale.

* * * *

"The Peshwa has no ministers. He is everything himself and everything is little. In my opinion, therefore, we ought to pay those who are supposed to be and are called his ministers, *not to keep the machine of Govern-*

भारतीय नरेशों के मन्त्रियों को रिश्वतें देकर उनसे अपने स्वामियों के साथ विश्वासघात कराना उन दिनों अंगरेज़ कम्पनी की एक सामान्य नीति थी । हैदराबाद और पूना, दोनों दरबारों की इस समय यही हालत थी ।

पेशवा को अहमदनगर देने का प्रश्न

युद्ध के समाप्त होते ही अहमदनगर के बारे में 11 नवम्बर, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने गवर्नर-जनरल को साफ़ लिख दिया कि जो इलाक़ा हमने जीता है, उसका कोई भाग पेशवा को न दिया जाए, "अहमदनगर का क़िला अंगरेज़ सरकार के ही क़ब्ज़े में रहे", और 'सूरत अट्टवेसी', जो पेशवा ही का इलाक़ा था, पेशवा को इस शर्त पर लौटा दिया जाए "कि पेशवा पहले बसई की सन्धि में कुछ और नई बात जोड़ना स्वीकार कर ले ।"*

दौलतराव की तैयारी

अब हम फिर जनरल वेल्सली और उसकी सेना की ओर आते हैं । 18 अगस्त को जनरल वेल्सली ने अहमदनगर छोड़ा और कर्नल स्टीवेन्सन की सेना के साथ मिलने के उद्देश्य से 24 अगस्त को गोदावरी पार की । उधर सिंधिया और बरार के राजा ने भी अहमदनगर के पतन का समाचार सुनते ही, जितनी शीघ्रता से हो सका, थोड़ी-बहुत तैयारी करके निज़ाम के इलाक़े की ओर चढ़ाई की । दौलतराव सिंधिया की अवस्था उस समय केवल 23 वर्ष की थी, फिर भी जिस अपूर्व योग्यता के साथ इस थोड़े-से समय में उसने अपने रहे-सहे अनुयायियों को जमा करके अंगरेज़ों के मुकाबले की तैयारी की, उस योग्यता की उसके शत्रुओं ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है ।

भारतीयों में राष्ट्रीयता की कमी

जनरल वेल्सली के एक पत्र में लिखा है कि वेल्सली ने जगह-जगह अपने गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे, जो उसे मराठा सेनाओं की स्थिति, कूच इत्यादि की सूचना देते रहते थे । ये गुप्तचर सिंधिया और भौंसले की ही प्रजा थे और उन्हीं की मदद से सिंधिया की सेना के अनेक लोगों को वेल्सली ने अपनी ओर मिला रखा था । अंगरेज़ों का इस सरलता के साथ अनेक भारतीयों को अपने देश और अपने राजा के विरुद्ध विदेशियों की ओर मिला सकना प्रकट करता है कि भारतवासियों में उस समय देश और राष्ट्रीयता के भावों की भयंकर कमी थी । इन गुप्तचरों के कारण वेल्सली के लिए अपनी सुविधा के अनुसार युद्ध का स्थान और समय नियत करना आसान हो गया ।

---

ment in motion, in consistence with the objects of the alliance as we do at Hyderabad, but to have intelligence of what passes in the Peshwa's Secret councils in order that we may check him in time when it may be necessary."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 28th September, 1803.

* "......before this territory (Surat Attavesy) should be ceded to His Highness the Peshwa, he ought to be required to consent to the improvement of the defensive alliance......"—Letter from General Wellesley to the Governor-General, dated 11th November, 1803.

29—220 M of I&B/80

असाई का संग्राम

23 सितम्बर, सन् 1803 को निज़ाम की उत्तरी सरहद पर बरार की सरहद से मिले हुए असाई नामक गांव में मराठों की और कम्पनी की सेनाओं के बीच एक प्रसिद्ध संग्राम हुआ, जो भारत के 'निर्णायक' संग्रामों में गिना जाता है और जिसका, निस्सन्देह, इस देश के अन्दर ब्रिटिश सत्ता के विस्तार पर बहुत प्रभाव पड़ा ।

दौलतराव सिंधिया के साथ उस समय लगभग पचास हज़ार पैदल, बहुत-से सवार और एक ज़बरदस्त तोपख़ाना था । दौलतराव इस भ्रम में कि अंगरेज़ों की मुख्य सेना हैदराबाद में है, अपने सवारों सहित तेज़ी के साथ हैदराबाद की ओर बढ़ा चला गया । उसकी पैदल और तोपख़ाने की सेना कुछ पीछे रह गई । कहते हैं कि उसी समय दशहरे का त्योहार पड़ा । दशहरा मनाने के लिए इस पीछेवाली सेना ने असाई में कुछ देर कर दी। यहां तक कि आस-पास चारे की कमी हो गई । ठीक 23 तारीख को तोपखाने के तमाम बैल खोल कर चरने के लिए दूर भेज दिए गए ।

वेलसली को इन सब बातों का पता था अथवा ये सब बातें पहले से तय थीं, क्योंकि सिंधिया की सवार सेना के अफ़सर मराठे थे, किन्तु पैदल और तोपख़ाने की सेना में अनेक अफ़सर यूरोपियन थे, जिन्हें अंगरेज़ पहले से ही लोभ देकर अपनी ओर मिला चुके थे। इन्हीं यूरोपियनों द्वारा उस सेना के अनेक हिन्दोस्तानी अफ़सरों को भी अंगरेज़ों ने अपनी ओर कर लिया था । इन विश्वासघातकों में से कुछ लोग शुरू ही में सिंधिया को छोड़कर अंगरेज़ों की ओर चले गए थे, किन्तु कुछ ऐन मौक़े पर काम आने के लिए सिंधिया की फ़ौज के साथ रह गए थे । निस्सन्देह असाई के संग्राम की सम्पूर्ण परिस्थिति को रचने में अंगरेज़ों को इन लोगों से बहुत बड़ी मदद मिली होगी ।

जनरल वेल्सली के अनुसार उस दिन केवल 8,000 पैदल, 1,600 सवार और 17 तोप वेलसली के अधीन थीं और क़रीब 50,000 पैदल और 128 तोपें सिंधिया की ओर थीं । किन्तु जनरल वेल्सली के 26 अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है कि मराठों की सेना में कम-से-कम एक ब्रिगेड चार पलटनों की बेगम समरू की थी और एक ब्रिगेड उतनी ही बड़ी दूपौं नामक एक यूरोपियन के अधीन थी। बेगम समरू के साथ अंगरेज़ों की साज़िश का ज़िक्र पिछले अध्याय में आ चुका है । 18 जुलाई को जनरल लेक ने गवर्नर-जनरल को लिखा था :

> **"बेगम समरू के हमारे साथ मिल जाने से हमें कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लाभ हो सकते हैं ।**
>
> × × ×
>
> **उसकी चार पलटनें इस समय सिंधिया के पास हैं । ××× इस बात की तरकीबें की जा सकती हैं कि वे चारों पलटनें जनरल वेल्सली से जा मिलें ।"***

---

*"The most essential advantages may be derived from an union with Begum Sumroo, ...

* * * *

"Four of her battalions are now with Scindhia......*means might be contrived to enable those battalions to join General Wellesley*."—General Lake's Memorandum to the Governor-General, dated 18th July, 1803.

इसके उत्तर में गवर्नर-जनरल ने लिखा :

> **"यह सलाह निहायत मुनासिब है और फ़ौरन कर्नल स्काट को हुकुम भेज दिया जायगा। मिस्टर मरसर के नाम जो हिदायतें गई हैं, उनमें भी यह दी गई हैं।"***

रिश्वतों का बाज़ार

दूपौं के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल के नाम जनरल वेलसली के 24 अक्तूबर के एक पत्र में लिखा है :

> **"सिंधिया की सेना के 16 अफ़सर और सारजेण्ट, आपके 29 अगस्त के एलान के अनुसार, आकर कर्नल स्टीवेन्सन के साथ मिल गए हैं। उनके नामों की सूची और हर एक को जो-जो तनख्वाह मिलनी चाहिए सब लिख कर मैं बाद में भेजूंगा।"†**

इन 16 अफ़सरों में से एक दूपौं भी था। जाहिर है कि बेगम समरू की चारों पलटनों ने और दूपौं की चारों पलटनों ने असाई के निर्णायक युद्ध में सिंधिया की अनुपस्थिति में सिंधिया के साथ विश्वासघात किया।

कप्तान ग्राण्ट डफ़ ने अपने 'मराठों का इतिहास' में लिखा है।

> **"असाई में सिंधिया की अधिकतर पलटनों को एक नुक़सान यह हुआ कि उनके यूरोपियन अफ़सरों में से अंगरेज शत्रु की ओर चले गए× × ×।"‡**

ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि गवर्नर-जनरल के जिस एलान पर इन लोगों ने अपने मालिक सिंधिया के साथ विश्वासघात किया, वह अंगरेज़ों के अलावा दूसरे यूरोपियन अफ़सरों और यहां तक कि सिंधिया के हिन्दोस्तानी अफ़सरों के नाम भी जारी किया गया था। ऊपर लिखा जा चुका है कि इन लोगों में से कुछ युद्ध छिड़ते ही अंगरेज़ों की ओर आ गए और बाकी ठीक मौके पर काम देने के लिए दौलतराव की सेना में बने रहे।

रहा सिंधिया का ज़बरदस्त तोपखाना, सो उसकी अधिकांश तोपें बैलों के न होने के कारण मोरचे पर लाई भी न जा सकीं।

इस पर भी यदि दौलतराव सिंधिया 23 सितम्बर को स्वयं असाई के मैदान में मौजूद होता, तो सम्भव है कि भारत का उसके बाद का इतिहास किसी दूसरे ही ढंग से लिखा जाता। सिंधिया की अनुपस्थिति में भी उसके कुछ नमकहलाल सैनिकों ने बड़ी

---

* "This suggestion is extremely proper, and orders will be immediately sent to Colonel Scot; Mr. Mercer's instructions include this point."—Governor-General's reply to General Lake's Memorandum.

† "Sixteen officers and sergeants belonging to the Campoos (*i.e.*, Scindhia's camp) have joined Colonel Stevenson under Your Excellency's proclamation of the 29th August. I will hereafter send a list of their names, and an account of the pay each is to receive."—General Wellesley's letter to the Governor-General, dated 24th October, 1803.

‡ "Most of Scindhia's battalions (at Assye) laboured under disadvantages by the cessation of the British part of their European officers......"—*History of the Marathas* by Grant Duff, page 574.

वीरता के साथ शत्रु का मुक़ाबला किया । अंगरेज़ों ही के अनुसार, अंगरेज़ों के हताहतों की तादाद 575 गोरे और 1,456 हिन्दुस्तानी थी और उसके 126 आदमी लापता रहे । सिंधिया के हताहतों की तादाद अंगरेज़ों के अनुसार 1,200 थी ।

अंगरेज़ों की विजय

सिंधिया के तोपख़ाने के करीब-क़रीब सब अफ़सर यूरोपियन थे । इन लोगों ने सिंधिया की भारी तोपें लाकर मय गोले-बारूद और सामान के ज्यों-की-त्यों अंगरेज़ों के हवाले कर दीं । पैदल सेना में से भी कम-से-कम आठ पूरी पलटनें पूर्वोक्त बयान के अनुसार शत्रु के साथ मिल गई थीं । बाक़ी सेना भी विश्वासघातकों से छलनी-छलनी थी । ऐसी सूरत में बाक़ी की पैदल सेना बिना सरदार और बिना सामान कब तक शत्रु का मुक़ाबला कर सकती । परिणाम यह हुआ कि शेष पैदल सेना में से अधिकांश मैदान छोड़ कर पीछे हट गई, और असाई का मैदान अंगरेज़ों के हाथ रहा ।

नाना फड़नवीस की सलाह के विरुद्ध वारेन हेस्टिंग्स के कहने में आकर यूरोपियनों को अपने यहां नौकर रखने में माधोजी ने जो ज़बरदस्त भूल की थी, उसका दण्ड आज दौलतराव सिंधिया को भोगना पड़ा ।

सिंधिया की तोपों और उनके साथ के सामान की जनरल वेल्सली ने बड़े ज़ोरों के साथ प्रशंसा की है ।

फिर भी, सिंधिया की पैदल सेना पर असाई के संग्राम का बहुत कम असर पड़ा । लड़ाई के अगले दिन 24 सितम्बर, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने कर्नल स्टीवेन्सन को आज्ञा दी कि तुम परास्त मराठा सेना का पीछा करो । किन्तु इतिहास लेखक मिल लिखता है :

> **"इस हार से शत्रु की व्यवस्था इतनी कम टूटने पाई थी, यानी वे इतने कम तितर बितर हुए थे कि कर्नल स्टीवेन्सन के पीछा करने से उन्हें ज़रा भी डर न था ।"***

कर्नल स्टीवेन्सन सिंधिया की इस सेना से डरता था, इसलिए वह उसका पीछा करने का साहस न कर सका ।

सुलह की कोशिश

असाई के संग्राम में अपने कुछ लोगों के विश्वासघात और अपना तोपख़ाना शत्रुओं के हाथों में चले जाने के समाचार सुन कर दौलतराव को बड़ा दुख हुआ ।

दौलतराव के साथ इस समय पेशवा बाजीराव का एक अत्यन्त विश्वस्त दूत बालाजी कुंजर था, जिसने अनेक बार बड़ी वफ़ादारी के साथ अपने स्वामी और देश, दोनों की सेवा की थी, जिसे अंगरेज़ों ने कई बार धन इत्यादि का लोभ दिया, किन्तु जिसे वे किसी तरह अपनी ओर न फोड़ सके । बालाजी कुंजर बसई सन्धि पर बातचीत करने के लिए, और यदि हो सके, तो दौलतराव सिंधिया को पूना ले जाने के लिए, पेशवा की ओर से सिंधिया

* "The enemy had been so little broken or dispersed by their defeat that they had little to dread from the pursuit of Colonel Stevenson."—Mill, vol. vi, page 358.

के दरबार में भेजा गया था और सिंधिया और अंगरेज़ों के बीच युद्ध छिड़ जाने पर भी इस समय तक बराबर सिंधिया के साथ मौजूद था । असाई के संग्राम के एक सप्ताह के अन्दर बालाजी कुंजर ने सिंधिया की सलाह से और सिंधिया की ओर से जनरल वेल्सली को एक लम्बा पत्र लिखा । इसमें उसने वेल्सली से प्रार्थना की कि इस अकारण युद्ध को बन्द करके सुलह की शर्तें तय कर ली जाएं ।

दुर्भाग्यवश बालाजी कुंजर का यह महत्वपूर्ण पत्र भी वेल्सली के छपे हुए पत्र-व्यवहार में कहीं नहीं है । 5 अक्तूबर, सन् 1803 को वेल्सली ने इस पत्र के उत्तर में बालाजी को जो पत्र लिखा, उससे मालूम होता है कि बालाजी ने अपने पत्र में नीचे लिखी बातें दर्शाई थीं—यह कि दौलतराव सिंधिया का इरादा अंगरेज़ों के या किसी के साथ भी लड़ने का न था; दौलतराव ने अन्त समय तक शान्ति और समझौते द्वारा सब बातें तय कर लेने की पूरी कोशिश की, किन्तु अंगरेज़ सदा गोल-मोल बातें करते रहे, उन्होंने एक बार भी अपनी मांगों और शिकायतों को साफ़-साफ़ नहीं बताया, यहां तक कि युद्ध की कोई बाज़ाब्ता अन्तिम सूचना भी सिंधिया को नहीं दी गई और सिंधिया के इलाक़े पर हमला कर दिया गया । इन सब बातों के अलावा बालाजी ने अपने पत्र में महाराजा सिंधिया के प्रति कालिन्स के अनुचित व्यवहार को भी दर्शाया, और अन्त में प्रार्थना की कि वृथा रक्तपात को बन्द करके सुलह की बातचीत की जाए ।

बरहानपुर पर क़ब्ज़ा

किन्तु जनरल वेल्सली उस समय अपनी विजय के नशे में था । उसे अभी तक अपनी कूटनीति से बहुत-कुछ आशा थी । दूपौं और उसके साथ के 15 और यूरोपियन विश्वास-घातक अभी तक सिंधिया की विशाल पैदल सेना के साथ थे । इन सेना के कुछ आदमी अब उत्तर की ओर सिंधिया के बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों की रक्षा के लिए पहुंच गए । वेल्सली को विश्वास था कि दूपौं और उसके साथियों की सहायता से अंगरेज़ आसानी से उन दोनों क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लेंगे । वेल्सली का विश्वास पक्का था, इसलिए उसने बालाजी के पत्र की ओर उस समय कोई ध्यान न दिया । वेल्सली ने जब देखा कि स्टीवेन्सन को मराठा सेना का पीछा और मुकाबला करने में सफलता न मिल सकी, तब यह काम उसने अपने ऊपर लिया और स्टीवेन्सन को उत्तर की ओर बढ़ कर बरहानपुर और असीरगढ़ के क़िलों पर क़ब्ज़ा करने और बरहानपुर के अत्यन्त धन-सम्पन्न नगर को लूटने की आज्ञा दी ।

महाराजा सिंधिया और बरार के राजा की सेनाएं असाई की लड़ाई के बाद निज़ाम के इलाक़े से हट कर पहले खानदेश की ओर बढ़ती हुई मालूम हुईं और फिर ताप्ती नदी पार करके पश्चिम और फिर दक्षिण की ओर आती नजर आईं ।

स्टीवेन्सन बरहानपुर की ओर बढ़ा । 15 अक्तूबर को स्टीवेन्सन ने बड़ी आसानी से बरहानपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया और नगर को खूब लूटा ।

सिंधिया के यूरोपियन नौकरों की नमकहरामी

इसके बाद 17 अक्तूबर को वह असीरगढ़ की ओर बढ़ा । सिंधिया की वह सेना, जो दूपौं के अधीन बरहानपुर और असीरगढ़ की रक्षा के लिए नियत थी, बजाय स्टीवेन्सन का

सामना करने या असीरगढ़ की ओर जाने के, रास्ता छोड़ कर नर्मदा की ओर चली गई । 19 अक्तूबर को स्टीवेन्सन ने असीरगढ़ पर हमला किया और 21 अक्तूबर को असीरगढ़ का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । इसके बाद ही दूपौं और उसके 15 यूरोपियन साथी अपना काम पूरा करके सिंधिया को छोड़, स्टीवेन्सन की ओर चले आए । जनरल वेलसली के पत्रों से साबित है कि बरहानपुर और असीरगढ़, दोनों स्थानों पर सिंधिया के इन नमकहराम यूरोपियन नौकरों ने ही अपने सहधर्मियों का काम इतना सरल कर दिया ।

सिंधिया और भोंसले की सेनाओं की अलहदगी

दक्षिण में अभी तक सिंधिया और भोंसले की सेनाएं, जिनमें अधिकतर सवार थे, एक साथ थीं । इस सवार सेना में अंगरेज़ों की भेद-नीति भी अधिक चलने न पाई थी । इसलिए वेल्सली या स्टीवेन्सन किसी को भी इस संयुक्त मराठा सेना का सामना करने का साहस न हो सका । वेल्सली बराबर इस सेना के दाएं-बाएं चक्कर लगाता रहा, किन्तु लड़ने से बचता रहा । उधर मराठा सेना ने भी न जाने किस निर्बलता या संकोच के कारण वेल्सली की सेना पर स्वयं हमला न किया । वेल्सली ने अपने पत्रों में साफ़ लिखा है कि यदि संयुक्त मराठा सेना उस समय कहीं अंगरेज़ों की सेना पर हमला कर देती, तो अंगरेज़ी सैना के लिए बचना असम्भव था । वास्तव में, अंगरेज़ इस समय चाह रहे थे कि किसी तरह भोंसले और सिंधिया की सेनाएं अलग-अलग हो जाएं। जिस तरह हुआ हो, इसी समय सिंधिया और भोंसले की सेनाएं अलग-अलग हो गईं । वेल्सली नें अब स्टीवेन्सन को सिंधिया के पीछे भेजा और स्वयं बरार के राजा के मुक़ाबले के लिए बढ़ा । किन्तु मराठा सेना के दो टुकड़े हो जाने पर भी और वेल्सली के कई दिन तक पूरी कोशिश करने पर भी स्टीवेन्सन या वेल्सली, दोनों में से किसी को मराठा नरेशों के मुक़ाबले का ज़रा-सा-भी साहस न हो सका ।

वेल्सली ने इस समय यह सोचा कि गुजरात पहुंच कर सिंधिया के गुजरात के इलाक़े पर हमला किया जाए और बरार के उत्तर में गाविलगढ़ के क़िले पर चढ़ाई की जाए । किन्तु वेल्सली को डर था कि कहीं सिंधिया और भोंसले, दोनों, एक पश्चिम और दूसरा पूरब की ओर बढ़ कर, मेरी इन दोनों योजनाओं को असफल न कर दें । सम्भव है कि सिंधिया और भोंसले को भी इसका ख़याल हो और उन दोनों के अलग अलग होने का यही उद्देश्य रहा हो ।

सुलह की बातचीत

जो हो वेल्सली ने फिर छल से काम लेने का निश्चय किया । उसने सुलह की बातचीत शुरू करके सिंधिया और भोंसले, दोनों को धोखे में रखने का इरादा किया । सिंधिया की ओर से बालाजी कुंजर का पत्र आ ही चुका था । बरार का राजा भी अमृतराव द्वारा सुलह की कोशिश कर रहा था । वेल्सली नें अब रुख बदला और 30 अक्तूबर, सन् 1803 को बालाजी कुंजर के नाम नीचे लिखा पत्र भेजा :

> **"आपका पत्र मिला × × × और कर्नल स्टीवेन्सन ने मेरे पास एक फ़ारसी का पत्र भेजा है, जिसमें आपने उसे इत्तला दी है कि आप मोहम्मद मीर ख़ां को**

मेरे पास सुलह की बातचीत के लिए भेजनेवाले हैं। मैं मोहम्मद मीर खां से मिल कर बहुत खुश हूंगा। मोहम्मद मीर खां की पदवी के अनुरूप उचित ढंग से मैं उनका स्वागत करूंगा और जो कुछ उन्हें कहना होगा, उस पर पूरा ध्यान दूंगा।"*

इसी तरह का एक पत्र उसने मोहम्मद मीर खां के पास भेजा, जिसमें लिखा :

"××× मैं आपसे मिल कर बड़ा खुश हूंगा और आपकी पदवी और चरित्र के अनुरूप आदर सत्कार के साथ आपका स्वागत करूंगा और जो कुछ आपको कहना होगा, उस पर पुरा-पुरा ध्यान दूंगा।" †

अस्थायी सुलहनामा

किसी कारणवश मोहम्मद मीर खां के बजाय, समय पर जसवन्तराव घोरपड़े सिंधिया की ओर से सुलह की बातचीत के लिए भेजा गया। 23 नवम्बर, सन् 1803 को अंगरेज़ों और दौलतराव सिंधिया के बीच युद्ध स्थगित कर देने के लिए एक अस्थायी सुलहनामा लिखा गया ताकि इसके बाद स्थायी सुलह की शर्तें तय की जा सकें। इस अस्थायी सुलहनामें में लिखा गया कि दक्षिण में, गुजरात में, और हर जगह युद्ध तुरन्त बन्द कर दिया जाए। वेल्सली और सिंधिया के वकीलों के इस अस्थायी सुलहनामें पर हस्ताक्षर हो गए। सुलहनामे की अन्तिम धारा यह थी :

"इस सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव सिंधिया के हस्ताक्षर होने चाहिएं और उनके हस्ताक्षर होकर आज से दस दिन के अन्दर मेजर जनरल वेल्सली के पास आ जाने चाहिएं।"

अंगरेज़ों की असली मंशा

दौलतराव सिंधिया के वकीलों ने ज़ोर दिया कि सुलहनामे में सिंधिया और भोंसले दोनों मराठा नरेशों का नाम होना चाहिए और दोनों के साथ अंगरेज़ों का युद्ध बन्द हो जाना चाहिए। किन्तु वेल्सली ने यह बहाना लेकर कि भोंसले की ओर से कोई पृथक वकील नहीं आया भोंसले का नाम सुलहनामे में देने से इनकार किया। भोंसले का नाम इस अस्थायी सुलहनामे में न रखने का असली कारण जनरल वेल्सली ने गवर्नर-जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शा के नाम अपने 23 नवम्बर, सन् 1803 के पत्र में इस तरह बयान किया :

---

* "I have received your letter......and Colonel Stevenson has transmitted to me a Persian letter, in which you have informed him that Mohammed Mir Khan was about to be sent on a mission to me. I shall be happy to see Mir Khan. I will receive him a manner suitable to his rank, and I will pay every attention to what he may have to communicate."—General Wellesley's letter to Balaji Kunjer, dated 30th October, 1803.

† "......I shall be happy to see you, and will receive you with the honours due to your rank and character, and I shall pay every attention to what you may have to communicate."—General Wellesley's letter to Mohammed Mir Khan.

"बरार के राजा की सेनाएं इसमें शामिल नहीं की गईं, और इसी से इन दोनों नरेशों में फूट पड़ जाएगी। यदि सिंधिया के ऊपर कोई एतबार भोंसले को अभी तक था भी, तो अब वह सब खतम हो जाएगा और मराठा मण्डल की एकता खुद ब खुद टूट जाएगी।"*

सिंधिया और भोंसले में फूट डालने के प्रयत्न

दोनों वेल्सली भाई पाश्चात्य कूटनीति के पक्के खिलाड़ी थे। इसी पत्र में आगे चल कर जनरल वेल्सली ने लिखा :

"मैं गवर्नर जनरल को सूचित कर चुका हूं कि दौलतराव सिंधिया को और अधिक नुक़सान पहुंचा सकना मेरी शक्ति से बाहर है।

मैदान में सिंधिया की सारी सेना सवारों की है। इस सेना पर हम किसी तरह का असर डालने की कभी कोई आशा नहीं कर सकते, जब तक कि बहुत दिनों तक और बहुत दूर तक उसका पीछा न करते रहें। यदि हम ऐसा करें, तो हमारी सेनाएं, जो इस समय भी रसद मिलने के स्थानों से दूर हो गई हैं, और भी अधिक दूर हो जाएंगी और बरार के राजा के विरुद्ध फिर हम कुछ न कर सकेंगे × × ×।"†

इस अस्थायी सुलह द्वारा वेल्सली केवल सिंधिया को धोखा देकर और अपनी तैयारी करके उस पर अचानक हमला करना चाहता था।

24 नवम्बर को वेल्सली ने कर्नल क्लोज़ को साफ लिखा :

"लड़ाई बन्द करने को मैं इसलिए राज़ी हो गया, कि, जैसा मैं 24 अक्तूबर को गवर्नर जनरल को लिख चुका हूं, मैं सिंधिया को और हानि पहुंचाने में असमर्थ था ; सिंधिया की सवार सेना को नुक़सान पहुंचा सकना मेरे लिए असम्भव है ; और गुजरात के लिए तथा गाविलगढ़ के क़िले के लिए मैं जो कुछ योजनाएं कर रहा हूं, उनमें सिंधिया मुझे नुक़सान पहुंचा सकता है। बापूजी सिंधिया को उसने गुजरात की ओर भेज भी दिया है ; और मेरा राजनैतिक लक्ष्य यह है कि बरार के राजा और सिंधिया में फूट डलवा दूं और इस तरह, वास्तव में, मराठा मण्डल को तोड़ दूं।"‡

---

* "The Raja of Berar's troops are not included in it, and consequently there becomes a division of interest between these two chiefs. All confidence in Scindhia if it ever existed, must be at an end, and the confederacy is, *ipso facto,* dissolved."—General Wellesley's letter to Major Shawe, Private Secretary to the Governor-General, dated 23rd November, 1803.

† "I have already apprised the Governor-General that it was not in my power to do anything more against Doulat Rao Scindhia......

"Scindhia has with him in the field an army of horse only. It is impossible to expect to make any impression upon this army, unless by following it for a great length of time and distance; to do this would remove our troops still farther than they are already from all the sources of supply, and would prevent the operations against the Raja of Berar, ..."—General Wellesley's letter to Major Shawe quoted above.

‡ "I have agreed to the cessation of hostilities on the ground of my incapability to do Scindhia further injury, as stated in my dispatch to the

वेल्सली का नैतिक आदर्श

उसी दिन वेल्सली ने जो पत्र गवर्नर-जनरल को लिखा उसके नीचे लिखे वाक्य वेल्सली के इरादे को और भी स्पष्ट कर देते हैं :

> **"यदि लड़ाई बन्द कर देने के इस अवसर से लाभ उठाकर हम सन्धि की बातचीत में देर लगा दें, तो आप देख सकते हैं कि जब मैं चाहूं, तब इस अस्थायी सुलह का अन्त कर देना मेरे हाथों में है, और यदि जिस दिन यह सुलहनामा हस्ताक्षर होकर मेरे पास आ जाए, उसके अगले ही दिन मुझे इस सुलह का अन्त कर देना पड़े, तो भी कम-से-कम मुझे सब तरह अपनी कार्रवाइयों के लिए काफ़ी समय मिल जाएगा और दोनों शत्रुओं को एक दूसरे से बिल्कुल फोड़ देने में मैं सफल हो चुका हूंगा ।"***

वास्तव में पाश्चात्य राजनीति में ईमानदारी के लिए कोई जगह नहीं । शीघ्र ही जनरल वेल्सली का छल प्रकट हो गया ।

अरगांव पर हमला

23 नवम्बर को सुलहनामा लिखा गया । 10 दिन सुलहनामे पर महाराजा दौलतराव के दस्तख़त होकर लौटने के लिए नियत कर दिए गए। उधर दो दिन के अन्दर ही स्टीवेन्सन बुरहानपुर की ओर से लौटकर वेल्सली से आ मिला और 29 नवम्बर को, यानी सुलहनामा लिखे जाने के केवल छः दिन के अन्दर, वेल्सली ने खुला विश्वासघात करके अचानक सिंधिया के अरगांव के क़िले पर हमला कर दिया । सिंधिया के उन वकीलों ने, जो सुलह के लिए वेल्सली के पास आए हुए थे और अभी तक वेल्सली के साथ मौजूद थे, खबर पाकर, बहुत कुछ कहा-सुना और वेल्सली को सुलहनामे की याद दिलाई, किन्तु सब व्यर्थ । जनरल वेल्सली ने अपने सरकारी पत्रों में इस विश्वासघात के लिए दो कारण बतलाए हैं । एक यह कि अभी तक सिंधिया ने सुलहनामे पर हस्ताक्षर करके न भेजे थे । किन्तु सिंधिया के वकीलों के हस्ताक्षर सुलहनामे पर हो चुके थे और सुलहनामे के जाने और सिंधिया के हस्ताक्षर होकर लौटने के लिए सुलहनामे ही के अन्दर साफ़ दस दिन नियत कर दिए गए थे । दूसरा कारण वेल्सली ने यह बताया है कि सुलहनामे की शर्तों में से एक यह भी थी कि दोनों सेनाओं में कम-से-कम 20 कोस का फ़ासला रहे, जिसे सिंधिया की ओर से पूरा नहीं किया गया । तमाशा यह था कि एक तो स्वयं दौलतराव को इसके प्रबन्ध के लिए

Governor-General on the 24th of October; on that of it being impossible to injure his army of horse; on that of the injury he may do me in the operations against Gawilgurh and in Gujarat, to which quarter he has sent Bapuji Scindhia; and on the political ground of dividing his interests from those of the Raja of Berar, and thereby, in fact, dissolving the Confederacy."—General Wellesley's letter to Colonel Close, dated 24th November, 1803.

* "If advantage should be taken of the cessation of hostilities to delay the negotiations for peace, Your Excellency will observe that *I have the power of putting an end to it when I please; and that, supposing I am obliged to put an end to it, on the day after I shall receive its ratification, I shall at least have gained so much time everywhere for my operations, and shall have succeeded in dividing the enemy entirely.*"—General Wellesley's letter to the Governor-General, dated 24th November, 1803.

अभी समय न मिल पाया था और दूसरे वेल्सली के पत्रों से साबित है कि इन छः दिनों के अन्दर जितना-जितना सिंधिया की सेना पीछे हटती गई, उतना-उतना ही अंगरेज़ी सेना जान-बूझ कर आगे बढ़ती गई । सारांश यह कि वेल्सली के दोनों बहाने झूठे थे ।

अरगांव की विजय

वेल्सली का अपने इस छल से जो मतलब था, वह पूरा हो गया । सिंधिया की सेना समय पर पहुंच भी न पाई और अरगांव का क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । अरगांव की विजय की ख़बर पाते ही गवर्नर-जनरल ने प्रसन्न होकर जनरल वेल्सली को लिखा :

> **"× × × यद्यपि सुलह करने के मामले में मैं आपसे बिल्कुल सहमत था, मैं उसे बड़ी होशियारी की बात समझता था, किन्तु मैं स्वीकार करता हूं कि आपकी सुलह की अपेक्षा आपकी विजय को मैं अधिक पसन्द करता हूं ।"**

इसके बाद गवर्नर-जनरल ने लिखा—"मुझे अभी तक पता नहीं चला कि लड़ाई का कारण क्या हुआ । क्या सिंधिया ने अपनी ओर से सुलह तोड़ दी ? या × × × सुलह के शुरू होने से पहले ही अकस्मात् कहीं पर दोनों फ़ौजें भिड़ गई । या सिंधिया और बरार के राजा फिर दग़ा करके एक-दूसरे से मिल गए ? किन्तु कहीं पर भी और किसी तरह से भी क्यों न हुआ हो, इन देशी राजाओं से लड़ने में सदा फ़ायदा ही है ।"*

गाविलगढ़ विजय

अरगांव के बाद उसी तरह के छल से वेल्सली ने बरार के राज में गाविलगढ़ के क़िले पर हमला किया और तीन दिन की लड़ाई के बाद 14 दिसम्बर, सन् 1803 को गाविलगढ़ का क़िला भी अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । गाविलगढ़ के वीर क़िलेदार ने अपने स्वामी के साथ विश्वासघात न कर लड़ते हुए अपने प्राण दिए ।

दक्षिण में अब वेल्सली के लिए अधिक काम करने को न रहा । इसके बाद अंगरेज़ों की निगाह सिंधिया के गुजरात के इलाक़े पर थी ।

गुजरात पर हमले का इरादा

गुजरात का उपजाऊ प्रान्त सम्राट अकबर के समय से लेकर दो शताब्दी तक मुग़ल साम्राज्य का एक अंग रहा । उसके बाद निज़ामलमुल्क ने मराठों को भड़का कर और मदद देकर उनसे गुजरात पर हमला करवाया और उस प्रान्त के एक भाग पर गायकवाड़ कुल का राज क़ायम हुआ । अंगरेज़ों ने गायकवाड़ को मराठा मण्डल से फोड़ कर अपनी ओर किया और माधोजी सिंधिया को मराठा मण्डल के साथ विश्वासघात करने के इनाम में भड़ोच का क़िला और उसके आसपास ग्यारह लाख रुपये सालाना का इलाक़ा

---

* "......Although I entirely approved of your armistice and thought it is a most judicious measure, I confess that I prefer your victory to your armistice; ......

"I have not yet discovered whether the battle was occasioned by a rupture of the truce on the part of Scindhia; ......or by an accidental encounter of the armies before the truce had commenced; or by a treacherous junction between Scindhia and the Raja of Berar. But, *Qua cun que via,* a battle is a profit with the Native Powers."—Governor-General's letter to General Wellesley, **dated 23rd December, 1803.**

गायकवाड़ से लिखवा दिया । अब फिर गवर्नर-जनरल वेल्सली ने माधोजी सिंधिया के उत्तराधिकारी दौलतराव सिंधिया से यह इलाक़ा छीन कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने का इरादा किया ।

भील राजाओं को लोभ

जुलाई सन् 1803 में, यानी सिंधिया के साथ युद्ध का एलान होने से 28 दिन पहले गवर्नर-जनरल ने बम्बई के गवर्नर को लिख दिया था—"भड़ोच के किले पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दीजिए ।" सिंधिया के गुजराती इलाक़े में अधिकांश आबादी भीलों की थी, जिनके अपने कई छोटे-छोटे राजा थे । ये सब राजा सिंधिया को खिराज देते थे । कम्पनी की सेना को भड़ोच के किले पर हमला करने के लिए इन राजाओं के पहाड़ी इलाक़ों में से निकलना पड़ता । 2 अगस्त, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने बम्बई के गवर्नर को लिखा—"यदि ये भील राजा हमारे विरुद्ध खड़े हो गए, तो जितनी सेना कम्पनी की ओर से भेजी जा सकती है, वह इनमें से एक राजा को वश में करने के लिए भी काफ़ी नहीं हो सकती । इसलिए इन समस्त भील राजाओं को अपनी ओर मिलाया जाए । उन्हें इस बात का लोभ दिया जाए कि तुम्हारा खिराज सदा के लिए माफ़ कर दिया जाएगा ।"* सूरत के कुछ अंगरेज़ों की मारफ़त इन भील राजाओं को अपनी ओर किया गया ।

गायकवाड़ की सबसीडियरी सेना

इसके बाद 6 अगस्त सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने गायकवाड़ की सबसीडियरी सेना को आज्ञा दी कि वह फ़ौरन भड़ोच के किले पर हमला कर दे । महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ बड़ौदा की गद्दी पर था । उसमें और महाराजा दौलतराव सिंधिया में 'गहरी मित्रता' थी । सबसीडियरी सेना का सारा खर्च गायकवाड़ देता था और संधि के अनुसार यह सेना गायकवाड़ ही की सेवा और सहायता के लिए नियुक्त थी । इसलिए महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ ने इस बात पर सख्त एतराज़ किया कि यह सेना दौलतराव सिंधिया के राज पर हमला करने के लिए भेजी जाए और गायकवाड़ की राजधानी बड़ौदा से सिंधिया के राज पर हमला किया जाए । किन्तु सेना कम्पनी की आज्ञा के अधीन थी । जनरल वेल्सली ने अपने 22 अगस्त के एक पत्र में साफ़ लिख दिया कि—"कम्पनी के साथ सबसीडियरी सन्धि का मतलब यही है कि कम्पनी जहां चाहे, अपने शत्रुओं के विरुद्ध इस सेना का उपयोग कर सकती है ।" सन्धि की शर्तों में यह बात कहीं न थी,† पर महाराजा आनन्दराव गायकवाड़ की बात नहीं सुनी गई ।

---

* "......you will urge the gentleman at Surat to keep on terms with the Bheels. ......The number of troops I have above detailed......*they will not be sufficient for the subjection even of one of their Rajas;* ......it would be better to give up all claims of tribute......"—General Wellesley's letter to the Governor of Bombay, dated 2nd August, 1803.

† "Although it is not immediately specified, ...the Gaikwad should also assist the Company with his forces against the enemies of the British Government,"—General Wellesley's letter to Bombay Government, dated 22nd August, 1803.

वफ़ादार अरब सेना

कर्नल वुडिंगटन के अधीन गायकवाड़ की इस सेना ने, जिसमें एक कम्पनी तोपख़ाने की और दो पलटनें हिन्दोस्तानी पैदलों की थी, 21 अगस्त को बड़ौदा से कूच किया । 23 अगस्त को यह सेना भड़ोच के क़िले से दो कोस के अन्दर पहुंच गई । दौलतराव सिंधिया अभी तक उस क़िले की रक्षा का कोई ख़ास प्रबन्ध न कर पाया था । 25 अगस्त से मोहासरा शुरू हुआ और 29 अगस्त को क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । उसी दिन कर्नल वुडिंगटन ने जनरल वेल्सली को सूचना दी कि क़िले के अन्दर की "अरब सेना ने बहुत ज़ोरों के साथ मुक़ाबला किया।" अरब सैनिक उन दिनों प्राय: सब भारतीय नरेशों के यहां रहते थे और सदा पूरी वफ़ादारी और जांनिसरी के साथ अपने स्वामी की सेवा करते थे । अगले दिन वुडिंगटन ने फिर लिखा :

> **"इंजीनियर ने 11 बजे सुबह को मुझसे आकर कहा कि क़िले में जाने के लिए काफ़ी रास्ता बन गया है। मैंने प्रवेश करने का इरादा कर लिया ; किन्तु मैं तीन बजे शाम तक रुका रहा × × × क्योंकि मैं समझता था कि बहुत करके उस समय शत्रु अचेत और असावधान होंगे ।"**

आसपास के सिंधिया के सारे इलाक़े पर अंगरेज़ों का कब्जा हो गया । यह समस्त विजय गायकवाड़ के खर्च पर और उसी की सेना द्वारा की गई, किन्तु जो इलाक़ा इस सेना ने जीता, उसका गायकवाड़ से कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया ।

पवनगढ़ विजय

भड़ोच के बाद गुजरात में सिंधिया का एक और किला पवनगढ़ था । चम्पानेर का सारा ज़िला इस क़िले के अधीन था । भड़ोच के बाद ही कर्नल वुडिंगटन ने पवनगढ़ की राह ली । 17 सितम्बर की शाम तक यह क़िला भी अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । इस क़िले के सम्बन्ध में वुडिंगटन ने अपने एक पत्र में लिखा कि—यदि इस क़िले के अन्दर की सेना "बाला क़िले यानी पहाड़ की चोटी पर के क़िले पर क़ब्जा कर लेती, तो मैं समझता हूं, हम उस क़िले को कभी न तोड़ सकते ।"* वुडिंगटन के इसी पत्र में यह भी लिखा है कि इस क़िले की सेना सिंधिया की वफ़ादार साबित नहीं हुई और क़िले के दरवाजे खोलने में सोने की चाबी ने अंगरेज़ों को खासी मदद की ।

गुजरात में अब दौलतराव सिंधिया का कोई इलाक़ा न रहा, या यूं कहिए कि जितना इलाक़ा अंगरेज़ों ने माधोजी सिंधिया को उसकी देशघातकता के इनाम में दिया था, वह सब अब दौलतराव सिंधिया से सदा के लिए छिन गया ।

उड़ीसा प्रान्त

उड़ीसा का अधिकांश भाग भी उस समय मराठों के अधीन था । नागपुर के भोंसले राजाओं का उस पर अधिपत्य था । प्रान्त के आधिनेक स्थानीय राजा भोंसले को खिराज दिया करते थे । कम्पनी की बालेश्वर की कोठी मराठों ही के इलाक़े में थी और उस कोठी

---

* "......the garrison offered to capitulate......To these terms I agreed,...... they however tackled other stipulations to the capitulation, *viz.*, that I should agree to pay them the arrears due from Scindhia, ...they agreed to the original terms......

"Could they have obtained possession of the upper fort, or *Bala Killa*, at the top of the mountain, I am inclined to think it utterly impregnable."—Colonel Woodington's letter to Colonel Murray, dated 21st September, 1803.

के अंगरेज़ मराठों की प्रजा थे । जिस समय मुग़ल सम्राट ने उड़ीसा प्रान्त की दीवानी कम्पनी को प्रदान की थी, उस समय केवल उत्तर की ओर के उस थोड़े से भाग की दीवानी कम्पनी को दी गई थी, जो मुर्शिदाबाद के सूबेदार के अधीन था, बाकी सारे उड़ीसा पर दीवानी और फ़ौजदारी, दोनों के सम्पूर्ण अधिकार मराठों के हाथों में थे । किन्तु मराठों की सत्ता उस समय इतनी ज़बरदस्त थी और अंगरेज़ों का बल अभी इतना कम था कि उड़ीसा में रहने वाले अंगरेज़ मराठों की आज्ञाकारी और नम्र प्रजा बन कर ही उस प्रान्त में व्यापार करते रहे । लिखा है कि सन् 1767 में जब मराठों ने कम्पनी से चौथ का पिछला बक़ाया तलब किया, तब कम्पनी के डाइरेक्टर पिछले बक़ाया के 13 लाख रुपये देने के लिए राजी हो गए। साथ ही, उन्होंने यह भी चाहा कि मराठे समस्त उड़ीसा प्रान्त की दीवानी का अधिकार कम्पनी को दे दें; किन्तु पत्र-व्यवहार होने पर मराठों ने इस दूसरी बात को स्वीकार न किया । मालूम होता है कि उस समय से ही उड़ीसा में मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों की साजिशें शुरू हो गई । उड़ीसा में मराठों के अत्याचारों की अनेक झूठी कथाएं भी उसी समय से गढ़-गढ़ फैलाई जाने लगीं ।

कर्नल कैम्पबेल को आदेश

3 अगस्त, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली ने कर्नल कैम्पबेल को एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसे कटक प्रान्त पर चढ़ाई करने और वहां राजा राघोजी भोंसले की सामान्य प्रजा, जगन्नाथपुरी के पण्डों और प्रान्त तथा आस-पास के सरदारों, ज़मींदारों और सामन्तों को राजा राघोजी भोंसले के विरुद्ध भड़काने और उनके साथ तरह-तरह से साज़िशें करने की विस्तृत हिदायतें दी गईं । ये विस्तृत हिदायतें वेल्सली की कूटनीति को बड़ी सुन्दरता से चित्रित करती हैं, किन्तु इन्हें यहां पर उद्धृत करना व्यर्थ है । कर्नल कैम्पबैल ने गंजम में अपनी फ़ौज जमा की । जिस तरह का एलान मैसूर की राजधानी में प्रवेश करते समय मैसूर की प्रजा के नाम जनरल हैरिस ने प्रकाशित किया था, उसी तरह का एलान अब उड़ीसा की प्रजा के नाम प्रकाशित किया गया । सरकारी पत्रों में लिखा है कि "जगन्नाथ के पण्डों के धार्मिक भावों, उनके पूजा-पाठ और उनकी धार्मिक प्रतिष्ठा" की ओर विशेष आदर दिखलाया गया, और आस-पास के सामन्तों, ज़मींदारों इत्यादि में से किसी को लोभ देकर और किसी को डरा कर जिस तरह हुआ, अपनी ओर मिलाया गया।

इन कूट प्रयत्नों का और उड़ीसा की भारतीय प्रजा में राजनैतिक चेतना के अभाव का परिणाम यह हुआ कि इतिहास-लेखक जे० बीम्स के शब्दों में, जिस समय अंगरेज़ :—

> **"सामने दिखाई दिए, मराठों को अपनी लड़ाइयां अकेले लड़नी पड़ीं, लोगों ने उनकी बिल्कुल मदद नहीं की ।"**

यही अंगरेज़ लेखक लिखता है कि यदि उड़िया लोग मराठों की मदद करते तो :

> **"पहाड़ियों और समुद्र-तट के योद्धा राजा हमें बड़ी आपत्तियों में डाल सकते थे ।"***

---

* "......when the English appeared on the scene, the Marathas were left to fight their own battles, quite unsupported by the people......Had they done so, the turbulent Rajas of the hills and the sea coast might have given us a great deal of trouble......"—J. Beams, in his "Note on the History of Orissa", published in the *Journal of the Asiatic Society of Bengal* for 1883.

जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा

किन्तु एक तो कूटनीति में मराठे अंगरेज़ों का मुक़ाबला न कर सकते थे, दूसरे इस युद्ध के लिए अंगरेज़ों की तैयारी वर्षों पहले से हो रही थी और मराठों की कोई तैयारी न थी। कर्नल कैम्पबैल के नाम गवर्नर-जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र किया गया है, वह युद्ध के एलान तक से तीन दिन पहले का लिखा हुआ था। नतीजा यह हुआ कि उड़ीसा में अंगरेज़ों को क़रीब-क़रीब कुछ भी लड़ाई लड़नी नहीं पड़ी। गंजम की सेना ने बिना रक्तपात के 14 सितम्बर को मानिकपट्टन पर और 18 को जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा कर लिया।

बालेश्वर पर क़ब्ज़ा

उत्तर की ओर कप्तान मारगन के अधीन एक दूसरी सेना ने कलकत्ते से जल के रास्ते आकर बालेश्वर पर चढ़ाई की। बालेश्वर के क़िले की मराठा सेना ने अंगरेज़ों का मुक़ाबला किया, किन्तु बालेश्वर की पुरानी बस्ती के ज़मींदार, प्रल्हाद नायक, ने मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों को मदद दी, और 21 सितम्बर, सन् 1803 को बालेश्वर अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। बाज़ारों में मुनादी करवा दी गई कि प्रान्त पर अंगरेज़ कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

बाराबट्टी पर क़ब्ज़ा

गंजमवाली सेना जगन्नाथपुरी पर क़ब्ज़ा करने के बाद कर्नल हारकोर्ट के अधीन कटक की ओर बढ़ी। कटक का क़िला, जिसे बाराबट्टी भी कहते थे, बहुत मज़बूत था। क़िले के चारों तरफ़ 35 फुट से लेकर 135 फुट तक चौड़ी और 20 फुट गहरी खाई थी, जो पानी से भरी थी। क़िले में जाने के लिए केवल एक तंग पुल था। कर्नल हारकोर्ट 24 सितम्बर को पुरी से चल कर 10 अक्तूबर को कटक पहुंचा। कटक का नगर बिना किसी मुक़ाबले के फ़ौरन अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। चार दिन के बाद, 14 अक्तूबर को, बाराबट्टी का मज़बूत क़िला भी अंगरेज़ों के क़ब्ज़े में आ गया। इस क़िले की संरक्षक सेना में से भी कई ने अपने स्वामी राघोजी भोंसले के साथ दग़ा की।

मयूरभंज की रानी

इसके कुछ समय बाद उत्तर और दक्षिण की अंगरेज़ी सेनाएं आपस में मिल गईं। बालेश्वर और कटक के बीच में मयूरभंज और नीलगिरी नाम की दो रियासतें थीं। मयूरभंज की रानी और नीलगिरी के राजा के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें पहले से जारी थीं। जे० बीम्स लिखता है कि एक अलग सैन्य दल इस ख़ास काम के लिए पहले से भेजा गया कि वह :

"मयूरभंज और नीलगिरि पहाड़ियों का भूगोल समझ ले, ख़ास कर इन पहाड़ों में आने-जाने के रास्ते जान लें और दोनों रियासतों के राजाओं से पत्र-व्यवहार शुरू कर दें। इन दोनों राजाओं की सब कार्रवाइयों का पता रखने के लिए उनकी रियासतों में गुप्तचर भेजे गए और यदि उनके

कोई वकील या प्रतिनिधि कटक आना चाहें, तो उन्हें पासपोर्ट देने की आज्ञा दी गई।"*

मयूरभंज की रानी पहले अंगरेज़ों के साथ मिलने के विरुद्ध थी और लड़ने के लिए तैयार हो गई। हारकोर्ट ने उसे पहले कई खुशामद के पत्र लिखे। इस पर भी वह राज़ी न हुई। तब रानी के दत्तक पुत्र युवराज के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार करके, युवराज को रानी से फोड़ा गया। इस तरह कर्नल हारकोर्ट ने रानी को ज्यों-त्यों कर राज़ी कर लिया और मयूरभंज की रियासत का कुछ भाग भी कम्पनी के अधीन कर लिया।

होते-होते 12 जनवरी, सन् 1804 को सम्बलपुर पर अंगरेज़ों ने कब्ज़ा किया और उड़ीसा का वह सारा भाग, जो मराठा साम्राज्य में शामिल था, अंगरेज़ कम्पनी के शासन में आ गया।

उड़ीसा में अंगरेज़ी शासन

मराठों के शासन में उड़ीसा की प्रजा अत्यन्त खुशहाल थी। जे० बीम्स लिखता है कि चावल उस समय उस प्रान्त में 15 गण्डे का एक सेर, यानी एक रुपये का सत्तर सेर (पौने दो मन), बिकता था। प्रान्त भर में कोई यह जानता ही न था कि दुष्काल किसे कहते हैं। इसीलिए, जे० बीम्स लिखता है कि जिस समय अपना राज जमाने के लिए अंगरेज़ी सेना ने उड़ीसा प्रान्त में प्रवेश किया :

> **"वहां के लोगों ने यह अच्छी तरह जानते हुए कि हम उस देश से अपरिचित थे, सबने आपस में एका कर लिया और किसी ने हमें किसी तरह की भी सहायता न दी। किसी ने हमारा खुला मुक़ाबला करने का साहस तो न किया, किन्तु वे सब-के-सब जड़वत अलग बैठे रहे। उन्होंने अपने काग़ज़ात छिपा दिए और किसी तरह की सूचना हमें न दी। उन्होंने हर जगह किश्तियां, बैल और गाड़ियां हमारे रास्ते से हटा कर दूर भेज दीं। जिन जमींदारों को हमने यह हुकुम दिया कि आप लोग कटक आकर अपनी-अपनी जायदादों के मामले में सब तय कर लें, वे नहीं आए और जब उनके घरों पर उन्हें तलाश किया गया, तब नहीं मिले। कहा गया कि कहीं बाहर यात्रा को गए हैं, यह कोई नहीं बताता था कि कहां गए हैं। किन्तु यदि अनजाने भी अंगरेज़ अफ़सरों से कोई ग़लती हो जाती थी, तो इसी जड़ निर्जीव जनसमूह में एकाएक जान आ जाती थी, और ज़ोरों के साथ बार-बार शिकायतें होने लगती थीं।"†**

---

* "......to learn the geography of the Moharbhanj and Nilgiri Hills, especially the passes and to open communications with the Rajas of those two states. Spies were sent into Moharbhanj and Nilgiri to keep a watch on the chiefs, and passports were to be granted to their vakils or representatives, should they desire to visit Cuttack."—H. Beams in the above Notes.

† "Well aware of our ignorance of the country, they all with one accord abstained from helping us in any way, no open resistance was ventured upon, but all stolidly sat aloof—papers were hidden, information withheld, boats, bullocks and carts sent out of the way, the Zemindars who were ordered to go into Cuttack to settle for their estate did not go, and on searching for them at their homes could not be found, were reported as absent, on a journey, no one knew where. But if from ignorance the English officers committed any mistake then life suddenly returned to the dull inert mass, and complaints were loud and incessant."—J. Beams in the above Notes.

उड़ीसा में दुष्काल

निस्सन्देह, उड़ीसा की प्रजा अपने मराठा और अन्य देशी शासकों की जगह पर विदेशी कम्पनी के शासन में आना पसन्द न करती थी। शीघ्र ही साबित हो गया कि उनकी आशंकाएं बिल्कुल सच्ची थीं। जे० बीम्स लिखता है कि अंगरेज़ों के पहुंचते ही प्रान्त भर में अन्न की भारी कमी पड़ने लगी। क़रीब-क़रीब हर पांचवें साल भयंकर दुष्काल पड़ने लगा और सदा दुष्काल का डर लगने लगा। प्रान्त पर क़ब्ज़ा करने के अगले ही साल कप्तान मारगन ने भारत के अन्य प्रान्तों से पुरी जानेवाले यात्रियों को सावधान कर दिया कि कटक प्रान्त में चावल की कमी है, इसलिए यात्री अपने-अपने प्रान्तों से भोजन का सामान साथ लेकर आएं।*

बुन्देलखण्ड पर क़ब्ज़ा

बुन्देलखण्ड का प्रदेश अंगरेज़ों को और भी अधिक सुगमता से मिल गया। यह प्रदेश पेशवा के अधीन था। यहां का राजा शमशेर बहादुर पेशवा को खिराज देता था। बसईं की सन्धि में पूना के दक्षिण का कुछ इलाक़ा और कुछ सूरत के पास का इलाक़ा पेशवा ने कम्पनी के नाम कर दिया था। अब पेशवा पर ज़ोर देकर उन दोनों छोटे-छोटे इलाक़ों के बदले में बुन्देलखण्ड का समृद्ध प्रान्त अंगरेज़ों ने पेशवा से मांग लिया।

किन्तु राजा शमशेर बहादुर ने अंगरेज़ों की अधीनता में रहना स्वीकार न किया। इसलिए कर्नल पावेल के अधीन एक सेना इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड भेजी गई। 6 सितम्बर, सन् 1803 को इस सेना ने जमना पार कर बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया। राजा शमशेर बहादुर अपनी सेना लेकर मुक़ाबले के लिए बढ़ा। लिखा है कि 16 सितम्बर को गोसाईं हिम्मत बहादुर अपनी सेना सहित अपने स्वामी से विश्वासघात कर अंगरेज़ों से आ मिला। 13 अक्तूबर को केन नदी के पास अंगरेज़ों और हिम्मत बहादुर की संयुक्त सेनाओं का राजा शमशेर बहादुर की सेना के साथ संग्राम हुआ। अन्त में, हार खाकर, शमशेर बहादुर को अपना राज छोड़कर बेतवा पार भाग जाना पड़ा।

16 दिसम्बर, सन् 1803 को बसईं की सन्धि में आवश्यक परिवर्तन करके उस पर पेशवा बाजीराव के दस्तखत करा लिए गए। इन शर्तों के अनुसार बुन्देलखण्ड का प्रान्त बाज़ाब्ता अंगरेज़ कम्पनी के शासन में आ गया।

कोयल पर क़ब्ज़ा

अलीगढ़, देहली, आगरा और आस-पास के इलाक़े पर भी उन दिनों मुग़ल सम्राट् का अधिपत्य नाममात्र का रह गया था। इस इलाक़े का क्रियात्मक शासन सिंधिया कुल के हाथों में था, और वहां की रक्षा के लिए माधोजी सिंधिया ने दी बौयन नाम के एक फ़्रांसीसी को नियुक्त कर दिया था। दी बौयन के बाद एक दूसरा फ़्रान्सीसी, कप्तान पैरां,

* "Cuttack now begins to be noticeable as it is *at frequent intervals throughout the early years of British rule as a place in constant want of supplies and always on the verge of famine.* On first December, 1803, an urgent call is made for fifteen thousand maunds of rice from Balasore. Again on 1st June, 1804, Captain Morgan is ordered to warn all pilgrims of the great scarcity of rice and cowries at Cuttack and to endeavour to induce them to supply themselves with provisions before entering the province."—J. Beams in the Notes above quoted.

सिंधिया के इस इलाक़े की सेनाओं का सेनापति नियुक्त हुआ। यह बड़ी मनोरंजक बात है कि सिंधिया पर एक खास दोष यह मढ़ा जाता था कि उसने अपने यहां कप्तान पैरां के अधीन फ़्रान्सीसी सेना नियुक्त कर रखी थी, इन दोनों फ़्रान्सीसियों में से दी बौयन वारेन हेस्टिंग्स का एक खास आदमी था और वारेन हेस्टिंग्स ही की सिफ़ारिश पर माधोजी सिंधिया ने उसे अपने यहां नौकर रखा था, और इसी युद्ध में साबित हो गया कि दी बौयन का उत्तराधिकारी कप्तान पैरां भी अंगरेज़ों से मिला हुआ था।

7 अगस्त, सन् 1803 को जनरल लेक इस सब इलाक़े को विजय करने के लिए कानपुर से सेना सहित रवाना हुआ। 28 अगस्त को वह सिंधिया की सरहद पर पहुंचा। 29 अगस्त को उसने बड़ी आसानी से सिंधिया के सरहदी क़िले कोयल को विजय कर लिया। उसी दिन जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली के नाम एक 'प्राइवेट' पत्र में इस सरल विजय का कारण यह बताया कि—"कप्तान पैरां के कुछ साथी, विशेष कर जाट और सिख, अंगरेज़ों के पहुंचने से पहले ही क़िला छोड़ कर चले गए थे ××× और मराठा सेना के छः यूरोपियन अफ़सर सिंधिया की नौकरी छोड़ कर अंगरेज़ी सेना की ओर आ मिले।"*

अलीगढ़ का संग्राम

कोयल पर क़ब्ज़ा करने के बाद जनरल लेक ने अलीगढ़ पर चढ़ाई करने का इरादा किया। कोयल से उसने 1 सितम्बर, सन् 1803 को मार्क्विस वेल्सली के नाम एक और 'प्राइवेट' पत्र लिखा, जिसमें ये वाक्य आते हैं:

> **"मैं अभी तक इस जगह से नहीं हिला, और न अभी अलीगढ़ का क़िला मेरे हाथों में आया है; मेरा लक्ष्य यह है कि रिश्वत देकर उस क़िले के अन्दर की सेना को क़िले से बाहर निकाल लूं और मुझे विश्वास है, मैं इसमें सफल हूंगा। ××× यह क़िला बड़ा ही मजबूत है, और यदि इसका विधिवत् मोहासरा किया गया, तो कम-से-कम एक महीना लग जाएगा। ××× इसलिए यदि थोड़ा सा धन खर्च करके मैं अपने आदमियों की क़ीमती जानें बचा सकूं, तो आप मुझे अपराधी या फ़जूलखर्च न समझेंगे।"†**

फिर भी, अलीगढ़ के क़िले की हिन्दोस्तानी सेना नमकहलाल साबित हुई। सितम्बर को लेक ने गवर्नर-जनरल को फिर लिखा:

> **"जैसा मैंने आपको पहली तारीख के पत्र में लिखा था, उसके मुताबिक मैंने हर तरह से समझा कर प्रयत्न किया कि ये लोग क़िला छोड़ दें और उन्हें**

* "......Some of his (M. Perron's) confederates left him the moment they heard of our approach, particularly the Jauts, and a few Sikhs......Six officers of Perron's second brigade are just come in, having resigned the service......"—General Lake's "Private" letter to Marques Wellesley, dated 29th August, 1803.

†"I have not yet moved from hence, nor am I in possession of the fort of Aligarh; *my object is to get the troops out of the fort by bribery, which I flatter myself will be done*......The place is extremely strong, and if regularly besieged, will take a month at least......Therefore, if by a little money, I can save the lives of these valuable men, Your Lordship will not think I have acted wrong, or been too lavish of cash."—General Lake's letter to Marques Wellesley, marked "Private", dated Coel, September 1st, 1803.

एक बहुत बड़ी रकम देने का वादा किया, किन्तु वे मुक़ाबला करने का दृढ़ निश्चय किए बैठे थे, और उन्होंने बहुत जम कर, और मैं कहूंगा अत्यन्त वीरता के साथ हमारा मुक़ाबला किया ।"†

फिर भी, क़िले के कुछ हिन्दोस्तानी और अधिकांश यूरोपियन अफ़सरों और सिपाहियों पर लेक का जादू चल गया । 4 सितम्बर को सवेरे जनरल लेक ने क़िले पर हमला किया । सिंधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में, जो शत्रु से आ मिले, एक अंगरेज़ ल्यूकन था । ल्यूकन ने क़िले के गुप्त रास्ते का अंगरेज़ों को भेद दिया । जनरल लेक ने अपने पत्र में गवर्नर-जनरल से सिफ़ारिश की कि "ल्यूकन को खूब इनाम दिया जाए, क्योंकि वह सिंधिया की नौकरी छोड़ कर इसलिए चला आया था कि उससे अपने देश के विरुद्ध कोई काम न हो जाए ।" और क्योंकि अलीगढ़ के क़िले को जीतने में "हमें उसकी सेवाओं से असीम लाभ हुआ है ।"*

अलीगढ़ विजय

ल्यूकन और उस जैसे अनेक विश्वासघातकों की सहायता से 4 सितम्बर को ही अलीगढ़ का 'अत्यन्त मज़बूत' क़िला अंगरेज़ों के हाथों में आ गया । फिर भी, कहा जाता है कि लेक की सेना के बहुत से आदमी अलीगढ़ की लड़ाई में काम आए ।

इस मामले में सिंधिया की सेना के फ़ान्सीसी सेनापति पैरां की नीयत भी सन्दिग्ध मालूम होती है । जनरल लेक के कानपुर से चलते समय पैरां अपनी सेना के साथ अलीगढ़ में मौजूद था । लिखा है कि पैरां के पास एक बड़ी सेना थी और हिन्दोस्तान भर में अलीगढ़ का क़िला सर्वथा अजेय और अलंघ्य प्रसिद्ध था । स्वयं जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को अपनी विजय का समाचार देते हुए लिखा कि—"इस क़िले की असाधारण मज़बूती को देखते हुए, मेरी राय में, अंगरेज़ों की वीरता इससे अधिक ज़ोरों में कभी न चमकी होगी ।"

पैरां का चरित्र

पैरां ने एक बार अपनी सेनाएं जमा करके क़िले की रक्षा का इरादा ज़ाहिर किया । उसके बाद जनरल लेक के पहुंचने से पहले क़िले को अपने एक फ़ान्सीसी मातहत, पैद्रां के ऊपर छोड़ कर पैरां एकाएक हाथरस चला गया । इतिहास-लेखक मिल ने यह कह कर पैरां

---

† "As I told Your Lordship in my letter of the 1st instt., I had tried every method to prevail upon these people to give up the fort, and offered a very large sum of money, but they were determined to hold out, which they did most obstinately and, I may say, most gallantly."—General Lake to the Governor-General, dated 4th September, 1803.

* "I feel I shall be wanting in justice to the merits of Mr. Lucan, an officer, a native of Great Britain who lately quitted the service of Scindhia, to avoid serving against his country, were I not to recommend him to Your Lordship's particular attention. He gallantly undertook to......point out the road through the fort,...... received infinite benefit from his service,......it will afford me great satisfaction, if his services are rewarded by Government."—General Lake's letter to Marques Wellesley, dated 4th September, 1803, from Aligarh.

के चरित्र की प्रशंसा की है कि—"यदि वह अंगरेज़ों के साथ सौदा करके अपना युद्ध का भारी सामान अंगरेज़ों के हवाले कर देता, तो उसे अंगरेज़ों से एक बहुत बड़ी रक़म मिल जाती, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया।" दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि स्वयं सिंधिया का विश्वास पैरां पर से हट गया था और इसी समय के निकट पैरां की जगह सिंधिया ने एक दूसरा सेनापति नियुक्त करके भेज दिया था। यह भी लिखा है कि पैरां के अधिकांश अंगरेज़ और फ्रान्सीसी मातहत अफ़सर अंगरेज़ों से मिल गए थे। मार्क्विस वेल्सली के पत्र में लिखा है :

> **"मो० पैरां ने यह भी कहा कि अपने अधीन यूरोपियन अफ़सरों की विश्वासघातकता और कृतघ्नता से मुझे विश्वास हो गया कि अब अंगरेज़ी सेना का मुकाबला करना व्यर्थ है।"***

अलीगढ़ की विजय की शताब्दी के अवसर पर 4 सितम्बर, सन् 1903 को 'पायोनियर' के एक लेखक ने लिखा :

> **"दावे से बयान किया जाता है कि पैरां ने 'अपनी बचत की एक बहुत बड़ी रक़म' ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारबार में लगा रखी थी।"†**

निस्सन्देह, यह 'बचत की रक़म' उसे अंगरेज़ों से ही मिली थी। कोई सन्देह नहीं कि कप्तान पैरां भी कम्पनी का धनक्रीत था।

अलीगढ़ के पतन के बाद पैरां ने सिंधिया की नौकरी छोड़ दी।

लेक के गुप्त उपाय

जनरल लेक के लिए अब सिंधिया के बाक़ी उत्तरी इलाक़े पर क़ब्ज़ा करना और भी सरल हो गया। गवर्नर-जनरल ने लेक को लिखा कि आप अलीगढ़ के बाद सिंधिया की राजधानी ग्वालियर पर हमला करें। ग्वालियर में सिंधिया के नायक अम्बाजी के साथ लेक का गुप्त पत्र-व्यवहार जारी था, किन्तु अम्बाजी अभी तक सिंधिया के साथ विश्वासघात के लिए राज़ी न हुआ था। इसलिए लेक को ग्वालियर की ओर बढ़ने की हिम्मत न हो सकी। उधर दिल्ली में सम्राट शाह आलम के साथ गवर्नर-जनरल का पत्र व्यवहार जारी था। 29 अगस्त को कोयल में जनरल लेक को मुग़ल सम्राट की ओर से एक पत्र मिला। तुरन्त जनरल लेक ने अलीगढ़ लेने के बाद दिल्ली की ओर बढ़ने का निश्चय कर लिया। मार्ग में कौंगा का क़िला था। 8 सितम्बर को जनरल लेक ने कौंगा के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। उसी दिन कौंगा से जनरल लेक ने गवर्नर-जनरल को एक 'प्राइवेट' पत्र में लिखा :

> **"हम लोग आज सुबह यहां पहुंचे और हमें एक बहुत मजबूत छोटा सा क़िला मिला। यदि अलीगढ़ के पतन के अगले ही दिन यहां की सेना स्वयं क़िला छोड़ कर न चली गई होती, तो हमें देर लगती और मुसीबत होती।**

---

* "......M. Perron also observed that the treachery and ingratitude of his European officers convinced him that further resistance to the British arms was useless."

† "It is asserted that he had 'Savings' to a considerable amount invested in the funds of the East India Company."—"Pioneer", 4th September, 1903.

"मैं सोचता हूं कि जब आप सुनेंगे कि किस-किस 'गुप्त उपाय' से यह सब काम किया जा रहा है, तो आप बहुत खुश होंगे। सेना के इतिहास में यह एक बिल्कुल नई तरह का काम है, और हमें अभी तक इसमें खूब आश्चर्यजनक सहायता प्राप्त हुई है। मैं समझता हूं, तीन और पड़ाव में हम दिल्ली के बहुत नजदीक पहुंच जाएंगे।" *

चांदी और सोने की गोलियां

निस्सन्देह, संसार के सैनिक इतिहास में जनरल लेक की ये सब विजय 'एक बिल्कुल नई तरह की' विजय थीं। सिंधिया के आदमियों के ऊपर इस युद्ध भर में लोहे की गोलियों के स्थान पर जनरल लेक खूब जी खोल कर चांदी और सोने की गोलियां चला रहा था, और सिंधिया के विदेशी नौकरों की दग़ा और भारतवासियों में राष्ट्रीय भाव के शोकजनक अभाव के कारण लेक को 'खूब आश्चर्यजनक सफलता' प्राप्त हो रही थी। यही लेक का 'गुप्त उपाय' था।

लुई बौरगुइन

दिल्ली में लुई बौरगुइन नाम के फ़ान्सीसी के मातहत सिंधिया की एक ज़बरदस्त सेना रहती थी, जिसके साथ एक बहुत बड़ा तोपख़ाना था। मालूम होता है, इस लुई बौरगुइन ने सिंधिया के साथ विश्वासघात नहीं किया। 11 सितम्बर, सन् 1803 को जमना के इस पार लुई बौरगुइन की सेना और जनरल लेक की सेना में घमासान संग्राम हुआ। लेक के अनेक अफ़सर और सिपाही इस संग्राम में काम आए। किन्तु स्वयं सम्राट शाह आलम के आदमियों द्वारा लुई बौरगुइन की सेना के भीतर भी लेक की चांदी की गोलियां चल चुकी थीं। विजय अन्त में जनरल लेक की ओर रही और सिंधिया की ज़बरदस्त तोपें अंगरेज़ों के हाथ आईं।

12 सितम्बर को लेक ने गवर्नर-जनरल के नाम एक विस्तृत पत्र लिखा कि किन-किन कारणों से मैं ग्वालियर का इरादा छोड़ कर दिल्ली की ओर बढ़ आया।

दिल्ली का क्रियात्मक प्रभुत्व

दिल्ली में 16 सितम्बर, सन् 1803 को विजयी लेक ने सम्राट शाह आलम से भेंट की। एक पिछले अध्याय में दिया जा चुका है कि किस तरह के झूठे वादों में फंस कर भोले और अभागे मुगल सम्राट ने अपने देशवासी सिंधिया के विरुद्ध विदेशियों का साथ दिया। बहुत सम्भव है कि बिना शाह आलम की सहायता और सहानुभूति के दिल्ली विजय करना

---

* "We arrived here (Kaunga) this morning; and found a very strong little fort which would have caused delay and trouble had not the troops evacuated it the day after the fall of Aligarh.........

"I think when you hear the SECRET manner in which things have been conducted you will be much pleased, it is quite a new work in the army, and has succeeded hitherto wonderfully well. I think to be very near Delhi in three more marches."—General Lake's letter, marked 'Private', dated September 8th, 1803, to the Governor-General.

अंगरेज़ों के लिए इतना सरल न होता। शाह आलम को शुरू से अंगरेज़ों पर थोड़ा-बहुत सन्देह भी अवश्य था। एक बार उसने कहा था कि—"ऐसा न हो कि मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लेने के बाद अंगरेज़ मुझे भूल जाएं।" सम्राट के दरबार के अन्दर भी अंगरेज़ों के छिपे हुए हित-साधक मौजूद थे। उन्हीं के समझाने-बुझाने पर शाह आलम ने अंगरेज़ों का साथ दिया। अन्त में, शाह आलम का डर सच्चा निकला।

16 सितम्बर, सन् 1803 ही को जनरल लेक ने दिल्ली का सारा शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। कहने के लिए इसके बाद भी कम्पनी के अफ़सर और अंगरेज़ शासक दिल्ली के सम्राट को हिन्दोस्तान का सम्राट मानते रहे, और कम्पनी सरकार का उसे अधिराज स्वीकार करते रहे, किन्तु वास्तव में, इस समय से ही इन उपाधियों में सिवाय उपचार के और कुछ बाक़ी न रह गया। लेक ने दिल्ली की आमदनी में से बारह लाख रुपये सालाना सम्राट के खर्च के लिए नियत कर दिए और भारत का सम्राट एक तरह से विदेशी कम्पनी का पेंशनर बन कर रह गया।

सम्राट के साथ जनरल लेक के इस सलूक को बयान करते हुए इतिहास-लेखक मेजर आर्चर लिखता है :

"इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट हम अंगरेज़ों को सब से कम पसन्द करता है, क्योंकि उसकी सलतनत हमारे चंगुल से निकल कर फिर कभी भी उसके हाथों में नहीं जा सकती ; × × × अंगरेज़ों नें बहुत दिनों से सम्राट के अधिकार को नहीं माना, जब तक उन्हें इससे फ़ायदा रहा, वे कपट नीति द्वारा सम्राट की ओर ऊपरी आदर दिखलाते रहे, और जब उन्हें सम्राट के नाम की सहायता की भी ज़रूरत न रही, तब उन्होंने × × × अपनी समस्त कृतज्ञता को एक पेंशन के अन्दर बन्द कर दिया। × × सम्राट से उसके राजत्व के लक्षण अलग कर दिए गए, सलतनत की वार्षिक आय उससे छीन कर विदेशियों के काम में लाई गई, सिवाय अपने खास कुटुम्ब के और हर तरफ़ से उसके अधिकार परिमित कर दिए गए, सारांश यह कि सिवाय हिन्दोस्तान के 'बादशाह' की उपाधि के और सब स्वत्व, सत्ता और अधिकार सम्राट से छीन लिए गए, और यह सब बारह लाख रुपये सालाना की उदार (!) पेंशन के बदले में।"*

कर्नल आक्टरलोनी

जनरल लेक ने कर्नल आक्टरलोनी को दिल्ली में कम्पनी का रेज़िडेण्ट और वहां की सेना का प्रबन्ध सेनापति नियुक्त किया, और उसके मातहत एक पलटन और चार

* "That he likes us (the English) the least, there is no doubt, for from our grip his Kingdom can never be wrested to return again into his own keeping......His authority they (the British) have long since refused but it was stealthy duplicity, honouring him as long as it was found convenient and, when no longer requiring the aid of the King's name, ...they summed up their acknowledgement within the compass of a pension......The King has been shorn of his beams of royalty, his revenues have been seized and converted to the use of strangers, his authority everywhere abrogated but in his own immediate family; in short, he has lost all the rights, powers, and privileges, everything but the name of King, and King, too, of Hindostan, for the munificent exchange of twelve lacs annually ?"—*Tours in Upper India,* by Major Archer, vol. i, pp. 126-27.

कम्पनियां देशी पैदल और मेवातियों की एक पलटन दिल्ली की रक्षा के लिए छोड़ दी। इस आक्टरलोनी की एक विशेषता यह थी कि वह दिल्ली में मुसलमानी ढंग से रहता था, मुसलमानी पोशाक पहनता था, अनेक मुसलमान तवायफ़ें रखे हुए था, और दिल्ली भर की तवायफों और महल के ख़ोजों के ज़रिए शहर और दरबार की सब खबरें रखता था। सिंधिया के उन यूरोपियन अफ़सरों में से अनेक जो अंगरेज़ों से मिल गए थे, अब फिर दिल्ली की नई संरक्षक सेना के विविध पदों पर नियुक्त कर दिए गए।

आगरे के क़िले पर क़ब्ज़ा

24 सितम्बर को जनरल लेक ने दिल्ली से आगरे की ओर कूच किया। आगरे पहुंच कर कई दिन तक अव्यवस्थित लड़ाई होती रही। क़िले के अन्दर से सिंधिया की सेना ने पहले शत्रु का मुकाबला किया, फिर जनरल लेक के 'गुप्त उपाय' के प्रताप से सिंधिया के क़रीब ढाई हज़ार सिपाही आगरे के क़िले से निकल कर लेक की सेना में आ मिले। 17 अक्तूबर की शाम को क़िले की बाक़ी सेना ने इस शर्त पर, कि उनकी जान और उनके माल की रक्षा की जाएगी, क़िला अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया।

लसवाड़ी का संग्राम

उत्तर में जनरल लेक के लिए अब केवल एक और लड़ाई लड़ना बाक़ी था। आगरे और ग्वालियर के बीच में इस समय एक और सन्नद्ध मराठा सेना थी, जिसमें कुछ दक्षिण से आई थी और कुछ दिल्ली की परास्त सेना शामिल थी। इस सेना के पास अनेक भारी तोपें भी थीं। पता चला कि यह सेना आगरे की ओर बढ़ रही है। 27 अक्तूबर को लेक इस सेना के मुक़ाबले के लिए आगरे से निकला। 1 नवम्बर, सन् 1803 को आगरे के पास लसवाड़ी नाम के स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। सिंधिया के इन वफ़ादार सैनिकों ने वीरता के साथ शत्रु का मुकाबला किया। 2 नवम्बर को लेक ने एक 'गुप्त' पत्र में मार्क्विस वेल्सली को लिखा :

> **"ये लोग शैतानों की तरह लड़े, बल्कि कहना चाहिए, वीरों की तरह लड़े और यदि हमनें ऐसे ढंग से हमला करने का प्रबन्ध न किया होता, जैसा कि हमें जबरदस्त-से-जबरदस्त सेना के लिए, जो कि हमारे मुक़ाबले में आ सकती थी, करना चाहिए था, तो मुझे पूरा विश्वास है कि जो स्थिति शत्रु की थी, उससे हम हार जाते।"**

किन्तु यहां भी लेक के न हारने का कारण उसके 'हमले का कोई ढंग' विशेष न था। इसी पत्र में और आगे चल कर लेक साफ़ लिखता है :

> **"यदि फ़ान्सीसी अफ़सर उनके नेता बने रहते, तो मुझे डर है कि परिणाम अत्यन्त ही सन्दिग्ध होता। अपने जीवन भर में मैं इतनी बड़ी या इससे मिलती-जुलती आपत्ति में कभी नहीं पड़ा। और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि फिर कभी ऐसी हालत में न पड़ूं।"***

---

* "These fellows fought like Devils, or rather heroes, and had we not made a disposition for attack in a style that we should have done against the

ऐन उस समय, जब कि जनरल लेक को पराजय अपने सामने खड़ी दिखाई दे रही थी, मराठा सेना के नेता अंगरेज़ों की ओर आ मिले। जनरल लेक को फिर से आशा बंधी और अन्त में यद्यपि लेक के अनेक अफ़सर और अधिकांश सिपाही लसवाड़ी के मैदान में काम आए, फिर भी विजय जनरल लेक ही की रही। लेक के 28 अक्तूबर के एक पत्र से साबित है कि कई दिन पहले से लेक ने अपने 'गुप्त उपाय' इस सेना में शुरू कर दिए थे। मराठा सेना की तोपें भी अंगरेज़ों के हाथ आईं। लसवाड़ी की लड़ाई भी भारत की निर्णायक लड़ाइयों में गिनी जाती है, क्योंकि लसवाड़ी की सेना उत्तर भारत में मराठों की अन्तिम सेना थी। मराठों की जो तोपें इन अनेक संग्रामों में अंगरेज़ों के हाथ आईं, उनके बारे में अनेक अंगरेज़ अफ़सर स्वीकार करते हैं कि वे अंगरेज़ों की उस समय की तोपों से हर बात में बढ़िया और कहीं अधिक उपयोगी थीं।

ग्वालियर विजय की योजना

दौलतराव सिंधिया की सत्ता को समाप्त करने के लिए अब केवल दो बातें बाक़ी थीं, एक, राजधानी ग्वालियर पर क़ब्ज़ा करना और दूसरे, सिंधिया और उसके साथ की सवार सेना को परास्त करना।

ग्वालियर की रक्षा अम्बाजी के सुपुर्द थी। अम्बाजी को सिंधिया से फोड़ने के प्रयत्न जारी थे। लसवाड़ी की विजय के बाद जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को लिखा :

> **"मैं बड़ा खुश हूं कि सिवाय ग्वालियर के आपकी और सब इच्छाएं मैंने पूरी कर दी हैं। मुझे विश्वास है कि ग्वालियर हमें अम्बाजी के साथ सन्धि करके मिल जाएगा। इन सेनाओं के हार जाने के कारण अम्बाजी फ़ौरन सन्धि के लिए राजी हो जाएगा।"***

जयपुर नरेश को भयभीत करना

अगले दिन लेक ने गवर्नर-जनरल को लसवाड़ी ही से फिर एक पत्र लिखा :

> **"ज्यों ही मैं अपने घायलों को यहां से हटा सका, मैं उस सन्दिग्ध चरित्र के मनुष्य अम्बाजी की ओर कूच करूंगा। किन्तु पहले मैं धीरे-धीरे बढ़ूंगा, क्योंकि जयपुर के राजा के ऊपर मैं यह असर डालना चाहता हूं कि यदि वह शीघ्र राजी न हो गया, तो मैं जयपुर की ओर बढ़नेवाला हूं। मेरा उद्देश्य केवल यह है**

---

most formidable army we could have been opposed to, I verily believe, from the position they had taken we might have failed.

* * * *

"......if they had been commanded by French officers, the event would have been I fear, extremely doubtful. I never was in so severe a business in my life or any thing like it, and pray to God I never may be in such a situation again."—General Lake's letter marked "Secret", dated 2nd November 1803, to Marques Wellesley.

* "I feel happy in having accomplished all your wishes, except Gwalior, which I trust we shall get possession of by treaty with Ambajee; the fall of these brigades will bring him to terms immediately."—Lake's Letter to Marques Wellesley, 2nd November, 1803.

कि वह डर कर जल्दी से फ़ैसला कर डाले । इस समय मालूम होता है, वह बहुत सन्दिग्ध खेल खेल रहा है ।"†

निस्सन्देह, जनरल लेक का 'उद्देश्य केवल डर दिखाना' था । उसे अभी तक जयपुर या ग्वालियर, दोनों में से किसी पर भी हमला करने की हिम्मत न थी । राजपूताने के राजाओं के साथ बहुत दिनों से साज़िशें जारी थीं । किन्तु बिना अम्बाजी के फूटे या महाराजा जयपुर की सहायता मिले, न वह ग्वालियर पर हमला करने का साहस कर सकता था और न उस हालत में जयपुर पर हमला करने का ही उसे साहस हो सकता था । जनरल लेक ने या उसके साथियों ने हिन्दोस्तान में कोई लड़ाई अपने सैन्यबल या वीरता के सहारे नहीं जीती और न अभी तक अंगरेज़ों की साज़िशों का जादू ही अम्बाजी पर चल पाया था ।

किन्तु मालूम होता है कि महाराजा जयपुर भी लेक की चालों में आ गया । 14 नवम्बर को एक 'अत्यन्त गुप्त और प्राइवेट' पत्र में लेक ने गवर्नर-जनरल को लिखा :

"लसवाड़ी की विजय से जयपुर के राजा और उसके समस्त बदमाश और दग़ाबाज सलाहकारों को अक़्ल आ गई है । अब वे लोग मेरे कैम्प की ओर आ रहे हैं ।"*

इन सुन्दर(?) शब्दों में जनरल लेक ने भारतीय देशघातकों की कद्र की । पर इसके बाद भी लेक को ग्वालियर पर हमला करने की हिम्मत न हो सकी ।

दोनों पक्षों में सन्धि की उत्सुकता

उधर दक्षिण में जनरल वेल्सली अपने भाई गवर्नर-जनरल को साफ़ लिख चुका था कि दौलतराव सिंधिया को और अधिक हानि पहुंचाने या उसकी सवार सेना से लड़ने की मुझ में अब हिम्मत नहीं है । मार्क्विस वेल्सली महाराजा दौलतराव सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले, दोनों का पूरा सर्वनाश करना चाहता था । किन्तु यह इस समय असम्भव दिखाई दिया । अंगरेज़ों का खर्च भी खास कर रिश्वतों में बेहद हो चुका था । दोनों पक्ष थक गए थे और दोनों इस समय सन्धि के लिए उत्सुक थे ।

सिंधिया और भोंसले के साथ सन्धि

पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और दिसम्बर सन् 1803 में बरार के राजा राघोजी भोंसले और ग्वालियर के महाराजा दौलतराव सिंधिया, दोनों के साथ अंगरेज़ों की सन्धि

---

† "I shall as soon as I can move my wounded men, begin my march towards that doubtful character, Ambajee, but I shall in the first instance proceed but slowly as I wish to impress the Raja of Jeypore with an idea, that, if he does not come to terms shortly, I may pay him a visit. All I mean by this is to alarm him into some decisive measure; he seems at present to be playing a very suspicious game."—Lake's letter to Governor-General, marked "Private", dated November 3rd, 1803.

* "It (the victory at Laswari) has brought the Raja of Jeypore and all his wicked and traitorous advisers to reason, they are now upon their march to my camp."—"Private and most secret" letter from Lake to Governor-General, 14th November, 1843.

हो गई, जिसमें दोनों के वे अत्यन्त उपजाऊ प्रान्त, जो अंगरेज़ जीत चुके थे, कम्पनी के राज्य में मिला लिए गए ।

जसवन्तराव होलकर को अंगरेज़ अभी तक अपनी ओर मिलाए हुए थे । असहाय दौलतराव को सबसे अधिक डर उसके पुराने शत्रु जसवन्तराव होलकर का दिलाया गया । लाचार होकर फ़रवरी सन् 1804 में दौलतराव सिंधिया ने बरहानपुर में कम्पनी के साथ उसी तरह की सबसीडियरी सन्धि स्वीकार कर ली, जिस तरह की सन्धि पेशवा के स्वीकार करने के विरुद्ध उसने कुछ समय पहले इतने प्रबल प्रयत्न किए थे । कम्पनी की सेना अब सिंधिया के खर्च पर सिंधिया के राज्य में, किन्तु कम्पनी के अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन रहने लगी ।

कम्पनी का भारतीय साम्राज्य जितना इस युद्ध से बढ़ा, उतना शायद किसी भी दूसरे युद्ध से नहीं बढ़ा । वास्तव में, यदि देखा जाए, तो मार्क्विस वेल्सली को अब तक अपनी आशा से कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई । किन्तु यह सब दूसरे मराठा युद्ध का केवल पूर्वार्द्ध था । इस युद्ध के उत्तरार्द्ध का वर्णन आग के अध्यायों में किया जाएगा । उसी वर्ष भारत में वह भयंकर सूखा पड़ा, जिस तरह का सूखा, कहा जाता है, भारत के इतिहास में पहले कभी न पड़ा था । परिणामस्वरूप चारों ओर भयंकर अकाल-ही-अकाल दिखाई देने लगा ।

पचीसवां अध्याय

जसवन्तराव होलकर

अंगरेज़ों के वादों का मूल्य

जसवन्तराव होलकर आरम्भ में अपनी अदूरदर्शिता के कारण पेशवा के और दूसरे मराठा नरेशों के विरुद्ध अंगरेज़ों के हाथों में खेलता रहा। जिस समय अंगरेज़ सिंधिया और भोंसले के साथ युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उस समय वे जसवन्तराव की खुशामद में लगे हुए थे। जुलाई, सन् 1803 में जनरल वेल्सली ने कादिर नवाज खां को एक गुप्त पत्र देकर, जसवन्तराव के पास भेजा और कादिर नवाज खां की मारफ़त जसवन्तराव से यह वादा किया कि यदि आप अंगरेजों के विरुद्ध महाराजा सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले को सहायता न देंगे, तो अंगरेज अमुक-अमुक इलाके सिंधिया से लेकर आपके हवाले कर देंगे और सदा आपके मददगार रहेंगे। इसके बाद जनरल वेल्सली ने गवर्नर जनरल के कहने से जसवन्तराव को कई पत्र लिखे, जिनमें उसने जसवन्तराव से वादा किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद गंगा और जमना के बीच के बारह जिले, दक्षिण के कुछ जिले और बुन्देलखण्ड और उत्तर-भारत का कुछ और इलाका, जो पहले होलकर राज में रह चुका था, सब आपको दे दिया जाएगा। दोनों वेल्सली भाइयों ने अपने छपे हुए पत्रों में इन पत्रों का लिखना स्वीकार किया है। इन झूठे वादों से अंगरेज़ों का मतलब उस समय केवल यह था कि जसवन्तराव अंगरेज़ों के विरुद्ध सिंधिया और भोंसले की सहायता न करे। जनरल वेल्सली और जनरल लेक ने अपने पत्रों में यह भी स्वीकार किया है कि यदि जसवन्तराव होलकर सिंधिया के मदद के लिए पहुंच जाता, तो वेल्सली के लिए असाई और अरगांव के मैदान जीत सकना या लेक के लिए आगरा और लसवाड़ी में विजय प्राप्त कर सकना असम्भव होता।

जसवन्तराव के साथ सलूक

किन्तु सिंधिया और भोंसले, दोनों पर विजय प्राप्त करते ही अंगरेज़ों ने जसवन्तराव की ओर अपना रुख बदल दिया। वास्तव में, इस युद्ध के समाप्त होने से पहले अंगरेजों ने जसवन्तराव को भी कुचलने का इरादा कर लिया था। 12 दिसम्बर, सन् 1803 को जनरल वेल्सली ने मार्क्विस वेल्सली के प्राइवेट सेक्रेटरी मेजर शा को एक पत्र में लिखा :

> **"जब तक हम होलकर पर हमला न करेंगे और पेशवा के सब इलाक़े भी पेशवा से न छीन लेंगे, तब तक हम इन देशों से मराठों को क़तई बाहर निकाल देने में सफल न होंगे, चाहे सिंधिया हमें अपने अधिकार दे भी क्यों न दे।"***

---

* "......unless we make war upon Holkar, and deprive the Peshwa of his territories, we shall not succeed in driving the Marhattas entirely from these countries, although Scindhia should cede his rights."—Camp before Gauregarh, 12th December, 1803, General Wellesley's letter to Major Shawe.

यह पत्र उस समय का है, जब अंगरेज़ ऊपर से जसवन्तराव की ओर गहरी मित्रता दिखा रहे थे ।

मार्क्विस वेल्सली के पत्रों से साफ़ है कि वह भी शुरू से होलकर का नाश करने के लिए उत्सुक था । किन्तु जब तक सिंधिया के साथ सन्धि की लिखा-पढ़ी न हो जाए, तब तक होलकर को छेड़ना ठीक न था ।

लेक और वेल्सली में पत्र व्यवहार

जसवन्तराव होलकर ने भी, इस झूठी आशा में कि सिंधिया के साथ युद्ध समाप्त होने के बाद अंगरेज़ मेरे साथ अपने वादों को पूरा करेंगे, उनके साथ मित्रता कायम रखी और सिंधिया और भोंसले, दोनों की आपत्तियों में उन दोनों में से किसी को किसी तरह की सहायता न दी । सिंधिया और भोंसले के साथ युद्ध समाप्त होते ही जसवन्तराव ने जनरल वेल्सली के पत्रों की नक़ल जनरल लेक के पास भेजीं और वेल्सली के वादों की पूर्ति चाही । लेक ने जसवन्तराव होलकर का पत्र और उसके साथ अपने 28 दिसम्बर के 'प्राइवेट' पत्र में गवर्नर-जनरल को लिखा :

> **"इस पत्र के साथ आपको होलकर का एक पत्र मिलेगा ; और मैं यह जान कर प्रसन्न हूं कि होलकर हमारे साथ मित्रता क़ायम रखना चाहता है ।**
>
> **"मैं जल्दी में लिख रहा हूं, × × × होलकर के विषय में मैं आपकी राय और आपका आदेश जानना चाहता हूं ।"**

जनरल लेक को अपने 'गुप्त उपाय' पर पूरा विश्वास था, सिंधिया के विरुद्ध वह उन्हें परख चुका था और अब वह होलकर से युद्ध छेड़ने के लिए लालायित था ।

मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक के उत्तर में 17 जनवरी, सन् 1804 को एक 'गुप्त' पत्र लिखा, जिसके कुछ वाक्य हैं :

> **"आपके 19, 28 और 29 दिसम्बर, सन् 1803 के पत्र पहुंचे । × × ×**
>
> **"जिन पत्रों की नक़लें जसवन्तराव होलकर ने आपके पास भेजी हैं, वे मेजर जनरल वेल्सली ने अवश्य अपने नाम से होलकर के पास भेजे होंगे । मैंने जसवन्तराव होलकर को कोई पत्र नहीं लिखा, किन्तु मैंने अपनी 26 जून की हिदायतों में मेजर जनरल वेल्सली को यह अधिकार दिया था कि वह जसवन्तराव के साथ मित्रता का पत्र व्यवहार शुरू कर दे ।**
>
> × × ×
>
> **"पर अब यह उचित है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार निश्चित कर लें ।**
>
> **"माननीय मेजर जनरल वेल्सली का स्थान जसवन्तराव होलकर के खेमे से इतनी अधिक दूर है कि वहां से पत्र व्यवहार करना कठिन होगा ; और चूंकि इस काम के लिए आपकी जगह अधिक सुविधा की होगी, इसलिए मेरा विचार है कि आप तुरन्त जसवन्तराव होलकर के साथ पत्र व्यवहार शुरू कर दें ।"**

इतना ही नहीं वरना जिस जसवन्तराव ने अंगरेज़ों का इतना उपकार किया था और जिसे नागपुर की नज़र क़ैद से निकाल कर अंगरेज़ों ही में पेशवा और सिंधिया, दोनों से

लड़ा कर होलकर कुल की गद्दी तक पहुंचाया था, और जिसे सिंधिया से फोड़े रखने के लिए हाल ही में उन्होंने नए इलाक़े देने का वादा किया था, उस जसवन्तराव के बारे में अब इस पत्र में मार्क्विस वेल्सली ने लिखा :

"होलकर कुल के राज्य पर, खण्डेराव के नाम पर, जसवन्तराव होलकर ने जो अपना अधिकार जमा रखा है, वह साफ़ तौर पर तुकाजी होलकर के वास्तविक उत्तराधिकारी काशीराव होलकर के अधिकारों का बलात् अपहरण है। इसलिए न्याय के सिद्धान्तों का विचार रखते हुए अंगरेज सरकार और जसवन्तराव होलकर के बीच कोई ऐसा समझौता नहीं हो सकता, जिसका मतलब यह हो जाए कि हम काशीराव होलकर को उसके पैतृक राज्य से वंचित रखनें पर सहमत हैं।"

और आगे चल कर—

"अंगरेज़ सरकार को इस बात का अधिकार है कि पेशवा से इजाजत लेकर और पेशवा की ओर से, समझौते द्वारा या बलप्रयोग द्वारा इस तरह की कार्रवाई करे, जिससे जसवन्तराव होलकर का बल कम हो और काशीराव होलकर को अपने अधिकार फिर से प्राप्त हो जाएं। × × × सम्भव है कि पेशवा इस समय जसवन्तराव की सत्ता को कम करने या काशीराव को फिर से उसका पैतृक राज्य दिलवाने के लिए उत्सुक न हो। किन्तु यह आशा की जा सकती है कि काशीराव को फिर से गद्दी पर बैठानें और जसवन्तराव को दण्ड देने की इस योजना पर पेशवा को आसानी से राजी किया जा सकेगा × × ×।

"जसवन्तराव होलकर की पराक्रमशीलता, उसके युद्धकौशल और उसकी महत्वाकांक्षाओं को देखते हुए, हिन्दोस्तान में पूरी तरह शान्ति क़ायम करने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसकी शक्ति को कमजोर कर दिया जाए।"

अंगरेज़ों को उस समय भारत में अपना साम्राज्य मज़बूत करना था; इसलिए वे भारत के अन्दर और विशेष कर मराठा साम्राज्य के अन्दर किसी भी वीर और पराक्रमी नरेश को न रहने दे सकते थे।

जसवन्तराव को और भुलावा

दूसरी ओर मार्क्विस वेल्सली इतनी जल्दी जसवन्तराव से लड़ने के लिए भी तैयार न था। वह जसवन्तराव को अभी कुछ समय और धोखे में रखना चाहता था। इसी पत्र में उसने आगे चल कर लिखा :

"यदि हम इसी समय काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से बैठाने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें बहुत अधिक कठिनाई और आपत्ति का सामना करना पड़ेगा। किन्तु यदि हम अभी उतने देश के ऊपर, जितनें पर जसवन्तराव होलकर का इस समय राज है, उसका राज बना रहने दें, तो हमें इतनी कठिनाई या आपत्ति नहीं होगी। और यदि इस समय हम जसवन्तराव होलकर के साथ प्रेम का व्यवहार बनाए रखेंगे, तो इसका यह मतलब नहीं है कि हम आइन्दा भी कभी काशीराव होलकर को उसकी पैतृक गद्दी पर फिर से न बैठा सकेंगे × × ×।

"फिर भी यह आवश्यक है कि जसवन्तराव होलकर की ओर हम अपना व्यवहार इस ढंग का रखें कि जिससे हमें यह मानना न पड़ जाए या हमें इसकी स्वीकृति देनी न पड़ जाए कि जसवन्तराव राज्य का न्याययुक्त अधिकारी है ××× ।"

और आगे चल कर गवर्नर जनरल ने इस छल से भरे हुए पत्र में जनरल लेक को आदेश किया कि अभी "आप जसवन्तराव होलकर के साथ मित्रता क़ायम रखें और सुलह सफ़ाई का पत्र-व्यवहार जारी रखें," साथ ही, यह भी आदेश दिया कि आप "युद्ध के लिए जिस तरह आवश्यक समझें, तैयारी भी करते रहें।"*

---

*"I have the honour to acknowledge the receipt of Your Excellency's despatches under date the 19th, 28th and 29th December, 1803......

"The letters of which Jaswant Rao Holkar has transmitted copies to Your Excellency must have been forwarded to Holkar by Major-General Wellesley in his own name. I have not addressed any letter to Jaswant Rao Holkar, but Major-General Wellesley was authorized by my instructions of the 26th June, to open an amicable negotiation with that chieftain.

* * * *

"It is now expedient to decide the course to be pursued with respect to Jaswant Rao Holkar.

"The great distance of the Honourable Major-General Wellesley's position from the camp of Jaswant Rao Holkar, must render the intercourse difficult from that quarter; and as Your Excellency's situation is more likely to be convenient for that purpose, it is my intention that Your Excellency should immediately open a negotiation with Jaswant Rao Holkar.

* * * *

"The authority exercised by Jaswant Rao Holkar, in the name of Khande Rao, over the possessions of Holkar family, is manifestly an usurpation of the rights of Kashi Rao Holkar, the legitimate heir and successor of Tukoje Holkar. Consistently therefore, with the principles of justice, no arrangements can be proposed between the British Government and Jaswant Rao Holkar, involving a sanction of the exclusion of Kashi Rao Holkar from his hereditary dominions.

"Under the sanction of His Highness the Peshwa's authority, the British Government would be justified in adopting measure for the limitation of Jaswant Rao Holkar's power, and for the restoration of Kashi Rao Holkar's rights; either by force or compromise; ......The Peshwa may not now be anxious for the reduction of Holkar's power or for the restoration of Kashi Rao Holkar to his hereditary rights. But it may be expected that His Highness would readily concur in a proposition for the restoration of Kashi Rao, and for the punishment of Jaswant Rao Holkar,......

"The enterprising spirit, military character, and ambitious views of Jaswant Rao Holkar render the reduction of his power a desirable object with reference to the complete establishment of tranquility in India.

* * * *

"An immediate attempt, therefore, to restore Kashi Rao Holkar to his hereditary rights, would involve more positive and certain difficulty and danger than could be justly apprehended from the continuance of Jaswant Rao Holkar in the possession of the territories actually under his authority. A pacific conduct towards Jaswant Rao Holkar, in the present moment, will not preclude the future restoration of Kashi Rao Holkar to the possession of his hereditary rights......

भारतीय प्रजा में अंगरेज़ों की अप्रियता

एक और कठिनाई इस समय कम्पनी के सामने यह थी कि सिंधिया और भोंसले के साथ युद्ध के दिनों में कम्पनी के अफ़सरों ने विविध भारतीय नरेशों के साथ पद-पद पर अपने वादों का उल्लंघन किया था, जगह-जगह प्रजा पर अत्याचार किए थे, और विशेष कर उन इलाक़ों में, जो कम्पनी के अधीन आ गए थे, उन्होंने भीषण अत्याचार शुरू कर दिए थे जिनमें से कुछ का ज़िक्र इसी अध्याय में आगे चलकर किया जाएगा; इन सब बातों के कारण देश भर में चारों ओर उस समय प्रजा उनसे असन्तुष्ट थी, और उनके अनेक शत्रु पैदा हो गए थे। भावी युद्ध में उन्हें यह आशा न हो सकती थी कि भारतीय प्रजा और उनके नेता उसी तरह उनकी मदद करेंगे, जिस तरह उन्होंने पिछले युद्ध में की थी। इसके विपरीत, उन्हें डर था कि नए युद्ध में कहीं यह समस्त शक्तियां हमारे विरुद्ध न मिल जाएं।

युद्ध से सम्भावनाएं

दौलतराव सिंधिया का नायक अम्बाजी भी अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करने को राजी न हुआ था। जसवन्तराव के समान वह भी उस समय अंगरेज़ों की आंखों में खटक रहा था। 4 फ़रवरी, सन् 1804 को जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को लिखा :

> **"यदि हो सका, तो मैं अम्बाजी के साथ लड़ने से बचनें का प्रयत्न करूंगा क्योंकि मुझे यह मालूम होता है कि यदि हम अम्बाजी और होलकर के साथ लड़ाई आरम्भ कर दें और यदि होलकर हमारे साथ लड़ने का फ़ैसला कर दे, तो सम्भव है कि और भी बहुत-सी शक्तियों के साथ हमें लड़ना पड़ जाए, और एक बहुत लम्बे और शायद व्यापक युद्ध में हमें पड़ना पड़े। इससे, निस्सन्देह, हमें जहां तक हो सके, बचना चाहिए; साथ ही, मुझे बड़ा डर है कि जब तक अम्बाजी और होलकर को मिटा न दिया जाएगा, तब तक स्थायी शान्ति की आशा नहीं की जा सकती।"***

"It will be necessary, to regulate our proceedings with respect to Jaswant Rao Holkar in such manner as to avoid any acknowledgement and confirmation of the legitimacy of his dominion, or that of Khande Rao Holkar.

"......leave Jaswant Rao Holkar in the exercise of his present authority....., Your Excellency is authorised to enter into a negotiation with Jaswant Rao Holkar,......if peace with Scindhia should be obtained......the army under Your Excellency's command should speedily be formed in such a manner......

"......Jaswant Rao Holkar,......will anxiously solicit the countenance and favour of our Government"—Marques Wellesley's letter to General Lake, marked 'Secret', dated 17th January, 1804.

* "I shall endeavour to avoid hostilities with Ambajee, if possible, as it appears to me if we commence a war with him and Holkar, should he choose to be inimical to us, it might bring on a war with many other powers and lead us into a very long and perhaps a general war, which of course shall, if possible, be avoided at the same time. *I much fear till Ambajee and Holkar are annihilated that permanent peace can not be expected"*—General Lake to Marques Wellesley, dated 4th February, 1804.

होलकर की दूरदर्शिता

इसी समय जसवन्तराव होलकर को पता चला कि जनरल लेक होलकर की सेना के तीन यूरोपियन अफ़सरों के साथ, जिनके नाम कप्तान विकर्स, कप्तान टाड और कप्तान रायन थे, गुप्त साज़िश कर रहा था । इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 586 पर साफ़ लिखा है कि ये तीनों अंगरेज़ अपने स्वामी को छोड़ कर अंगरेज़ों की ओर चले जाना चाहते थे । जसवन्तराव को इस बारे में अंगरेज़ों और सिंधिया के बीच में युद्ध से काफ़ी सबक मिल चुका था । उसने तुरन्त इन तीनों विश्वासघातकों को फ़ौजी नियम के अनुसार मौत की सजा दे दी । लेक समझ गया कि जसवन्तराव के साथ उसके 'गुप्त उपायों' का चल सकना इतना सुगम न था, जितना सिंधिया के साथ ।

जसवन्तराव की मांगे

जसवन्तराव होलकर की अंगरेज़ों से इस समय केवल यह मांग थी कि जनरल वेल्सली ने मुझसे जो वादे किए हैं, उन्हें पूरा किया जाए । जनवरी 1804 के अन्त में, सिंधिया और अंगरेज़ों के बीच सुलह हो चुकने के बाद, जसवन्तराव ने एक पत्र जनरल वेल्सली को लिखा, जिसमें उसने दक्षिण के कुछ ज़िले अंगरेज़ों से मांगे । इसके पांच या छः सप्ताह बाद जनरल लेक की इच्छा के अनुसार जसवन्तराव ने अपने वकील जनरल लेक के पास भेजे । 18 मार्च, सन् 1804 को इन वकीलों ने जसवन्तराव की ओर से नीचे लिखीं मांगें जनरल लेक के सामने पेश की :

1—होलकर को अपने पूर्वजों के रिवाज के अनुसार चौथ वसूल करने का अधिकार होना चाहिए ।

2—होलकर राज्य के पुराने इलाक़े—जैसे, इटावा, इत्यादि, गंगा और जमना के बीच के 12 ज़िले और एक ज़िला बुन्देलखण्ड का—होलकर को मिल जाने चाहिए ।

3—हरियाना का इलाक़ा, जो पहले होलकर कुल के राज्य में था, फिर उसे मिल जाना चाहिए ।

4—जो प्रदेश इस समय होलकर के राज्य में है, उसमें भविष्य में हस्तक्षेप न करने की ज़मानत होनी चाहिए और जिस तरह की सन्धि अंगरेज़ों ने सिंधिया के साथ की है, उसी तरह की होलकर के साथ होनी चाहिए ।

जो इलाक़े होलकर ने अंगरेज़ों से मांगे, उनमें से बहुत-से पहले होलकर राज्य में शामिल रह चुके थे और मराठों की आपसी लड़ाइयों या मराठों और अंगरेज़ों की लड़ाइयों में होलकर कुल से छिने गए थे । इसके अतिरिक्त, ये समस्त इलाक़े वे थे, जिन्हें वेल्सली ने होलकर को देने का वादा कर रखा था । इस बात से भी गवर्नर-जनरल या उसके भाई को इनकार न था कि जिन पत्रों में ये वादे दर्ज थे, वे जनरल वेल्सली ही के लिखे हुए थे ।

जसवन्तराव से युद्ध का निश्चय

किन्तु अंगरेज़ जसवन्तराव से अपना काम निकाल चुके थे । समस्त मराठा मण्डल में अब वही एक बलवान नरेश रह गया था, जिसे कुचलना बाक़ी था । जनरल लेक होलकर

से युद्ध छेड़ने के लिए उत्सुक था। लेक अपनी कुछ सेना सहित फ़रवरी सन् 1804 में होलकर की उत्तरी सीमा की ओर बढ़ा। आने-जाने का उस ओर केवल एक ही मार्ग था। लेक ने इस मार्ग को अपनी सेना से रोक लिया। उसके बाद अप्रैल के शुरू में लेक ने तीन पलटनें पैदल जयपुर की ओर रवाना कर दीं, जिनका उद्देश्य जयपुर के राजा पर रौब जमा कर उसे होलकर के विरुद्ध अपनी ओर करना था। जसवन्तराव समझ गया कि अंगरेज़ धोखे से मुझ पर हमला करना चाहते हैं। जो अनेक प्राइवेट पत्र इस समय लेक ने गवर्नर-जनरल को लिखे हैं, उनमें अंगरेज़ों के पुराने मित्र और हितसाधक जसवन्तराव के लिए "शैतान (Devil) और डाकू' (Robber)—जैसे शब्द प्रयोग में लाए गए हैं, और जसवन्तराव की मांगों को 'अपमानजनक' (Insulting) बतलाया गया है। कहा जाता है कि इसी समय जसवन्तराव होलकर के कुछ पत्र जनरल लेक के हाथों में पड़े, जिनमें जसवन्तराव ने भारत के कुछ हिन्दू और मुसलमान नरेशों को अंगरेज़ों के खिलाफ़ अपने साथ मिलाने के लिए साज़िश की थी।

जसवन्तराव अंगरेज़ों के बदले हुए रुख को इस समय खूब देख रहा था। वह देख रहा था कि अंगरेज़ ऊपर से उससे मित्रता की बातें कर रहे थे, साथ ही अपने वादों को टाल रहे थे, उसकी सेना के अफ़सरों को अपनी ओर फोड़ रहे थे और उसकी सरहद पर फ़ौजें जमा कर रहे थे। वह अब इस बात को समझने लगा था कि केवल स्वार्थ की दृष्टि से भी यदि उसने अपने जीवन में कोई सबसे बड़ी भूल की थी, तो वह यह थी कि उसने इन विदेशियों के वादों और उसकी मित्रता पर विश्वास किया। ऐसी सूरत में उसका भारत के दूसरे हिन्दू और मुसलमान नरेशों की सहानुभूति अपनी ओर करने का प्रयत्न करना कोई विचित्र बात न थी। फिर भी, यह एक विचित्र बात अवश्य है कि ब्रिटिश भारत के इतिहास में जब कभी भी अंगरेज़ों के मन में किसी भारतीय नरेश के साथ युद्ध करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, तब इस तरह के पत्र कहीं-न-कहीं से उनके हाथ आ गए हैं। कई सूरतों में इस तरह के पत्र पूरी तरह जाली साबित भी हो चुके हैं। आयरलैण्ड और भारत के अन्दर जनरल लेक के और कारनामों को देखते हुए, जसवन्तराव होलकर के इन पत्रों और उनके उत्तरों का जाली होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। अधिक सम्भावना यही है कि यह समस्त पत्र-व्यवहार जाली था।

जो हो, 4 अप्रैल, सन् 1804 को लेक ने ये पत्र गवर्नर-जनरल के पास भेजे और उसके साथ गवर्नर-जनरल को यह सूचना दी कि मैं उत्तर की ओर खास मोरचों पर सेनाएं जमा करनेवाला हूं। वास्तव में, होलकर के साथ यह युद्ध की प्रस्तावना थी।

जसवन्तराव का पत्र

जसवन्तराव होलकर ने कोशिश की कि किसी तरह शान्ति से सब मामले का निपटारा हो जाए। उसकी मांगों में कोई भी बात न्याय के विरुद्ध न थी। वह अंगरेज़ों से केवल उनके वादों की पूर्ति चाहता था। 27 मार्च, सन् 1804 को उसने जनरल लेक को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने जनरल लेक का ध्यान फिर जनरल वेल्सली के वादों की ओर दिलाया, उन वादों की पूर्ति चाही और लिखा :

"× × × निस्सन्देह, मित्रता का सम्बन्ध पत्रों के आने-जाने या एक दूसरे की ओर रिवाजी आदर-सत्कार दिखलाने पर निर्भर नहीं है। उचित यह है कि

नतीजे को अच्छी तरह सोच-समझ कर आप पहले मुझे यह सूचना दीजिए कि आप सब झगड़ों को तय करने, प्रजा को सुख-शान्ति में बाधा न पड़ने देने और मित्रता कायम रखने के लिए किन-किन उपायों की तजवीज करते हैं, ताकि उसके बाद में आपके पास एक ऐसा विश्वस्त आदमी भेज सकूं, जिसे दोनों पक्षवाले मंजूर कर लें ; आपके प्रेम पर हर तरह विचार करते हुए, कम्पनी या उसके मित्रों की ओर मेरे दिल में किसी तरह की शत्रुता के विचार नहीं हैं ; हमारी इस मित्रता को बनाने के लिए आप भी प्रेम-पत्र भेजनें की मुझ पर कृपा करते रहिए।"

लेक का उत्तर

जसवन्तराव का पत्र अत्यन्त विनम्र और उचित था, फिर भी जनरल लेक ने इसके उत्तर में 4 अप्रैल, सन् 1804 को होलकर को लिखा :

"××× आपकी मांगें बेबुनियाद हैं और आपको यह मालूम होना चाहिए कि अंगरेज सरकार ने हिन्दोस्तान या दक्षिण की किसी भी रियासत के साथ अपने राजनैतिक सम्बन्ध में इस तरह की मांगें आज तक कभी मंजूर नहीं कीं और इस तरह की मांगें सुनना भी अंगरेज सरकार की शक्ति और शान के खिलाफ़ है।"

इसका साफ़ अर्थ यह था कि सिवाय युद्ध के और कोई उपाय इन मामलों को तय करने का न था।

युद्ध की योजना

उधर जनरल लेक के 4, अप्रैल के पत्र के उत्तर में मार्क्विस वेल्सली ने 16 अप्रैल को एक 'गुप्त पत्र' द्वारा जनरल लेक को सूचना दी:

"××× मैं निश्चय कर चुका हूं कि जितनी जल्दी हो सके, जसवन्तराव होलकर के साथ युद्ध शुरू कर दिया जाए।"

उसी दिन मार्क्विस ने जनरल वेल्सली को लिखा कि आप दक्षिण की ओर से होलकर के चान्दोर के इलाके पर हमला कर दें, और एक पत्र सिंधिया दरबार के रेजिडेण्ट को लिखा कि आप सिंधिया को इस बात के लिए तैयार करें कि वह अपनी सेना को अंगरेज़ों के साथ मिल कर होलकर के राज्य पर हमला करने के लिए भेजे।

स्मरण रखना चाहिए कि अभी तक अंगरेज़ों की ओर से युद्ध का कोई बाज़ाब्ता एलान न हुआ था और न जसवन्तराव को कोई सूचना दी गई थी।

जनरल लेक को पूरा विश्वास था कि जिस सरलता से मैं सिंधिया को परास्त कर सका, उससे अधिक आसानी से अब होलकर का नाश कर सकूंगा। जनरल लेक की आशा के दो मुख्य आधार थे। एक तो अपने 'गुप्त' उपायों से होलकर के शादमियों को अपनी ओर फ़ोड़ सकना, और दूसरे, दक्षिण से जनरल वेल्सली का हमला। किन्तु दुर्भाग्यवश इस अवसर पर दोनों बातों में लेक को धोखा हुआ। जब से जसवन्तराव ने अपनी सेना के तीन विश्वासघातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा डाला था, तब से उसकी सेना में और

31—220 M of I&B/80

विश्वासघातक पैदा कर सकना जनरल लेक के लिए असम्भव हो गया था। दूसरे, जनरल वेल्सली की ओर से भी लेक की आशा पूरी न हो सकी।

जनरल वेल्सली की असफलता के कई कारण थे, जिसमें मुख्य यह था कि अंगरेज़ों के पिछले दुर्व्यवहारों के कारण वेलसली को इस बार भारतीय प्रजा से रसद इत्यादि की सहायता न मिल सकती थी। वेल्सली की कठिनाइयों को बयान करते हुए मिल लिखता है :

"××× किन्तु ऐसे देश से सेना का लाना और ले जाना, जिसमें रसद और चारा बिल्कुल न मिल सकता था, जनरल वेल्सली को इतना खतरनाक मालूम हुआ कि उसनें लिख दिया कि (होलकर के दक्षिणी इलाक़े) चान्दोर पर हमला करना वर्षा शुरू होने से पहले मेरे लिए क़रीब-करीब असम्भव है।"*

जनरल वेल्सली ने, जो इस बात को जानता था कि पिछले संग्रामों में उसके अत्याचारों और प्रतिज्ञाभंग का भारतवासियों पर कितना बुरा असर पड़ा है, 17 मार्च, सन् 1804 को जनरल स्टुअर्ट को लिखा :

"दक्षिण से (उत्तर) हिन्दोस्तान को सेना ले जाना ठीक न होगा। यदि हमारी सेनाएं चान्दोर से उत्तर में चली गईं, तो नीचे पेशवा और दक्षिण के सूबेदार (निज़ाम) दोनों के इलाक़ों में पचास होलकर खड़े हो जाएंगे ; नर्मदा और ताप्ती के बीच की पहाड़ियों से निकल सकना हमारे लिए अत्यन्त दुष्कर हो जाएगा ×××।"

20 अप्रैल, सन् 1804 को जनरल वेल्सली ने मेजर मैलकम को लिखा :

"××× मैं दक्षिण से सेना हटाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

जनरल वेल्सली ने जनरल लेक पर ज़ोर देना शुरू किया कि पहले आप उत्तर की तरफ़ से जसवन्तराव पर हमला करें, किन्तु ठीक यही कठिनाई, जो दक्षिण में वेल्सली को थी, उत्तर में लेक की भी थी।

सिंधिया के साथ सन्धि का उल्लंघन

जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध अंगरेज़ इस समय सबसे अधिक दौलतराव सिंधिया और उसकी सबसीडियरी सेना की सहायता पर भरोसा करते थे। जसवन्तराव और दौलतराव में अंगरेज़ों ही के सबब शुरू से अनबन और एक-दूसरे पर अविश्वास चला आता था। अंगरेज़ों के इस अविश्वास को बनाए रखने और उससे लाभ उठाने का सदा भरसक प्रयत्न किया। किन्तु इस समय उनके सामने एक भारी कठिनाई यह थी कि दौलतराव सिंधिया भी उनसे सन्तुष्ट न था। इस असन्तोष का मुख्य कारण यह था कि जो सन्धि हाल में कम्पनी और दौलतराव के बीच हो चुकी थी, अंगरेज़ पद-पद पर उसका उल्लंघन कर रहे थे। सबसे पहली बात यह कि उस सन्धि के अनुसार ग्वालियर का क़िला और गोहद का इलाक़ा दौलतराव को मिलना चाहिए था। किन्तु मार्क्विस वेल्सली के इस इलाक़े पर बहुत पहले से दांत थे। उसने सीनाज़ोरी करके इस इलाक़े को कम्पनी के

*Mill, vol. vi, p. 401.

अधिकार में रखना चाहा। जनरल वेल्सली ने जनवरी, सन् 1804 से अप्रैल, सन् 1804 के बीच कई पत्रों में कम्पनी के इस विश्वासघात को अत्यंत स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। मेजर मैलकम के नाम 17 मार्च के एक पत्र में जनरल वेल्सली ने लिखा :

"इस मामले में यदि न्याय के साथ विचार किया जाए, तो जिस सन्धि को तोड़ दिया गया हो, वह वैसी ही है, जैसे कभी की ही न गई हो। यदि इस सिद्धांत का उपयोग किया जाए, तो मालूम होगा कि ये इलाक़े सन्धि से पहले सिंधिया ही के क़ब्ज़े में थे, सिंधिया ने सन्धि द्वारा या किसी पत्र या समझौते द्वारा ये इलाक़े हमारे नाम नहीं किए, इसलिए ये इलाक़े सिंधिया ही को मिलने चाहिएं।

"नीति की दृष्टि से × × × पिछले युद्ध में और सुलह की बातचीत करने में अनेक कठिनाइयों को मैं केवल इसलिए पार कर सका, कि लोगों को अंगरेज़ों के वादों पर एतबार था।"*

वास्तव में गोहद का राजा शुरू से सिंधिया का सामन्त था। अंगरेज़ अब इस राज को सिंधिया से फोड़ कर अपनी ओर रखना चाहते थे। इसलिए गवर्नर-जनरल ने सन्धि की शर्तों की ज़रा भी परवाह न कर जनरल लेक को लिख कर ज़बरदस्ती गोहद का इलाका और ग्वालियर का क़िला, गोहद के राजा के नाम पर, कम्पनी के अधीन कर लिया। इस पर 13 अप्रैल को जनरल वेल्सली ने मैलकम को लिखा :

"मुझे इस सारे मामले में हद से ज़ियादा घृणा हो गई है; × × × उस समय सन्धि से सब खुश थे, अब मालूम होता है, सब पर लालच का भूत सवार हो गया है × × ×।"†

सिंधिया के दरबार में रिश्वतें

जनरल वेल्सली के विरोध का केवल एक कारण था। उसे डर था कि ऐसा करने से आइन्दा किसी भी भारतीय नरेश और खास कर सिंधिया को कभी भी अंगरेज़ों के वादों पर विश्वास न होगा। जनरल वेल्सली को अपनी आइन्दा की कठिनाई का ख़याल था, किन्तु मार्क्विस वेल्सली इस बात के सहारे फूल रहा था कि उसने सिंधिया के दरबार और सेना के अनेक लोगों को रिश्वतें दे-देकर अपनी ओर मिला रखा था। स्वयं जनरल वेल्सली ने 26 फ़रवरी, सन् 1804 को गवर्नर-जनरल को सूचना दी :

"× × × सिंधिया के दरबार के ऊपर हमारा क़ाबू इतना अधिक हो गया

---

* "The fair way of considering this question is, that a treaty broken is in the same state as one never made; and when that principle is applied to this case, it will be found that Scindhia, to whom the possessions belonged, before the treaty was made, and by whom they have not been ceded by the treaty of peace, or by any other instrument, ought to have them.

"In respect to the policy of the question, ...What brought me through many difficulties in the war and the negotiations for peace? The British good faith, and nothing else."—General Wellesley to Major Malcolm, 17th March, 1804.

† "I am disgusted beyond measure with the whole concern; . ....All parties were delighted with the peace, but the demon of ambition appears now to have pervaded all;........."—General Wellesley to Major Malcolm, 13th April, 1804.

कि यदि कभी सिंधिया कम्पनी के साथ लड़ाई करेगा तो उसके आधे सरदार और उसकी आधी सेना हमारी ओर आ जाएगी ।"*

दौलतराव सिंधिया अपनी असहाय स्थिति को समझता था; फिर भी वह बराबर ग्वालियर के क़िले और गोहद के इलाक़े, दोनो के बारे में अपने न्याययुक्त अधिकार पर ज़ोर देता रहा ।

अहमदनगर का इलाक़ा

सिंधिया को अंगरेज़ों से इस समय एक और ज़बरदस्त शिकायत थी । अहमदनगर का क़िला पिछली सन्धि के अनुसार अंगरेज़ों को मिल चुका था । किन्तु सिंधिया के कुमार कुण्डा, जामगांव इत्यादि कई परगने अहमदनगर से मिले हुए थे । सन्धि में यह तय हो गया था कि इन परगनों में सिंधिया को एक खास तादाद से अधिक सेना रखने की इजाज़त न होगी; किन्तु यदि उन परगनों के लोग या वहां का कोई ज़मींदार सिंधिया के विरुद्ध उपद्रव करेगा या यदि सिंधिया को वहां की मालगुज़ारी वसूल करने में किसी तरह की कठिनाई होगी, तो सिंधिया के तहसीलदार अहमदनगर क़िले के अंगरेज़ क़िलेदार से इस बात की शिकायत करेंगे और अंगरेज़ी सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुंच कर उपद्रवों को शान्त करेगी और मालगुज़ारी वसूल करने में सिंधिया के आदमियों को मदद देगी । किन्तु इसके विपरीत, सन्धि के होते ही आसपास के भीलों और दूसरे लोगों ने—अंगरेज़ अफ़सरों के उकसाने पर—महाराजा सिंधिया के इन परगनों पर धावे मारना और लूट-मार करना शुरू कर दिया । नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में सिंधिया का वह सारा इलाक़ा वीरान दिखाई देने लगा, यहां तक कि दूर-दूर तक आबादी और खेती का निशान तक न मिलता था । सिंधिया के तहसीलदारों ने बार-बार अंगरेज़ अफ़सरों का ध्यान इस ओर दिलाया और सन्धि की शर्तों के अनुसार उनसे मदद चाही, किन्तु किसी ने उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान न दिया । मजबूर होकर महाराजा दौलतराव ने स्वयं अपनी सेना इन उपद्रवों को शान्त करने के लिए भेजनी चाही, किन्तु अंगरेज़ों ने सन्धि की शर्त सामने लाकर एतराज़ किया । दौलतराव दोनों तरह से लाचार हो गया । उसने बार-बार इन बातों की सूचना गवर्नर-जनरल और जनरल लेक, दोनों को दी, किन्तु दोनों लगातार इस मामले में टालमटोल करते रहे ।

सिंधिया को भुलावा

ऐसी स्थिती में होलकर के विरुद्ध सिंधिया से सहायता ले लेना इतना आसान न था । मार्क्विस वेल्सली ने अब दौलतराव सिंधिया को धोखा देने और होलकर के विरुद्ध उससे सहायता प्राप्त करने का एक और उपाय निकाला ।

उसने आगामी युद्ध के विषय में बड़े ज़ोर के साथ अंगरेज़ों की निस्स्वार्थता और परोपकारिता का एलान किया और लिखा कि—

* "......we have got such hold in his Durbar......that if ever he goes to war with the Company, one half of his chiefs and of his army will be on our side."—General Wellesley to Major Shawe (Private Secretary to the Governor-General, dated 26th February, 1804.

"होलकर को शक्ति को परास्त कर देने के बाद मेरा इरादा यह नहीं है कि होलकर कुल का कोई भी इलाका कम्पनी के क़ब्ज़े में रखा जाए। चान्दोर और उसके मातहत और आसपास का इलाक़ा सम्भवतः पेशवा को दे दिया जाएगा; गोदावरी से दक्षिण के होलकर के दूसरे इलाक़े दक्षिण के सूबेदार (निज़ाम) को दिए जाएंगे; और होलकर के बाक़ी सब इलाक़े सिंधिया को दे दिए जाएंगे, बशर्ते कि सिंधिया जसवन्तराव होलकर को परास्त करने में मदद दे।"*

इतिहास-लेखक मिल ने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया है कि मार्क्विस वेल्सली का यह ऐलान केवल एक छल था, जिसका उद्देश्य यह था कि जसवन्तराव के विरुद्ध सिंधिया अंगरेज़ों को मदद दे। कुछ ही दिन पहले मार्क्विस वेल्सली ने अपने इस नए युद्ध का उद्देश्य "काशीराव होलकर का पैतृक राज राज्यापहारी जसवन्तराव होलकर से वापस लेकर काशीराव को दिलवा देना" बतलाया था; किन्तु अब इस नए बंटवारे की तजवीज़ में काशीराव का कहीं नाम भी नहीं लिया गया।

जसवन्तराव के साथ युद्ध का प्रारम्भ

खुशी से या लाचारी से, या लोभ में आकर, अंगरेज़ों के कहने पर, सिंधिया ने अपनी सेना जसवन्तराव होलकर के मालवा प्रदेश पर हमला करने के लिए भेज दी। बापूराव सिंधिया और जीन बैप्टिस्ट फ़िलौसे इस सेना के सेनापति थे। फ़िलौसे की सेना ने होलकर के आष्टा सिहोर, भिलसा इत्यादि स्थानों पर क़ब्ज़ा भी कर लिया। होलकर से युद्ध शुरू हो गया।

अंगरेज़ी सेना की असफलता

कर्नल मरे उस समय गुजरात में था। जनरल वेल्सली ने कर्नल मरे को लिखा कि आप अपनी और गायकवाड़ की सेना सहित गुजरात की ओर से होलकर की राजधानी इन्दौर पर हमला करिए।

जनरल वेल्सली स्वयं चान्दोर का मोहासरा करने के लिए बम्बई से बढ़ा, किन्तु मार्ग की कठिनाइयों के कारण उसे फिर पीछे लौट आना पड़ा।

गुजरात की सेना को भी होलकर के विरुद्ध कोई सफलता न मिली। लेक अपनी पुरानी आदत के अनुसार होलकर की सेना के अन्दर गुप्त साज़िशों की कोशिश में लगा हुआ था। होलकर के पिण्डारी सरदार अमीर खां का ऊपर ज़िक्र आ चुका है। इस बार जनरल वेल्सली ने 2 मार्च, सन् 1804 को पूना से मेजर मैलकम को लिखा :

---

* "......it is not his intention, in the event of the reduction of Holkar's power, to take any share of the possessions of the Holkar family for the Company. Chandore and its dependencies and vicinity, will probably be given to the Peshwa; and the other possessions of Holkar situated to the south-ward of the Godawari, to the Subedar of the Deccan; all the remainder of the possessions of Holkar will accrue to Scindhia, provided he shall exert himself in the reduction of Jaswant Rao Holkar."—Governor-General's instructions to the British Resident with Scindhia, dated 16th April, 1804, (Mill, vol. vi, chapter xiii).

"मरसर अमीर खां के साथ समझौता कर रहा है; और यदि उसने अमीर खां को होलकर से तोड़ लिया, तो होलकर का खात्मा हो जाएगा।"*

किन्तु जसवन्तराव की शुरू की उस अहतियात के कारण एक अमीर खां को छोड़ कर जसवन्तराव के विरुद्ध इस तरह की साज़िशों में अंगरेज़ों को और अधिक सफलता न मिल सकी। अमीर खां भी एक दरजे तक सन्दिग्ध खेल ही खेलता रहा। इसलिए एक ओर कर्नल मरे और जनरल वेल्सली, दोनों की असफलता, और दूसरी ओर जनरल लेक के गुप्त उपायों का न चल सकना, इन बातों से जनरल लेक का दिल बिल्कुल टूट गया। 12 मई को मजबूर होकर एक 'प्राइवेट' पत्र में उसने गवर्नर-जनरल को सलाह दी कि होलकर के साथ युद्ध बन्द कर देना चाहिए। इस पर 25 मई, सन् 1804 को विवश होकर गवर्नर जनरल ने भी जनरल लेक, जनरल वेल्सली और मद्रास और बम्बई के गवर्नरों, सबको लिख दिया कि जसवन्तराव होलकर के साथ युद्ध बन्द कर दिया जाए और तुरन्त समस्त सेनाएं युद्ध क्षेत्र से वापस बुला ली जाएं।

30 मई को गवर्नर जनरल ने वेल्सली को दक्षिण से कलकत्ते बुला लिया और दक्षिण की सेनाओं का सेनापतित्व उसकी जगह कर्नल वैलेस को सौंप दिया।

बुन्देलखण्ड में अंगरेज़ों की हार

किन्तु इससे कुछ पहले लेक ने एक अत्यंत गर्वपूर्ण पत्र में जसवन्तराव को लिख दिया था कि अंगरेज़ सरकार और उसके साथी आपकी "शक्ति नष्ट करने का निश्चय कर चुके हैं।"

इसके बाद जसवन्तराव के लिए चुप बैठना असम्भव था। उसने अपनी सेना को अंगरेज़ी सेना पर हमला करने की आज्ञा दे दी। अंगरेज़ों की एक सेना उस समय कर्नल फ़ासेट के अधीन बुन्देलखण्ड में मौजूद थी। 21 मई की रात को होलकर के करीब पांच हजार पिण्डारी सवारों ने इस सेना पर हमला किया। कर्नल फ़ासेट लिखता है कि अंगरेज़ों को अपने गुप्तचरों द्वारा इस हमले का पहले से पता लग गया था, और मुक़ाबले के लिए अंगरेज़ी सेना 'कूच' नामक स्थान के पास तैयार कर ली गई थी। फिर भी, अंगरेज़ी सेना ने बड़ी बुरी तरह हार खाई और होलकर के पिण्डारी सवार अंगरेज़ों की अनेक तोपें, बन्दूकें, गोला बारूद, गाड़ियां इत्यादि सब उठा कर ले गये और कम्पनी के एक-एक अंगरेज़ और देशी अफ़सर और सिपाही को मैदान में काट कर खतम कर गए।†

निस्सन्देह, जान और माल की हानि के अतिरिक्त यह हार अंगरेज़ों के लिए बड़ी ज़िल्लत की हार थी। लेक ने इसके विषय में 28 मई को गवर्नर-जनरल के नाम एक

---

* "Mercer is in treaty with Meerkhan; and if he should draw him off from Holkar, there is an end of the latter."—General Wellesley's letter to Major Malcolm, dated 2nd March, 1803.

† "......the detachment in the village, consisting of two companies of Sepoys, fifty European artillery, fifty gun luscurs with two 12 pounders, two howitzers, one 6 pounder, and twelve tumbrils, were entirely taken by the enemy, and the men and officers all cut to pieces......" (Wellesley's Despatches, iv, 72-73).

अत्यन्त दुखभरा पत्र लिखा, और कर्नल फ़ासेट को, जो मैदान से कुछ ही दूर चार पलटन देशी सिपाही और 450 गोरे सिपाहियों सहित मौजूद था, किन्तु सम्भवतः पिण्डारियों के मुक़ाबले का साहस न कर सका, इस कर्तव्यविमुखता के लिए बरख़ास्त कर दिया।

25 मई को गवर्नर-जनरल ने लेक को युद्ध बन्द कर देने के लिए लिखा। उस पत्र को पाने से पहले ही 28 मई को लेक ने गवर्नर-जनरल को इस दुर्घटना की सूचना दी। अंगरेज़ों के लिए अब अपनी ज़िल्लत को धोना आवश्यक हो गया।

8 जून, सन 1804 को गवर्नर-जनरल ने लेक को उत्तर दिया :

"× × × इस घटना से अंगरेज़ी सेना की ज़िल्लत हुई है और अंगरेज सरकार के हित खतरे में पड़ गए हैं।

इस अपूर्व दुर्घटना से जो-जो बुरे नतीजे पैदा हो सकते हैं, उनके विस्तार का अनुमान कर सकना कठिन है।

बुन्देलखण्ड की इस स्थिति के कारण मैं आपको अपनी इस राय की सूचना देना आवश्यक समझता हूं कि जो प्रबन्ध मैंने अपने 25 मई, सन् 1804 के पत्र में लिखे थे, वे अब मुलतवी कर दिए जाएं, और जसवन्तराव होलकर और उसके साथ के लुटेरे सरदारों को परास्त करने के लिए, जिस तरह सम्भव हो सके, प्रयत्न और परिश्रम किया जाए × × ×।"*

जसवन्तराव पर हमले का बृहत आयोजन

जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का युद्ध अब फिर एक बार गम्भीरता के साथ शुरू हो गया। तीन ओर से तीन सेनाएं होलकर पर हमला करने के लिए तैयार की गईं। सबसे मुख्य एक विशाल सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना दक्षिण में कर्नल वैलेस के अधीन, और तीसरी सेना गुजरात में कर्नल मरे के अधीन।

जसवन्तराव होलकर के साथ अंगरेज़ों का अब जिस तरह का युद्ध हुआ, उसके मुकाबले में, मालूम होता है कि, दौलतराव सिन्धिया और राघोजी भोसले के साथ उनका युद्ध केवल बच्चों का खेल था। पिछले युद्ध में सिंधिया के अहमदनगर, अलीगढ़ और कोयल जैसे मज़बूत क़िले, केवल रिश्वतों द्वारा, बिना रक्तपात, अंगरेज़ों ने अपने अधीन कर लिए थे। किन्तु जसवन्तराव होलकर ने शुरू ही में दूरदर्शिता के साथ अपनी सेना के तीन विश्वासघातक यूरोपियन अफ़सरों को मरवा कर उसे सेना के अन्दर अंगरेज़ों के इन 'गुप्त उपायों' का चल सकना असम्भव कर दिया था।

---

* "......the honour of the British arms has been disgraced, and the interests of the British Government hazarded......

"It is difficult to calculate the extent of the evil consequences which may result from this unparalleled accident......

"In consequence of the state of affairs in Bundelkhand, it appears to be necessary to apprise Your Excellency of my opinion that the arrangements stated in my instructions of the 25th May, 1804 must be postponed, and every possible effort and exertion must be made to reduce Jaswant Rao Holkar, and the predatory chiefs connected with him, ..."—Governor-General's letter to General Lake, dated 8th June, 1804.

अंगरेज़ों का टोंक पर कब्ज़ा

सबसे पहले जनरल लेक ने एक सेना कर्नल डान के अधीन भेज कर 16 मई, सन् 1804 को टोंक रामपुरा का क़िला अपने अधीन कर लिया। बहुत सम्भव है कि इस क़िले की सरल विजय में विश्वासघातक अमीर खां की मदद रही हो, क्योंकि बाद में यही टोंक की रियासत अंगरेज़ों ने अमीर खां और उसके वंशजों को प्रदान कर दी।

होलकर पर दुतरफ़ा हमला

बुन्देलखण्ड में अंगरेज़ों की अपमानजनक पराजय के बाद गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार जनरल लेक ने पांच पलटनें देशी सिपाहियों की, क़रीब तीन हज़ार सवार और काफ़ी तोपख़ाना जनरल मानसन के अधीन जसवन्तराव होलकर के राज्य पर हमला करने के लिए भेजा। लेक की योजना यह थी कि पश्चिम में गुजरात की ओर से कर्नल मरे फिर होलकर के इलाक़े उज्जैन पर आक्रमण करे और उत्तर की ओर से जनरल मानसन होलकर राज्य में प्रवेश करे, और इसके बाद ये दोनों सेनाएं मिलकर जसवन्तराव की शक्ति का खात्मा कर दें। गायकवाड़ की सबसीडियरी सेना मरे के साथ और सिन्धिया की सबसीडियरी सेना मानसन के साथ थी।

मार्क्विस वेलसली ने होलकर के विरुद्ध सिंधिया की सबसीडियरी सेना के अतिरिक्त महाराजा दौलतराव से और अधिक सेना की सहायता मांगी। सिंधिया की शिकायतों का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त, सिंधिया को एक बहुत बड़ी कठिनाई धन की थी। पिछले युद्ध के बाद से उसकी आर्थिक अवस्था गिरी हुई थी। उसने नई सेना की तैयारी के लिए अंगरेजों से धन की सहायता मांगी, किन्तु अंगरेज़ों ने इनकार कर दिया। सिंधिया ने यहां तक प्रार्थना की कि यह सहायता मुझे क़र्ज़ के तौर पर दी जाए। पिछली सन्धि के अनुसार, सिंधिया ने धौलपुर, बारी इत्यादि के परगने बतौर ज़मानत कम्पनी को दे दिए थे और यह तय हो गया था कि इन परगनों की मालगुजारी में साढ़े बीस लाख रुपये सालाना कम्पनी महाराजा सिंधिया को दिया करेगी। दौलतराव सिंधिया ने अब यह कहा कि जो रक़म फ़ौज के खर्च के लिए अंगरेज़ इस समय मुझे क़र्ज़ दें, वह आइन्दा इस साढ़े बीस लाख सालाना में से काट ली जाए।

सिन्धिया की तज़वीज़ बिल्कुल उचित थी, किन्तु मार्क्विस वेलसली और रेज़िडेण्ट वेब ने इसे भी स्वीकार न किया। इतने पर भी दौलतराव सिन्धिया या तो अपनी उस समय की स्थिती से विवश था, या जसवन्तराव के विरुद्ध उसके हृदय में काफ़ी द्वेष था, या वह मार्क्विस वेलसली के नए वादों के लोभ में आ गया। जिस तरह हो, उसने बापूजी सिन्धिया और सदाशिवराव के अधीन छः या सात पलटन पैदल और दस हज़ार सवार जमा करके ठीक समय पर जनरल मानसन की सहायता के लिए भेज दिए। सिन्धिया को पूरी आशा थी कि जब यह सेना मानसन की सेना के साथ मिल जाएगी, तो अंगरेज़ उसके ख़र्च, रसद इत्यादि का समस्त प्रबन्ध कर देंगे। किन्तु जनरल लेक या जनरल मानसन ने सिन्धिया की इस सेना की आवश्यकताओं की ओर ज़रा भी ध्यान न दिया। बापूजी सिन्धिया जब किसी तरह अपनी सेना की रसद का प्रबन्ध न कर सका तब विवश होकर उसने अपनी सेना का एक भाग, कुछ सवार और कुछ पैदल, सदाशिवराव के अधीन रसद की

तलाश में दूसरी ओर रवाना कर दिया, और स्वयं अपनी बाक़ी सेना सहित जनरल मानसन की सहायता के लिए उसके साथ रहा ।

मानसन की सेना

1 जुलाई, सन् 1804 को जनरल मानसन ने अपनी इस विशाल सेना सहित मुक़न्दरा के पहाड़ी दर्रे से होकर होलकर के इलाक़े में प्रवेश किया । 2 जुलाई को इस सेना ने हिंगलास गढ़ के क़िले पर क़ब्ज़ा किया । इसके बाद यह सेना चम्बल नदी की ओर बढ़ी । 7 जुलाई को जब यह सेना मुकन्दरा से क़रीब पचास मील आगे बढ़ आई थी, जनरल मानसन को सूचना मिली कि जसवन्तराव होलकर अपनी सेना सहित चम्बल पार कर इस ओर बढ़ा चला आ रहा है।

मरे की विवशता

इसी बीच कर्नल मरे ने गुजरात की ओर से दूसरी बार उज्जैन पर चढ़ाई की । इस बार इस मार्ग में उसे रसद की सख्त कठिनाई हो गई । यहां तक कि मरे की सेना के पास केवल दो दिन का सामान बाक़ी रह गया । विवश होकर एक जुलाई, सन् 1804 को कर्नल मरे दूसरी बार अपनी सेना सहित गुजरात की ओर लौट गया ।

मानसन के अनुभव

जनरल मानसन को जब मरे के लौट जाने और जसवन्तराव के बढ़ने का समाचार मिला, तब वह स्वयं भी आगे बढ़ने का साहस न कर सका । मानसन ने देख लिया कि जिस प्रदेश में होकर वह निकल रहा था, वहां की समस्त प्रजा अंगरेज़ों से असन्तुष्ट और जसवन्तराव के पक्ष में थी ।

जसवन्तराव और मानसन की मुठभेड़

8 जुलाई को सवेरे जनरल मानसन और होलकर की सेनाओं का आमना-सामना हुआ । मानसन ने लेफ्टिनेण्ट ल्यूकन को आज्ञा दी कि तुम सवारों सहित होलकर के मुक़ाबले के लिए आगे रहो । बापूजी सिंधिया को मानसन ने कहला भेजा कि आप अपने सवारों सहित ल्यूकन की सहायता के लिए उसके साथ रहिए । मानसन स्वयं पैदल पलटनों के साथ पीछे की ओर रहा । बापूजी सिंधिया के सवारों ने ल्यूकन के सवारों के साथ आगे बढ़ कर होलकर की सेना का मुकाबला किया । कहते हैं कि ल्यूकन की ओर के कुछ भारतीय सवार इस लड़ाई में अंगरेज़ों का साथ छोड़ कर होलकर की ओर जा मिले ।

अंगरेज़ों की पराजय

थोड़ी देर के संग्राम के बाद होलकर की सेना ने ल्यूकन के बाक़ी सब सवारों को उसी मैदान में खेत कर दिया और ल्यूकन को क़ैद कर लिया । यह वही ल्यूकन था जो दौलतराव सिन्धिया की नौकरी में रह चुका था और जिसने सिन्धिया के साथ विश्वासघात कर के अलीगढ़ का मज़बूत क़िला अंगरेज़ों के हवाले कर दिया था । इसके बाद कोटा पहुंच कर ल्यूकन होलकर ही की क़ैद में पेचिश से मर गया । बापूजी सिन्धिया को भी इस

संग्राम में भारी हानि सहनी पड़ी। उसके सात सौ सवार मर गए या घायल होकर बेकार हो गए और उसका बहुत-सा सामान होलकर के सिपाहियों ने छीन लिया। बापूजी स्वयं अपने थके-मांदे बाक़ी सवारों सहित पीछे हटकर मानसन से जा मिला।

मानसन का भागना

मानसन के पास इस समय पर्याप्त पैदल सेना थी। फिर भी, होलकर के बढ़ते ही आगे बढ़ कर होलकर से मोरचा लेने के स्थान पर मानसन ने घबरा कर पीछे की ओर भागना शुरू किया और 9 जुलाई की दोपहर को होलकर राज्य की सरहद पर पहुंच कर दम लिया। मैदान सर्वथा होलकर के हाथों में रहा।

इतनी विशाल अंगरेज़ी सेना की इस लज्जाजनक पराजय का मुख्य कारण निस्सन्देह यही था कि जनरल लेक के 'गुप्त उपाय' जसवन्तराव होलकर की सेना में न चल पाए थे।

जसवन्तराव की दूसरी विजय

जसवन्तराव होलकर मानसन का बराबर पीछा करता रहा। 11 जुलाई को उसने सरहद पर पहुंच कर मानसन और उसकी बाक़ी सेना पर फिर हमला किया। दूसरी बार मैदान गरम हुआ, जिसके अन्त में असंख्य मुर्दों और घायलों को मैदान में छोड़ कर रातों-रात जनरल मानसन को कोटा राज्य की ओर भाग जाना पड़ा। 12 जुलाई को मानसन कोटा पहुंचा।

अंगरेज़ी सेना की भगदड़

कोटा के राजा ज़ालिमसिंह से मानसन को सहायता की आशा थी, किंतु उसने भी साफ़ इनकार कर दिया। उसी दिन मानसन ने बूंदी की रियासत से होकर चम्बल नदी को पार कर रामपुरा पहुंचने का इरादा किया। जोर की बारिश के कारण चम्बल को पार करना अत्यंत कठिन हो गया था। इसलिए 14 जुलाई को आसपास के ग्रामों में रसद जमा करने के लिए मानसन को चम्बल के इस पार ठहरना पड़ा। इतिहास-लेखक ग्राण्ट डफ़ ने मानसन की सेना की इस भगदड़ और उसके कष्टों को विस्तार के साथ बयान किया है। 15 जुलाई को मानसन की तोपें इतनी बुरी तरह कीचड़ में फंस गई कि उन्हें निकालना असम्भव हो गया। उधर ग्रामों में रसद का पता न था। जीवित रहने के लिए आगे बढ़ना आवश्यक था। मजबूर होकर मानसन ने अपने साथ के गोले-बारूद को वहीं आग लगा दी, और तोपों को यथासम्भव बेकार करके बूंदी के राजा के हवाले छोड़ दिया। लिखा है कि यद्यपि बूंदी का राजा तोपों के निकालने में अंगरेज़ों को मदद न दे सका, फिर भी उसका व्यवहार उनके साथ मित्रता का था।

बापूजी सिंधिया का आत्मसमर्पण

किन्तु चम्बल नदी के ऊपर बापूजी सिंधिया ने मानसन का साथ छोड़ दिया। कारण यह था कि मानसन का व्यवहार इस सारे समय में बापूजी के साथ अत्यंत रूखा रहा। बापूजी को सदा शत्रु के सामने करके मानसन स्वयं पीछे रहता था। बापूजी की काफ़ी हानि हो भी चुकी थी। इसके अतिरिक्त, बापूजी की सेना को भारी आर्थिक कष्ट था, उनकी

तनखाएं चढ़ी हुई थीं और बापूजी के अनेक बार कहने पर भी मानसन ने उन्हें धन या रसद की सहायता देने से इनकार कर दिया था। इस सबसे बढ़ कर मानसन के चम्बल पार करने के समय बापूजी की सेना अभी इस ओर ही थी, नदी चढ़ी हुई थी, बापूजी ने मानसन से प्रार्थना की कि आप पार पहुंच कर किश्तियों को वापस कर दें, ताकि हम लोग पार जा सकें। किन्तु मानसन ने न जाने किस विचार से किश्तियों को वापस तक न किया। सम्भवतः मानसन के मन में बापूजी के प्रति शुरू से अविश्वास था। बापूजी के लिए नदी को पैदल पार कर सकना असम्भव था। मजबूर होकर वह अपनी सेना सहित कोटा के निकट लौट आया। इतने में होलकर की सेना ने पीछे से आकर कोटा को घेर लिया। बापूजी अब अच्छी तरह समझ गया कि होलकर के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ देना सिंधिया और उसके देश के लिए हितकर नहीं हो सकता। बापूजी और उसकी सेना की जान इस समय होलकर के हाथों में थी। लाचार होकर राजा ज़ालिमसिंह के समझाने पर और स्वयं अपने सिपाहियों के ज़ोर देने पर बापूजी सिन्धिया अब अपनी सेना सहित होलकर के साथ मिल गया।

मानसन और उसकी सेना की दुर्गति

मानसन 17 जुलाई को चम्बेली नदी पर पहुंचा। यह नदी भी खूब चढ़ी हुई थी। मानसन ने सबसे पहले अपने तोपख़ाने को हाथियों पर पार किया। उसके बाद धीरे-धीरे कुछ को हाथियों पर, कुछ को लकड़ियों के बेड़ों पर, और कुछ को कहीं से रास्ता निकाल कर पैदल, इस तरह उसने दस दिन के अन्दर समस्त सेना सहित चम्बेली को पार किया। होलकर के कुछ सवार बराबर कोटा से बढ़कर मानसन की सेना को दिक़ करते रहे। इस भगदड में मानसन के सैकड़ों सिपाही शत्रु के हाथों मारे गए, सैकड़ों बीमारियों से मरे, और सैकड़ों ही नदी में डूब गए या कीचड़ में फंस कर रह गए। ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि अन्त में अनेक हिन्दोस्तानी सिपाहियों की स्त्रियां और उनके बच्चे चम्बेली के इस पार रह गए, और आसपास की पहाड़ियों से भीलों ने आकर उन स्त्रियों और बच्चों को कत्ल कर डाला। उनके पति और सेना के अफ़सर दूसरे किनारे से खड़े उनकी पुकारें सुनते रहे और सब देखते रहे, किन्तु कुछ न कर सके।

निसन्देह, यदि जसवन्तराव अपनी मुख्य सेना सहित इस स्थान पर पहुंच जाता, तो चम्बेली नदी के ऊपर ही मानसन और उसकी सेना को निर्मूल कर सकता था। किन्तु सम्भवतः लगातार वर्षा के कारण वह समय पर न पहुंच पाया; और 29 जुलाई को मानसन अपनी रही सही थकी हुई सेना और कुछ सामान लेकर रामपुरा पहुंच गया।

जनरल लेक के 21 जुलाई के एक पत्र में लिखा है कि जसवन्तराव की सेना और मानसन की सेना की तादाद में अधिक अन्तर न था। उसी पत्र में यह भी लिखा है कि जनरल लेक अभी तक बराबर जसवन्तराव के आदमियों को अपनी ओर मिलाने के प्रयत्नों में लगा हुआ था। गवर्नर-जनरल और जनरल लेक, दोनों मानसन की इस अपमान-जनक पराजय का हाल सुन कर बेहद घबरा गए।

मानसन की पराजय पर गवर्नर–जनरल

28 जुलाई को गवर्नर-जनरल ने जनरल लेक के नाम 'एक अत्यन्त गूढ़ गौर गुप्त' पत्र में लिखा :

"अभी (साढ़े चार बजे शाम को) आप का 20 जुलाई का एक पत्र कप्तान आर्मस्ट्रांग के नाम मिला, उससे मालूम होता है कि कर्नल मानसन की सेना होलकर के सामने पीछे हटती चली जा रही है और मुकन्दरा दर्रे को छोड़ कर चली आई है।

यह स्थिति बहुत ही दुखदायी है। बिना जोरदार प्रयत्न किए हमारी इज्जत किसी तरह फिर से क़ायम नहीं हो सकती। मुझे डर है कि जितनी हानि हमारी हो चुकी है, अब हम कितनी कोशिश क्यों न करें, उसे पूरा करने का समय निकल चुका।"

इसके बाद गवर्नर-जनरल ने जनरल लेक को सलाह दी :

"जो पत्र आज मिले हैं, उनसे मालूम होता है कि जब तक फिर आप स्वयं सेना सहित जाकर होलकर पर जोरों से हमला न करेंगे, सफलता की कोई आशा नहीं रही × × ×।"*

17 अगस्त को वेलसली ने लेक को लिखा :

"मेरा पिछला पत्र लिखे जाने के बाद मालूम हुआ कि कर्नल मानसन की सेना अपनी तोपें, सामान, इत्यादि सब खोकर, बड़ी मुसीबत की हालत में मालवा प्रदेश को बिल्कुल छोड़ कर चली आई।"†

इसी पत्र में गवर्नर-जनरल ने लेक को आज्ञा दी कि होलकर की सेना के सब लोगों को आम तौर पर और 'पठानों और मुसलमानों' को खास तौर पर लोभ देकर अपनी ओर मिलाया जाए।

मानसन को लेक की मदद

29 जुलाई को मानसन रामपुरा पहुंचा। जनरल लेक ने समाचार पाते ही आगरे से दो पलटन देशी सिपाहियों की, कुछ सवार, छः तोपें और बहुत-सा रसद का सामान मानसन के पास भेजा और उसे रामपुरा से निकल कर होलकर पर हमला करने को लिखा।

---

* "By a letter just received (half past 4 o' clock p.m.) from Lieut. Colonel Lake to Captain Armstrong, dated 20th July, it appears that Colonel Monson's detachment was retreating before Holkar, and had quitted the Mucundra Pass.

"This is a most painful state of affairs. Nothing can retrieve our character but the most vigorous effort. I fear that all our exertions will now be too late to recover all we have lost.

"The despatches received today seem to leave no hope of success unless the Commander-in-Chief can again take the field in person, and attack Holkar with vigour; ......"—Governor-General's "Most Secret and Confidential Notes" to General Lake, dated 28th July, 1804.

† "Since the date of my last notes, it appears that Colonel Monson's detachment has retired altogether from Malwah with loss of guns, camp equipage, etc., and in great distress."—Marques Wellesley's 'Private' letter to General Lake, dated 17th August, 1804.

किन्तु 22 अगस्त, सन् 1804 तक मानसन को रामपुरा से बाहर निकलने का साहस न हो सका। 22 अगस्त को वह रामपुरा से निकला, पर होलकर पर हमला करने के स्थान पर उसने फिर कुशलगढ़ की ओर भागना शुरू कर दिया। कारण यह था कि कुशलगढ़ में सदाशिव भाऊ भास्कर के अधीन सिंधिया की छः पलटनें और 21 तोपें मौजूद थीं, जो शुरू में बापूजी सिंधिया के साथ से अलग हो गई थीं। मानसन को आशा थी कि यह सेना होलकर के विरूद्ध मेरा साथ देगी और कुशलगढ़ ही में अपनी सेना के लिए मुझे काफ़ी रसद भी मिल सकेगी।

मानसन की फिर पराजय

उधर जसवन्तराव ने अभी तक मानसन का पीछा न छोड़ा था। मानसन के रामपुरा से निकलते ही 23 अगस्त की शाम को बन्नास नदी के किनारे होलकर अपनी सवार सेना सहित फिर एक बार मानसन से चार मील की दूरी पर आ पहुंचा। 24 अगस्त को सवेरे मानसन की दाहिनी तरफ़ एक बड़े गांव में होलकर ने डेरे डाले। मानसन ने अब अपनी कुछ सेना को सामान के साथ बन्नास के पार कर दिया और बाक़ी सेना लेकर एक बार हिम्मत करके होलकर की सेना पर हमला किया। शुरू में एक हमले के लिए मानसन का पल्ला कुछ भारी मालूम होता था, किन्तु अन्त में यहां भी होलकर की सेना ने इस पार की अंगरेज़ी सेना को क़रीब-क़रीब खतम कर दिया। होलकर के कुछ सवार नदी पार करके मानसन के सामान के पीछे लपके। लाचार होकर मानसन को अपने सब सामान, मुर्दों, जख्मियों, यहां तक कि थके-मांदे लोगों को भी पीछे छोड़ कर जान बचा बन्नास पार कर कुशलगढ़ की ओर भागना पड़ा। 25 अगस्त की रात को मानसन कुशलगढ़ पहुंच गया।

मानसन का आगरे की ओर भागना

कुशलगढ़ जयपुर के राज्य में था। सदाशिव भाऊ भास्कर के अधीन सिंधिया की सेना यहां मौजूद थी। मानसन को पूरी आशा थी कि यह सेना अंगरेज़ों का साथ देगी। मार्क्विस वेल्सली के पत्रों से पता चलता है कि वह भी इस बात के लिए हर तरह ज़ोर लगा रहा था। किन्तु सिंधिया और उसके आदमियों के दिलों में अंगरेज़ों के इस समय तक व्यवहार को देखते हुए उनसे काफ़ी घृणा पैदा हो चुकी थी। सदाशिव भाऊ भास्कर और उसकी सेना ने मानसन को किसी तरह की सहायता न दी। मजबूर, कुशलगढ़ को भी अपने लिए कुशल का स्थान न पा, 26 अगस्त की रात को मानसन वहां से आगरे की ओर भागा। मार्ग में होलकर के कुछ सवारों के साथ मानसन की कई छोटी-छोटी लड़ाइयां हुईं, जिनमें बहुत-कुछ हानि सहते हुए भागते-भागते अन्त में 31 अगस्त सन् 1804 को अपने रहे-सहे आदमियों सहित मानसन आगरे पहुंचा।

मानसन की पराजय पर लेक का पत्र

मुकन्दरा दर्रे से लेकर आगरे तक की इस भगदड़ और लगातार हारों में अंगरेज़ कम्पनी का केवल जानों का जो नुकसान हुआ, उसे जनरल लेक ने गवर्नर-जनरल के नाम 2 सितम्बर के एक 'प्राइवेट' पत्र में यों बयान किया है :

"इस लज्जाजनक और मुसीबतभरी घटना के विषय में इस समय मैं और

कुछ न कहूंगा। अनेक कारणों से मेरा चित्त इतना उद्विग्न है कि मैं इस दुर्घटना की मुसीबतों और उनके कारणों को बयान भी नहीं कर सकता। इससे अधिक सुन्दर सेना ने कभी कूच न किया होगा, और मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि यदि लेफ़िटनेन्ट ऐण्डरसन का बयान ठीक है, तो मेरी सेना का सबसे अच्छा भाग, पांच पूरी पलटनें और छः कम्पनियां, बिल्कुल नष्ट हो गईं और परमात्मा ही जानता है कि अब उनकी जगह किस तरह पूरी हो सकेगी। साथ ही, (अफ़सरों में) मुझे आज सेना के कुछ सबसे अच्छे और सबसे अधिक होनहार नौजवानों की मृत्यु पर शोक मनाना पड़ रहा है।"*

अंगरेज़ों की ज़िल्लत

भारत के अन्दर अंगरेज़ी सेना की इतनी भारी ज़िल्लत की दूसरी मिसाल ढूंढने के लिए हमें प्रथम मराठा युद्ध की ओर जाना पड़ता है। इसका मुख्य कारण केवल एक था और वह था—होलकर के विरूद्ध भारतवासियों का अंगरेज़ों के साथ सहयोग न करना। भारत के अन्दर अंगरेज़ों ने जितनी भी लड़ाइयां विजय की, सब प्रायः एक ही उपाय से कीं। वही 'उपाय' सिन्धिया और भोंसले के विरूद्ध जनरल लेक और उसके साथियों का एकमात्र अमोघ अस्त्र था। किन्तु होलकर के विरूद्ध अभी तक यह अस्त्र न चल सका था। वीरता या युद्धकौशल में उस समय के अंगरेज भारतवासियों के सामने किसी तरह तुलना में न ठहर सकते थे।

अंगरेजों का अपयश इस समय भारत में फैल गया। जसवन्तराव होलकर के नाम से अंगरेज वैसे ही चौंकने लगे, जैसे कुछ समय पहले हैदरअली और टीपू के नामों से चौंका करते थे। गवर्नर-जनरल और जनरल लेक, दोनों इसके बाद अपने पत्रों में जसवन्तराव का नाम लिखने के स्थान पर उसे 'लुटेरा' (The Plunderer), 'राक्षस' (The Monster), 'हत्यारा' (The Murderer) इत्यादि 'सुन्दर' शब्दों में बयान करने लगे। जनरल वेलसली को जब कलकत्ते में इस दुर्घटना का समाचार मिला, तो उसने एक पत्र में लिखा : "मैं इस घटना के राजनैतिक परिणामों को सोच कर कांप उठता हूं।"† 11 सितम्बर, सन् 1804 को मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को लिखा :

"हमें अब पिछला रोना रोने के बजाय, आगे इसके इलाज की कुछ कोशिश करनी चाहिए, और आपके होते हुए मुझे सफलता में कोई सन्देह नहीं। किन्तु मुख्य बात समय है। जितनी देर तक इस लुटेरे को जीवित रहने दिया जाएगा, हर घण्टे कुछ-न-कुछ नई आपत्ति हम पर अवश्य आएगी; यदि हम होलकर की मुख्य सेना पर फ़ौरन हमला करके निश्चित सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, तो हमें इसके

---

* "I will not at present say anything more upon this disgraceful and disastrous event, as my feelings are for many reasons too much agitated to enter into the misfortunes and causes of it. A finer detachment never marched, and sorry I am to say, that if this account of Lieutenant Anderson is correct, I have lost five battalions and six companies, the flower of the army, and how they are to be replaced at this day, God only knows. I have to lament also the loss of some of the finest young men and most promising in the army."

† "I tremble at the political consequences of that event."—General Wellesley referring to the retreat of General Monson.

लिए तैयार रहना चाहिए कि सारे भारतीय नरेश हमारा साथ छोड़ देंगे और स्वयं हमारे इलाक़े के अन्दर उपद्रव खड़े हो जाएंगे × × × मैं आपसे बिल्कुल सहमत हूं कि हमारा सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि हम मैदान में होलकर की पैदल सेना को परास्त कर उसकी तोपें छीन लें × × × यदि हमने होलकर को हरा दिया, तो फ़ौरन तमाम आपत्ति और भय जाता रहेगा।

"साथ ही, आप अपने मददगारों को पक्का रखने और पिछले साल के एलानों को दोहरा कर अथवा दूसरे लोभ देकर होलकर की सेना के आदमियों को अपनी ओर मिलाने के लिए हर तरह प्रयत्न करें।"*

होलकर के विरुद्ध नई साज़िशें

जसवन्तराव के विरुद्ध उसके आदमियों और दूसरे नरेशों को अपनी ओर फोड़ने के लिए अब जी तोड़ कोशिशें की जाने लगीं। इन कोशिशों में अंगरेज़ों को कहां तक सफलता प्राप्त हो रही थी, इसका कुछ अनुमान गवर्नर-जनरल के नाम लेक के 22 सितम्बर, सन् 1804 के पत्र से लग सकता है। इस पत्र में लेक ने लिखा :

"होलकर की सेनाओं की अजीब हालत है, उनमें से कुछ फिर हमारी ओर चले जाने के लिए कह रहे हैं। यदि वे आएंगे, तो उन्हें ले लिया जाएगा। किन्तु जो कुछ वे कहते हैं, उस पर मुझे बहुत कम विश्वास होता है; फिर भी, उनमें किसी तरह का भी असन्तोष होना अपना असर रखेगा और हमारे काम आ सकता है इसलिए उन्हें भड़का कर उनमें असन्तोष पैदा किया जाएगा।

भरतपुर का राजा

रहा भारतीय नरेशों को अपनी ओर तोड़ सकना, सो सिंधिया के अतिरिक्त दूसरे नरेशों का विश्वास भी अंगरेज़ों के ऊपर से ऊठ चुका था। स्वयं अपने अनुचित व्यवहारों के कारण, जिनका ज़िक्र आगे चल कर किया जाएगा, अंगरेज़ों को बरार के राजा पर भी विश्वास न हो सकता था। भरतपुर का राजा महाराजा सिंधिया का सामन्त था। फिर भी, सन् 1803 में अंगरेज़ों ने महाराजा सिंधिया और राजा राघोजी भोंसले के विरुद्ध भरतपुर के राजा रणजीत सिंह के साथ इस शर्त पर सन्धि कर ली थी कि जो सालाना ख़िराज तुम सिंधिया को दिया करते थे, वह आइन्दा के लिए बिल्कुल माफ़ कर दिया जाएगा। इसी सन्धि के कारण राजा रणजीत सिंह, अंगरेजों के विरुद्ध सिंधिया और भोंसले

---

* "We must endeavour rather to retrieve than to blame what is past, and under your auspices I entertain no doubt of success. Time, however, is the main consideration. Every hour that shall be left to this plunderer will be marked by some calamity; we must expect a general defection of the allies, and even confusion in our own territories, unless we attack Holkar's main force immediately with decisive success......I perfectly agree with you that the first object must be the defeat of Holkar's infantry in the field; and to take his guns; ......Holkar defeated, all alarm and danger will instantly vanish; ......

*   *   *   *

"You will also take every step for confirming our allies, and for encouraging desertion from Holkar by renewing the proclamations of last year; or by other encouragements."—Governor-General's letter to General Lake, 11th September, 1804.

को सहायता देने से रुका रहा । इस बार फिर गवरनर-जनरल ने होलकर के विरुद्ध भरतपुर के राजा से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की । 22 अगस्त, सन् 1804 को मार्क्विस वेल्सली ने जनरल लेक को लिखा :

"मैं इस पत्र द्वारा आपको अधिकार देता हूं और हिदायत करता हूं कि आप अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में भरतपुर के राजा को विश्वास दिला दीजिए कि अंगरेज़ सरकार इस बात का निश्चय कर चुकी है कि भरतपुर के साथ मौजूदा सन्धि की सब शर्तों को ठीक-ठीक और समय पर पूरा किया जाएगा । आप राजा को यह भी बता दीजिए कि अंगरेज सरकार के ऊपर जो ये आक्षेप लगाए जा रहे हैं कि वह भरतपुर के आन्तरिक शासन में किसी तरह का दखल देकर अथवा राजा के इलाक़ों, उसके क़िलों या सेनाओं को कम्पनी की दीवानी या फ़ौजदारी अदालतों के अधीन करने की किसी तरह की कोशिश करके उस सन्धि को तोड़ने का विचार कर उसके क़िलों या सेनाओं को कम्पनी की दीवानी या फ़ौजदारी अदालतों के अधीन करने की किसी तरह की कोशिश करके उस सन्धि को तोड़ने का विचार कर रही है, या राजा के दीवानी या फ़ौजदारी शासन में किसी तरह से भी अपना अधिकार बीच में लाना चाहती है, या और किसी तरह से भी मौजूदा सन्धि की शर्तों से फिरना चाहती है, ये सब आरोप झूठे हैं और बदमाशों के फैलाए हुए हैं।"

भरतपुर के राजकीय मामलों में दस्तन्दाज़ी

किन्तु इस बार राजा भरतपुर को भुलावा दे सकना मुश्किल था । एक तो ऊपर के पत्र से साबित है कि अंगरेज़ों के इरादों के सम्बन्ध में राजा भरतपुर के मन में काफ़ी गहरे सन्देह पैदा हो चुके थे, और इतिहास-लेखक मिल के बयान से मालूम होता है कि ये सन्देह सर्वथा निर्मूल भी न थे । मिल लिखता है कि मथुरा के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने नमक के व्यापारियों के कई व्यापार सम्बन्धी मामले ज़बरदस्ती भरतपुर की प्रजा के विरुद्ध तय कर डाले थे, जिनसे प्रजा को हानि और राजा को दुख और हैरानी हुई । मिल यह भी लिखता है कि यह खबर उन दिनों फैली हुई थी कि अंगरेज सरकार भरतपुर के राज्य के अन्दर कम्पनी की अदालतें क़ायम करना चाहती है । राजा तक यह खबर भी पहुंच चुकी थी ।* भरतपुर का राजा इस समय समझ रहा था कि अंगरेज ऊपर से मुझे बहका कर होलकर के विरुद्ध मुझसे मदद लेना चाहते हैं और भीतर-ही-भीतर मेरे राज्य और मेरी प्रजा पर पूरी तरह अपना अधिकार जमा लेने की तरकीबें कर रहे है ।

इन सबके अतिरिक्त, भरतपुर के आसपास गंगा और जमना के बीच दोआब का जो इलाका पिछले युद्ध में अंगरेज़ों ने महाराजा सिंधिया से छीन कर अपने शासन में कर लिया था, उस समस्त इलाके में केवल एक ही वर्ष के ब्रिटिश शासन के कारण इस समय त्राहि-त्राहि मची हुई थी ।

दोआब में कम्पनी के अत्याचार

गवर्नर–जनरल ने यह सारा इलाक़ा जनरल लेक के अधीन कर दिया था और वहां का 'बन्दोबस्त' लेक को सौंप दिया था । लेक ने जिस तरह से भी हो सकता था, दोआब

*Mill, vol. vi, p. 420.

की प्रजा और वहां के ज़मींदारों को सता-सता कर उनसे धन चूसना शुरू किया। भूमि का लगान इतना बढ़ा दिया गया कि जिसे देख कर प्रान्त के बूढ़े-से-बूढ़े निवासी भी चकित रह गए। मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दुर्बल सम्राटों के निर्बल शासन में भी प्रजा से कभी इतना अधिक लगान न लिया गया था। इससे पहले के अन्यायी-से-अन्यायी आक्रामक भी देश के लोगों के साधारण निर्वाह के लिए जितना सामान छोड़ देते थे, नए अंगरेज़ी बन्दोबस्त के बाद उनके पास उससे भी कहीं कम बच सकता था।

इसके अतिरिक्त, दोआब के अंगरेज़ अफ़सरों ने लेक की आज्ञानुसार दोआब की भारतीय प्रजा पर और भी तरह-तरह के अत्याचार करने शुरू कर दिए। इनमें मुख्य बात जिसने एकदम दोआब की प्रजा के दिलों को अंगरेज़ों की ओर से फेर दिया, वह नए अंगरेज़ी इलाक़े के अन्दर गोबध का शुरू हो जाना था।

मुग़ल सम्राट और गोरक्षा

सम्राट बाबर ने, जो अपनी भारतीय प्रजा का सच्चा हितचिन्तक था और समस्त हिन्दुओं, मुसलमानों और अन्य धर्मावलम्बियों को समान दृष्टि से देखता था, अपने साम्राज्य भर में गाय का वध बन्द कर दिया था। हुमायूं, अकबर और उनके महान उत्तराधिकारियों ने अपने अधिक विशाल साम्राज्यों में गोबध के विरूद्ध इस आज्ञा का पालन कड़ाई के साथ जारी रखा। अन्त के दिनों ने निर्बल और अदूरदर्शी मुग़ल सम्राटों ने भी गोबध के सम्बन्ध में इस उदार और हितकर नीति को नहीं बदला। इतिहास-लेखक विलसन के अनुसार, क़रीब 300 वर्ष से हिन्दोस्तान में किसी मनुष्य का पेट भरने के लिए एक भी गाय या बैल की हत्या न हुई थी।

तीर्थस्थान मथुरा में गोहत्या

लेकिन अब अंगरेज़ी राज शुरू होते ही मथुरा-जैसे पवित्र तीर्थस्थान के अन्दर अंगरेज़ सिपाहियों का पेट भरने के लिए गायें कटने लगीं। मथुरा और दोआब के बाशिन्दों में इससे अपने नए विदेशी शासकों के विरूद्ध घृणा और असन्तोष का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है कि भरतपुर का राजा अपने पास के इलाक़े में इस प्रकार गोहत्या की खबरें सुन कर और भी दुखी हुआ। दोआब की प्रजा ने भरतपुर के हिन्दू जाट राजा को अपना नेता और रक्षक नियुक्त किया। इन सब लोगों की हार्दिक सहानुभूति इस समय होलकर के साथ थी और दोआब को अंगरेज़ों के पंजे से छुड़ाने के लिए, दोआब की प्रजा, भरतपुर दरबार और जसवन्तराव होलकर, तीनों के बीच पत्र-व्यवहार होने लगा।

भरतपुर के प्रति नीति

जनरल लेक इस बात को जानता था। उसके अनेक पत्रों से प्रकट है कि वह होलकर को मिटाने के साथ-साथ इस समय भरतपुर की स्वाधीन रियासत को भी मिटा देने के लिए उत्सुक था, ताकि दोआब की भारतीय प्रजा को अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध कोई सच्चा नेता और होलकर को दोआब में कोई मददगार न मिल सके।

होलकर के विरुद्ध विराट सैन्य आयोजन

जसवन्तराव होलकर अपने राज्य से कम्पनी की आक्रमक सेना को निकाल बाहर

32—220 M of I&B/ND/80

कर चुका था। अंगरेज़ों को इस बात का भय था कि कहीं वह उत्तर की ओर बढ़ कर कम्पनी के इलाक़े दोआब पर हमला न कर दे। अपने भारतीय इलाक़ों की रक्षा करने और जसवन्तराव को फंसाने के लिए बड़ी-बड़ी तैयारियां की गईं। गवर्नर-जनरल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम 24 मार्च, सन् 1805 को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने इन तैयारियों को विस्तार के साथ बयान किया है। दिल्ली, आगरा और मथुरा में सेनाएं बढ़ाई गईं और इन स्थानों तक पहुंचने के मार्गों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। इसके अतिरिक्त पांच सेनाएं पांच ओर से होलकर को घेरने के लिए नियुक्त की गईं—सबसे ऊपर एक विशाल सेना जनरल लेक के अधीन, दूसरी सेना दिल्ली और आगरे के बीच की पहाड़ियों के निकट, तीसरी सेना बुन्देलखण्ड में, चौथी सिंधिया की सबसीडियरी सेना उज्जैन में, और पांचवीं सेना कर्नल मरे के अधीन गुजरात की सरहद पर।

इस समस्त सैन्य प्रबन्ध का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि इनसे निकल कर होलकर उत्तर की ओर अंगरेज़ी इलाके पर हमला न कर सके। मार्क्विस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध की सफलता पर पूरा विश्वास था। उसने 24 मार्च, सन् 1805 को डाइरेक्टरों को लिखा :

> **"यह बात बिल्कुल नामुमकिन मालूम होती थी कि होलकर इन सब सेनाओं के हमले से बच कर निकल सके।"**

मार्क्विस वेल्सली को अपने इस प्रबन्ध से युद्ध के जल्दी समाप्त होने की भी आशा थी।

किन्तु गवर्नर-जनरल और उसके साथियों की सब आशाएं झूठी साबित हुईं। जसवन्तराव ने इस समय पूरी तरह साबित कर दिया कि वीरता या युद्धकौशल, दोनों में से किसी बात में भी जनरल लेक या जनरल मानसन कोई उसे न पा सकता था।

होलकर का मथुरा पर क़ब्ज़ा

जनरल मानसन के आगरे की ओर भागते ही जसवन्तराव होलकर ने आगे बढ़ कर अंगरेज़ों की पांच-पांच सेनाओं से बचते हुए, अपनी सरहद को पार कर कम्पनी के इलाक़े मथुरा पर हमला कर दिया। अंगरेज़ों ने एक बहुत बड़ी सेना मथुरा की रक्षा के लिए नियुक्त कर रखी थी। किन्तु इस सेना को हार खाकर मथुरा से भाग जाना पड़ा और विजयी जसवन्तराव होलकर ने मथुरा पर क़ब्ज़ा कर लिया। वेल्सली के सब प्रयत्न निष्फल गए। मथुरा से आगे बढ़ कर तुरन्त दिल्ली पर कब्ज़ा कर लेना उस समय जसवन्तराव के लिए कुछ भी कठिन न था। यह भी सम्भव है कि एक बार दिल्ली पर क़ब्ज़ा करके जसवन्तराव के पक्ष को आश्चर्यजनक बल प्राप्त हो जाता। किन्तु शायद जसवन्तराव की आकांक्षा उस समय इससे अधिक न थी। इसके अतिरिक्त, मथुरा पहुंच कर उसे कई नई कठिनाइयों ने आ घेरा।

कर्नल मरे द्वारा मालवा-विजय

जसवन्तराव जब उत्तर की ओर बढ़ रहा था, उसी समय कर्नल मरे जसवन्तराव के मालवा के इलाक़े पर और कर्नल वैलेस उसके दक्षिण के इलाक़ों पर हमला कर रहे थे। ऊपर आ चुका है कि कर्नल मरे ने रसद की कमी के कारण पहली जुलाई को गुजरात की ओर लौटना शुरू कर दिया था। किन्तु फिर होलकर के उत्तर की ओर बढ़ जाने की ख़बर

पाते ही कर्नल मरे ने तीसरी बार लौट कर होलकर के आदमियों के साथ साज़िशें करना शुरू कर दिया ।

डाइरेक्टरों के नाम गवर्नर-जनरल के, 24 मार्च, सन् 1805 के पत्र में लिखा है कि कर्नल मरे ने गवर्नर-जनरल से बाज़ाब्ता दरयाफ्त किया कि किस हद तक होलकर के नौकरों और दूसरे अनुयायियों को लोभ दिया जाए, और कहांतक उनसे वादे कर लिए जाएं, इत्यादि।* इस बार कर्नल मरे को इतनी सफलता प्राप्त हुई कि 5 जुलाई, सन् 1804 को कर्नल मरे फिर उज्जैन की ओर बढ़ा। बिना किसी विरोध के 8 जुलाई को वह उज्जैन पहुंच गया और धीरे-धीरे उज्जैन से बैठ कर उसने "बिना किसी तरह की लड़ाई के"† आसपास के सारे इलाके और होलकर की राजधानी इन्दौर तक फिर एक बार क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह, इस अद्भुत कार्य में जसवन्तराव की अनुपस्थिति से कर्नल मरे को बहुत बड़ी सहायता मिली ।

वैलेस को दक्षिण में सफलता

उत्तर दक्षिण में जनरल वैल्सली के चले जाने के बाद कम्पनी की सेनाओं का नेतृत्व कर्नल वैलेस को मिला। 22 अगस्त को कर्नल वैलेस पूना से चला। 18 सितम्बर तक उसकी सेना ने गोदावरी को पार किया। 27 और 30 सितम्बर को और अधिक सेना वैलेस से आकर मिल गई। अक्तूबर के शुरू में पेशवा की निजी सेना भी वैलेस से आ मिली। उसी महिने में वैलेस ने चान्दोर पर और ताप्ती नदी के दक्षिण में होलकर के कई क़िलों पर क़ब्ज़ा कर लिया। निस्सन्देह, जिन 'उपायों' से मरे को सफलता मिली, उन्हीं से वैलेस ने भी पूरी तरह काम लिया।

मथुरा पहुंचते-पहुंचते जसवन्तराव को अपने मालवा और दक्षिण के इलाक़ों के छिन जाने का समाचार मिला। उसने दुख के साथ अनुभव किया कि अन्त में उसके आदमी भी अनन्त काल तक अंगरेज़ों के 'गुप्त उपायों' के लिए अभेद्य न रह सके। मथुरा में बैठ कर अब वह अपने इन इलाक़ों को फिर से विजय करने के उपाय सोचने लगा ।

दोनों दलों की योजनाएं

जसवन्तराव ने अब महाराजा सिंधिया, बरार के राजा और भरतपुर के राजा को अपनी ओर करना चाहा। उधर जसवन्तराव के देर तक मथुरा में रुक जाने से अंगरेज़ों को मौक़ा मिल गया। उन्होंने एक ओर उसके राज्य में उसके विरुद्ध तरह-तरह की झूठी खबरें फैलानीं शुरू कर दीं, और दूसरी ओर दिल्ली को ठीक कर लिया, और साथ ही जनरल लेक ने खुद होलकर पर हमला करने की तैयारियां कर लीं।

दिल्ली में होलकर की असफलता

3 सितम्बर को जनरल लेक ने कानपुर से कूच किया। 22 सितम्बर को वह आगरे

---

* "Colonel Murray having submitted to the Governor-General several questions relative to the extent to which he might be permitted to encourage desertion among the adherents of Jaswant Rao Holkar, and to offer to them employment in the service of the allies, ...the Governor-General in Council deemed it to be advisable to furnish Colonel Murray with instructions......"—Despatch of the Governor-General in Council to the Secret Committee, dated 24th March, 1805.

† "Without any resistance."—Above despatch.

पहुंचा, और सिकन्दरे में अपनी सेना जमा करके 1 अक्तूबर को मथुरा की ओर रवाना हुआ। जिस समय जनरल लेक मथुरा की ओर बढ़ रहा था, उसी समय जसवन्तराव होलकर दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने और दिल्ली सम्राट को अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से सेना सहित दिल्ली की ओर बढ़ा। किन्तु इस बीच अंगरेज़ों ने दिल्ली की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। कर्नल आक्टरलोनी दिल्ली की सेनाओं का सेनापति था। अभी तक अंगरेज़ों ने सम्राट के साथ अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा न किया था और न सम्राट और सम्राट के कुल के खर्च का उचित प्रबन्ध किया था, फिर भी आक्टरलोनी ने झूठे वादों और आशाओं के सहारे सम्राट शाह आलम को अपनी ओर कर रखा था। नतीजा यह हुआ कि सम्राट ने भी अपना सारा प्रभाव मराठों के विरुद्ध अंगरेज़ों के पक्ष में लगा दिया और जसवन्तराव को दिल्ली में सफलता न मिल सकी।

सहारनपुर में होलकर की असफलता

ऐसी स्थिति में जसवन्तराव को जब मालूम हुआ कि जनरल लेक मथुरा से मेरा पीछा कर रहा है, तो वह 15 अक्तूबर को दिल्ली छोड़ कर सहारनपुर की ओर चल दिया। इसके दो दिन बाद लेक दिल्ली पहुंचा। सहारनपुर के इलाक़े में जसवन्तराव को सिख सरदार दोलचासिंह, नवाब बम्बू खां और बेगम समरू इत्यादि से सहायता की आशा थी। किन्तु अधिक चतुर अंगरेज़ों के सामने वहां भी उसकी आशा पूरी न हो सकी।

विजय के साधन

भारत के अन्दर अपनी सत्ता के क़ायम करने में अंगरेज़ों को सिखों से अकसर सहायता मिलती रही। इससे पहले दौलतराव सिंधिया के विरुद्ध भी सिखों ने अंगरेज़ों की मदद की थी। इस अवसर पर बरेली में गवर्नर-जनरल का सीटन नामक एक एजेण्ट रहा करता था। इस एजेण्ट द्वारा गवर्नर-जनरल ने सरदार दोलचासिंह के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार किया। 10 सितम्बर, सन् 1804 को मार्क्विस वेलसली ने जनरल लेक को एक 'सरकारी और गुप्त' पत्र में लिखा :

> **"जमना के उत्तर जाने के बाद सम्भव है × × × हम दोलचासिंह की सहायता का कार्यसाधक उपयोग कर सके। इसलिए मैं उचित समझता हूं कि आपको यह अधिकार दे दूं कि यदि उचित समझें, तो इस युद्ध में दोलचासिंह को धन की सहायता दें × × ×।"***

निस्सन्देह, धन खर्च करके अंगरेज़ों ने सिखों को होलकर के विरुद्ध अपनी ओर फोड़ लिया। बम्बू खां, बेगम समरू इत्यादि के साथ अंगरेज़ों की साज़िशों का ज़िक्र ऊपर आ चुका है। नतीजा यह हुआ कि सहारनपुर के पास के इलाक़े में भी जसवन्तराव का किसी ने साथ न दिया, और अन्त में जसवन्तराव को भरतपुर की ओर लौट आना पड़ा।

इसके बाद भरतपुर के ऐतिहासिक मोहासरे और अंगरेज़ों और होलकर के बाकी संग्रामों का बयान अगले अध्यायों में किया जाएगा।

---

* "It is possible that the services of this chieftain may eventually be employed with effect......when the river Jumna shall become fordable, I deem it advisable, therefore, to authorize Your Excellency, if you should think proper, to subsidize Dolcha Singh, during the war......"—Marques Wellesley's "Official and Secret" letter to General Lake, dated 10th September, 1804.

छब्बीसवां अध्याय

भरतपुर का मोहासरा

दिल्ली से भरतपुर

जसवन्तराव होलकर के दिल्ली से चले जाने के बाद उसका पीछा करने के लिए तीन बड़ी सेनाएं अलग-अलग दिल्ली से रवाना हुईं। एक कर्नल बर्न के अधीन, दूसरी जनरल लेक के अधीन, और तीसरी मेजर जनरल फ्रेज़र के अधीन। कर्नल बर्न की सेना 25 अक्तूबर, सन् 1804 को दिल्ली से चली। कर्नल बर्न और जसवन्तराव होलकर की सेनाएं कई बार एक-दूसरे के क़रीब आ गईं। किन्तु बर्न को हमला करने का साहस न हो सका। जसवन्तराव उस समय उत्तर भारत की दूसरी राजशक्तियों को अंगरेज़ों के विरुद्ध मिला लेने की फ़िक्र में था। वह सहारनपुर से लौट कर भरतपुर की ओर जा रहा था। उसने अपनी सेना के दो हिस्से किए। पैदल सेना और तोपख़ाने को उसने आगे बढ़ा दिया और स्वयं अपने सवारों सहित पीछे रहा। 31 अक्तूबर को जनरल लेक तीन रेजिमेण्ट गोरे सवारों की, तीन देशी सवारों की और बड़ा-सा तोपख़ाना लेकर होलकर और उसके सवारों के मुकाबले के लिए दिल्ली से निकला। उधर मेजर जनरल फ्रेज़र को उसने बहुतसी पैदल सेना, दो रेजिमेण्ट देशी सवारों की और तोपख़ाना देकर होलकर की पैदल सेना और तोपख़ाने का पीछा करने के लिए रवाना किया।

होलकर का पीछा

लेक को पता चला कि होलकर अपने सवारों सहित इस समय शामली में है। जसवन्तराव जितनी जल्दी हो सके, भरतपुर पहुंचना चाहता था, और लेक उसे मार्ग में रोक कर उससे लड़ना चाहता था। जसवन्तराव की ख़बर पाते ही लेक शामली की ओर बढ़ा। 3 नवम्बर को लेक शामली पहुंचा। किन्तु होलकर उससे पहले ही भरतपुर की ओर रवाना हो चुका था।

लेक होलकर का पीछा करता रहा। 17 नवम्बर को लेक फ़र्रुख़ाबाद में होलकर की सेना के पास आ पहुंचा। किन्तु फिर भी उसे होलकर पर हमला करने का साहस न हो सका, और जसवन्तराव निर्विघ्न अपनी सवार सेना सहित भरतपुर राज के अन्दर डीग के क़िले मे दाख़िल हो गया। लेक की इस असफलता के विषय में गवर्नर-जनरल ने लेक को हिम्मत दिलाते हुए लिखा :

> **"दुर्भाग्य की बात है कि होलकर आप से बच कर निकल गया। इस बात को आप उतने ही जोरों के साथ अनुभव करते हैं, जितना मैं करता हूं कि होलकर को गिरफ्तार कर लेना या उसका नाश कर डालना बिल्कुल जरूरी है। जब तक उसका नाश न कर दिया जाएगा या वह क़ैद न कर लिया जाएगा, तब तक हमें चैन नहीं मिल सकता। इसलिए मैं आप पर इस बात के लिए भरोसा करता**

हूं कि जहां तक भी वह जाए, आप उसका पीछा करने से किसी कारण भी न हटें।"*

डीग के बाहर का संग्राम

मेजर जनरल फ्रेजर को अपने काम में जनरल लेक की अपेक्षा अधिक सफलता मिली। 5 नवम्बर को जनरल फ्रेज़र सेना लेकर दिल्ली से निकला। होलकर की पैदल सेना और तोपखाना उस समय डीग के पास पहुंच चुके थे, किन्तु होलकर स्वयं डीग से बहुत दूर था। जनरल फ्रेज़र 12 नवम्बर को डीग के निकट पहुंचा। 13 को, जसवन्तराव होलकर के पहुंचने से पहले, डीग के क़िले से बाहर दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाई हुई। अंगरेज़ों के बयान के अनुसार उनके 643 आदमी मैदान में खेत रहे, जिनमें 22 अंगरेज़ अफ़सर थे। जनरल फ्रेज़र भी इसी लड़ाई में काम आया। होलकर के हताहतों की संख्या 2,000 बताई जाती है। होलकर की बाक़ी सेना ने पीछे हट कर डीग के दुर्ग में पनाह ली, जहां चन्द रोज़ बाद होलकर स्वयं अपने सवारों सहित उनसे आ मिला। कहा जाता है, इस संग्राम में होलकर की 87 तोपें अंगरेज़ों के हाथ लगीं।

विजय पर जलसे

इस विषय पर गवर्नर-जनरल और जनरल लेक, दोनों ने खूब जलसे किए और समस्त भारत में उसका एलान किया। 19 नवम्बर को स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए जनरल लेक ने गवर्नर-जनरल को लिखा :

> **"मेरे कूच की तेजी को देख कर सारे हिन्दोस्तानी इतने चकित रह गए कि जिसकी कल्पना भी नहीं हो सकती** × × ×।"†

कहा जाता है कि 31 अक्तूबर से 17 नवम्बर तक जनरल लेक के कूच की रफ़्तार 23 मील रोज़ाना थी। रेल और तार उस समय तक संसार में कहीं न थे। होलकर के आदमियों के ख़ास कर पठानों के साथ लेक के 'गुप्त उपाय' बराबर जारी थे।

जसवन्तराव होलकर अपनी समस्त सेना सहित भरतपुर पहुंचना चाहता था। पर मार्ग में उसे और उसकी सेना को डीग के क़िले में आश्रय लेना पड़ा। डीग का क़िला भी भरतपुर के राज्य में था।

भरतपुर के राजा के साथ अंगरेज़ों का पत्र-व्यवहार हो रहा था। मालूम नहीं, भरतपुर के राजा का विचार पहले अंगरेज़ों से लड़ने का था या नहीं, किन्तु इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिससे विवश होकर भरतपुर के राजा रणजीत सिंह को अंगरेज़ों के विरुद्ध होलकर का साथ देना पड़ा।

---

* "It is unfortunate that Holkar's person should have escaped you, you are equally impressed with me by the absolute necessity of seizing or destroying him. Until his person be either destroyed or imprisoned, we shall have no rest. I therefore rely on you to permit no circumstance to divert you from pursuing him to the utmost extremity."

† "The rapidity of my march has astonished all the natives beyond imagination......"—General Lake to Governor-General, 19th November, 1804.

भरतपुर में अंगरेज़ों की धांधली

मार्क्विस वेल्सली ने भरतपुर की प्रजा से कुछ प्रतिष्ठित लोगों पर यह दोष लगा कर कि वे होलकर के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहे थे, लेक को यह आज्ञा दी कि भरतपुर राज्य से उन लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ्तार करके, अंगरेज़ी इलाक़े में लाकर, अंगरेज़ी अदालत के सामने उनका कोर्ट मार्शल किया जाए। भरतपुर एक स्वाधीन रियासत थी। किन्तु राजा रणजीत सिंह से न इस मामले में राय ली गई, न दरबार से किसी तरह की तहक़ीक़ात कराई गई और न भरतपुर की प्रजा को गिरफ्तार करने या सज़ा देने के लिए राजा की इजाजत तक की आवश्यकता समझी गई। पहले राजा को यह आज्ञा दी गई कि जिन-जिन को लेक कहे, उन्हें फ़ौरन गिरफ्तार करके अंगरेज़ों के हवाले कर दो। इसके बाद गवर्नर-जनरल ने लेक को अधिकार दे दिया कि आप बिना राजा से पूछे उसकी प्रजा के इन लोगों को ज़बरदस्ती गिरफ्तार करके अंगरेज़ी इलाक़े में ले आएं और उन्हें गोली से उड़वा दें।

कोई नरेश, जिसे अपनी आन का ख़याल हो, इस तरह की धृष्टता और ज़बरदस्ती सहन नहीं कर सकता। जनरल लेक के इस समय के एक-एक पत्र से साबित है कि वह भरतपुर राज्य का अन्त कर देने के लिए लालायित था और इसे बहुत आसान काम समझे हुए था। राजा रणजीत सिंह के पास अब जसवन्तराव होलकर को अंगरेज़ों के विरुद्ध मदद देने के सिवा और कोई चारा न था। इसके अतिरिक्त, निर्वासित होलकर ने भरतपुर राज्य में शरण ली थी। न्याय और साधारण शिष्टता भी राजा रणजीत सिंह से यही चाहती थी कि वह अपने शरणागत अतिथि की सहायता करें। जनरल लेक भरतपुर के राजा को परास्त करना कितना आसान समझता था, यह उसके नीचे लिखे शब्दों से ज़ाहिर है। 27 नवम्बर, सन् 1804 को उसने गवर्नर-जनरल के एक पत्र के उत्तर में लिखा :

> **"× × × मैं अब राजा रणजीत सिंह और उसके क़िले पर फ़ौरन हमला करके उन्हें अपने अधीन किए बिना रह ही नहीं सकता।*"**

डीग के क़िले पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

अंगरेज़ों ने डीग के क़िले का मोहासरा करने का निश्चय किया। 8 दिसम्बर, सन् 1804 को जनरल लेक अपनी सेना लेकर डीग पहुंचा। 10 दिसम्बर को क़िले की दीवारें तोड़ने के लिए आगरे से गोला-बारूद और तोपें आईं। 13 दिसम्बर को गोलाबारी शुरू हुई। दस दिन के प्रयत्न के बाद, 23 दिसम्बर को एक ओर की दीवार का कुछ भाग टूट पाया। इसी बीच क़िले के भीतर की समस्त सेना, जो वास्तव में भरतपुर ही जाना चाहती थी, क़िले से निकल कर सुरक्षित भरतपुर पहुंच गई। 23 दिसम्बर की आधी रात को टूटे हुए हिस्से से अंगरेज़ी सेना ने ख़ाली क़िले में प्रवेश किया। इस हमले में अंगरेज़ों के 227 आदमी काम आए। 24 तारीख़ को डीग का नगर और निर्जन क़िला, दोनों अंगरेज़ों के हाथों में आ गए।

* "......it will not be in my power to avoid attacking and reducing him and his forts without delay."—General Lake to Marques Wellesley, dated 27th November, 1804.

डीग की विजय का समाचार सुन कर गवर्नर-जनरल का हौसला बढ़ गया। 20 दिसम्बर, 1804 को उसने एक 'गुप्त और सरकारी' पत्र में जनरल लेक को लिखा :

> **"किन्तु अब भरतपुर के राजा के पूरे बल और उसके सब वसीलों को पूरी तरह तोड़ देना आवश्यक और अनिवार्य हो गया है, इसलिए मैं आपको आदेश और अधिकार देता हूं कि इस हितकर उद्देश्य को पूरा करने और भरतपुर राज्य के तमाम क़िलों, इलाक़ों और प्रान्तों को, जिस तरह आप सबसे अधिक उपयुक्त समझें, उस तरह अंगरेज़ी राज्य में मिला लेने का आप शीघ्र प्रबन्ध करें।"***

डीग पर क़ब्ज़ा करते ही अंगरेज़ों ने आसपास के इलाक़े पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। कहा जाता है कि केवल भरतपुर का नगर राजा रणजीत सिंह के क़ब्ज़े में रह गया था। अंगरेज़ों ने अब राजा रणजीत सिंह से कहा कि आप होलकर को हमारे हवाले कर दें। किन्तु रणजीत सिंह के स्वाभिमान ने इसकी इजाज़त न दी। 29 दिसम्बर को डीग से चलकर 3 जनवरी, सन् 1805 को जनरल लेक भरतपुर पहुंचा और भरतपुर का मोहासरा शुरू हो गया।

भरतपुर का मोहासरा

भरतपुर का नगर उस समय आठ मील लम्बा था। चारों ओर बहुत मोटी, ऊंची गारे की चहारदीवारी थी, जिसके बाहर पानी से भरी हुई चौड़ी गहरी खाई थी। नगर के पूर्वी कोने पर भरतपुर का क़िला था। शहर फ़सील के ऊपर तोपें चढ़ी हुई थीं। रणजीत सिंह की सारी सेना, होलकर की पैदल सेना व नगर और आस पास की बहुत-सी प्रजा इस फ़सील के भीतर थी। होलकर की सवार सेना अंगरेज़ों को पीछे से दिक करने और उनकी रसद इत्यादि रोकने के लिए नगर से कुछ दूर बाहर रही।

अंगरेज़ी सेना की पहली पराजय

7 जनवरी, सन् 1805 को कम्पनी की सेना ने भरतपुर के ऊपर गोले बरसाने और फ़सील को तोड़ने के प्रयत्न शुरू किए। 9 जनवरी को एक ओर से दीवार का कुछ हिस्सा टूटा मालूम हुआ। अंगरेज़ी सेना ने ज्यों-त्यों खाई को पार कर उस ओर से नगर में घुसना चाहा। किन्तु नगर के भीतर की भारतीय सेना ने इस वीरता के साथ मुक़ाबला किया कि बार-बार प्रयत्न करने पर भी अनेक जानें गंवा कर अंगरेज़ी सेना को विवश पीछे लौट आना पड़ा।†

---

* "The entire reduction of the power and resources of the Raja of Bharatpur, however, is now become indispensably necessary, and I accordingly authorize and direct Your Excellency to adopt immediate arrangements for the attainment of that desirable object, and for the annexation to the British power, in such manner as Your Excellency may deem most consistent with the public interests, of all the forts, territories, and possessions belonging to the Raja of Bharatpur."—Governor-General's letter to General Lake, dated 20th December, 1804, marked "Secret and Official".

† "......and the column, after making several attempts, with heavy loss, was obliged to retire......"—General Lake to Marques Wellesley, 10th January, 1805.

इस तरह, भरतपुर पर क़ब्ज़ा करने का पहला प्रयत्न निष्फल गया।

फिर असफलता

12 दिन तक फिर गोलाबारी होती रही। इसके बाद दूसरी बार 21 जनवरी, सन् 1805 को अंगरेज़ी सेना ने नगर में प्रवेश करने का और अधिक ज़ोरों के साथ प्रयत्न किया; किन्तु इस बार भी सफलता न मिल सकी। इस दूसरे प्रयत्न की असफलता के सम्बन्ध में जनरल लेक ने मार्क्विस वेल्सली को लिखा :

> **"××× मुझे यह लिखते हुए दुख होता है कि खाई इतनी अधिक चौड़ी और गहरी निकली कि उसे पार करने की जितनी कोशिशें की गईं, सब बेकार हुईं, और हमारी सेना को बिना अपना उद्देश्य पूरा किए अपनी खन्दकों में लौट आना पड़ा।**
>
> **हमारी सेना ने सदा की भांति दृढ़ता से काम किया, किन्तु इतनी देर तक इतने जोरो से और इतने ठीक निशानें के साथ हमारे ऊपर गोले बरसते रहे कि मुझे डर है, हमारा नुक़सान बहुत अधिक हुआ है।"***

निस्सन्देह, भरतपुर के क़िले और फ़सील के ऊपर की वे तोपें, जिनकी भयंकर आग ने दो बार शत्रु के मुंह मोड़ दिए, इस समय योग्य और विश्वासपात्र भारतीय वीरों के हाथों में थी।

अंगरेज़ी सेना का तीसरा प्रयत्न

इन दोनों बार के प्रयत्नों में अंगरेज़ों की ओर जान और माल, दोनों का इतना अधिक नुकसान हो चुका था कि अब लेक को, बिना बाहर से मदद आए, तीसरी बार हमला करने की हिम्मत न हो सकी। क़रीब एक महीने तक अंगरेज़ी सेना ख़ाली पड़ी रही। इस बीच कर्नल मरे होलकर के मध्य भारत के इलाक़ों पर कम्पनी की ओर से क़ब्ज़ा करके गुजरात लौट गया। कर्नल मरे के अधीन गुजरात की जितनी सेना थी, वह सब अब मेजर जनरल जोन्स के अधीन 12 फ़रवरी, सन् 1805 को जनरल लेक की सहायता के लिए भरतपुर आ पहुंची। आगरे और दूसरे स्थानों से नया सामान, नई और अधिक भारी तोपें मंगाई गईं। फ़रवरी के शुरू में ऐसे मौके देख कर कि जहां पर फ़सील कम चौड़ी मालूम होती थी, अंगरेज़ी सेना ने फिर गोलाबारी शुरू की। अन्त में, एक नई दिशा से रास्ता बना कर 20 फ़रवरी सन् 1805 को कम्पनी की सेना ने तीसरी बार भरतपुर के अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न किया।

---

* "......I am sorry to add, that the ditch was found so broad and deep, that every attempt to pass it proved unsuccessful, and the party was obliged to return to the trenches, without effecting their object.

"The troops behaved with their usual steadiness, but I fear from the heavy fire they were unavoidably exposed to, for a considerable time, that our loss has been severe."

तीसरी बार अंगरेजों की असफलता

लेकिन जिस रास्ते से कम्पनी की सेना ने भीतर घुसना चाहा, उसी रास्ते से भीतर की भारतीय सेना ने बाहर निकल कर कम्पनी की सेना पर हमला कर दिया। कम्पनी के अनेक अंगरेज़ अफ़सर और असंख्य देशी और विदेशी सिपाही वहीं पर भारतीय गोलियों के शिकार हो गए, यहां तक कि भीतर की सेना ने अंगरेजों की सामने की ख़न्दक़ों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। अंगरेज़ों की ओर सबसे आगे गोरी पलटनें थीं। जनरल लेक ने इन लोगों को आज्ञा दी कि तुम आगे बढ़ कर शत्रु को नगर के अन्दर वापस ढकेल दो। उनके अफ़सरों ने उन्हें खूब समझाया और हिम्मत दिलाई, किन्तु इन गोरे सिपाहियों के दिलों में इतना डर बैठ गया था और भरतपुर की सेना की ओर से गोलियों की बौछार इतनी भयंकर थी कि इन लोगों ने आगे बढ़ने से साफ़ इनकार कर दिया। उस संकट के समय जनरल लेक ने अपने हिन्दोस्तानी पैदलों की दो रेजिमेण्टों को आगे बढ़ने का हुकुम दिया। य लोग वीरता के साथ आगे बढ़े।* भरतपुर के अन्दर प्रवेश कर सकने की दृष्टि से अंगरेज़ों का यह तीसरी बार का प्रयत्न भी सर्वथा निष्फल गया। किन्तु कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने वीरता के साथ बढ़ कर लड़ते-लड़ते भरतपुर की सेना को नगर के अन्दर वापस चले जाने पर मजबूर कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उस ऐन संकट के समय, जब कि गोरी सेना में अनुशासन और बहादुरी, दोनों का अन्त हो चुका था, यदि कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाही जान पर खेल कर आगे न बढ़ते, तो भरतपुर की विजयी सेना उसी दिन भरतपुर के मैदान में अंगरेज़ी सेना को समाप्त करके लेक और उसके सहजातियों की समस्त आशाओं पर पानी फेर देती।

असफलता के कारण

भरतपुर की सेना के विरुद्ध जनरल लेक के इन तीन बार के प्रयत्नों के निष्फल जाने का मुख्य कारण यह था कि भरतपुर की फ़सील के अन्दर राजा रणजीत सिंह या जसवन्तराव होलकर, दोनों में से किसी की सेना में भी इस समय कोई विश्वासघातक न था। इसी तरह, भरतपुर की भारतीय सेना यदि 20 फरवरी, सन् 1805 को बाहर की अंगरेज़ सेना का खात्मा न कर सकी, तो इसका भी एकमात्र कारण यह था कि कम्पनी के उन ज़रखरीद भारतीय सिपाहियों में, जिन्होंने ऐन मौक़े पर अपने देशवासियों के विरूद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया, 'राष्ट्रीयता' के भाव का अभाव था।

वेल्सली की घबराहट

जनरल लेक के इस तीसरे प्रयत्न की असफलता का समाचार सुन कर मार्क्विस वेल्सली घबरा गया। 5 मार्च, सन् 1805 को उसने जनरल लेक को एक लम्बा पत्र लिखा। इसमें युद्ध को शीघ्र समाप्त करने के विस्तृत उपाय सुझाते हुए मार्क्विस वेल्सली ने लिखा :

---

*The Europeans, however, of His Majesty's 75th and 76th, who were at the head of the column, refused to advance,......The entreaties and expostulations of their officers failing to produce any effect, two regiments of Native Infantry, the 12th and 15th, were summoned to the front, and gallantly advanced to the Storm."—Mill, vol. vi, p. 426.

"क्या यह उचित न होगा कि जिस समय आप भरतपुर के मोहासरे की तैयारी कर रहे हों या उस मोहासरे में लगे हुए हों, उसी समय रणजीत सिंह को होलकर से तोड़ने की भी कोशिश की जाए? यद्यपि भरतपुर विजय नहीं हुआ, फिर भी × × × यदि रणजीत सिंह होलकर का साथ छोड़ दे, तो होलकर को कोई आशा न रह जाएगी।"*

रणजीत सिंह को प्रलोभन

आगे चल कर गवर्नर-जनरल ने लेक को लिखा कि राजा रणजीत सिंह से कह दिया जाए कि यदि आप "होलकर का साथ बिलकुल छोड़ देंगे, तो × × × आपका राज्य आपको फिर से वापस दे दिया जाएगा।"†

इसी भरतपुर के राजा के सम्बन्ध में केवल ढाई महीने पहले गवर्नर-जनरल ने लेक को लिखा था कि "भरतपुर के राजा के सब क़िले, इलाक़े और प्रान्त अंगरेज़ी राज्य में मिला लिए जाएं"। जनरल लेक भी उस समय भरतपुर हड़पने के लिए लालायित था। किन्तु पिछले दो मास के अन्दर स्थिति काफ़ी पलटा खा चुकी थी। लेक को रणजीतसिंह के बल और पराक्रम का अब काफ़ी पता लग चुका था। उसने गवर्नर-जनरल के उत्तर में लिखा :

"रणजीत सिंह को होलकर से तोड़ने के लिए हर तरह की कोशिश की जा रही है और की जाएगी × × × यदि रणजीत सिंह ने साथ छोड़ दिया, तो फिर होलकर और उसके अनुयायियों के लिए कोई आशा न रह जाएगी।"‡

और आगे चल कर जनरल लेक ने लिखा :

"रणजीत सिंह के साथ इस समय मेरा पत्र व्यवहार जारी है और मुझे आशा है कि इस पत्र व्यवहार से एक ऐसा समझौता कर लिया जाएगा, जो अंगरेज़ सरकार के लिए पूरा लाभदायक होगा और जिससे भविष्य में फिर कभी रणजीत सिंह और जसवन्तराव होलकर में मेल न हो पाएगा।"§

जनरल लेक को अपने 'गुप्त उपायों' पर अभी तक बहुत विश्वास था। भरतपुर के बाहर अंगरेज़ी सेना की स्थिति इस समय, वास्तव में, बेहद नाज़ुक थी। नगर के भीतर की भारतीय सेना के हौसले बढ़े हुए थे। जनरल लेक और उसकी सेना की

---

* "While the Commander-in-Chief is preparing for the seige of Bharatpur, or actually engaged in it, might it not be advisable to endeavour to detach Ranjit Singh from Holkar? Although Bharatpur has not fallen......Holkar would be hopeless if abandoned by Ranjit Singh."

† "......and renounce Holkar altogether, in which case he will be...... restored to his possessions."

‡ "Every endeavour is making, and will be made to detach Ranjit Singh from Holkar......Holkar and his followers would have little hope if abandoned by Ranjit Singh."—General Lake to Governor-General.

§ "A correspondence is now going on between me and Ranjit Singh which I am in hopes will lead to an accommodation sufficiently favourable to the British Government and prevent any future union of interests between that chief and Jaswant Rao Holkar."

हिम्मत बिल्कुल टूट चुकी थी। उनके पास रसद की भी कमी थी। भरतपुर विजय होने की लेक को अब कोई आशा न रही थी और न भरतपुर से लौटकर पीछे मुड़ने में ही अंगरेज़ों को अपनी सलामती नज़र आती थी।

अमीर खां और उसके आदमियों को रिश्वतें

ऊपर आ चुका है कि होलकर की सवार सेना इस समय भरतपुर से बाहर थी। यह सेना होलकर के प्रसिद्ध सरदार अमीर खां के अधीन थी। इस बाहर की सेना ने अंगरेज़ी सेना को खूब दिक़ कर रखा था और उनके पास रसद का पहुंच सकना क़रीब-क़रीब असंभव कर दिया था। यदि कहीं अमीर खां एक बार हिम्मत करके पीछे से अंगरेज़ी सेना पर हमला कर देता, तो सामने फ़सील पर की गोलाबारी और पीछ से अमीर खां का हमला इनके बीच में आकर रही-सही अंगरेज़ी सेना वहीं चकनाचूर हो गई होती। किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से अमीर खां शुरू से ही ईमानदारी के मुकाबले में धन की अधिक कद्र करता था। 5 मार्च को गवर्नर-जनरल ने लेक को लिखा :

> **"मिस्टर सीटन और जनरल स्मिथ को इस बात का अधिकार दे देना चाहिए कि अमीर खां के जो अनुयायी उसे छोड़ कर आने को तैयार हों, उन सब से वे ज़मींदारियां देने का वादा कर लें। यदि अमीर खां होलकर को छोड़ अंगरेज़ सरकार की ओर आ जाए × × × तो उससे भी जागीर देने का वादा कर लिया जाए।"***

यानी अमीर खां के साथ अंगरेज़ों की साज़िशें इस समय दोरुखी थीं। एक तो अमीर खां के आदमियों को लोभ देकर अमीर खां से तोड़ने की कोशिश और दूसरे, अमीर खां को लालच देकर होलकर से तोड़ने की कोशिश। जनरल लेक ने गवर्नर-जनरल को जवाब में लिखा।

> **"निस्सन्देह, अमीर खां के अनुयायियों को ज़मींदारियों का लालच देना चाहिए।**
>
> **"अमीर खां की मांगें बहुत अधिक हैं। वह तैंतीस लाख रुपये शुरू में और फिर उसके बाद इतनी बड़ी जागीर मांगता है, जिससे दस हज़ार सवारों का गुज़ारा हो सके। यही उसकी मांग रुहेलखण्ड में थी और अब, चूंकि उसकी पलटनें और तोपें सिंधिया से जा मिली हैं, मुझे बहुत सन्देह है कि अब वह अपनी मांग को कम करेगा।"†**

---

* "Mr. Seton and General Smith should be authorised to offer a settlement of land to such of Amir Khan's followers as would quit him. Even Amir Khan himself might be offered a *Jagheer*, if he will quit Holkar's cause, submit to the British Government, and come into General Smith's camp......"—Governor-General to General Lake, 5th March, 1805.

† "A settlement in lands should certainly be offered to Amir Khan's followers.

"Amir Khan is most exorbitant in his demands. He asks thirty-three lacs of rupees in the first instance and a *Jagheer* for 10,000 horse. This was his proposal in Rohilkhand, and I doubt much if he would now be more moderate, as his battalions and guns have joined Scindhia,"—General Lake to Governor-General.

अमीर खां का विश्वासघात

अमीर खां के साथ सौदा हो गया। जनरल स्मिथ, जिसकी मारफ़त सौदा तय हुआ अमीर खां को परास्त करने के लिए सवारों सहित कम्पनी की ओर से भेजा गया। अफ़ज़लगढ़ में अमीर खां की सेना और जनरल स्मिथ की सेना में एक दिखावटी संग्राम हुआ। अमीर खां ने धन और जागीर के लोभ में अपने मालिक जसवन्तराव होलकर के सवारों को शत्रु के भालों और गोलियों के हवाले कर दिया। विजय जनरल स्मिथ की ओर रही। अफ़ज़लगढ़ से चल कर नमकहराम अमीर खां 20 मार्च, सन् 1805 को फिर भरतपुर में होलकर से आ मिला, और विजयी स्मिथ 23 मार्च को बाहर जनरल लेक से आकर मिल गया। जनरल लेक का एक बहुत बड़ा भय इस तरह दूर हो गया।

सिंधिया के लिए अवसर

फिर भी, यदि दौलतराव सिंधिया उस समय बाहर से आकर जनरल लेक की सेना पर हमला कर देता, तो भी जनरल लेक की सेना भरतपूर के मैदान में दोनों ओर से शत्रुओं के बीच में पिस कर समाप्त हो गई होती। दौलतराव सिंधिया को इससे अच्छा अवसर न मिल सकता था। यदि वह अपनी बाक़ी सेना सहित इस समय होलकर की मदद को पहुंच जाता, तो अपने समस्त खोए हुए राज और अधिकारों को फिर से प्राप्त कर सकता था, भारत के अन्दर मृतप्राय मराठा साम्राज्य को फिर से जीवित कर सकता था और विदेशियों की साम्राज्य आकांक्षाओं को उस समय भी खाक में मिला सकता था। जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा, दोनों को दौलतराव सिंधिया के पहुंचने की पूरी आशा थी। स्वयं दौलतराव इस बात को समझता था और भरतपुर पहुंचने के लिए उत्सुक था। किन्तु यह बात जानने योग्य है कि किन चतुर उपायों से अंगरेज़ों ने दौलतराव सिंधिया को होलकर की मदद के लिए मौके पर पहुंचने से रोके रखा। इस बात को जानने के लिए हमें अब कुछ पीछे हट कर इस युद्ध के दिनों की ओर दृष्टि डालनी होगी।

सिंधिया का अनिश्चय

दौलतराव और जसवन्तराव में अंगरेज़ों ही के कारण शुरू से एक-दूसरे पर अविश्वास चला आता था। इस अविश्वास को और अधिक भड़का कर और उससे लाभ उठा कर अंगरेज़ स्वयं दौलतराव सिंधिया से जसवन्तराव होलकर के विरुद्ध सहायता चाहते थे। इसीलिए जसवन्तराव के साथ युद्ध शुरू करने से पहले ही गवर्नर-जनरल ने दौलतराव से वादा कर लिया था कि विजय के बाद होलकर के राज का एक बहुत बड़ा भाग आपको दे दिया जाएगा। शुरू में दौलतराव ने इस वादे पर एतबार करके अंगरेज़ों की मदद भी की, किन्तु शीघ्र ही दौलतराव को अंगरेज़ों के इन सब वादों की असलियत का पता चल गया। अंगरेज़ों के उस समय तक के व्यवहार के विरुद्ध दौलतराव को अनेक शिकायतें थीं, जिनमें से कुछ का इससे पहले ज़िक्र किया जा चुका है। 18 अक्तूबर, सन् 1804 को दौलतराव सिंधिया ने मार्क्विस वेलसली के नाम एक अत्यन्त स्पष्ट और महत्वपूर्ण पत्र लिखा। उस पत्र का सार यह है:

सिंधिया का पत्र

अंगरेज़ों ने मेरी ओर मित्रता दरशा कर मुझ से होलकर के विरुद्ध सहायता चाही, किन्तु मेरी सलाहों और प्रार्थनाओं की ओर रेज़िडेण्ट वेब ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, यहां तक कि स्वयं मेरे साथ वेब का व्यवहार अत्यन्त अनुचित और असभ्य रहा। गोहद और ग्वालियर के मामले में अंगरेज़ों ने हाल की सन्धि का साफ़ उल्लंघन किया, मेरे कुमारकुण्डा और जामगांव इत्यादि इलाक़ों में अंगरेज़ों ने अनेक तरह के उपद्रव खड़े करवा दिए और फिर उन्होंने न सन्धि की शर्तों के अनुसार मुझे अंगरेज़ी सेना की सहायता दी और न अपनी प्रजा की रक्षा के लिए मुझे स्वयं उन इलाक़ों तक सेना से जाने दी। बापूजी सिंधिया के साथ जनरल मानसन का व्यवहार आद्योपान्त लज्जाजनक रहा; यद्यपि अंगरेज़ मुझे अपना मित्र कहते थे और यद्यपि पिछली सन्धि के अनुसार मेरे इलाक़े की रक्षा करना अंगरेज़ों का वैसा ही कर्त्तव्य था, जैसा अपने इलाक़े की रक्षा करना, फिर भी जिस समय कर्नल मरे अपनी सेना सहित उज्जैन में मौजूद था, ठीक उसी समय जसवन्तराव होलकर दो महीने तक माण्डेश्वर के क़िले का मोहासरा करता रहा और आसपास के समस्त इलाक़े में लूट-मार मचाता रहा, किन्तु कर्नल मरे ने उसकी ज़रा भी परवाह न की; उसी समय होलकर के सरदार अमीर ख़ां ने, जो अंगरेज़ों से मिला हुआ था, भिलसा के क़िले को घेर लिया, भिलसा नगर और आसपास के तमाम इलाक़े को लूटा और क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया किन्तु अंगरेज़ों ने या कर्नल मरे ने ज़रा भी परवा न की और न मेरी ज़रा भी सहायता की। पिछले युद्ध के बाद से अब तक सन्धि के साफ़ विरुद्ध मेरे अमुक-अमुक इलाक़े पर अंगरेज़ों ने स्वयं क़ब्ज़ा कर रखा है, अमुक-अमुक इलाके दूसरों को दे रखे हैं, और अमुक-अमुक इलाक़ा उजाड़ कर वीरान कर दिया है, जिसके कारण मुझे भारी आर्थिक और अन्य हानियां सहनी पड़ रही हैं, इत्यादि। अन्त में दौलतराव सिंधिया ने गवर्नर-जनरल को सूचना दी :

> **"अब मैं पक्का निश्चय कर चुका हूं कि अपनी पुरानी सेनाएं जमा करके और नई सेनाएं भरती करके एक बहुत बड़ी सेना तैयार करूं और फिर शत्रु को दण्ड देने के लिए निकलूं; क्योंकि मैं इस बात को देख कर कैसे सन्तुष्ट रह सकता हूं कि जिस इलाक़े को विजय करने में करोड़ों रुपये खर्च हुए हैं और बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी गई हैं और जो इलाक़ा एक दीर्घ काल से मेरे अधिकार में रहा है, वह अब दूसरे के हाथों में चला जाए। शत्रु के हाथों से अपने इलाक़े को छीन लेना कोई अधिक कठिन काम नहीं है। केवल अपने मित्रों को सफ़ाई और दिली हमदर्दी की जरूरत है, और किसी तरह की मदद की जरूरत नहीं।"**

सिंधिया की सारी शिकायतें सच्ची थीं, और पत्र के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है कि उस समय वह लाचार होकर अंगरेज़ों और उनके मददगारों से लड़ने और अपने इलाक़े वापस लेने का संकल्प कर चुका था।

इस बीच रेज़िडेण्ट वेब की मृत्यु हो गई। जेनकिन्स उसकी जगह रेज़िडेण्ट नियुक्त होकर सिंधिया दरबार में भेजा गया। जेनकिन्स का व्यवहार भी महाराजा दौलतराव के साथ उतना ही खराब रहा, जितना कि वेब का रह चुका था। यहां तक कि विवश होकर दौलतराव सिंधिया ने जेनकिन्स को अपने यहां क़ैद कर लिया।

जीन बैप्टिस्टे के साथ अंगरेज़ों की साजिश

अंगरेज़ों को अब सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि कहीं दौलतराव सिंधिया जसवन्तराव की मदद के लिए भरतपुर न पहुंच जाए। सिंधिया के आदमियों के साथ साजिशें शुरू की गईं। सिंधिया की सेना के अधिकांश यूरोपियन अफ़सर पिछले युद्ध के समय अंगरेज़ों से मिल गए थे। फिर भी, सिंधिया की अदूरदर्शिता के कारण एक ईसाई अफ़सर, जीन बैप्टिस्टे फ़िलासे, जिसका ज़िक्र ऊपर भी आ चुका है, अभी तक सिंधिया की सेना में एक ऊंचे ओहदे पर नियुक्त था। जीन बैप्टिस्टे के अनेक सम्बन्धी भी सेना के अनेक पदों पर नौकर थे। जनरल लेक ने जीन बैप्टिस्टे के साथ और उसकी मारफ़त दूसरों के साथ साजिशें शुरू कीं। मार्क्विस वेल्सली के नाम 22 सितम्बर, सन् 1804 को एक 'प्राइवेट' पत्र में जनरल लेक ने आगरे से लिखा :

> **"जीन बैप्टिस्टे ××× मेरे पास आ जाना चाहता है, किन्तु अपनी फ़ौज को देने के लिए डेढ़ लाख रुपये मांगता है। कहा जाता है कि आदमी अच्छा और सच्चा है, और हाल में उसके पत्र व्यवहार से जो कुछ मैं देख पाया हूं उससे जाहिरा ऐसा ही मालूम होता है ; किन्तु उसे रुपया देने से पहले मुझे उसकी सचाई का अधिक विश्वास होना चाहिए ; कम से कम इतना रुपया तो अभी नहीं ; यदि वह कोई खास काम करके दिखाए, तो फिर उसे देने का भी काफ़ी मौक़ा रहेगा।"***

जनरल लेक के दूसरे पत्रों से साबित है कि जीन बैप्टिस्टे से अंगरेज़ों का सौदा हो गया और उसने 'ख़ास काम' करके भी दिखा दिया।

भरतपुर के मोहासरे के समय दौलतराव सिंधिया अपनी सेना सहित बरहानपुर में मौजूद था। भरतपुर के मोहासरे की ख़बर पाते ही उसने सबसे पहले अपने पिण्डारी सवार भरतपुर की ओर रवाना कर दिए और फिर बाक़ी सेना के साथ स्वयं भरतपुर पहुंचने के लिए उत्तर की ओर बढ़ा। जसवन्तराव होलकर और राजा रणजीत सिंह, दोनों को दौलतराव सिंधिया की सहायता पर पूरा भरोसा था। इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि दौलतराव की सहायता वक्त पर पहुंच जाती, तो कम-से-कम मराठा मण्डल को दूसरे मराठा युद्ध से पहले की अपनी प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त हो जाती। किन्तु दुर्भाग्यवश एक तो सिंधिया के वे अधिकांश पिण्डारी सवार, जो भरतपुर की ओर रवाना किए गए, पहले अमीर खां की सेना में रह चुके थे और अमीर खां के प्रभाव में थे ; दूसरे, सिंधिया की सेना की बाग इस समय नमकहराम जीन बैप्टिस्टे फ़िलासे के हाथों में थी; तीसरे, सिंधिया के मुख्य सलाहकारों में इस समय एक मुंशी कमलनयन था। सन् 1803 में अंगरेज़ों और सिंधिया के बीच जो सन्धि हुई थी, उस पर सिंधिया की ओर से मुंशी कमलनयन ही के हस्ताक्षर

* "Jean Baptiste......is desirous of coming to me but requires a lac and a half of rupees to pay his troops. He is reported to be a good and fair man, and by what I have seen of him lately from his correspondence, has every appearance of being so; but I must be more convinced that he is so before I give him money, at any rate not to that extent; if he does anything worth notice it will be time enough to pay him then."—General Lake's 'Private' letter to Marques Wellesley, dated Agra, 22nd September, 1804.

हुए थे। जेम्स मिल के इतिहास से पता चलता है कि मुंशी कमलनयन अंगरेज़ों का ज़रख़रीद और उनका पक्का हितसाधक* था।

जीन बैप्टिस्टे का विश्वासघात

जीन बैप्टिस्टे ने सिंधिया के साथ विश्वासघात करके उस सवार सेना को समय पर भरतपुर पहुंचने से रोके रखा, जिसे दौलतराव सिंधिया ने आगे रवाना कर दिया था। बाद में जब भरतपुर के मोहासरे के बाद जसवन्तराव होलकर और दौलतराव सिंधिया की भेंट हुई, तब दौलतराव को जीन बैप्टिस्टे के इस विश्वासघात का पता चला। इस पर दौलतराव ने जीन बैप्टिस्टे को क़ैद कर लिया; किन्तु उस समय तक जीन बैप्टिस्टे का विश्वासघात अपना काम कर चुका था।

अंगरेज़ों को जब पता लगा कि स्वयं दौलतराव सिंधिया भरतपुर की ओर बढ़ा चला आ रहा है और चम्बल नदी के पास आ पहुंचा है, तो उन्होंने तुरन्त मुंशी कमलनयन की मारफ़त सिंधिया को यह लोभ दिया कि यदि आप पीछे लौट कर होलकर के मालवा के कुछ ज़िलों पर क़ब्ज़ा कर लें, तो वे सब ज़िले और बहुत-सा नक़द धन कम्पनी की ओर से आपकी भेंट कर दिया जाएगा। दौलतराव सिंधिया ने अब होलकर के उन ज़िलों पर हमला करना स्वीकार न किया, फिर भी मुंशी कमलनयन की चालों और इन नरेशों के पुराने परस्पर अविश्वास ने इतना असर अवश्य किया कि दौलतराव बजाय भरतपुर पहुंचने के आठ मील पीछे हट कर अपनी सेना सहित सब्बलगढ़ में ठहर गया। जसवन्तराव होलकर और भरतपुर के राजा, दोनों ने पिछले युद्ध में सिंधिया के विरुद्ध अंगरेज़ों का साथ दिया था और इसमें सन्देह नहीं कि उस दुर्घटना की याद ने जीन बैप्टिस्टे और मुंशी कमलनयन के काम को बहुत आसान कर दिया।

राघोजी भोंसले के साथ अन्याय

दौलतराव सिंधिया के अतिरिक्त राघोजी भोंसले के भी जसवन्तराव की मदद के लिए पहुंच जाने का अंगरेज़ों को डर था। अब यह देखना होगा कि राजा राघोजी भोंसले को किस तरह होलकर की मदद कर सकने से रोका गया।

जिस तरह अंगरेज़ों ने सिंधिया के साथ सन् 1803 की सन्धि को तोड़ कर ग्वालियर और गोहद के इलाक़े उससे छीन लिए थे, उसी तरह बरार राज्य के कई उपजाऊ प्रान्त उन्होंने सन्धि के विरुद्ध अपने क़ब्ज़े में कर लिए और राजा राघोजी भोंसले से उसकी स्वीकृति पर ज़बरदस्ती दस्तख़त कराने चाहे। राजा राघोजी ने इस अन्याय का विरोध किया। 24 मार्च, सन् 1805 को गवर्नर-जनरल ने डाइरेक्टरों के नाम बरार के इन प्रांतों के सम्बन्ध में लिखा :

> **"राजाद्वारा उन हितकर शर्तों को नामंजूर करने से और राजा और उसके मन्त्रियों के बयानों के आम तर्ज़ से यह साफ़ ज़ाहिर है कि हमने जो प्रान्त राजा**

---

*Mill's *History of British India,* book vi, chap. xiii.

से ले लिए हैं, उसे वह अभी तक अपने साथ अन्याय और ब्रिटिश सरकार की ओर से विश्वासघात समझता है ।"*

यानी बरार का राजा अभी तक इस अन्याय को अन्याय कह रहा था और इस अन्याय के सामने उसने गरदन न झुकाई थी। इसके अलावा नागपुर के अंगरेज रेज़िडेण्ट एलफ़िन्सटन ने इस समय राजा राघोजी के साथ अत्यन्त धृष्टता का व्यवहार शुरू कर दिया। निस्सन्देह, उस समय के भारतीय नरेशों के दरबारों में रेज़िडेण्टों का अच्छा या बुरा व्यवहार कम्पनी की भारतीय नीति का एक निश्चित अंग होता था।

अंगरेज़ों को अब इस बात का डर था कि इस सारे व्यवहार के कारण कहीं बरार का राजा अपनी रही-सही ताक़त से जसवन्तराव होलकर का साथ न दे बैठे और अपने पैतृक सूबे अंगरेज़ों के हाथों से छुड़ाने की कोशिश न कर बैठे; मथुरा में बैठे हुए जसवन्तराव ने राजा राघोजी भोंसले को अपनी ओर करने का प्रयत्न भी किया था। इसलिए मार्क्विस वेलसली ने बरार के राज्य को ही हिन्दोस्तान के मानचित्र से मिटा देने का संकल्प कर लिया। गवर्नर-जनरल के जिस पत्र का ऊपर ज़िक्र किया गया है, उसमें लिखा है :

"गवर्नर-जनरल ने नागपुर के रेज़िडेण्ट के नाम यह आदेश भेज देना उचित समझा है कि नागपुर के राजा की कार्रवाई के बारे में अंगरेज सरकार को जो कुछ खबर मिली है, उसकी सूचना उचित अवसर पाकर बिल्कुल खुले तरीके से राजा को दे दो और यह कह दो कि गवर्नर-जनरल आवश्यक समझता है कि बिना आप (राजा) की ओर से किसी जवाब का इन्तज़ार किए, आपके आक्रमण को रोकने और आपको इस विश्वासघात की सजा देने के लिए तैयारियां शुरू कर दे; × × × गवर्नर-जनरल ने यह निश्चय कर लिया है कि जिस रियासत में ईमानदारी के हर असूल की इतनी कमी है, उसके विरुद्ध कम्पनी की सारी शक्ति और सामर्थ्य से काम लिया जाए, और जब तक कि राजा पूरी तरह से परास्त न हो जाए, तब तक रुका न जाए ।"†

जनरल लेक और मार्क्विस वेलसली, दोनों के अनेक पत्रों से प्रकट है कि जनरल मानसन की पराजयों के बाद ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि भारतवासियों के दिलों पर ब्रिटिश सत्ता की धाक फिर से जमाने के लिए भरतपुर के राजा रणजीत

* "It manifestly appeared not merely by the Raja's rejection of those Beneficial articles, but by the general tenor of his declarations and those of his ministers, that the Raja still considered the alienation of the provinces in question to be an act of injustice and a violation of faith on the part of the British Government."

† "The Governor-General deemed it expedient to issue instrucions to the Resident at Nagpore, directing him to take a proper opportunity of apprising the Raja of Berar in the most public manner of the information which the British Government have received with regard to his proceeding, that the Governor-General had deemed it necessary, without awaiting any explanation, to make preparatory arrangements for the eventual purpose of repelling aggression and punishing treachery on the part of the Raja; ......The Governor-General resolved to call forth the whole power and resources of the Company against a state so devoid of every principle of good faith, and not to desist, until the Government of the Raja should have been effectually reduced."

सिंह और नागपुर के राजा राघोजी भोंसले दोनों को कोई-न-कोई बहाना निकाल कर हरा दिया जाए और उनके राज्यों को भारत के मानचित्र से मिटा दिया जाए। इसलिए 'विश्वासघात' किस ओर था और 'ईमानदारी के हर असूल की इतनी कमी' अंगरेज़ों की ओर थी या राघोजी भोंसले की ओर—यह बात इतिहास से स्पष्ट है।

बरार के राजा पर यह इलज़ाम लगाया गया कि तुम होलकर की मदद करना चाहते हो। किन्तु राजा को इस इलज़ाम के जवाब में कोई शब्द कहने या पत्र का जबाब देने तक का मौक़ा नहीं दिया गया। इसके विपरीत राजा राघोजी को धोखे में रखने के लिए गवर्नर-जनरल ने आगे चल कर लिखा है :

"किन्तु रेज़िडेण्ट को हिदायत की गई कि तुम ये सब बातें उस समय तक राजा से न कहना, जिस समय तक कि तुम्हें होलकर के साथ जनरल लेक की पहली लड़ाइयों का नतीजा मालूम न हो जाए ; सिवाय इसके कि कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाए, जिसके कारण इन बातों का फ़ौरन कह देना ही तुम्हें उपयोगी और आवश्यक जान पड़े।

"साथ ही, रेज़िडेण्ट को यह भी आदेश दिया गया कि तुम राजा को विश्वास दिला दो कि जब तक आप स्वयं पिछली सन्धि की शर्तों पर कायम रहेंगे, तब तक अंगरेज़ सरकार आपके साथ अत्यन्त मित्रता का व्यवहार जारी रखेगी ×××।"*

जनरल वेल्सली की हिदायत

अक्तूबर, सन् 1804 के शुरू में गवर्नर-जनरल ने अपने भाई जनरल वेल्सली को फिर कलकत्ते से दक्षिण वापस भेजा और यह हिदायत की कि तुम उचित अवसर देख कर नागपुर पर हमला कर देना। नागपुर में वेलसली की कार्रवाइयों का ज़िक्र किसी अगले अध्याय में किया जाएगा, यहां पर केवल यह दिखाना आवश्यक था कि किस तरह अंगरेज़ों ने सिंधिया और भोंसले, दोनों को जसवन्तराव होलकर और राजा रणजित सिंह की सहायता के लिए पहुंचने से रोक रखा।

भरतपुर के साथ सन्धि

उधर मार्क्विस वेल्सली युद्ध समाप्त करने के लिए अधीर हो रहा था। 9 मार्च, सन् 1805 को उसने जनरल लेक को लिखा :

"××× मैं हद से जियादा इच्छुक हूं कि जिन शर्तों पर भी हो सके, युद्ध को शीघ्र समाप्त किया जाए। ××× मेरी आपसे प्रार्थना है कि जब तक मोहासरों को जारी रखने के लिए आपके पास पूरा-पूरा और काफ़ी सामान न हो, आप फिर से मोहासरा शुरू करने की कोशिश न करें; जब तक सफलता में ज़रासा

---

* "The Resident, however, was directed to suspend these representations until he should have learned the result of the Commander-in-Chief's first operations against Holkar, unless circumstances should render an immediate statement of them useful and necessary.

"The Resident was at the same time instructed to assure the Raja of the most amicable disposition of the British Government towards him while he should continue to abide by his engagements under the late peace; etc. etc."

भी सन्देह है, तब तक आप हमला करने का प्रयत्न न करें। मुझे डर है कि हमने इस जगह को और इस शत्रु को इतना तुच्छ समझ लिया था कि हमने दोनों को अजेय बना दिया।"*

जनरल लेक ने बार-बार राजा रणजीत सिंह से सुलह की प्रार्थना की। रणजीत सिंह ने बार-बार लेक की शर्तों को अस्वीकार किया। पत्र-व्यवहार बराबर जारी रहा। अन्त में जब राजा रणजीत सिंह ने देखा कि अमीर खां ने होलकर के साथ विश्वासघात किया, और दौलतराव सिंधिया भी अपने नमकहराम सलाहकारों की चालों में आकर जसवन्तराव होलकर की मदद के लिए भरतपुर न पहुंच सका, तो विवश होकर उसने जनरल लेक की सुलह की प्रार्थना की ओर ध्यान देना शुरू किया। फिर भी, लेक के ज़ोर देने पर भी, राजा रणजीत सिंह ने जसवन्तराव होलकर को अंगरेज़ों के हवाले करना किसी तरह स्वीकार न किया। अंगरेज़ों ने मजबूर होकर भरतपुर का मोहासरा बन्द कर दिया। राजा ने सबसे पहले मार्च, 1805 के अन्त में होलकर और उसकी बाकी सेना को खुले सब्बलगढ़ की ओर रवाना कर दिया। उसके बाद अप्रैल के शुरू में अंगरेजों और भरतपुर के राजा में सन्धि हो गई। सिंधिया की सवार सेना भरतपुर पहुंची, किन्तु इस सुलह के हो जाने के बाद। डीग का किला और भरतपुर का वह सारा इलाका, जिस पर हाल में अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था, ज्यों-का-त्यों राजा भरतपुर को लौटा दिया गया, यानी राजा रणजीत सिंह को इस युद्ध से किसी तरह की हानि नहीं उठानी पड़ी। जसवन्तराव होलकर कहीं और जाकर फिर एक बार अंगरेज़ों के साथ अपनी किस्मत आज़माने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया।

भरतपुर का महत्व

भरतपुर की सेना की वीरता और वहां के किले की अभेद्यता उस समय सारे भारत में प्रसिद्ध हो गई। इतिहास-लेखक थार्नटन लिखता है कि "जिस समय सन् 1805 में अंगरेज़ भरतपुर के किले का मोहासरा कर रहे थे, उस समय कम्पनी के कुछ हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने कहा था कि—"हम लोगों को नगर के ऊपर पीताम्बर पहने, शंख, धनुष, वंशी और गदा धारण किए गोपाल साफ़ दिखाई दे रहे हैं।"†

निस्सन्देह, भरतपुर की दीवारों ने अंगरेज़ों के गर्व को चूर कर दिया और भारतवासियों के दिलों से कुछ समय के लिए उनके जादू के असर को दूर कर दिया।

---

* "......I feel too strong a desire for the early termination of the war, even on any terms......I request Your Lordship not to attempt to renew the seige without full and ample means for its prosecution; not to attempt any assault while the least doubt exists of success. I fear that we have despised the place and enemy so much as to render both formidable."—Marques Wellesley to General Lake, 9th March, 1805.

† "In 1805, during the first seige, some of the native soldiers in the British service declared that they distinctly saw the town defended by that divinity, dressed in yellow garments, and armed with his peculiar weapons, the bow mace, couch and pipe."—Thornton in his *Gazetteer of India.*

परिशिष्ट

आभार-प्रदर्शन

1. **गोस्वामी तुलसीदास**

   (श्री बहादुर सिंह जी सिंघी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, नवाब मुर्शिदाबाद के यहां की एक फ़ारसी हस्तलिखित रामायण के समकालीन चित्र से)

2. **गुरु नानक देव**

   (विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

3. **सन्त तुकाराम**

   (श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर के सौजन्य से)

4. **दरबार नौरतन अकबरी**

   (विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

5. **दारा शिकोह**

   (विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

6. **सम्राट जहांगीर से सर टामस रो की भेंट**

   (विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

7. **कालीकट नरेश सामुरी से वास्को-दे-गामा की भेंट**

   (मेजर बसु लिखित अंगरेज़ी पुस्तक 'राइज़ आफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया', द्वितीय संस्करण से साभार)

8. **अलीवरदी खां**

   (द० ब० पारसनीस कृत 'इतिहास संग्रह' से)

9. **सिराजुद्दौला**

   ('बांगलार इतिहास' नामक बंगला ग्रन्थ से साभार)

10. **मीर जाफ़र और मीरन**

    (मेजर वाल्श लिखित अंगरेज़ी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ़ मुर्शिदाबाद' से साभार)

11. **मीर क़ासिम**
(श्री बहादुर सिंह सिंघी, कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त एक प्राचीन चित्र)

12. **नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला**
(श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर के सौजन्य से प्राप्त एक प्राचीन चित्र)

13. **सम्राट शाह आलम लार्ड क्लाइव को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्रदान कर रहा है**
(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के सौजन्य से)

14. **नजमुद्दौला**
(मेजर वाल्श लिखित 'हिस्ट्री आफ़ मुर्शिदाबाद' नामक पुस्तक से साभार)

15. **काशी—नरेश राजा चेत सिंह**
(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

16. **छत्रपति शिवाजी**
(पेरिस के बिबलियोथीक नेशनेल में सुरक्षित एक प्राचीन चित्र—'राइज़ आफ़ द क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया' नामक पुस्तक से साभार)

17. **पेशवा नारायणराव**
(चित्रशाला प्रेस, पूना के सौजन्य से)

18. **पेशवा नारायणराव की हत्या**
(द० ब० पारसनीस कृत 'इतिहास संग्रह' से साभार)

19. **महारानी अहिल्याबाई होलकर**
(चित्रशाला प्रेस, पूना के सौजन्य से)

20. **हैदरअली**
(एम० एम० डी० एल० टी० कृत फ्रेंच पुस्तक के अंगरेज़ी संस्करण 'हिस्टरी आफ़ हैदरशाह' से साभार)

21. **टीपू सुलतान की सैन्य यात्रा**
(सुपरिण्टेण्डेण्ट, गैवर्नमेंण्ट गार्डेन्स, मैसूर के सौजन्य से प्राप्त। मूल चित्र दरिया दौलतबाग़ में सुरक्षित है)

22. **लार्ड कार्नवालिस टीपू सुलतान के दो बेटों को बतौर बन्धक ले रहा है**
(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के सौजन्य से)

23. **पेशवा माधोराव नारायण**

(श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर के सौजन्य से)

24. **टीपू सुलतान**

(टीपू सुलतान के प्रपौत्र शाहज़ादे अहमद हलीमुज्ज़ा, और उनके भतीजे शहज़ादे गुलाम हुसेनशाह के सौजन्य से प्राप्त एक तत्कालीन चित्र की प्रतिलिपि)

25. **श्रीरंगपट्टन में हैदरअली और टीपू सुलतान की समाधि**

(द० ब० पारसनीस कृत 'इतिहास संग्रह' से साभार)

26. **टीपू सुलतान की मृत्यु के बाद उसके दो बेटों का आत्मसमर्पण**

(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के सौजन्य से)

27. **टीपू सुलतान के सिंहासन के शिखर का रत्नजडित मोर**

(द० ब० पारसनीस कृत 'इतिहास संग्रह' से साभार)

28. **टीपू सुलतान की पताकाएं और सिंहासन का चरणासन**

(हेनरी बीवरिज़ लिखित अंगरेज़ी पुस्तक 'ए कम्प्रिहेंसिव हिस्टरी आफ़ इण्डिया' द्वितीय खण्ड से साभार)

29. **टीपू सुलतान का सिंहासन**

(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के सौजन्य से)

30. **जगद्गुरु शंकराचार्य के नाम टीपू सुलतान के मूल कन्नड़ पत्र का फ़ोटो**

(पुरातत्व विभाग, मैसूर के संचालक के सौजन्य से)

31. **कृष्ण राजा सागर की आधारशिला पर खुदे हुए टीपू सुलतान के फ़ारसी शिला-लेख का चित्र**

(रजिस्ट्रार, मैसूर विश्वविद्यालय के सौजन्य से)

32. **हिन्दोस्तानी पोशाक में लखनऊ का रेजिडेण्ट, सर जान रसेल और उसका मुंशी, अल्ताफ़ हुसैन**

(विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के क्यूरेटर के सौजन्य से)

33. **नाना फड़नवीस**

(चित्रशाला प्रेस, पूना के सौजन्य से प्राप्त)

34. **महाराजा दौलतराव सिंधिया**

(श्री वासुदेवराव सूबेदार, सागर के सौजन्य से प्राप्त)

35. **माधोजी सिंधिया**

(चित्रशाला प्रेस, पूना के सौजन्य से प्राप्त)

36. **जसवन्तराव होलकर**

(श्री वासुदेवराव सूबेदार, सागर के सौजन्य से)

37. **भरतपुर नरेश राजा रणजीत सिंह**

(पं० गोकुल चन्द दीक्षित, सम्पादक, 'स्टेट गज़ट', भरतपुर के सौजन्य से)

38. **भरतपुर की एक पीतल की तोप**

(जे० एन० केटन लिखित अंगरेज़ी पुस्तक 'नैरेटिव आफ द सीज एण्ड कैप्चर आफ़ भरतपुर' से साभार)

भा०स०मु०ना०—वि०5–220 एम०आफ० आई०एण्ड बी०/80–15-9-82—3,000.